शिशुरोग चिकित्सांक

आदि सम्पादक

वैद्योपाध्याय देवीशरण गर्ग

सम्पादक

आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

सहायक सम्पादक

गोपालशरण गर्ग

वैद्य मदनमोहनलाल चतौरे

प्रबन्ध सम्पादक

भगवतीप्रसाद गर्ग B. Pharm.

वार्षिक मूल्य

१२.००

इस अङ्क का मूल्य—१५.००

समर्पण

परमपूज्य,

आपका महा प्रयाण एक वर्ष पूर्व हुआ ! इतने शीघ्र इतना काल आपके वियोग में बीत जायगा जबकि आँखें भीगी की भीगी हैं कल्पना से परे हैं !

आप कितनी दूर चले गये ! पर हमने इन दीर्घ विपत्ति के क्षणों में भी आपको अपने सान्निध्य में ही पाया है ।

आपके स्मृति चरणों में यह शिशु रोग चिकित्सांक सादर समर्पित है !!

देव ! आपके आशीर्वाद का वरद हस्त हम बालकों पर यथावत् रहेगा, इस आशा और दृढ़ विश्वास के साथ—

मुरारीलाल, भगवतीप्रसाद,
गोपालशरण

प्रस्तुत विशेषांक

प्रस्तुत विशेषांक शिशुरोग चिकित्सांक आपके हाथों में है इसके बारे में कुछ कहना न तो उचित ही है और न आवश्यक ही। हमारा परिश्रम तभी सार्थक होगा जबकि प्रस्तुत विशेषांक पाठकों की दृष्टि में खरा उतरेगा। कृपया इसका अवलोकन कीजिये तथा अपने विचार इसके विषय में हमें खुले हृदय से लिखिये केवल प्रशंसा ही नहीं हमारी त्रुटियों से अवगत कराइये जिससे आगामी विशेषांकों में उन त्रुटियों का ध्यान रखा जाय। उन सभी लेखकों को अपना आभार प्रगट करना हम अपना प्रथम कर्तव्य समझते हैं जिन्होंने हमें अपना अमूल्य सहयोग दिया है तथा उन लेखकों से जिनकी कृतियों का हम किसी कारण से इस विशेषांक में समावेश नहीं कर पाये हैं क्षमा कर देने की याचना भी करते हैं।

आगामी विशेषांक तथा लघु विशेषांक

सुधानिधि के पाठकों के समक्ष यह सूचित करते हुये हमें प्रसन्नता है कि आगामी वर्ष का विशेषांक 'वृद्ध रोग चिकित्सांक' प्रकाशित किया जायगा। महिला, पुरुष तथा शिशुरोग चिकित्सांक के बाद हमारे प्रेमी पाठकों का यह विशेष आग्रह तथा परामर्श था कि इसी श्रृंखला में वृद्धों के ऊपर भी विशेषांक निकाला जाय। हमने विचार करके इस परामर्श को उचित समझा। इस विषय पर विशेषांक निकालना शायद सुधानिधि का प्रथम प्रयास होगा इसलिये आयुर्वेद जगत् इस विशेषांक का अन्य विशेषांकों से भी अधिक स्वागत करेगा ऐसा हमारा विश्वास है।

इस वर्ष के २ लघु विशेषांकों के विषय का भी चयन कर लिया गया है। इस वर्ष जौलाई माह में आयुर्वेदीय कैपसूलांक, तथा नवम्बर माह में 'दन्तरोगांक' प्रकाशित किया जायगा। आयुर्वेदीय कैपसूलांक के सम्पादन का भार सुधानिधि के पाठकों के परिचित वैद्यराज मोहरसिंह आर्य को सौंपा गया है। 'वृद्धरोग चिकित्सांक' तथा उपर्युक्त दोनों लघु विशेषांकों की सूची आगामी माह के अंकों में प्रकाशित करेंगे। लेखकों से अनुरोध है कि वह उपर्युक्त तीनों विशेषांकों के लिये अपना सहयोग हमें अवश्य प्रदान करें।

निवेदन तथा आभार प्रदर्शन

अपने प्रेमी पाठकों के स्नेह के बल पर ही सुधानिधि सफलता की सीढ़ियां पार करता आ रहा है। पिछले ३ वर्षों के अल्प समय में सुधानिधि को जो सफलता मिली है वह किसी से छिपी नहीं है इसका सर्वाधिक श्रेय आप पाठकों को ही है। हमारे निवेदन पर हमारे प्रेमी पाठक अनेक नवीन ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करते हैं। यदि आपने इस रूप में हमारी सहायता अभीतक नहीं की है तो हमारा निवेदन है कि इस विशेषांक को किसी अपने परिचित वैद्य या आयुर्वेद प्रेमी को दिखाइये जो सुधानिधि के ग्राहक न हों हमारा विश्वास है कि इस विशेषांक को देखकर शायद ही कोई ऐसा आयुर्वेद प्रेमी होगा जो इसका ग्राहक बन जाना न चाहेगा। आशा है आप हमारे इस आग्रह को ठुकरायेंगे नहीं। तथा इतना कार्य हमारी सहायतार्थ अवश्य करेंगे।

अन्त में मैं अपने सभी विद्वान् लेखकों, पाठकों, शुभचिन्तकों को अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनके आशीर्वाद तथा सद् परामर्शों के बल पर हम यह कार्य करने में सफल हुये हैं तथा भविष्य में भी उनके कृपापूर्ण सहयोग की कामना करता हूँ। जय धन्वन्तरि।

—मुरारीलाल गर्ग

अखिल विश्व में आयुर्वेद प्रचार में सतत संलग्न, आयुर्वेद जगत् के प्राण, अध्यक्ष-केन्द्रिय भारतीय चिकित्सा परिषद्, नई दिल्ली ।

चक्रवर्ती वैद्यरत्न पं० शिवशर्मा का शुभकामना-सन्देश ।

I am glad to learn that the Shishu-Roga Chikitsanka of the well-known Ayurvedic Magazine, 'SUDHA-NIDHI' is coming out next March. The Learned Editor, Shri Raghuvir Prasad Trivedi has decided to make the date of publication coincide with the first death anniversary of the Late Shri Devi-Sharan Garg. The issue will carry useful articles on the treatment of the diseases of children I am sure it will prove a worthy successor to the excellent special issue which the profession has benefited earlier:

I, wish the publication every success.

Shiv Sharma.

यह जानकर मैं प्रसन्न हूं कि अगले मार्च मास में सुप्रसिद्ध आयुर्वेद पत्रिका 'सुधानिधि' का शिशुरोग चिकित्सांक प्रकाशित होने जा रहा है। विद्वान् सम्पादक श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ने निश्चय किया है कि इसके प्रकाशन की तिथि स्वर्गीय श्री देवीशरण गर्ग की प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर पड़े। यह विशेषांक बालरोगों की चिकित्सा पर उपयोगी लेखों से युक्त होगा। मैं विश्वास करता हूं कि आयुर्वेदोन्नति के पुण्यकर्म में अपने श्रेष्ठतम विशेषांकों की श्रृङ्खला में पूर्वापेक्षया यह भी एक योग कड़ी के रूप में अपने को सिद्ध करेगा।

मैं इस प्रकाशन की प्रत्येक सफलता के लिये शुभ कामनाएं प्रेषित करता हूं।

ह० शिवशर्मा

आचार्य वैद्य पं० विश्वनाथ द्विवेदी का शुभसन्देश

प्रिय श्री त्रिवेदी जी,

सप्रेम नमस्कार,

आपका तिथि १२-२-७५ का संदेश-पत्र प्राप्त हुवा। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि सुधानिधि का शिशुरोगांक छप रहा है। सुधानिधि के पूर्व के दो अङ्क पुरुषरोगांक व महिला-रोगांक बड़े ही सुरुचिपूर्ण आवश्यक विषयों से सुसज्जित प्रकाशित हुये हैं। शिशुरोगांक भी इससे उत्तम रूप में प्रकाशित होगा यह शुभाशा है। सुधानिधि के विकास की आप की योजना का समादर करता हूं। शिशु रोगों का स्वरूप विशिष्ट अनुभवों पर आधारित रहता है। आशा है इसमें योग्य अनुभवी विद्वज्जनों के उत्तम लेख प्रकाशित होंगे। इस रोगांक के समुचित सम्पादन की मनोकामना करता हूं आप जैसे विशिष्ट सम्पादक की कलित कलाकुशल लेखनी से यही आशा है।

विश्वनाथ द्विवेदी

वैद्य श्री अम्बालाल जोशी का शुभकामना–सन्देश

श्रीमान् जी,

कलम के जादूगर आचार्य रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी के सम्पादन में प्रकाशित होने वाला सुधानिधि का शिशु-रोग चिकित्सांक अनुपम तथा अद्वितीय होगा ऐसी आशा है। निश्चय ही त्रिवेदी जी रेखा चित्रों में रंग भरने का कार्य आश्चर्यजनक रूप से करते हैं।

पूर्ण विश्वास के साथ मैं इस अङ्क की सफलता की कामना करता हूं।

अम्बालाल जोशी

शिशुरोग चिकित्सांक

की

विषयानुक्रमणिका

आर्ष खण्ड

शारीर खण्ड

शिशु संपोषण खण्ड

शिशु रोग निदान खण्ड

चिकित्सा खण्ड

शिशु ऊर्ध्वजत्रुरोगो खण्ड-

श्वसन संस्थानीय बालरोगोपखण्ड

शिशुकोष्ठकोष्ठांग रोगोपखण्ड

बाल हृद्रोगोपखण्ड

मूत्रवहसंस्थान बालरोगोपखण्ड

शिशु सप्तधातुरोगोपखण्ड

शिशु त्वग्रोगोप खण्ड

विविध चिकित्सा पद्धतियां तथा शिशुरोग

शिशु औपसर्गिक रोगोपखंड

अनुभव खण्ड

४. रासोन–संधियों का दर्द और सूजन, गठिया वायु विकारों में विश्वसनीय, ६ × २ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
५. दुग्ध प्रोटिन–गर्भाशय शोथ, रक्त प्रदर, श्वेत प्रदर फोड़े फुन्सियों में अमोघ है, ५ × २ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
६. प्रदरारी–रक्त प्रदर और श्वेत प्रदर में गर्भाशय शोथ मे आशुगुणकारी, ६ × २ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
७. निडोगिन–मानसिक उत्तेजना में, यथा मनोविभ्रम, उन्माद, प्रलाप, हिस्टीरिया, अनिद्रा में ६ × १ ml ४.५० रु.
८. पुनर्नोल–हृदय शूल, हृदय धमनी के रुक जाने से हृदय वेदना या हार्ट फेल, हृदय विकार जन्य श्वांस रोग तमक श्वास में जलोदर और शोथ नाशक प्रसिद्ध लाभकारी, ६ × २ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
९. गिरपार–भयकर तीव्र शूल, उदर शूल, गुल्म। वृक्कशूल, वृश्चिकदंश शूल, स्वप्नदोष, हिक्का नाशक। राजयक्ष्मा का रात्री स्वेद वत्सनाम विष नाशक है। ६ × १ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
१०. मरुताशी–गठिया वातरोग, संधियों का दर्द और सूजन में प्रसिद्ध लाभकारी, ६ × २ बक्स ४ रु. ५० पैसे।
११. तापोहर–नजला, कफ नाशक, वात कफ ज्वर, निमोनियां, प्रसिद्ध हृदयोत्तेजक ६ × १ बक्स ४ रु. ५० पैसे।
१२. लैरीजंदस– ऐलर्जी से उत्पन्न जुकाम, खांसी में, त्वचा की जलन, पित्ती निकलने पर, गुदा या योनी की खारिश और तेज खुजली में, पेनीसिलीन, ग्लूकोज आदि इंजेक्शनों की प्रतिक्रिया या एलर्जी होने पर तत्काल लाभकारी है। ६ × १ ml बक्स ४ रु. ५० पैसे।
१३. क्लीबान्तक–प्रसिद्ध नपुंसकता (नामर्दी) नाशक एवं कामोत्तेजक है, ६ × १ ml बक्स ७ रु. ५० पैसे।
१४. हृदयामृत–हृदय और श्वांस गति उत्तेजक है गम्भीर और घातक रोगों और दुर्घटनाओं में हृदय को शक्ति देता है, शरीर के ठंडा पड़ जाने में, मन्द नाड़ी को सबल बनाता है। ६ × १ ml बक्स ६ रु.।
१५. स्मृतिदा–बच्चों के आक्षेप रोग, मिर्गी, स्त्रियों का हिस्टीरिया, दौरे पडना, प्रलाप, उन्माद, नींद न आना में चमत्कारी है। ६ × १ ml बक्स ६ रु.।
१६. पुनर्नवा–मूत्रल, मूत्र बन्द नाशक, जलोदर और शोथ नाशक है। ६ × २ ml बक्स ७.५० पैसे।
१७. एनर्जीप्लैक्स इन्जेक्शन–यकृत और प्लीहा की क्रिया को ठीक करके ज्यादा रक्त मांस और शक्ति बनाता है, क्षुधा बढ़ाता है, शरीर की कमजोरी, उदासी को तत्काल दूर करके शरीर को शक्तिशाली व लाल बनाता है। ५ ml वायल ७ रु. ऐनर्जीप्लैक्स १० टेबलेट की स्ट्रिप १ रु. ५० पैसे।

चमत्कारी आधुनिक पेटेन्ट दवाएं

क्लोनोमाइसीन कैपसूल (क्लोरमफेनीकाल यू० एस० पी २५० mg कैपसूल) मियादी बुखार को ७२ घण्टे में नार्मल लाने वाली विश्व प्रसिद्ध आधुनिक टायफाइड बुखार की दवा, १०० कै. ४२ रु., १२ कै. ५.५०

क्लोनोक्लोर कैपसूल (क्लोरमफेनीकाल+टैट्रासाइक्लीन) २५० mg कैपसूल, न्यूमोनिया, सन्निपात, आन्त्रिक ज्वर की अमोघ आधुनिक दवा है। १२ कैपसूल १० रु.।

पैरामोल टेबलेट–तेज ज्वर को ३ घण्टे में सुरक्षित उतारने वाली हानि रहित दवा, पार्श्व शूल, दर्द नाशक दवा १० टेबलेट स्ट्रिप २ रु. ५० पैसे।

डाक खर्च, पैकिंग खर्च, सेल्स टैक्स अलग देना होगा, अपना पूरा पता, वैद्यकीय रजिस्ट्रेशन नं अवश्य लिखिये। वी० पी० पार्सल द्वारा माल मंगाये, जो डाक्टर ऐजेन्ट पूरे वर्ष में ५०० रु. की औषधियां खरीद लेंगे उन्हें एक जयको अलार्म घड़ी मुफ्त मिलेगी, १२०० रु. की खरीद पर फिलीटीना डिलैक्स ट्रांजिस्टर मुफ्त उपहार में दिया जायेगा; १०० का आर्डर देकर डाक्टर ऐजेन्सी लीजिये फिर सदैव थोक -मूल्यों पर माल लीजिये। शरीर के अनेक रंगीन चित्रों सहित बृहत सूची-पत्र तथा डाक्टर ऐजेन्सी नियमावली मुफ्त मंगाइये।

पता—मार्तण्ड फार्मास्युटिकल्स बड़ौत (दिल्ली के पास)

१. महाप्रयाण के एक वर्ष पश्चात्

महाकवि मैथिलीशरण गुप्त की, "जितने कष्ट-कण्टकों में है जिसका जीवन-सुमन खिला, गौरव-गन्ध उसे उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला।" नामक उक्ति सहज ही स्मृतिपटल पर उभर आती है। इसी से मिलती जुलती एक उक्ति मैंने अपने अखण्डकाव्य 'पौरुष' में इस प्रकार दी है :—

जगतीतल की सब विपत्तियां हों यदि अपने पास।
तो मैं उनको दूर करूंगा है पूरा विश्वास॥
है पूरा विश्वास न कोई आफत आने वाली है।
ऊपर प्रभु का वरद-हस्त है नीचे मां रखवाली है॥

ये दोनों ही उक्तियां सुधानिधि के शैशवकाल से चरितार्थ हो रही है। भगवान् वामन रूप सुधानिधि के पहले पग में ५००० प्रतियों ने महिला चिकित्सांकरूप धरती समेट ली विश्वम्भर की सृष्टि में भारी कोलाहल व्याप गया। दूसरे पग में जब १०००० प्रतियां लेकर पुरुषरोग चिकित्सांक को निकलना था तब धरती थरथराने लगी, अम्बर डोलने लगा और बीच ही में सुधानिधि के प्राण और आद्यसम्पादक श्री देवीशरण गर्ग इस असार संसार से शान्ति के परमधाम में जा विराजे। वामन का तीसरा पग अभी उठ भी न पाया था कि धरतीमाता कागज से शून्य हो गई ५०-७५ पैसे किलो रद्दी २००-३०० पैसे किलो तक चढ़ गई। शशक के विषाण और बालू के तेल अथवा नपुंसक की सन्तान की तरह कागज विलुप्त हो गया, ८ रुपये प्रतिवर्ष का ऐण्टीसैप्टिक २५.७५ पैसे प्रतिवर्ष का हो गया। भगवती स्वरूपा देवी इन्दिरा प्रियदर्शिनी के जगत्प्रसिद्ध प्रशासन में कागज का लोप हो

बालक जिसे शिशु कहते है माता के स्तन्य की पीकर ही प्रायः रहता है।

तृतीयावस्था—यह १ या १॥ वर्ष से ३ वर्ष की अवस्था तक रहती है। इसे प्रारम्भिक बाल्यकाल कह सकते हैं। यह चूडाकर्मकाल है।

चतुर्थावस्था—३ वर्ष से ७ वर्ष की आयु के बालकों की होती है यह विद्यालय पूर्वावस्था है।

पञ्चमावस्था—७ से १२ वर्ष की आयु जो विद्यारम्भावस्था या उपनयन की आयु है।

षष्ठावस्था—१२ से १८ वर्ष की आयु तक मानी जाती है।

भारतीय परम्परा में १६ वर्ष या उससे नीचे का व्यक्ति बाल या बालक कहलाता है :—

ऊनषोडशवर्षस्तु नरो बालो निगद्यते।

यह बालक भी ३ प्रकार का होता है—त्रिविधा सोऽपि दुग्धाशी, दुग्धान्नाशी तथाऽन्नभुक्।

दुग्धाशी वर्षपर्यन्तं दुग्धान्नाशी शरद्द्वयम्। तदुत्तरं स्यादन्नाशी एवं बालस्त्रिधा मतः॥

बालक की ३ अवस्थाओं में दुग्धाशी १ वर्ष तक, दुग्धान्नाशी २ वर्ष तक तथा केवल अन्नाशी २ वर्ष के ऊपर मानी जाती है।

कुमार, पौगण्ड और किशोर ये ३ शब्द और आते हैं।—

कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि। कैशोरमापञ्चदशात् यौवनञ्च ततः परम्॥

बालक पांच वर्ष तक कुमार, दस वर्ष तक पौगण्ड और पन्द्रह वर्ष की आयु तक किशोर कहलाता है उसके ऊपर यौवन आता है। चरक ने तत्काल उत्पन्न हुए नवजात शिशु को कुमार शब्द से ही सम्बोधित किया है :—जातमात्रस्यैव कुमारस्य कार्याण्येतानि कर्माणि भवन्ति।

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ के मत से 'शिशु' शब्द ८ से १६ वर्ष के बालकों का बोधक होता है। वैसे शिशुशब्द का प्रयोग उत्पन्न होते ही और ८ वर्ष की आयु तक किया जा सकता है :

जातमात्रः शिशुः तावत् यावद् अष्टौ समा वयः।

आज कल शिशु शब्द इन्फेंट के लिए रूढ़ हो गया है जो १ वर्ष तक के बालक के लिए प्रयुक्त होता है। हमने इस विशेषांक में शिशु शब्द बालक के पर्याय रूप में ही प्रयुक्त किया है।

ऊपर जो बाल्यकालीन ६ अवस्थाएं दी गई हैं इनमें पूर्वप्रसवावस्था में भ्रूण या गर्भ का स्वास्थ्य माता के स्वास्थ्य की स्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। इसलिए आयुर्वेद में जो गर्भिणी का मासानुमासिक क्रम दिया है वह गर्भ की सुरक्षा और स्वास्थ्य के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को ही पुष्ट करता है। प्रसवोत्तर काल में जन्मते ही शिशु के अंग प्रत्यंग अविकसित रहते है। वातनाड़ी संस्थान तो सबसे अधिक अपरिपक्व होता है उसके द्वारा मस्तिष्क को जो संज्ञाएं भेजी जाती हैं उनमे उसमें संदमन ही अधिक होता है जिसके कारण नवजात शिशु का अधिक काल सोने में ही बीतता है। शैशव या दुग्धाशी काल मे शिशु का पचन संस्थान दुर्बल होता है वह केवल दूध ही हजम कर पाता है। इस काल में शरीर की सर्वाङ्गीण वृद्धि होती है। इस काल में उसकी चेतना जागृत होती है और वह पहचानने लगता है और बोलना भी आरम्भ करता है। कुमारावस्था में उसके शरीर की वृद्धि और विकास और भी बढ़ता है। वह चलने लगता है और आस-पास के वातावरण के साथ उसका सम्बन्ध आना आरम्भ हो जाता है। उसका मस्तिष्क और परिपक्व होता है और वह बोलने लगता है। इस अवस्था में बच्चे का ठीक-ठीक लालन-पालन किया जाना आवश्यक माना जाता है। पञ्चम विद्यारम्भावस्था में बालक का सम्बन्ध समाज से आना आरम्भ होता है। इस काल में पेशियां अधिक पुष्ट होती है, शरीर की वृद्धि उतनी तेजी से नहीं होती जितनी कि पहली अवस्थाओं में देखी जाती है। उसके आगे की षष्ठावस्था में जो पौगण्डावस्था या किशोरावस्था होती है उसमें बालक का यौन ज्ञान बढ़ने और परिपक्व होने लगता है। इस काल में उसकी नैसर्गिक ग्रन्थियां पुष्ट होना

प्रारम्भ कर देती है । लड़कियों में मासिकधर्म शुरु हो जाता है और लड़को में स्वप्नदोष की प्रवृत्ति शुरु होती है । इसी काल में बालक पुरुष और बालिका स्त्री बनने लगती है और उनमें वयस्कता उभरने लगती है । बाल्यकाल की प्रत्येक अवस्था के क्रिया-शारीर का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति ही बालकों का सही अर्थों में सफल चिकित्सक हो पाता है ।

५. बाल्यवयानुसार पोषणादि रोग विचार-

जो विशेषताएं सामान्य शरीर क्रिया की दृष्टि से बालकों की विविध अवस्थाओ मे पाई जाती है वैसी ही विकृतिविज्ञान की दृष्टि से भी देखी जाती हैं । उदाहरणार्थ प्रथमावस्था मे भ्रूण की जीवाणुओं के साथ कोई प्रतिक्रिया नहीं देखी जाती । किन्तु ज्यों ज्यो भ्रूण की वृद्धि होती जाती है वह सक्रमण या उपसर्ग के प्रति सुग्राह्य होता जाता है । ४ माह से ऊपर का गर्भ सबसे पहले फिरग फिर यक्ष्मा फिर पूयजनक उपसर्गो को ग्रहण करने लगता है तथा जन्म से ही तीव्र औपसर्गिक रोगों तथा विषाणुजन्य रोगों को ग्रहण कर सकता है । इसी कारण उसे गर्भ मे सहज फिरंग, सहज मलेरिया आदि रोग हो सकते है ।

नवजात शिशु जितना ही समय से पूर्व उत्पन्न होता है उतना ही अधिक कठिनाई से जी पाता है क्योंकि वह अत्यधिक अपरिपक्व रहता है सर्दी, गर्मी, उपसर्ग, आहार-परिवर्तन सभी का उस पर प्रभाव आसानी से पड़ जाता है । जिन कालपूर्वी शिशुओं का भार आधे से एक किलो ही रहता है वे प्रथम वर्ष मे ही कालकवलित होते हुए देखे जाते है । इस अवस्था में प्रसवकालीन आघात तथा नाभिनालकर्तन के कारण उत्पन्न समस्याएं अधिक विकारकारक होती हे । उसे इस काल मे सहज फिरंग मलेरिया सहज यक्ष्मा भी देखी जा सकती है । उसकी त्वचा में भी रोग हो सकते है पूयजनक रोग भी इस काल में उत्पन्न हो सकते है । जन्मते ही कामला का होना शरीर भार का घटते जाना आदि भी देखा जा सकता है ।

क्षीरादावस्था में पोषणजन्य और पचन संस्थान के रोग अधिक होते ह यह दन्तोद्भेदकाल भी है इसमे होने वाले विकारों से प्रायः भारतीय वैद्य अच्छी तरह परिचित ह । इस अवस्था में पचनसस्थान आहार पाचन में अधिक समर्थ नही होता अगर शिशु का आहार सन्तुलित न दिया गया तो पचनसस्थान बिगड़ जाता है ।

इस अवस्था में बच्चे को शक्ति बढ़ाने की आवश्यकता होती है ताकि वह अपने हाथ पैर हिला सके और अंग प्रत्यग के क्रमिक विकास के क्रम को चालू रख सके । उसके शरीर का धरातल एक वयस्क की अपेक्षा २-३ गुना अधिक होता है इस कारण उसके शरीर से २-३ गुनी गर्मी अधिक बाहर जा सकती हे जिसकी पूर्ति के लिए शिशु को अधिक गर्मी उत्पन्न करनी पड़ती है । इस काल मे बच्चे की वृद्धि भी खूब होती हे । उसका भार पंचम मास पूरा करते करते दुगुना हो जाता है तथा प्रथम वर्ष पूरा करते करते तीन गुना तक हो जाता है । उसके आगे भार को दुगुना होने के लिए ७ वर्ष का समय चाहिए । वर्ष के अन्त मे ८-१० किलो उसका शरीर भार होता है । वही स्थिति उसकी लम्बाई की होती है । ४५ से. मी. का शिशु इस काल मे ७२ सेमी तक लम्बा हो सकता है उसके बाद हर साल वह ५ से १० सेमी ही बढ़ता है । भार और लम्बाई गर्मी और शक्ति इन सभी की प्राप्ति उसे आहार से होती है इसलिए एक बड़े बालक की अपेक्षा इस काल में आहार या दूध की अपेक्षाकृत अधिक आवश्यकता पड़ती है । यह आहार केवल मातृदुग्ध ही हो सकता है । अन्य जानवरों के दूध इस दूध की समता में बहुत नीचे ठहरते है ।

नवजात शिशु को प्रसव के बाद ६ से १२ घंटे स्तनपान कराना चाहिए । एक बार में एक ही आंचल का दूध पिलाना चाहिए जिसे वह १०-१२ मिनट में पीलेता है । आंचल का चूचुक और स्तनपरिवेश (एरिओला) पूरा ही उसके मुख में जाने से एयरटाइट मार्ग बन जाने से पेट मे हवा जाने की गुंजाइश नही रहती । माता को आरम्भ में तो सोकर दूध पिलाना चाहिए किन्तु बाद मे बैठे बैठे पिलाना उचित होगा । दूध पी चुकने के बाद आंचल को गरम पानी से धोकर पोंछ देना चाहिए। वह कितना दूध पीता है इसका भी हिसाब रखना चाहिए ताकि

उसे पूरी मात्रा में दूध मिले। इसका सूत्र है जितने दिन का बच्चा हो उसका दस गुना ग्राम दूध प्रति बार २४ घंटे में सात बार। यदि बच्चा १० दिन का है तो १०×१०×७=७०० ग्राम दूध प्रतिदिन उसे चाहिए। ५ दिन के शिशु के ५×१०×७=३५० ग्राम दूध चाहिए। ३ माह तक ७ बार दूध पिलाना ही चाहिए आगे ५ बार दे सकते हैं। बच्चे को दूध पूरी मात्रा में मिल रहा है उसकी पहचान है बच्चे का प्रसन्न वदन किलकारी मारते हुए रहना शरीर भार और लम्बाई की यथा क्रम वृद्धि होना। यदि मां अपने बच्चे की दुग्ध की पूर्ति न कर सके तो दूसरी स्त्री का दूध भी देना चाहिए। जो बच्चे अपनी मां के स्तनों का दूध पीते हैं उनका वातनाड़ी संस्थान शीघ्र पुष्ट होता है। तीसरे महीने से ही विटामिन सी देना चाहिए इससे बच्चे में ओक्सी डाईजिंग प्रक्रिया बढ़ती है। विटामिन सी के लिए विटामिन सीयुक्त ताजे फलों या वनस्पतियों का रस १ चम्मच से ८-१० चम्मच तक प्रति दिन देना उचित होता है। इसी समय विटामिन ए--डी के लिए मत्स्य तैल भी दे सकते हैं। ५-६ माह की आयु के बाद बच्चे को अन्न पतला उबला हुआ दलिया के रूप में दे सकते है। फल सेव का पतला टुकड़ा खिला सकते हैं रोटी का टुकडा भी दे सकते है आगे चलकर अण्डा मांस यूष आदि दिये जा सकते हैं।

माता को कोई तीव्र उपसर्ग हो जाय तो स्तनपान बन्द कर देना चाहिए पर फ्लू या न्यूमोनिया होने पर भी बच्चा स्तनपान कर सकताहै बशर्ते कि माता अपने मुंह पर मास्क या कपड़ा ढंके रहे जिससे बच्चे कोरोग न हो।

माता के दूध के अभाव में गाय का दूध देते हैं। गाय स्वस्थ हो उसके दूध में २·५%वसा ४·५% शर्करा होनी ही चाहिए तथा उसकी अम्लता २०° से अधिक न हो इसका ध्यान देना चाहिए इसकी कल्पना हमारे देश में कहां है ? गाय के दूध में बराबर का पानी या पतले दलिया का पानी मिलाकर दे सकते हैं उसमें थोड़ी (१० से २० प्रतिशत) क्रीम और कुछ लैक्टिक अम्ल और शर्करा मिलाकर देते हैं ताकि वह मानवीकृत हो सके। बाद में उबला हुआ पूरा दूध दिया जाता है। दुग्ध चूर्णो का उपयोग आजकल अच्छा माना जाता है। जिन बच्चों को बोतल से दूध पिलाया जाता है उनके सम्बन्ध में निम्नलिखित ५ बातें याद रखी जानी चाहिए :—

१. बच्चे के शरीर भार के छठे भाग से अधिक आहार २४ घण्टों में न दिया जावे;
२. उस आहार में दूध की मात्रा शरीर-भार के दसवें भाग से अधिक न रहे;
३. उसे ३॥ या ४ ग्राम प्रति किलो शरीर भार के हिसाब से प्रोटीनें दी जानी चाहिए;
४. बच्चे के आहार का कैलरीमान स्तनपायी बच्चों के कैलरी मान से १०-१५ प्रतिशत अधिक रहना चाहिए;
५. स्तनपान के कालों से बोतलपान का एक काल कम रखना चाहिए।

जिन बच्चो को दोषपूर्ण आहार मिलता है जिसमें विटामिनों और पोषक तत्वों की मात्रा कम रहती है तथा जिनका वातावरण गन्दा, सीलयुक्त और धूप रहित होता है वे इस काल में फक्करोग से पीड़ित हो सकते है। इन्हीं सबके कारण उसे त्वचा के रोग, नाक बहना, कम्पन, खुजली होती है। रोमान्तिका, लालज्वर, रोहिणी आदि आरम्भ के महीनो में इतने नहीं होते जितने ६ माह के बाद देखे जाते हैं। ऐसा क्यों होता है उसका कारण पावलोव ने नॉन-रिऐक्टिव-इम्युनिटी को दिया है। पूर्वप्रसवकाल में माता से प्राप्त क्षमताकारक फैक्टर भी इसके लिए उत्तरदायी माने जाते हैं।

चतुर्थावस्था (३ से ७ वर्ष) में बच्चों की उदर या पाचन संस्थान के रोग अधिक होते है। प्रसेक तथा फक्करोग भी देखा जाता है। इस काल में तीव्र औपसर्गिक रोगो की भरमार होती है। रोमान्तिका, लाल-ज्वर, रोहिणी, त्वङ्मसूरिका आदि प्रायः होते हैं क्योंकि १ से १० वर्ष तक इन रोगों के प्रति बालक में क्षमता शक्ति का अभाव रहता है। इस काल में यक्ष्मा का उपसर्ग भी अधिक देखा जाता है।

पञ्चमावस्था (७ से १२) में भी औपसर्गिक रोगों का बोलवाला रहता है। इस आयु में आमवातज्वर और मन्थरज्वर जो अभी तक नहीं देखे जाते थे विशेष रूप से प्रकट होते हैं।

पश्चावस्था या किशोरावस्था में हार्मोन्स की वृद्धि होती है। थायराइड ग्रन्थियां तथा पिच्युटरी ग्रन्थियां में सक्रियता बढ़ती है। मैथुनिक प्रगल्भता आती है। शरीर की वृद्धि खूब होती है और कोष्ठांग (हृदय आदि) की वृद्धि भी होती है। और धीरे-धीरे बालरूप समाप्त होकर व्यक्ति वयस्क रूप धारण करने लगता है रोगों का भी बालरूप न रह कर वे वयस्क रूप लेने लगते है।

६. रोगनिदान का महत्व–

बच्चे की रोग परीक्षा वयस्क से अधिक कठिन मानी जाती है। हमने इस विशेषांक में रोग निदान पर अच्छे लेखों का समावेश किया है। बालक की रोग परीक्षा में प्रश्न भी पूछे जाते हैं और उसका भौतिक परीक्षण भी करना पड़ता है। उन्हें पूछने से सही-सही जवाब मिलेगा ऐसा भी नहीं है। स्कूल जाने वाले बच्चे भी उन्हें कहां दर्द है ठीक-ठीक नहीं बता पाते। कभी-कभी सुई के डर से बच्चे अपना रोग तक छिपाने की कोशिश करते है। अच्छा हो बच्चे की अनुपस्थिति में उसकी मां से ही उसके रोग की कहानी सुनी जाय। बालवैद्य को बच्चे की मां से जानकारी लेते समय अपने विवेक को सावधान रखना चाहिए। कभी-कभी माता एक ऐसी भी कहानी सुनाने लगती है जिसका रोग से सम्बन्ध न हो। प्रश्नों में पारिवारिक इतिहास, रोग–सम्बन्धी इतिवृत्त, रोग का विकास कैसे हुआ क्या लक्षण है इन सबका ध्यान करना चाहिए। रोग लक्षण के साथ आयु का भी विवेक रखना चाहिए। कामला १ महीने के बालक में शरीरक्रियाजन्य होगा पर एक विद्यालयगामी शिशु में वही औपसर्गिक यकृत्शोथ का परिचायक होगा। जो लक्षण बतलाये जायं उनके अलावा और क्या-क्या मिल रहा है उसे भी देखना चाहिए। बच्चे को पहले कब और कौन रोग हो चुका है या प्रसवकाल में कोई कष्ट तो नहीं हुआ उसका भी ज्ञान कर लेना चाहिए।

रोगी बालक के भौतिक (फिजीकल) परीक्षण में रोगी का आसन, त्वचा का रंग, आयु, लसीकाग्रन्थियां, गला आदि सावधानी से इतनी मृदुता से देखने चाहिए कि बच्चा शंकित न हो सके।

७. वातनाड़ीसंस्थान सम्बन्धी रोग–

बालक के वातनाड़ीसंस्थान और मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों का ज्ञान करना सरल कार्य नहीं है। किस रोग में वातनाड़ीसंस्थान एवं मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ा है इसका सही-सही आकलन बालवैद्य को सबसे पहले कर लेना चाहिए। किसी भी बाल रोग की गम्भीरता उसमें कितना वातनाड़ीसंस्थान संलग्न हुआ है इस पर निर्भर करती है। मूर्च्छा, कम्प, पेशीजाड्य व हृद्धाहिनीय विकृति की उपस्थिति में ही रोग की गम्भीरता और विनाशकता का पता लगता है। रोगों के विष सबसे अधिक और गहरा मस्तिष्क एवं नर्वससिस्टम पर प्रभाव डालते हैं। मस्तिष्क के उच्चकेन्द्रों तथा परिसरीय नाड़ीसंज्ञावाहकयन्त्र की क्रियाओं में अन्तर करना आवश्यक नहीं होता। संज्ञावहन शरीर के अन्दर के कोष्ठांगों तथा बाह्य त्वचा एवं ज्ञानेन्द्रियों दोनों में होता है। ये संज्ञाएं मस्तिष्क के ग्राहक को जाती हैं। संज्ञावहन का कार्य ३ भागों में होता है–एक भाग है परिसर, दूसरा है वाहकनाड़ी और तीसरा है मस्तिष्क जहां वह संज्ञा पहुंचती है। ये तीनों भाग एक दूसरे से मिलकर और सहयोग से कार्य पूरा करते है। मस्तिष्क इन संज्ञाओं का न केवल विश्लेषण ही करता है इन तीनों के तारतम्य को जोड़ता भी है। विश्लेषण संश्लेषणात्मक कार्य मस्तिष्क की प्रौढ़ता पर निर्भर करता है। व्यक्ति जितना ही अधिक बालक होता है उतना ही उसका मस्तिष्क अपरिपक्व या अप्रौढ़ होता है। वातनाड़ी संस्थान के अपरिपक्व होने से संज्ञावाही नाड़ियां और इन नाड़ियों द्वारा संचालित संज्ञाओं को ग्रहण करने वाले मस्तिष्क बालक की कोशिकाएं ठीक से कार्य नहीं करती है। इसलिए ही बच्चे के परिसर और कोष्ठांगों से अनेक संज्ञाएं अपरिपक्व मस्तिष्क ग्राहक (सेरिब्रल कार्टेक्स) पर पहुंचती हैं जिनका परिणाम होता है ग्राहक द्वारा बाह्यवातावरण में अपने को प्रकट करने की कोशिश या सदमन जिसका अर्थ है नवजात शिशु का लगातार सोते रहना।

जब शिशु पैदा हो जाता है तब तक उसके मस्तिष्क वाह्यक में न्यूरोनों के ७ स्तर बन चुकते हैं । उसके मस्तिष्क में कर्णक और परिखाएं भी एक परिपक्व मस्तिष्क जैसी उभर आती है । किन्तु गर्भावस्था में नर्व सैलों का विभिन्नन पूरा नहीं हो पाता । जन्म के बाद एक साल का समय लगता है जब शिशु का मस्तिष्क प्रगल्भ आकृति लेता है । जो मस्तिष्क जन्म के समय ३५० ग्राम का था वह एक वर्ष में ८०० ग्राम तक भारी हो जाता है । नियम यह है कि जन्म के समय मस्तिष्क का जो भार होता है वह ६ माह में दूना तीसरी वर्ष तक तीनगुना और २० वर्ष की आयु मे ४ या ५ गुना भारी हो जाता है । जन्म के बाद ३ महीने के अन्दर वाह्यक में तीव्र विकास चलता है। ३ वर्ष की आयु होते-होते सभी नर्व सैल्स पूरे विभिन्नित हो लेते हैं । संज्ञावाही मार्गों का निर्माण पहले पूरा होता है फिर आज्ञावाही मार्ग बनते हैं । सुषुम्ना जन्म के समय ही पूरी बन चुकती है । दूसरी साल पूरी होते-होते सुषुम्ना वयस्कवत् प्रौढ हो लेती है ।

शीर्षण्या नाड़ियों का माय़लीभवन जन्म के बाद आरम्भ होता है । परिसरीय नाड़ियों का तीसरी वर्ष में चालू होता है । स्वतन्त्रनाड़ी संस्थान का कार्य जन्मते ही चालू हो जाता है ।

जन्म के समय मस्तिष्क वाह्यक, पिरैमिडलमार्ग और कार्पस स्ट्राएटम अपरिपक्व होते है इसलिए नवजात शिशु के सभी महत्वपूर्ण कार्य आन्तर अग्रमस्तिष्क (थैलैमो–पैलिडम सिस्टम) द्वारा सम्पन्न होते हैं । मुट्ठी बांधना और बाद मे रेंग-रेंग कर चलना भी इसी सिस्टम से सम्पन्न होता है । ज्यों-ज्यों मस्तिष्क परिपक्व होता जाता है बच्चा बैठना खड़े होना चलना सीखता जाता है । पर सदमन (इन्हिबिशन) की वृत्ति, भय, प्रसन्नता और क्रोध के समय बराबर उत्पन्न होती रहती है । जब शिशु २ सप्ताह का हो जाता है तब सुनने, तीसरे माह में देखने और छठे माह मे सूंघने के ज्ञान से परिचित होता है ।

बच्चे मे प्रतिवर्त (रिफलैक्स) भी धीरे-धीरे जाग्रत होते हैं । केवल एक ही प्रतिवर्त सहज रूप में उसके साथ जन्म लेता है और वह है आहार-प्रतिवर्त । भूख लगी स्तन चूसना शुरू कर दिया । यह प्रतिवर्त सोपाधि (कण्डीशण्ड) होता है । उसकी उच्चोच्च नातिक क्रियाएं शनैः शनैः उत्पन्न होती है । जन्मते ही सोता रहता है । दूसरे महीने से हंसने लगता है और प्रकाशयुक्त पदार्थों की ओर देखना शुरू करता है । तीसरे महीने से हाथ पैर चलाता है । पांचवें महीने में हाथ से वस्तुएं पकड़ निकलता है । छठे महीने के बाद उसे अपने आस पास की चीजों में रुचि बढ़ती है और वह पहचानने लगता है । आठवें महीने में वह आवाजें करने लगता है । एक वर्ष पूरा होते-होते बाहर से आई हुई सभी सज्ञाओं का विश्लेषण और संश्लेषण करने में समर्थ उसका मस्तिष्क हो जाता है । जिसके कारण उसमें कुछ खाद्यान्न और खिलौनों के प्रति आकर्षण जागता है । पहली वर्ष में थोड़ा-थोड़ा और दूसरी वर्ष में कुछ अधिक बोलने लगता है । २-३ वर्ष का बालक दुनिया की सब बातों को स्वतन्त्रतया नहीं जान पाता और प्रश्न पर प्रश्न करता रहता है । पांचवी वर्ष में वह अपना मत व्यक्त करने लगता है । ५ से ७ वर्ष के बीच वाह्यक पूरा का पूरा तैयार हो लेता है । शुद्ध भाषण, विचारों का प्रकटीकरण, पठन, लेखन सभी में उसकी गति होने लगती है । वह अपने वातावरण के अनुसार उसकी बुद्धि का विकास होता है । किशोरावस्था जटिल स्वतन्त्रनाड़ीसंस्थान तथा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का नव रचना काल होता है । वाह्यक का सदमन घट जाता है । उसके व्यवहार में उच्छृंखलता आने लगती है । नाड़ी की गति तीव्र या मन्द, महास्रोत में सकुंचन, रक्तदाब की वृद्धि, पेशियों का शैथिल्य आदि कई प्रकार के लक्षण भी इस अवस्था में मिल सकते हैं ।

रूसी विद्वान् बच्चों की नींद लेने की प्रक्रिया को मस्तिष्क वाह्यक कोशिकाओं का पोषक मानते हैं, तो भूतधात्री प्रवदन्ति तज्ज्ञाः आयुर्वेदज्ञ कहते है । निद्रा—१४ से १६ घण्टे २-३ वर्ष के, १२-१४ घण्टे ४-६ वर्ष के, ११-१२ घण्टे ७-८ वर्ष के बच्चों के लिए आवश्यक मानी गई है ।

बच्चों के नर्वससिस्टम और मनोवृत्तियों से बाल चिकित्सक को अवश्य परिचित रहना चाहिए । उन्हें

आलोचक पित्त का स्थान नेत्र आगे को निकल आते हैं। उरोहृदय पर प्रभाव होने से नाड़ीगति बढ़ जाती है। पाचक पित्त के उत्तेजित होने सेभस्मकरोग हो जाता है।

यद्यपि गर्भकाल में तथा जन्म के बाद भी (अधिवृक्क ग्रन्थियों एड्रीनलग्लैण्ड्स) का भार वयस्कों की ग्रन्थियों की अपेक्षा काफी अधिक होता है फिर भी शिशु की ये ग्रन्थियां अविकसित ही रहती हैं। प्रथम वर्ष में इस ग्रन्थि के बाह्यक के पर्तों का पुनर्निर्माण शुरू होने लगता है और मज्जक ऊतक द्वारा ये पर्त बदल दिये जाते हैं यह परिवर्तन २ वर्ष की आयु तक पूरा हो लेता है। अगर अधिवृक्क की मज्जक की क्रिया में गड़बड़ी उत्पन्न हुई तो एड्रिनलीन का निर्माण बहुत घट जाता है जिसके कारण बच्चे की धमनियों में रक्तदाब काफी कम हो जाता है यदि इस काल में रोहिणी का उपसर्ग लगा तो रोहिणी का विष अधिवृक्क मज्जक तक प्रभाव डालकर रोहिणी के विपाक्तरूप को उत्पन्न कर शिशु के जीवन को खतरे में डाल देते हैं।

अधिवृक्क के हार्मोन(कोर्टिकोस्टेराइड) का आजकल बहुत महत्व बढ़ गया है। उनके अधिक स्राव से सोडियम एवं जल का संचय होकर शोथ हो सकता है। वे शरीर की विपाक्त अवस्थाओं को दूर करने में समर्थ होते हैं। जब इस बाह्यक की क्रिया बढ़ जाती है तो अधिवृक्क प्रजनन संलक्षण उत्पन्न हो जाता है और बच्चे को दाढ़ी मूंछ निकल आती है। इसी प्रकार जब अधिवृक्क क्रिया का ह्रास होता है तो शरीर शिथिल और त्वचा पर कांस्य चमकदार धब्बे बन जाते हैं इसे ऐडीसन की व्याधि कहा जाता है। यह रोग अधिवृक्क ग्रन्थि में यक्ष्मा होने से बनता है।

थायमस या बालग्रैवेयक ग्रन्थि–शिशु जन्म के समय जितनी भारी रहती है वह बाद में उत्तरोत्तर घटती जाती है। यह ग्रन्थि शायद बच्चे को वयस्क बनने से रोकने का काम कुछ समय तक करती है और लिंग ग्रन्थियों के विरुद्ध इसका काम रहता है। इस ग्रन्थि की वृद्धि के साथ लसग्रन्थियों और लसीय रचनाओं लसपर्व लीहा आन्त्र की एकल लसकूपिकाओं, जिह्वा के नीचे तथा ग्रसनी के चारों ओर की लसवातु) में वृद्धि होने लगती है। लैंगिक वृद्धि रुक जाती है। एवं आश्चर्यजनक बात यह मिलती है कि ऐसे बालक छोटे आपरेशन के समय या कोई निद्राकर दवा देने से मर तक जाते हैं क्योंकि रोगों के प्रति सहनशक्ति का उनमें अभाव हो जाता है। आयुर्वेदीय शब्दों में वे अल्पप्राण रहते हैं।

पीयूषी (पिच्युटरी) ग्रन्थि का विकास जन्म के समय ही अच्छा हुआ रहता है। इस ग्रन्थि के अग्र, मध्यवर्ती और पश्च भाग तीनों से हार्मोन तैयार होते हैं। अग्र भाग से, वृद्धि, प्रजनन-पोषक, अधिवृक्क–बाह्यक पोषक आदि हार्मोन बनते हैं। शेष भागों से रक्तदाब वर्द्धक, लिंग विकास रोधक, प्रोटीन तथा वसा चयापचय प्रभावक हार्मोन तैयार होते हैं। पीयूषी ग्रन्थि के ये सभी हार्मोन थैलेमस के नियन्त्रण में तयार होते हैं। अग्रपीयूषी की मन्दक्रिया से बौनापन बच्चों में आता है तथा अतिक्रिया से बच्चे बेतहाशा लम्बे होने लगते हैं।

लैंगिक ग्रन्थियों का शैशवकाल में विशेष महत्व नहीं देखा जाता उनका महत्व किशोरावस्था में बढ़ता है। ये वृद्धि रोकने का (अस्थियों में इपीफीजियल रेखाओं को बन्द करके) काम करती हैं। उनके कारण आवाज में अन्तर, रक्तदाब की वृद्धि देखी जाती है। लड़कियों में स्तन-वृद्धि और लड़कों में दाढ़ी-मूंछ आना इन्हीं से होता है। इनकी क्रिया की मन्दता नपुंसकता को जन्म देती है। इनका शीघ्र अधिक क्रियाशील होना बच्चे को कम आयु में ही जवान बना देता है। माता के लैंगिक हार्मोनों के कारण नवजात शिशुओं की स्तन-ग्रन्थियों में दूध आना बालिकाओं की योनि से रक्तस्राव होना आदि तक देखा जा सकता है।

पैराथाइराइड ग्रन्थियां बच्चे के कैल्शियम चयापचय में काम आती हैं। इनकी मन्द क्रिया से रक्त से

कैल्शियम की मात्रा गिर जाती है जिससे वात संस्थान की उत्तेजनशीलता बढ़ जाती और स्पाज्मोफिलिया की उत्पत्ति होती है।

पीनियल बाडी का महत्व अभी पूरी तरह सामने नहीं आया। इसकी मन्दक्रियता से प्रजननांग अकाल में ही वृद्धिगत होने लगते हैं और कालपूर्वी तारुण्य देखा जाता है। इसकी अतिक्रिया लिंगविकास को रोक देती और बालक को स्थूल बना देती है।

अग्न्याशय में इन्सुलिन निर्माता भाग जन्म के समय भी रचना दृष्ट्या विकसित मिलता है तथा अपना कार्य भी पर्याप्त रूप से करता है।

जब बालक की **वृद्धि में गड़बड़ी** होती है तो वामनत्व, उपास्थि दुष्पोषण, सहजास्थि भंगुरता, फक्करोग, दीर्घकायता आदि में से कोई सा भी रोग और उसके उपभेद उत्पन्न हो जाते हैं। उपास्थि दुष्पोषण से पीड़ित बालकों की हड्डियां नहीं बढ़तीं इस कारण वे बौने हो जाते हैं उनकी लम्बाई कम पर चौड़ाई ठीक रहती है। (देखें नीचे का चित्र)—
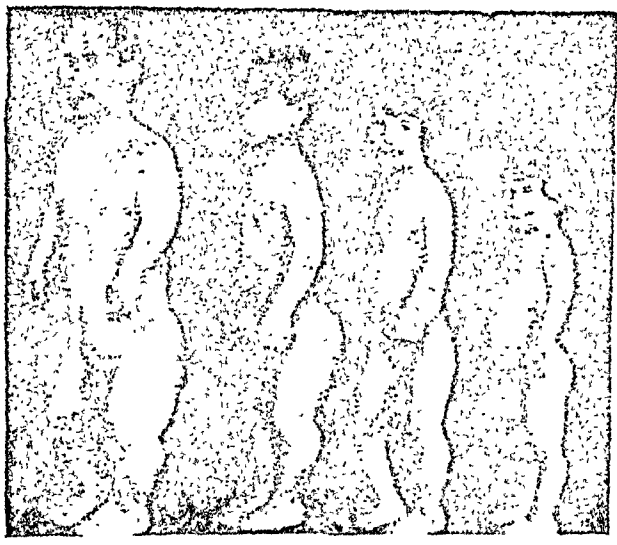
सहजास्थि-भंगुरता में हड्डी की लम्बाई ठीक रहती है पर चौड़ाई घट जाती है अस्थिभवन भी ठीक से नहीं होता जिससे वे भंगुरताशील हो जाती हैं। फक्क रोग पर विशेषांक में विशद विचार किया जा रहा है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है वृद्धि पर कई अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव पड़ता है जिनमें एक अवटुका ग्रन्थि भी है। जब यह ग्रन्थि अच्छी तरह विकसित नहीं होती तो मिक्सीडीमा हो जाता है—मन्द बुद्धिता, जिह्वा का बड़ा होना, रूक्ष विरल केश, भद्दी भारी आवाज, ठण्डा शरीर, त्वचा रूक्ष, मन्द नाड़ी और कोष्ठबद्धता के साथ बौनापन मिलता है। अगले पृष्ठ के चित्र में बांये स्वस्थ और दांये एक ही आयु के बौने बालक का चित्र इसका प्रमाण है।

ऐसा लगता है कि उनमें वात का प्रकोप हो गया हो।

अग्र पीयूषी की कमी भी वामनत्व पैदा करती है। इसमें सिर बड़ा और शेष सारा शरीर छोटा होता है। लैंगिक विकास नहीं होता। छाती और नितम्ब गुदगुदे, मुख पर झुर्रियां। पीयूषी की दुष्क्रिया से कभी बच्चे स्थूल होने लगते हैं यह ५-६ वर्ष की आयु से होता है।
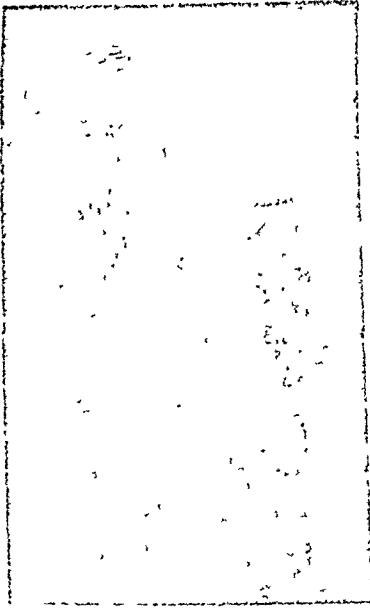
वामनत्वत जितना अधिक मिलता है उतनी महाका यता (गाइगेंटिज्म) नहीं मिलती। यह पीयूषी की अतिक्रियता का ही परिणाम होता है। शैशव में बच्चे की वृद्धि प्राकृत होती है पर १०-१२ वर्ष की आयु से उनका लम्बा होना शुरु होता है। इसका सम्बन्ध ऐक्रोमिगेली से भी रहता है। कुछ में शरीर दैर्घ्य के साथ नपुंसकता भी पनपती है।

कभी-कभी किसी रोग के कारण बालक का विकास रुक जाता है। शरीर, बुद्धि, यौन तीनों ही अविकसित रह जाते हैं। कभी-कभी कालपूर्वी विकास भी होता है जिसे कालपूर्व प्रौढ़ता कहते हैं। कुछ बच्चों की बुद्धि में, कुछ के शरीर में और कुछ प्रजननांगों में कालपूर्वी विकास देखा जा सकता है। इसमें अधिवृक्कों की अतिक्रियता भी भागीदार हो सकती है।

आयुर्वेद में जो बहुत सी प्रकृतियां और सत्वों का वर्णन आता है उनका सम्बन्ध भी शैशव काल से ही आरम्भ होता है। यह विज्ञान जितना विकसित हमारे शास्त्र में है उसका शतांश भी आधुनिक पश्चिमी या उत्तरी चिकित्सा-विज्ञान में नहीं है।

शरीरभार के सारे सूत्र १ वर्ष तक लागू होते हैं। उसके बाद ६-७ वर्ष की आयु होने तक बालक अपने प्रथम वर्ष के शरीरभार को दुगुना तथा १३-१४ वर्ष की आयु होने तक सात वर्ष आयु के भार का २ गुना कर पाते हैं। प्रतिमाह की औसत भारवृद्धि २०० ग्राम के लगभग पड़ती है। प्रति वर्ष में १५०० से २५०० ग्राम तक जो तारुण्यकाल तक ५००० से ८००० ग्राम प्रति वर्ष की वृद्धि तक हो सकती है।

मान विषयक कुछ और तथ्यांश भी दिया गया है :—

१. कन्धों की चौड़ाई स्वस्थ बालक की ऊंचाई की चौथाई रहती है।
२. छाती की परिधि से सिर की परिधि प्रथम वर्ष में १-३ सेमी अधिक होती है। ३-४ वर्ष की आयु में दोनों माप बराबर हो जाते हैं।
३. छाती की परिधि प्रथम वर्ष में बच्चे की आधी लम्बाई से ७-१० सेमी अधिक होती है, ७ वर्ष में बराबर तथा १२-१३ वर्ष की आयु में २-४ सेमी कम हो जाती है।

बच्चों की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के महत्व पर इस विशेषांक में हम लेख देने में असमर्थ रहे हैं। ऐसा लगता है कि हमारे विद्वान् लेखकों ने उनके महत्व को हृदयंगम करने में काफी उपेक्षा की है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के ज्ञान की महत्ता इसलिए बच्चों में आवश्यक है क्योंकि उनके कारण ही उनकी वृद्धि, विकास तथा चयापचय की सारी क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की क्रिया को उत्तेजना मिलती है वातनाड़ी संस्थान (आधुनिक भाषा में तन्त्रिका संस्थान) से। वातनाड़ियों की उत्तेजना से वे उत्तेजित होती हैं। वातनाड़ियों में क्रिया का संचालन मस्तिष्कस्थ केन्द्र करते हैं और इन केन्द्रों को नियन्त्रित करती है मस्तिष्क वाह्यक (सेरिब्रल कॉर्टेक्स)। कुछ इन सभी को न्यूरो ऐंड्रोक्रीन या न्यूरोहोर्मोनल क्रिया मानते हैं। चरक इन सभी को वात के अन्तर्गत लेता

आकार, संख्या, रचना, चलिष्णुता, दबाने से दर्द का होना या उत्तेजना का होना आदि देखा जाना चाहिए। लस-पर्वों के रोग—तीव्र तथा जीर्ण लसग्रन्थिशोथ, लसग्रन्थीय यक्ष्मा, लसीकाकणिकागुल्म का ज्ञान कर लेना चाहिए। पार्श्व का चित्र लसपर्वों का पाक प्रकट करता है।

११. हृदय और रक्तवाहिनियां

हृदय और रक्तवाहिनियों का ज्ञान भी बहुत महत्वपूर्ण होता है। सबसे पहले बच्चे की नाड़ी या हृदय की गति का ध्यान करना चाहिए औसत गति प्रति मिनट यों है—नवजात शिशु—१४०, १-२ वर्ष— २०, ५-६ वर्ष—१०० और बड़े बच्चे—८ -६० तथा वयस्क—७०-२०।

शिशुओं के रक्तदाब के सम्बन्ध में नियम है—ऊपरी दाब ८०+आयु के वर्षों का दुगुना तथा निचला दाब ऊपरी दाब का आधे से लेकर २/३। वैसे नवजात शिशु का ऊपरी (सिस्टोलिक) दाब ६६-७६ और निचला (डायस्टोलिक) दाब ३४-३६ मिमी रहता है।

यह न भूलना होगा कि बच्चों का हृदय बड़ों की अपेक्षा बहुत अधिक कष्टक्षम होता है। उत्तरी विद्वानों ने मरे हुए बच्चे के हृदय में ६ से ३० घंटे बाद भी उसके अन्दर रिंगर सोल्यूशन बहा कर जिन्दा तक किया है। यह भी याद रखना चाहिए कि हृद्वाहिनी संस्थान के ठीक-ठीक ज्ञान के लिए बच्चे के सारे शरीर का, श्वसन संस्थान, उत्सर्गकारी संस्थान, रक्त का संगठन तथा महा प्राचीरा पेशी की स्थिति आदि सभी का पूरा-पूरा ज्ञान करना आवश्यक होसकता है। अगर अंगुलियों के अग्र पोरुए मोटे हो गये हैं, हाथ-पैर ठण्डे रहते हैं, श्वसन गति तेज है, यकृत् और वृक्कों में खराबी है तो हृद्वाहिनीय रोग की सम्भावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। इन रोगों में प्रश्न करने से कोई लाभ नहीं होता उसके लिए तो शरीर की परीक्षा चिकित्सक को बहुत सावधानी से करने पर ही रोग ज्ञान सम्भव होता है।

हृद्वाहिनीजन्य विकार बच्चे के शरीर के विकास को चौपट कर देते हैं। इसलिए बच्चे के विकास की स्थिति को चिकित्सक को पहले देख कर तब हृदय की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके लिए निम्न बातें देखनी होंगी बिना इन्हें अच्छी तरह समझे हृद्वाहिनी विकारों को चिकित्सक नहीं जान सकता—

१. त्वचा का रंग श्याव तो नहीं है ?
२. हाथ-पैर ठण्डे रहते हैं क्या ?
३. अंगुली के पोरुए मोटे (क्लबिंग) तो नहीं ?
४. श्वास फूलता है क्या ?
५. यकृत् और वृक्कों की क्या दशा है ?

हृद्वाहिनी विकारों में प्रत्यक्ष दर्शन, परिस्पर्शन, परिताड़न तथा परिश्रवण सभी विधियों का सहारा लेना चाहिए। प्रत्यक्ष दर्शन में छाती की आकृति, स्पन्दन और हृत्तरंग का अध्ययन करना पड़ता है, गम्भीर हृद्रोग में छाती की रचना बिगड़ जाती है हृत्क्षेत्र उभर जाता है। हृदग्रक्षेत्र में हृदय की धड़कन का स्पन्दन खूब देखा जा

सकता है। ग्रीवा और उरोस्थि के ऊपरी भाग की वाहिनियों में भी स्पन्दन देखा जा सकता है। बच्चों में प्राकृत रूप में हृत्तरंग चौथे अन्तःपर्शुकीय अवकाश में मिलती है जब कि बड़ों में यह पांचवें में पाई जाती है।

५-७ वर्ष की आयु में हृत्तरंग नीचे और मध्याभिमुखी होने लगती है। छोटे बच्चों में तरंग के दुर्बल होने तथा पर्शुकाएं पास-पास होने से उसे देखना कठिन होता है स्पर्श से अधिक उसका ज्ञान होता है। हृच्छब्द उरोस्थि पर अधिक स्पष्ट सुने जाते हैं तथा मन्दता का क्षेत्र उरोस्थि के दाहिने किनारे को भी पार कर जाता है। सहज हृद्विकार होने पर तीव्र और प्रसरित हृत्तरंग मिलती है साथ में थोड़ा खांसने या छींकने से बच्चे का चेहरा श्याव हो जाता है। कभी-कभी दाहिने फुफ्फुस के अवपात से भी हृत्तरंग दाहिनी ओर को बढ़ जाती है। अर्बुद या प्लूरिसी बांई ओर होने से भी दाहिनी ओर बढ़ती है। तरंग की मन्दता पेरिकार्डाइटिस, मायोकार्डाइटिस, हृदर्बुद, हृदवपात, वातस्फीति, मेदस्विता आदि रोगों में मिलती है। इनको परिस्पर्शन द्वारा पुष्ट कर लेना चाहिए।

बालक की छाती का परिताड़न एक अंगुली पर दूसरी अंगुली बजा कर धीरे-धीरे करना चाहिए। परिताड़न फुफ्फुस की ओर से हृदय की ओर करना चाहिए। जहां मन्द क्षेत्र शुरू हों वहा परिताड़न और भी धीरे से करना चाहिए। यह ज्ञात करने के लिए कि हृदय की मन्दता की सीमा क्या हैं बाल्यकाल को ३ भागों में विभक्त कर लेते हैं—एक जन्म से २ वर्ष तक, दूसरा २ से ७ वर्ष तक और तीसरा ७ से १२ वर्ष तक;नीचे के तीनों चित्र हृदय के मन्द क्षेत्र को प्रदर्शित करते हैं :—
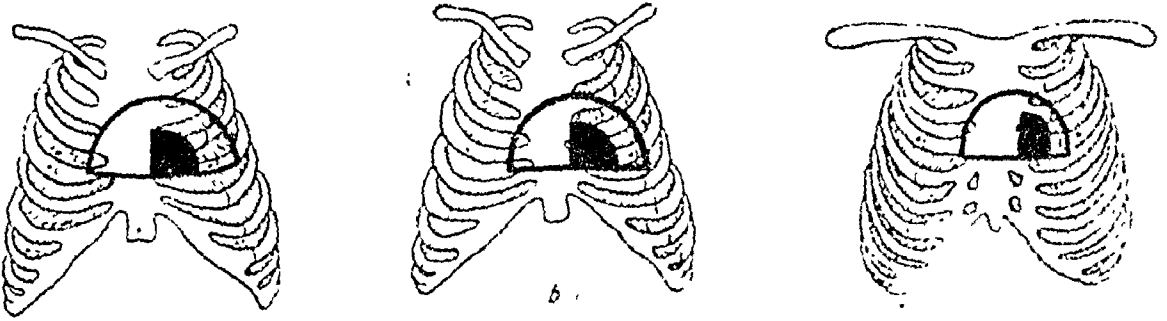
गहरे काले भाग हृत्क्षेत्रीय पूर्ण मन्दता तथा रेखांकित भाग सापेक्ष मन्द भाग को बतलाते है।

यह चिकित्सक को सदैव याद रखना चाहिए कि हृदय की सीमाएं केवल आयु पर ही निर्भर नहीं होती हैं उनका सम्बन्ध बालक के विकास तथा वक्ष की रचना से भी होता है। हृदय की परम पुष्टि और प्रसार से हृदय की मन्दता की सीमाएं बढ़ जाती हैं। यह सीमा वृद्धि मेदस् हृदय, हृदय विक्षत, निःस्रावी परिहृत्पाक, फुफ्फुस पात, और वक्षीय विरूपता में भी होती है। नीचे और बांई ओर को हृदय का प्रसार वामनिलय परमपुष्टि हृद्महाधमनीय रोग तथा दाहिनी ओर दक्षिण निलय की परम पुष्टि में देखा जाता है।

हृत्क्षेत्र की परिश्रवण परीक्षा भी बहुत महत्वपूर्ण है। जब स्टैथोस्कोप से किसी स्वस्थ बालक के हृदय की ध्वनियों को सुना जाता है तब दो मूल ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं। पहली ध्वनि हृदयस्पन्द के समय सुनाई पड़ती है और प्रकुंचन (सिस्टोल) के समय होती है। दूसरी ध्वनि हृदय के अनुशिथिलन(डायस्टोल हृद्विस्फार) के आरम्भ में सुनी जाती है। तीसरी ध्वनि भी कभी कभी प्रगट होती है। ध्वनि श्रवणार्थ स्टैथोस्कोप को छाती पर दबाकर रखने से बच्चे को दर्द होता है तथा ध्वनियां दुर्बल हो जाती हैं। ध्वनियों का अच्छा ज्ञान तभी होता है जब बच्चा रोता हुआ न हो तथा चिकित्सक कभी सुलाकर और कभी बिठाकर सुने। शैशवकाल में ध्वनियां मन्द ही रहती हैं। २ वर्ष के बालक की हृद्ध्वनियां काफी तेज सुनाई पड़ती हैं। उन सभी स्थितियों में जब बच्चे के हृदय की क्रिया

बढ़ी हुई होती है ध्वनियां तीव्र हो जाती हैं। उच्च रक्तदाब के कारण भी हृद्ध्वनियां तीव्र हो जाती हैं। हृत्पेशी के दुर्बल हो जाने या उसमें कोई सहज विकार होने की अवस्था में ये ध्वनियां मन्द पड़ जाती हैं। बच्चों की दोनों ध्वनियां काफी अलग और स्पष्ट सुनी जाती हैं।

बालकों में हृदय की अतालता(अरिथ्मिया)तारुण्य के पूर्व तथा तारुण्यकाल में पाई जाती है। अतालता उपस्थित होने पर बच्चे के इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम का भी अध्ययन कर लेना चाहिए। हृत्पेशी की स्वयंचलनशीलता, उत्तेजनशीलता, सचलन तथा संकुचनशीलता के कारण निम्न प्रकार की अतालताएं मिल सकती हैं:—

१ हृताल में शिरानाल (साइनस) जन्य परिवर्तन—शिरानाल अलिन्द पर्व प्रायः हृद् बाह्य नाड़ीतरंगों पर निर्भर रहता है। ये तरंगें वागस तथा सिम्पैथेटिक नाड़ी संस्थान द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। शिरानालीय परिवर्तन नाड़ीद्रौत्य के रूप में मिलता है जब अंगुष्ठमूलनाड़ी तो नियमित होती है पर हृद्गति १२० से १३० प्रतिमिनट हो जाती है। नाड़ीमान्द्य भी मिलता है जब हृद्गति एकदम कम होजाती है। श्वसन अतालता एकस्वाभाविक घटना है जब श्वास खींचने में हृद्गति बढ़ जाती है। श्वास खींचने में वागस की क्रिया मन्द होकर गति तीव्र होती है।

२ अतिरिक्तप्रकुंचनी अतालता—जब हृदय में कोई विकृतिजन्य तरंग उत्पन्न होजाती है तो अप्रगल्भ संकुचन से यह स्थिति बनती है। इससे शिरानालीय, अलिन्दीय तथा निलयिक अतिरिक्त प्रकुंचन पहचाने जाते हैं। हृदय के कार्यसम्बन्धी विकार में शिशुओं में अतिरिक्त प्रकुंचन पाये जाते हैं। हृत्पेशीविक्षत भी इनको उत्पन्न करते हैं।

३. प्रवेगी नाड़ीद्रौत्य- एक ऐसी अतालता है जो अतिरिक्त प्रकुंचनों के साथ साथ देखी जाती है। इसमें हृद्गति एक दौरे के रूपमें १५० से २२० प्रतिमिनट तक देखी जाती है। यह स्थिति कुछ मिनटों घंटों या दिनों तक भी रह सकती है।

४. संचलन की गड़बड़ी—यह गड़बड़ी शिरानाल अलिन्दपर्व से पर्किंजे सूत्रों तक एक ही लाइन में पाई जा सकती है इसके कारण हृत्तरंग का संचलन मन्द पड़ जाता है जिससे आंशिक हृद्रोध या पूर्ण हृद्रोध हो सकता है एक हृद्रोध रोहिणी में ऐसा होता है जब अलिन्दों की गति तो सामान्य होती है पर निलयगति मन्द हो जाती है। आंशिक हृद्रोध में इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम का P.-Q. अन्तर लम्बा हो जाता है जो अलिन्द से निलय की ओर संचलन की मन्दगति को प्रकट करता है। यह अन्तर कभी इतना लम्बा हो जाता है कि जब तक शिरानालअलिन्द से तरंग पहुंचे उससे पहले ही निलय संकोच कर जाता है जिससे अतिरिक्त प्रकुंचन (ऐक्स्ट्रा वेंट्रिक्युलर सिस्टोल) पैदा हो जाता है।

कभी कभी तीव्र आमवातज और रोहिणीय हृत्पेशीपाक में अथवा कार्श्य एवं वृक्कशोथ में हृदय की वल्गित ताल(गैलपरिथ्म) पाई जाती है इसमें प्रथम ध्वनि के पूर्व एक और ध्वनि सुनी जाती है जो द्वितीय हृद्ध्वनि को डबल कर देती है।

५. अन्य अतालों में अलिन्द विकम्पन (फिब्रिलेशन)आल्टर्नेटिंग नाड़ी पर्विक ताल आदि आती हैं।

हृदय की स्वाभाविक ध्वनियों के अतिरिक्त कुछ विचित्र ध्वनियां और सुनाई पड़ती हैं जिनको मर्मर ध्वनि या मर्मर कहा जाता है ये मर्मर ध्वनियां या तो कपाटों में उत्पन्न होती हैं या हृत्पेशी में इन्हें आंगिक मर्मर कहते हैं। कुछ का सम्बन्ध क्रिया से होता है जिन्हें अनांगिक मर्मर कहते हैं। सहज हृद्विकारों के कारण मर्मरें तीव्र और ऊंची आवाज वाली होती हैं जब कि उपार्जित हृद्रोगों की मर्मरें मन्द फूंक या सीटी देती हुई मिलती हैं। २ वर्ष से नीचे के बच्चों में अनुशिथिलन या प्राक्प्रकुंची मर्मरें नहीं मिलती हैं। अनांगिक मर्मरें भी दो साल से छोटे बालकों में नहीं मिला करती हैं।

होता है उतनी ही रक्तनिर्माता संस्थान में विकार की संभावना अधिक रहती है। रक्तनिर्माण का कार्य मस्तिष्क वाह्यक की तरंगों पर निर्भर करता है।

जन्म के २ दिन बाद रक्त के लालकणों की संख्या ५७ लाख प्रति घन मिमी होती है जो १४ वें दिन ४० लाख रह जाती है। हीमोग्लोबिन १००-१४० प्रतिशत जन्मकाल में तथा १४ दिन बाद ८०-१०० प्रतिशत रह जाती है। रक्त बिम्बाणु जन्मकाल में १ लाख प्रति घन मिमी जो बाद में २-३ लाख प्रति घन मिमी हो जाते है। जन्मकाल में रक्त के श्वेतकण २५-३० हजार प्रति मिमी से घट कर १०-१५ वें दिन १०-१२ हजार रह जाते है।

शैशव को अनीमिया का काल माना जाता है क्योंकि वृद्धिगत शरीर रक्तनिर्माता अङ्गों पर अधिक काम का बोझ डालता हे। साथ ही इस काल में जितनी तेजी से लालकण बनते हैं हीमोग्लोबिन उतनी मात्रा में नहीं तैयार हो पाती। २ से ६ वर्ष के बालक में ही हीमोग्लोबिन की मात्रा ७२-८० प्रतिशत होती है। रक्त के लाल कण ४५ लाख प्रति घन मिमी होते हैं। ६ से १४ वर्ष की आयु में लालकण ४५ से ४८ लाख, हीमोग्लोबिन ७८-८६ प्रतिशत, श्वेतकण ७-८ हजार प्रति घन मिमी देखे जाते हैं। कच्चे लाल और सफेद कण जो ६ वर्ष के पूर्व रक्त में अधिक देखे जाते है वे धीरे-धीरे रक्त धारा से विलुप्त होते जाते हैं।

१३—पचन संस्थान सम्बन्धी तथ्य—

बाल्यकाल में पचन संस्थान की क्रियाओं का भी बड़ा महत्व होता है। शैशव में प्रथम वर्ष में उसका महत्व और भी बढ़ जाता है ज्यों-ज्यों बालक का मस्तिष्क—वाह्यक विकसित होता जाता है उसके आमाशय का स्राव, अम्लता तथा एँझाइमों की शक्ति बढ़ती जाती है। इसमें सोपाधि प्रतिवर्तों के विकास का अनुपात भी शामिल है। बच्चे की भूख उसके आमाशयिक स्राव की प्रक्रिया का अनुपात निश्चित करती है। यदि भूख अधिक हो तो आमाशय में स्राव भी अधिक बनता है।

नवजात शिशु में लाला ग्रन्थियां ठीक से विकसित नहीं होती। तीसरे चौथे माह तक उनका विकास हो पाता है तभी लालास्राव और डायस्टेज की मात्रा उसमें बढ़ती है। इस काल में भुक्तान्न का १/१० से १/५ भाग तक लार का उसके साथ जाता है। ३-४ माह के बालक के मुंह से लार बराबर टपका करती है क्योंकि तब तक बच्चा उसे निगलना नहीं सीख पाता।

अन्नप्रणाली या ईसोफेगस की लम्बाई जन्म के समय १०-११ से मी, १ वर्ष के शिशु की १२ सेमी और ५ वर्ष पर १६ सेमी हो जाती हैं। इन लम्बाइयों के ज्ञान से किस लम्बाई की आमाशय नली किस बच्चे को लगानी पड़ेगी इसका पता चलता है। आमाशय की क्षमता नवजात में ३०-३५ मि. लि., ३ माह पर १०० मि. लि. १ वर्ष के शिशु में २५० मि. लि. होती है। बच्चों में आमाशय कब खाली होता है यह भी आयु के अनुसार घटता बढ़ता है जो बच्चा मां का दूध पीता है उसका आमाशय २-३ घण्टे में तथा बोतल पायी शिशु का दूध पीने के ३-४ घण्टे मे खाली हो जाता है क्योंकि गोदुग्ध में माता के दुग्ध से अधिक प्रोटीन होती है जिसे पचने में अधिक समय लगता है।

एक बालक के आमाशयिक रस में वे सब घटक होते हैं जो एक बड़े के आमाशयिक रस में होते हैं। यदि बच्चा पूरे समय का जन्मता है तो जन्म के समय ही आमाशयिक पाचन ठीक होता है पर यदि अप्रगल्भ (प्रिमेच्योर) पैदा होता है तो उसकी पाचन शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती है। नवजात शिशु के आमाशयिक रस में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, लैक्टिक अम्ल, एँझाइम (पैप्सीन-रैनिन-लाइपेज) तथा सोडियमक्लोराइड सभी यथावत् मिलते हैं। अम्लता आयु के साथ किन्तु आहार और पोषण के अनुपात में बढ़ती है। अम्लता १/१० KOH के घोल द्वारा जांचने पर इस अनुपात में मिलती है—

नव जात शिशु में–३-६, प्रथम वर्ष के अन्त में–१५-२०, ३-७ वर्ष तक २५-३० तथा ८ से ११ वर्ष की आयु तक ४०-६० ।

शैशव में आमाशय की पाचन शक्ति कम रहती है, जो धीरे-धीरे बढ़ती है ।

शैशवकाल में बालक मां का दूध जितनी आसानी से पचा लेता है उतना गाय का दूध नहीं पचा पाता क्योंकि इस काल में उसके आमाशय के ऐंझाइमों की शक्ति बहुत कम होती है तथा गाय के दूध में प्रोटीनों की मात्रा अधिक होती है। आमाशय में पाचन कार्य दो अवस्थाओं में पूरा होता है । सबसे पहले पिया हुआ दूध जमता है फिर वसा और केसीन का पाचन होता है । दूध का जमना रेनिन नामक ऐंझाइम से होता है । रेनिन की क्रिया स्वस्थ शिशु में १०० किन्तु अस्वस्थ शिशुओं में ५ तक हो सकती है । मां के दूध का जमाव धीरे-धीरे और कोमल थक्कों में होता है। आमाशय में वसा की तोड़ फोड़ लाइपेज करता है जिसकी क्रिया शैशव में दुर्बल रहती है । मां के दूध में भी लाइपेज रहता है इस लिए आधी वसा आमाशय में ही टूट-फूट जाती है । बोतलपायी शिशुओं में वसा की टूट-फूट (हाइड्रोलाइसिस) आमाशय में नहीं हो पाती ।

अग्न्याशय या पैंक्रियाज का विकास भी शनैः-शनैः होता है इसका भार विविध आयुवर्गों में इस प्रकार रहता है–नवजात शिशु--३ ग्राम, ३ मास--६ ग्राम, किशोरावस्था- ७०-७८ ग्राम तथा वयस्कों में--९०-१२० ग्राम । अग्न्याशय से जो रस निकलता है जिसमें वे सभी ऐंझाइम रहते है जो बच्चे के दूध और शर्करा को पचा सकें । अग्न्यशय में हार्मोन इन्सूलिन भी बनता है जो कार्बोहाइड्रेट मैटाबोलिज्म का नियमन करता है । ग्रहणी में जो रस इकट्ठा होता है उसमें अग्न्याशयरस, आमाशयरस, ग्रहणीरस तथा यकृत् का पित्त मिला रहता है ।

बड़ों में आंतें उनकी लम्बाई की चार गुनी बड़ी होती है जबकि बच्चों में ६ गुनी अधिक लम्बी होती हैं । यह लम्बाई का अनुपात प्रथम वर्ष में अधिक पर धीरे-धीरे कम होता जाता है जो आठवें वर्ष में सबसे कम रह कर पुनः बढ़ने लगता है । बच्चों में मलाशय भाग भी काफी लम्बा होता है वह ढीला भी काफी होता है इसी लिए शिशुओं में गुदभ्रंश या कांच निकलने की प्रवृत्ति काफी पाई जाती है। आंतें पाचन, अन्न संचालन तथा प्रचूषण ये ३ काम करती हैं । वागस नाडी संचालन और स्राव का काम उत्तेजित करती है जबकि सिम्पैथैटिक नाड़ियां इन कामों को रोकती हैं । आंतों के पाचक रस में जन्म से ही वे ऐंझाइम मिलते हैं जो बडों में पाये जाते हैं । लाइपेज की कमी रहती है जो बड़े बालकों में तैयार हो जाता है। छोटी आंत में प्रोटीनें (एमाइनो एसिड के रूप में) कार्बोहाईड्रेट (मौनोसैकराइड के रूप में) तथा वसा (फैटी अम्लों के रूप में) प्रचूषित होते हैं यहा आंशिक रूप में लवणों का भी प्रचूषण होता है । बड़ी आंतों मे लोहा फॉस्फोरस और क्षारों का प्रचूषण होता है । बड़ी आंतों में बच्चों में फर्मेंटेशन अधिक होता है सड़न कम होती है। स्तनपायी शिशुओं की बड़ी आंत जितना प्रचूषण करती है बोतल पायी में उतना नही करती । सामान्यतया नवजात शिशु का आहार ४-१८ घण्टे में तथा बड़े बच्चों में २४ घण्टे में आंत को पार कर लेता है । जबकि बोतलपायी में यह ४८ घण्टे लेता है । प्रथम वर्ष में आंत अपाचित आहार और जीवाणुओं को जितनी आसानी से प्रचूषित करती है उतनी बाद में नहीं करती । जन्म के २-३ दिन के अन्दर ही आंतों में फ्लोरा जम जाता है जो बड़ी आंत में सबसे अधिक रहता है ।

शैशव में यकृत् अन्य आयु की अपेक्षा बड़ा होता है । शिशु के शरीर भार का ४ प्रतिशत और वयस्क में शरीर भार का २ प्रतिशत यकृत् होता है । शिशु का भार १० वें मास में दुगना, और ३ वर्ष की आयु में तीन गुना हो जाता है । किशोरावस्था तथा तरुणाई के पूर्व फिर इसमें वृद्धि होती है । यकृत् का प्रभाव वातनाड़ी संस्थान पर भी अधिक पड़ता है इस लिए यकृत् की बीमारी में बच्चे के चिड़चिड़ेपन से लेकर प्रलाप, आक्षेप, संन्यास तक की अवस्थाएं देखी जाती हैं। यकृत् के कोषाओं का विकास ६-८ वर्ष की आयु तक हो पाता है । तब तक उसमें

उपसर्ग या विष या रक्त की गड़बड़ी से शीघ्र प्रवृद्ध होने की प्रवृत्ति रहती है। यकृत् के कार्य विषनाश, जीवाणु प्रतिरोध (भ्रूणावस्था में) रक्त निर्माण, ग्लाइकोजन संचय, वसा तथा प्रोटीन से सम्बन्धित, रेटिक्युलोऐण्डोथीलियल संस्थान सम्बन्धी आदि नाना प्रकार के होते है। नवजात शिशु का यकृत् अपरिपक्व होने से उसमें उत्पन्न बाइल रक्त में मिलकर तथा लालकणों के गलाव के कारण नवजात कामला उत्पन्न कर देता है।

बाइल (मलपित्त) की उत्पत्ति २-३ मास में ही गर्भकाल में हो जाती है किन्तु जन्म के कुछ काल बाद तक मलपित्त कम मात्रा में ही बनता है। बच्चे के बाइल में बाइलऐसिड कम होती है टौरोकोलिक अम्ल अधिक तथा ग्लाइकोकोलिक अम्ल कम रहता है। म्यूकस, जल, रङ्ग-द्रव्य काफी रहते हैं। पित्त का यह संगठन बच्चे के लिए अधिक लाभप्रद होता है क्योंकि टौरोकोलिक अम्ल अधिक ऐण्टीसैप्टिक होता है साथ ही वह अग्न्याशय रस के स्राव को अधिक उत्तेजित करता है जिसमे दूध और शर्करा पचाने की अधिक शक्ति अधिक होती है जो शैशव का मुख्य आहार है।

ऊपर पाचन संस्थान विषयक जो तथ्य दिये गये हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि बच्चे के पाचन संस्थान को बहुत काम करना पड़ता है, तथा वह बहुत कोमल होता है इस लिये थोड़ी भी गड़बड़ी पाचन क्रिया में बिगाड़ करके अनेक रोगों को जन्म देती है । और क्योंकि बच्चे का विकास उसके खान-पान के पाचन और प्रचूषण और सात्म्यीकरण पर निर्भर करता है इन अङ्गों की दुष्टि उसके विकास में बाधक बन सकती है इस लिए बच्चे के पाचन संस्थान की ओर चिकित्सक को सदा विशेष ध्यान देते रहना चाहिए। पाचन अंगों की विकृतियों और पाचन संस्थान सम्बन्धी विकारों को जानने के लिये चिकित्सक को निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए: —

१. पाचन संस्थान की विकृतियों का ज्ञान दर्शन, स्पर्शन और प्रश्न एवं श्रवण द्वारा किया जाता है।
२. पहला प्रश्न बालक की माता से बालवैद्य को करना चाहिए—शिशु आपका दूध पीता है या बोतल का? फिर अन्य प्रश्न करने चाहिए। बच्चों से भी पहले खान-पान सम्बन्धी प्रश्न किये जाने चाहिए।
३. बच्चा मिट्टी, खड़िया, कोयला, कच्चा मांस खाने का आदी तो नही है।
४. फिर वमन, उदरशूल, अतीसार, मल-मूत्र का रंग, मल में कृमियों की उपस्थिति, मलत्याग में कुंथन कांच निकलना आदि विषयों पर प्रश्न किए जाने चाहिए।
५. दर्शन परीक्षा में चहरा, गाल, ठोड़ी, होठ, जीभ, तालु, गला इनकी विकृतियों विकास और वर्ण का ज्ञान करना चाहिए। मुख से दुर्गन्ध तो नहीं आती सूंघकर देखना चाहिए। दांत उगे हों तो उनको भी देखना चाहिए। मसूड़ों की स्थिति और जीभ पर कुछ जमा तो नहीं उसे भी गौर से देखना चाहिए। जीभ नीचे सेवनी से जुड़ी तो नहीं उसे देखकर उसकी श्लेष्मलकला का ज्ञान करना चाहिए। वहां रोमान्तिका फिलाटोव स्पॉट्स को देखा जा सकता है। चेहरे पर कोई गांठ (ऊपर नीचे बगल में) सूजी तो नहीं है देखनी चाहिए।
६. उदर परीक्षा करते समय पेट अन्दर धंसा है या फूला है या बढ़ा हुआ है। उसकी आकृति कैसी है, श्वास के साथ पेट में गति होती है या नहीं (पैरीटोनाइटिस में नहीं होती), नाभि की स्थिति खासकर जन्म बाद प्रथम सप्ताह में अवश्य देखनी चाहिए।
७. मल का वर्ण देखना चाहिए। बहुत सी औषधियां और आहार मल का वर्ण बदल देते हैं। पालक से हरा, सेंटोनीन से पीताभलाल, चुकन्दर से गहरा लाल, लोहे और विस्मथ के योग से काला, मांसाहार से गहरा, शाकाहार से हलका रंग मल (पुरीष) का होजाता है। मल में कई प्रकार के कृमि और उनके अण्डे भी पाये जाते हैं। सूत्रकृमि सूत जैसे होते है उनकी मादा बच्चे के गुद में कण्डू पैदा करती है। गण्डूपद कृमि केंचुए जैसे ७ से १० सेमी लम्बे देखे जाते हैं। ह्विपवर्म एक ओर पतले और दूसरी ओर मोटे होते हैं। फीताकृमि छोटे और लम्बे

दोनों तरह के पाये जाते हैं ये मांसाहारी बालकों में मिलते हैं जो कच्चा मांस खाते हैं।

८. कभी-कभी बालक पेट के दर्द से परेशान हो जाते हैं। यह दर्द कहां है इसे भी जानना वैद्य का कर्त्तव्य हो जाता है। कभी यह उदर की चमड़ी में, कभी उदर पेशियों में, कभी उदर्याकला में, कभी उदर के किसी कोष्ठांग में दर्द होता है। त्वचा का दर्द मेनिंजाइटिस एवं मन्थर ज्वर में, पेशी का दर्द बच्चे द्वारा अधिक खेल (फुटबाल, गिल्लीडण्डा, गोलीटीन) खेलने से, कभी-कभी लगातार खांसने से (जैसे कुकुरखांसी में) भी उदर की दण्डिका पेशियों में दर्द हो जाता है। कभी उदरशूल गोल परिधि में कभी विसरितरूप में होता है। उण्डुक पुच्छपाक (अपेंडिसाइटिस) का दर्द दक्षिणवंक्षणखात में होता है। पेट में सर्वत्र (विसरित) शूल और मरोड़ प्रवाहिका में देखा जाता है उदर के दाहिने भाग में ऊपर की ओर तीव्र शूटिंग शूल जो दबाने से तेज हो जाता है पित्ताशयशूल कहलाता है। यक्ष्मज उदर्याकलाशोथ में फिर-फिरकर आक्षेपयुक्तशूल होता है। शैशव में आन्त्रान्त्र प्रवेश होने पर एक मूसली टाइप की सूजन पेट पर उछल आती है तथा आन्त्रवलयों की तरंगें उदर पर दिखाई देती हैं जिसमें दबाने पर दर्द होता है। आंतों में मल रुकने से भी कई कठिन पुंज इतस्ततः टटोले जासकते हैं जो हिलाने से इतस्ततः हट भी जाते हैं कभी नहीं भी हटते। मलत्याग के समय दर्द अर्श या विदार (फिशर) में मिलता है। कभी-कभी पेट में गैस या अफरा भी शूल का कारण बनता है। वृक्काश्मरी के कारण शूल उदर में उठकर पीठ की ओर जाता है। बच्चों में कभी-कभी प्लूरा और फुफ्फुसों के रोग अन्यथानुभूत पीड़ा के रूप में उदर के शूल का आभास कराते हैं। ऐसे बच्चों का ध्यान किसी खेल या खिलौने में लगाकर गहराई से पेट दबाने पर वहां कोई पीड़ा नहीं पाई जाती।

१४, अपनी बात—

हमने इन पंक्तियों में शिशुओं और बालकों के विविध अंग-प्रत्यंगों और संस्थानों से सम्बद्ध अनेक ऐसे तथ्यों का प्रकटीकरण किया है जिनमें से अधिकांश का विचार विशेषांक में नहीं हो सका था। किन्तु जिनका ज्ञान सर्वसाधारण चिकित्सकों को होना ही चाहिए। बालरोगों पर जो साहित्य भारतीय चिकित्सा वाङ्मय में उपलब्ध होता है वह बहुत विकीर्णरूप में मिलता है। काश्यपसंहिता में यद्यपि विस्तार से बालरोगों का विचार किया गया है किन्तु वह ग्रन्थ भी खण्डित रूप में प्राप्त हुआ है। हमने इस विशेषांक में स्वयं और लेखकों तथा संकलनकर्त्ताओं से जो ज्ञान कराया है उसका एक मात्र उद्देश्य बालरोग चिकित्सा और निदान विषयक सभी आवश्यक तथ्यों का क्रमिकरूप से प्रस्तुतीकरण है। इसमें हमें इस बार उत्तरी (रूसी) विद्वानों की कई महत्वपूर्ण पुस्तकों के अवलोकन और उनके सारभाग को ग्रहण करने का सौभाग्य मिला है। उनके द्वारा प्रस्तुत नये तथ्यों के हमारे इस प्रयास को बहुत सफल बना दिया है। एतदर्थ हम इन नवपरिचित ग्रन्थ लेखकों के प्रति अपना मूक आभार प्रकट करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। एक पुस्तक प्रापिड्यूटिक्स आफ चिल्ड्रन्स डिजीजिज जिसे सुप्रसिद्ध बालरोग विशेषज्ञ वी. मोलचानोव, वाई दोम्ब्रोव्स्काया तथा डा. सैवेदेव ने लिखा है से भी पर्याप्त सहायता ली गई है। हमारे देश में मौलिकरूप से कार्य करने की प्रवृत्ति स्वतन्त्रता के इतने दिन बाद भी नहीं पनप पाई। शायद हमारे नये रूसी मित्रों के सम्पर्क से हमारे शासक राजनीतिज्ञ ऐसे वातावरण का सृजन करने में सफल होंगे ताकि मौलिक चिकित्साशास्त्र विषयक ग्रन्थों का सृजन हो सके।

हमारे धन्वन्तरि कार्यालय के उत्साही प्रबन्धकों श्री मुरारीलाल शर्मा और श्री भगवतीप्रसाद शर्मा ने भी अपने दायित्व को जिस कुशलता से निभाया है वह भी अपने में विशेष महत्त्व रखता है। इन्होंने अपने पिताजी के सरल चित्तों का प्रति पग अनुसरण किया है और उनके अभाव को प्रत्यक्ष नहीं आने दिया। यदि इसी उत्साह और लगन से ये लोग लगे रहे तो अपने कार्य को आशातीत उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करने में सफल अवश्य हो सकेंगे।

हमारे सुधानिधि के सम्पादक मण्डल में सब से छोटी आयु के किन्तु अप्रतिम प्रतिभासम्पन्न तरुण सम्पादक हैं गोपालशरण गर्ग जिन्होंने बीच-बीच में अपनी पढ़ाई से समय निकाल कर इस विशेषांक की रूप सज्जा को बहुत परिश्रमपूर्वक संवारा सजाया है। हमारे दूसरे सम्पादक चरौरे जी ने अपने को धन्वन्तरि कार्यालय के विकास में झोंक ही दिया है। उन्हें न रात की परवा है न दिन की चिन्ता। रोगियों की चिकित्सा तथा सुधानिधि के प्रूफों की परख आप अहर्निश महीनों से करते रहे हैं तब यह साध पूरी हो सकी है। सुधानिधि के कार्य में दिन-रात एक करने वालों में-हमारे फोरमेन, कम्पोजीटर्स श्री त्रिभुवनदत्त शर्मा, श्री भोलाशंकर शर्मा, श्री बंगालीमल शर्मा, श्री विजयकुमार शर्मा तथा मशीनमेन श्री ओमप्रकाश जिस कठिन तपस्या के आदी हैं उसका आभास विजयगढ़ के बाहर का कोई व्यक्ति कल्पना में भी नहीं ला सकता। बिजली नहीं तो हाथ से ही मशीन चलाते हुए, सूजती हुई आंखों से भी कम्पोज करते हुए हमारे आत्मीय जनों ने जो श्रम किया है उसका कोई बदला नहीं चुकाया जा सकता। इस विशेषांक के बाद के सारे फाइनल प्रूफों को १८ मील साइकिल चला कर प्रतिदिन मेरे पास दौड़ने वाले ओंकार की निष्ठा को मेरे जैसा सहृदय कभी भी भुला नहीं पायेगा। देवीशरण जी जिन लोगों का निर्माण कर गये हैं वे सभी चट्टान की तरह अडिग रहकर अपने दायित्व को पूरा कर रहे हैं।

हमारे लेखक परिवार के सदस्य उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक हिमाचल के हिमाच्छादित श्रृंगों से सागर की उत्ताल तरंगों तक छाये हुए हैं। उनमें कुछ पीयूषपाणि चिकित्सक हैं। कुछ अध्यात्मरत मनीषी हैं, कुछ रिसर्च और पोस्टग्रेजुएट प्रशिक्षण में संलग्न प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरर और डिमोंस्ट्रेटर हैं, कुछ सर्जन हैं, कुछ प्राचार्य हैं, कुछ वैद्य हैं कुछ हकीम, होम्योपैथ और प्राकृतिक चिकित्सक हैं। विभिन्न विषयों के आचार्य सिद्धहस्त लेखक, उदीयमान लेखक सभी वर्गों के लोगों का यह समन्वय है जैसे जलनिधि में सभी प्रकार की जीवात्माओं का निवास है वैसे ही सुधानिधि में भी सभी प्राणाचार्यों का प्रवेश है। मैं अपने इस परिवार को जिसमें अग्रज भी हैं और अनुज भी देखकर जिस अनन्त अखण्ड अभंग आनन्द और चिति का अनुभव करता हूँ वह वर्णनातीत है लेखनी से परे का विषय है। यह एक ऐतिहासिक विशेषांक है जो स्वप्निल धरातल पर खचित हुआ और जो उस सत्ता की कृपाकोर के बल पर पूर्ण हुआ है—मेरा मुझ को कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझ को सोंपते क्या लागत है मोर—यह सब उस परम सत्ताधीश के इङ्गित पर हुआ है, कैसा है? क्या है? वह सब तो अब पाठक प्रवरों का कार्य है।

माघ शुक्ला पूर्णिमा २०३१
२५-२-१९७५

सुधानिधि

शिशु रोग चिकित्सांक

*

आर्ष खण्ड

*

इस खण्ड में

★

इस खण्ड में १० लेखों का समावेश किया गया है।

इस विशेषांक तथा आर्ष खण्ड का यह प्रथम लेख आयुर्वेद जगत् के समुज्ज्वल रत्न, पूजनीय गुरुवर्य, सुधानिधि के सम्पादक आचार्य त्रिवेदी जी की लेखनी का सुमधुर प्रसाद है। चरक संहिता तथा शिशु रोग दोनों विषय आचार्य जी के लिये नये नहीं हैं। अपने तारुण्य में ही चरक संहिता पर ८०० पृष्ठ का एक विशाल विशेषांक लिखकर तथा शिशु रोगों पर कौमार भृत्य नामक ५०० पृष्ठीय पुस्तक का सृजन कर बड़े-बड़े दिग्गजों की आंखें खोल दी थी! तब से आज तक आपकी लेखनी गूढ़ से गूढ़ विषयों के भेद खोलने में तल्लीन है। आपकी वाणी में आज भी तरुणाई के ज्वार भाटे हैं तथा आपके शरीर में आज भी सिंह जैसे पुरुषार्थ की झलक तथा कार्य कलापों की कान्ति है वह दीर्घजीवी बनकर इसी तरह अपनी लेखनी से आयुर्वेद समाज को प्रकाशित करते रहें यही ईश्वर से कामना है। प्रस्तुत लेख चरक संहिता में शिशु रोग विषय की पूर्ण सामग्री का प्रस्तोता तथा चिकित्सकों के लिये निस्सन्देह परम उपादेय तथा अविस्मरणीय बन गया है।

—गोपालशरण गर्ग।

चरक संहिता काय चिकित्सा प्रधान ग्रन्थ है और एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सिद्धान्तरूप से सभी अष्टांगों का समावेश हो गया है। इसकी पद्धति का अनुसरण कर चिकित्सक बाल रोगों का भी उतना ही उत्तम उपचार कर सकता है जितना अन्य रोगों का। किसी भी रोग की उत्पत्ति में कारणभूत निदान, दोष-दूष्यों की विकृति उन विकृतियों के परिणाम स्वरूप रोग प्रादुर्भाव, रोग की स्थिति लक्षण साध्यासाध्यता और चिकित्सा तथा पथ्य पर चरक संहिता में आधिकारिक रूप से प्रकाश डाला गया है। इस समस्त सामग्री का उपयोग बालरोगों की दृष्टि से भी किया जा सकता है। हमने इसी आधार पर इस लेख की कल्पना की है। हम नीचे विविध रोगों को बालरोग दृष्ट्या प्रकट करने हेतु चरक का उपयोग कर रहे हैं आशा है पाठकगण इस दृष्टिकोण को समझ कर ही हमारे प्रयत्न का आकलन करेंगे।

(१) अजीर्ण विषयक सामग्री

बच्चों को अपच या अजीर्ण होना प्रायः देखा जाता है। अजीर्ण का कारण अमात्रावत् आहार का सेवन है।

यह अमात्रा हीन भी हो सकती है और अधिक भी। हीन-मात्रा के कारण शिशु का बल वर्ण-उपचय का क्षय हो जाता है तथा यह बालक में अतृप्ति को जन्म देती है। अनेक वात विकारों का आयतन यह हीनमात्रा ही है। अतिमात्रा में भोजन बालक को कराने से चरक के मत से सर्वदोष प्रकोपण (देखें सूत्र स्थान अध्याय २) होता है वात पित्त कफ दोषों का एक साथ प्रकोप होता है। इससे विष्टब्धाजीर्ण भी बन सकता है तथा दोषों का ऊर्ध्व या अधो मार्गो से प्रच्यावन भी हो सकता है। वायु के कारण पेट में दर्द, पेट का फूलना, मुख सूखना, अग्निवैषम्य आदि होते हैं पित्त के कोप से ज्वर दस्त, श्वास तथा कफ के प्रकोप से वमन, अरोचक, अविपाक, शीतज्वरादि लक्षण पैदा हो सकते हैं।

अतिमात्र भोजन से आम की उत्पत्ति होती तथा सभी दोष आमरूप बनकर शरीर को दूषित करते हैं आमदोष की उत्पत्ति में बालकों में गुरु-रूक्ष-शीत-शुष्क अशुचि और अकाल में किया गया भोजन भी कारणभूत होता है, बालक को भय दिखाने से भी आमदोष पैदा हो जाता है। रात भर बच्चा जागता रहे या प्रलाप करता रहे तब भी आमदोष उत्पन्न हो जाता है चाहे मात्रावत् ही आहार दिया गया हो—

मात्रयाऽप्यभ्यवहृतं पथ्य चान्न न जीर्यति।
चिन्ताशोकभयक्रोधदुःखशय्याप्रजा गरैः॥

यह आमदोष २ प्रकार के रोग पैदा करता है—एक विसूचिका और दूसरा अलसक। विसूचिका मे कै और दस्त होकर बालक को डिहाइड्रेशन हो जाता है तथा अलसक में आमविष पैदा होकर अन्न अन्दर ही अन्दर सड जाता और उसका शरीर दण्डवत् स्तब्ध हो जाता और पेट फूल जाता है। यह परम असाध्य अवस्था है।

अलसक की स्थिति बनने वाली हो तो प्रदुष्टमलसी-भूतं उल्लेखयेद् आदौ पाययित्वा सलवणं उष्ण वारि। गरम पानी में नमक डालकर पिलाओ या नई भाषा में नार्मल सैलाइनवाटर को सिरा द्वारा कुछ गरम कर चढ़ाओ। उसे स्वेदन कराओ (टर्पेण्टाइन स्टूप दो) उपवासयेच्च-उपासा रखो। विसूची मे शुरु में लंघन देकर विरिक्त के समान चिकित्सा करे।

आमदोष के कारण अग्नि इतनी मर जाती है कि वह कुछ भी पचा नहीं पाती। दोष, आहार और औषध का एक साथ पाचन भी नहीं होता—

आमप्रदोषदुर्बलोऽग्निः न युगपद्दोषं औषधं आहार जातं च शक्तः पक्तुम्।

इससे आतुर बालक का बल सहसा गिर जाता है। इसमें अपतर्पण से आरम्भ करके विकार नाशक अग्नि-वर्द्धक औषधियों का प्रयोग और डिहाइड्रेशन तथा विष-दोष हरण का उपाय करना चरक सम्मत है।

२—अतत्वाभिनिवेश विचार

इसे भगवान् पुनर्वस आत्रेय ने महारोग की संज्ञा दी है। बालक मूढ (ईडियट) और अल्प चेतना वाला (इम्बैसाइल) होता है। यह रोग मलिनाहार, वेगरोध, शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष आदि विरुद्ध द्रव्यों के एक साथ बच्चे को देने से कुपित हुए दोष रज और तम दो से मन बुद्धिवाही स्रोतों को आवृत करके हृदय (मस्तिष्क) में स्थित होकर इस रोग को पैदा करते हैं बुद्धि विषम हो जाती है उसे नित्य-अनित्य, हित-अहित का ज्ञान नहीं रहता।

इस रोग के उपचार के लिए स्नेहन, स्वेदन संशोधन संसर्जन क्रम अपनाने पड़ते हैं फिर बुद्धिवर्द्धक अन्नपानों से चिकित्सा करते हैं :—

स्नेहस्वेदोपपन्नं त संशोध्य वमनादिभिः।
कृतसंसर्जनं मेध्यैरन्नपानैरुपाचरेत्॥

ब्राह्मी स्वरस, पञ्चगव्य, शंखपुष्पी एवं मेध्या रसायनों द्वारा इसकी चिकित्सा की जाती है। बालक को धर्मार्थवादी आप्तों (ऐक्सपर्टो) एवं अनुकूल एवं करुणाभाव युक्त चिकित्सकों से ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति समाधि इन पञ्च मनोविकारहर क्रियाओं से चिकित्सा करते हैं।

(३) अतिसार और बालक

आयुर्वेद प्रत्येक आयु ग्रुप में अतिसार का विचार वात, पित्त और कफ के माध्यम से ही स्वीकार करता है।

i. वातलस्य वातातपव्यायामातिमात्रनिषेविणो रूक्षाल्पप्रमिताशनस्तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्योदावर्तयतश्च वेगान् वायुः प्रकोपमापद्यते—पक्ता चोपहन्यते, स वायुः कुपितो अग्नावुपहते मूत्रस्वेदौ पुरीषाशय मुपहृत्य ताभ्यां पुरीषं द्रवीकृत्य, अतीसाराय कल्पते।

ii. पित्तलस्य पुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्र निषेविणः, प्रततागिनसूर्यसन्तापोष्णमारुतोपहृतगात्रस्य क्रोधेर्ष्या बहुलस्य पित्त प्रकोपमापद्यते। तत् प्रकुपितं द्रवत्वाद् ऊष्माणमुपहृत्य पुरीषाशयविसृतमौष्ण्याद् द्रवत्वात् सरत्वाच्च भित्वा पुरीषमतिसाराय प्रकल्पते।

iii. श्लेष्मलस्य तु गुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनः सम्पूरकस्य अचिन्तयतो दिवास्वप्नपरस्य अलसस्य श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते। स स्वभावाद् गुरुमधुरशीतस्निग्धः स्रस्तोऽग्निमुपहृत्य सौम्यस्वभावात् पुरीषाशयमुपहृत्य उपक्लेद्य पुरीषं अतीसाराय कल्पते।

इन सभी में खाद्य पेय पदार्थों की गडबड़ी से अथवा काल अथवा विहार या जीवनचर्या में अन्तर आने के कारण वात, पित्त या कफ का तत्तत् प्रकृति वाले बालक में प्रकोप होता है जिससे जाठराग्नि मन्द पड़ जाती है और बच्चे का पुरीष तरल रूप धारण करके अतिसार को उत्पन्न कर देता है।

कभी-कभी २-२ दोष मिलकर या तीनों दोष एक साथ यही स्थिति पैदा कर देते हैं।

जब इन दोषों के साथ रक्तादिधातुएं भी दूषित हो जाती हैं तब कष्टसाध्य अतीसार पैदा होते हैं उनमें यदि उपद्रव भी उत्पन्न हो गये तो असाध्य अतीसार वा अचिकित्स्य अतीसार बनते हैं। आगन्तु कारणों से एवं भय और शोक के कारण भी बालकों में अतीसार बनते हैं।

बालकों के किसी भी प्रकार के अतीसार में उपचार करते समय निम्नांकित बातों का पालन करना चाहिए—

(१) अतिसार साम है या निराम इसका पहले ध्यान किया जाना चाहिए।

(२) आमातीसार में संग्राही औषध कदापि न दी जावे क्योंकि उससे विबद्ध हुए दोष अनेक रोग उत्पन्न कर देते हैं—

न तु संग्रहणं देयं पूर्वमामातिसारिणे।
विबध्यमाना प्राग्दोषा जनयन्त्यामयान् बहून्॥

(३) आमातीसार में आरम्भ में दस्त आने दे यदि दस्त ठीक-ठीक नहीं आ रहे कुछ चुरक होकर रह जाती हो तो हरीतकी का चूर्ण या पानी बना उसकी बूंदें दे—

कृच्छ्रं वा वहतां दद्याद् अभयां संप्रवर्तिनीम्।

इससे दोष प्रवाहित हो जाते हैं और अतीसार स्वयं शान्त होकर—जायते देहलघुता जठराग्निश्च वर्धते।

(४) चक्रपाणिदत्त का यह सूत्र बालातिसार में भी उतना ही लाभप्रद है जितना वयस्कातीसार में—

बहुदोषे प्रवर्तनं, तथा मध्यदोषे प्रमथ्योक्ता, अल्पदोषे च सामे प्रथमकर्त्तव्यम्—लंघनम्।

लंघनं चाल्पदोषाणां प्रशस्तमतिसारिणाम्।

(५) परन्तु बालकों में अधिक दस्त कराना या लंघन बहुत अच्छा नहीं माना जाता क्योंकि आजकल माता-पिता का मोह, ऐलोपैथी का अन्धा धुन्ध प्रचार और अर्थोपार्जन की चिकित्सकों की प्रवृत्ति इसमें बाधक होती है।

(६) दोष मध्यम होने पर दीपनपाचनी प्रमथ्या देने का विधान बहुत अच्छा है—

i. पिप्पली, सोंठ, धनियां, भूतीक (रूसाफास-सोफिया) हरड़, वचा।

ii ह्रीवेर (बालक-सुगन्धवाला), नागरमोथा, बेल, सोंठ, धनियां।

iii. पृश्निपर्णी, गोखरू, लज्जालू, कटेरी छोटी।

ये तीनों प्रकार की प्रमथ्याएं अगर तीन पीडियाट्रिक ड्रॉप्स (बालबिन्दु) के रूप में मधुर बना ली जावें तो बच्चों के अतिसार के लिए चरक की अनुपम देन सिद्ध हो सकती हैं।

(७) वचा, अतीस या मोथा-पर्पट या ह्रीवेर-अदरक का पानी बनाकर पिलाना चाहिए। इससे डिहाइड्रेशन दूर होता और दोष-वात, पित्त और कफ क्रमशः शान्त होते हैं।

(८) जब "प्रवाहिका" या "मरोड़" के साथ दस्त होते हों तो बथुआ, पोई, मूली, बेर, अजवाइन आदि के साथ दही और अनार का रस डालकर शाक बना देते हैं।

कच्ची बेलगिरी और तिल पीसकर दही में देते हैं।

कच्चे बेल के साथ पका दूध बच्चे को देना उत्तम रहता है :—

शृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा पयः।
एवं क्षीरप्रयोगेण रक्तं पिच्छा च शाम्यति।
शूलं प्रवाहिका चैव विबन्धश्चोपशाम्यति॥

(६) **पित्तातिसार में** i. बला–अतिबला–माषपर्णी-मुद्गपर्णी–शालपर्णी–पृश्निपर्णी–बड़ी कटेरी छोटी कटेरी शतावरी और गोखरू से सिद्ध यवागू या मण्ड बच्चे को देना चाहिए।

ii. मूंग-मसूर-काबुली चना-मोंठ-अरहर की दालें।

iii. लवा-कपिंजल-शश आदि के मांसरस दे सकते हैं। दीपनीय-पाचनीय-उपशमनीय और संग्रहणीय योगों का उपयोग चरक सम्मत है।

iv. शहद-अतीस-इन्द्र जौ और कुटजछाल की चटनी चटावें।

v. बकरी का दूध हितकर होता है।

vi. दारुहल्दी (बर्बेरल-अर्लम्बिका) लाभप्रद है।

रक्तातिसार—में भी उपर्युक्त प्रयोग लाभ करते हैं। काली मिट्टी, मुलहठी, शंखभस्म, केसर इन्हें शहद डाल तन्दुलोदक के साथ पिलाने से लाभ होता है। दारुहल्दी, कुटज, इन्द्रजौ, द्राक्षा, शतावरी का प्रयोग घी सिद्धकर या ड्राप्स बनाकर देने से लाभ होता है।

(१०) **श्लेष्मातिसार में लंघन**—पाचन-आमातिसारघ्न प्रयोग चरक सम्मत हैं।

i. बेल-काकड़ा सिंगी-मोथा-हरड़-सौंठ;

ii. वचा-विडंग-रूसाफास-धनियां-देवदारु;

iii कूठ-अतीस कड़वी-पाठा-चव्य-कुटकी;

iv. पिप्पली-पिप्पलीमूल-चित्रक-गजपीपल इनके क्वाथ से शर्बत बनाकर बच्चों को देने से अमित लाभ होता है।

पिप्पली को शहद से, चित्रक को मट्ठे से, कच्चे बेलफल को पानी से घिसकर चटाने से बच्चे के सभी अतिसारों में लाभ होता है।

पिच्छाबस्तियों का उपयोग अधिक कष्टप्रद प्रवाहिकादि में ही किया जाना चरक सम्मत है।

(४) बाल-अपस्मार और उसकी चिकित्सा

पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि अपस्मार या ऐपीलेप्सी किसी आयु मे हो सकती है। अपस्मार के ८ रुग्णों में से १ रुग्ण को यह रोग जब वह ३ वर्ष की आयु मे पहुंचता है तभी हो जाता है। पर उस समय अपस्मार के ये दौरे हैं यह पहचानना बहुत कठिन होता है।

चरक वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों के अलग-अलग प्रकोप से तथा सन्निपात (तीनों दोषों के एक साथ प्रकोप) से उत्पन्न मानता है। जब रजोगुण तथा तमोगुण से बालक का चेतस उपहृत हो जाता है तो अन्य अनेक कारणों से कुपित हुए दोष हृदय (ब्रेन) मे पहुंच इन्द्रियायतनों को प्रभावित करते हैं उसी काल में यदि किसी मनोद्वेग से बालक का मन भर जाता है तभी उसे अपस्मार का दौरा पड़ता है। इसके पूर्वरूप में भौं की त्योरी चढ़ जाती है, पेट फूल जाता है मुख से लार और नाक से पानी झट बेहोश झट होश में रहता है। हाथ पैर नख नेत्र मुख त्वचा का रंग अरुणश्याव हो जाता है।

वातदोषजन्य अपस्मार में आंख उत्पिण्डित फूली हुई हो जाती है, मुख से झाग आता है। हाथ पैर चलते हैं। पित्त दोष मे हरित हारिद्र ताम्रवर्ण का मुख, नख, नेत्र त्वचा का रग हो जाता है। बालक झट बेहोश झट होश में हो जाता है।

कफ दोष जन्य अपस्मार में होश देर में आता है। मुख से लार गिरती है। हाथ पैर नख नेत्र मुख त्वचा का रग सफेद हो जाता है।

सन्निपातिक अपस्मार में सभी दोषों के लक्षण एक साथ आते हैं।

अपस्मार में चरक आगन्तु सम्बन्ध या भूत सम्बन्ध भी स्वीकार करता है। इसे अतत्त्वाभिनिवेश कहा जाता है।

अपस्मारी में चार कार्डीनल सिमटम्स चरक बतलाता है—

i. स्मृति का अपगम।

ii. तमः प्रवेश।

iii. वीभत्स चेष्टा।

iv. मन बुद्धि संप्लव या विभ्रम।

बालापस्मार की चिकित्सा का प्रथम सूत्र चरक ने दिया है—

वातिक वस्ति भूयिष्ठैः पैत्त प्रायो विरेचनैः।
श्लैष्मिक वमनप्रायैरपस्मारं उपाचरेत्॥

वस्तिभूयिष्ठ वातापस्मार में, विरेचन पैत्तिक में और

वमन युक्त चिकित्सा श्लैष्मिक अपस्मार में की जानी चाहिए। इनमें प्रयुक्त पदार्थ तीक्ष्ण होने चाहिए। जब इन विधियों से अपस्मारी बालक का संशोधन हो चुके तब उसे निम्नांकित योगों में से रोग दोषानुसार आवश्यक योग का उपयोग करना चाहिए :—

i. गाय के घी मे गाय के गोबर का रस, गाय का दही, गो दुग्ध और गो मूत्र समभाग डाल घृत सिद्ध कर दें। या चरक का महापञ्चगव्य घृत दें। इसे प्रतिदिन देने से यह अमृत के समान गुणप्रद सिद्ध होता है।

ii. ब्राह्मी स्वरस, वचा, कूठ और शंखपुष्पी से सिद्ध घृत।

iii. सैंधव, हींग, चौगुने, तथा बकरे के मूत्र से सिद्ध घृत।

iv. वचा, अमलतास, महानिम्ब, ब्राह्मी, हींग, चोरक से विधिवत् सिद्ध किया घृत गूगुल के साथ देने से वात कफज अपस्मारों को नष्ट करता है।

v. स्नान और उत्सादन में बालापस्मारी को सरसों का तैल चारगुने बकरे के मूत्र में तथा गोबर के रस और गोमूत्र में सिद्ध कर देते हैं।

vi. पिप्पली, लवण, सहेंजन, हींग, सरसों, कुत्ते की हड्डी, बकरे के मूत्र में पीस लगाने या इनकी धूप देते हैं। न्योला, उल्लू, बिल्ली, गीध, कीट, सांप कौए की चोंच, पंख, बीट की धूप से दौरा समाप्त हो जाता है।

vii. कपिला गाय के मूत्र का नस्य या त्रिफला, त्रिकटु, दारुहल्दी, यवक्षार, फणिज्झक, त्रिवृत्, अपामार्ग तथा कञ्जे के फल, बकरे के मूत्र में सिद्ध तैल का नस्य देते हैं।

viii. वर्ति प्रयोग से भी अपस्मार का दौरा चला जाता है—मोथा, ब्राह्मी, त्रिफला, तुलसी, हींग, दूर्वा, त्रिकटु उड़द, जौ, बकरे, मेंढे और बैल के मूत्रों मे घोंटकर वर्ति बना उसे सुखाकर रखें और पानी में घिस आंखों में आंजें।

ix. और कुछ नहीं तो पुष्य नक्षत्र में ग्रहीत कुत्ते के पित्त का अंजन दौरा शान्त कर देता है।

(५) आध्मान

बहुधा बालकों का पेट फूल जाता है। उसे स्नेह और स्वेदन तथा वस्ति प्रयोग से ठीक करना चाहिए। दूध में एरण्ड तेल डालकर पिलाना या वातानुलोमन भी हितकर है।

(६) बालक के कर्णगत रोग

बालक को कर्णशूल तथा कर्णस्राव ये दो रोग बहुधा होते हैं।

कर्णशूल दूर करने के लिए चरक का हींग, तुम्बुरु (तेजबल) और गोंठ से सिद्ध कड़वा तेल बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

चरकोक्त क्षार तैल बच्चों के बाधिर्य, पूयस्राव, कृमिरोग और शूल को शान्त करता है।

(७) बालकों की खांसी या बालकास

चरक वातिक पैत्तिक श्लैष्मिक, क्षतज और क्षयज पांचों प्रकार की खांसी स्वीकार करता है और ये पांचों ही बच्चे में मिल सकती हैं। सूखी खांसी वातज, सज्वर पैत्तिक, सकफ श्लैष्मिक, सरक्त क्षतज तथा धातुक्षय युक्त क्षयज कास होती है।

वातिक कास में कटेरी और गिलोय के स्वरसों से सिद्ध घी का प्रयोग कराना चाहिए। चरक की अगस्त्य-हरीतकी पांचों प्रकार की खांसियों को दूर करती है। पैत्तिक कास में खजूर, पिप्पली, वंशलोचन, और गोखुरू चूर्ण घी तथा शहद के साथ देते हैं। श्लैष्मिक कास में पिप्पलियों को तेल में सेक कर चूर्ण कर मिश्री मिलाकर देते हैं। ऊपर से कुलथी का काढ़ा पिलाते हैं। देवदारु पिप्पली-हरड़-मोथा-शुण्ठी का चूर्ण शहद के साथ देना भी कफज कास में अच्छा काम करता है। दशमूल, पुष्करमूल, कपूर कचरी, बेलगिरी, तुलसी त्रिकटु और भुनी हींग युक्त फाण्ट अच्छा काम करता है।

क्षतज कास मे पिप्पली और मुलहठी का चूर्ण मिश्री मिला गाय के घी के साथ देना उचित है। जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध घी का प्रयोग श्रेयस्कर है।

क्षयज कास में बृंहण पदार्थ देते हुए अग्निदीपन द्रव्य देने चाहिए। इसमे मृदु विरेचन भी चरक सम्मत है। चरक का द्विपञ्चमूलादि घृत उत्तम योग है। इस कास का चिकित्सा सूत्र निम्नांकित है :—

दीपनं बृंहणं चैव स्रोतसां च विशोधनम् ।
व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्वं हितं भवेत् ॥

इसे सन्निपातज मानकर सन्निपात दृष्ट्या चिकित्सा की जानी चाहिए।

यद्यपि चरक ने कुकरकास का यहां विचार नहीं किया पर वह वातिक कास की उग्रता का ही प्रदर्शक रोग होवे से चिकित्सा भी वातिक कासवत् की जानी चाहिए।

(८) कामला

बालकों में कामला या तो जन्मते ही होता है या फिर पाण्डुरोग के उपरान्त या मृद्भक्षणज पाण्डु के साथ मिलता है। यह बहुपित्तजन्य रोग माना गया है जो कोष्ठाश्रित और शाखाश्रित दोनों ही प्रकार का होता है।

यकृत् में बनने वाला बाइल जब किसी भी प्रकार मार्गावरोध के कारण कोष्ठ में नहीं आता तो शाखाश्रित तथा जब अति मात्रा में मल के साथ निकलता है तो कोष्ठाश्रित कामला बनता है। बाइल को कोष्ठ में प्रेरित करने हेतु चिकनाई जरूरी होती है। इसलिए चरक ने घृतों को सेवन कराने पर जोर दिया है।

हारिद्रात्रिफलानिम्ब बलामधुकसाधितम् ।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥

नवायसचूर्ण जिसमें त्रिफला, त्रिकटु और त्रिमद (मुस्तक, विडंग, चित्रक) समभाग और सबके बराबर लोहभस्म डालकर बनाया जाता है वह कामला के दोनों प्रकारों में अच्छा काम करता है।

कामला होने पर चरक का धात्र्यवलेह बच्चों को बड़े प्रेम से दिया जा सकता है। क्योंकि यह मीठा होता है।

(९) कृमिरोग

चरक संहिता के विमान स्थान के सातवें अध्याय में २० प्रकार के कृमिरोग माने हैं। ये ४ बड़ी श्रेणियों—पुरीषज, श्लेष्मज, शोणितज तथा मलज में बांटे जा सकते हैं। इनमें श्लेष्मज आहार (खाद्यपेय पदार्थों) के दूषित होने से आमाशय में बनते और महास्रोत भर उनका काम रहता है इनमें कुछ श्वेत, कुछ पृथु, कुछ गोल कुछ गण्डूपदाकृति वाले कुछ लाल कुछ अण्ड, कुछ दीर्घ होते हैं ये आंतों, उदर, हृदय, से गुद तक पाये जाते हैं। इनके कारण हृल्लास (Nausea) लार बहना, अरोचक, अविपाक ज्वर, मूर्च्छा, जृम्भा, क्षवथु, आनाह, अंगमर्द, छर्दि, कार्श्य, पारुष्य आदि लक्षण होते हैं। पुरीषजकृमि गुद मुख के पास खुजली करते हैं ये श्वेत, सूत्र जैसे लम्बे, सूक्ष्म या स्थूलवृत्त परिणाम वाले होते हैं।

चरक इन सभी कृमियों की चिकित्सा के ३ पहलुओं को स्वीकार करता है।

१. क्रियाओं का अपकर्षण पहले किया जावे,

२. फिर उनका प्रकृति विघात किया जावे, अन्त में

३. कृमि रोग निदान में दिये भावों या पदार्थों का परित्याग किया जाना चाहिए।

अपकर्षण के लिए शिरो विरेचन, वमन, विरेचन तथा आस्थापन कर्म अपनाने पड़ते हैं।

प्रकृति विघात हेतु कटुतिक्तकषायक्षारोष्ण पदार्थों का प्रयोग करना पड़ता है।

निदानोक्तभावों का अनुप सेवन की हुई सूची के अनुसार करना होता है।

कृमिरोग चिकित्सा के लिए बालक को थोड़ा स्नेहन और अल्प स्वेदन देकर संशोधन या विरेचन द्रव्य देते हैं फिर दूध—गुड या दही गुड तिल, मछली, मांस पीठी के पदार्थ, खीर, कुसुम्भ तैलादि में जो भावे वह भोजन के साथ देकर कृमियों को कोष्ठोन्मुख कर लेते हैं। फिर मूली सरसों लशुन करंज शिग्रु आदि तीक्ष्ण द्रव्यों से निर्मित ३ से ७ बार तक आस्थापन देते हैं फिर वमन विरेचन का विधान (यदि बालक में शक्ति हो तो) करते हैं। फिर उसे अपामार्ग क्वाथ से नहलाते हैं फिर निवात स्थान में प्रविष्ट करके यथाक्रम यवागू देकर बलवृद्धि करते हैं। फिर प्रकृति विघात हेतु कृमिघ्न औषधें—वनमूली (मूलकपर्णी), भृंगराज, अर्क, तुलसी, पर्णास, कुटज, सुवर्णक्षीरी सफेद सिरस, आदि का विविध रूपों में रोगी बालक को (पूए आदि बनाकर) देते हैं।

घोड़े की लीद के सूखे चूर्ण में विडंग स्वरस या भिलावा के क्वाथ की ८ या १० भावनायें देकर उसका भी प्रयोग करते हैं। इसे शहद के साथ बालक को चटा देते हैं।

इससे कृमि उदर में एकत्र हो जावें और उनकी प्रकृति का विघात होने लगता है। फिर भल्लातक के पाताल यन्त्र से प्राप्त तेल में विडङ्ग चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं जिससे विरेचन होकर कीड़े निकलते हैं। इसके लिए अन्य सौम्य विरेचन भी दे सकते हैं।

जिन द्रव्यों से कृमि रोग बनता है। कृमिरोग के दूर होने पर फिर उनसे परहेज करते रहने के लिए बालक के माता पिता को उचित निर्देश कर देने चाहिए।

(१०) गलगण्ड—

चरक ने गलगण्ड सिम्पिल या ट्यूबर्क्युलर लिम्फैडीनाइटिस)का उल्लेख चरक चिकित्सास्थान के १२वें अध्याय में किया है। सामान्य गलगण्ड जिसमें ट्यूबर्क्युलोसिस का उपसर्ग नहीं होता साध्य होता है पर यक्ष्माजन्य जिसमें पीनस,पार्श्वशूल,कास, ज्वर, वमन के उपद्रव या लक्षण होते हैं इसे असाध्य माना है। आधुनिक चिकित्सा और रुदन्ती के प्रयोग से वह भी अब साध्य है। इस रोग में सिरावेध, काय विरेचन, शिरोविरेचन, धूमपान, पुराने घी का पान चरक ने लिखा है।

(११) गलगण्ड या गौयटट—

इसका उल्लेख चरक ने किया है। इसकी व्यवस्था गण्डमाला जैसी ही बताई गई है।

(१२) ग्रहणी या मैलऐब्जार्पशन सिड्रोम—

अग्नि दुष्टि ग्रहणी रोग को जन्म देती है। यह अग्निदुष्टि बालकों से लेकर वृद्धों तक किसी भी आयु के व्यक्ति में हो सकती है। दुष्ट हुई अग्नि हलके से हलके भोजन को पचाने में भी अशक्त हो जाती है। जब भोजन नहीं पचता तो वह शुक्त रूप होकर या तो अम्लपित्त का रूप ले लेता है। या अजीर्ण बनता और अन्नविष तक पहुंच जाता है।

अग्नि के ४ रूप रहते हैं—समाग्नि जो स्वस्थावस्था प्रस्तुत करती है, विषमाग्नि जो वात के कोप से होती और अन्न का पाचन कभी मन्द कभी तेज करती है, तीक्ष्णाग्नि पित्तकोप से उत्पन्न होती उससे पीड़ित व्यक्ति जो कुछ भी खाता वह सब शीघ्र जल जाता पर भूख फिर भी बनी रहती और शरीर सूखता जाता है, मन्दाग्नि कफकोप का परिणाम है इसमें भूख नहीं लगती अन्न का विदाह होने लगता और अपक्व आम या पक्व रूप में उसे आगे बढ़ाती है। अन्न के पचाने का यह कार्य करने वाली अग्नि ग्रहणी में (अन्नपाचक महास्रोतीय कला में) रहती है ग्रहणी नाभि के ऊपर और अग्नि का अधिष्ठान मानी गई है -

> अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणीमता।
> नाभेरुपरि हि अग्निबलेन उपष्टब्धोपबृंहिता॥
> अपक्वं धारयत्यन्न पक्वं सृजति पार्श्वतः।
> दुर्बलाग्निबला दुष्टा त्वाममेव विमुञ्चति॥

इसी को डा. शैल्डन ने क्रानिक इण्डाइजेशन नाम दिया है। इस रोग का कारण उसने अनुपयुक्त खाद्यपदार्थों और न पचने वाले खाद्य पदार्थों को दिया है। चरक ने इनके अलावा भी अनेक कारणों को अग्निदुष्टि का कारण माना है—

> अभोजनाद जीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात्।
> असात्म्यगुरुशीतातिरूक्ष सन्दुष्टभोजनात्॥
> विरेक वमन स्नेह विभ्रमाद् व्याधिकर्षणात्।
> देशकालर्तु वैषम्याद्वेगानां च विधारणात्॥
> दुष्यत्यग्निः ;

बच्चों के भोजन लेने की ट्रेनिंग ठीक न होने से उन्हें यह रोग होता है। इस पर डा० शैल्डम ने बहुत जोर दिया है। वह भूख की विकृति या पर्वर्शन को भी महत्व देता है। विषमाग्नि का चित्रण इन शब्दों में उसने किया है—

The appetite is as a rule bad. Occasionally the opposite is the case and the appetite is enormous, but the food is so badly digested and poorly absorbed that is fails to mak the child Thrive. X X X severe perversion of the appetite in which such odd things as coal, paper earth and so on are relished X X X.

बालकों की ग्रहणी भी वातिक (वात से) पैत्तिक (पित्त से) तथा श्लैष्मिक (कफ) से होती है। वातिक में गृद्धिः सर्व रसानां पर्वर्शन आफ एपिटाइट को ही दूसरे शब्दों में प्रगट करता है। भोजन पचन काल में आध्मान और बार-बार दस्त-पुनः-पुनः सृजेद्वर्चः और दस्त का दर्द

के साथ थोड़ा, द्रवरूप, झागयुक्त आना प्रायः देखा जाता है। पैत्तिक में जलन के साथ दस्त आता है उसमें अम्लता अधिक होती है। श्लैष्मिक में आम बहुत बनती है और दस्त भारी होता है। दो-दो या तीन दोष मिलकर ग्रहणी के अनेक भेद हो जाते हैं।

ग्रहणी की बालकों की चिकित्सा साध्य मानी जाती है। इसकी चिकित्सा चरक संहिता की दृष्टि से निम्नांकित प्रकार से की जाती है—

१—आमलिङ्गान्वितं दृष्ट्वा सुखोष्णोनाम्बुनोद्धरेत्।

ग्रहणी में आम लक्षण होने पर बच्चे को गरम पानी पिलाना चाहिए।

२—शरीरानुगते सामे रसे लंघन पाचनम्।

बच्चे को थोड़ा आहार दें और पाचन एवं अग्निदीपक पदार्थ दिये जावें।

३—ज्ञात्वा तु परिपक्वामं—

दीपनीय युतं सर्पिः पाययेताल्पशो भिषक्।

आम परिपक्व होने पर पंचकोलभृत दीपनीय घृत उसे पिलाना चाहिए।

४—द्व्यहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विन्नाभक्तं निरूहयेत्।

२-३ दिन बाद स्नेहन देकर निरूहण वस्ति दें।

५—ततएरण्डतैलेन सर्पिषा वा-विरचयेत्।

फिर जब वायु शान्त हो जाय तब घी या अण्डी का तेल पिलाकर विरेचन करावे।

६—शुद्धं रूक्षाशयं बद्धवर्चसं चानुवासयेत्।

जब आशय शुद्ध और रूक्ष होकर दस्त बंधा हुआ आने लगे तब अनुवासन करावे।

७—लब्धन्नं प्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत् पुनः।

अन्त में हलका भोजन दे और घी चटावे। कौन सा घी दिया जावे इस पर चरक ने दशमूलाद्य घृत, त्र्यूषणाद्य घृत, पंचमूलाद्य घृत लिखे हैं। इनमें से प्रत्येक अग्निसन्दीपन और भुक्तपाचन है।

८—चरकोक्त चित्रकादि गुटिका बच्चे बड़े शौक से चूसते हैं जो आम को पचाती और अग्नि को दीप्त करती है। चीते की छाल, पिप्पलीमूल' स्वर्जिकाक्षार, यवक्षार, सेंधानमक, कालानमक, सांभरनमक, सामुद्रनमक, विड लवण, त्रिकटु, हींग, अजमोद और चव्य समभाग लेकर कूट पीस कपड़छान कर खट्टे अनार या बिजौरा नीबू के रस में ७ भावना देकर गोली बना प्रयोग करते हैं।

९—तक्र या मट्ठा ग्रहणी दोष में उत्तम पथ्य माना गया है इसलिए बच्चों को इसे खूब पिलाना चाहिए।

१०—पैत्तिक ग्रहणी रोग में चन्दनादि घृत, भूनिम्बादि चूर्ण या किरातादिचूर्ण, नागरादिचूर्ण दिये जाते हैं। चूर्ण कड़वे होने से बच्चों को रुचिकर नहीं होते।

११—चरकोक्तमधूकासव कफ और पित्तजन्य दोनों प्रकार के ग्रहणी रोगों में दे सकते हैं। दुरालभासव, मूलासव, पिण्डासव भी देते हैं। वातश्लैष्मिक ग्रहणी रोग में मध्वरिष्ट का बड़ा महत्व है—

मन्दं सन्दीपयत्यग्नि करोति विषमं समम्।
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शः श्वयथुज्वरान्ः॥
वातश्लेष्मामयांश्चान्यान् मध्वरिष्टो व्यपोहति॥

१२—क्षारयोग बच्चों को देना उचित नहीं है। केवल क्षारगुटिका गरम जल के साथ बहुत आवश्यक हो तो दे सकते हैं।

अन्त में इस विषय में चरक का यह वाक्य स्मरण रखना चाहिए—

हितं जीर्णे मितं चाश्नंश्चिरमारोग्यमश्नुते।
अवैषम्येण धातूनां अग्निवृद्धौ यतेत ना॥

(१३) ज्वर

ज्वर को आयुर्वेद वात, पित्त, कफ, वातपित्त, वातकफ, पित्तकफ, वातपित्तकफ और आगन्तु इन ८ से उत्पन्न हुआ मानता है। वातज्वर में तापक्रम की स्थिति विषम रहती है (ऊष्मणो वैषम्यम्) ज्वर जरणान्त, दिवसान्त, निशान्त और ग्रीष्मान्तकालीन होता है, सन्धियों में दर्द, सूखी हुलकार या सूखी खांसी साथ में रहती है, प्रलाप और प्रजागरण भी मिल सकते हैं; पित्तज्वर में तापक्रम तेज और गर्मी अधिक लगती है (अत्यर्थमूष्णस्तीव्रभावः) भोजन के पचनकाल में, मध्याह्न, अर्धरात्रि, या शरदृतु में ज्वर उत्पन्न होता है, नाक, मुख, कण्ठ, ओष्ठ तालु में पाक हो सकता है, ठण्डी चीजों की अधिक इच्छा होती है; कफज्वर में रोगी बालक गर्म पदार्थों की इच्छा करता

है, ज्वर हलका रहता है साथ में उलटी या मिचली आती रहती है। कास-श्वास-प्रतिश्याय मे से कोई न कोई अवश्य रहता है, नींद अधिक और शीतपिडकाए शरीर पर किसी किसी की देखी जाती हैं। यह ज्वर वसन्तऋतु में प्राय: होता है। द्वन्द्वज ज्वरो में यही लक्षण मिश्रित होते हैं। त्रिदोषज में तीनों के लक्षण मिलते हैं। अभिघात अभिषग-अभिचार-अभिशाप से आगन्तु ज्वर बनता है इसमे दोषों का प्रकोप बाद में बनता है ज्वर पहले आता है। अभिघातज में वायु और दुष्टशोणिताधिष्ठान मुख्य भाग लेते हैं। अभिषगज वातपित्तजन्य तथा अभिचाराभिशापज त्रिदोषज माने जाते हैं और उनकी चिकित्सा भी उसी दृष्टि से की जाती है।

शास्त्र तो सन्ताप (थर्मामीटर द्वारा बढ़े हुए तापक्रम) मात्र लक्षण को ज्वर मानता है—

ज्वरस्त्वेक एव सन्तापलक्षण:।

इस ज्वर के निम्न और आगन्तुज दो मोटे-मोटे भेद किए जाते हैं। निज में पूर्वोक्त वातज्वरादि और आगन्तुज में अभिघात ज्वरादि आते हैं। ज्वर के बराबर दारुण, सोपद्रव और दुश्चिकित्स्य व्याधि चरक ने दूसरी नहीं मानी है—

नान्ये व्याधयस्तथा दारुणा बहूपद्रवा दुश्चिकित्स्याश्च यथाऽयम् (ज्वर:)।

किसी बालक को ज्वर होने वाला है इसकी पहचान वैद्य को जाननी चाहिए चरकोक्त निम्न लक्षण इसमें सहायता करते हैं—

i. अनन्नाभिलाष:
ii. चक्षुषोराकुलत्वम्
iii. अश्रु आगमनम्
iv. निद्राधिक्यम्
v. अरति:
vi. जृम्भा
vii. विनाम:
viii. वेपथु:
ix. प्रलाप-जागरण-रोमहर्षा:
x. शब्दशीतवातातपसहत्वासहत्वम्
xi. प्रतीयता स्वकार्येपु
xii मधुरेभ्यश्च भक्षेभ्य. प्रद्वेष:
xiii. अम्ल लवण-कटुकप्रियता

प्रत्येक वैद्य को यह स्मरण रखना चाहिये कि ज्वर आमाशयसमुत्थ व्याधि है। इसलिए 'स्थानं जयेद्धि पूर्वं स्थानस्याविरोधेन' इस नियम के अनुसार लघ्वशन(लंघन) तथा अपतर्पण से ज्वर की चिकित्सा आरम्भ की जाती है—तत्र पूर्वरूपदर्शने ज्वरादौ वा हित लघ्वशनं अपतर्पणं वा ज्वरस्यामाशयसमुत्थत्वात्, इसी कारण वातिक ज्वर जहा लंघन सर्वथा निषिद्ध है के उपचार का आरम्भ भी लंघन से ही किया जाता है। राजवैद्य प्रभाशंकर भाई गढडावाला एक सिद्ध महापुरुष थे जिन्हें सारा गुजरात आज भी आर्द्र नेत्रों से याद करता है। उनकी जीवनी में उनके द्वारा लघन कराने के सम्बन्ध मे अहमदाबाद के सुप्रसिद्ध शुद्ध परिपाटीपोषक वैद्यराज श्री रसिकलाल भाई लिखते हैं—

"आयुर्वेदना सत्यो साचां छे पण ते सत्योनु दर्शन अने तेनु फल लोकोने एटला वाटे मलतु नथी के तेओ देहने निराम बनावता नथी, रोगनी साम अवस्थामां लंघन ज. अने ५०—५५ सुधी तेमणे लघनो कराव्यां छे. पोते पण ४०—४० लंघनो कर्या छे. लधननु दर्शन तेमणे हजारो रोगियोने तपासी कर्यु छे रोगीने खाटले बेसी तेनु दर्शन करी ताबेलं एवं ते शास्त्रसम्मत सत्य छे। X X X X X X। हु दर बरसे नवरात्रिया १५ लघन करतो हतो अने दर बरसे एक एक लघन वधारतो जातो हतो। २०१२ ना श्रावणमां मारे छठ्ठुं लघन हतु। तेमने खबर पड़ी के तरदज तेमणे कनुभाई, शान्तिभाई तथा सोमाभाई ने मने पारणु करावबा मोकल्या अने लघन तोडावी नाखो। कारण के निराममां लघन न होय।" आज उनके शिष्य बिना यह देखे कि किसकी कितनी आयु है साम-निराम का ध्यान देकर लंघन कराते ही हैं।

ज्वर के अनेक भेद चरक संहिता मे वर्णित हैं जैसे शारीरज्वर, मानसज्वर, सौम्यज्वर, आग्नेयज्वर, अन्त-

वेगज्वर, वहिर्वेगज्वर, प्राकृतज्वर, वैकृतज्वर, साध्यज्वर, असाध्यज्वर, सन्ततसततअन्ये, द्व्याहिकतृतीयक चतुर्थकज्वर, रसजज्वर, मांसज ज्वर, मेदोगज्वर, अस्थिज मज्जाज, शुक्रजज्वर तथा पूर्वोक्त अष्टविधज्वर। सभी ज्वरवालकों को भी हो सकते हैं इसे न भूलना चाहिए। इन सबका विस्तृत ज्ञान चरक संहिता के चिकित्सा स्थान का तीसरा अध्याय देख कर करना चाहिए।

ज्वर की चिकित्सा में तरुण ज्वर तथा जीर्णज्वर का ध्यान रखना पड़ता है—

१. लंघन स्वेदन कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः।
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे॥

२. जीर्णज्वरेषु तु सर्वेषु एव सर्पिषः पानं प्रशस्यते यथा-स्वौषधसिद्धस्य। तथा—

दौर्बल्याद्देहधातूनां ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते।
बल्यैः सबृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत्॥

अर्थात् लंघन, स्वेदन, कालयापन, यवागू, तिक्तरस-प्रधान औषधों और पाचन द्रव्यों से तरुणज्वर तथा घृत पान, वल बृंहण औषधों तथा आहारों के प्रयोग से जीर्ण ज्वर दूर किया जाता है।

(१४) छर्दि या वमन—

आयुर्वेद में वातज, पित्तज, सन्निपातज और द्विष्टार्थ संयोगज इस प्रकार ५ प्रकार की वमन मानी गई है। वातिक वमन में वेग तीव्र थोड़ा कषैला पदार्थ निकलता है सफेन उद्गार बाहुल्ययुक्त वमन होती है। पैत्तिक वमन में ज्वर दाह पीले तिक्त पित्त का निकलना आदि देखा जाता है। श्लैष्मिक में बहुत कम कष्ट के साथ स्निग्ध घन मधुर रस प्रधान बहुत सी वमन होती है। त्रिदोषज वमन लवणाम्लनीलसान्द्र उष्णरक्तयुक्त देखी जाती है। द्विष्ट वमन में अरुचि घृणा और वीभत्सकारण वमन पैदा करते हैं। बच्चों में पांचवां प्रकार थोड़ी आयु तक विशेष महत्व नहीं रखता।

वातिक में स्निग्ध, हृद्य भोजन, मांसरस, यूष, दही और अनार, पैत्तिक में द्राक्षा विदारी गन्ने का रस, मधु शर्करा युक्त लाजमण्ड, श्लैष्मिक में वामक द्रव्यों द्वारा आमाशय का शोधन कराना चाहिए।

क्योंकि वमन आमाशय समुत्थ व्याधि है इसलिए इसमें भी ज्वर की तरह आरम्भ में लंघन कराना चाहिए पर वातिक को छोड़ शेष में लंघन कराना उचित कहा गया है—

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्योमता लंघनमेव तस्मात्।
प्राक्कारयेन्मरुतजां विमुच्य संशोधनं वा कफपित्तहारि॥

यत्न यह होना चाहिये कि जो दोष ऊर्ध्व प्रवृत्तिकारी होकर वमन करा रहे हैं उन्हें अधोप्रवृत्तिकारी बनाया जावे इसलिए हरीतकी चूर्ण को मधु के साथ चटाना, या दूध में कुछ बूंदें मद्य का डाल क्षोभ दूर करना चाहिए। लघु शुष्क भोज्य पदार्थ और विविध पान दे सकते हैं। वातिक में धनियां सोंठ मिला दही चटाना पैत्तिक वमन में आम जामुन के पत्तों का क्वाथ मधु डालकर पिलावें या कफज में कालीमिर्च शहद मिलाकर चटावें। घृणा या मनोऽभिघातजन्य वमन में मनोऽनुकूल रस गन्ध वातावरण का सृजन करना पड़ता है।

(१५) तृष्णा या पिपासाधिक्य—

कभी-कभी बालक को तृष्णा रोग हो जाता है और वह बार-बार पानी पीते चले जाने पर भी अतृप्त रहता है। इस रोग में पित्तानिलौ प्रवृद्धौ सौम्यान्धातूंश्च शोषयतः—पित्त और वायु बढ़ कर शरीर से जलीयांश को शोषण कर डिहाइड्रेशन पैदा कर देते हैं। इसमें पहले मुख सूखने लगता है फिर अम्बुकामिता बढ़ने लगती है और अन्त में मृत्यु तक हो जाती है। वातिक तृष्णा में निद्रा-नाश, पैत्तिक में दाह, ज्वर शरीर की पीतता के लक्षण मिलते हैं। आमजा तृष्णा में जो आमपित्तजन्य होता है अरुचि, आध्मान और कफ प्रसेक मिलता है। रसक्षयजन्य तृष्णा में हृदय गला तालु सूख जाता और बालक का स्वर दीन हो जाता है। औपसर्गिक तृष्णा ज्वर प्रमेह क्षय शोष श्वासादि से उपसृष्ट व्यक्ति में पाई जाती है जो बहुत कष्टदायिनी होती है। मद्यपों को मद्यज तृष्णा होती है। शीतोदक से स्नान बच्चे को कराने से उसके शरीर के अन्दर गई हुई उष्मा भी तृष्णा को जन्म देती है। इसकी चिकित्सा का आरम्भ करते हुए चरक ने बहुत महत्वपूर्ण सावधानी की ओर ध्यान दिलाया है।

अपां क्षयाद् हि तृष्णा संशोष्य नरं प्रणाशयेदाशु ।
तस्मादैन्द्रं तोयं समधु पिबेत्तद्गुणं वाऽन्यत् ॥

शरीर में जल का क्षय होने से उत्पन्न तृष्णा मनुष्य का संशोषण या डिहाइड्रेशन करके शीघ्र मार देती है । इस लिए ऐन्द्रजल (डिस्टिल्ड वाटर या मेघ जल) मधु मिलाकर पिलाना चाहिए या उसी प्रकार का अन्य पेय देना चाहिए । आजकल ग्लूकोज सैलाइन का सिरावेध द्वारा ड्रिप मैथड का प्रयोग उक्त चरकोक्त विचार धारा का ही परिष्कृत साधन है । वातघ्न अन्नपान, मृदु, लघु, शीत पदार्थ वातिक तृष्णा में देते हैं । पैत्तिक में जल में मिट्टी का ढेला गरम करके बुझाकर मधु मिलाकर पिलाना चाहिए । कफज में त्रिकटु या वचासिद्ध जल पिलाते हैं । खट्टे अनार का रस पिलाना या हल्दी और मिश्री मिला कर शहद से चटाना चाहिए । क्षय या अन्य रोग जनित तृष्णा में तत्तद्रोगहर चिकित्सा करनी चाहिए । ठण्डे पानी में स्नान जनित तृष्णा में गुड मिला जल पिलाते हैं । अतिरूक्ष दुर्बल व्यक्तियों को बकरी का दूध पिलाने से शीतल मधुर मांसरस घी में छोंककर देना चाहिए । सन्निपातज तृष्णा में उबाल कर ठण्डा किया हुआ पानी तथा कफज तृष्णा में गरम पानी पिलाना हितकर कहा गया है । पाण्डु, प्लीहा, उदर रोग, प्रमेह, अतीसार, अग्निमान्द्य में जल कम पिलाना अच्छा रहता है । जल न देने पर मृत्यु हो सकती है इसलिए धनिये से सिद्ध जल शर्करा और मधु मिलाकर देना चाहिए ।

(१६) मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग—

जब बालक चुपचाप मिट्टी खाते रहते हैं बलवर्ण नाशक पाण्डुरोग (अनीमिया) हो जाता है और उसके कोष्ठ में कृमि पड़ जाते हैं—

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः ।
कषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥
कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं विरूक्षयेत् ।
पूरयत्यविपक्वैव स्रोतांसि निरुणद्धि च ॥
इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजो वीर्योजसी तथा ।
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥
शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूः शूनपान्नाभिमेहनः ।
क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृक् कफान्वितम् ॥

इस रोग में कृमिरोग नाशक, कामलाहर चिकित्सा करनी चाहिए । इस दृष्टि से नवायसचूर्ण का प्रयोग तथा पञ्चारिष्ट का भोजन के पश्चात् पान अति गुणकारी सिद्ध होता है ।

(१७) मधुमेह तथा इक्षुमेह

यद्यपि मधुमेह एक ऐसा रोग है जो ४० वर्ष की आयु या उसके पश्चात् देखा जाता है पर ६ से १० वर्ष के बालकों में भी इसे नोटिस किया गया है । लारेन्स तथा मैक्केन्स नामक विद्वानों ने एक १८ दिन के शिशु में गम्भीर मधुमेह और साथ में कोथ या गैंग्रीन का भी उल्लेख किया है । उन्होंने १ वर्ष से नीचे के २६ शिशुओं में भी मधुमेह को रिकार्ड किया है । अतः मधुमेह किसी आयु में मिल सकता है । इससे स्त्री और पुरुष दोनों एक से ही प्रभावित होते हैं । जिन माता-पिता को मधुमेह हो उनके बालकों में मधुमेह अधिक देखा जाता है ।

प्यास और बहुमूत्रता ये दो लक्षण इस रोग में बहुधा पाये जाते हैं । शय्यामूत्रता ऐसे बच्चों में एक विशेष लक्षण के रूप में देखी जाती है । बल्कि इस रोग का पहला लक्षण यही होता है ।

जो बच्चे अधिक मिठाइयां सेवन करते हैं उनके पेशाब में चींटियां लग जाती हैं जो इक्षुमेह का द्योतक लक्षण है । इक्षुमेह बच्चों में अस्थायी रूप में रहता है ।

मधुमेह का विचार करते समय इक्षुमेह का भी ध्यान रखना होता है क्योंकि इक्षुमेह को जो साध्य विकार है मधुमेह मानकर जो कष्टसाध्य या असाध्य रोग है चिकित्सा करना कदापि उचित नहीं होता । मधुमेह का लक्षण बताते हुए चरक लिखता है—

कषायमधुरं पाण्डु रूक्षं मेहति यो नरः ।
वातकोपादसाध्यं तं प्रतीयान्मधुमेहिनम् ॥

जबकि इक्षुमेह का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

अत्यर्थमधुरं शीतं ईषत्पिच्छिलमाविलम् ।
काण्डेक्षुरससंकाशं श्लेष्मकोपात्प्रमेहति ॥

इक्षुमेह में दारुहल्दी, देवदारु और मोथे का क्वाथ मधु मिलाकर देते या आमले के फल के रस को हल्दी डाल कर पिलाते हैं ।

इक्षुमेह कफज प्रमेह होने से साध्य है। मधुमेह वातज होने से साध्य नहीं है। खासकर यदि मधुमेह से पीड़ित माता पिता से बालक को इक्षुमेह या मधुमेह हुआ हो तो वह कुलज होने से साध्य नहीं है—

जातः प्रमेही मधुमेहि नो वा
न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्।
ये चापि केचित् कुलजा विकाराः
भवन्ति तांश्च प्रदन्त्यसाध्यान् ॥

त्रिफला, दारुहल्दी, इन्द्रायण, मोथा के क्वाथ में हल्दी का कल्क डाल पिलाने से तथा आधुनिक मधुमेह हर औषधों के प्रयोग से मधुमेह में सुधार होता दिखाई दे रहा है केवल मात्र आयुर्वेदीय या आधुनिक दवा उतना लाभ नहीं देती जितनी कि मिश्र चिकित्सा। जिस मधुमेह में मेदोधातु दुष्ट नहीं होती वह भी इस मिश्र चिकित्सा से सिद्ध हो जाता है। मेदोदुष्टि होने पर याप्य रहता है।

जिन कारणों से प्रमेह होते हैं उनका सेवन न कराना प्रमेह या मधुमेह से रक्षा का श्रेष्ठतम उपाय है—

यैर्हेतुभिर्ये प्रभवन्ति मेहा—
स्तेषु प्रमेहेषु न ते निषेव्याः।
हेतोरसेवा विहिता यथैव
जातस्य रोगस्य भवेच्चिकित्सा ॥

(१८) मसूरिका

चरक चिकित्सा स्थान के १२ वें अध्याय में निम्नांकित श्लोक आया है :—

याः सर्वगात्रेषु मसूरमात्रा
मसूरिका पित्तकफात् प्रदिष्टाः।
वीसर्पशान्त्यै विहिता क्रिया या
तां तेषु कुष्ठे च हितं विदध्यात् ॥

इसके अनुसार पित्त और कफ इन दो दोषों के प्रकोपक प्रभाव से सम्पूर्ण शरीर पर जो मसूर जैसी पिडकाएं उठ आती हैं उन्हें मसूरिका कहते हैं। इनकी चिकित्सा के लिए वही क्रियाएं करनी चाहिए जो चरकसंहिता में विसर्प शान्त करने के लिए प्रयुक्त की जाती हैं तथा जो कुष्ठ के लिए हितकर उपाय बतलाये गये हैं वे सभी मसूरिका तथा विस्फोटक, स्फोट, कक्षा, रोमान्तिका आदि रोगों में भी बरतने चाहिए। इससे अधिक विचार चरक में इस रोग का नहीं किया गया। न इसमें स्पष्ट रूप से यही कहा गया है कि यह एक बालरोग है।

(१९) रोहिणी

त्रिशोथीय नामक अठारहवें अध्याय मे सूत्रस्थान में चरक ने वात-पित्त-कफ के एक साथ कोप करने से जिह्वा-मूल में विदाही और उठावदार तीव्र वेदनायुक्त जिस शोथ का वर्णन किया है उसे रोहिणी नाम दिया गया है।* रोहिणी में शूल होता है। इससे पीडित बालक यदि उसकी ठीक-ठीक चिकित्सा न की गई तो कुल ३ दिन तक ही जीता है। यदि किसी स्पेशलिस्ट द्वारा चिकित्सा की गई तो वह जल्दी ठीक हो जाता है—

कुशलेन तु अनुक्रान्तः क्षिप्रं सम्पद्यते सुखी ॥

कुशल व्यक्ति किस प्रकार चिकित्सा करे इस पर अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है। यह विषय शल्य एवं कौमारभृत्य का होने से चरक ने केवल इङ्गित मात्र कर दिया है।

(२०) रक्तपित्त

रक्तपित्त रक्त के दूषित होने से बनने वाला रोग है। यह रक्त किन कारणो से दूषित होता है इनमें बालकों की दृष्टि से निम्नांकित कारण महत्वपूर्ण हो सकते हैं :—

i. भोजन के बाद पीठी के पदार्थो का अतिशय सेवन;

ii. उष्णाभितप्तो वाऽतिमात्रमतिवेल वाऽऽमं पयः पिबति—अथवा अधिक गर्म हो जाने पर बहुत अधिक या बहुत बार कच्चा दूध जब बालक पीता है;

iii. सिर्के के साथ बहुत गरम दूध पीना।

इन सबसे पित्त अपने प्रमाण से अधिक बढ़कर यकृत्-प्लीहादि से निकलने वाली रक्तवाहिनियों तथा उनके स्रोतसों के मुखों का अवरुद्ध करके रक्त को दूषित कर

---

*वातपित्तकफा यस्य युगपत्कुपितास्त्रयः।
जिह्वामूलेऽवतिष्ठन्ते विदहन्तः समुच्छ्रिताः ॥
जनयन्ति भृशं शोथं वेदनाश्च पृथग्विधाः।
तं शीघ्रकारिणं रोगं रोहिणीति विनिर्दिशेत् ॥३५॥
—च. सूत्र. स्थान. अ. १८

देता है। रक्त के साथ सम्पर्क आने और रक्त के दूषित होने से पित्त रक्तपित्त कहलाने लगता है। ऊपर (मुख नासादि) तथा नीचे (गुद मूत्रमार्गादि) के मार्गों से रक्त बहने लगता है। ऊर्ध्व मार्ग वाला साध्य और अधोमार्गीय याप्य माना जाता है। रक्तपित्त सदैव एक आशुकारी रोग होने से चिन्तापूर्वक इसकी चिकित्सा की जानी चाहिए।

रक्तपित्त में भी अतिसार की तरह आदि में उसका स्तम्भन उचित नहीं माना जाता।

ऊर्ध्वग रक्तपित्त को विरेचन द्रव्यों-त्रिवृत्, हरीतकी, अमलतास का गूदा, आमलों से चिकित्सा करनी चाहिए। अधोग मे वमन कराते हैं जो बालकों के लिए निषिद्ध है। वमन या विरेचन दोनों को बालकों को देना चरक ने निषिद्ध बतलाया है तथा उनको संशमनी चिकित्सा का प्रयोग उचित बतलाया है :—

गर्भिणीं स्थविरं "बालं" रूक्षाल्पप्रमिताशनम्।
अवम्यमविरेच्यं वा यं पश्येद्रक्तपित्तिनम्॥
शोषेण सानुबन्धं वा तस्य संशमनी क्रिया।
शस्यते रक्तपित्तस्य परं साऽथ प्रवक्ष्यते॥

—पद्माख, कमलकेसर, दूब, बथुआ, नीलोफर नागकेसर और लोध्र को पीसकर शहद के साथ चटाने से रक्तपित्त दूर हो जाता है। शहद और घी के साथ घोड़े की लीद का रस या गाय के गोबर का रस चटाने से भी रक्तपित्त दूर होता है।

खस, पीला चन्दन लोधपठानी, पद्माख, प्रियंगु, कायफल, शंखभस्म, गैरिक अलग-अलग लें और प्रत्येक के साथ सफेद चन्दन मिला मिश्री के साथ चाटकर तण्डुलोदक का पान करावें तो रक्तपित्त दूर होता है। ये ८ प्रयोग हैं कोई सा भी किया जा सकता है। इनसे तमक-श्वास, तृषा और दाह भी शान्त होते हैं।

अधिक रक्तपित्त होने पर—

वैडूर्यमुक्तामणि गैरिकाणां
मृच्छङ्खहेमामलकोदकानाम्।
मधूदकस्येक्षुरसस्य चैव
पानाच्छमं गच्छति रक्तपित्तम्॥

उपर्युक्त श्लोक के अनुसार वैडूर्य-मुक्ता अन्य मणियां, गेरू, शंखभस्म, स्वर्ण, आमलों का रस, शहदयुक्त जल, गन्ने का रस पिलाना होता है। इसी श्लोक के प्रकाश में ग्लूकोज, कैल्शियम, विटामिन सी का प्रयोग सिराद्वारा करना भी आयुर्वेद सम्मत ही होगा। बालकों के रक्तपित्त में सर्पिगुड योग जो क्षतक्षीण में कहे गये हैं दिये जा सकते हैं।

बच्चों की नाक से रक्त अक्सर गिरा करता है उसे थोड़ा बहने देकर फिर निम्नांकित में से कोई भी द्रव नाक में टपकाने से लाभ होता है :—

i. नीलोफर-गेरू-शंख-चन्दन और मिश्री तथा जल।

ii. आम की गुठली का रस, मजीठ, धाय, मोचरस तथा लोध पानी में डाल,

iii. अंगूर का रस,

iv. गन्ने का रस,

v. दूध,

vi. दूब का रस,

vii. जवासे की जड़ का रस,

viii. प्याज का रस,

ix. अनार के फूल का रस,

x. चिरोंजी का तेल—मुलहठी और दूध इनसे सिद्ध भैंस या गाय का घी।

रक्तपित्त से पीड़ित बालक को धारागृह या भूमिगृह या शीतलवन या एयरकंडीशण्ड स्थानों में रखना चाहिए। वैडूर्य, मुक्ता तथा मणियों की माला पहनानी चाहिए उसे कमलोत्पलों के फूलों की शैय्या पर सुलाना चाहिए।

(२१) राजयक्ष्मा या शोष

यह रोग जितना बड़ों को देखा जाता है उससे कम बालकों मे नहीं होता। उपसर्ग और विषमाशन द्वारा बच्चों में राजयक्ष्मा या शोष का प्रादुर्भाव होता है। प्रतिश्याय, अनन्नाभिलाप, हृल्लास, मुख-पाद शोथ आदि पूर्वरूपों के साथ रोग प्रारम्भ होता है फिर कास श्वास, स्वरभेद, कफ वमन, रक्तष्ठीवन, पार्श्वशूल, ज्वर, अतीसार, अरोचक के लक्षण शुरू होते हैं।

जिस बालक का मांस अधिक सूख गया हो और बल बहुत घट गया हो, रोग के लक्षण अधिक हों तथा अरिष्ट लक्षण भी उपस्थित हों तो वह न व्याधि बल को और न औषध बल को ही सह पाने से अचिकित्स्य हो जाता है।

यक्ष्मा को त्रिदोषज माना गया है। चिकित्सा को आरम्भ करने से पूर्व चरक के निम्न वाक्य का विशेष ध्यान रखना होगा—

सर्वस्त्रिदोषजो यक्ष्मा दोषाणां च बलाबलम्।
परीक्ष्यावास्थिकं वैद्यः शोषिणं समुपाचरेत्॥

बालक को पथ्य में जौ, गेहूं, शालि; लावा, तीतर, मुर्गा, बकरी के मांस रस; पंचमूल, धान्यशुण्ठी, भूम्यामलकी, चतुष्पर्णी सिद्ध कोई भी जल ले सकते हैं। दशमूलश्रृत दूध; रास्नाघृत, बलाघृत, खजूर, मुनक्का, मिश्री, शहद; पिप्पली और शहद; खजूर, पिप्पली, मुनक्का या किशमिश, हरीतकी, काकड़ासिंगी, दुरालभा (धमासा) का चूर्ण घी, शहद से चटाते हैं। चना, मूंग, मोंठ की दालें खिलाते हैं। वासाघृत भी अच्छा काम करता है। इस रोग में चरक ने मांस सेवन पर बहुत बल दिया है—

मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम्।
तीक्ष्णोष्णलाघवाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम्॥

दूध का भी बहुत महत्व है बशर्ते कि वह मधुर द्रव्यों, दशमूल कषाय और मांसरस से सिद्ध हो—

सिद्धं मधुरकैं द्रव्यैर्दशमूलकषायकैः।
क्षीरमांसरसोपेतैर्घृतं शोषहरं परम्॥

शोष से पीड़ित बालकों को घी, दूध, जलयुक्त टब में तेल चुपड़ अवगाहन कराना चरक संमत है—

स्नेहक्षीराम्बुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत्।
स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं बलपुष्ट्यर्थमेव च॥

उड़द का आटा, तिल, किण्व (यीस्ट) और जौ के आटे को शहद और दही में सान शरीर पर उबटन करना भी तुष्टि, वर्ण, बलप्रद कहा गया है।

यक्ष्मा की उपसर्गनाशक चिकित्सा आधुनिक औषधों से करना भी आवश्यक है।

(२२) रोमान्तिका

चरक ने—

क्षुद्रप्रमाणाः पिडका शरीरे
सर्वाङ्गगाः सज्वरदाहतृष्णाः।
कण्डूयुताः सारुचिसप्रसेकाः
रोमान्तिकाः पित्तकफात् प्रदिष्टाः॥

के द्वारा छोटी छोटी सब शरीर पर उत्पन्न होने वाली पित्तकफज खुजलीयुक्त पिडकाओं को रोमान्तिका माना है जिनके साथ ज्वर दाह तृषा अरुचि और प्रसेक (मुख से लार तथा नाक से पानी बहना) भी हों।

आज हम जिसे खसरा कहते हैं उसमें ये सभी लक्षण होते हैं। चिकित्सा मसूरिका की भांति विसर्प और कुष्ठ विकारों के अनुसार की जाती है। विसर्प की चरकीय चिकित्सा में विरेचन एवं रक्तमोक्षण (बालकों में निषिद्ध) का अधिक महत्व है।

(२३) बाल-वातव्याधियां

बालकों को वातव्याधियां भी कम नहीं होती हैं अतः उनका यथेष्ट ध्यान रखना भी वैद्य का परम कर्त्तव्य है। विशेषकर पोलियो (पक्षवध) का रोग तो वैसे भी अति कष्टदायक और गम्भीर परिणामकारी होने से विशेष चिन्त्य है। वायु की महत्ता बतलाते हुए चरक लिखते हैं—

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्चकीर्तितः॥

जिस व्यक्ति की वायु प्रकृत रूप में अपने स्थान पर स्थित और अव्याहत गति वाली होती है वह १०० वर्ष तक जीवित रहता है। इसलिए बचपन से ही बालक में वातधातु प्रकृतिस्थ और स्वस्थानस्थ एवं अव्याहतगति वाली रखने का प्रयत्न करना चाहिए। वायु को अपने निश्चित मार्ग पर स्वच्छन्दतापूर्वक चलते रहना ही उसका अव्याहतगति वाला होना है।

बालकों में निम्नांकित कारणों से वायु का प्रकोप सम्भव हो सकता है इसलिए उनसे बालकों को बचाना चाहिए साथ ही वातरोग से पीड़ित बालकों को भी इनसे बचाना चाहिए ताकि और अधिक वात का प्रकोप न हो—

१. अन्न जो रूक्ष हो, शीतल हो, थोड़ी मात्रा में हो या लघु गुण वाला हो;

२. अधिक समय तक बच्चे को जगाये रहना या वे कारण जिनसे बच्चे रात में अधिक देर तक जगाते रहते हों;

३. विषम उपचार;

४. वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों में से किसी का भी अधिक मात्रा में बाहर निकालना;

५. रक्तस्राव;

६. लंघन;

७. अधिक व्यायाम-परिश्रम या विचेष्टा कराना;

८. धातुक्षयकारक कारण;

९. रोग के कारण हुई दुर्बलता,

१०. ऐसे बिस्तर पर बच्चे को सुलाना जो कष्ट-दायक हो,

११. बच्चे को डर दिखाना या डराना,

१२. बालक द्वारा वेगरोध करना,

१३. आमदोष से,

१४. चोट लगने से या मर्म प्रदेश पर आघात लगने से।

१५. अधिक शरीर हिलाने वाले वाहनों में यात्रा करना अथवा अच्छे वाहन में भी ऊबड़-खाबड़ मार्गों से चलना।

किसी बालक को कोई वातव्याधि हो रही है इसका आभास निम्नांकित लक्षणों में से किसी एक या अनेक की उपस्थिति से होता है।

i. जोड़ों का कड़ा होना (पर्वणां संकोचः)

ii. हड्डियों को छूने से उनमें दर्द होना (अस्थ्नां भेदः)

iii. प्रलाप

iv. अंगों में खञ्जता, पाङ्गुल्य और कुब्जता होना

v. अंगों का सूखना (अङ्गानां शोषः)

vi. अनिद्रता

vii. शरीर के किसी भाग का कम्प

viii. गात्रसुप्तता

ix. सिर-नासिका-नेत्र-जत्रु-ग्रीवा का हुण्डन नीचे की ओर या अन्दर की ओर झुक जाना या उनमे स्तम्भन या जकड़ाहट होना

x. आक्षेप (दौरे या कन्वल्जन आना)

xi. स्थानानुसार अन्य लक्षण होना जैसे पेशियों के प्रसारणाकुंचन में वेदना होना, सन्धियों में शूल एवं वात पूर्णहतिवत् स्पर्शाभास, विविध इन्द्रियों की कार्यकारीशक्ति का अल्प या पूर्ण ह्रास होना, मल मूत्र का निग्रह, शरीर के विविध अङ्गों में वेदना या शूल होना आदि।

कभी-कभी वायु के विशेष कोप से अर्दांग; एकाङ्ग सर्वाङ्ग में घात और अर्दित (फेशियल पैरेलाइसिस) हो जाता है अन्तरायाम, बहिरायाम, आक्षेपक, वाक्स्तम्भ, खल्ली, हनुग्रह, आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं उनकी चिकित्सा काय चिकित्सा के सिद्धान्तों के आधार वायु के आवरणों का भी विचार कर लेना चाहिए फिर आवृत अनावृत वायु के रोग के आधार पर चिकित्सा की जानी चाहिए। निरुस्तम्भ या आवरण रहित वातव्याधि की चिकित्सा स्नेहन द्वारा आरम्भ की जाती है। स्नेहन के बाद बालक को मृदु स्वेद दे सकते हैं। इससे शरीर की जड़ता और परुषता दूर होकर बालक का शरीर अपनी पूर्व कोमलावस्था को प्राप्त हो जाता है। शुष्क हुई धातुएं पुष्ट होने लगती हैं हर्ष। तोद, रुजा, आयाम, शोथ, स्तम्भ, ग्रहादि शीघ्र शान्त हो जाते हैं—बलमग्निबल पुष्टिं प्राणाश्चाप्यभिवर्धयेत्। इस सबके लिए बार-बार स्नेहन स्वेदन करना होता है।

यदि उपयुक्त पूर्वकर्मों के करने से भी कुछ वात रोग अवशिष्ट रह जावे तो एरण्ड तैल पिलाकर विशोधन करें जो दुर्बल हों उन्हें निरूह वस्ति द्वारा शोधन कराना चाहिए। तत्पश्चात् दीपन पाचन द्रव्यों से युक्त आहार देने चाहिए। इससे अग्निदीप्त हो जाती है फिर स्नेहनस्वेदन पुनः भी कर सकते हैं। फिर मधुर, अम्ल, लवण रस युक्त स्निग्ध आहार निरन्तर देते रहना, नस्यकर्म, धूम्रपान आदि कराना चाहिए। यह साधारण उपचार है।

विशेष उपचार निम्न स्थितियों में सामने दर्शित विधि से किया जाता है—

कोष्ठगतवात—क्षार का सेवन बड़ों में पर बच्चो में दीपन पाचन अम्लरस युक्त पदार्थ देना।

सर्वाङ्गवात—स्नेहाभ्यंग, वस्ति, अनुवासन।

त्वग्गतवात—स्वेदन, अभ्यंग, अवगाह, हृद्य आहार,

रक्तगतवात—शीतलेप, रक्तमोक्षण, विरेचन।

मांसमेदःस्थवात—विरेचन, निरूहण, शमन।

अस्थिमज्जागत वात—स्नेहपान और स्नेहाभ्यंग।

शोषजन्य वात—मिश्री गम्भारीफल, मुलहठी का क्षीर पाक।

हृदयगतवात—शालपर्णीश्रृत दुग्ध ।

नाभिगतवात—मत्स्य और वेलगिरी कच्ची के साथ सिद्ध कर दें ।

शरीर में वेष्टनवत् पीड़ा-उपनाहन (पुल्टिस बांधना)

अंगसंकोच—उड़द-सेंधानमक से सिद्ध तैल मालिश

बाहुशीर्षगत वात—नस्य तथा भोजनोत्तर स्नेहपान

आधोनाभिगतवात में-वस्तिकर्म तथा भोजन के पूर्व घृतपान ।

अर्दित—नस्य, सिर पर तैलाभ्यंग, तर्पण ।

पक्षाघात—नाड़ीस्वेद, उपनाह, स्नेहन, स्वेदन, विरेचन ।

गृध्रसी—रक्तमोक्षण, वस्तिकर्म,

खल्ली—सुहाती गरम पुल्टिस

व्यात्तानन—शुद्ध स्विन्न अंगूठों से हनु को दबाना इसी प्रकार अन्य रोगों में भी उचित उपचार करना चाहिए।

वात रोगों में बृंहण प्रशस्त माना जाता है–'बृंहणं यच्च तत् सर्वप्रशस्तं वातरोगिणम्, इस दृष्टि से आधुनिक विज्ञान के एनावोलिक इंजैक्शन और गोलियां भी वात-नाशक माने जाने चाहिए ।

वात रोगों में स्नेहन के लिए चरक संहिता का वला तैल, अमृतादितैल, रास्नातैल, लशुनसिद्ध तैल आदि का उपयोग उत्तम माना गया है ।

नास्ति तैलात् पर किञ्चदौपवं मारुतापहम् ।

जिन वच्चों को वात नाशक किसी तैल की प्रतिदिन मालिश करायी जाती है उन्हें वातरोग पोलियो आदि नहीं होते ।

२४. श्वास—

वच्चों को श्वास का विकार उपद्रव के रूप में या किसी रोग के लक्षण के रूप में हुआ करता है मूल दमा या तमकश्वास कम ही मिलता है। सर्दी या रोग के कारण श्वास तेज होना एक वर्ग के बालकों में पाया जाता है। दूसरे वर्ग में शुद्ध दमा का दौरा होता है। शुद्ध दमा वाले बालक को रात में अकस्मात् दौरा हो जाता है। श्वास लक्षण रूप होने का कारण खांसी सर्दी आदि होते हैं। जिनके माता पिता को अलर्जी या दमे का रोग होता है उन्ही बालकों में शुद्ध श्वास या दमा (asthma) प्रायः देखा जाता है। उसके कण्ठ में उद्‌ध्वंमन में (स्टैथस्कोप से सूनने पर एँठाइयां मिलती हैं)। बोलना कठिन, नींद आती नहीं। लेटने से कष्ट पर, बैठने से आराम तथा गरम पदार्थों के प्रयोग से सुख मिलता है—

आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥

वर्षा के आरम्भ में आकाश पर वादल छाने से ठण्डी हवा लगने से और कफवर्द्धक वस्तुओं के सेवन से रोग बढ़ता है।

बालकों के श्वास में स्नेहन स्वेदन की अपेक्षा वात नाशक शमन द्रव्यों स्नेहयुक्त यूपों और मांस रसों से तर्पण पर चरक ने जोर दिया है—

वातिकान् दुर्वलान् वालान् वृद्धांश्चानिलसूदनैः ।
तर्पयेदेव शमनैः स्नेहयूपरसादिभिः ॥

कटेरी, वेलगिरी, काकड़ासिंगी, दुरालभा, (धमास) गोखरू, गिलोय, कुलथी, और चित्रक समभाग कूट कुल २ तोला ले २० तोले पानी में औटें ५ तोले बचने पर घी में पीपल छोटी के चूर्ण का छौंक देकर उससे बघार कर सोंठ और नमक डाल पिलावें।

मूंग की दाल में नींबू,नीम परवल के पत्ते डाल पकालें फिर त्रिकटु, और यवक्षार डाल कर यूप बना खिलावें।

हींग, कालानमक, कालाजीरा, विडलवण, पुष्करमूल चित्रक, और काकडासिंगी, डालकर यवागू सिद्ध कर दें।

दशमूल क्वाथ, मदिरा दोनो श्वास में दे सकते हैं।

चरक का मुक्तादि चूर्ण घृत और शहद के साथ वालकों को चटाने से हिक्का, श्वास, कास शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

हमने इस प्रकार चरकसंहिता मे वालरोगों की दृष्टि से छाटकर कुछ सामग्री यहा प्रस्तुत की है। शेष बहुत सा मसाला इस महान् ग्रन्थ में और भी है जो ईालरोग विशेषज्ञ के बहुत कामका है। उसे विद्वज्जन एव सहृदय पाठकगण वहा से प्राप्त कर सकते हैं।

सुश्रुत संहिता में शिशु रोग

श्री रवीन्द्रचन्द्र चौधरी शल्य-शालाक्य विभाग, चिकित्सा-विज्ञानसंस्थान बी. एच. यू., वाराणसी

आचार्य धन्वन्तरि ने जो शिशु रोग पर विशेष महत्व दिया है—इस बात का प्रमाण यह है कि सुश्रुत-सहिता के सूत्रस्थान के पहिले अध्याय में अष्टांग आयुर्वेद में एक अङ्ग शिशुओं के विषय पर रखा है–जिसका नाम 'कौमार-भृत्य,' दिया है। यह केवल कुमारों का जन्म के बाद उनका भरणपोषण, रोगनिवारण और रोगमुक्ति पर ही आधारित नहीं है, अपितु गर्भाधान से लेकर यावत् उनकी शिशु अवस्था रहे तब तक उनके सम्बन्धित प्रश्न पर विचार करता है। और रोग केवल जन्म के पश्चात् कारणों से उत्पन्न नहीं होता है। अपि तु जन्मपूर्व कारण भी रोगों का जनक है—यह सुश्रुताचार्य का अभिमत है।

सुश्रुत ने कारणों के प्रकार भेद से रोग सात प्रकार का बतलाया है। "तद्यथा—आदिबलप्रवृत्ताः, जन्मबलप्रवृत्ताः, दोषबलप्रवृत्ताः, सघातबलप्रवृत्ताः, कालबलप्रवृत्ताः, दैवबल-प्रवृत्ताः, स्वभावबलप्रवृत्ताः इति।" (सु. सूत्र—२४ अ:)

इनमें से आदिबलप्रवृत्त रोग जन्म के पूर्व जन्मातरीण कारणों से होते हैं। जन्मबलप्रवृत्त रोग गर्भजनन के पश्चात् माता के कारण होते हैं। दैवबलप्रवृत्त रोग जन्म के पूर्व उत्पन्न कारणों से बच्चों के कष्ट उत्पादन कर सकते हैं। आदिबलप्रवृत्त और जन्मबलप्रवृत्त रोग निम्न प्रकार बतलाये हैं—

"तत्र आदिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणित दोषान्वयाः कुष्ठार्शः प्रभृतयः, तेऽपि द्विविधाः– मातृजः, पितृजाश्चा जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात् पङ्ग्वात्यन्धबधिरमूक-मिन्मिनवामनप्रभृतयो जायन्ते तेऽपि द्विविधाःरसकृतादौहृ-दापचारकृताश्च।" (सु. सूत्र.—२४ अ:)

जन्म से बिल्कुल पूर्व आदि कारण जो गर्भोत्पादक शुक्रशोणितजदोष—उनके जन्य होते हैं।

इसमें पिता और माता की मानसिक स्थिति तथा शुक्रशोणित में रहने वाले दोष हो सकता है। इनके ऊपर माता पिता का अधिक वश नहीं रहता है। सहज कुष्ठ, अर्शः तथा एवविध अन्य रोग जो सहज हैं—इनमे से हैं। इसीलिए पितामाता का कुष्ठ, अर्श रहने से फिर बच्चों को वे रोग हों तो इनकी चिकित्सा कठिन होती है। जन्म-बल प्रवृत्त रोग—गर्भावस्था में माता अगर निषिद्ध आहार विहार सेवन करें, तज्जन्य होते हैं। इसी कारण से गर्भा-वस्था में दौहृदावमानन विकलांगसन्तान उत्पादन में हेतु बतलाया है। गर्भावस्था में अपौष्टिक आहार सेवन जन्म-जात रोग, पारिगर्भिक, अस्थिशोष (अष्टियोमेलेशिया) तथा किरेटो म्यालेशिया आदि रोगों के कारण है। इस हेतु से इनको रसकृत और दौहृदापचारकृत— इन दो प्रकार के कारण कहा है। इन सब कारणों से ऊपर अगर पहले से दृष्टि रखी जाय तो बहुत से रोगों का निवारण हो सकता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार फिरंगजमेह वा सिफीलिस जन्मगत रोग हो सकता है जिसके कारण आन्ध्य, नासा, अस्थि आदि की विकृति हो सकती है।

गर्भाधान पूर्व ऋतुकाल में नियमों का लघन करने से गर्भव्यापत् होने की सम्भावना है। ऋतुकाल में नारी को कुछ नियम पालन करना अपेक्षित है। सुश्रुत ने कहा—

"ऋतौ प्रथमदिवसात् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्ना-ञ्जनाश्रुपातस्नानानुलेपनाभ्यङ्गनखच्छेदनप्रधावनहसन-कथनातिशब्दश्रवणावलेखनानिलायासान् परिहरेत्। किं कारणं? दिवा स्वपन्त्याः स्वापशीलः अञ्जनादन्धः, रोद-

नाद् विकृतदृष्टिः, स्नानानुलेपनाद् दुःखशीलः, तैलाभ्यङ्गात् कुष्ठी, नखापकर्त्तनाद् कुनखी, प्रधावनाच्चञ्चलः हसनाच्छ्यावदन्तौष्ठतालुजिह्वः । प्रलापी चातिकथनात् । अतिशब्दश्रवणाद् बधिरः, अवलेखनात् खलतिः, मारुतायास-सेवनादुन्मत्ता गर्भो भवतीत्येवमेतान् परिहरेत् ।"

ऋतुकाल में प्रथम दिन से नारी ब्रह्मचर्य पालन करें। दिन मे न सोये, आंख में अञ्जन न लगावे, आंख से आंसू न बहावे। स्नान, अनुलेपन, तैलाभ्यङ्ग, नाखून काटना, दौडना, अधिक हंसना, बोलना, अधिक कथा सुनना, बाल मे कंघा लगाना, हवा लगाना, मेहनत करना तीन दिन तक न करे। क्यों न करे? ऋतुकाल मे दिन में सोने से नारी का पति सगम से उत्पन्न सन्तान निद्रालु, अञ्जन लगाने से अन्ध, रोने से दृष्टिविकृतियुक्त सन्तान, स्नान और शरीर में अनुलेपन करने से दुःखी, तैल मलने से कुष्ठ रागाक्रान्त, नाखून काटने से कुनखयुक्त, दौड़ लगाने से चञ्चल, अधिक हसने से दांत जिभतालु ओठ काले, अधिक बोलने से प्रलापी, अधिक शब्द सुनने से बधिर, अवलेखन से गञ्जा, अधिक हवा सेवन व परिश्रम करने से उन्मत्त सन्तान होती है। इन कारणों से इन वर्जनीय विषयो को परिहार करे।

इनके अतिरिक्त गर्भिणी के कोई कोई कार्य निषिद्ध माने गये। क्योंकि इनसे गर्भस्थ शिशु का जो जो भाग आक्रान्त होता है वे विकृत होते हैं। गर्भिणी का वर्जनीय मैथुन, व्यायाम, अतितर्पण, अतिकर्शन (जैसे—उपवास), दिवास्वप्ना, रात्रि जागरण, शोक, सवारी में चढ़ना, भय, उकड मकड़ बैठना, अधिक स्नेहक्रिया, रक्तमोक्षण, अकाले वेगरोधा।

दोषाभिघातैर्गर्भिण्या यो यो भागः प्रपीड्यते।
सस: भाग: शिशोस्तस्य गर्भस्थस्य प्रपीड्यते ॥

(सु. शा. १० अ.)

जन्मजात अङ्गविकृति के और कारण कहे गये हैं। विपरीत मैथुन सेवन के कारण हीनांग, विकृतांग अथवा दोषयुक्त सन्तान उत्पन्न होती है। आजकल जन्मकारण वा जेनेटीकस् (genetics) के विषय पर इतनी चर्चा हो रही है तथा इसके ऊपर एतादृश गुरुत्व आरोप किया जा रहा है। परन्तु इसका मूल सुश्रुत चरक आदि आचार्यों

आयुर्वेद के रहस्योद्घाटन में बंगाली कविराजों की पूरी की पूरी परम्परा समर्पित हुई। चक्रपाणिदत्त हाराणाचन्द्र, से लेकर उपेन्द्रनाथदास तक जिन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व आयुर्वेद हेतु न्यौछावर कर अपने को अमर बनाया और अमित किर्ति अर्जित की उसी पीढ़ी का वर्तमान स्वरूप जिन कविराजों के कारण मुखरित होरहा है उनमें एक हैं हमारे परम स्नेही बन्धु कविराज श्री रवीन्द्रचन्द्र चौधरी जिन्होंने अपने धवल जीवन का अधिकांश सुश्रुत संहिता के रहस्योद्घाटन में खपाया है। विश्वास है वैद्य समाज की ज्ञान पिपासा शान्त करने वाला यह अमृत जलकूप ऐसा स्रोत बना रहेगा जिसका जल अनवरत गति का अक्षय भण्डार कहा जा सकता है। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

की लेखनी में मिलता है। इसीलिए गर्भजनन के पहले अगर इन सब विधि निषेध का पालन करते हुए गर्भोत्पत्ति में प्रवृत्त हो जा सके तो बहुत से अवाञ्छित शिशु-जन्म निवारित हो सकता है।

जन्मजात वैगुण्य या विकृति सुश्रुत के मतानुसार अधर्म के कारण होती है। अगर अच्छे कर्म किये होंगे तो अच्छे अङ्गप्रत्यङ्ग युक्त होकर जन्म ले सकता है। जैसा सुश्रुत ने कहा—

अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृत्तिः स्वभावादेव जायते ॥
अङ्गप्रत्यङ्गनिर्वृतौ ये भवन्ति गुणागुणाः ॥
तेते गर्भस्य विज्ञेया धर्माधर्मनिमित्तजाः ॥
(सु. शा. ३ अ:)

रोगाक्रान्त शिशु की परीक्षा एक समस्या का विषय है। तब भी इसके बारे में सुश्रुत आदि आचार्यों ने जो संकेत दिया, उससे, बहुत कुछ सहायता मिल सकती है।

शिशु में कुछ बोलने की शक्ति नहीं है। अतः उसके अङ्गप्रत्यङ्ग संचालन से उनके कष्ट का पता लगाना पड़ता है। यह अङ्गचालन बहुत ही अर्थपूर्ण होता है। इसको सम्यक् न समझने से गलत धारणा उत्पन्न हो सकती है। रोग विनिश्चय में भ्रम हो सकता है तथा गलत चिकित्सा हो सकती है। उदाहरणस्वरूप कहा जा सकता है कि कभी कभी शिशु को रोता हुआ देखकर माता यह अनुमान कर लेती है कि शिशु को भूख लगी होगी। इस धारणा के आधार पर शिशु को दूध या भोजन देती है जो पचता नहीं है और शिशु को अतीसार हो सकता है इस समय रोने का कारण सम्भवतः शिशु की पिपासा है। अतः बच्चे को पीने के लिए जल देना चाहिए था जो नितान्त आवश्यक था। इस प्रकार और भी दृष्टान्त दिया जासकता है। अब सुश्रुत की बालपरीक्षण-विधि देखिये—

अङ्गप्रत्यङ्गदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते।
मुहुर्मुहुः स्पृशतितं स्पृश्यमाने च रोदिति ॥३४॥
निमीलिताक्षो मूर्धस्थे शिरो रोगे न धारयेत्।
वस्तिस्थे मूत्रसङ्गार्त्तो रुजा तृष्यति मूर्च्छति ॥३५॥
विण्मूत्र सङ्गवैवर्ण्यच्छद्याध्मानान्त्रकूजनैः।
कोष्ठे दोषान् विजानीयात् सर्वत्रस्थांश्चरोदनैः ॥
(सु. शा. १० अ.)

शरीर में जिस अङ्ग विशेष पर वेदना या कष्ट है। शिशु उस अङ्ग को बार बार छूता है। उस जगह को छूने से बच्चा रोता है। शिर में अगर वेदना हो तो आंख बन्द करके रहता है तथा शिर को बार बार हिलाता है अगर वस्ति (वा मूत्राशय) में दोष दूषित होकर आश्रित है तो शिशु का मूत्रसङ्ग अर्थात् शिशु की मूत्रप्रवृत्ति बन्द हो गयी होगी। तथा शिशु को वेदना के कारण पिपासा होती है यथा मूर्च्छा हो जाती है। टट्टी पेशाब बन्द हो गया हो, शरीर का वर्ण विकृत हो गया हो, वमन में पेट में आध्मान हो और पेट में गुड़गुड़ाहट की आवाज हो तो शिशु का कोष्ठ में विकार समझ लेना चाहिए। और बच्चा केवल रोता है देखकर यह समझना चाहिए कि बच्चे के सर्व शरीर में रोग का प्रभाव है अर्थात् समस्त शरीर में वेदना है।

जन्म के पश्चात् शिशुका प्रथम रोग होता है नाभि को आश्रय करके। यह सम्भवतः नाभि नाड़ी काटने में कोई त्रुटि हो गई हो या किसी कृमि से दूषित हो जाने से हो सकता है। जैसे कहा है:—

वातेनाध्मापितां नाभिं सरुजां तुण्डिसंज्ञिताम्।
मारुतघ्नैः प्रशमयेत् स्नेहस्वेदोपनाहनैः ॥
गुदपाकेतु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥४४॥
(सु. शा. १० अ.)

वायु के कारण शिशु की नाभि फूल जाती है। इसमें दर्द होता है। इसको तुण्डी कहते हैं। इसमें वायु शामक स्नेह, स्वेद और उपनाह (पुलटिश) लगावें। शिशुको कभी-कभी गुदा प्रदेश पक जाता है। इसमें पित्त नाशक चिकित्सा करनी चाहिये।

स्तन्यपायी शिशु को औषध देना हो तो एक उपाय है कि माता के स्तन में औषधकल्क द्वारा लेप दिया जाय। शिशु वही स्तन पीता हुआ औषधि खा लेता है।

ज्वर में शिशु को घी देना चाहिये या नहीं, इसके विषय पर सुन्दर उपदेश है:—

एकं द्वे त्रीणि चाहानि वातपित्त कफज्वरे।
स्तन्यपायाहितं सर्पिरितराभ्यां यथार्थतः ॥४०॥
न च तृष्णाभयादत्र पाययेत शिशुं स्तनौ ॥

वातिक ज्वर में एक दिन, पित्त ज्वर में दो दिन, कफज्वर में तीन दिन स्तनपायी शिशु को सात्म्य होने से घी दिया जा सकता है। (किसी के मत से इसमें घी नहीं चाहिये।) क्षीरान्नाद और अन्नाद शिशु को प्रयोजनानुसार घी देवें। परन्तु तृष्णा होने के भय से शिशु को स्तन न पिलावें।

पञ्चकर्म—शिशु को कराना वारण है। परन्तु आत्यायिक अवस्था हो तो इसमें कभी कभी कराया जा सकता है।

विरेकवस्तिवमनान्यृते कुर्याच्चनात्ययात् ॥४१॥
सु. शा. १० अः

किसी कारण से जैसे अतिवलक्षय से मस्तिष्क मज्जा का, क्षय से तालु दब गया हो (अर्थात् depression of the anterior fontanile) तो उस अवस्था में शिशु को पिपासा, अधिक क्षीणता आ जाती है। कहा भी है :—

मस्तुलुङ्गक्षयाद्यस्य वायुस्तात्वस्थि नामयेत्।
तस्यतृड्दैन्ययुक्तस्य सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥४१॥
पानाभ्यञ्जन योर्योज्यं शीताम्बुद्धेजनं तथा ॥

इसमे काकोल्यादि मधुर वर्ग के साथ घी पीने के लिये तथा अभ्यङ्गार्थ देवे। शीतल जल द्वारा उसको परिषिञ्चन करें जिससे चेतना ठीक रहे।

शिशु को जैसे शारीरिक या मानसिक कोई पीड़ा न हो इस उद्देश्य से निम्नोक्त करणीय है :—

वालं पुनर्गात्र सुख गृह्णीयात्,न चैनं तर्जयेद्। सहसा न प्रतिवोधयेत् वित्रासभयात्, सहसा नापहरेद् उत्क्षिपेद् वा वातादिविघातभयात्, नोपवेशयेत् कौब्जभयात् नित्यं चैनमनुवर्त्तेत प्रियशतैरजिघांसुः, एवमविहतमना ह्यभिवर्धते नित्यमुदग्रसत्वसम्पन्नो नीरोगः सुप्रसन्नमनाश्च भवति वातातपविद्युत् प्रभापादपलताशून्यागारनिम्नस्थान-ग्रहच्छायादिभ्यो दुर्ग्रहोपसर्गतश्चबालं रक्षेत ॥४६॥

शिशु को पकड़ते समय शरीर म कोई कष्ट न पहुचाते हुए आराम स लेवें, इसको डराना नही चाहिये। यकायक जगाना नही चाहिये क्योंकि इससे शिशु डर सकता है। अकस्मात् खींचना नहीं चाहिये अथवा ऊपर की ओर फेंकना नही चाहिये क्योंकि इससे वात आदि दोष प्रकुपित हो सकता है। शीघ्रता से बैठाने का प्रयत्न न करें—इससे कुब्ज (विकृतांग) होने का डर है। शिशु को जैसे कोई अनिष्ट न हो एतदर्थ नानामिष्ट वाक्यों के द्वारा सदैव इसकी इच्छानुसार चलने देवें। अगर इस प्रकार शिशु का मन मे कोई वाधा न हो तो शिशु बहुततेजः मनः सम्पन्न होकर सर्वदा बढ़ता जाता है, कोई रोग नही होता है। शिशु का मन भी प्रतिनियत प्रफुल्ल रहता है।

सुश्रुत के मत से शिशु को ग्रह, भूत आदि से आविष्ट होकर पीड़ित होने की सम्भावना है। इनमे इसको दारुण व्याधि से आक्रान्त होने की सम्भावना है। इसीलिये पहले से सावधानता का अवलम्बन करना चाहिये। प्राकृतिक शक्तियों से भी शिशु की विपदाशङ्का है।

जैसे सुश्रुताचार्य कहते हैं :—

नाशुचौ विसृजेद् बालं नाकाशे विषमे न च।
नोष्ममारुत वर्षेषु रजोधूमोदकेषु च ॥४७॥
(सु. शा. १० अः)

शिशु को तेज हवा, धूप, विद्युत्, तेज रोशनी, वृक्ष, लता, शून्यगृह, नीचा स्थान, ग्रह-च्छायाप्रभृति से तथा खराब ग्रह, भूत आदि से रक्षा करना आवश्यक है।

शिशु को कोई अपवित्र स्थान मे खुले आकाश के नीचे, ऊंचे नीचे स्थान में, धूप, गर्मी, वारिष, हवा, धूल धूआं, पानी मे न रखे।

भूतादि उपसर्ग से बच्चो की रक्षा करना सुश्रुत के मत से एकान्त आवश्यक है। अन्यथा इनको भूतावेश या रक्षा आदि से आविष्ट (infected) होने से शिशु की अवस्था कठिन हो जाती है। इसके विशिष्ट लक्षण आगे कहते हैं।

"नित्यमवरोधरतश्चस्यात् कृतरक्ष उपसर्गभयात् ॥
प्रयत्नतश्च ग्रहोपसर्गेभ्यो रक्ष्या बाला भवन्ति ॥५०॥

अथ कुमार उद्विजते त्रस्यति रोदितिनष्टसञ्ज्ञो भवति नखदशनैर्धात्रीमात्मान च परिणुदति दन्तान् खादति कूजति जृम्भते भ्रुवौ विक्षिपत्यूर्ध्वं निरीक्षत फेनमुद्वमति सन्दष्टोष्ठः क्रूरो भिन्नामवर्चा दीनार्त्त स्वरो निशि जागर्ति दुर्बलो म्लानाङ्गो मत्स्यच्छुच्छुन्दरिमत्कुणगन्धो यथा पुरा

धात्र्या: स्तन्यमभिलषति तथा नाभिलषति इति सामान्येन ग्रहलक्षणमुक्त, विस्तरेणोत्तरे वक्ष्यामः ॥५१॥

(सु. शा. १० अः)

बालक को सदैव परिजन के सहारे अथवा अन्तःपुर में रखकर रक्षा करने का प्रयत्न करें जैसे उसका कोई भूतादि उपसर्ग से आक्रान्त होने का भय न हो। शिशुओं को ग्रह उपसर्ग आदि से सर्वदा भय रहता है। ग्रह भूत आदि से आविष्ट होने से शिशु का निम्न लक्षण होते हैं :—

शिशु उद्विग्न अर्थात् भयभीत होता है, रोता है, उसकी चेतना चली जाती है, नाखून, दांत से धात्री को या अपने को काटता है, अपना दांत काटता है, गों-गों आवाज करता है, जम्हाई लेता है भौंयें कुञ्चित करता है, ऊपर की ओर ताकता है, झाग निकालता है, होठ को काटता है, देखने में भयानक दिखाई देता है, कच्ची पतली टट्टी करता है, उसके गले का स्वर दुःखित और पीड़ित व्यक्ति की तरह होता है, रात मे जगा रहता है, अधिक दुर्बल प्रतीत होता है, उसके अंग की कान्ति चली जाती है। उसके शरीर से खट्मल, छुछुन्दर की गन्ध निकलती है। पहले जिस प्रकार धात्री का दूध पीता था, इस समय उतना पीना नहीं चाहता है। ये भूत वा ग्रह से आविष्ट शिशु का साधारण लक्षण है। इस विषय मे उत्तर तन्त्र में और विस्तृत रूप से बोला है।

बच्चों को कोई तीव्र (Acute) व्याधि हो तो ज्वर अतिसार के साथ आक्षेप, निःसंज्ञता, वमि, माता का दूध पानबन्द—ये सब लक्षण होते है। सुश्रुत ने इन् रोगों को नवग्रह के कारण बताया हैं। ये ग्रहावेश धात्री वा माता का अपचार, शिशु को गन्दी परिस्थिति मे रखना, आचार नियम हीनता, देवताओं की अपेक्षा, पूजा न करना इत्यादि कारणों से होता है। सुश्रुत ने कहा है:—

धात्री मात्रोः प्राक् प्रदिष्टाप चारा
 च्छौचभ्रष्टान् मङ्गलाचारहीनान्।
त्रस्तान् हृष्टांस्तर्जितान् ताडितान् वा
 पूजाहेतोर्हि स्युरेते कुमारान् ॥ ६ ॥

(सु. उ. २७ अ.)

धात्री या माता अगर अहित आहार विहार करें, जैसे मांस सुरादि सेवन करें, आचार और शील में शौच वर्जित हो, मङ्गलजनक नियम पालन न करें, शिशु डर जावे, अधिक हृष्ट, भर्त्सित या ताड़ित हो अथवा ग्रह आदि पूजा पाने को इच्छुक है तो ये शिशुओं को अनिष्ट पहुंचाते हैं। इन ग्रहों को पितृग्रह कहते हैं। क्यों 'ये ग्रह बच्चों को दूसरे ग्रह से रक्षा करते है। ये ग्रह नौ हैं। जैसे स्कन्द ग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका नैगमेष। ग्रहों की विशेष शक्ति है। जैसे लिखा है:—

ऐश्वर्यस्थास्ते नशक्या विशन्तो,
 देहं द्रष्टुं मानुषैर्विश्वरूपाः।
आप्तं वाक्यंतत् समीक्ष्याभिधास्ये,
 लिङ्गान्येषां यानि देहे भवन्ति ॥७॥

सु. उ. २७ अ.

इन ग्रहों को अणिमा लघिमादि विशेष शक्ति है। इनके बहुरूप लेने की क्षमता है। इसीलिये ये जब शिशु का शरीर के भीतर प्रवेश करते हैं, तब इनको देखने की मनुष्यों की शक्ति नहीं है। इसीलिये केवल आप्त अर्थात् भूत भविष्यदादि जानने वाले व्यक्ति का वाक्य अवलम्बन कर के इनके लक्षण बोल रहे हैं।

स्कन्दन ग्रह के लक्षण

शूनाक्षः क्षतज सगन्धिकः स्तनद्विट्
 वक्रास्यो हतचलितैकपक्ष्मनेत्रः ॥
उद्विग्नः सुलुलित चक्षुरल्परोदी
 स्कन्दार्तो भवति च गाढमुष्टिवर्चाः ॥८॥

(सु. उ. २७ अ.)

स्कन्द ग्रह से पीड़ित बालक की आंख सूज जाती है। उसके शरीर से रक्त की गन्ध निकलती है। वह माता का दुध पीना नहीं चाहता है। मुख किञ्चित टेढा हो जाता है, इसका नेत्र का बाल अकर्मण्य तथा चलता रहता है। रोगी भीरु सा प्रतीत होता है। आंख चञ्चल रहती है। रोगी रोता रहता है। हाथ की मुट्ठी कड़ी हो जाती है। टट्टी भी कड़ी हो जाती है।

साध्यासाध्य लक्षण

असाध्य लक्षण —

प्रस्तब्धो यःस्तनद्वेषी मुह्यते चाविशन् मुहुः।
तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः सम्पूर्ण लक्षणः ॥१०॥

जिस शिशु का सर्व शरीर कड़ा रहता है। मां का दूध पीता नहीं है। मूर्च्छित हो जाता है। तथा बराबर ग्रहावेश दिखाई देता है और ग्रह के सब लक्षण देखने में मिलते हैं। वह असाध्य है।

साध्य लक्षण—जिस शिशु को उपर्युक्त लक्षण न हों तथा पुराना न हो वह साध्य है।

साधारण ग्रह चिकित्सा

गृहे पुराणहविषाऽभ्यज्यवात्रं शुचौ शुचिः ॥१८॥
सर्षपान् प्रकिरेत्तेषांतैलेर्दीप चकारयेत् ॥
सदासन्निहितं चापि जुहुयाद् हव्यवाहनम् ॥१९॥
सर्वगन्धौषधि बीजै गन्धमाल्यैरलंकृतम् ॥
अग्नये कृत्तिकाभ्यश्च स्वाहास्वाहेत सन्ततम् ॥२०॥

शुद्ध पवित्र होकर पवित्र घर में शिशु को पुराण घी से मलकर चारों ओर सरसों छिटकावे। सरसों के तैल से दीप जलावे। सर्वदा निकटस्थ अग्नि को हवन करें। एलादि औषधि बीज तथा गन्धमाल्य से शिशु को अलंकृत करके 'अग्नये स्वाहा कृत्तिकाभ्यश्च स्वाहा। बार-बार उच्चारण करके आहुति देवें। बाद में निम्नोक्त मन्त्र पढ़ें:—

नमः स्कन्दाय देवाय ग्रहाधिपतयेनमः।
शिरसात्वाभिवन्देऽहं प्रतिगृह्णीस्वमेवलिम् ॥
नीरुजो निर्विकारश्च शिशुर्मेजायतां द्रुतम् ॥ २७॥
—सु० उ० २८ अ०

शिशुओं को धात्री या माता का मिथ्याचार के कारण, गुरु, विषम, दोषकारक खाद्य खाने से उनका स्तन दुग्ध दूषित होता है। दुग्ध दूषित होने से वही दूध पीकर शिशु का वात आदि दोष दूषित होकर शिशुओं को नाना प्रकार शारीरिक रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इस लिये चिकित्सक दूषित स्तन्य दुग्ध के बारे में सदैव ध्यान दें और योग्य प्रतिकार करें। कहा भी है:—

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यै विषमै दोषलैस्तथा ॥
दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥३२॥
मिथ्याहारविहारिण्यः दुष्टा वातादयः स्त्रियाः ॥
दूषयन्ति पयस्तेन शारीरा व्याधयः शिशोः ॥
भवन्ति कुशलस्तांश्चभिषक् सम्यक्विभावयेत् ॥३३॥

स्कन्दग्रह चिकित्सा—

स्कन्दग्रह से आक्रान्त शिशु को वातघ्न औषधिसिद्ध क्वाथ द्वारा सिञ्चन करें।

स्कन्दग्रहोपसृष्टानां कुमाराणां प्रशस्यते।
वातघ्नद्रुमपत्राणां निष्क्वाथः परिषेचने ॥ ३ ॥
तेषां मूलेषुसिद्धंच तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥
सर्वगन्धासुरामण्डकैडर्यावापमिष्यते ॥ ४ ॥
—सु० अ० २८ अ०

अभ्यंग के लिए वही वातघ्न गणका मूल से सिद्ध तैल जिसमें सर्पगन्धा, सुरामण्ड व कैडर्य मिला हुआ है। उसका व्यवहार करें।

देवदार्वादिसिद्ध घृत पीने को देवें।

धूपना-धूपन के लिए सरसों, सांपका केचुला, वच, काकजंघा, घृत, उष्ट्र, अजा, अवी और गौ का रोम प्रयोग करें।

सर्षपाः सर्पनिर्मोकः वचा काकादनी घृतम्।
उष्ट्राजाविगवां चैव रोमाण्युद् धूपनं शिशोः॥ ५॥
—सु० उ० २८ अ०

औषधि धारण—गले में सोमवल्ली, इन्द्रवल्ली, शमी, बिल्व का कांटा, इन्द्रवारुणी की माला बिनकर पहनें।

सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कण्टकान्।
मृगादन्याञ्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ ७॥
—सु० उ० २८ अ०

बलि उपहार—शिशु के मङ्गल के लिये लालमाला झण्डा लाल गन्धद्रव्य, नाना प्रकार खाद्यद्रव्य घंटा, मुर्गा स्कन्द देवता को बलिउपहार देवे।

रक्तानिमाल्यानि तथापताका
रक्ताञ्चगन्धा विविधाश्चभक्ष्याः।
घण्टा च देवाय बलिर्निवेद्यः
सकुक्कटःस्कन्दग्रहे हिताय ॥ ८ ॥
स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु
कुर्यात् पुरंशलियवैर्नवैस्तु ॥
अद्भिश्च गायत्र्यभिमन्त्रिताभिः
प्रज्वालनं व्याहृतिभिश्च वह्नेः ॥ ९॥

चतुष्पथ में तीन दिन (रात में) शिशु को नहलावें। स्नानार्थ जल को गायत्री युक्त मन्त्रोच्चारण पूर्वक पवित्र करें। चतुष्पथ में नये शालि और यव से मण्डल बनावें। व्याहृति से अग्नि प्रज्वालन करें।

शिशुओं की रक्षा करने के लिये निम्नोक्त मन्त्र पाठ करें।

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम्।
अहन्यहनि कर्त्तव्या या भिषग्भिरतन्द्रितैः॥१०॥
तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा।
निधानं योऽव्ययोदेवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु॥११॥
ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः।
देवसेनारिपुहरः पातुत्वां भगवान्गुहः॥१२॥
देवदेवस्यमहतः पावकस्य च यः सुतः।
गङ्गोमाकृत्तिकानां च सतेशर्म प्रयच्छतु॥१३॥
रक्तमाल्याम्बरः श्रीमान् रक्तचन्दनभूषितः।
रक्तदिव्यवपुर्देवा पातुत्वां क्रौञ्चसूदनः॥१४॥
—सु. उ. २८ अ.

अब शिशुओं का पापक्षयकारक रक्षामन्त्र बोल रहा हूं। जागरूक चिकित्सकगण इसका रोज अभ्यास करें। तपस्या, तेजः, यशः, देह का आश्रय अक्षय स्कन्ददेव तुम्हारे लिये प्रसन्न हों। भगवान् कार्त्तिकेय—जो ग्रहों का सेनापति, देवताओं का सैन्याध्यक्ष, सर्वव्यापी, देवसेना का शत्रुनाशक है—वह आपकी रक्षा करे। जो देव-देव महान् अग्नि का पुत्र तथा गंगा, उमा कृत्तिकाओं का भी पुत्र—वह आपका मङ्गल विधान करे। क्रौञ्च पर्वत का नाशक, लालमाल्य व वस्त्र धारी, ऐश्वर्यशाली लालचन्दन भूषित, लाल दिव्य विग्रहधारी देव आपकी रक्षा करें।

स्कन्दापस्मार

लक्षण :—स्कन्दापस्मार पीड़ित शिशु यकायक मूर्छित, पुनः सचेत न होता है। हाथ पैरों से जैसे नाचता है। दारुण आकृति हो जाती है। टट्टी, पेशाब करता रहता है, मुंह से झाग निकलता रहता है, आवाज करता है, जम्हाई लेता है।

निःसंज्ञो भवति पुनर्भवेत्ससंज्ञः
संरब्धः करचरणैश्च नृत्यतीव।
विण्मूत्रे सृजति विनद्य जृम्भमाणः
फेनं च प्रसृजति तत्सखाभिपन्नः॥६॥

चिकित्सा :—स्कन्दापस्मार पीड़ित शिशु की चिकित्सा में परिषेक, अभ्यंग, घृतपान उद्वर्तन, धूपन, औषधि धारण, बलिप्रदान, स्नान, मन्त्रपाठ कर्त्तव्य।

बिल्वः शिरीषो गोलोमीसुरसादिश्च यो गणः।
परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मार शान्तये॥३॥
सर्वगन्धविपक्वं तु तैलमभ्यञ्जने हितम्।
क्षीरवृक्षकषाये च काकोल्यादौ गणे तथा॥४॥
विपक्तव्यं घृतं चापि पानीयं पयसा सह।
(सु. उ. २९ अ.)

बेलछाल, शिरीषछाल, दूर्वा, सुरसादिगण के क्वाथ से स्कन्दापस्मार में परिषेचन करें। एलादि गण से पकाया तैलाभ्यंग करें। क्षीरीवृक्ष का क्वाथ, काकोल्यादि कल्क व दूध में घी पकाकर दूध के साथ पीने को देवें।

उत्सादने वचाहिङ्गुयुक्तं स्कन्दग्रहे हितम्॥५॥
गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखा घृतम्।
वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपनेऽपि च॥६॥
अनन्तां कुक्कुटी बिम्बीं मर्कटी चापि धारयेत्।
पक्वापक्वानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः॥७॥
भूतौदनो निवेद्यश्च स्कन्दापस्मारिणोऽग्रतः।
चतुष्पथे च कर्त्तव्यं स्नानमस्य यतात्मना॥८॥
स्कन्दापस्मार संज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा।
विशाखसंज्ञश्च शिशोः शिवोऽस्तु विकृताननः॥९॥
(सु. उ. २९ अ.)

स्कन्दापस्माराक्रान्त शिशु को वच और हींग मिलाकर "मज्जन देवें।" धूपन के लिये गिद्ध, उल्लू की टट्टी, बाल, हाथी का नाखून, बैल का रोम जलाकर प्रयोग करें।

औषधि धारण :—अनन्तमूलिका, कुक्कुटीतृण, बिम्बी, केवांच शरीर में धारण करें।

बलि :—कच्चा पक्का मांस, सुरा, रक्त, दूध, दधि-उपहार निवेदन करें।

स्नान :—चौराहा में शिशु को दत्तचित्त अवस्था में नहावें।

प्रार्थना :—स्कन्द का प्रिय सखा स्कन्दापस्मार तथा विकृतमुख विशाख शिशु की रक्षा करें।

शकुनी

त्रस्ताङ्गो भयचकितो विहगगन्धि:
संस्राविव्रणपरिपीड़ित: समन्तात् ॥
स्फोटैश्च प्रचिततनु: सदाह पाकै-
र्विज्ञेयो भवति शिशु: क्षत: शकुन्या ॥१०॥
(सु. उ. २७ अ.)

शकुनी ग्रह मे आविष्ट होने से शिशु के अंग प्रत्यग शिथिल हो जाते हैं। वह भय से चञ्चल हो जाता है। उसके शरीर से चिड़िया की गन्ध निकलती है। सारे अंग व्रण से भर जाते हैं। जिनसे स्राव निकलता रहता है। शरीर फुन्सियों से भर जाता है और उसमें ज्वलन और पाक होवे हैं।

चिकित्सा :—शकुनिग्रह से पीड़ित शिशु को क्वाथ द्वारा परिषेक, तैल अभ्यंग, उद्वर्त्तन, व्रणोक्त चूर्ण प्रयोग, धूपन, औषधि माल्य धारण करावे, उपवन में स्नान करावें, घृत प्रयोग करें तथा देवता की पूजा करें।

परिषेक :—

शकुन्यभिपरीतस्य कार्यो वैद्येन जानता।
वेतसाम्रकपित्थानां निष्क्वाथ: परिषेचने ॥३॥
(सु. उ. ३० अ.)

वेतस, आम्र व कैथ के क्वाथ से परिषिञ्चन करें।

अभ्यंग :—

कषायमधुरैस्तैलं कार्यमभ्यञ्जने शिशो:।

कषाय व मधुर रस युक्त औषधि से तैल बनाकर अभ्यग करें।

प्रदेह :—

मधुकोशीरह्रीवेरसारिवोत्पलपद्मकै: ॥४॥
रोध्रप्रियंगुमञ्जिष्ठागैरिकै: प्रदिहेच्छिशुम् ॥

मुलेठी, उशीर, वाला, सारिवा, नीलोत्पल, पद्माक, रोध्र, प्रियंगु, मञ्जिष्ठा, गैरिक पीसकर उससे शिशु को लेप देवें।

व्रणरोपण :—

व्रणेपूक्तानि चूर्णानि पथ्यानि विविधानि च ॥५॥

द्विव्रणीय अध्याय में व्रण में विहित शोधन रोपण चूर्ण आदि प्रयोग करें।

धूपन :—

स्कन्द ग्रहोक्त।

औषधिधारण :—

शतावरी मृगैर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिका: ॥६॥
लक्ष्मणां सहदेवीं च वृहतीं चापि धारयेत् ॥

शतावरी, इन्द्रवारुणी, दन्ती, कण्टिकारि, लक्ष्मणा, सहदेवा, वृहती धारण करें।

देवपूजा :—

तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मन:शिला ॥७॥
बलिरेष करञ्जेषु निवेद्यो नियतात्मना ॥

संयत होकर तिल का चावल, माला, हरिताल, मन:शिल का बलि करञ्जवन मे निवेदन करें।

स्नान :—

निष्कुटे च प्रयोक्तव्य स्नानमस्य यथाविधि ॥८॥

घर का समीपस्थ उपवन में स्कन्द ग्रहोक्त नियमानुसार शिशु को स्नान करावें।

घृतपान :—

स्कन्द ग्रहोक्त घृत प्रयोग।

पूजा—

कुर्यांच्च विविधां पूजां शकुन्या: कुसुमै: शुभै: ॥ ९ ॥
अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालंकार भूषिता ॥
अयोमुखी तीक्ष्णतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ १० ॥
दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा ॥
लम्बोदरी शंकुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ११ ॥

उपर्युक्त मन्त्र से नाना प्रकार फूल से शकुनी की विविध पूजा करें।

रेवती

रक्तास्यो हरितमलोऽतिपाण्डुदेह:
श्यावो वा ज्वर मुखपाकवेदनार्त्त: ॥
रेवत्या व्यथिततनुश्च कर्णनास
मृदनाति ध्रुवमभिपीडित: कुमार: ॥११॥
(सु. उ. २७ अ.)

तैलाभ्यंग, घृतपान, प्रदेह, धूपन औषधि धारण, चतुष्पथ मे बलि, स्नान, मन्त्रपाठ करें।

अवसेचन—निम्ब आदि तिक्त रस विशिष्ट वृक्ष के पत्र क्वाथ से अवसेचन करें।

तैलाभ्यंग—धूप (राल) सुरा सौवीरक, कूठ, मैनसील से बना हुआ तैल मलो।

घृत पान—पिपुत्र, पीपरामूल मधुरवर्ग, मधु, शालपर्णी, बृहती, कंटकारी का घृत पान करें।

प्रदेह—सारे शरीर मे गन्ध द्रव्य और आखा के लिये शीतल द्रव्य का लेप करें।

धूपन—मुर्गा का पुरीष, बाल, चमड़ा, सांप का केचूला, बौद्ध भिक्षु का पुराणा वस्त्र जलाकर धूपन करें।

बलि—चौराहा में कुक्कुटी पौधा, केवाच, शिम्बी, अनन्तमूल, कच्चा पक्का मांस व रक्त का बलि उपहार देवें।

स्नान—घर म शिशु की रक्षा के लिये नाना प्रकार गन्धोदक से नहावें।

मन्त्र पाठ—निम्न मन्त्र पाठ करें:—

कराला पिंगला मुण्डा कषायाम्बर वासिनी।
देवी बालमिम प्रीता सरक्षत्वन्धपूतना॥ ६॥
(सु. उ. ३३ अ.)

शीतपूतना

उद्विग्नो भृशमतिवेपते प्ररुद्यात्
सलीनः स्वपिति च यस्य चान्त्रकूजः॥
विस्राङ्गो भृशमतिसार्यते च यस्तं
जानीयाद् भिषगिहशीतपूतनार्त्तम्॥

शीतपूतना से गृहीत शिशु खूब भयभीत रहता है, अत्यन्त कांपता है, सदा रोता रहता है, शय्या के एक पार्श्व मे लेटकर सोता है, आंत मे गुड़गुड़ आवाज करता है। शरीर शिथिल रहता है और अधिक अतीसार होता है।

चिकित्सा सूत्र—इसमें भी परिषेक, तैलाभ्यंग, घृतपान, धूपन, औषधिधारण, नदी में बलि उपहार, जलाशय के पास स्नान, मन्त्रपाठ करें।

'**परिषेक**'-कैथ, सुवहा, बिम्बी, विल्व,' मत्स्याक्षक, नन्दी, भल्लातक के क्वाथ से करें।

तैलाभ्यङ्ग—छागमूत्र, गोमूत्र, मोथा, देवदारु, एलादि से तैल पकाकर अभ्यङ्ग।

घृतपान—कट्फल, धूप, खदिर, पलाश, अर्जुनछाल, और दूध से घी पकाकर पान करावे।

धूपन—गिद्ध, उलूक की विष्ठा, वस्तगन्धा, सांपका केचुला, नीम की पत्ती, मुलेठी का धूपन।

औषधिधारण—कडुवीलोकी, गुञ्जा, काकादनी धारण करे।

बलि—नदी में मूङ्ग से बना हुआ भोज्य, मद्य, रक्त उपहार देवे।

मन्त्रपाठ—

मुद्गौदनाशना देवी सुराशोणितपायिनी।
जलाशयाशया देवीपातुत्वां शीतपूतना॥६॥
—सु. उ. ३४ अ.

मुखमण्डिका

म्लानाङ्गः सुरुचिरपाणिपादवक्त्रो
बह्वाशी कलुषसिरावृतोदरो यः।
सोद्वेगो भवतिचमूत्रतुल्य गन्धिः
स ज्ञेयः शिशुरिह वक्त्रमण्डिकार्त्तः॥१५॥
(सु. उ. २७ अ.)

मुखमण्डिका ग्रह से पीड़ित शिशु के शरीर का मध्यभाग दुर्बल, मुख हाथ पैर देखने में सुन्दर होता है। उदरभाग कालीसिरा से आवृत रहता है। शिशु बहुत खाता है। सदा उद्विग्न रहता है। शरीर मे मूत्र की गन्ध रहती है।

चिकित्सा सूत्र—परिषेचन, तैलाभ्यङ्ग, घृतपान, धूपन, बलि उपहार, स्नान, मन्त्रपाठ विहित है।

परिषेक—कैथ, विल्व, अरणि, वंशलोचन, गन्धर्वहस्ता, कुबेराक्षी का क्वाथ द्वारा परिषेक करें।

तैलाभ्यङ्ग—वातहर बिल्वादि, वस्तगन्धा, अश्वगन्धा, वसा, तैल से तैल पकाकर अभ्यंग करें।

घृतपान—मधूलिका, गोदुग्ध, वंशलोचन, काकोल्यादि, स्वल्पपचमूल से घी पकाकर पान करावे।

धूपन—वच, धूप (राल), कूठ, घी से धूपन।

औषधिधारण—चाष, चील, सांप की जिह्वा

कुमार कार्तिकेय देव के सेनापति होने के पश्चात् सब ग्रह मिलकर शक्तिमान कार्तिकेय के पास जाकर अञ्जलि वद्ध होकर कहने लगे—हमारी क्या वृत्ति होगी, कहिये। स्कन्दने शिवजी को पूछा। त्रिनेत्रधारी शिवजी ने कहा-देव मानुष और तिर्यगयोनिलोक परस्पर उपकार करते हुये अपने को रक्षा करते हैं। देवलोक शीत, ग्रीष्म, वायु और वर्षण द्वारा मानुष तिर्यग योनियों को तथा मानुष, यज्ञ, नमस्कार, जप, होम, व्रत आदि द्वारा देवताओं को प्रीति पहुंचाते हैं। हरेक का पृथक् पृथक् भागधेय है। आप लोक शिशुओं का कल्याण करें। परन्तु जो देवता, पितृ लोक, ब्राह्मण, साधु,गुरुजन अतिथियों की पूजा नहीं करते हैं, जिनको शौच, आचार नहीं है. जो परोपजीवी हैं, जो वलि भिक्षा नहीं देते हैं और अलक्ष्मीवन्त हैं, वहां आप जाकर अपनी वृत्ति लेवें अर्थात् उन शिशुओं को पीडा देवें इससे आपकी पूजा होगी। इस प्रकार ग्रहों की सृष्टि हुई और ग्रह शिशुओं में आविष्ट होते हैं। इस कारण ग्रहों पसृष्ट शिशु कृच्छ्रसाध्य होते हैं।

उपर्युक्त आख्यायिका से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिशु अगर शौच सम्पन्न साफ सुथरा रहें उनके पिता-माता आचार सम्पन्न हों, देवद्विजातिथि गुरुपरायण हों अच्छे काम काज करें तो ग्रह से वच्चे पीडित नहीं होंगे।

ग्रहाविष्टों के लक्षणों में कृमिदुष्ट के लक्षण जैसे जीवाणुजन्य ज्वर, मस्तिष्काभिभवज लक्षण, नाडी संस्थान की विकृति दिखाई देते हैं। ये कोई अस्वभाविक लक्षण या व्याधि नही है।

इसमें परिषेचन स्नान, तैलाभ्यंग, घृतपान तो युक्ति व्यपाश्रय चिकित्सा चतुष्पथ मे वलि उपहार, मन्त्र द्वारा ग्रह पूजा दैवव्यपाश्रयचिकित्सा इसका प्रभाव अभी तक चालू है।

वालकों की चिकित्सा कायचिकित्सा में जैसे विशेष प्राधान्य लाभ करता है। तथा शल्यतन्त्र में भी वालों की चिकित्सा सुश्रुत का अभिप्रेत है। जो साधारण शस्त्र है, शिशु कमजोर होने से उसका अभिघात सहन नहीं कर सकता है। इसलिए शिशुओं के लिए अनुशस्त्र का विधान है।

अनुशस्त्र वांश, स्फटिक, अग्नि, क्षार, जलौका, नख, गोजी, शेफालिका, शाकपत्र, अंकुर, वाल, अंगुलि इत्यादि। इसीलिए इनका अलग-अलग प्रयोग सुश्रुत ने उदाहरण रूप में लिखा है।

शिशूनां शस्त्रभीरूणां शस्त्राभावे च योजयेत्।
त्वक् सारादि चतुर्वर्गं छेद्ये भेद्ये च बुद्धिमान् ॥१६॥
आहार्यच्छेद्यभेद्येषु नखशस्त्रेषु योजयेत्।
विधिः प्रवक्ष्यते पश्चात् क्षारवह्निजलौकसाम् ॥१७॥
येस्युर्मुखगतः रोगा नेत्रवर्त्म गताश्च ये।
गोजी शेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तु तान् ॥ १८ ॥
एष्येण्वेषण्यलाभेतु वालाङ्कुल्यङ्कुराहिताः ॥

शस्त्रभीरु, शिशुओं को तथा शस्त्र न मिलने से वांस स्फटिक आदि को छेदन, भेदन कर्म मे, आहारण, छेदन, भेदनार्थ नाखून का प्रयोग करें। क्षार, अग्नि और जोक का प्रयोग आगे अलग अलग वोलेंगे। मुख, नेत्रवर्त्मगत रोगों में गोजी आदि का पत्र से स्रावण करावें। एष्य रोगों में एषणी नहीं मिलने से वाल, अकुर, अगुली का प्रयोग करें। शिशुओं को क्षार, अग्नि का प्रयोग यद्यपि निषिद्ध वताया, तथापि मृदुक्षार, मृदु अग्निकर्म इनके लिये किया जाता है। तथा विष आदि आत्ययिक व्याधि में इनका प्रयोग किया जाता है।

रक्तमोक्षणार्थ शिशुओ के लिए परम उपयुक्त साधन है। जलौका प्रयोग, इसीलिए इसको परम सुकुमार उपाय कहा है—नृपवालस्थविरभीरुदुर्वल नारीसुकुमाराणाम् अनुग्रहार्थं परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः ॥ ३ ॥ —सु० सू० १३ अ०

शारीर स्थान अष्टम (८) अध्याय में वच्चों का सिरा व्यध निषिद्ध किया है। जैसे कहा है—"वालस्थविर ··· प्रपीडितानांच सिरांनविध्येत्।" परन्तु आत्ययिक व्याधि में अगर सिराव्यध अत्यावश्यक हो तो सिराव्यध करना चाहिए। यथा—

प्रतिविद्धानामपि च विषोपसर्गे आत्ययिके च सिरा-व्यधनमप्रतिषिद्धम्।

वमन विरेचन शिशुओ को वर्जित है। वस्ति भी निषिद्ध है। वह एक वर्ष के पहले निषिद्ध है तथा तीक्ष्ण वस्ति निषिद्ध है।

मूत्र रोग में अश्मरी एक ऐसा रोग है जो बच्चों को अधिकतया होती है। जैसे सुश्रुत ने कहा है: --

"प्रायेणैतास्तिस्रोऽश्मर्यो दिवास्वप्नसमशनाध्यशनशीतस्निग्धगुरुमधुराहारप्रियत्वाद् विशेषेण बालानांभवन्ति तेषामेवाल्पवस्तिकायत्वादनुपचितमांसत्वाच्च वस्तेः सुखग्रहणाहरणा भवन्ति। महतां तु शुक्रादश्मरी शुक्रनिमित्ता भवति ॥ ११ ॥

वातिक, पैत्तिक, कफज ये तीन प्रकार की अश्मरी शिशुओं को विशेष करके होती है, क्योंकि बच्चे अधिकतया दिन में सोते हैं, पथ्य व अपथ्य भोजन एक साथ करते रहते हैं। एक भोजन हजम होने से पहले ही दूसरा भोजन कर लेते हैं। ठण्डा, स्नेहयुक्त, भारी, मधुरा, आहार इनके प्रिय होने से कफ की वृद्धि होकर अश्मरी के कारण बन जाते हैं शिशुओं की वस्ति छोटा होने से तथा वस्ति का मांसलत्व कम होने से ये अश्मरी सहज रूप से निकाल सकते हैं। परन्तु बड़े आदमियों को शुक्र के कारण शुक्राश्मरी होती है। इनकी चिकित्सा बड़े आदमियों की अश्मरी की तरह। इसीलिए यहां उल्लेख करना अनावश्यक है।

क्षुद्ररोगों में अहिपूतन नामक रोग बच्चों को अधिक होता है। इस विषय पर सुश्रुत लिखते हैं—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौते पाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्नस्यास्नाप्यमानस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ।७५।
कण्डूयनात् ततःक्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५८ ॥

गुद प्रदेश टट्टी पेशाब से लिप्त रहने से तथा इसको नियमित साफ न करने से उस स्थान पर स्वेदन होता रहता है। इस अवस्था में उसको अगर नियमित न नहाया जाय तो रक्त व कफ दूषित होकर वहां अधिक खुजली होती है। खुजली के कारण वहां शीघ्र स्फोट व स्राव होते हैं। वहां व्रण होकर एकत्र हो जाता है। इस दारुण व्याधि को अहिपूतन कहते हैं।

अहिपूतन चिकित्सा—

धात्र्याः स्तन्यं शोधयित्वा बाले साध्याऽहिपूतना ।
पटोलपत्रं त्रिफलारसाञ्जन विपाचितम् ॥ ५७ ॥
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ।
त्रिफलाकोलखदिरकषायं व्रणशोधनम् ॥ ५८ ॥
—सु० चि० १० अ०

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।
लेपोऽम्लपिष्टो बदरीत्वग् वा सैन्धवसंयुता ॥५६॥
कपालतुत्थजं चूर्णं चूर्णकाले प्रयोजयेत् ।

अहिपूतन में धात्री के स्तन दुग्ध का शोधन करें। शिशुओं में अहिपूतन साध्य है। पटोलपत्र, त्रिफला, रसाञ्जन सहित पक्व घृत लेने से कष्टसाध्य अहिपूतन रोग अच्छा हो जाता है। व्रणरोपण के लिये त्रिफला, बेर, खदिर क्वाथ प्रयोग करें। काञ्जि से कासीस, गोरोचना, तूतिया, हरिताल, रसाञ्जन पीसकर लगावें। बेर की छाल सैन्धव मिलाकर प्रयोग करें। चूर्ण प्रयोग करते समय मृद्भाण्ड टुकड़ा व तूतिया चूर्ण मिलाकर लगावे।

गल रोगों में रोहिणी एक ऐसा रोग है जो बच्चों का अधिकतर होता है। परन्तु इस रोग की सुश्रुत ने बालरोगों में गणना नहीं की है। अतः मैंने इसका विचार नहीं किया है।

प्रायशः सब नेत्र रोग शिशुओं को होता है। परन्तु सब प्रकार के तिमिर या लिंगनाश शिशुओं को कम होते हैं। इन सब रोगों का यहां उल्लेख करना अनावश्यक है। केवल 'कुकूणक' एक विशिष्ट नेत्र रोग है जो बच्चों का ही अधिक होता है। यह अभिष्यन्द की तरह है। सुश्रुत का इस विषय पर मन्तव्य अर्थपूर्ण है।

षट् सप्ततिर्नयनजा य इमे प्रदिष्टा
रोगा भवन्त्यमहतां महतां च तेभ्यः ॥८॥
स्तन्यप्रकोप कफमारुत पित्त रक्तैः
बालाक्षिवर्त्म भव एव कुकूणकोऽन्यः ॥
मृद्नाति नेत्रमतिकण्डुमथाक्षिकूटं
नासाललाटमपि तेन शिशुः सनित्यम् ॥६॥
सूर्यप्रभां न सहते स्रवति प्रबद्ध
तस्याहरेद् रुधिरमाशुविनिर्लिखेच्च ।
क्षौद्रायुतैश्च कटुभिः प्रतिसारयेत्,
मातुः शिशोरभिहितं च विधिं विदध्यात् ॥१०॥

७६ प्रकार के जो नेत्र रोगों का वर्णन किया गया है। ये अधिक वयस्क तथा अल्प वयस्क—दोनों को होते हैं। इन रोगों के अतिरिक्त एक रोग है जो बच्चों के आंखों का वर्त्मभाग में स्तन्य का प्रकोप, कफ वायु, पित्त व रक्त का प्रकोप के कारण होता है। जैसा इन्दुप ने इसको एक अभिष्यन्द का भेद बताया है। इसको कुकूणक

कहते हैं। "जैसा उन्होंने कहा है—'योऽसौ कुकूणको बालानामेव भवति, स कफाभिष्यन्देऽवरुद्धोऽतो न संख्यातिरेक:।"

कुकूणक में शिशु सर्वदा आँख को खुजलाता है, नासा-ललाट अक्षिकूट को भी बार-बार खुजलाता है। शिशु अधिक समय तक सूर्य रश्मि सहन नहीं कर सकता है।

चिकित्सा :—कुकूणक में रक्तमोक्षण करे, वर्त्म को लेखन करे। कटुरसयुक्त द्रव्य मधु के साथ मिलाकर उससे प्रतिसारण करें। माता का भी स्तन्य विकृति की चिकित्सा करे।

क्षीरप बालक चिकित्सा (कुकूणक के लिये)

तं वामयेत् मधुसैन्धवसम्प्रयुक्तैः
पीतं पयः खलु फलैः खरमञ्जरीणाम् ॥११॥
स्यात् पिप्पलीलवणमाक्षिक संयुतैर्वा।
नैनं वमन्तमपिवामयितुं यतेत ॥
(सु. उ. १९ अ.)

मधु सैन्धव, अपामार्ग बीज चूर्ण के साथ दूध पिलावे। पिप्पल चूर्ण, नमक, मधु, अपामार्ग बीज चूर्ण मिलाकर दूध पिलाने से वमन होता है। अपने से वमन होने से वमन न करावें।

क्षीराद व अन्नाद का वमन—

दत्वा वचामथनदुग्धभुजे प्रयोज्य
मूर्च्छं ततः फलयुतं वमनं विधिज्ञः।

क्षीरान्नाद शिशु को वही वमन औषध वच के साथ देवें। अन्नाद शिशु को मदनफल चूर्ण मिलाकर उक्त वमन औषध देना चाहिये।

परिषेचन—

जम्ब्वाम्रधात्र्यश्मन्तकदलैः परिधावनार्थं।
कार्यं कषायमवसेचनमेव चापि ॥ (सु. उ.१९ अ.)

जामुन, आम, आमलकी और अश्मन्तक की पत्ती के क्वाथ से आंख का प्रक्षालन करे और परिषेक करे।

आश्च्योतन—

आश्च्योतने चहितमत्र घृतं गुडूची-
सिद्धं तथाऽऽहरपिचत्रिफलाविपक्वम् ॥

आश्च्योतन के लिये गुडूची स्वरससिद्ध घृत अथवा त्रिफला सिद्ध घृत देवे।

कुकूणक में अञ्जन—

नेपालजामरिच शंखर साञ्जनानि
सिन्धुप्रसून गुडमाक्षिक संयुतानि ॥
स्यादञ्जन मधुरसा मधुकाम्रकैर्वा

अञ्जनार्थ मैनसिल, मरिच, शंख, रसांजन, सैन्धव गुड़ मधु मिलाकर देवे।

मुर्वा, मुलेठी, आम्र का भी अञ्जन देवें।

इसको कृष्णायादि चूर्णाञ्जन, व्योषादि गुटिकाञ्जन दे सकते हैं।

शिशु का शुक्र (अव्रण)

स्रोतोजशंखदधि सैन्धवमर्धपक्षं
शुक्रं शिशो नुदति भावितमञ्जनेन।
स्यन्दे कफादभिहितं क्रममाचरेच्च
बालस्यरोगकुशलोऽक्षिगदं जिघांसुः ॥१६॥
(सु. उ. २९ अ.)

दही से शंख व सैन्धव पीसकर ७½ दिन उससे बार-बार रसाञ्जन को लेपन करें। पुनः रजाञ्जन को पीस कर वर्त्ति बनावें। इसका अञ्जन (लगाने से) शिशु का शुक्र अच्छा होता है।

शिशु का अक्षि रोग मे कफज अभिष्यन्द की चिकित्सा करे। क्योंकि शिशु में कफ का प्राबल्य होता है।

शिशुओं के रोग के विषय पर कुछ बातों के ऊपर ध्यान देना आवश्यक है। कहा भी :—'बाले विवर्धते श्लेष्मा' शिशुओं में कफ की वृद्धि होती है।

(१) इसलिये कफ प्रत्यनीक चिकित्सा का मूल सूत्र यहां स्मरण रखना चाहिये।

(२) द्वितीयत :—श्लेष्मा प्राकृतावस्था में बल देने वाला है। कहा है जैसे—

प्राकृतस्तु बल श्लेष्मा। श्लेष्मा इनका स्वाभाविक बल देने वाला है। अतः इसका रक्षण सर्वथा आवश्यक है।

(३) तृतीयत:—बालों को स्वभावतः कुछ कफ की अधिकता होने से अत्यधिक कफ प्रत्यनीक चिकित्सा न करे। क्योंकि इससे उनकी दुर्बलता तथा क्षीणता आ सकती है।

काश्यप संहिता और शिशुरोग

श्री डा० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी वैद्य एम० ए०, पी० एच० डी० आयुर्वेदाचार्य
अध्यक्ष–संस्कृत विभाग, डी० ए० वी० कालेज, वाराणसी

उत्तरवाहिनी पुण्यसलिला काशीपुरी के अन्तराल में विद्योवाम की आत्मा कण-कण में मुखरित हुई जान पड़ती है। हमारे डाक्टर ब्रह्मानन्द त्रिपाठी वैद्य उसके जीते जागते प्रमाण हैं। सुनते हैं भूत-भावन बाबा विश्वनाथ की इस अनूठी नगरी के अणु-अणु में सरस्वती समाई हुई है। वेदों से मण्डित इस भूभाग में देवगिरा पद-पद पर सुनाई पड़ती है। दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज के इस गिरा के अध्यक्ष साहित्य और आयुर्वेद दोनों के आचार्य वे हैं ही। आप साहित्य के स्रोतों में प्रवाहित रहते हुए भी रुक-रुक कर आयुर्वेद वाङ्मय की सेवार्थ अपनी लेखनी को उन्मुख करते रहते हैं।

प्रस्तुत लेख में काश्यप संहिता पर आपकी विहंगम दृष्टि शिशु और शिशु रोगों के विवेचन पर टिक गई है।

—गोपालशरण गर्ग

चरक, सुश्रुत, भेल संहिताओं में अपने-अपने विषयों का पर्याप्त विवेचन है किन्तु शिशुचर्या का विशद वर्णन उपलब्ध नहीं होता। काश्यपसंहिता अथवा वृद्धजीवकीय तन्त्र में 'बालचर्या' तथा 'जातकर्मोत्तराध्याय' शिशु चिकित्सा की दृष्टि से अपना स्थान रखते हैं। इनके अतिरिक्त उक्त संहिता में प्रारम्भ से ही जहां-जहां शिशुचर्या का उल्लेख हुआ है उन सब का दिग्दर्शन यहां क्रमशः प्रस्तुत है।

काश्यपसंहिता सूत्रस्थान 'लेहाध्याय' में अक्षीरा, अल्प-क्षीरा, दुष्टक्षीरा, रोगिणी माता अथवा धात्री वाले बालकों के लिए विविध प्रकार के अवलेहों की कल्पना का निर्देश किया है। मेधा तथा अग्निबल की वृद्धि के लिए मधु घृत के साथ घिसकर सुवर्ण देने का विधान है। तदनन्तर ब्राह्म्यादि-घृत का प्रयोग रक्षोघ्न बतलाया है। २५वें 'वेदनाध्याय' में विस्तृत रूप से बालक की वेदना जानने का प्रकार है। २७वें रोग. अ. में बालचिकित्सा में लंघन, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण का निषेध किया है। २८वें 'लक्षणाध्याय' में बालकों के अल्पायु तथा दीर्घायु के लक्षणों का स्पष्ट प्रति

पादन किया गया है। चिकित्सा स्थान के 'द्विव्रणीय अध्याय' में बालचर्या का वर्णन है। कल्पस्थान प्रथम अध्याय में ग्रहों की शान्ति के लिये नन्दन धूप की चर्चा है। खिल-स्थान के 'भैषज्योपक्रमणीय' अध्याय में क्षीरप और अन्नाद भेद से बाल्यावस्था के दो भेद किये हैं।

जातकर्मोत्तराध्याय का विस्तृत विवेचन

महर्षि कश्यप कहते हैं—अब हम जातकर्म से आगे क्या करना चाहिए उसका वर्णन करेंगे। जातकर्म कर लेने के बाद प्रथम मास में स्वस्तिवाचन से लेकर होम पर्यन्त करने के पश्चात् (यह कर्मकाण्ड का विषय है) दिन में बालक को सूर्य के, सायंकाल चन्द्रमा के दर्शन करावे। चौथे मास मे स्नान कराकर नवीन वस्त्र तथा आभूषण पहनाकर सरसों, मधु, घृत, गोरोचन से युक्त माता अथवा धात्री के साथ बालक का निष्क्रमण संस्कार करे और देवताओं के दर्शन करावे। वहां यज्ञ के निमित्त जलाई हुई अग्नि का घी तथा अक्षतों से पूजन कर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, कार्तिकेय मातृकाओं एवं कुलदेवता आदि का गन्ध, पुष्प, धूप, माला, नैवेद्य आदिपदार्थों से पूजन कर ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर ब्राह्मणों तथा गुरुजनों को प्रणाम कराकर अपने घर में प्रवेश करे। इस समय वैद्य निम्नलिखित मन्त्र से बालक पर जल का अभिषेक करे। मन्त्र—गुरुजनों से प्रशंसित, ब्राह्मणों के आशीर्वादों से पवित्र और देवताओं के द्वारा अभिरक्षित बालक तुम सौ वर्ष तक जीवित रहो।

छठे मास में शुभ दिन में देवताओं का पूजन कर ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त कर दक्षिणा देकर स्वस्तिवाचन कराकर घर में चार हाथ चौकोर या गोल स्थान को गोबर से लीपकर सोना, चांदी, तांबा, कांसा, शीशा, लोहा, मोती, प्रवाल आदि सभी मणियां, सभी धान्य, दूब, दही, घी, शहद, गोबर, गोमूत्र, कपास (रुई), पशु पक्षियों के आकार के बालक के खिलौने, गुड़िया, गेंद आदि तथा स्त्रियों के आभूषणों को वैद्य गोलाकार में रखकर पृथ्वी को अर्घ्य दे। मन्त्र—तुम सबसे अग्रज हो, सबको उत्पन्न करने वाली हो, अविनाशिनी हो, चर-अचर को धारण करने वाली हो, तुम पूजनीया हो और तुम पूजती हो। हे पृथिवी! तुम माता की भांति इस हमारे बालक की रक्षा करो। ब्रह्मा इसका अनुमोदन करें। तदनन्तर इस बालक को पूर्व की ओर मुख कराकर थोड़ी देर बैठावे। इस अवसर पर बालक अपने हाथों से जिस वस्तु का स्पर्श करे, पकड़े या अपनी ओर खींचे उसी से उसकी आजीविका होती है। फिर बालक को उठाकर उसको धातु निर्मित हलके, कोमल और जो नुकीले न हों, तथा बजते हों ऐसे खिलौनों से उसका मनोविनोद कराते हुए दरी आदि बिछी हुई भूमि पर प्रतिदिन अभ्यास के लिए थोड़ी देर तक उसको बैठायें। इस सम्बन्ध में कतिपय श्लोक—

शस्त्र तथा जल आदि से रहित लिपी हुई पवित्र भूमि पर बालक को थोड़ी देर बैठायें। अधिक बैठने से गीलापन, कमर में कमजोरी, पीठ का झुकना, थकावट, ज्वर, मल, मूत्र तथा वायु की रुकावट से आध्मान हो जाता है। अधिक देर तक बैठे रहने, भूमि पर पड़े रहने से अनेक प्रकार के कष्ट हो जाते हैं। तेज वायु से शरीर का कमजोर होना, वेदना तथा ज्वर हो जाता है। इससे बालक के शरीर की वृद्धि रुक जाती है, शरीर कठोर हो जाता है। मक्खी, कीड़ा, सांप, चूहा, नेवला, आंधी आदि का उस पर आक्रमण हो सकता है, अतः उसे अधिक समय तक तथा अशुभ दिन में भूमि पर न बैठायें।

छठे मास में वैद्य उसे अनेक प्रकार के फलों का प्राशन कराये, जिस बालक के दांत उत्पन्न होगये हों उसका अन्न प्राशन करावे अथवा दसवें मास में शुभ मुहूर्त में प्राजापत्य (रोहिणी) नक्षत्र में देवता और ब्राह्मणों की पूजा कर अन्न और दक्षिणा देकर स्वस्तिवाचन कराकर गोबर द्वारा लिपी हुई भूमि पर कुश बिछाकर, फूल बिखेर कर चार स्थानों में गन्ध माला से अलंकृत स्वस्तिक चिन्ह युक्त कलश स्थापन कर, ऊपर कहे हुए खिलौनों आदि को जुटाकर लावा, तित्तर, कपिञ्जल, मुर्गा इनमें से किसी एक का पकाया हुआ मांस को और खाने के लिये बने हुए पदार्थों के बीच में रखकर वैद्य वस्त्र भूषणादि से सुशोभित बालक को रक्षाविधान पूर्वक पूर्व या पश्चिम की ओर मुंह कराकर बैठाकर, अग्नि प्रज्वलित कर ऊपर रखे हुए अन्न का मन्त्रों से हवन करें। मन्त्र—

—शेषांश पृष्ठ ६६ पर

माधवनिदान और बालरोग

तथा उनकी भावप्रकाशीय एवं वृन्दमाधवीय चिकित्सा

लेखक—गोपालशरण गर्ग सहायक सम्पादक 'सुधानिधि'

सुधानिधि के आद्य संस्थापक सम्पादक स्वर्गीय श्री देवीशरण गर्ग के तृतीय पुत्र श्री गोपालशरण गर्ग अपने पिता के समस्त सद्गुणों के समन्वय का साकार रूप है। उसके कार्य-कलाप, योग्यता, शालीनता और विनम्रता में एक वैद्य के वे सभी अङ्कुर आभासित होते हैं जो धन्वन्तरि कार्यालय की गौरवमय परम्परा को प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए आवश्यक हैं।

माधव भावमिश्र और वृन्द तीनों को उसने इस पटुता के साथ इस लेख में एकासनासीन किया है कि व्यावहारिक पक्ष तो सटीक रहा ही आर्षपक्ष की कल्पना भी अपनी धुरी पर ठीक से जमी रही है।

माधवकर ने निदान पक्ष को ही उजागर किया है। वृन्द ने चलते फिरते तत्व तक पहुँचने का यत्न किया है। भावमिश्र ने उन सभी रिक्तताओं को पूर्ण कर दिया है जो एक चिकित्सक के लिए समस्या थी। नवोदित प्रतिभा सम्पन्न इस बाल गोपाल की माधुरी से हमारे पाठकगण भी सहज में ही मुग्ध होंगे इस आशय से यह लेखप्रस्तुत किया जा रहा है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

निदानशास्त्र के प्रकाण्ड साहित्यकार आचार्य माधवकर ने अपने रोगविनिश्चय नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में जिसकी कालान्तर में प्रसिद्धि माधवनिदान नाम से हुई बालरोग-निदान नाम से निम्नाङ्कित बालरोगों का उल्लेख किया है—

१. वात, पित्त, कफ दूषित स्तनपानजन्य बालरोग-त्रय
२ द्वन्द्वज, त्रिदोषज दुष्टस्तन्यपानजन्य बालरोग चतुष्टय
३. कुकूणक
४. पारिगर्भिक
५. तालुकण्टक
६. महापद्मविसर्प
७. अन्य बालविकार
८. ग्रहजुष्ट बाल—स्कन्द, शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका तथा नैगमेय ग्रह गृहीत बाल से सम्बद्ध रोग लक्षण।

एक बात ध्यान देने योग्य है कि आज के प्रसिद्ध बालरोग मसूरिका और रोमान्तिका को माधवकर ने बाल-रोगों के साथ नहीं गिनाया है तथा एतद्विषयक पूरे प्रकरण में इकत्तीसों श्लोकों में कहीं भी उसे बालरोग नहीं कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि टीका पद्धति प्रचलित होने के पूर्व चेचक या मसूरिका सर्वसाधारण का रोग था। बाद में जब सभी को टीका लगने लगा तभी यह रोग उन शिशुओं तक सीमित हो गया जिन्हें टीका नहीं लगता। आज भी जिन वन जातियों में टीका नहीं लगता वहाँ जब चेचक शुरू होती है तो वह मारक के रूप में आती है और

वह बालक, बालिका, युवा, युवती, प्रौढ, प्रौढ़ा, वृद्ध-वृद्धा किसी को नहीं छोडती।

माधवकर ने विविध दोषों से दुष्ट हुए दुग्ध के सेवन से होने वाले बालरोगों का पहले उल्लेख किया है। फिर बोलने में असमर्थ शिशुओं के रोगों को कैसे जाना जाय इस पर ७ पंक्तियों में अपने विचार प्रकट किए हैं। फिर कुकूणक नामक नेत्ररोग देकर। कोष्ठवृद्धि कर बालयकृद्रूप पारिगर्भिक को स्थान दिया है दोनों ही रोग उस काल में बालकों को बहुत होते होंगे इसीलिए उनका विशेष उल्लेख किया गया है फिर रसक्षयोत्थ (डिहाइड्रेशनकारी) तालुपात दिया है। ऐण्टीसेप्टिक द्रव्यों के आविष्कार से पूर्व जो बड़ा काल बीता है तब प्रायः विसर्प या एरिसिपेलस होता था इसका महापद्म नाम से वर्णन किया गया है। इसी के साथ-साथ त्वग्रोग अजगल्ली और अहिपूतना का नामोल्लेख करके एक बहुत महत्व का निम्नाङ्कित श्लोक दिया है :

ज्वराद्याः व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः।
बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा॥

जिसके अनुसार बड़ों को होने वाले ज्वरादि रोग बालकों के शरीर में भी हो सकते हैं अतः बालरोगचिकित्सा कुशल वैद्यों को उनका भी ध्यान बड़ों की तरह करना चाहिए।

अन्त में ग्रहबाधाओं के सामान्य लक्षण देते हुए स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनि, रेवती, पूतनात्रय, मुखमण्डिका तथा नैगमेय इन नौग्रह बाधाओं का विचार किया गया है। इनके साथ ही बालरोग पूर्ण कर दिया गया है।

दुष्टस्तन्यजन्य बालरोग

वातदुष्ट स्तन्य—वायु के कोप से दूषित माता के दूध के पीने से बालक को कोई भी वातव्याधि हो सकती है, उसका स्वर क्षाम (दुर्बल) अङ्ग कृश मल-मूत्र और वायु का निष्कासन कम हो जाता है।

पित्तदुष्ट स्तन्य—पित्तदोष से कुपित माता के दुग्ध के पीने से बालक का मल फटा फटा हो जाता है उसे कामला और पित्त के अन्य रोग हो जाते हैं, उसे प्यास बहुत लगती है सारा शरीर गरम रहता है।

कफदुष्ट स्तन्य—कफ के कोप से दूषित माता के दूध को पीने से बालक को कफ के रोग हो जाते हैं, लार बहुत टपकती है, नींद अधिक आती है, जड़ता, मुख और नेत्रों पर सूजन और उलटी या दूध पटकने के लक्षण मिलते हैं।

द्वन्द्वज स्तन्य दोष—वातपित्त के कारण कब्ज के साथ शरीर का गरम हो जाना; वातकफ के साथ कब्ज के साथ लार अधिक टपकाना तथा कफपित्त के साथ कामला के साथ मुख पर सूजन अधिक मिलती है।

त्रिदोषस्तन्य दोष—इसमें तीनों दोषों के कोप के लक्षण कब्ज, ज्वर तथा मुख शोथ एवं लालास्राव मिलते हैं।

वृन्दमाधव में इन स्तन्य दोषों को दूर करने के लिए माता तथा कुमार दोनों का उपचार करने हेतु निम्न व्यवस्था दी है :—

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूली जलं पिबेत्।
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्ब चन्दनम्॥
धात्री कुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा ससारिवम्।

अर्थात् वातात्मक स्तन्य दोष में दशमूल क्वाथ, पित्त दोषज स्तन्यदोष में गिलोय, शतावरी, पटोलपत्र, नीम की छाल, चन्दन का क्वाथ बना सारिवा के चूर्ण के साथ पिलावें।

हरिद्रादि तथा वचादिगण की औषधें स्तन्य शुद्धि के लिए दी जाती हैं उन्हीं से कफदोषजन्य स्तन्यदोष की भी शुद्धि की जानी चाहिए। द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज में उसी दृष्टि से विचार कर औषध व्यवस्था करनी चाहिए।

शिशुवेदना का ज्ञान करने के उपाय

माधवकर ने बोलने में असमर्थ शिशुओं के रोगों को ज्ञान करने के निम्नलिखित उपाय सुझाये हैं :—

१—बच्चे का धीरे या तेजी से रोना उसके कम या अधिक कष्ट या वेदना की ओर इंगित करता है,
२—जहां उसे अधिक कष्ट होता है उस स्थान को शिशु बार-बार छूता है,
३—जहां वेदना होती है वह स्थान स्पर्शाक्षम (टेंडर) होता है।

४—सिर में दर्द होने पर बालक आंखें बन्द रखता है।
५—पेट दर्द होने पर बालक को कब्ज या उल्टी आती है, वह दूध पटकता है, स्तन काट लेता है उसकी आंतें गुड़गुड़ाती हैं। पेट फूलना, पीठ का दबना और पेट का ऊपर की ओर उठना भी मिल सकता है
६—वस्ति या गुह्यांगों मे दर्द होने से टट्टी नहीं करता, पेशाब करने में चीखता है देखने में डरता या भयभीत दिखाई देता है।

बच्चे के बीमार हो जाने पर वैद्य को उसके स्रोतसो, अंगों और सन्धियों को यत्न पूर्वक बार-बार देखकर रोग का पता लगाना चाहिए।

कुकूणक निदान और चिकित्सा

माधवकर ने कुकूणक के विषय मे निम्नांकित ज्ञान दिया है :—

१—कुकूणक वर्त्मों (पलकों) का रोग है,
२—कुकूणक क्षीरदोष से उत्पन्न होता है,
३—कुकूणक हो जाने पर—
 i. नेत्र में खुजली और वेदना,
 ii. नेत्र से बार-बार पानी बहना,
 iii. सूर्य के प्रकाश में देखने में अशक्ति तथा—
 iv. पलक खोलने में अक्षमता,
४—शिशु अपने माथे, अक्षिकूट और नासिका को बार-बार घिसता रहता है।

ये सभी लक्षण आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से फोटोफोबिया, लैक्रीमेशन, इचिंग नेत्रशूल, ऊपरी पलक का ड्रूपिंग (गिरा हुआ रहना) में सिमट जाते हैं जो ट्रैकोमा में पाये जाते हैं जिसे ग्रैन्युलर कजेक्टाइविटिस भी कह सकते हैं।

कुकूणक की चिकित्सा 'भावमिश्र' ने इस श्लोक में प्रकट की है :—

फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च
स शृंगवेरं बृहतीद्वयं च।
आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं
कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति॥

त्रिफला, लोधपठानी, पुनर्नवा मूल, अदरक, छोटी और बड़ी कटेरी इनको पीसकर सुहाता गरम लेप पलकों के ऊपर करते रहने से कुकूणक दूर हो जाता है।

पारिगर्भिक निदान तथा चिकित्सा

जब बालक गर्भिणी माता का दूध पीता रहता है तो उसे खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि और भ्रम आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा उसका पेट बढ़ जाता है।

यह व्याधि और उसके लक्षण इन्फेंटाइल लिवर की ओर इङ्गित करती हैं पर यह इतनी बड़ी व्याधि है भी चिकित्सा से प्रतीत नहीं होता।

इसकी चिकित्सा के लिए माधवकर और भावमिश्र दोनों ने एक ही बात कही है।

रोगं परिभवाख्यञ्च योजयेत्तत्रदीपनम्।
—माधव

पारिगर्भिकरोगे तु युज्यते वह्निदीपनम्।
—भावमिश्र

इतना सूक्ष्म इंगित और रोग को असाध्य न लिखना इनसे पारिगर्भिक रोग एक साधारण शिशु रोग मालूम पड़ता है।

तालुकण्टक निदान और चिकित्सा

तालु प्रदेश में मांस भाग मे कफ के प्रकोप के कारण तालुकण्टक रोग होता है जिससे सिर मे तालु मे निम्नता आ जाती है और तालुपात हो जाता है। इसके कारण बच्चा दूध पीने से घबराता है और कष्ट से दूध पीता है उसका मल पतला आता है। प्यास बहुत लगती है नेत्र और कण्ठ में कष्ट होता है गर्दन मुश्किल से सधती है तथा वमन होती रहती है।

उक्त माधव निदानोक्त लक्षणों से यह रोग मुख के अन्दर सोफ्ट पैलेट में होने वाला रोग मालूम पड़ता है—तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्। तालु मुख के अन्दर और सिर के ऊपर दोनों जगह माना जाता है। मुख के अन्दर रोग होने के साथ में वमन और पहले दस्त होने से रसाभाव या डिहाइड्रेशन होने से तालुपात सम्भव है—तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते।

वृन्दमाधव ने इसकी चिकित्सा कफघ्न निरूपित की है :—

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ।।

हरड़ घुड़वच कूठ के कल्क को शहद में मिला दूध के साथ बालक को पिलाने से उसे तालुपात से मुक्त किया जाता है। इसी श्लोक में भावमिश्र ने तालुपातनात् के स्थान पर तालुकण्टकात् कर दिया है।

महापद्मरोग निदान तथा चिकित्सा

यह त्रिदोषज प्राणनाशक वस्तिज तथा शीर्षज पद्मवर्ण का विसर्प है यह सिर से हृदय तक और हृदय से गुद तक चलता है :—

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो वस्तिशीर्षजः ।
पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः ।।
शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत् ।

वस्तिक्षेत्र का विसर्प गुद को जाकर हृदय तक लौटता है और फैल जाता है।

भावप्रकाश में क्षत-विसर्प—विस्फोट और इनके कारण शिशु में उत्पन्न हुए रोगों को एक ही क्वाथ से दूर करने का विधान दिया है—

पटोलत्रिफलानिम्ब हरिद्रा क्वथितं पिबेत् ।
क्षतवीसर्पविस्फोट ज्वराणां शान्तये शिशुः ।।

अजगल्ली निदान तथा चिकित्सा

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजो मुद्गसनिभाः ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका ।।

यह वर्णन क्षुद्ररोग निदान में अजगल्ली का दिया है। यह शूलरहित, ग्रथित, सवर्ण स्निग्ध मूंग बराबर बड़ी पिडकाओं का रोग है जो कफवातजन्य होती हैं और जो बालकों में निकलती है।

इसे वृन्दमाधव के टीकाकार श्री कण्ठदत्त अचिल्ली या चिल्ली भी कहते हैं। पर माधवनिदान के टीकाकार श्रीकण्ठदत्त इस नाम का उल्लेख नहीं करते इससे ये दोनों श्रीकण्ठ एक हैं या भिन्न यह शंका उपस्थित हो जाती है।

अजगल्ली की चिकित्सा भावमिश्र ने निम्नांकित लिखी है।

i जोंक लगावे।

ii बार-बार सीप या सोरठी मिट्टी (फिटकरी) जला कर उसे पानी में पीस रखे।

iii. अधिक कठिन हो तो क्षार योग से उसे गला दे।

अहिपूतना निदान तथा चिकित्सा—

माधवकर ने सुश्रुत संहिता से अहिपूतना का वर्णन निम्न शब्दों में दिया है—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् ।
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने कण्डूरक्तकफोद्भवा ।।
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते ।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं त विद्यादहिपूतनम् ।।

भोज ने इसे दुष्ट स्तन्यपान के कारण भी उत्पन्न हुई स्वीकार की है:—

दुष्टस्तन्यस्य मानेन मलस्याक्षालनेन च ।
कण्डूदाहरुजावद्भिः पिडकैश्च समाचिता ।।
सम्भवन्ति यथादोष दारुण ह्यहिपूतना ।।

जब शिशु को मलमूत्र में सना हुआ देर तक रहने दिया जाता है और मल को धोया नहीं जाता या पसीना अधिक आता रहे और शिशु को स्नान न कराया जाय तो उसके गुद प्रदेश और उसके आस-पास गन्दगी के कारण तथा रक्त और कफजन्य पिडकाएं उत्पन्न हो जाती हैं। जिनमें खुजली होती है खुजाने पर जलन पड़ती और स्राव निकलता है और छोटी-छोटी पिडकाएं बन जाती हैं उनसे पानी निकलता है ये सब मिलकर एक हो जाती हैं और घोर व्रण या दारुण रोग का रूप धारण कर लेती हैं। यह विकार अहिपूतना कहलाता है।

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् ।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् ।।
शंखसौवीर यष्ट्या तु लेपः कार्योऽहिपूतने ।

अर्थात् सबसे पहले संशोधन द्रव्यों से मां या धाय के दूध को शुद्ध करे। फिर त्रिफला और कत्थे के काढ़े से व्रणों को धोता रहे। बाद में शंख–सौवीरांजन तथा मुलहठी का लेप करे।

वृन्दमाधव ने निम्न उपाय और बतलाये हैं:—

i. करञ्जत्रिफला तिक्तै: सर्पि सिद्ध शिशोर्हितम् ।

करंज त्रिफला तथा तिक्तवर्ग के द्रव्यों से सिद्ध किए घी का लेप तथा पान शिशु को हितकर होता है ।

ii. रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ।

रसोत को जल में घोल कर पिलाना या उसके पानी में भिगो कर कपड़ा रखना भी अहि पूतना रोग मे हितकर माना जाता है ।

आधुनिक विद्वान् जिंक ओक्साइड (सफेदा) और कास्टरोल (अण्डी का तेल) मिलाकर वहां पोतने का सुझाव देते हैं ।

ग्रहबाधाएं और उनसे जुष्ट बालकों के लक्षण

माधवकर ने सर्व प्रथम ग्रहजुष्ट बालकों के सामान्य लक्षण दिये है फिर प्रत्येक ग्रहबाधा का पृथक् पृथक् वर्णन किया है । जो सब इस प्रकार है:—

सामान्य लक्षण—किसी भी ग्रह बाधा के कारण बालक क्षणभर में उद्विग्न क्षणभर में त्रसित (डरा हुआ) और क्षणभर में रोने लगता है । वह अपने नाखूनों या दांतों से अपने को या धात्री को फाड़ने या काटने लगता है, ऊपर की ओर देखता है, दांत किटकिटाता है, चिल्लाता है और जमुहाई लेता है । उसकी भ्रू गिर जाती हैं, दांतों से ओष्ठ काट लेता है, बार-बार मुंह से फेन गिरता है, दुर्बल होता जाता है, रात मे जागता है, उसकी आंखें सूज जाती हैं, फटा हुआ मल निकलता है, आवाज फटी-फटी हो जाती है, उसके शरीर मे मांस और रक्त की गन्ध (गन्दी गन्ध) आती है और पहले की तरह वह आहार भी सेवन नहीं कर पाता है ।

इस समस्त वर्णन मे विचित्र लक्षणों की उपस्थिति पाई जाती है व्याधि से पीड़ित सा बालक विचित्र व्यवहार करता है । तीव्र उपसर्गकारी रोगों में ज्वर एक सर्व सामान्य लक्षण होता है वह यहां नहीं मिलता । मस्तिष्क विकार-उन्माद-अपस्मार सरीखे लक्षणों का प्राबल्य पाया जाता है ।

हमारे प्राचीन चिकित्सा तत्ववेत्ता किसी सूक्ष्मतेजस्व शक्तियों में विश्वास करते थे और उन्हों में से किसी के द्वारा यह रोग होता है ऐसा स्वीकार करते थे । आधुनिक मनोविज्ञान धीरे-धीरे इस रहस्य को स्वीकार सा कर रहा है । उसने विकृत मनोविज्ञान अध्ययन मे अल्टर्नेटिंग पर्सनलिटी (Alternating Personality) की कल्पना की है जब एक फ्रेंच बोलने वाली महिला सहसा जर्मन भाषा बोलने लगती है जिसे उसने कभी नहीं सीखा था और अपना नाम, ग्राम, सम्बन्धी सब बदले हुए बतलाती है । जांच करने पर पता लगता है कि जो नाम वह फ्रेंच महिला बतला रही है वह जर्मनी मे किसी महिला का नाम था जिसकी मृत्यु हो चुकी है । जब एक महिला के शरीर में मृत महिला आविष्ट होसकती है तो विविध ग्रह जिनका अस्तित्व आयुर्वेद स्वीकार करता है अवश्य कोमल मन-आत्मावाले बालकों को आविष्ट करलें यह असम्भव नहीं है । तीव्र औपसर्गिक ज्वरों में जब आत्मा अधीरता को प्राप्त होती है किसी के शरीर मे दूसरी आत्मा प्रवेश कर सकती है । चरक संहिता के निदान स्थान के ७ वें अध्याय में भूतोन्माद का विचार करते हुए उनके आवेशकाल बतलाते हुए लिखा है:—

"उन्मादयिष्यतामपि खलु देवर्षिपितृगन्धर्वयक्षराक्षसपिशाचानां गुरुवृद्धसिद्धानां वा एषु अन्तरेषु अभिगमनीया पुरुषा भवन्ति; तद्यथा—पापस्य कर्मणः समारम्भे, पूर्वकृतस्य वा कर्मणः परिणामकाले, एकस्य वा शून्यगृहवासे चतुष्पथाधिष्ठाने वा, सन्ध्यावेलायामप्रयतभावे वा, पर्वसन्धिषु वा मिथुनी भावे, रजस्वलाभिगमने वा, विगुणे वा बलिमङ्गलहोमप्रयोगे, नियम व्रतब्रह्मचर्य भङ्गे वा, महाहवे, देशकुल पुरविनाशे वा, महाग्रहोपगमने वा स्त्रियो वा प्रजननकाले, विविधभूता शुभाशुभस्पर्शने वा, वमनविरेचन रुधिरस्रावे, अशुचेरप्रयतस्य वा, चैत्यदेवायतनाभिगमने वा, मांस मधुतिल गुडमद्योच्छिष्टे वा, दिग्वाससि वा, निशिनगरनिगमचतुष्पथो पवनश्मशानाघातनाभिगमने वा, द्विजगुरुसुरयति पूज्याभिधर्षणे वा, धर्माख्यान व्यतिक्रमे वा, अन्यस्य वा कर्मणोऽप्रशस्तस्यारम्भे, इत्यभिघातकाला व्याख्याता भवन्ति ।"

इतना विस्तृत वर्णन यह सिद्ध करता है कि इस विषय में बहुत कुछ प्राचीन काल में खोज की गई थी । जब बड़े-बड़े पुरुषों को यह भूत प्रेत पिशाचादि आविष्ट करते

हैं तो बालकों को आविष्ट न करें ऐसा नही हो सकता। ये भूत या ग्रह बाधाएं हिंसा, रति और अभ्यर्चन के लिए ही ऐसा करते हैं। हिंसार्थ आवेश में व्यक्ति पानी में डूब जाता या अग्नि से अपने को जला डालता है। रति और अर्चना के इच्छुक साध्य होते हैं वे मन्त्रौषधि मासीमंगल बलि उपहार होम नियम व्रत प्रायश्चित्तोपवास स्वस्त्ययन प्रणिपात गमनादि से सुधर जाते हैं।

सभी ग्रहों में माषपर्णी मुण्डी, सुगन्धवाला क्वाथ से; बच्चे को स्नान करना श्रेष्ठ माना जाता है। बच्चे के शरीर पर सप्तपर्ण, कुष्ठ,हल्दी,चन्दन का अनुलेपन कराना तथा सांप की केंचुल, लहसुन, मूर्वा, सरसों, नीम के पत्ते बिल्ली का मल, बकरी के बाल, मेढ़ासिगी,वचा और मधु का धूप देने से शिशु का ज्वर नष्ट होता तथा समस्त ग्रह बाधाओं का नाश हो जाता है।

वृन्दमाधव ने ग्रहबाधा हरण हेतु निम्न मन्त्र का उच्चारण बतलाया है:—

"ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय ॐ सत्यं सत्यबद्दे स्वाहा: ॐ कं टं यं सं वैनतेयाय नम: ॐ ह्लां ह्लीं क्ष:"

भावमिश्र और वृन्द माधव दोनों ने निम्न आठ द्रव्यों से सिद्ध अष्टमंगलघृत का प्रति दिनपान शिशुओं के भूत राक्षस पिशाच मातृका हर बतलाया है—वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी सफेद सरसों, सारिवा, सेंधा नमक, पिप्पली तथा घी।

स्कन्दग्रहग्रहीत लक्षण—स्कन्दग्रह जब किसी बालक का आविष्ट कर लेता है तब केवल एक नेत्र या शरीर के एक भाग से स्राव निकलता है दूसरे नेत्र या गात्र से नहीं निकलता, मुख टेढ़ा हो जाता है दूध पी नहीं पाता, ऊपर को दृष्टि होजाती है। शरीर से रक्तकी गन्ध आतीहै।

ये सारे लक्षण अर्दित (फेशियल पैरेलाइसिस) सहित पक्षवध (हैमीप्लीजिया) के हैं।

चिकित्सा—स्कन्दग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा में एरण्ड के पत्तों से गरम किये जल से स्नान; देवदारु,रास्ना, मधुरगण के द्रव्य, दुग्ध इनसे सिद्धघृत पिलाना; सरसों, सांप की केंचुल, वचा, सफेद चोंटनी, घी, ऊंट, बकरी, भेड़, गाय के बाल जला कर धूप देना; तथा धोंकर, बेल, अर्जुन की जड़ों में से किसी का भी धारण करना पर्याप्त होता है।

स्कन्दापस्मारजुष्ट लक्षण—बच्चा मूच्छित होकर मुख से झाग गिराता है होश आने पर बहुत रोता है, पूय और रक्त की बू शरीर से आती है।

चिकित्सा—बेल, सिरस, सफेद दूब और सुरसादिगण के द्रव्यों से स्नान; आठ प्रकार के मूत्रों में पके तैल की मालिश, क्षीरी वृक्षों के क्वाथ तथा काकोल्यादि से सिद्ध घृत को दुग्ध के साथ देना; गिद्ध, उल्लू का मल, बाल, हाथी के नाखून, घी, बैल के बाल से धूपन कराना; तथा कौंच के बीजों की माला बना गले में डालना।

शकुनिग्रह ग्रहीत लक्षण—शरीर शिथिल, चकित दृष्टि, पक्षी जैसी शरीर से गन्ध, सारे शरीर में दाह पाक युक्त फोड़े निकलना, उनसे स्राव बहना।

चिकित्सा—वेतस, आम और कैथ के पत्तों के क्वाथ से स्नान, हाऊबेर, मुलहठी, खस, सारिवा, नीलोफर, पद्माख, लोध, प्रियंगु, मजीठ, गेरू का सारे शरीर पर लेप कराना; स्कन्दग्रह में वर्णित धूप देना, स्कन्दापस्मार में वर्णित घृत पिलाना; शतावरी की माला गले में धारण कराना। करंज के पेड़ के नीचे बच्चे का ले जाय, तिल, चावल, हरताल, मेंसिल की बलिदे कर स्नान कराके सफेद दूब, सिरस, गन्धक, धव, गुग्गुल, सरसों से सिद्ध तैल की मालिश करे।

लक्षण और चिकित्सा से यह कोई कोकल इन्फेक्शन (गोलाणुओं का सार्वदैहिक उपसर्ग) सरीखा लगता है।

रेवतीग्रहजुष्ट लक्षण—सारा शरीर फोड़ों से भरा हुआ, उनसे रक्त बहता हुआ और कीचड़ की गन्धयुक्त शरीर, मल फटा-फटा, ज्वर, दाह खूब मिलता है।

चिकित्सा—असगन्ध के पत्तों से स्नान करावे; कूठ, शिलारस, गुग्गुल' नलद (जटामांसी) और गौरकदम्ब से सिद्ध तैल की मालिश करे; धव, साखू, अर्जुन, सलई, तेंदू औरकाकोल्यादिगण के द्रव्यों से सिद्ध घृत बच्चे को पिलावे असगंध, कुलथी और शंख की पिष्टी का सारे शरीर पर लेप करे, प्रातः सायं बच्चे को गीध, उल्लू की बीट, जौ, बांस के बीज और घी की धूप दे। सफेद फूल, खील, दूध,

शालिभात की बलि गायों के रहने के स्थान पर दे, संगम पर स्नान करावे।

यह भी पूयजनक जीवाणु उपसर्ग सरीखा रोग है।

पूतनाजुष्ट लक्षण—अतीसार, ज्वर, प्यास, तिर्यक् देखना, रोना, नींद का न आना और अधिक बेचैन रहना।

चिकित्सा—ब्राह्मी-श्योनाक-वरुणादि के क्वाथ से स्नान, और विदारी, सफेद दूब, हरिताल, मनःशिला, कुष्ठ, शिलारस से बने तैल की मालिश, वंशलोचन मुलहठी सिद्ध घृत का पान, कूठ तालीसपत्र का धूपन, सफेद चोंटनी की माला धारण, मछली भात की बलि।

यह गैस्ट्रो ऐंटराइटिस का कोई रूप मालूम पड़ता है पर चिकित्सा सर्वथा अलग है।

अन्धपूतना या गन्धपूतनाजुष्ट लक्षण—वमन, कास, ज्वर, तृष्णा, अतिरोदन, शरीर से वसा की गन्ध आना, अतीसार और दूध न पीना।

चिकित्सा—नीम के पत्तों से स्नान, पिप्पली, पिप्पली मूल, चित्रक, मुलहठी, मधु, शालिपर्णी बड़ी कटेरी से सिद्ध घृत का पान, कस्तूरी, केसर, अगर का लेप शरीर पर करें किन्तु आंखों के पलकों पर ठण्डा कपूर चन्दन का लेप करें, पुराना कपड़ा जलाकर उसकी धूप दें, कौंच के बीजों की माला पहनावे, कच्चा पक्का मांस और पशु रक्त की बलि दे तथा सर्वगन्धोदक से स्नान करावे।

यह कोई ज्वरकारी उपसर्ग है।

शीतपूतनाग्रहजुष्ट लक्षण—बच्चा कांपता, खांसता और क्षीण होकर रोता है, नेत्ररोग, गन्ध का अभाव, वमन और अतीसार मिलता है।

चिकित्सा—गोमूत्र से सिद्ध तैल की मालिश, कुटकी नीम करञ्ज, ढाक, अर्जुन इनकी छाल तथा दूध से सिद्ध घृत पिलावे, नीम के पत्तों से धूपन करे, लाल चोंटनी की माला पहनावे।

किसी तीव्र उपसर्ग की सूचना देता है।

मुखमण्डिकाजुष्ट लक्षण—बच्चा प्रसन्न दिखता है सिराएं चमक आती हैं, मूत्र की गन्ध आती है और वह बहुत खाता है।

चिकित्सा—कैथ बेल अरनी बाबा अड़्बो के पत्तों के क्वाथ से स्नान, भांगरा और असगन्ध से सिद्ध वसा तथा तैल की मालिश, वचा की धूप, गोष्ठ में पारा-मनःशिला हरताल की बलि, मन्त्रपूत जल से बनिम्थान पर स्नान करावे।

यह वृक्करोग जैसा विकार लगता है।

नैगमेय ग्रहजुष्ट लक्षण—वमन, लालास्राव, कण्ठशोष, मुखशोष, मूर्च्छा, गन्धाभाव, ऊपर को आंखें चढ़ना दांत किटकिटाना।

चिकित्सा—बिल्व अग्निमन्थ चिरबिल्व पत्तों के जल से स्नान, प्रियंगु, चोड़, सारिवा, सोया, श्योनाक और गोमूत्र सिद्ध तैल की मालिश करना, घुड़वच धारण कराना, बन्दर उल्लू गीध की विष्ठा का धूपन, क्षत्र पेड़ के नीचे तिलतन्दुलकी बलि देना, फिर क्षीरी वृक्ष के नीचे स्नान करावे।

यह कोई तीव्र ज्वर रहित औपसर्गिक रोग है।

ग्रहों की असाध्यता

प्रस्तब्धाक्षः स्तनद्वेषी मुह्यते चानिशं मुहुः।
तं बालमचिराद् हन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षणः॥

माधवकार ने उन ग्रहरोगों को जिनमें पूरे-पूरे लक्षण हों असाध्य ठहराया है। तथा जिनमें रोगी की आंखें पथरा जांय, दूध पीना छोड़ दे बार बार मूर्च्छित हो उसे भी असाध्य माना तथा उनकी चिकित्सा करने से नाम न होने का इङ्गित किया है।

भावप्रकाशोक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण योग

भावमिश्र ने बालरोगों की विविध अवस्थाओं में क्या क्या करना चाहिए इस दृष्टि से कई अच्छे अच्छे योग या नुस्खे दिये हैं उन्हें संक्षेप से नीचे दिया जा रहा है—

१. **भद्रमुस्तादि क्वाथ**—यह सर्वज्वरहर है। इसके निर्माण में नागरमोथा, हरड़, नीम, परोमपत्र तथा मुलहठी पड़ती है।

२. **चतुर्भद्रावलेह**—यह ज्वरातिसार की दवा है। मोथा, पिप्पली, अतीस और काकड़ासिंगी के चूर्ण को शहद में मिलाने से तैयार होता है।

३. **बिल्वादि क्वाथ**—यह आमातीसार औषध है। इसमें बेलगिरी, धाय के फूल, लोध्र, गजपीपल पड़ती हैं। काढ़ा भी बनता है और चूर्ण को शहद में मिलाकर रखने

से विल्वादि अवलेह भी बनता है।

४. **समंगादि क्वाथ**—यह भयंकर अतीसार की दवा है। लज्जावन्ती, धाय, लोध, मारिवा का क्वाथ शहद डाल कर देते हैं।

५. **विडंगादि चूर्ण**—आमातीसार नाशक है। वाय-विडंग, अजमोद, पिप्पली चूर्ण कर गरम पानी से देते हैं।

६. **मोचरसादि यवागू**—मोचरस, लज्जावन्ती, धाय, कमलकेसर से यवागू बनाते हैं। यह रक्तातीसार की औषध है।

७. **नागरादि क्वाथ**—सर्वातीसारहर है सोंठ, अतीस, मोथा, सुगन्धवाला, इन्द्रजौ से तैयार होता है।

८. **लाजादि चूर्ण**—प्रवाहिका की दवा है। खील, मुलहठी, मिश्री, शहद को तण्डुलोदक से दें।

९. **रजन्यादि चूर्ण**—ग्रहणी की औषध है। हल्दी, चीड, देवदारु, बड़ी कटेरी, गजपीपल, पृश्निपर्णी, सोया का चूर्ण मधु-घृत के साथ देना। यह न केवल ग्रहणी अपि तु वातिकशूल, कामला, ज्वरातिसार, पाण्डुरोग को दूर करके अग्नि को दीप्त करता है।

१०. **मुस्तकादि स्वरस**—कास (खांसी) नाशक है। वालकों की पांचों प्रकार की खांसी को दूर करता है। मोथा, अतीस, अडूसा, पिप्पली और काकड़ासिगी के स्व-रसों को एकत्र कर शहद से देते हैं।

११. **केशरावलेहिका**—यह पुरानी खांसी की दवा है। छोटी कटेरी, चमेली के पत्ते, जायफल और केसर (नागकेसर) मिलाकर शहद से चटाते हैं।

१२. **द्राक्षादिचूर्ण**—कासश्वास नाशक है। मुनक्का, अड़ूसा, हरड़, पिप्पली का चूर्ण मधु घृत के साथ दें।

१३. **कटुरोहिण्यवलेह**—यह हिचकी दूर करता है। इसमें केवल कुटकी के चूर्ण को शहद से चटाते हैं।

१४. दूध गिरना रोकने के लिए दो योग हैं—

प्रथम—आम की गुठली की मीगी, लाजा, सेंधव, शहद से चटावें।

द्वितीय—छोटी बड़ी कटेरी के फलों का चूर्ण पिप्पली, पिप्पली मूल, चव्य, चित्रक, शुण्ठी के चूर्ण के साथ शहद से चटावें।

१५. **सैन्धवाद्यवलेह**—शिशु के पेट में दर्द हो और पेट फूल जाय तो उसे ठीक करना है—सेंधानमक, सोंठ, इलाइची, हींग भुनी और भारंगी का चूर्ण घी के साथ चटावे।

१६. **कणाद्यवलेह**—जब शिशुओं का मूत्र आना रुक जाय तब देते हैं। पिप्पली, मिर्च, मिश्री, शहद, छोटी इला-इची, सेंधानमक मिलाकर इसे तैयार करते हैं।

१७. **अश्वत्थ प्रयोग**—पीपल की छाल और पत्तों का चूर्ण मधु में मिलाकर लेप करने से मुखपाक (Stomatitis) दूर हो जाता है। कितना सरल सस्ता एवं उपयोगी प्रयोग है।

पृष्ठ ५८ का शेषांश

जिस प्रकार देवताओं का अमृत, नागेन्द्रों की सुधा उसी तरह प्राणियों का प्राण अन्न है, इसको ब्रह्मा कहते हैं। अन्न से ही त्रिवर्ग (धर्म अर्थ काम) की उत्पत्ति होती है, इसी से लोक की स्थिति भी है। इसलिये हे अग्निदेव अमृत के समान सुख देने वाले इस अन्न का तुम्हारे में हवन कर रहा हूं। ब्रह्मा इसकी अनुमति दें। हवन से बचे हुए अन्न को थोड़ा लेकर मसल कर अग्नि का स्पर्श कर इसको वालक के मुख मे तीन या पांच बार डालें, खिला कर उसका मुख धो दें। इसके आगे थोड़ा-थोड़ा अन्न १२ मास तक देते रहें। इस सम्बन्ध मे श्लोक हैं—

पुराने शाली, साठी के चावलो को धोकर उनसे बने हुए पेय पदार्थ दें, इन पेयों में अल्प मात्रा में घी, नमक मिलाकर दें, ये पौष्टिक होते हैं। इसी प्रकार गेहूं अथवा जौ के पेय पदार्थ बनाकर दें, जिसको जो अनुकूल हो। इन पेय पदार्थो मे वायविडंग का चूर्ण नमक, घी मिलाकर वालक को चटायें। यदि वालक को दस्त आरहे हो तो कोदों के चूर्ण का दलिया बनाकर दें। पित्त प्रकृति वालकों को मुनक्का घी मिलाकर दें। वात प्रकृति को बिजौरा नीबू के रस मे नमक मिला कर दें। एक या दो दिन का अन्तर देकर वैद्य देश काल तथा अग्निवल को देखकर या वालक को जब भूख लगे तब भोजन दें। ऐसा भगवान् कश्यप ने कहा है।

—ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

शारङ्गधर संहिता में शिशु रोग

पर्याप्त समय बीता जब धन्वन्तरि कार्यालय का संचालन परम श्रद्धेय वैद्य बांकेलाल गुप्त किया करते थे।

आज की तरह वे भी धन्वन्तरि कार्यालय से अलग हुए और उन्होंने प्राणाचार्य फर्म स्थापित की। उसका मुख पत्र प्राणाचार्य नाम से पर्याप्त काल तक वैद्य समाज की सेवा करता रहा। उसके एक महत्वपूर्ण विशेषांक शिशुरोगांक का भार आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी को सौंपा गया। उसी शिशुरोगांक से हमने २ लेख साभार लिए हैं वे हैं:-

१. शार्ङ्गधरोक्त बालरोग तथा २. हारीत और बालरोग

ताकि हम अपने उन पूर्वजों को श्रद्धासुमन समर्पित कर सकें जिनकी कृपा से हम यहां तक आये हैं और प्राणाचार्य के उस महत्वपूर्ण विशेषांक की झलक दे सकें जिसका सम्पादन आचार्य प्रवर ने आज से तेईस वर्ष पूर्व किया था।

गोपालशरणगर्ग

और सुश्रुत द्वारा उल्लिखित संहिताओं की दुरुहता के कारण वैद्यक ज्ञान का व्यावहारिक रूप कम होने लगा तथा विविध विषय परिज्ञानार्थ कई ग्रंथों की आवश्यकता पड़ने लगी तब संग्रह ग्रंथों की आवश्यकता पड़ी। शार्ङ्गधर संहिता एक संग्रह ग्रंथ है जिसमे आयुर्वेद से सम्बद्ध लगभग सभी आवश्यक विषय रोचक भाषा मे लिख दिये गये हैं।

अब हम इस ग्रंथरत्न में वर्णित वाल रोगों और उनके उपचार का संक्षपतः वर्णन करेंगे।

बालरोग भेद

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः।
वातात्पित्तात्कफाच्चैव दन्तोद्भेदश्चतुर्थकः॥
दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम्।
मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके॥
पद्मारुणस्तालुकण्ठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः।
दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः॥
रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः।

उपरोक्त सूत्रों में जिन २२ वालरोगों का वर्णन किया है उनमें समस्त भारतवर्ष में साधारणतः व्याप्त वालरोगों का नामोल्लेख हो जाता है। इनमे इतर वालरोग कम मिलने हैं। अन्य रोग जिनका उल्लेख नहीं वे वयस्कों और वालकों में समान होने से नही कहे गये। आधुनिक काल में मसूरिका, कुकरकास आदि जो रोग मिलते हैं ज्ञात होता है कि भारतवर्ष, चौदहवीं शती और उससे पूर्व इन रोगो से इतना पीडित नहीं था जितना आज है अथवा उस समय ये रोग स्थान विशेष पर ही मिलने से स्थानिक रहे होंगे।

दुष्ट दुग्ध के कारण होने वाले ३ प्रकार के क्षीरालस के सम्बन्ध में कारण देते हुए कहा है—

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा।
दोषादेहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति॥
मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टावातादयास्त्रयः।
दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः॥

दन्तोद्भेद को चतुर्थ बालरोग कहा है। दन्तोद्भेद स्वयमेव कोई रोग विशेष नहीं है परन्तु इस काल में अनेक प्रकार के उपद्रवों की सम्भावना होती है। लिखा है—

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम्।
विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासाक्षेपशिरोरुजाम्॥

दन्तघात नामक विकार का अर्थ प्रथम उत्पन्न दूध के दांतों का प्रपहन है। प्रायशः यह अधिक कष्टकर अवस्था नहीं होती फिर भी सम्भावना तो रहती ही है।

दन्तशब्द का अर्थ स्वप्नावस्था में दन्तघर्षण है।

अकालदन्त जब स्वाभाविक समय पर दांत न निकल कर अन्य किसी समय निकलते हैं तो उसे अकाल दन्त कहते हैं। और इस काल के सभी उपद्रव इसी रोग की ओर सङ्केत करते हैं।

दन्तोद्भेद, दन्तघात, दन्तशब्द और अकालदन्त ये चारों दन्त सम्बन्धी वालरोग ही हैं इनका सम्बन्ध बड़ों से बहुत कम होता है। इनका उल्लेख शार्ङ्गधर ने जिस योग्यता पूर्वक किया है वह सराहनीय है।

अहिपूतना अस्वच्छता के कारण उत्पन्न व्रण है जो गुद-नितम्ब प्रदेश में होता है और जिसमें पर्याप्त कण्डू होती है—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।
स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम्॥

मुखपाक मे मुख को श्लेष्मल त्वचा मे पाक हो जाता है। इस लोक मे मुखा कहते हैं। वालकों मे यह रोग आज भी प्राचुर्य से पाया जाता है। मुखस्राव मे मुख से लालास्राव अत्यधिक होता है।

गुदपाक में गुदप्रदेश में शूल शोथ और रक्तवर्णता आ जाती है।

उपशीर्षक, और पद्मारुण ये विसर्प के भेद ही हैं। उपशीर्षक शिरस्थ व्रण और पद्मारुण महापद्म का रूप है।

तालुकण्टक शरीरस्थ जलाभाव के कारण उत्पन्न घोर व्याधि विशेष है। विच्छिन्न तालुपात का दूसरा नाम है।

पारिगर्भिक, दौर्बल्य, गात्रशोष, ये तीनों बाल रोग सर्वाङ्गीय दुर्बलता के सूचक हैं। एक में यकृद्वृद्धि होकर दुर्बलता होती है। दूसरे मे शरीर में ओज की कमी होती

चन्दनादि तैल

चन्दनाम्बुनखैयाम्यं यष्टीशैलेयपद्मकम् ।
मञ्जिष्ठा सरलं दारु सेव्यैलं पूतिकेसरम् ॥
पत्रकेलं मुरामांसी कङ्कोलं वनिताऽम्बुदम् ।
हरिद्रा सारिवा तिक्ता लवङ्गागुरुकुंकमम् ॥
त्वग्रेणुनलिकाचेति तैल मस्तु चतुर्गुणम् ।
लाक्षारससमं सिद्धं ग्रहघ्नं बलवर्द्धनम् ॥
अपस्मार ज्वरोन्मादकृत्याऽलक्ष्मी विनाशनम् ।
आयुः पुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥
विशेषात्क्षयरोघ्न रक्तपित्तहर परम् ।

१२—चन्दनलाल — सुगन्धवाला
नख — श्वेत चन्दन
मुलहठी — छरीला
पद्माख — मजीठ
धूप — देवदारु
खस — बड़ी इलायची
गन्धमार्जारवीर्य — तेजपत्र
छोटी इलाइची — मुरा
जटामांसी — कंकोल
पुष्पप्रियंगु — नागर मोथा
हल्दी — सारिवा
कुटकी — लोंग
अगर — केशर कश्मीरी
दालचीनी — रेणुका
नलिका — प्रत्येक समभाग

—लेकर पीसकर कल्क करें उससे चार गुणा कड़ाही में तैल पाक करके उसमें कल्क और तैल से चार गुना दधिमस्तु और बराबर लाख का रस डालकर पाक करें। तैल सिद्ध होने पर उतार कर नितार कर बोतलों में भर लें। यह ग्रहबाधा नाशक, प्रतिदूषक, बलवर्द्धक अपस्मार, ज्वर, पागलपन नाशक है। दरिद्रता को दूर करके धातु को बढ़ाता, पुष्टिकारक और वशीकरण करने वाला है। इसके उपयोग से क्षय और रक्तपित्त तक दूर होता है। इस तैल का शरीर पर नित्य या प्रति दूसरे दिन अभ्यङ्ग होने से बालक का शरीर सबल और कान्तियुक्त हो जाता है और औपसर्गिक व्याधियां सरलतया उसके शरीर पर अधिकार नहीं कर पाती।

अपराजित धूप

मयूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ।
मरिचं हिङ्गु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् ॥
छागरोमाहिनिर्मोकं विष्टा वैडालिकी तथा ।
गजदन्तश्चतच्चूर्णं किञ्चद्घृतविमिश्चितम् ॥
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्बालग्रहाञ्जयेत् ।
पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवत् ॥

१३—मोर का पंख — नीम के पत्ते
बड़ी कटेरी का फल — मरिच
हींग — जटामांसी
बिनौला — बकरी के बाल की केंचुली
बिल्ली की बीट — हाथी दांत

प्रत्येक समभाग

—लेकर सबका चूर्ण कर घी के साथ पिण्ड बना धूप देने से समस्त बालग्रह बाधाएं, पिशाच, राक्षस इनकी बाधाएं और सब प्रकार के ज्वर नष्ट हो जाते हैं। यह धूप अत्युग्र गन्ध वाली होने के कारण रोगाणुओं और कीटाणुओं को नष्ट करती है।

अग्निदाह

यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नो शिशोः साञ्जायतेऽसृज ।
तदा तस्यानदाहेन सङ्कुचन्त्यसृजः शिराः ॥

यकृत् प्लीहा की रक्तजन्य अभिवृद्धि में वृद्धि के स्थान को अग्नि से दग्ध करने का विधान है। उससे शिरा संकुचित हो जाती है। आजकल इस प्रकार अग्नि दाह नहीं होता।

हारीत और बाल चिकित्सा

हारीत संहिता

महर्षि "आत्रेय के प्रधान शिष्यों में "हारीत" एक महत्वपूर्ण शिष्य हुए हैं। उन्होंने 'हारीत संहिता" नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें प्रथम स्थान, द्वितीय स्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान और सूत्रस्थान करके ५ प्रकरण हैं। इन पांचों प्रकरणों में चिकित्सा स्थान महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा है। हारीत संहिता की वर्णन शैली अतीव रोचक एवं प्रभावी है। जिस प्रकार कक्षा में विद्यार्थी आज कल बड़े-बड़े भाषणों की टिप्पणी लिख कर ज्ञानार्जन करते रहते हैं, हारीत ने भी अपने समय के अद्वितीय विद्वान् और आयुर्वेद के अन्यतम आचार्य के अभिभाषणों की टिप्पणियां लिख कर समाज का महान् उपकार किया है। यद्यपि अग्निवेश के बराबर बृहत्काय ग्रन्थ की रचना हारीत द्वारा प्रकाश में नहीं आई पर जो भी प्रगट है वह अनेकानेक आयुर्वेदीय तथ्यों की पुष्टि और प्रमाण स्वरूप यह ग्रन्थ प्रकट हुआ है। हारीत संहिता के तीसरे चिकित्सा नामक स्थान के ५३ वें अध्याय में बाल चिकित्सा आदि का वर्णन है।

पञ्चक्षीर दोष

हारीतसंहिता में इस सम्बन्ध में निम्न सूत्र मिलते हैं—

पञ्चैव क्षीर दोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता बुधैः।
घनक्षीरोष्ण क्षीराल्पक्षीरा चैव तथापरा ॥
मृदुक्षीरा भवेत् सौम्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥
घनाध्माननिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः।
वत्कुम्भकुक्षिनैर्वंहितघनक्षीरस्य सेवनात् ॥
अल्पसारः कृशो दीनः श्वासातिसारपीडितः।
अल्प क्षीरस्य दोषेण सम्भवेत्तनयातुरः ॥
ज्वरःशोषस्तथाल्परमुष्णक्षीरेण बालके।
तथैव चोष्ण क्षीरेण ज्वरातिसार एव च ॥
मुखञ्च बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः।
मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥
चक्षूरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावगुण्ठिता।
सक्लेदयुक्तं नासास्यं जायते क्षार दुग्धके ॥

विद्वानों ने ५ क्षीरदोष स्त्रियों के बतलाये हैं—

१—घनक्षीरा २—उष्णक्षीरा ३—अल्पक्षीरा ४—अल्पक्षीरा तथा ५—क्षारक्षीरा। मृदुक्षीरा स्त्रियां सौम्या कही गई हैं वह दोष नहीं है शेष पांच दोषकारक माने जाते हैं। घनक्षीर दोष होने से आध्मान होकर श्वास और कास होकर कोख फूल जाती है। अल्पक्षीर दोष होने से शिशु कृश, दीन श्वासातिसार से पीड़ित हो जाता है। उष्णक्षीर दोष होने से ज्वर, शोष, तथा ज्वरातिसार होता है। क्षारदुग्ध दोष के कारण नेत्र रोग कण्डू (Pruritus), क्षत (Wound), कफजनित नासास्रावादिक होता है। मृदुक्षीर के गुण बतलाते हुए कहा गया है कि सुख, बल, और आरोग्य की प्राप्ति मृदुक्षीर सेवन से होती है और बालक रूपवान बनता है।

उत्फुल्लिका चिकित्सा

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु हारीत ! मे मतम्।
आध्मानात् कुक्षिकुक्षिस्थ श्वासशोषादिपीडितः ॥
उत्फुल्लिका च विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी।
उदरे च अमीशादिग्ध बाधौ विमोटकेषु ॥
उत्फुल्लिकायां दातव्यं क्षीरदोषनिवारणम्।
अग्निप्रबलः स्वेदो दहेद्वाति दयाकरा ॥
जठरे बिन्दुधारा जायते मिश्रकृतम्।

अब क्षीर दोषज व्याधियों की चिकित्सा को आत्रेय हारीत जी कहते हैं। बालकों के पेट में अफरा होकर कुक्षि का उत्सेध हो जाता है, इस रोग को उत्फुल्लिका कहते हैं यह बालकों को बहुत दुख देने वाला रोग है साथ में इसके श्वास का उपद्रव भी होता है। अन्य दोषो का भी कोप मिल सकता है।

उत्फुल्लिका की चिकित्सा की सर्व प्रथम विधि क्षीर दोष नाशक द्रव्यों से प्रारम्भ होती है। प्रवल अग्निदीपक योग, स्वेदन और जठर को शलाका से बिन्दुकाकार दाह करना भी आता है।

बेल का मूल और उसका फल, पाठा, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, कण्टकारीद्वय इनका क्वाथ कर गुड़ डाल कर पिलाने से बालकों का ज्वर नष्ट हो जाता है। इस क्वाथ को दूध पिलाने वाली स्त्रियों को पिलाने से उनके पुत्रों का ज्वर नष्ट होता है।

इस प्रकार में ज्वर का वर्णन और चिकित्सा पृथक न मानकर उत्फुल्लिका में उपद्रव स्वरूप समझना आवश्यक है वैसे वात और कफ ज्वर पर इनका प्रयोग हो सकता है।

अन्य ज्वरघ्न योग

हितः पर्पटकः क्वाथः शर्करामधुयोजितः।
बालानां ज्वरनाशाय कैरात मधुसंयुतम् ॥

ये योग पैत्तिक ज्वर तथा विषम ज्वरों पर लाभ कर होंगे।

श्वास कास हर रोग

१—भार्गी रास्ना कर्कटकं चूर्णं वा मधुसंयुतम्।
लेह्यो वा बालकस्यापि श्वास कास निवारणः॥
२—पथ्या वचा नागरकं घनं कर्कटकमेव च।
चूर्णं सगुडमेवं हि बालनां कास नाशनम्॥

मूत्ररोग हर योग

पलासभेदं त्रिफलात्रपुसी वरिमागधीः।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित्॥

मूत्रावरोध नाशक यह हारीत का योग अत्यधिक लाभकर है और अन्यत्र देखने में नहीं आता।

विद्रधि हर योग

नागरी चाभयां दन्तीं गुडचूर्णं प्रदापयेत्।
बालानां विद्रधिञ्चैव नाशयेच्चन संशयः॥

यह विद्रधिहर अन्तः प्रयोग है। यदि वैद्यगण इसे प्रयोग कर देखें तो अन्य चिकित्सा मतावलम्बियों की भांति यह भी उत्तम कार्य कर सिद्ध होगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि योग अतीव सरल नित्यप्रति व्यवहार्य द्रव्यों से बनेगा जिनमे रोगाणुनाशक गुण उतना नहीं जितना शरीर की विजय वाहिनी शक्ति को उद्वेलित करके विद्रधि केन्द्र को नष्ट करने का है।

बालातिसार हर योग

पाठाबिल्वशिलादीनि वत्सकं शाल्मलीत्वगम्।
दुग्धेनपानं बालानामतिसारनिवारणम्॥

त्वग्दोषहरयोग

अर्जुन्च कदम्बञ्च कुष्ठ गैरिकमेव च।
त्वग्दोषाणां लेपनञ्च वारण बालकस्य च॥

यह एक प्रकार का बाह्य लेप है।

नेत्र रोग नाशक प्रयोग

रोध्रं रसाञ्जनं धामी गैरिकं मधुना युतम्।
अञ्जनञ्चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम्॥

यह एक नेत्राञ्जन है।

बाल प्रज्ञा प्रवर्द्धक प्रयोग

बालकों को स्वाभाविक मौर्ख्य के नाश के लिए आज पाश्चात्य विज्ञान मे विपुल साहित्य उपलब्ध होता है। अपने यहां भी इस ओर ध्यान गया था। हारीत के निम्न सूत्र उसी ओर अङ्गुलिनिर्देश करते हैं—

(१)

वचा ब्राह्मी च मण्डाकी घनकुष्ठं सनागरम्।
प्रातर्देयं घृतेनैव बालानां पुष्टिकारकम्॥

(२)

गुडूचिकापामार्गश्च विडङ्गं शङ्खपुष्पिका।
विष्णुक्रान्ता वचा पथ्या नागरञ्च शतावरी॥
चूर्णं घृतेन संमिश्रं पिबतो धीः प्रवर्त्तते।
त्रिभिर्दिनै सहस्रैक श्लोकानामवधारयेत्॥

इन दो प्रयोगों में प्रथम एक चूर्ण है जिसमें बुद्धिवर्द्धक—

१३—वचा ब्राह्मी मण्डूकपर्णी
अभ्रकभस्म कुष्ठ शुण्ठी

प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर घृत के साथ देना चाहिए। पर क्योंकि इसमें तिक्तता होने से बालक लेने में कष्ट का अनुभव करेगा अतः इसमें मिश्री मिला सकते हैं। दूसरा भी एक चूर्ण है जिसमें—

१४–गिलोय अपामार्ग विडङ्ग
शङ्खपुष्पी अपराजिता वचा
हरीतकी शुण्ठी तथा शतावरी
प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्णकर घी से इस योग को भी दें। स्वादिष्ट बना लेना चाहिये।

इन योगों की सामर्थ्य तीन दिन में ही एक सहस्र श्लोकों को कण्ठाग्र कर लेने से प्रगट हो है। पर सतत प्रयोग अनिवार्य है।

बाल-वाणी प्रबोधक योग

प्रायशः बचपन में किसी किसी की जीभ भारी उठती है या बोलने में दोष होता है उसे दूर करने के लिए निम्न योग महत्वपूर्ण हैं—

त्रिकटु त्रिफला पथ्या यवानी सालमूलिका।
वचा ब्राह्मी तथा भार्गी चूर्णञ्च मधुनाहितम्॥
वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो वीणा समस्वरः॥

१५–शुण्ठी मरिच पिप्पली
हरीतकी विभीतकी(बहेड़ा) आमलकी
धान्यक यमानी शालमलीमूल
बालवचा ब्राह्मी भारङ्गी
प्रत्येक समभाग

—लेकर चूर्ण कर मधु के साथ देना और बालक को वाक्पटु बनाना तथा उसके स्वर को मधुर करना है। यह योग निश्चय ही मस्तिष्कस्थ, स्वरयन्त्र तथा अन्य तत्सम्बन्धी अवयवों के सहकार्य का नियन्त्रण करके अपनी क्रिया का सञ्चार करता है।

बालापस्मार चिकित्सा

यस्यश्वासो विचैतन्यं तन्द्राचातीव वेपथुः।
शिरोऽर्तिः सज्वरश्चैव स चासाध्यो भिषग्वरः॥
लालाप्रवृत्तिर्बालस्य तथाविभ्रान्तलोचनम्।
स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारी स उच्यते॥

अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत्।
वचा सैन्धवपिप्पल्यो नस्य हि गुडनागरः॥
रसं चागस्तिपत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम्।
एतेन प्रतिसोढ्यं स्यात् तथा चान्दोलनं हितम्॥
मस्तकान्ते ललाटे च दहेल्लोहशलाकया॥

इस प्रकरण में प्रथम श्लोक अपस्मार का द्योतक न होकर बालकों की एक असाध्यावस्था का द्योतक है। श्वास में विचैतन्य, अतीव तन्द्रा, प्रकम्प, शिर का शूल से इतस्ततः पटकना और तीव्र ज्वर से पीड़ित बालक मृत्यु के निकट जान छोड़ देना चाहिए।

पर जिसके नेत्र फटे फटे विभ्रान्त हों मुख से झाग या लार टपकना हो अङ्ग सब शान्त स्तब्ध हो गये हों। इसे बालापस्मार कहते हैं।

बालापस्मार की चिकित्सा में निम्न कार्य करना चाहिए—

१–शीत प्रयोग—शीतल जल को छिड़कना, शीतोदक वगैरह, शीत वीर्य पदार्थों का लेपादि।
२–नस्य प्रयोग—१—वचा, सैन्धव, पिप्पली।
२—गुड़ और शुण्ठी,
३—अगस्तिया के पत्र स्वरस में मरिच चूर्ण मिलाकर
—इन में से किसी से नस्य देना।
३–आन्दोलन क्रिया—
४–शलाका या दाह—१—मस्तक के पीछे,
२—ललाट पर

इन सब क्रियाओं का अभिप्राय उसके विचैतन्य को हटाकर चेतना लाना है।

पूतना दोष वर्णन

हारीत ने अन्य आचार्यों की भांति पूतना दोषों या ग्रह दोषों का भी वर्णन किया है—

संक्रमण-पूतना नाम

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमन्दिरे।
चत्वरे सद्रुमे नद्योर्मध्ये भूमिग चामरे॥
संक्रामन्ति मिषक्श्रेष्ठ! बालकस्मादि पूतना।
लोहिता रेवती ब्राह्मी कौमारी शाकुनी शिवा॥

उद्ध्वकेशी तथा सेना अष्टौ चैता, प्रकीर्त्तिताः ।
तथान्या मासजातस्य नामानि शृणु साम्प्रतम् ।।
रोहिणी विजया काली कृत्तिका डाकिनी निशा ।
भूतकेशी कृशांगी च अष्टौ चैताः प्रकीर्त्तिता ।।

उपरोक्त श्लोकों में 'संक्रामन्ति' शब्द महत्व का है जो पूतना रोगों को संक्रामक सिद्ध करता है। उसके विविध नाम बतलाये गये हैं। इन्हें आगे दिनानुक्रम से समझाया जायगा।

पूतना लक्षण तथा शमनोपाय

प्रथमदिवसोपसर्ग लक्षण—

जातमात्रस्य बालस्य 'लोहिता' नाम पूतना ।
विस्रगन्धा लोहिता च रोदित्येव मुहुर्मुहुः ।।

प्रथम मास में उपसर्ग करने वाली पूतना का नाम रोहिणी कहा जाता है। हारीत इनसे शान्ति के लिए बलिकर्म बतलाता है।

द्वितीय दिवसोपसर्ग—

द्वितीये दिवसे बालं रेवती नाम पूतना ।
गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदिति कम्पते भृशम् ।।

द्वितीय मास में उपसृष्ट होने वाली पूतना विजया कहलाती है। इनके उपसर्ग के शमन के लिए निम्न वाक्य स्मरण रक्खें:—

कृष्णमृण्मयी प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः ।
कृशरारालचूर्णञ्च दीपधूपैस्तथाक्षतैः ।
ताम्बूलं कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैर्ऋतिके क्षिपेत् ।।

तृतीय दिवसोपसर्ग—

तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ।
तथा गृहीतमात्रेण रोदिति न पिबेत् स्तनम् ।
ज्वरश्चैवातिसारश्च काकवद्वदते भृशम् ।।

तृतीय मास में काली नाम पूतनाका उपसर्ग होता है। इन दोनों के उपसर्ग को शमन करने के लिए हारीत ने निम्न उपचार लिखा है—

तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपोलिकाः ।
ध्वजाभिः सगुडञ्चैव कृष्णा गन्धानुलेपनम् ।।
धूपदीपा क्षतैश्चैव मध्याह्ने बलिमाहरेत् ।

चतुर्थदिवसोपसर्ग—

चतुर्थे दिवसे बाल कुमारी नाम पूतना ।
गृह्णाति बालकस्तेन ज्वरेण परितप्यते ।।
शून्यं विगाहते बालंस्तन्मुख परिशुष्यति ।
कृशं स रोदति

चतुर्थ मास में कृतिका नाम पूतना का उपसर्ग होता है। दोनों का बलिक्रम निम्न है—

पायसं सघृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ।
मृण्मयीं प्रतिमां कृत्वा पुष्पधूपाक्षतैरपि ।।
कृतांतदिशि मध्याह्ने बलिं दत्वा सुखी भवेत् ।

पञ्चमदिवसोपसर्ग—

पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना ।
गृह्णाति स तयाक्रांत स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ।।
सज्वरो वमते रौति कासमानोऽथ वेपते ।

पञ्चम मास में डाकिनी नामक पूतना ग्रसती है। इनकी चिकित्सा निम्न है—

तस्याः शोभनिका पूजा क्रियते तिललड्डुकैः ।
श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृण्मयाकृतिम् ।।
उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्णे बलिमाहरेत् ।

षष्ठदिवसोपसर्ग—

षष्ठे च दिवसे प्राप्ते शिवा नाम् कुमारिका ।
रौति निःश्वसिति तेन वमते कम्पते तथा ।।
स्तन्यञ्च नाहरेद्बालो ज्वरातिसार पीडितः ।

षष्ट मास में निशा नामक पूतना ग्रसती है। दोनों का उपचार निम्न है—

तस्यै: बलिः प्रदेयश्च सप्तव्रीहिमयश्चरुः ।
पायसैर्दधिदीपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः ।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृण्मयाकृतिम् ।
ऐशानीं दिशमाश्रित्यापराह्णे बलिमाहरेत् ।।

सप्तमदिवसोपसर्ग—

सप्तमेऽहि पूतनाया उद्ध्वकेश्याः शिशोः तथाः ।
पूर्ववद् दृश्यते चिह्नं तथैव बलिमाहरेत् ।।

सप्तम मास मे भूतकेशी नामक पूतना लगती है। दोनों की चिकित्सा षष्ठदिवसानुसार करें।

—शेषांश पृष्ठ ८१ पर

अग्नि--पुराण मे

बालग्रह एवं दैवव्यपाश्रय चिकित्सा

कविराज श्री गिरधारीलाल मिश्र, आयुर्वेद वाचस्पति शिवसागर असम

हमारे स्वदेश के पूर्वाञ्चल में अभी भी आयुर्विद्या पारङ्गत भिषग्भूषणों की कमी नहीं है। जिस अङ्गदेश में हाथियों के रोगों की चिकित्सा में विश्व भर में ख्याति प्राप्त पालकाप्य ने जन्म लिया वहीं कविराज गिरधारीलाल मिश्र अपने तपःपूत जीवन को आयुर्वेद की सेवा द्वारा सार्थक कर रहे हैं। आप प्रखर पाण्डित्य के धनी हैं। आपने अग्निपुराण में ग्रहबाधाओं का प्रकरण खोज निकाला है। यह ज्ञान हमारे आयूर्वेदीय ज्ञान की अपेक्षा कुछ विशेषता रखता है। देव व्यापाश्रय चिकित्सा में भी विशेषता है। इस रोचक एवं ज्ञानदायक खोजपूर्ण लेख के लिए हम मिश्रवर्य का हृदय से अभिनन्दन करते हैं।

--रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

आयुर्वेद के उत्पत्ति काल का निर्णय किया जाय तो आयुर्वेद को अनादि अपौरुषेय कहना ही उचित होगा। चरकाचार्य ने कहा है सोऽयमायुर्वेद शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात् स्वभावसंसिद्ध लक्षणत्वात् ब्रह्मा ने विश्वसृजन में प्राणियों की उत्पत्ति के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना की थी—"अनुत्पाद्यैव प्रजा आयुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत् (सुश्रुत) तथा सृष्टि के पूर्व आयुर्वेद की रचना उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकार शिशु की उत्पत्ति के पूर्व स्तन्य की उत्पत्ति हो जाती है—"बालस्योत्पत्तेः पूर्वं स्तन्योद्गमनमिव सृष्टेः प्रथमतः आयुर्विज्ञानं स्वतोऽपि सम्भवति" (काश्यपसंहिता) आयुर्वेद पाँचवाँ वेद है एवमेवायमृग्वेदयजुर्वेद सामवेदाथर्ववेदेभ्यः पञ्चमो भवत्यायुर्वेद' (काश्यप संहिता) भारतीय वाङ्मय— वेद-उपवेद उपनिषद् शतपथ पुराण उपपुराण रामायण महाभारत बौद्ध जैन ग्रन्थ, नवनीतम्, विनयपिटक आदि) में पर्याप्त आयुर्वेदीय सामग्री उपलब्ध है प्रस्तुत आलेख में अग्निपुराण में उपलब्ध बालग्रह एवं उन की उपचार सामग्री का विवेचन "सुधानिधि शिशु रोग चिकित्सांक" के लिए विज्ञ पाठकों की एवं आम जनता की सेवा में शिशु कल्याण के लिए समर्पित है।

अग्नि पुराण में बालकों के पीड़ा कारक क्रूर ग्रहों का विवरण तीन रूपों में प्राप्त है—(१) दिवस से शिशु जन्म से १० दिन पर्यन्त पापिनी, भीषण, घण्टाली

काकोली हंसाधिका, फट्कारी, मुक्त केशी, श्रीदण्डी, ऊर्ध्व ग्राही, रोदनी, तथा, (२) मास के अनुसार प्रथम मास से १२ मास तक पूतना, मुकुटा, गोमुखी, पिंगला ललना, पकजा, निराहरा, यमुना, कुम्भकर्णी, तापसी, राक्षसी, चञ्चला एव (१) वर्ष के अनुसार द्वितीय वर्ष से १७ वर्ष तक यातना, रोदनी, चटका चञ्चला, धावनी, यमुना जातवेदा, वाह्वोरा, कलहंसी, देवदूती, वालिका, वायवी, यक्षिणी, मुण्डिका, वानरी, गन्धवती इस प्रकार कुल ३८ स्त्रीभूतग्रह क्रमशः कष्ट कारक होते है ।

वालग्रह लक्षण एवं शमनोंचार तालिका अग्निपुराण (द्वितीय खण्ड) १५४ श्लोक १-५०

क्रम संख्या	आक्रान्त काल	नाम ग्रही	लक्षण (चेष्टाएं)	शमनोपचार
१	प्रथम दिन जन्म काल से	पापनी	गात्र उद्वेग, निराहार, रुदन को नाना प्रकार से तोड़ना-मोड़ना माता के वल का हरण	मत्स्य का मास-सुरा भक्ष्य गन्ध-असृग धूप-दीप करें धातकी, लोध्र, मजीठ, ताल और चन्दन से लेप करें ।
२	द्वितीय दिन	भीषण	खांसी, श्वासचालना, शरीर का वार-वार संकोचान	महिषाक्ष की धूप, वकरी मूत्र से युक्त अपामार्ग और चन्दन से कृष्णा का सेवन, गोशृङ्ग, दन्त, केशों की धूप देनी चाहिए ।
३	तृतीय दिन	घण्टाली	वार-वार रोना, चिलाना, जंभाई लेना, स्वनित, त्रास, शरीर का उद्वेग, अरोचान,	केशराञ्जन गो और हस्तीदन्त को वकरी दूध में पीसकर लेप करना, नख, राई, विल्वपत्र की धूप दें ।
४	चतुर्थ दिन	काकोली	गात्र-उद्वेग, प्ररोचान, झागों का उद्गार, दिशाओ की ओर दृष्टि-रखना	आसव, सहित कुलमाषो की वलि दें हस्तिदन्त, सर्पनिर्मोक (कांचली) और अश्वमूत्र का प्रलेपन करें ।
५	पञ्चम दिन	हंसाधिका	उर्ध्वधारिणी श्वास का चलना तथा मुष्टि-वन्धन का होना	मत्स्यादि की वलि देवें, शृङ्ग, वला, लोध्र, शिलाताल से लेप करें।
६	षष्टम दिन	फट्कारी	भय-मोह और प्ररोदन निराहार अंगों को इधर उधर चलाना	मत्स्यादि वलि दें, राई, गुग्गुल, कुष्ठ, पाथी दांत से धूप दें और लेप करें ।
७	सप्तम दिन	मुक्तकेशी	शिशु मे दुर्गन्ध आती है एवं विजृम्भण तथा रुदन करता है	व्याघ्र के नखो की धूप दें तथा वच गोवर-गोमूत्र से लेपन करें
८	अष्टम दिन	श्रीदण्डी	दिशाओं को देखना, जीभ को चलाना खांसी, रुदन करना	मत्स्यादि वलि दें, हीग की धूप दें वच, सिद्धार्थ और लहसुन का लेप
९	नवम दिन	उर्ध्वग्राही	उद्वेजन-उर्ध्वश्वास- अपनी दोनों हाथों की मुट्ठियों को चलाना	रक्त, चन्दन, कुष्ठ आदि से लेप दें वन्दर के रोम और नखों का धूपन
१०	दशम दिन	रोदनी	वार-वार रोना, आधी गन्ध का आना, शरीर का नील वर्ण होना	नीम की धूप दें, भूतोग्र, राजी, सर्ज रस से लेप करें ।

दृष्टव्य —जब तक वालक १३ दिन का हो खील कल्माष की वलि धूप दीप आदि क्रिया करनी चाहिए ।

क्रम संख्या	आक्रान्त काल	नाम ग्रही	लक्षण (चेष्टाएँ)	शमनोपचार
११	प्रथम मास	पूतना शकुनी	कौवे की भांति रोना, श्वास और मूत्र में गन्ध, आखें मीलित करना	गोमूत्र से स्नान करावें और गोदन्त से धूपन दें। पीला वस्त्र, लाल फूलों की माला, गन्ध, तेल का दीपक, तीन प्रकार का पायस, मद्य तिन चार प्रकार का मांस, करञ्जाघ से सम दिशा मे वलि दें (सात दिन तक)
१२	द्वितीय मास	मुकुटा वपु	शरीर पीला एवं शीतल होता है छर्दि तथा मुख शोषादि होते हैं	पुष्प, गन्ध, वस्त्र, अनूप, ओदन, दीपक और कृष्ण नीरादि धूप दें
१३	तृतीय मास	गोमुखी	निद्रा, सविट् मूत्र प्ररोदन	यव प्रियंगु पलल (मांस) कुल्माष शाक मोदन क्षीर पूर्व मे देवें मध्य दिन मे घृत से धूप दें।
१४ १५	चतुर्थ मास पञ्चम मास	पिंगला ललना	शरीर शीत दुर्गन्ध शोष तथा पीडा होती है, पीड़ा से मर भी जाता है शरीर में पीड़ा, भूख, शोषण,अपान, पीला वर्ण होना	दक्षिण दिशा में मत्स्य आदि से वलि दें।
१६	षष्ठम मास	पङ्कजा	रोदन, स्वर का विकृत होना।	मत्स्य मांस सुरा युक्त पुष्प और गन्ध आदि से बलि देवें।
१७	सप्तम मास	निराहारी	शरीर में दुर्गन्ध दन्त पीडा	पिष्ट-मांस, सुरा-मांस वलि दें।
१८	अष्टम मास	यमुना	विष्फोट और शोषण आदि	चिकित्सा वर्जित
१९	नवम मास	कुम्भकर्णी	ज्वर, छर्दि, अधिक रोदन	मांस, कुल्माष और मद्य आदि से वलि दें।
२०	दशम मास	तापसी	निराहार आंखों को मीलित करना	घण्टा, पताका पिष्टाक्त तथा सुरा-मांस की वलि देवें।
२१	एकादश मास	राक्षसी	नेत्रादि में पीड़ा	चिकित्सित नहीं होती
२२	द्वादश मास	चञ्चला	श्वास भय आदि विचेष्टित करती है	पूर्व मे वलि, दुपहर मे कुल्माषादि तथा तिलादि से वलि दें।
२३	द्वितीय वर्ष	यातना	रोदन आदि यातना होती हैं	तिल, मांस, मद्य द्वारा वलि देवें
२४	तृतीय वर्ष	रोदनी	गात्र कम्प रुदन मूत्र में रक्त आना	गुड़, ओदन,तिलाधूप की वलि तिल पिष्ट की प्रतिमा वना तिल स्नान करावें तथा पञ्चपत्रों से धूप दें।
२५	चतुर्थ वर्ष	चटका	शोफ, ज्वर, समस्त अग में दर्द	मछली, मास और तिल आदि से वलि देवें। स्नान धूपनकरावें
२६	पञ्चम वर्ष	चञ्चला	,, ,, ,, ,	पलाश, गूलर, पीपल, वड़, विल्व के पत्ते धारण करें।

क्रम संख्या	आक्रान्त काल	नाम ग्रही	लक्षण (चेष्टाऐं)	शमनोपचार
२७	षष्ठम वर्ष	शावनी	शोष, विरसता, शरीर में दर्द	सातवें दिन वलि देवें, धूप दें भृङ्गक से स्नान करावें
२८	सप्तम वर्ष	यमुना	छर्दि, अवच हास रोदन करता है	मांस, पायस, मद्य आदि से वलि देवें, स्नान धूप करावें
२९	अष्टम वर्ष	जातवेदा	निराहार प्ररोदन होता है।	कृशर, अपूप, दधि आदि की वलि, स्नान धूपन करें
३०	नवम वर्ष	काल्लोरा	आस्फोट गर्जन भय होता है।	कृशर, पूआ, सतुआ, कल्माप और पायस द्वारा वलि हरण करावें
३१	दशम वर्ष	कलहंसी	शरीर मे दाह कृशता ज्वर होता है	पोलिका, अपूप, दही, अन्न के द्वारा ५ रात्रि पर्यंत वलि हरण करे नीम के पत्तों का धूप, कुष्ठ का लेप
३२	एकादश वर्ष	देवदूती	वाणी में निष्ठुरता आती हैं	पूर्वोक्त वलि लेपन , "
३३	द्वादश वर्ष	वालिका	श्वास हो जाया करता है	" " "
३४	त्रयोदश वर्ष	वायवी	मुख रोग अंगों में पीड़ा होना	रक्त, अन्न, गन्ध, माल्य आदि से वलि देवें, पञ्चदलों से स्नान, राई, नीम पत्तों की धूप दें।
३५	चतुर्थ वर्ष	यक्षिणी	शूल ज्वर दाह आदि होते हैं	मांस, भक्ष्य आदि वलि पूर्वोक्त स्नान धूपन।
३६	पञ्चदश वर्ष	मुण्डिका	बालक को पीड़ा, रक्त गिरना	माता की चिकित्सा करनी चाहिए
३७	षोडश वर्ष	वानरी	भूमि में पतन करता है निद्रा होती है, ज्वर रहता है।	खीर आदि द्वारा तीन रात्रि तक वलि का हरण, स्नान धूपपूर्वोक्त
३८	सप्तदश वर्ष	गन्धवती	गात्रोद्वेग प्ररोदन होता है।	कुल्माष आदि द्वारा वलि दें स्नानधूप तथा लेप पूर्व की भांति करावें।

वालग्रह-

चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आयुर्वेदीय आर्षग्रन्थों में वालग्रह एवं उनकी दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का विस्तृत विवेचन है। तन्त्रग्रन्थों मे इनकी संख्या ४० तक कही गई है किन्तु सुश्रुताचार्य ने समस्त भूतग्रहों को समन्वय ९ वालग्रहों के अन्तर्गत (स्कन्द, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका, नैगमेय) किया है जिस प्रकार से ज्योतिष शास्त्रानुसार जातक (नवजात शिशु) नवग्रहों द्वारा प्रभावित होता है एवं आप्त वाक्यों द्वारा ही उनका चार्ट (जन्म पत्रिका) बनाकर फलादेश घोषित किया जाता है उसी प्रकार इन भूतग्रहों का ज्ञान भी आप्त वाक्यों द्वारा ही प्राप्त किया जाता है ये वालग्रह "अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा, प्राप्ति प्राकाम्यी शित्वं वशित्व चाष्ट सिद्धय:" (अमरकोष), इस प्रकार आठ प्रकार के ऐश्वर्य (विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिक मष्टधा"—नामलिङ्गानुशासनम्) वाले होने से मनुष्य शरीर में प्रविष्ट होते हैं किन्तु ये भूत-प्रेत ग्रह आदि मानव शरीर में प्रविष्ट होते दृष्टिगोचर नहीं होते जिस प्रकार

दर्पण में छाया प्रवेश करती है, चन्द्रकान्तमणि आदि में सूर्य की किरणें प्रवेश करती है। शीत-गर्मी बिना दृष्टि-गोचर हुए ही व्याप्त हो जाते हैं तथा देह व जीवात्मा रहती है किन्तु दिखलाई नहीं देती। यथा—

दर्पणादीन् यथा छाया शीतोष्ण प्राणिनोयथा।
स्वमणिभास्कराचिश्च यथा देहञ्चदेहभृक्॥
विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणम्।
—सु० उ० तं० अ० १०

तथा—अदूषयन्तः पुरुषस्य देह देवादयः (देवग्रहा) स्वैश्च गुण प्रभावैः, विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातापौ दर्पणसूर्यकान्तौ" (च० चि० स्था० अ० ९) किन्तु आज तक जितने भी महात्मा-सिद्ध पुरुष हुए हैं उन्होंने एक स्वर में कहा है—'हमने आत्मा को देखा है जाना है।" ईसा पाल और पीटर सभी ने कहा है—अपने द्वारा प्रचारित सत्य को हमने प्रत्यक्ष किया है। हमारे आयुर्वेद महर्षियों ने भी अपने तपःचक्षु और दिव्य चक्षुओं से इन ग्रहों को जाना, प्रत्यक्ष किया, एतदर्थ आप्त-वाक्य ही प्रमाण माने जाते हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नवजात शिशु पर विविध रोगाणुओं एवं कीटाणु का प्रभाव पड़ता है तथा सद्योजात शिशु की परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्राचीन चिकित्सा विज्ञान वेत्ता आयुर्वेदज्ञों ने भी प्रायः अपवित्रादि कारणों से बालक के शरीर में ग्रहों का प्रवेश माना है—

धात्रीमात्रोः प्राक् प्रदिष्टापचाराच्छौचभ्रष्टान् मंगला-
चाराद्धीनात्।
त्रस्तान् हृष्टास्तर्जितान् क्रन्दितान् वा पूजाहेतोर्हिंस्यु-
रेते कुमारान्॥
—सु० उ० तं० अ० २७

धात्री और माता के पूर्वोक्त अपचार के कारण शुद्धहीन-प्रायः अपवित्रता आदि के कारण, मलमूत्र से भ्रष्ट मंगलाचार से रहित, भयभीत, धमकाए हुए, रोते हुए, शारीरिक व मानसिक अपवित्रता से, बच्चों मे प्यार न रहना, जिस घर में वृद्धों की सेवा न की जाती हो, अधर्मी व नियम विरुद्ध आचरण करने वालों के यहां यह ग्रह पूजा के लिए मारते (वा प्राप्त करते) हैं।

आज के वैज्ञानिक जिस जीवाणु विज्ञान के आविष्कार का श्रेय डा० काक को देते हैं, उनका पर्याप्त वर्णन अथर्व वेद (का० ५ सू० २३-१) में पूर्णरूपेण उपलब्ध है। चरक ने भी सूक्ष्मत्वाच्चैके भगन्त्यदृश्या कह कर जीवाणुओं की व्यापक सत्ता को स्वीकार किया है। वैदिक काल में आयुर्वेद-महर्षियों ने योग विद्या स्वर साधनादि विज्ञान के आधार पर तत्वों की सिद्धियों प्राप्त कर योग दर्शन ज्योतिष आदि विधाओं के आधार पर अकाट्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। त्रिकालज्ञ आदि आयुर्वेद आचार्यों ने प्रसन्नात्मन्द्रियमना स्वस्थ इत्याभिधीयते का निर्देशन कर निदान का मार्ग प्रशस्त किया था। आधुनिक नव अविष्कृत निदान-यन्त्रों (उपकरणों) की आत्मा, इन्द्रियां मन की प्रसन्नता (स्वस्थ) तक पहुंच नही है और यही कारण है कि भारत के तपः पूत जीवन विज्ञान-वेत्ता आयुर्वेद महर्षियों ने अनन्त समय पूर्व जो निदान-चिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान (Research) किया जो, सिद्धान्त प्रतिपादित किये वे आज भी उतने ही महत्व के हैं जितने कि अनन्त समय पूर्व थे और इसका कारण है आयुर्वेदीय निदान चिकित्सा साधनों का प्रायः आध्यात्मिक प्रधान होना। आधुनिक निदान यन्त्र भौतिक साधन युक्त पंच ज्ञानेन्द्रियमूलक प्रयुज्य होने के कारण भौतिक साधन-वश ज्ञानेन्द्रिय में विकृति आ जाने से पंगु भी हो सकते हैं किन्तु आचार्यो का आप्तोपदेश गलत नही हो सकता एतदर्थ आप्त वाक्यों को ही प्रमाण मानना चाहिये।

दैवव्यपाश्रय चिकित्सा—

चरक सुश्रुत वाग्भट आदि आयुर्वेदीय आर्षग्रन्थों में बालग्रहों की शान्ति के लिए दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का विस्तृत वर्णन है—

त्रिविधमौषधमिति-दैवव्यपाश्रयं, युक्ति व्यपाश्रयं सत्वावजयश्चेति। तत्र च दैवव्यपाश्रय मंत्रौषधमणि मंगलबल्युपहार होम नियम प्रायश्चित्तोप वास स्वस्त्ययन प्रणिपात गमनादि।

—चरक सूत्रस्थान ११।५४

उक्त चरक सूत्र में सर्व प्रथम स्थान दैवव्यपाश्रय चिकित्सा को ही प्राप्त है आयुर्वेद शास्त्र की इस चिकित्सा का वैदिक काल में महत्व पूर्व स्थान था तथा आज भी न

केवल भारत में अपितु तथाकथित विकासमान राष्ट्र अमेरिका, इग्लैण्ड में भी रोगी सब चिकित्साओं से हारकर अन्त में मन्त्र तन्त्रादि चिकित्सा की शरण में जाते हैं। दैवव्यपाश्रय चिकित्सा-मन्त्र, सिद्धोषधि, मणि-रत्न, वलि, होम, नियम व्रतादि-प्रायश्चित, उपवास, स्वस्तिपाठ, नमस्कारादि द्वारा की जाती है, मानस रोग, ग्रहरोग तथा जनपद्रोध्वंस जन्य कारणों में यह चिकित्सा अतीव लाभप्रद है प्राचीन काल में तो जब कोई किसी घर में बीमार पड़ता था तो पहले देवी चिकित्सा ही की जाती थी मन्त्रादि द्वारा ही रोग के उपद्रवों का शमनोपचार किया जाता था तथा आज भी नव्य चिकित्सा विज्ञान से जिसकी चिकित्सा नही हो सकती ऐसे रोगी दैवव्यापाश्रयी चिकित्सा की शरण लेते हैं तथा जनता में आज भी इसका जोर बढ़ा हुआ है।

अग्निपुराणोक्त चिकित्सा

पिछले पृष्ठों में ग्रहों के उपद्रव एवं शमनोपचार का उल्लेख कर चुके हैं, लेख विस्तार भय से अब अग्नि पुराणोक्त देवी-चिकित्सा का उल्लेख समीचीन समझते हैं। समस्त बालग्रहों में यह मन्त्र समस्त कर्मों के लिए मार्जनार्थ प्रयुक्त है—मन्त्र :—"ॐ नमः सर्वमातृभ्यो सर्वोर्य भञ्ज-भञ्ज, चुटचुट स्फोट्य-स्फोट्य-स्फुर-स्फुर, गृह्ण-गृह्ण, आकन्दयाक्रन्दय एवं सिद्धरूपो ज्ञापयति हर-हर निर्दोषं कुरुकुरु बालिकां बालं स्त्रियं पुरुषवा सर्वग्रहाणामुपक्रमात्। चामुण्डे नमो देव्यै हूं हूं ह्रीं अपसरापसर दुष्ट ग्रहान् हूं तद्यथा गच्छन्तु गृह्यका अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति" अग्निपुराण द्वितीय खण्ड-१५४/५१-५२

वलि-दान का मन्त्र : –जब वलि दी जायं तब अधोलिखित मन्त्र पढ़ें—

ॐ नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च-मुञ्च बालं बालिकां वा, वलि गृह्ण-गृह्ण, जयजय, 'वस वस"

अ. दि. १५४/५४

प्रार्थना :—उक्त कर्मोपरान्त प्रार्थना करे—

ब्रह्मा विष्णु शिवः स्कन्दो गौरी लक्ष्मीगणादयः।
रक्षन्तु ज्वरदाहार्त्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम्॥

अ. दि. १५४/५५

मन्त्र—देवता की प्रतीकोपासना है तथा तन्त्रग्रन्थों में भरपूर सामग्री उपलब्ध हो मणि-आदि का धारण भी ग्रहों की उपासना है तथा अदृश्य सूक्ष्म क्रिया होती है।

धूप-हवन—दैवी व्यपाश्रय चिकित्सा में धूप और हवन का बड़ा ही महत्व है प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों में तो सम्पूर्ण एषणाओं की प्राप्ति के लिए यज्ञ आदि का विधान है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने अनुसन्धान किया है कि—हवनीय सामिग्री को अग्नि में डालने से जो गैस बनती है उससे दूषित कीटाणुओं का विनाश तो होता ही है साथ ही वायुमण्डल (Atmosphere) भी शुद्ध हो जाता है। इससे मलेरिया, क्षय, शीतला, प्लेग आदि व्याधियां आसानी से नष्ट हो जाती है।

हेनकिन महोदय ने लिखित "व्यूवोनिक प्लेग" नामक पुस्तक में लिखा है—अग्नि में केशर घृत आदि डालने से प्लेग नष्ट होता है।

जर्मनी के टिपिट नामक विद्वान् ने लिखा है कि—

खांड को अग्नि में जलाने से "फार्मिक-एल डी हाइड" उत्पन्न होकर रोग के कीटाणुओं का नाश करता है। कई पश्चिमी विद्वानों ने हवनीय सामग्री के तैल को पानी में डालकर उस जल को गरम करके रोगी को सुंघने दिया, इससे उसके शरीर की पीड़ा, स्फोट एवं वेदन दूर हो गये।

सूर्य के प्रकाश से भी रोगात्पादकाणुओं का प्रभाव कम होता है तथा सभी प्रकार के रोगाणु न्यूनाधिक काल में समाप्त हो जाते हैं।

बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि अल्प रूप निदान (कारण) होने पर भी बहुत बड़ी गम्भीर व्याधि उत्पन्न हो जाती है तथा कितनी भी योग्य चिकित्सा करने पर भी उसका शमन नहीं होता, ऐसे समय समझना चाहिए कि यह व्याधि दैवकृत है। तथा दैव बलवान् होने से गम्भीर व्याधि भी सामान्य औषधोपचार को शमन हो जाती है। आज वैज्ञानिक चकाचौंध में जब कि विज्ञान ने मन्त्रों के माध्यम से अनुमान को प्रमाण में बदल देने का प्रयास किया है तो भी हताश और निराशा के अन्धकार मे डूबे हुए लोग आधिभौतिक व्याधियों से छुटकारा

पाने के लिए आध्यात्म की ओर दौड़ रहे हैं। मैं अपना ही एक उदाहरण यहां देना चाहता हू—मुझे प्रथम सन्तान की उपलब्धि हुई—ज्योतिष और मन्त्रशक्ति पर आस्था होने के कई कारण समक्ष आये जिसमें चिकित्सा का प्रमुख है—शिशु का जन्म से ही तीव्र खांसी रहती थी तथा वमन-जंभाई-रात्रि मे नींद न आना आदि लक्षण प्रमुख रहा करते थे औषधोपचार से तात्कालिक लाभ तो यत्किञ्चत् अवश्य होता था किन्तु क्षण में स्वस्थ और क्षण भर अस्वस्थ–इसी बीच सितम्बर "७२ के आयुर्वेद विकास" में सामुद्रिकाचार्य श्रीगोधर शर्मा जी का एक लेख "बालकों के भूतग्रह" पढ़ा जिसमें 'अपराजिता मन्त्र-साधन' तथा "दिव्य स्त्रोत" का पाठ लिखा था, अपराजिता मन्त्र का प्रयोग को समयाभाव के कारण नहीं कर पाया किन्तु 'दिव्य स्त्रोत" का मार्जन एक दिन सायंकाल किया–आश्चर्य हुआ कि उस रात शिशु का क्रन्दन अल्प हुआ–स्तोत्रपाठ में २१ कुशों को हाथ में लेकर ताम्र पात्र में जल भरकर प्रातः मध्याह्न सांय एक-एक पाठ करके मार्जन करने का विधान था–इतना सब तो नहीं किया किन्तु दूसरे दिन भी रात में स्तोत्र-पाठ करके हाथ से ही जल के छींटे देकर मार्जन किया और इस तरह ४-५ दिन में ही शिशु के सब उपद्रव शान्त हो गये तदुपरान्त जब भी कभी अस्वस्थता होते हैं उक्त "दिव्य स्त्रोत" का पाठकर जल के छींटे दे देने से तुरन्त लाभ होता ! यह कैसा चमत्कार है जिनका जिसमें कोई भी विश्वास न हो वह भी उस विज्ञान के प्रति श्रद्धानत होते जा रहे हैं।

इस प्रकार अग्निपुराण (द्वितीय खण्ड) के "बालादि-ग्रहहर-बालतन्त्रम् १५४ अध्याय के श्लोक १ से ५० तक के श्लोकों को तालिका के रूप में तथा ५१ से ५५ तक के मन्त्र चिकित्सार्थ उद्धृत किये गये हैं। जिनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए।

पृष्ठ ७४ का शेषांश

अष्टमदिवसोपसर्ग—

अष्टमे दिवस प्राप्ते सेना नाम च पूतना।
तथा गृहीतः श्वसिति हस्तौ कम्पयते भृशम्॥

अष्टममास में कृशांगी नामक पूतना का उपसर्ग होता है। इन दोनों का उपचार निम्न है—

तस्यै दध्योदनं दद्यात् तिलचूर्णञ्चपोलिकाम्।
धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च॥
आग्नेयीं दिशमाश्रित्य प्रदोषे बलिमाहरेत्।

हारीत द्वारा निर्दिष्ट पूतनाओं के वर्णन में और अन्य आचार्यों द्वारा वर्णित पूतना रोगों में पर्याप्त अन्तर है। हारीत सब ग्रहों को पूतनाओं के नाम से पुकारते हैं जबकि सुश्रुतादि ने कतिपय अतिसार ज्वर जनित घोर व्याधियों को ही उक्त नाम से लिया है। इसके और अन्यों के ग्रहनामों म भी पर्याप्त विभेद है।

बालकों का सर्वोषधि स्नान

मुरामांसी, जटामांसी, वच, कुठ, शैलेय, हल्दी, दारुहल्दी, कपूर, चम्पा, मोथा इन सब औषधियों के सर्वोषधि क्वाथ से बालक को स्नान कराने से उसके सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। इसके स्नान से ग्रह तथा राक्षस जन्य उपद्रव शान्त होते हैं। यह आयुष्य तथा कान्ति वर्धक है।

आर्ष ग्रन्थों में बालग्रह

राजवैद्य श्री पं० नागेशदत्त शुक्ल आयुर्वेदाचार्य, जालना

स्वतन्त्र दर्शन—आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है। आयुर्वेद स्नातक को शास्त्र की समस्त शाखाओं का तद्विदों से ज्ञान प्राप्त का पूर्ण विश्वास रखना चाहिए उसके प्रयोग प्रत्यय के बाद ही उस अङ्ग पर स्वविचार प्रगट करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र की तुलना इतर आधुनिक चिकित्सा शास्त्र की मौलिकता से करना भ्रान्ति है। क्योंकि आयुर्वेद शास्त्र की अपनी दार्शनिकता है। अपने मौलिक सिद्धान्त हैं। अपनी भौतिकता, रासायनिकता है। उस दार्शनिक सिद्धान्त को आयुर्वेद ग्रन्थकर्त्ता महर्षियों ने अपने-अपने संहिता ग्रन्थों में विवेचित किया है। आयुर्वेद का अपना स्वतंत्र दर्शन है।

आयुर्वेद का परिसीमन—आयुर्वेद शास्त्र संस्कृति का भी संरक्षक था। इससे भारतीय वैदिक संस्कृति संलग्न थी। इसकी संस्कृति का सेवक शाशक होता था। संस्कृति का देश राष्ट्र एवं साम्राज्य भी। पर शाशक होता था। संस्कृति का देश राष्ट्र एवं साम्राज्य भी था। पर शाशक सदा एक ही वंश का धर्म शाशक के अभाव मे स्थिर नहीं रह सकता। जहां शाशन है वहां बलद, लोभ, सत्ता, स्वार्थ उत्पन्न हो ही जाते हैं। अतः शाशक बदले उससे संस्कृति भी बदली। इन परिस्थितियों में उसकी देश सीमायें बदली परिवर्णित हुयी, रूपान्तरित हुयी। नवीन विश्व के प्रमुख चिकित्साशास्त्र एवं रसायन शास्त्र के ग्रंथकर्ता अपने प्राङ्मुख में आयुर्वेद का नामोल्लेख करते हैं। इसे अधिक महत्व नहीं देते।

छत्रहीन आयुर्वेद—आज के विश्व में वैदिक संस्कृति का देश नहीं रह गया है। भारत धर्मनिरपेक्ष देश है। नेपाल एक छोटा सा देश है। संस्कृति आज ईसाई, मुसलमान, हिन्दु प्रमुख नामो में बंटी हुयी है। ईसाई और मुसलमानों के धर्म सापेक्ष अनेक देश व राष्ट्र है। वे देश इस समय स्वसंस्कृति के महत्व को प्रकाशित करने में विपुल धनराशि का व्यय करते रहते हैं। ईसाइयों ने अधिक काल के स्वतन्त्रता में विकास का लाभ लिया हैं। उनके विद्या की शाखाओं के विस्तृत शास्त्र हैं और जागृत शास्त्र है। मुस्लिम संस्कृति ने धर्मतक अपने को सीमित किया है। विज्ञान के क्षेत्र में वे आधुनिक शास्त्रो के अनुयायी हैं। क्योंकि उनके पास मौलिक पुरातन दर्शन का अभाव है आयुर्वेद शास्त्र को चिरकाल तक परतन्त्र में जीवित रहना ही बड़े भाग्य की बात है। आज इस शास्त्र की अनुयायी कतिपय हिन्दू जनता है।

इस लेख के लेखक स्वनामधन्य श्री नागेशदत्त शास्त्री वैद्यराज से पूरा का पूरा वैद्यों का युग ही परिचित है। शरीर में शैथिल्य का लेश हो या न हो साहित्य और आयुर्वेद के रत्नाकर के लेख में कहीं शैथिल्य नहीं है। सारा लेख एक अनुभवी ज्ञान सम्पन्न वैद्य की निर्भरिणी से प्राप्त सुधाविन्दु हैं। जो सहज भाव से सुधानिधि को प्राप्त हुए हैं। आशा है पाठक पूरे मनोयोग और सम्मान से इनका अध्ययन करेंगे। — मदनमोहन चरौरे

नेपाल है लंका है। आज इसके सिर पर शास्त्र संरक्षक शासक नहीं है। आज इसके सिद्धान्त श्रेष्ठ है, इस तुलना को प्रमाणित करने के लिए आर्थिक साधन सुविधा नहीं है। इसको आवाज उठाने वाले त्यागी शासक, त्यागी आदमर्य, विद्वान कम है और कम हो रहे हैं। इस कारण आयुर्वेद का महत्व, लोकमान्य विश्वमान्य नहीं हो पा रहा है। बाल वयस्तु त्रिविध—तत्रोनसोर्पीशवर्दीया बाला तेषु संवत्सरपराःक्षीरपाः, द्विसंवासरपराः क्षीरा, नाश परतोऽन्नादा इति। सु० सू० ३४,२१। बाल बाल्यावस्था मात्र केवल बाल परक गणना ही नहीं है। आयुर्वेद मानव मात्र के जन्म लेने को एक विशेष दृष्टि से देखता है। इसका स्पष्टीकरण करने के लिए आयुर्वेद की बृहद्त्रया लघुत्रयी में सृष्टि के आविर्भाव का वर्णन है। २४ तत्वों का वर्णन है। २४ वीं चेतना को लेकर पचविंशन्तिनमः पुमान माना है। नहीं तो आयुर्वेद में २४ तत्वों के वर्णन की आवश्यकता ही क्या थी! यह शास्त्र मानव प्राणिमात्र घटक और विश्व घटक के घटकों को समान उत्पादन तत्वों से उद्भूत मानता है। अतः आयुर्वेद पंचभूत उसकी भौतिकता को लेकर व्याख्या करता है। अतः आयुर्वेद शास्त्रकारों ने गर्भवस्तु की विस्तृत व्याख्या की है।

पुर्नजन्म—गर्भ ग्रहण आत्मा का पुनर्जन्म है। जन्म-मात्र पुर्नजन्म है। कर्मविपाक का परिणाम ही पुर्नजन्म बालक का जन्म लेना एक आत्मा का पुनर्भव है। आज के बहुसख्यक ईसाई मुस्लिम राष्ट्र पुर्नजन्म को नहीं मानते। इसी धर्म के संशोधक शास्त्रकारों ने आत्मा के पुर्नजन्म पर विचार नहीं किया है। यह परधर्मीय शास्त्र-कार जब भी भारतीय दर्शन के दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करेंगे तब सत्य के समीप पहुंचेंगे। आयुर्वेद ने वायु स्वरूप में अदृश्य रूप में एक सत्ता को जन्म ग्रहण को माना है। उनकी दृष्टि में अदृश्य योनियों की सत्ता है। क्या परधर्मीय परदेशीय अभिनिविष्ट शास्त्रकारों की बहु-सख्याकता के कारण आयुर्वेदीय शास्त्रीयता का मूल्य कम किया जा सकता है। कदापि नहीं जानो ह्ययं निरवधिः विपुलाय पृथ्वी।

प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा पुनर्जन्म सिद्धी—माता पिता के होने वाली सतानो का समान न होना, उनके रङ्ग रूप आकृति स्वर बुद्धि मन में एवं भाग्य में विभिन्नता होना, ऊंच नीच कुल में जन्म लेना नौकर, मालिक, सुख, आयु अमुख आयु में अन्तर होना। अशिक्षित शिशु का रोना, हंसना, दूध पीना, भयभीत होना किसी कर्म में निपुण होना किसी में अनिपुण होना, जातिस्मर होना आदि जन्मान्तर ग्रहण को प्रमाणित करते हैं। आकाश को छोड़कर चार भूत पृथ्वी जल तेज वायु एवं कर्म सहित आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है। रूप से रूप, मन से मन कर्मानिक रज और तम से अकृत बुद्धि भेद गर्भ को प्राप्त होते हैं। च० शा० २-३५-३६ सन्ति चागम प्रायधारेव पुनर्भवमिच्छन्ति युक्तिः षड्धातु संयोगाद् गर्भाणां समवस्तथा। च. सू. ११ ६-२३।

अदृश्य योनि की मान्यता—जैन बौद्ध धर्म कर्मविपाक और पुनर्जन्म को मानते है ईसाई मुस्लिम धर्म अपने बुरे कर्मों का इष्टानिष्ट फल मानते हैं, पर पुनर्जन्म को आयुर्वेद शास्त्र पूर्वकृत कर्म से सुख दुःखादि प्राप्ति को मानता तो है ही अर्थात् कर्म फल जनित जन्म को मानता है। अनेक कर्मज व्याधि पर वह निर्णय देता है कि "क्रियाघ्नाः कर्मजाः रोगः प्रशम यान्ति तत्क्षयाद्। आयुर्वेद सिद्धान्त से अदृश्य योनियां है। ईसाई धर्म भी शैतान और नरक को मानता है। मुस्लिम धर्म भी जन्नत दोजख शैतान को मानता है अफगानिस्तान के हाथी जैसे नामांकित पहलवान नौजवान शैतान न लगने के लिये गले में दण्ड पर तावीज बांधे फिरते हैं। उक्त दोनो कर्मो ने लोग कब्रिस्तान के पास पहुचने पर प्रेतो की सत्ता में विश्वास करते हैं। इस प्रकार से शैतान भूत प्रेत अदृश्य योनि को स्वीकार करते है। ईसाई मुस्लिम वैज्ञानिक चर्च मस्जिद सभा से अदृश्य योनि को स्वीकार करते हैं और तद्वद् व्यवहार करते है।

भूतविद्या आयुर्वेद का अङ्ग है—आयुर्वेद का अंग ही भूत विद्या है। यह शास्त्र गर्भाधान, प्रसव उन्माद एवं बाल रोगों में भूतविद्या का आदेश देता है। आयुर्वेद शास्त्रज्ञ को पूरे अंगों में विश्वास करना चाहिये। आयु-र्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।

जड़भूतों की अदृश्यता को मान्यता। आज का आयु-

निक वैज्ञानिक आकाश वायु सहयोग मे रेडियो द्वारा स्वर लहरी टी. वी. द्वारा रूप शब्द लहरी, टेलीपिण्ट द्वारा मुद्रण, लोयरलेस द्वारा संदेश प्रेषण को मानता है। इस प्रकार अचेतन अदृश्य प्रकृति सत्ता को स्वीकार करता.है।

नजर टोना लगना—किसी का भी छोटा बच्चा हो, उसके गाल पर, माथे पर काजल का एक टिपका लगा होगा। हाथ में या गले में काला डोरा होगा। शहर में किसी का मकान बन रहा हो, उस पर एक काला पुतला उलटा सुलटा लटका देखा पड़ेगा। नया दरवाजा बिठाया गया हो, उस पर निम्बू मिर्च भिलावा लग होगा। इस प्रकार नजर (कुदृष्टि न लग जाये) न लग जाये। बचने के लिये, शिक्षित वकील डाक्टर सभी ऐसा आचरण करते है। इस समय बम्बई हाइकोर्ट के न्यायाधीश जी. एन. वैद्य बीमार पड़ गये, और उपचार किये गये, पर एक दाना अन्न का नही खा सकते थे। आखिर राई, भिलावा, मिर्ची नमकसे उनकी नजर उतारी गयी। उसी क्षण हल्के हो गये और भोजन करने लगे। एक दिन मेरे घर में लगी चिकनी तोरई पर फल लगे हुये थे, एक सज्जन घर आये और उन्होंने उस फल को देखकर बड़ी प्रशंसा की, बडी देर तक नजर से उसे देखते रहे। उस दिन शाम में उसकी भुजिया बनायी खायी गयी। पूरा घर उल्टी दस्त से परेशान हो गया। उन सज्जन की नजर जब भी खाद्य पदार्थ पर लग जाती थी, वहां बड़ी परेशानी होती थी। एक समय मेरे औषधालय के सामने मुस्लिम दूकानदार की दीवार घड़ी को हुशियार घड़ी साज ने बड़ी कला के साथ उसका घर चौखट बदलकर नया कांच रग आदि लगाकर बड़ा आकर्षक बना दिया कुछ मित्र जमा होगये। सड़क होने के कारण अनेक राही जमा हो गये। पुरानी घड़ी नयी मे भी सुन्दर हो गयी, दर्शक प्रशंशा करने लगे। सब के सामने कारीगर ने घड़ी दीवाल पर लगा दी। दर्शक देख रहे थे। इतने ही में देखते-देखते घड़ी का कांच फटाफट तड़कने लगा और टूट टूट कर गिर गया। दुःखी दुकानदार अज्ञान कुदृष्टि वाले को खड़े होकर गालियां देने लगा। इस प्रकार पाठक भी बहुत से अनुभवों से परिचित होंगे। इस प्रकार समाज में नजर लगने को मान्यता है।

सन्तान का जन्म अत्यधिक मानसिक प्रक्रिया है

माता की सन्तानेच्छा ही कोमल मानस मन्दिर से प्रारम्भ होती है। आचार्य सुश्रुत कहते है कि "ततः शुद्ध स्नानाम् चतुर्थेऽहनि अहतवासः समलङ्कृताम् कृत मंगल स्वास्ति वाचनां भर्तारम् दर्शयेद्। पत्नी के मानस मन्दिर में पति की ही प्रतिमा अभाग्ने के लिये शुद्ध स्नाना को उसके पति का प्रथम दर्शन करना चाहिये। पूर्वं पश्येहनु स्नाना यादृशे नरमङ्गना। तादृशं जनयेद् पुत्र भर्तारं दर्शयेदतः। आयुर्वेद ने मन चाही सन्तान प्राप्त करने के लिये रंगमन्दिर सजाने के विविध विधान बनाये है। सायं प्रातश्च शश्वच्छ्वेतं महान्तम् वृषभाजानेय वा हरिचंदनाङ्गदे पश्येद्। च. शा. ८. १। गर्भाधान के बाद गर्भिणी के दौहृद्र पूरा करने का आदेश दिया है। उसके इष्टानिष्टं फल बतलाये हैं।

बाल रूप—किसी भी व्यक्ति के छोटे बच्चे को देख कर द्रष्टा का मन भरपूर नाचने लगता है। बच्चों की ओर मन आकर्षित होता है, खिच सा जाता है, थोड़ी ही देर में बच्चा भी देखने वाले प्रिय दर्शन व्यक्ति से हंसते देखने लगकर मित्र बन जाता है। इस प्रकार रेल बस के थोड़े प्रवास में भी छोटे मित्र सरलता से मिल जाते है। छोटे बालक वशीकरण के चैतन्य रूप हैं। पशु पक्षियों के भी शावक प्यारे लगते हैं। बालक मोहन है. उसका कोमल मन जिस प्रकार सात्विक द्रष्टा से वशीभूत होता है। उसी प्रकार दुष्ट मन वालों की दृष्टि से पीड़ित होता है। बाल मन कोमल अविकसित होता है। उस मन का विषय क्षुधा निद्रा तक सीमित रहता है। ज्यों-ज्यों उसके मन के अर्थ विषय वस्तु संसार का परिचय बढ़ने लगता है, त्यों त्यों चिन्तन, मनन, विचारणा, ऊहो ध्येय सकल्प को समझने की क्षमता किशोरावस्था तक पहुंचते-पहुंचते प्राप्त करता है

बालग्रहों का अस्तित्व—आयुर्वेद शास्त्र ने कर्म सहित आत्मा के शरीर ग्रहण को पुनर्जन्म माना है। अदृश्य देव यक्ष ब्राह्म राक्षस योनियों का माना है सुश्रुत संहिता में बालकों को पीड़ा रोग देने वाले ग्रहों का वर्णन है। अष्टांग हृदय में १२ बाल ग्रहों का वर्णन है। अन्यान्य

तान्त्रिक भूत विद्या प्रधान ग्रन्थों में अत्यधिक विस्तार में वर्णन है। भैषज्य रत्नावली के बालग्रह प्रकरण में बाल ग्रहों की शान्ति रावणकृत संहिता द्वारा दी गयी है। इन बालग्रहावेश में शारीरिक रोग लक्षणों का वर्णन है। कौमार भृत्य के नवीन ग्रन्थ लेखकों ने बालग्रह लक्षणों को लेकर बड़ी गम्भीरता से अन्यान्य अपस्मार पक्षाघात सन्यास और न जाने क्या क्या सोचकर उनसे तुलना निदान किया है। इन्हें दोष दूष्य आयुर्वेदीय दृष्टिकोणों से भी रोग शान्त होने वाली नहीं है। इन्हें शुद्ध ग्रहबाधा मानकर ग्रह चिकित्सा करना ही आयुर्वेदीय सिद्धान्त के अनुकूल है। बलि पूजन पताका दीप अन्न विशेष नदीतट प्रत्रलिका, समय औषधि स्नान, मन्त्र, जप, आदि तद्विधान करने से श्रेष्ठ शीघ्र लाभ होता है। आशुतम् लाभ होता है। वैद्य को इस प्रकार मार्गदर्शन करने में अपने को ओझा, मांत्रिक मानने में लज्जित होने का विषय नहीं है पाठक वैद्य वैसा करके समाजहित में यशोभागी हो सकते हैं। इतना ही नहीं इस विषय में छू छा करने वाले अशास्त्रीय प्रकार करने वाले अशिक्षित, भय प्रकार करने वालों को दूर कर सकते है वैद्यों ने जलौकावचरण, क्षारकर्म, अग्नि कर्म, पंचकर्म, उन्मादग्रह चिकित्सा, बालग्रह चिकित्सा, नेत्र, कर्ण, नासा, चिकित्सा, आयुर्वेदीय प्रसूति परिचर्या पद्धति का परित्याग कर दिया है। आयुर्वेद के एक एक आवश्यक अंगों का परित्याग करना आयुर्वेद को समाज में अप्रतिष्ठित बनाता है। वैद्य को परिश्रम कर सर्व कर्म चिकित्सक होना चाहिये। आतुरालय मे बालग्रह विभाग, आयुर्वेद महाविद्यालयों के आतुरालयों में बालग्रह चिकित्सा का स्वतन्त्र विभाग होना चाहिये। उस विभाग में तद्विद वैद्य को O. P. D. में नियुक्त करना चाहिये। चिकित्सक वैद्य द्वारा अमुक ग्रह विशेष से अमुक बालक ग्रसित है यह निर्णय आयुर्वेद छात्रों के समक्ष में लेना चाहिये। और उस बालक के अभिभावक से संभार संग्रहीत करने की व्यवस्था करवा कर उस ग्रहविशेष की शान्ति यथास्थल जाकर करवानी चाहिये। इस प्रकार से समाज में फैली अप्रतिष्ठा को भ्रान्तियो को शास्त्रीय सिद्धान्त प्रतिष्ठा मे यशस्वी बनना चाहिये। तभी बाल ग्रह की वास्तविकता से समाज का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है।

—×—

भेषज्यरत्नावली का बालग्रहबाधा नाशक अष्टमंगल घृत

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थ कमथापि वा शारिवा सैन्धवञ्चैव पिप्पली घृतमष्टमम् ॥१॥
मेध्य घृत मिदं सिद्धं पातव्यञ्च दिने दिने दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥२॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः प्रभवन्ति कुमाराणां पिवतामष्टमङ्गलम् ॥३॥

गाय घृत ४ सेर। कल्कार्थ वचा, कुष्ठ, ब्राह्मी, श्वेत सरसों, अनन्तमूल, सैन्धव लवण, पिप्पली, मिश्रित १ सेर। पाकार्थ जल १२ सेर। इस घृत का सेवन कराने से बालकों की स्मृति मेधा तथा बुद्धि बढ़ती है इस घृत के पान से पिशाच, राक्षस, भूत तथा मातृ का प्रभृति का बालकों पर कोई प्रभाव नहीं होता।

मात्रा—२-३ बूंद

आर्ष ग्रन्थों में शिशु उपयोगी द्रव्य

आचार्य पं० प्रियव्रत शर्मा, अध्यक्ष—द्रव्यगुण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अनवरत शास्त्रचिन्तन में संलग्न विद्यानिकेतन नालन्दा की क्रोड में जन्मे और प्रातः स्मरणीय महामना मालवीय के जीवन का अर्घ्य पाकर सम्बन्धित विविध विद्या संकायों से शोभित हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विद्या संस्थान के द्रव्यगुण विभागाध्यक्ष आचर्याणां आचार्य परम प्रीतिभाजन पण्डिताग्रगण्य श्री प्रियव्रत शर्मा की लेखनी से निःसृत सुधाबिन्दुसमूह इस लेख ने उन वनौषधियों की ओर भारतीय चिकित्सक समाज का ध्यानाकर्षण किया है जो विगत सहस्रों वर्षों से हमारे शिशु समाज के जीवन के संरक्षण में सतत क्रियाशील रही हैं। प्रत्येक वैद्य का यह धर्म है कि वह इन औषधों से परिचित होकर अपने दैनन्दिन व्यवहार में उनका सदुपयोग करे। अनेक आधुनिक औषधें जहां अत्यन्त दुष्प्रभाव दिखाती हैं वहां ये आयुर्वेद की अनमोल देन केवल लाभ ही लाभ देती हैं ये अमृतकल्पा हैं विषकल्पा नहीं। आचार्य प्रवर की इस कृपा के लिए हम विशेष आभारी हैं।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

यों तो वयस्कों के लिए उपयोगी सभी औषधद्रव्य मात्रानुसार बालकों में प्रयुक्त होते हैं फिर भी इनमें तीक्ष्ण वीर्य द्रव्यों के प्रयोग का निषेध है। अल्प मात्रा के साथ-साथ औषध मृदुवीर्य होनी चाहिए किन्तु कार्यकारिता में भी कोई कमी न हो। ऐसे द्रव्य चिरकाल से परम्परा प्रचलित होने के कारण एक प्रकार से बालरोगों के लिए विशिष्ट से बन गये है। ऐसे ही कुछ प्रमुख द्रव्यों का उल्लेख यहां किया जायगा।

१. अतिविषा—दीपन, पाचन, ग्राही तथा सर्व दोषहर है (अतिविषा दीपनीयपाचनीयसांग्राहिकसर्वदोषहराणाम् च.)। बच्चों में विशेषतः दन्तोद्भेद काल में छर्दि, अतिसार, कास और ज्वर ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इनमें अतिविषा चूर्ण १-२ रत्ती की मात्रा में मधु मिलाकर चटाने से बड़ा लाभ होता है। इस अवस्था में बालचतुर्भद्रा एक प्रसिद्ध योग है जिसमें अतिविषा के साथ साथ पिप्पली, मुस्तक और कर्कटशृङ्गी का संयोग है किन्तु यदि अकेली अतिविषा हो तब भी कार्यकर होती है (कासज्वरच्छर्दिभिर्दिताना समानिकां चातिविषा तथैकाम्)।

यह अग्नि को दीप्त कर आमदोष का पाचन करती है जिससे आमदोष का प्रसार नहीं होने पाता और तज्जन्य विकार नहीं होने पाते। इस दृष्टि से भी इसकी संज्ञा 'अतिविषा' तथा सर्वदोषहर' विशेषण सार्थक हैं।

२. कर्कटशृङ्गी—यह कषायतिक्त और उष्णवीर्य है। वातश्लैष्मिक विकारों में यह अतीव उपयोगी है। कास,

श्वास, कुकुरखासी के लिए यह उत्तम औषध है। शृंग्यादि चूर्ण इसका प्रसिद्ध योग है।

३. **मुस्तक**—यह दीपन, आमपाचन तथा ग्राही है। अग्निमांद्य, अतीसार के लिए उपयोगी है। मुस्तकारिष्ट इसका उत्तम योग है। आयु के अनुसार जल मिला कर इसका प्रयोग करें। यदि बालक दुर्बल है तथा पित्त का भी विकार लक्षित हो तो अरविन्दासव मिला कर दें। बालक के शरीर में शोथ हो जाने पर मुस्तक, कूष्माण्ड बीज, देवदारु तथा इन्द्रजो का लेप किया जाता है।

४. **पिप्पली**—सामान्यतः पिप्पली कटुरस समन्वित होने से बच्चों को विशेष प्रिय नहीं होती। पर बालरोगों में पिप्पली का बहुत प्रयोग देखा जाता है। बालकों के दांत निकलते समय जो अनेक व्यथाएं पाई जाती हैं उन्हें दूर करने का सर्वोपरि उपचार दांतों का आसानी से निकालना ही है—

दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति न बालकम्।
जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः॥

इसके लिए मसूड़ों पर मधु मिलना अथवा धाय के फूल, पिप्पली के चूर्ण को आमले के रस के साथ मलना उपयोगी बताया जाता है।

शिशुओं के जीर्ण ज्वरों में चौसठ प्रहरा पिप्पली का प्रयोग मधु के साथ आज भी वृद्ध वैद्यों द्वारा किया जाता है।

बालयकृत् एवं प्लीहोदर में 'तथा दुग्धेन पातव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये' यह भावप्रकाशीय वाक्य किस वैद्य को याद नहीं। यकृत् की विविध क्रियाओं को विशेषकर शिशु यकृत् को उत्तेजित करने और उसे प्राकृत बनाने के लिए पिप्पली के महत्व पर गवेषकों को अभी और भी धीरता से कार्य करना होगा विशेषकर हारीत के इस परिप्रेक्ष्य में—

क्षौद्रेण पिप्पली चूर्णं लिह्याच्छ्लेष्मज्वरापहम्।
प्लीहानाहविबन्धार्तिकासश्वासविमर्दनम्॥

पिप्पली
PIPER LONGUM LINN

बच्चों की कास, अजीर्ण, श्वास, हृद्रोग, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरोचक, कामला और जीर्णज्वर में उसी ने गुड के साथ पिप्पलीचूर्ण की प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापित की है।

वाग्भट तेल में भुने पिप्पली के चूर्ण को मिश्री मिला कर कफजकास में कुलथी के जल में मिलाकर पिलाने की कम महत्वपूर्ण राय नहीं देते। अन्त म पिप्पली दीपन, पाचन, कासहर होने के साथ साथ एक उत्तम रसायन भी है। पिप्पलीचूर्ण मधु के साथ चटाने से अग्नि दीप्त रहती है, खांसी जुकाम नहीं रहता तथा बल की वृद्धि होती है।

५. कुङ्कुम या केसर—यह एक सौम्य किन्तु उष्ण-वीर्य द्रव्य है। यह व्रण जन्तुजित् होने से बच्चों की सभी प्रकार की इन्फ्लेमेटरी व्याधियों में बिना किसी शंका के प्रयुक्त की जाती रही है। मुखपाक, फुप्फुसपाक, वृक्कपाक, मस्तिष्कपाक सर्वत्र इसका उपयोग किया जा सकता है। बच्चों के वमन को यह तत्काल दूर करती है। इसलिए माताओं को अपने दूध में इसके २–३ सूत्र मिलाकर देना चाहिए। जब बच्चे को पेशाब नहीं उतरता तब मधूदक (शहद मिले जल) के साथ केसर पिलाई जाती है। केसर की सबसे बड़ी विशेषता इसका विषघ्न या एन्टीटाग्जिक होना है। बालकों को कब कहां से कौन सी विषमयता आ जावे इसलिए उन्हें केसर देते रहना चाहिए। विविध ज्वरों में टाग्जीमिया कम या बहुत हो जाता है बच्चों में तो यह मारक सिद्ध होता है इसलिए केसर या कुंकुम प्रत्येक ज्वर में दी जानी चाहिए। बालार्करस का योग तो केसर पर ही अधिष्ठित है—

रसकञ्च प्रवालकञ्च शृङ्गभस्म च हिङ्गुलम्।
कर्पकचूर्ंरकेणाऽऽढ्यं केशरन्तु समांशकम्॥
मर्दयेज्जलयोगेन जलेनैनं प्रदापयेत्।
वातश्लेष्मातिसारेषु कृमिकास ज्वरार्तिहृत्॥

यह विविध बालरोगों पर उत्तम कार्य करता है यह निर्विवाद है।

६. जातीफल—यह दीपन, ग्राही एवं कासहर है। नवजात शिशु को अतिसार होने पर जायफल को दूध में घिसकर पिलाते हैं। प्रबल अतिसार होने पर नाभि पर भी लेप करते हैं। जुकाम-खांसी में भी लाभकर होता है। ग्राही होने के साथ साथ बलवर्द्धक भी है। जातीफलादि चूर्ण इसका प्रसिद्ध योग है। बच्चों में भंगा रहित का प्रयोग करना चाहिए।

७. रसांजन—दारुहरिद्रा का यह एक प्रकार से घन-सत्व है। नेत्ररोग में हरीतकी और कशीश के साथ मिला कर पलकों पर इसका लेप करते हैं। इसका नेत्रबिन्दु बना कर आंखों में डालते हैं। यकृत् विकार के कारण जब पतले दस्त आते रहते हैं तब यह अत्यन्त लाभकर होता है। यदि रसाञ्जन उपलब्ध न हो तो दारुहरिद्रा को घिसकर उसके चन्दन को मधु मिलाकर चटावें या जल में मिलाकर पिला देवे। बच्चों के गुदपाक में इसकी विशेष महिमा बतलाई गई है—

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥

८. दाडिम—यह उत्तम साधन है। अनार की कली बकरी के दूध में पीसकर बच्चों के शोषजन्य अतिसार में दिया जाता है। दाडिम फल का छिलका पुटपाक कर उसका चूर्ण या स्वरस भी उत्तम स्तम्भन कर्म करता है।
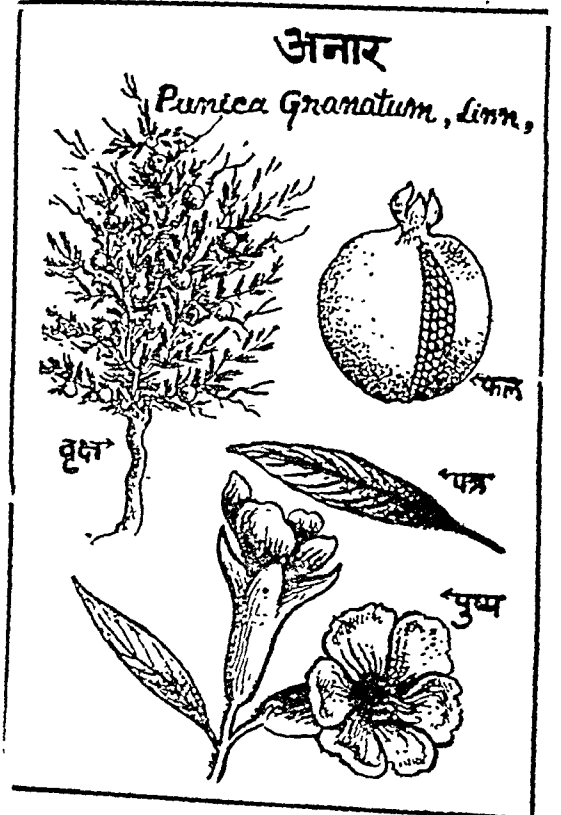
अनार की जड़ की छाल कृमिरोग में उपयोगी है। दाडिम चतु:सम प्रचलितयोग है। लवंग चतु:सम वातकफ प्रधान तथा दाड़िम चतु:सम रक्तज और कफपित्तप्रधान अतीसार में देना चाहिए।

९. टंकण—इसे सौभाग्य या सोहागा कहते हैं। इसे तवे पर फुला कर चूर्ण कर लेते हैं। यह वातानुलोमन तथा शूलप्रशमन है। उदरशूल में इसका प्रयोग करते हैं। प्रवाहिकाजन्य शूल में लवंग चतु:सम अच्छा लाभकर है। इसमें जायफल लवंग, जीरा और सोहागा ये चार द्रव्य हैं। चूर्ण में चीनी मिलाकर मधु से देना चाहिए। जीरा भून कर डालना चाहिए।

१०. हिंगु—छेदन दीपन एवं वातानुलोमन है। खांसी में कफ को निकालने के लिए कच्ची हींग दूध में घोलकर पिला देते हैं। इससे छाती में जमा सारा कफ बाहर आजाता है। दीपन एवं वातानुलोमन के लिये शोधित हींग का प्रयोग करते हैं।

११. विडंग—यह क्रिमिघ्न द्रव्यों में सर्वोत्तम कहा गया है। बालकों में क्रिमि रोग का आक्रमण विशेष होता है। विडंग चूर्ण का अभ्यास करने से क्रिमि रोग समूल नष्ट हो जाता है। यह क्रिमिघ्न होने के साथ साथ बल्य भी है।

क्रिमियों के कारण जो विविध रोग लक्षण उत्पन्न होते हैं उन्हें भी यह दूर करती है—शूलाध्मानोदर श्लेष्म कृमि वात विबन्धनुत्।

१२. वचा—अल्प विकसित मस्तिष्क वाले बच्चों को वचा, शंखपुष्पी, मण्डूकपर्णी आदि मेध्य द्रव्यों का सेवन स्वर्ण भस्म या रससिन्दूर के साथ कराना चाहिए। इससे वाक्शक्ति भी बढ़ती है। वंगसेन ने शिशुओं को कच्छु विचर्चिकादि त्वग्रोगों में वचाकुष्ठ विडंगानां कोष्ण क्वाथ में अवगाहन या टबवाथ देने का सत्परामर्श दिया है।

१.. मधुयष्टी—मीठी होने से बच्चे आसानी से इसे लेते हैं। जिस शिशु को लार बहुत टपकती है उसके मुख में केवल इसका चूर्ण बुरकने से भी लाभ होता है। टंकण और मधुयष्ठी चूर्ण मुख के अनेक रोगों को दूर करते हैं। भावप्रकाश में मुख प्रक्षालनार्थ एक पूरा योग ही दिया है
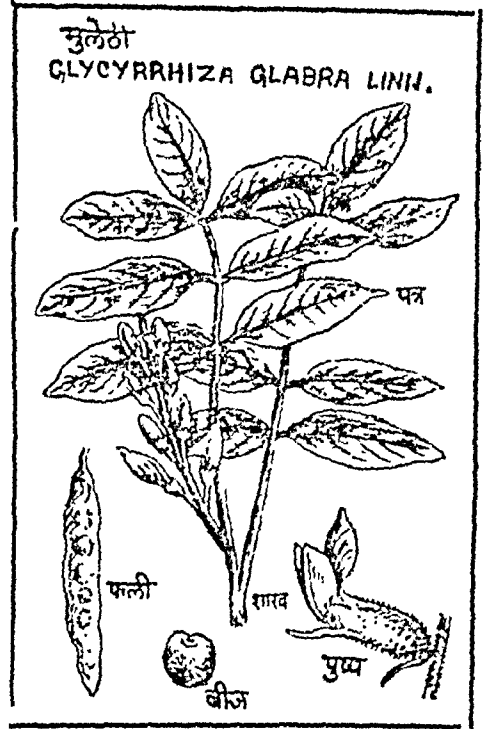
सारिवातिल लोध्राणां कषायो मधुकस्य च।
संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा॥

१४. अभया—यद्यपि पञ्चरेखाऽभया प्रोक्ता से भावमिश्र ने हरीतकी की सप्तजातियों में अभयाकी गणना की है किन्तु अभया से भयरहित किसी हरड़ की कल्पना की जावे तो वह बाल हरीतकी ही आती है। वृद्ध वैद्य अभी भी शिशु रोगों में बाल हरीतकी का ही प्रयोग करते हैं वही शिवाहैवही युक्त-युक्त पथ्या है। अभया का नाम से प्रयोग चरक संहिता में ६०-७० स्थानों से अधिक जगह पर पाया जाताहै। जब कि हरीतकी शब्द ३०-४० से अधिक स्थानों पर नहीं आया, अन्य नामों का उपयोग भी कम हुआ है।

बच्चों को काली हरड़ घिस कर देते हैं। वह नका विबन्ध दूर करती है। वात का अनुलोमन करती है। इसका लेप नेत्र की सूजन मिटाता है। यह अग्नि सन्दीपनी आयुष्य और आंतो में फ्लोरा को पुनर्जीवित करके इस प्रकार स्वास्थ्य वर्द्धन में अच्छा काम करती है।

जो लोग बच्चों को अनेक ऐण्टीबायोटिक औषधें देते रहते हैं। यदि वे साथ में या बाद में स्वल्प मात्रा में

अभया के क्वाथ को पीडियाट्रिक ड्राप्स के रूप में देते रहें तो बच्चे उन औषधों के उग्र प्रभाव से बच कर शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

त्रिफला के जल के इसी प्रकार बने बिन्दु या ड्राप्स एक उत्तम शिशु जीवनीय एवं रसायन द्रव्य की आवश्यकता की सहज पूर्ति कर सकते हैं। भावमिश्र के एक श्लोक का यह किञ्चित् परवर्तित रूप इसके गुणों की अच्छी व्याख्या कर देता है—

सप्तानामपि जातीनां प्रधानमभया स्मृता।
सुखप्रयोगा सुलभा सर्वरोगेषु शस्यते॥

१५. बिल्व—बेल का कच्चा फल और उससे बना बिल्वशलाद बालकों के लिए उनके स्वास्थ्य वर्द्धन और अन्य प्रक्षोभ मिटाने में अच्छा काम करता है। स्निग्ध होने से वातक्षोभ दूर करता है। ताजा कच्चा फल रुचिकर होता है। अग्निदीप्त करता है। लघु एवं उष्णवीर्य है। ग्रहणी, आमातिसार, उदरशूल दूर करता है। वंगसेन ने बालबिल्व को रक्तातिसार आमशूल विबन्ध तथा कुक्षि या उदर के रोगों में लाभप्रद माना है:—

गुडेन भक्षयेद् बिल्व रक्तातीसार नाशनम्।
आमशूल विबन्धघ्नं कुक्षि रोग हरं परम्॥

वृन्द ने इसे समस्त बालातिसारों में देने का निर्देश किया है।—

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पलीच।
क्वाथावलेहो मधुना विमिश्रौ बालो च योज्या-

वतिसारितेषु॥
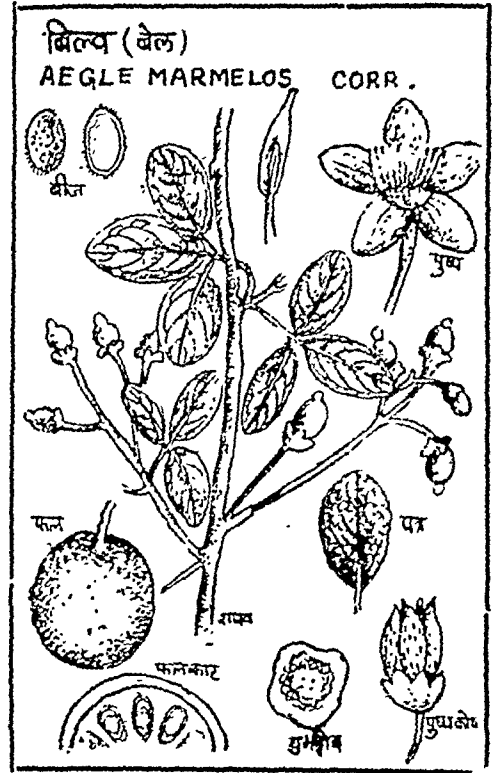
इस प्रकार के अनेक ऐसे सरल एवं सुलभ औषध द्रव्य हैं जिनके द्वारा बच्चों का इलाज परंपरया किया जाता है। यहां कुछ द्रव्यों का निर्देश उदाहरणार्थ किया गया है।

बालरोगों में कण्टकारी घृत

गव्यघृत -४ सेर। छोटी कटेरी का रस ४ सेर। बड़ी कटेरी का रस ४ सेर। भारङ्गी का रस या क्वाथ ४ सेर। अडूसे का रस ४ सेर। बकरी का दूध ४ सेर। कल्कार्थ—गजपिप्पली, पिप्पली, कालीमिर्च, मुलहठी, वच, पिप्पलीमूल, जटामांसी, चव्य, चित्रक, लालचन्दन, मोथा, गिलोय, श्वेतचन्दन, अजवाइन, जीरा, सुगन्धवाला, सोंठ, किशमिश, अनार का छिलका, देवदारु। यथाविधि सिद्ध कर मात्रा में सेवन कराने से बालकों के श्वास, कास, उदर, अरुचि तथा शूल प्रभृति रोग तथा दुष्ट कफ नष्ट होता है। यह घृत बल को बढ़ाता तथा जठराग्नि को उद्दीप्त करता है।

शिशुरोगामृत अतिविषा

अतिविषा या अतीस से कौन अपरिचित होगा। हिमाचल के शिखरों पर खोज करके आयुर्वेद वेत्ताओं ने इसे पाया है और गत हजारों वर्षों से वैद्य समाज ने इसे मुक्तहस्त प्रयोग कर शिशुओं को जीवन दिया है।

इस दिव्योषध का परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत किया है हमारे पाठकों के चिर-परिचित वैद्यविद्याशिरोमणि श्री पं० मायाराम उनियाल शास्त्री जी ने जो नगाधिराज हिमालय की गोद में पले और उसके अन्तराल में विकट-तम घाटियों को पारकर विविध वनौषधियों के परिज्ञान में जीवन लगा रहे हैं।

परिज्ञान के पश्चात् उपयोग की समग्र भूमिका को जिस परम विद्वान् की लेखनी ने सफलतया संजोया है वे हैं वेदायुर्वेद व्याकरण साहित्याचार्य डा. रणवीर सिंह जी शास्त्री जिनका जन्म भी हिमालय की तपःपूत क्रोड में हुआ। वे सफल और सुयोग्य चिकित्सक हैं। दोनों के मणिकाञ्चन संयोग रूप इस परमशुद्ध मिश्रित लेख की छवि निराली बन पड़ी है। पाठक उसे मनोयोग से निरखें भी और अपनायें भी। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

अतिविषा (१)

वैद्य श्री मायाराम उनियाल शास्त्री, रिसर्च आफिसर आयुर्वेद, झांसी

संस्कृत—अतिविषा, घुणवल्लभा, व घुणेष्ठा, शुक्ल-कन्दा, शिशु भैषज्य, अरुणा, शृङ्गी, विश्वा, प्रतिविषा, भंगुरा,

स्थानिक—गढ़वाली—अतीस, हिमाचली,— पतीस, भोटिया—पोकर,

हिन्दी—अतीस (कड़वी)

लैटिन—Aconitum heterophyllum wall

कुल—Ranunculaceae

चरक—लेखनीय, अर्शोघ्न, गण (पञ्चाशन्महाकषायेषु लेखनीये, अर्शोघ्ने च गणेऽतिविषा पठ्यते"

॥च० सू० अ० ४"

सुश्रुत—सुश्रुतेन पिप्पल्यादौ, मुस्तादौ वचादौ च गणेऽतिविषा पठिता" वाग्भटेन तिक्तस्कन्धेऽतिविषा पठ्यते

अतिविषा—विषमतिक्रान्ता, जो विष के प्रभाव का अतिक्रमण करे उसे अतिविषा कहते हैं। अर्थात् यह विष जाति की होने पर विषरहित है।

घुणवल्लभा—इसके मूलकन्द घुनों को अधिक प्रिय होते हैं, इसलिये अतीस को चूने के साथ रखा जाता है या नीलाथोता का चूर्ण कुल्ह पात्र में डाल देते हैं।

भंगुरा—मूलकन्द आसानी से टूट जाते हैं।

शिशु भैषज्य—बच्चों को यह उपयोगी औषधि है-बालकों के अनेकों रोगों में यह एक मूलिका लाभ करती है।

विश्वा—यह शरीर के समस्त सूक्ष्म स्थलों मे प्रवेश कर लाभ करती है। शुण्ठी का भी पर्याय विश्वा आया है

अरुणा—निघण्टु ग्रन्थों के प्रकार भेदों में रक्ताभ वर्ण की अतीस का उल्लेख है।

शृङ्गी—शृङ्ग युक्तत्वात् शृङ्गी"। इसके शिखराकार होते हैं।

प्रतिविषा—प्रतीपा विषस्य प्रतिविषा अगदत्वात्" यह विषघ्न औषधि है।

अतिविषा का वानस्पतिक परिचय-यह द्विवर्षायु मूल एवं एक वर्षायुकाण्ड वाल क्षुप विशेष द्रव्य है। काण्ड १ फुट से २½ फुट तक लम्बा तलोत्थ एवं एक काण्ड वाला होता है। पत्र-काण्डसंलग्न एकान्तर, गोलाकार, मण्डलाकार, लट्वाकार एवं हृदयाकार, खण्डित, किनारे कुण्ठिताग्र एवं दन्तिल होते हैं। पुष्प-हरिताभ नीले रङ्ग के फणाकार होते हैं। मूल-कन्दिल द्विवर्षायु नया कन्द मोटा एव पुराना कन्द पतला होता है। तोड़ने पर ये कन्द भगुर, अन्दर से श्वेत वर्ण के एवं स्वाद कटु तिक्त होते है पुष्पकाल-जुलाई, अगस्त, फलकाल-सितम्बर, अक्टूबर। प्रयोज्य अङ्ग—मूलकन्द।

औषधसंग्रह काल-सितम्बर अक्टूबर में बीज तैयार होने के बाद मूल का संग्रह करना चाहिये। पुराने साल वाला कन्द नवीन वर्ष वाले कन्द से अलग कर लेना चाहिये। तथा इन कन्दों को सुखाकर बन्द वर्तनों में रखना चाहिये पुराने कन्दों की अपेक्षा नवीन कन्द उपयोगी एवं अच्छी कीमत पर बिकते हैं।

प्राप्तिस्थान—हिमालय प्रदेश के जम्बु, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तरा खण्ड, गढ़वाल, कुमांयुगढ़वाल, नेपाल, सिक्किम, भुटान, अफगानिस्तान आदि स्थानों पर २,७०० मीटर की ऊंचाई से लेकर ३,८०० मीटर की ऊंचाई तक प्रायः घास वाले वर्फीले ढलानों पर सर्वत्र सुलभ है। प्रायः इन स्थानों से प्रतिवर्ष काफी मात्रा में अतिविषा मूल का सग्रह किया जाता है।

ग्रामीण प्रयोग—स्थानिक लोग अतिविषा मूल को बच्चों के उदर विकार एवं मरोड़ में पानी के साथ घिस कर देते हैं। दीपन पाचन के लिये अतिविषा चूर्ण का ग्रामीण लोग अधिक प्रयोग करते हैं। भोटिया लोग पौंगर (अतीस) मूल का चूर्ण ज्वर एवं अर्श में प्रयोग करते हैं।

शास्त्रीय गुण धर्म (१) अतिविषा बच्चो के लिये विशेष अनुकूल दवा है।

(२) वमन, अतिसार में बालचातुर्भद्र योग बच्चों में रामवाण का काम करता है।

(३) ज्वरातिसार में अतिविषा चूर्ण रसौंत के साथ मिलाकर देने से लाभ होता है।

(४) अतीस श्रेष्ठ दीपक, पाचक, सग्राहक एवं सर्वदोष हर है।

(५) जिस मनुष्य को चूहे ने काटा हो उसे प्रातः अतीस का चूर्ण मधु से देने पर लाभ होता है।

(६) बच्चे की खांसी ज्वर, छर्दि आदि में बहुत लाभ करती है।

(७) अंकोल के मूलत्वक् ३ भाग, अतीस चूर्ण १ भाग तण्डुलोदक के साथ देने से ग्रहणी मे लाभ होता है।

(८) बच्चों की खांसी, ज्वर एवं छर्दि में अतीस चूर्ण को मधु के साथ देने से विशेष लाभ होता है। संहिता ग्रन्थों में अतीस का प्रयोग प्रायः आमातिसार एव ग्रहणी में देखा गया है।

(९) निघण्टु ग्रन्थो के आधार पर अतीस रस में तिक्त विपाक मे लघु, उष्ण वीर्य, लेखन, पाचन, संग्राहक, आमपाचन, ग्रहणी दोष, अजीर्णजन्य विष, अर्श, ज्वर, कृमि एव अरुचि और शूल में उपयोगी है।

आधुनिकमतासुसार अतीस उत्तम कटु पौष्टिक (Bitter tonic) है अतिसार, विषमज्वर, कास, छर्दि, प्रतिश्याय, अजीर्ण आदि मे अतीस बहुत लाभ करती है। किसी भी कारण से शरीर दुर्बल हो तो अतीस के सेवन करने से भूख लगती है। अन्न का पाचन होता है एवं धातुओं

की क्रियायें सुधरती है। बालकों एवं प्रसूता स्त्रियों के अतिसार में अतिविषा शृङ्गभस्म के साथ देने से अच्छा लाभ होता है। स्वर्गीय अप्पा शास्त्री साठे लिखते हैं कि कि अतीस,मुस्ता, काकड़ासिंगी एवं करंजुआ की फलमज्जा का चारों भाग समान मात्रा में लेकर कुड़ा छाल के क्वाथ में मर्दन कर मूंग के बराबर गोली बनाकर दूध के साथ देने पर एक वर्ष के बालकों को किसी प्रकार का रोग नहीं होता है।श्री भागीरथस्वामी लिखते हैं कि अतीस, रसौत, काली मिर्च, सम भाग लेकर विडङ्ग के क्वाथ से भावना देकर ज्वर एव उदर विकार में बहुत लाभदायी है।

मुख्ययोग—बालचातुर्भद्र, अतिविषा चूर्ण

वक्तव्य—राज निघण्टुकार ने अतिविषा की तीन एव मदनपाल ने चार जातियां बताई हैं। राजनिघण्टुकार ने आमातिसार कासघ्नी विषछर्दि विनाशिनी एवं कफपित्त ज्वरापहा माना है। कैय्यादेव निघण्टु ने भी अतिविषा को कफपित्तातिसाराम विष, कास, वमि, कृमीन् लिखा है। मदनपाल ने इसे बीस प्रकार के कफ रोगों को नष्ट करने वाली रसायनी एवं श्वयथु नाशिनी लिखा है। संहिता ग्रन्थों में विषा द्वय शब्द का उल्लेख मिलता है जिसमें श्वेतकन्दा (अतिविषा) एवं कृष्णकन्दा को (विखमा) कहते हैं। इसे वनस्पति शास्त्र के आधार पर Aconitum palmatum D. Don कहते हैं। अष्टाङ्ग संग्रह में विषाद्वय का इस प्रकार से उल्लेख मिलता है। पाचनं कफपित्तघ्न तिक्तं शीत विषाद्वयम्"अ० सं० सू० अ०१२" कैय्यदेव ने अपरा प्रतिविषा भी कहा है जो कि प्रचलित विखमा है। यह प्रकार भी विष रहित है। श्रीयुत वैद्य यादव जी माई त्रिक्रम ने विखमा को ही प्रतिविषा माना है जो कि शास्त्रीय ही प्रतीत होता है।

कृतज्ञताऽभिव्यक्ति—अन्त में लेखक उचित निर्देशन हेतु निर्देशक केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसन्धान परिषद् भारत सरकार (सी. सी. आर. आई. एम. एच.) न्यू देहली का हृदय से आभारी है।

अतिविषा (२)

वैद्यराज डा० रणवीरसिंह शास्त्री एम. ए., पी. एच. डी., आगरा

आयुर्वेद शास्त्र में ऋषि मुनियों के द्वारा शतशः अनुभूत एकौषध चिकित्सा वैदिककाल से ही प्रचलित रही है अथर्ववेद[1] में ऐसी अनेक औषधियों का उल्लेख है, यद्यपि पृथग्-पृथग् वनस्पतियों आदि के लिये ओषधि शब्द का प्रयोग होता है सयुक्त योगरूप में औषध[2] शब्द का प्रयोग शास्त्रकारों को अभीष्ट है अतिविषा (अतीस), त्रिदोषहारी, अत्युपयोगी सद्योलाभकारी बालरोगों की सिद्ध औषधि है गुणातिरेकता एवं विशिष्ट गुण सम्पन्नता के कारण इसे "औषध" रूप में ग्रहण किया जाता है जैसे—शिशुभैषज्य, बालौषध आदि संज्ञायें हैं।

आज भी अनेक आयुर्वेदीय चिकित्सक एक ही औषधि के द्वारा हठी एवं कष्टसाध्य रोगों की सफलतापूर्वक चिकित्सा कर रहे हैं वैद्यों की परम्परा रही है कि कल्प[3] व रसायन चिकित्सा के रूप में एक औषधि का प्रयोग अधिक प्रभावी एव निरापद है यही धारणा आज भी अतीस के प्रयोग के रूप में कार्य कर रही है।

अतिविषा (अतीस) का ज्ञान अति प्राचीनकाल से ही भारतीयों का रहा है चरक सुश्रुत आदि आर्षग्रन्थों में

१—अथर्ववेदे अञ्जनम् अ. ७–३० अपामार्गः ४–१७,१८, कुष्ठौषधिः ६–९५, पिप्पली ६–१०६, लाक्षा ५–५, रोहिणी ४–१२, पृश्निपर्णी २–२५ आदि।

२—ओषधेरजातौ। पाणिनी अष्टा० सूत्र ५–४–३७ स्वार्थेऽण्—ओषधंपिव अन्यत्र ओषधयः क्षेत्रे रूढाः।

३—वत्सक, कृतवेधन, आरग्वध कल्प, चरक-कल्पस्थान, केवलामलक रसायन, भल्लातक क्षीर, नागबला रसायन, पिप्पली रसायन आदि। चरकसंहिता, चिकित्सास्थान—अ. १, पाययेद् मधु संयुक्तामम्यांचापि केवलाम्। चरक-चिकित्सा ३०–२५५।

इसका विभिन्न स्थानों पर उल्लेख है। अतीस निघण्टुग्रन्थों में वालौषध शिशुभैषज्य, अतिविषा, विषा घुणवल्लभा आदि अनेक गुणवोधक व स्वरूपज्ञापक नाम संस्कृत भाषा के हैं हिन्दी में अतीस एवं अंग्रेजी में एकोनाइटम् कार्डेटम् कहते हैं।

संक्षिप्त विवरण—

वनस्पति विज्ञान में यह वत्सनाभवर्ग की औषधि है, हिमालय पर्वत में सिन्धु से लेकर कुमायूं की पहाड़ियों तक ६००० फीट से १५००० फीट पर पाया जाता है। यह शुष्क रूप में औषधि विक्रेताओं की दूकानों पर मिलने वाली प्रसिद्ध वन्य औषधि है, इसका काण्ड ही विशेषतः मिलता और व्यवहृत होता है।

भेद—अतीस श्याम शुक्ल व अरुणकन्द भेद से तीन[1] प्रकार की होती है, काली (कृष्णकन्दा) अतीस का औषध योगों में अधिक व्यवहार होता है यह तिक्त रस प्रधान है।

श्वेत और अरुणकन्दा अतिविषा अधिक कड़ुई नहीं है, निघण्टुकारों ने श्वेत को ही अधिक गुणवाली[2] बताया है। मदनपाल[3] निघण्टु में अतीस चार प्रकार की है। यूनानी[4] ग्रन्थों में भी ऐसा ही वर्णित है।

प्रयोग मात्रा—वालकों के लिये १ रत्ती से ४ रत्ती तक, वयस्कों के लिये १० रत्ती से २० रत्ती तक[5]। यह निर्विष है।

वालरोगों की उत्पत्ति और अतीस का प्रयोग—

वालकों को मिथ्या आहार विहार से तथा स्तन्यपायी शिशुओं को उसकी माता या धाय के मिथ्याहार विहार से उत्पन्न दूषित दुग्ध पीने से नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है दूषित आहार विहार के प्रयोग से शिशु की अग्नि मन्द हो जाती है, खाद्य एवं वस्तुओं का उदर में पाचन नहीं होता, फलस्वरूप मन्दाग्नि, वमन, अतिसार, अरुचि, उदरशूल, आध्मान, कृमि, ज्वर, प्रवाहिका(पेचिश) यकृद् विकार, श्वेतमूत्र, कामला, रक्ताल्पता, आक्षेप, कास-प्रतिश्याय, नेत्ररोग एवं मुखरोग आदि नाना प्रकार की कष्टदायक व्याधियां वालक को आतङ्कित कर देती हैं।

सर्व प्रथम "निदान परिवर्जनम्" सिद्धान्त को मानते वालक के आहार विहार पर नियन्त्रण तथा माता का दूध पीने वाले वालकों के रोग निवारण के लिये माता की स्तन्य शुद्धि आवश्यक है, प्राचीन समय से आज तक कौमार[6] भृत्य तन्त्र के अनुसार माता के लिये औषध प्रयोग व पथ्य पालन अभीष्ट है।

वर्तमान समय में युगानुरूप प्रथा चल गई है, शिशु को ही जन्मदिन से इञ्जेक्शन, तीव्र औषध आदि का प्रयोग कराया जा रहा है। प्राचीन समय में वालकों के रोग दोषों का निवारण करने के लिए जन्मघुट्टी आदि परिमित व सन्तुलित औषधों का प्रयोग करते थे। घर की कुल वृद्धाएं स्वयं ही परम्परागत घुटियों का प्रयोग निर्धारित करती थीं। आज सभी आलस्यवश वैद्य, डाक्टरों की दूकानों पर जाकर नवजात शिशुओं की चिकित्सा कराते हैं साधारण रोगों को अतीस आदि वालौषधों से दूर किया जा सकता है, सांघातिक रोगों के लिए अवश्य ही उक्त व्यवस्था की जा सकती है।

अतिविषा(अतीस)की सभी बाल रोगों पर सफलता—

विशेष—जिन वालकों को वाल्यकाल में अतीस का प्रयोग करा दिया जाता है उनकी पाचन क्रिया ठीक

१—त्रिविधातिविषाज्ञया शुक्ला कृष्णा तथारुणा। राजनिघण्टु नि० सं०

२—गुणेऽधिकाशुक्ल कन्दा विज्ञेया। निघण्टु सग्रहः

३—रक्ता श्वेता भृशं कृष्णा पीतवर्णा तथैव च। मदनपाल निघण्टु

४—हकीम मीर मुहम्मद हुसैन रचित—मखजनुल अदवियह तथा मोहीदीन शरीफ में आयुर्वेदीय ग्रन्थों का अनुसरण किया है।

५—आयुर्वेदीय कोषकारों ने अनेक आचार्यों का मत देकर अतीस की मात्रा १ से २।। ड्राम तक निरापद माना है यह वयस्क मात्रा है, वालकों के लिये ४ ग्रेन से ८ ग्रेन तक (२ रत्ती से ४ रत्ती) पर्याप्त है।

—आयुर्वेदीय कोष, प्रथमखण्ड पृष्ठ २५८

६—काश्यप संहिता, चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टाङ्ग संग्रह आदि ग्रन्थों के वालरोगाधिकार।

होकर अग्नि दीप्त हो जाती है दोषों का पाचन[1] हो जाता है और उत्पन्न रोग व उपद्रव शान्त हो जाते हैं। यह प्रथम एवं उत्तम घुटी की औषधि है।

कास-ज्वर-वमन पर—

आचार्य वाग्भट[2] तथा आचार्य वङ्गसेन प्रणेता ने बालकों की खांसी सर्दी ज्वर और वमन पर अकेली अतीस प्रयोग लिखा है अनुभव के आधार पर चूर्ण रूप में १ रत्ती से २ रत्ती तक दूध पानी या शुद्ध मधु के साथ दिन में तीन बार देना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर अतीस को पानी या दूध में घिस कर दे सकते हैं।

उदर कृमि[3]—कडुई अतीस का चूर्ण-२-२ रत्ती दूध या पानी में मिलाकर तीन बार दिन में देना चाहिए, कभी-कभी रेचक औषध का प्रयोग हितावह है।

बाह्य कृमि—यूका लिक्षा, चर्म यूका आदि कृमियों पर अतीस को गोमूत्र में पीसकर लगाना चाहिए, आधा घण्टा लगे रहने पर उष्णजल से या निम्ब पत्र पाचित जल से धो देना चाहिए। इसमें कडुई अतीस लेनी चाहिए।

जीर्ण ज्वर—अतीस का चूर्ण १-२ रत्ती तक दिन में तीन बार मधु के साथ अधिक दिन तक देना चाहिए।

ज्वरातिसार आमातिसार[4] उक्त मात्रा से प्रयोग कर ज्वरातिसार को व आमातिसार[4] को शीघ्र दूर करती है अकेले ज्वर व दस्तों पर भी सद्यः लाभकारी है।

मूषक विष[5]—अतीस का चूर्ण १ रत्ती से ४ रत्ती तक मधु से तीन बार देना चाहिए, दंश स्थान पर गोमूत्र या नीबू के रस में घिसकर लेप करें।

शोथ—व्रणशोथ या आघातजशोथ पर अतीस का पानी या गोमूत्र मे पीसकर कदुष्ण लेप करना दिन रात में दो बार साथ ही इसका चूर्ण बालक की अवस्थानुसार १ रत्ती से ४ रत्ती तक सेवन करावें।

वमन[6]—अतीस का चूर्ण १-१ रत्ती पानी या मां के दूध में मिलाकर दें।

ग्रहणी—ग्राही होने व दीपन पाचन होने से अतीस का चूर्ण २-२ रत्ती पानी या मां के दूध में बालक को तीन बार देना हितावह है।

प्रति-कास बालकों को ये दोनों रोग प्रायः होते रहते हैं अतीस के चूर्ण को २-२ रत्ती मधु में तीन बार देते रहने से शीघ्र रोग निवृत्ति होती है यूनानी ग्रन्थों में विस्तार से अतीस के गुणधर्म का विवेचन मिलता है।

मन्दाग्नि[8]—शिशु की पाचन क्रिया को ठीक करने में यह अद्वितीय है मन्दाग्नि आदि से उत्पन्न अजीर्ण एवं इसके उपद्रवों की अतीस सिद्ध औषधि है। पाचन संस्थान को बल देकर सारे रोगों को दूर कर देती है (वमन, अतिसार, अरुचि, पेचिश सभी प्रकार की, श्वेतमूत्र, यकृद्-विकार, कामला आदि रोगों पर विधिवत् प्रयोग करने

—चरक सू. अ. २५

१—अतिविषा दीपनीय पाचनीय सग्राहक सर्व दोष हराणाम्।

– वाग्भट उ. अ. २-५८

२—एकां वातिविषां कास ज्वर छर्दि रूप द्रुतम्।

—वङ्गसेनः

कास ज्वर छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम्।

३—विडङ्ग के साथ अतीस का सेवन करने से आन्त्रस्थ कृमियां निर्गत होती है। मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३

आमातिसार कासघ्नी। राज निघण्टुः।

४—शोकापहातीसारघ्नी। निघण्टु संग्रहः।

—चरक सू. अ. ३

५—दद्यात् सातिविषां पेयाम्—सामे साम्लां सनागराम्।

विडङ्ग के साथ अतीस का सेवन करने से आन्त्रस्थ कृमियां निर्गत होती है। मेटीरिया मेडिका आफ इण्डिया, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३।

—सुश्रुत सं. उ. ७

६—प्रातः सातिविषं कल्कं लिह्यान्माक्षिक संयुतम्।

७—बालानां सर्वदापथ्य वमिशोक विमर्दनम्। सोढल निघण्टु। विष छर्दि-विनाशनी। राजनिघण्टु।

८—मुख्य प्रभाव—श्लेष्मघ्न और वायुलय कर्ता। अतीस कामोद्दीपक-शुक्रवर्धक, ज्वर नाशक कफ तथा पित्तजन्य विकारों को नाश करने वाला, अर्श, जलोदर, कफ पित्तजन्य विकार व अतिसार को दूर करता है वायु को लय करता व श्लैष्मिक रोगों मे लाभप्रद है। मखजनुल अदविपह (हकीम मीर-मुहम्मद हुसैन रचित) आयुर्वेदीय कोष से साभार।

से अवश्य लाभ होता है ।

हरेपीले दस्तों पर—शिशु के हरे पीले साग या पानी जैसे पतले अतिसार पर अतीस का चूर्ण या क्वाथ रूप में प्रयोग करने से आशुलाभ होता है ।

नेत्ररोग—अतीस को गुलाब जल या पानी में पीस-कर आंखों के बाहर १-१ अंगुल छोड़कर लेप करें, सूखने पर छुड़ा दें, ऐसा प्रतिदिन करने से सत्वर लाभ होता है। आवश्यकता पड़ने पर अतीस के कदुष्ण सुसह्य क्वाथ से सेक करें ।

मुख रोग आदि—अतीस का चूर्ण मधु से चटाने पर मुख रोग छाले दाह आदि दूर होते हैं । गले के एवं तालु के रोग भी इसी प्रकार अतीस सेवन से दूर होते हैं ।

विशेष—शिशुओं के ग्रहदोष, मातृकादोष एवं सभी त्रिदोष-विकार और आकस्मिक विषजन्य संक्रामक रोग भी अतीस के सेवन से दूर हो जाते हैं । अतीस का बाह्य व आन्तरिक प्रयोग दोनों ही करना चाहिए ।

नोट—तीनों प्रकार की अतीस उपयोगी है, श्वेत विशेष गुणकारी है । अतीस की बहुकल्प औषध-टिंचर (मद्यसार) अवलेह, शार्कर, वटी, घनसत्व, आदि बहुत सी उपकल्पनाएं की जाती हैं, विद्वान् चिकित्सक को बुद्धि-पूर्वक रोगी व रोग के बलाबल व देश काल को देखकर इन विधाओं का प्रयोग कर शिशु को रोग मुक्त करना चाहिए । स्तन्यपायी शिशु की रोगमुक्ति जननी के स्वास्थ्य पर निर्भर रहती है । अतः माता का उपचार आव-श्यक है ।

शिशु रोग
चिकित्सांक

*

शरीर खण्ड

इस खण्ड में

★

इस खण्ड में ४ लेखों का समावेश किया गया है।

श्री डा० दिनकर गोविन्द थत्ते, प्रोफेसर-शारीर, राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय
लखनऊ-विश्वविद्यालय, लखनऊ

मानव जीवन का इतिहास शिशु जन्म से नहीं अपि तु गर्भावक्रान्ति की इस शुभ घड़ी से प्रारम्भ होता है, जिस क्षण माता का शोणित, पिता का शुक्र (पुंबीज) एवं जीव का संयोग होता है। यहीं से वस्तुतः, आदमी की कहानी शुरू होती है। शुक्र शोणित एवं जीवसंयोग से बना हुआ अणु मानव जीवन की सर्वप्रथम एवं लघुतम इकाई है। इस एक कोशिका से ही शरीर के दोष, धातु एवं मल का सुन्दर सामंजस्य तैयार होकर विभिन्न अङ्ग-प्रत्यङ्ग एवं कोष्ठाङ्गों से निर्मित भ्रूण, शिशु रूप में इस संसार में जन्म लेता है। शरीरगत यह रचनायें, सुसंगठित एवं अनुशासित रूप में किस प्रकार कार्य करती हैं यह भी जानना इतना ही आवश्यक है। सभी कशेरुकीय प्राणियों के रचना के विकास की योजना लगभग एक जैसी ही होती है, परन्तु निम्नकोटि के कशेरुकीय प्राणियों की अपेक्षा उच्चस्तरीय कशेरुकीय प्राणियों के विकास क्रम में किंचित् विशिष्टता अवश्य होती है।

इस विकास क्रम की कहानी मानव जीवन के अनेक गुप्त रहस्यों का उद्‌घाटन करती है। मानव शरीर के विकास काल में घटित होने वाली क्रमिक घटनाओं का विशद ज्ञान, भ्रूण शास्त्र के अध्ययन द्वारा ही सम्भव है। यह शास्त्र उन परिवर्तनों से हमें परिचित कराता है, जो शिशु जन्म के पूर्व माता व गर्भाशय में घटित होते हैं। आरम्भिक अवस्था में गर्भ शरीर एक सामान्य रचना पुंज होता है, परन्तु कालान्तरे में अनेकानेक कारणों द्वारा शरीर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कुछ विषमताएं प्रकट होने लगती हैं। मानव भ्रूण की कहानी इन प्राकृतिक परिवर्तनों के कारण पर ही प्रकाश नहीं डालती, अपि तु, शरीर में होने वाली विकृतियों के सम्बन्ध में भी प्रकाश डालती है, जिससे शल्य चिकित्सक को शल्य कर्म करने में सहायता मिलती है। इस विषय के ज्ञान से हमें बल प्रवृत्त एवं आदि बल प्रवृत्त रोगी का ज्ञान एवं आनुवंशिकी के विषयों का रहस्य जानने में प्रचुर सहायता मिलती है। विकृताकारी युग्म एवं राक्षस सन्तानों के जन्म के कारणों का ज्ञान भी हमें इस विषय के अध्ययन द्वारा होता है।

आयुर्वेद यह मानता है कि षडंग रूप मानव शरीर जिन अङ्ग-प्रत्यङ्गों से मिलकर बनता है, वह अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिन सूक्ष्म इकाइयों से मिलकर बने हैं, उन्हें देह परमाणु या सूक्ष्म "शारीरावयव" कहा जाता है समस्त मानव शरीर इन्हीं अणुओं या परमाणुओं द्वारा बना हुआ है, यह देह परमाणु हमारे शरीर की सूक्ष्मता (अतीन्द्रिय रचनायें) हैं। यह इतने अधिक हैं कि उन्हें गिना नहीं जा सकता है अर्थात् यह अपरिसंख्येय हैं। यह विभक्त होकर असंख्य हो जाते हैं तथा परस्पर मिलकर तत्तद् धातुओं का निर्माण करते हैं।

देह परमाणुओं के संयोग से शरीर का धारण एवं वियोग से देह नाश होता है। देह परमाणुओं के संयोग विभाग के लिये दो प्रमुख कारण माने गये हैं। प्रथम-वायु तथा दूसरा कर्म स्वभाव।
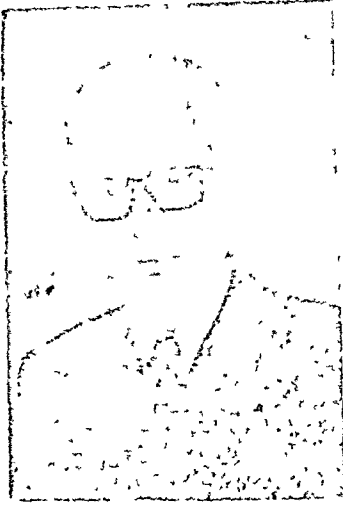
आर्यखंड में हमें हिमालय के पावन पुत्रों के दर्शन हुए हैं। शरीर-खंड का आद्य लेख सदा की तरह महाराष्ट्र के मंजु के तनय बलिष्ठ हाथों में सधी लेखनी का सुधासिक्त प्रसाद है।

उदीयमान विद्वानों की पंक्ति में डाक्टर थत्ते ने अपनी कर्मठता, तपस्या और साधना से प्रथम स्थान बना लिया है। उन्हें विद्या से प्रेम है और विद्वानों में श्रद्धा है। अतः उनकी अक्षुण उन्नति के द्वार खुले ही रहेंगे। मेरा अपने सभी प्रिय पाठकों से अनुरोध है कि वे भ्रूणस्थ शिशु विकास की इस सरस कहानी को अवश्य पढ़ें और लेखक को साधुवाद दें।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

पिता एवं माता के द्वारा प्रदत्त सृष्टि उत्पादक परमाणु (डिम्ब एवं पुंबीज) मिलकर मनुष्य बीज का निर्माण होता है इसी को संसेचित डिम्ब (Fertilized ovum) कहते है। यह दो बीज भागों का समुदाय है।

प्रत्येक बीज में अङ्ग-प्रत्यङ्गों के वे भाग उपस्थित रहते है जिनके बल पर भावी शिशु का निर्माण होता है, जैसे-जैसे अङ्ग-प्रत्यङ्गों के रूप इन बीज भागों में विद्यमान है, वैसे-वैसे अङ्ग-प्रत्यङ्ग ही भावी शिशु में अभिव्यक्त होते है।

इस सयुक्त संसेचित डिम्ब का अनेकानेक बार विभजन होता है और अनेकानेक कोशिकाओं का समूह बन जाता है। इस समूह मे भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन होते है। जिनके द्वारा भिन्न-भिन्न अङ्गों का आकार, रूप तथा गुण वैशिष्ट्य उत्पन्न होकर उनकी स्थिति एवं कार्य निश्चित होते हैं। यह प्राणी कोशिका, कोशिकावर्ण (Cell membrane) मे घिरी होती है तथा इसके अन्दर जीवद्रव्य (Protoplasm) होता है। कोशिका के मध्य में एक लघु वर्तुलाकार रचना केन्द्रक (Nucleus) होता है यह केन्द्रक कोशिका सर्वएव जीव तत्व है।

मानव शरीर की इस प्रथमकोशिका जिसे हम परिपक्व बीज अथवा संसेचित डिम्ब कहते है, में, माता पिता तथा पूर्वजों के गुण, अवगुण, शील, स्वभाव, बुद्धि, आरोग्य, रोग, आकार, प्रकार एवं वर्ण आदि सभी बातें उपस्थित रहती हैं। यह सभी विषय आने वाली सन्तान को प्राप्त होते है। ये जन्म जन्मान्तर प्रवृत्तियां सन्तान में किस प्रकार अवतरित होती है इस विषय में आयुर्वेदीय एवं आधुनिक विचार धारा इस प्रकार है—

आधुनिक विद्वानों में इस विषय में सर्वप्रथम ज्ञान, फादर ग्रेगर मेन्डल ने दिया था। उन्होंने पौधों पर इस सिद्धान्त का आविष्कार किया जिसे मेन्डल के सिद्धान्त का नाम दिया गया। यह सिद्धान्त मानव एवं मानवेतर सभी प्रकार के प्राणियो मे लागू होता है। इस सिद्धान्त की तीन बातें निम्न है—

१—माता-पिता या पूर्वजों के कुछ विशिष्ट गुणो की इकाई सन्तान में अवतरित होती है अर्थात् माता-पिता के सभी गुण व अवगुण सन्तान में नही आते, अपि तु कुछ ही आते है।

२—इन इकाईयों के जोड़े होते है। जोड़ों को एक घटक बलवान या प्रभावी (Dominant) और दूसरा क्षीण या

अप्रभावी होता है इन जोड़ों की इकाईयों को हम विकल्पी युग्म कहते हैं, परिणामतः जोड़ों में से एक लम्बा तथा दूसरा बौना (Dworf) तथा भूरा या नीला वर्ण होना स्वाभाविक अथवा अस्वाभाविक मानसिक स्थिति होती है। इन सभी इकाईयों में जो बलवान गुण हैं वही सन्तान में अवतरित होते हैं। अप्रभावी गुण तभी अवतरित होते हैं जब माता पिता में बलवान गुण उपस्थित ही नहीं होते।

३–तीसरी प्रमुख बात यह है कि इन इकाईयों का भी विभजन होता है अर्थात् विरोधी प्रकृति के जीन गर्भ स्थापना के समय अलग-अलग हो जाते हैं।

भारतीय मतानुसार गर्भावक्रान्ति की प्रक्रिया में जीव की उपस्थिति भी आवश्यक मानी गई है। जीव एक ऐसा प्रमुख घटक है जो शुक्राणु एवं डिम्ब का मिलन कराता है। आधुनिक शास्त्रकार शुक्राणु एवं डिम्ब के मिलन की घटना को केवल आकस्मिक घटना मानते हैं। परन्तु आयुर्वेद यह मानता है कि गर्भावक्रान्ति घटित करने का कार्य जीव करता है। जीव अति सूक्ष्म अणुरूप चरम चक्षुओं से अदृश्य परन्तु दिव्य चक्षुओं द्वारा दृश्य एक ऐसा तत्व है जो शुक्राणु और डिम्ब के मिलन हेतु गर्भोत्पादक शक्ति प्रदान करता है। अनुमान किया जाता है कि जीव पुरुष के बीज में आवेष्टित रहता है तथा वीर्य के साथ मिलकर गर्भाशय में प्रविष्ट करता है। शुक्राणु एवं डिम्ब के संयुक्त कोष को युग्म कोष (Zygote) कहते हैं। यह कोष नूतन प्राणी के उदय का आरम्भ है। शुक्राणु के डिम्ब में प्रविष्ट होने पर स्त्री उपकेन्द्रक (Female pronucleus) एवं पुरुष उपकेन्द्रक (Male pronucleus) परस्पर मिलने हेतु अग्रसर होते हैं इस अवस्था को गर्भावक्रान्ति का तारा (Ester of Fertilization) कहते हैं। दोनों उपकेन्द्रकों के मिलने पर गर्भावक्रान्ति के तारे का लोप होने लगता है। दोनों उपकेन्द्रकों के संयुक्त कोष को हम तर्कू (Spindle) कहते हैं। यह खण्डन शील केन्द्रक (Segmentation Nucleus) की अवस्था है। यह खंडन शील केन्द्रक सम-आकार के दो पुत्रकोषों में विभजित होकर परिपक्व डिम्ब का खंडन आरम्भ हो जाता है।

गर्भ में लिंग की उत्पत्ति—गर्भ में लिंगोत्पत्ति की स्थापना वस्तुतः शुक्र शोणित के संयोग के समय ही हो जाती है। इस लिंग निर्णय को करने का कार्य गुण सूत्र (Chromosomes) करते हैं। शुक्राणु में X एवं Y दो प्रकार के गुणसूत्र उपस्थित होते हैं तथा डिम्ब में एक ही प्रकार के X गुणसूत्र का जोड़ा होता है यदि परिपक्व डिम्ब ऐसे शुक्राणु से संयुक्त हुआ, जिसमें गुणसूत्र X हो तो गर्भ का लिंग स्त्री होगा और यदि डिम्ब ऐसे शुक्राणु से संयुक्त हुआ जिसमें Y गुणसूत्र हैं तो X और Y गुणसूत्र मिलकर गर्भ का लिंग पुरुष होगा।

दो प्रकार के गुणसूत्रों के अतिरिक्त इन्हीं गुणसूत्रों में कुछ ऐसे रासायनिक तत्व होते हैं जिन पर लैंगिक अङ्ग-प्रत्यङ्गों का विकास निर्भर करता है।

इस आधुनिक मत के अतिरिक्त भारतीय आचार्यों का लिंगनिर्णय के विषय में विचार इस प्रकार हैं सर्वप्रथम शारीरिक स्वास्थ्य एवं आहार का परिणाम सन्तानोत्पत्ति पर पड़ता है। पुरुष लिंग की सन्तान उत्पन्न हो इस हेतु पुरुष को पौष्टिक आहार विहार और स्त्री को लघु आहार विहार शास्त्र में निर्देश किया गया है। पुरुष अथवा स्त्री में जिसमें अपत्योत्पादन की इच्छा प्रबल होगी उसी के अनुरूप गर्भ में लिंग की उत्पत्ति होगी ऐसा भी एक विचार है। ब्रह्मचर्य का पालन, सुन्दर सुदृढ़ एवं उत्तम गुणयुक्त, पुरुष सन्तानोत्पत्ति के लिये सहायक होता है ऐसा चरक का विचार है। सम दिनों में पुत्र की उत्पत्ति के लिये तथा विषम दिनों में पुत्री की उत्पत्ति का काल बतलाया है। "विदेह" का मत है कि युग्म तिथि की रात्रि में समागम करने से पुत्र तथा विषम में कन्या का जन्म होता है। शुक्र अथवा आर्तव का बाहुल्य अथवा अल्पता लिंग निर्णय में निर्णायक कारण है ऐसा सुश्रुत का मत है। शुक्र की बहुलता से पुत्र एवं आर्तव बहुलता से कन्या होती है एवं दोनों तत्वों का क्षरण सम मात्रा में हो तो नपुंसक सन्तान होती है ऐसा सुश्रुत मानता है। आधुनिक शारीर वेत्ताओं के अनुसार ऐसा भी कहा गया है कि पुरुष एवं स्त्री गुणसूत्रों में स्थित जीन्स (Genes) में गर्भ धारण के समय परस्पर एक प्रकार का युद्ध होता है इसमें जो जीन्स बलशाली होते हैं। उन्हीं के अनुसार लिंग निर्णय होता है।

गर्भ का मासानुमासिक स्वरूप—

गर्भाधान के तुरन्त उपरान्त गर्भवृद्धि क्रम आरम्भ

हो जाता है। यह वृद्धि क्रम प्रथम मास से नवम मास के अन्त अथवा शिशु जन्म पर्यन्त सतत जारी रहता है। इस विकास क्रम की कहानी मासानुमासिक रीति से वर्णित की गई है जो इस प्रकार है।

कललावस्था—

प्रथम मास में गर्भ का स्वरूप कलल के समान होता है खंडनशील केन्द्रक द्वारा विभजित कोशिकाओ को ब्लास्टोमियर कहते है यह विभजन समरूपीय होता है तथा एक से दो, दो से चार, चार से सोलह, इस प्रकार चलने वाला यह नियमित खंडन कालान्तर में अनियमित हो जाता है। प्रत्येक खंडन पर ब्लास्टोमियर का आकार घटता जाता है। कललावस्था में गर्भ विकास के हेतु बनने वाला ब्लास्टोमियर वह घटक है जो भावी मनुष्य का आकार ले। इसी अवस्था को मोरूला (Morula) अवस्था कहते है। कलल का निर्माण डिम्ब प्रणाली से आरम्भ होता है। ये खंडित कोशिकायें दो प्रकार के समूहों में बंट जाती है। एक समूह गर्भ निर्माण के लिये तथा दूसरा गर्भ पोषण एवं गर्भरक्षा हेतु अङ्गों का निर्माण करता है। यह दूसरे प्रकार का कोष समूह बीजपोषक कोष (Trophoblast) के रूप में परिवर्तित होता रहता है। दूसरा वह समूह जिससे गर्भ का निर्माण होता है, रचना पुंज (Formative mass) कहलाता है। दोनों कोषों के समूह के मध्य एक अवकाश बन जाता है। इसे बुदबुदावस्था (Blastocystic stage) कहते हैं।

रचनापुंज एक विशाल गुच्छे के आकार का होता है जिसमें अनियमित ढङ्ग से कोष इकट्ठे होते है। रचनापुज को जीव पत्रक (Germ disc) भी कहते है। गर्भावक्रान्ति के छठवें दिन रचनापुंज पर स्थित बीजकोष गर्भाशय भित्ति की श्लेष्मल कला से चिपक जाते है और ऊतक हनन क्रिया (Histolytic action) आरम्भ कर देती है। यह बीजपोषक कोष जो रचनापुंज पर आच्छादित होते है, जालक बीजपोषक (plasmodial trophoblast) कहलाते हैं। यही कोष गर्भाशय की पार्श्वभित्ति की मध्य रेखा पर प्रविष्ट होकर वही जम जाते है। साढ़े सात दिवस तक गर्भाशय भित्ति में प्रविष्ट बुदबुद अभी भी गर्भाशय में लटकती रहता है। साढ़े नौ दिवस तक बुदबुद संपूर्ण गर्भाशय भित्ति
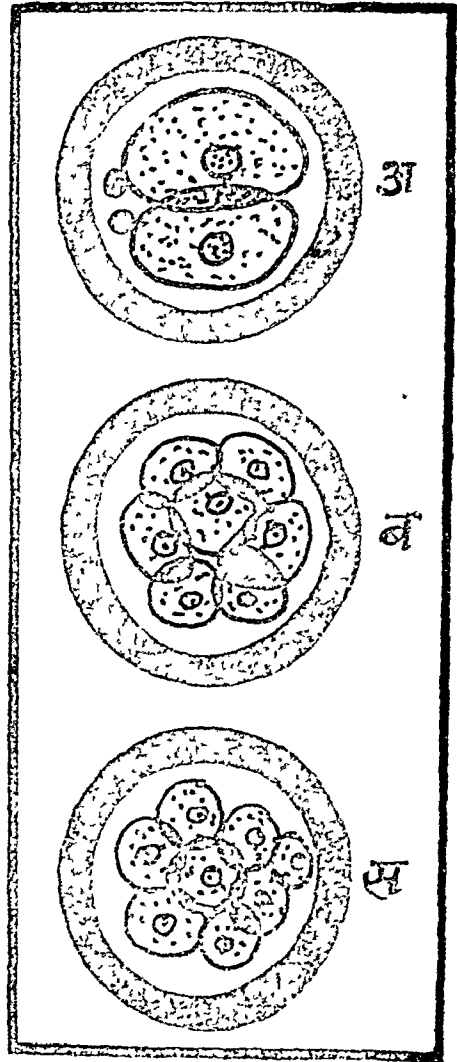
डिम्ब के खण्डन की अवस्थायें
चित्र नं. १

में अपना आक्रमण करने में सम्पन्न हो जाता है। उधर रचनापुंज एक स्तर का निर्माण करता है, जिसे आदि अन्तर्जन स्तर (Primitive entoderm) कहते हैं। यह स्तर जीवपत्रक एवं बुदबुद अवकाश में रहता है। दूसरी ओर जीवपत्रक जालक बीजपोषक स्तर से कुछ अलग होने लगता है और एक अन्य अवकाश का निर्माण करता है, जिसे उल्व गुहा (Amniotic Cavity) कहते है। बुदबुद में नवें दिन लगभग ३८० कोष होते है। जिसमें ३२ जीवपत्रक में, २४

...थमिक अन्तः स्तर में एवं शेष बीजपोषक स्तर में होते हैं।

उल्व गुहा का निर्माण एवं प्राथमिक मध्य जननस्तर की वृद्धि — उल्व तथा पीतक कोष का निर्माण

चित्र नं. २
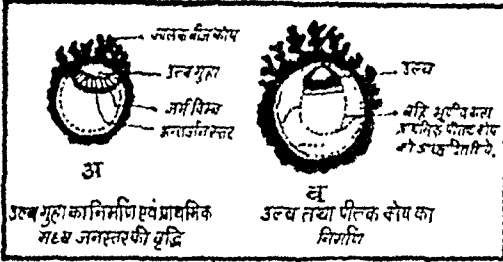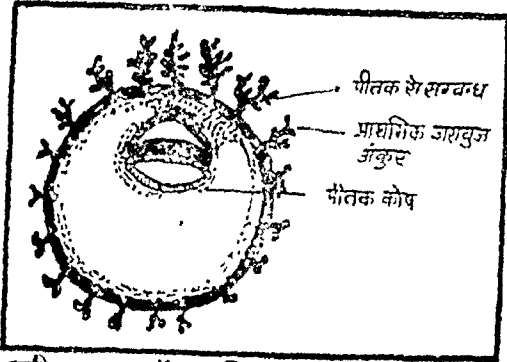
तृतीय सप्ताह में प्राथमिक पीतक कोष का अपचित होकर पीतक कोष का निर्माण होना. चित्र ३

कालान्तर में रचनापुंज में विभेदीकरण या विशिष्टीकरण होकर तीन जननस्तर (Germinal layers) बन जाते हैं। इस विधि को स्तरीयकरण (Gastrulation) विधि कहते हैं। यह जननस्तर निम्नलिखित हैं—

(१) वाह्यस्तर (Ectoderm)
(२) मध्यस्तर (Mesoderm)
(३) अन्तःस्तर (Entoderm)

इन जनन स्तरों से क्रमशः भ्रूण में निम्न रचना का निर्माण होता है—

(१) वाह्यस्तर (Ectoderm)—

१. त्वचा, उसकी ग्रन्थियां, नख एवं केश।
२. सम्पूर्ण नाड़ी संस्थान।
३. स्वच्छ मण्डल।
४. लेन्स।
५. तारा परिवेश या तारा मण्डल की पेशियां।
६. ज्ञानेन्द्रियों का नाड़ी स्तर।
७. मुख गुहा की छत।
८. दन्तवेष्ठ।
९. गाल या कपोल।
१०. दांतों के ऊपर की चमक।
११. गुद नलिका का अन्तिम भाग।

(२) अन्तःस्तर (Entoderm)—

१. अन्न प्रणाली यकृत् तथा अग्न्याशय का उपकलास्तर।
२. ग्रसनी मध्य कर्ण नली तथा मध्य गुहा का उपकला स्तर।
३. अवटुका ग्रन्थि।
४. स्वरयंत्र।
५. कर्णमार्ग।
६. मूत्राशय।
७. पौरुष ग्रन्थि।

(३) मध्यस्तर (Mesoderm)—

१. संयोजी ऊतक।
२. दृढ़ ऊतक।
३. दन्त।
४. शरीर की सम्पूर्ण पेशियां।
५. रक्त एवं रक्त नलिकायें।
६. लसीका तंत्र।
७. वृक्क, मूत्र नलिका एवं गवीनी।
८. संधि कोष।
९. जनन ग्रन्थियां।
१०. हृदयावरण।

अभी तक के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि डिम्ब कोष के विभजन के उपरान्त जिन अनेकानेक कोषिकाओं का निर्माण होता है उनमें बहुत थोड़े कोष वास्तविक गर्भ रचना का कार्य सम्पन्न करते हैं। शेष सभी कोष गर्भ के बाहर रहते हैं और गर्भपोषक स्तर बनाते हैं। ये कोषिकायें कुछ तो गर्भ की वाह्य आघातों से रक्षा, कुछ पोषण एवं कुछ मल विसर्जन तथा श्वसन का कार्य सम्पन्न करती हैं।

इन कोशिकाओं के द्वारा गर्भ के निम्न प्रमुख आवरण निर्मित होते हैं।
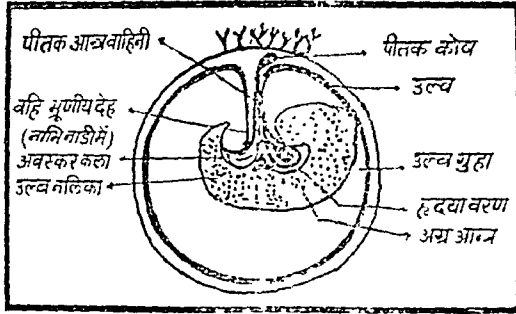
चित्र नं.४

पंचम सप्ताह के अन्त में भ्रूण चित्र नं.५

(१) पीतक कोष (Yalk Sac)
(२) उल्व (Amnion)
(३) जरायु (Chorion)
(४) अपरापोपिका (Allantois)
(५) अपरा (Placeuta)
(६) नाभिनाड़ी (Umbilical Cord)

उक्त रचनाओं में अपरा एवं नाभिनाड़ी दो प्रमुख रचनायें हैं जिनका सम्बन्ध गर्भ पोषण से होता है। अपरा के कुछ कार्य निम्न हैं—

(१) **गर्भ पोषण** (Nutrition)—कर्बोज, प्रोटीन एवं वसा, लवण माता से गर्भ को जाते हैं।
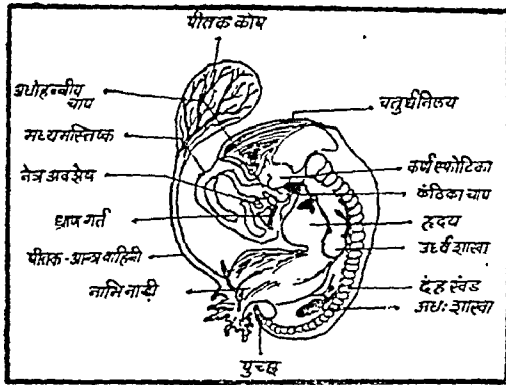
(२) **श्वसन** (Respiration)—माता के रक्त में घुली हुई ओषजन गर्भ में घुलकर गर्भ की कार्बनडाइ-आक्साइड माता के रक्त में पहुँचती है। इस प्रकार अपरा फुफ्फुस की तरह कार्य करता है।

(३) **मल विसर्जन** (Excretion)—गर्भ के मल अपरा द्वारा माता के रक्त में जाते हैं इस प्रकार अपरा वृक्क का कार्य भी करता है।

(४) **अवरोध** (Barrier)—अपरा में विरोध क्षमता होती है, जिसके कारण माता के रोग कीटाणु गर्भ में नहीं पहुँच पाते हैं।

कृत्रिम तत्वों का निर्माण—अपरा में कुछ कृत्रिम तत्वों का निर्माण भी होता है जैसे इस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्ट्रान।

अपरा चित्र नं.६

नाभिनाड़ी (Umbilical Cord)—नाभिनाड़ी में नाभिशिरा, नाभिधमनी रहती है। नाभि नाड़ी का व्यास १½ इंच तथा लम्बाई २ फीट होती है। यह अपरा के मध्य प्रविष्ट होती है तथा सर्पिल आकार की होती है। कभी कभी नाभि नाड़ी या तो बिल्कुल छोटी होती है अथवा ६ फीट लम्बी होती है यदि छोटी हुई तो जन्म के समय गर्भ को आघात पहुँचाती है। अधिक लम्बी होने पर ग्रीवा को आवेष्ठित करके जन्म के समय गर्भ श्वासावरोध उत्पन्न करती है।

घनावस्था—

इसी अवस्था का दूसरा नाम पिंड-पेशी-अर्बुदावस्था है। यह अवस्था पंचम से अष्टम सप्ताह अर्थात् द्वितीय मास की अवस्था है। प्रथम मास में रचित कलल एवं बुदबुद द्वितीय मास में घन बन जाता है। द्वितीय मास में शीत,

हो जाते हैं इसी मास के अन्त में जननेन्द्रिय स्पष्ट रूप से विकसित न होकर लिंग भेद किया जा सकता है।

व्यक्तांगावस्था

गर्भ का चौथे मास में स्वरूप—

चौथे मास में गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग अधिक विकसित होकर पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। अङ्ग प्रत्यङ्गों की इस मास में पूर्ण अभिव्यक्ति होने के कारण इस अवस्था को व्यक्तांगावस्था कहा गया है। गर्भ की मुखाकृति मानव आकृति मे पूर्ण सामंजस्य अपनाती है। नेत्र अभी भी परस्पर से दूर दिखाई देते हैं। गर्भ की नाभि नाड़ी उदरभित्ति के ऊपरी भाग में लगी रहती है।

"चतुर्थं सर्वांगं प्रत्यंग विभाग: प्रव्यक्तो भवति"

इसी मास में गर्भ में स्थिरता उत्पन्न होती है अर्थात् पहले की अपेक्षा गर्भ का आकार व वजन भी भारी होता है अत: चतुर्थ मास में गर्भिणी का शरीर भी भारी हो जाता है। सुश्रुत मतानुसार चतुर्थ मास में गर्भ के हृदय की रचना प्रव्यक्त होती है और चेतनाधातु का प्रादुर्भाव होता है, परन्तु चरक ने तृतीय मास को ही गर्भ के हृदय की विकासावस्था माना है। आधुनिक विद्वानों में भी, गर्भहृदयगति चतुर्थ मास में माता के उदरभित्ति पर सुनी जा सकती है ऐसा स्वीकार किया है। सम्भवतया वही कारण है कि प्राचीन भारतीय विद्वानों ने दौहृदयं वाली माता(एक गर्भ का और दूसरा माता का स्वयं हृदय) को दौहृदया माना है।

साधारणत: इस मास में गर्भ के शरीर पर लोम उत्पन्न होते हैं तथा गर्भ की लम्बाई ११२ मि. मी. होती है। मुखाकृति मनुष्य के समान हो जाती है। शिर पर लोम प्रकट हो जाते हैं। शरीर की मांसपेशियां क्रियाशील हो जाती हैं। इसी मास में शरीर के अन्य गात्र शिर के आकार से कुछ बड़े होने लगते हैं।

कठोर तालु एवं कोमल तालु के अन्तर स्पष्ट होने लगते हैं। पीयूषिका ग्रन्थि का विशिष्टीकरण आरम्भ हो जाता है गलगुटिकाओं में लसीका कण एवं ग्रसनी गल गुटिकाओं (Pharyageal busils) का विकास हो जाता है। आमाशयिक एवं आन्त्रिक ग्रन्थियां विकसित हो जाती हैं। ग्रहणी तथा बृहदन्त्र शरीर के पश्चभित्ति से सम्बन्धित होते हैं। फुफ्फुस में तान्तव सूत्र एकत्र होने लगते हैं।

इसी मास में दोनों वृक्कों को अपना रूप प्राप्त हो जाता है तथा यह उदरगुहा में एक महत्वपूर्ण कोष्ठांग के रूप में विकसित होने लगते हैं। दोनों ही वृक्क अंडकोष में अवतरित होने हेतु तत्पर दिखाई देते हैं। इसी मास में गर्भाशय एवं योनि विकसित होते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि चतुर्थ मास माता की दौहृदयावस्था है, अत: गर्भ अपने हृदयस्थ सुखदुखादि भाव माता के द्वारा व्यक्त करता है। यह भाव माता की इन्द्रियों द्वारा व्यक्त होते हैं अत: इस मास में इन इच्छाओं की पूर्ति माता एवं गर्भ दोनों के लिए हितकर होती है अथवा माता की इन इच्छाओं का अभिघात गर्भज विकृतियों के कारण बन जाता है। सुश्रुत का विचार यह है कि दौहृद का अपमान करने से सन्तान, कुबड़ी, लूली, लंगड़ी उत्पन्न होती है। यही चतुर्थ मास का वैशिष्ट्य है।

मनप्रबुद्धावस्था

पंचम मास में गर्भ का स्वरूप—

पंचम मास में विशेष रूप से बुद्धि का विकास होता है ऐसा सुश्रुत का विचार है।

"पंचमे मन: प्रतिबुद्धतरम् भवति।"

चरक का कहना है कि पंचम मास में गर्भ में अन्य मासों की अपेक्षा रक्तधातु एवं मांसधातु का निर्माण अधिक होता है यही कारण है कि गर्भिणी पंचम मास में दुर्बल हो जाती है। मांसधातु एवं रक्तधातु का गर्भ में निर्माण मातापोषण द्वारा ही संभव है। अत: माता में पोषक तत्व गर्भ की वृद्धि हेतु गर्भ में अधिक पहुँचेंगे तो स्वभावत: माता दुर्बल हो जायगी। अष्टांग संग्रह में मन एवं बुद्धि के विकास के साथ-साथ रक्त मांस की वृद्धि होती है, ऐसा कहा गया है।

आयुर्वेद के विद्वानों द्वारा कही हुई उक्त बातें आधुनिक वैज्ञानिकों की कसौटी पर लगभग सही सिद्ध होती हैं क्यों कि प्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञनिक लेराली ब्रन्डि एरे का

कथन है कि पंचम मास में रक्तधातु का निर्माण अस्थि मज्जा में अधिक होने लगता है और इसी मास में मन प्रवुद्ध होता है इससे यह तात्पर्य है कि मन का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और मस्तिष्क तन्तुबन्ध एवं मेरु रज्जु आदि माइलिनीभवन (Myclinization) इसी मास पूर्ण होती है।

प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था के भिन्न स्तरों का निर्माण भी इसी मास में पूर्ण होता है।

स्नायु सिरा रोमादि व्यक्तावस्था

षष्ठ मास में गर्भ का स्वरूप

षष्ठ मास में गर्भ की लम्बाई लगभग ३० सें. मी. हो जाती है। इस मास में बुद्धि का विकास अधिक होता है ऐसा महर्षि सुश्रुत का मत है। इस मास में प्रमस्तिष्क तंतुबन्धों का विकास पूर्ण हो जाता है। प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था में बौद्धिक केन्द्र विशेष रूप से केन्द्रित होते हैं, अतः सुश्रुत का यह मत कि षष्ठम मास में बुद्धि का विकास होता है उचित मालूम पड़ता है।

इस मास में अन्य मासों की अपेक्षा भ्रूण में अधिक कान्ति वृद्धि होती है तथा त्वचा में वर्ण प्रकट होता है ऐसा चरक ने प्रकट किया है।

अष्टांग संग्रह में षष्ठ मास में त्वचा एवं सिर आदि अङ्गों पर रोम, नख, अस्थि, सिरा तथा स्नायु आदि का विकास पूर्ण हो जाता है ऐसा कहा गया है।

आधुनिक भ्रूण वेत्ताओं के अनुसार भी षष्ठ मास में त्वचा की स्वेदवहा ग्रन्थियों का पूर्ण विकास हो जाता है। इसी मास में भ्रूण स्वेद भी गर्भ शरीर पर प्रकट होने लगता है। त्वचा के अंकुरों का विकास, नेत्रच्छद के लोम एवं भ्रू केश प्रकट होने लगते हैं। अंगुलियों के दूरस्थ अन्तों पर अन्तः त्वक् में विकसित होते हैं, प्रकट होने लगते हैं। इसी मास में शरीर के अधिकांश विकासकेन्द्र भी प्रकट हो जाते हैं।

अतः त्वचा, केश, रोम, नख, अस्थि आदि षष्ठ मास में प्रकट होते हैं। इससे यह आयुर्वेदीय मत युक्तियुक्त है इससे यह सिद्ध हो जाता है। उक्त वर्णन से इस बात का भी संकेत मिलता है कि छठे मास में उन सभी अङ्गों का विकास होता है जो स्थिर होते हैं, क्योंकि उक्त सभी भाव चरक एवं सुश्रुतानुसार स्थिर भाव माने गये हैं।

सर्वांग प्रत्यंग व्यक्तावस्था

भ्रूण का सप्तम मास में स्वरूप—

गर्भ जीवन के सप्तम मास में गर्भ के सभी अंग प्रत्यंग विकसित हो जाते हैं। जिन्हें गर्भ शरीर के विभिन्न संस्थानों के रूप में गर्भ शास्त्र का विद्यार्थी भलीभांति देख सकता है। इसी मास में गर्भ हर प्रकार से पुष्ट प्रतीत होता है। इस कथन की पुष्टि चरक, सुश्रुत, अष्टांग संग्रह एवं अष्टांग हृदय आदि सभी ग्रन्थों से होती है। इसी मास गर्भ जीवन के लिए उन सभी शरीर के अङ्ग प्रत्यंग का विकास हो जाता है जिससे यह गर्भ भावी संतान के रूप में जीवन यापन कर सकता है यही कारण है कि सप्तम मासमें जन्म लेने वाली संतान उचित पालन पोषण होने पर जीवित रहती है।

इस सम्बन्ध में गर्भोपनिषद् में सप्तम मास गर्भ के विकास का चित्र इस प्रकार निबद्ध किया है "सप्तमे मासे जीवनं संयुक्तो भवति" अर्थात् जीवित रहने के लिए आवश्यक सभी अङ्ग-प्रत्यंग विकसित हो जाने के कारण गर्भ जीवन योग्य हो जाता है। इस बात की पुष्टि आधुनिक भ्रूण विज्ञान एवं चिकित्सा विधि (Medicalegal aspect) दृष्टि से भी की गई है। आधुनिकों का मत है कि २८ वें सप्ताह या सप्तम मास के अन्त में जन्म लेने वाले शिशु जीवन क्षम (Viable) होते हैं।

गर्भ जीवन के सप्तम मास में ही तारा कला (Pupillory membrane) का लोपन हो जाता है तथा नेत्रच्छद खुल जाते हैं। इसी मास में दोनों वृषणों का पर्युदर्या के योनि कोष (Veginal Sac) के साथ अवतरण होता है। गर्भ शरीर की त्वचा लाल रंग की एवं झुर्रीदार होती है। यदि इस मास में भ्रूण को देखा जाय तो वह असामान्य रूप से थोड़ा सा वृद्ध व्यक्ति दिखाई देता है। भ्रूण की लम्बाई सिर से नितम्ब पर्यन्त ३५ से. मी. एवं वजन लगभग डेढ़ किलो हो जाता है।

ओजोसंचरणावस्था

भ्रूण का अष्टम मास में स्वरूप

गर्भ जीवन का अष्टम मास आयुर्वेदीय विचार से

अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इसी मास में भ्रूण एवं माता में परस्पर ओज का आवागमन होता रहता है। अतः अष्टम मास को "ओजोवस्था माना है। अष्टम मास में यदि किसी कारण शिशु जन्म हो जाय और अकस्मात् जन्म के समय भ्रूण का ओज माता में चला गया हो तो इससे शिशु की मृत्यु हो जाती है।

गर्भ जीवन के अष्टम एवं नवम मास में गर्भ की संपूर्ण त्वचा पर भ्रूण स्वेद (Vernix Caseosa) आच्छादित हो जाता है एवं गर्भ लोम (Lanugo) धीरे-धीरे विलीन होने लगते हैं। त्वचा के नीचे वसा एकत्र होने लगती है। भ्रूण किंचित् फूला हुआ प्रतीत होता है। हस्त एवं पाद की अंगुलियों के दूरस्थ अंत पर नख विकसित हो जाते हैं यद्यपि हस्त के नख, पाद के नखों की अपेक्षा कुछ पहले ही विकसित हो जाते हैं। इस समय भ्रूण की लम्बाई शिर से एड़ी तक ४५ से. मी. होती है। भ्रूण का भार दो से ढाई किलोग्राम के लगभग होता है। सप्तम मास के अन्त तक वृपण, वंक्षण सुरंगा में ही रहते है। परन्तु अष्टम मास के वृपण वृपणकोष में आजाते हैं।
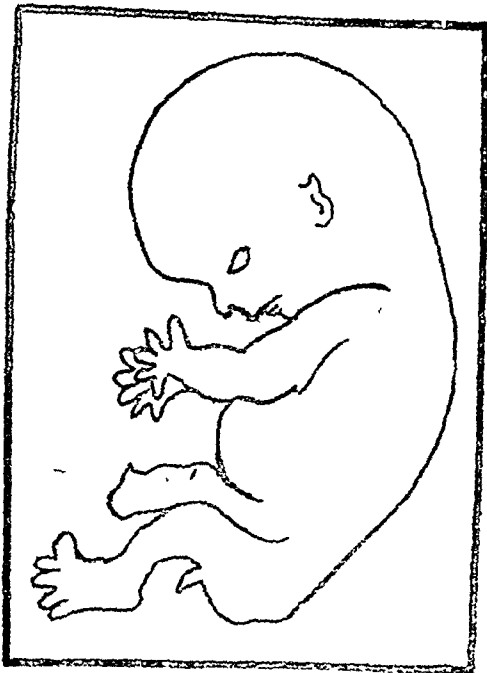
मानव भ्रूण
(अष्टम सप्ताह में) चित्र नं. ७

नवम मास एवं प्रसव— गर्भ जीवन के नवम मास के अन्त तक लगभग भ्रूण में मानव शरीर के मापन हेतु सभी स्थूल एवं सूक्ष्म अङ्गों का विकास पूर्ण हो जाता है और भ्रूण नवम मास के अन्त तथा दशम मास के आरम्भ में (२८० दिन) गर्भाशय से बाहर जन्म हेतु आतुर हो जाता है। भ्रूण के जन्म का समय दस मास अथवा २८० दिवस होता है। सुश्रुत मतानुसार नवें अथवा दसवें मास में भ्रूण का स्वाभाविक प्रसव होता है। इसके उपरांत यदि भ्रूण गर्भाशय में रहे तो विकारी हो जाता है। इस प्रकार से सुश्रुत ने काल प्रसव और कालातीत प्रसव की मर्यादा स्पष्ट बतलायी है यद्यपि प्रसव की मर्यादा किसी भी स्त्री में निश्चित नहीं की जा सकती है। प्रत्येक स्त्री व प्रत्येक गर्भावस्था में प्रसव काल की मर्यादा भिन्न भिन्न हो सकती है।
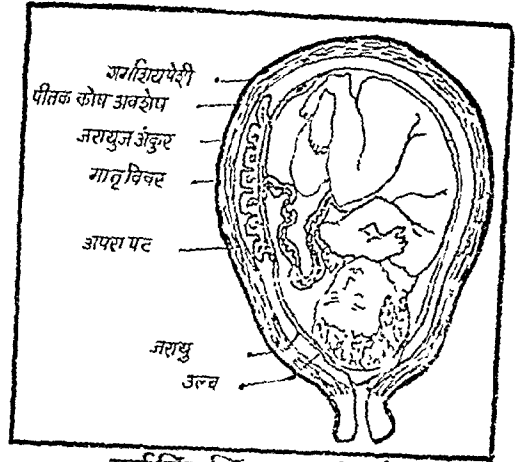
पूर्ण विकसित भ्रूण चित्र नं. ८

प्रसव को कारणी भूत करने के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है परन्तु इस बात की जानकारी है कि गर्भाशय की मांस पेशियों में अनैच्छिक आंकुचन क्रिया के कारण प्रसव पीड़ा उत्पन्न होती हैं। ऐसा होने से गर्भाशय ग्रीवा विस्फारित होकर गर्भावरण फटते हैं एवं गर्भोदक बाहर निकलता है। कुछ ही काल बाद भ्रूण रूप में जन्म होता है। शिशु जन्म के उपरांत नाभि नाड़ी शिरा की गति मन्द होकर शिथिल हो जाती है और नूतन शिशु में
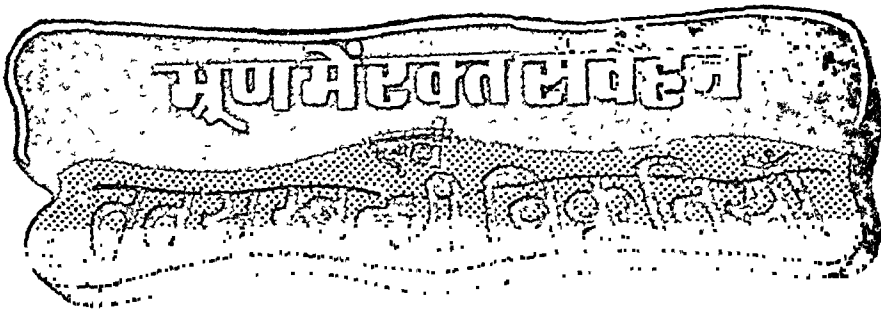
डा० पी० सी० जैन
प्रोफेसर-शारीर विभाग
राजकीय आयु० कालेज
लखनऊ

डा० वाई० डी० शुक्ल
लैक्चरर-शारीर विभाग
राजकीय आयु० महाविद्यालय
लखनऊ

शारीर खण्ड का यह दूसरा लेख है, इसे संजोया है हमारे स्वर्गीय गुरुदेव श्री पं० शिवदत्त शुक्ल के ज्येष्ठ पुत्र परम प्रतिभासम्पन्न प्रियबन्धु श्री यज्ञदत्त शुक्ल ने जो राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय लखनऊ के शारीर विभाग में लेक्चरर हैं। परन्तु यह कृति शरीर रूप से श्री शुक्ल की देन है पर उसमें आत्मदेव के रूप में विराजमान हैं आयुर्वेद शारीर के गहन मर्मज्ञ और शरीर विद्यावारिधि रूप श्री प्रोफेसर पूर्णचन्द जैन। यदि शुक्ल द्वितीया की चन्द्रकला हैं तो डा. थत्ते एकादशी के विमल इन्दु हैं तथा डा. जैन पूर्णरूप से शरच्चन्द्र प्रभावान् राकापति हैं। लखनऊ के इस विधानिकेतन में शारीर विभाग शर्वरी को राजत बनाए हुए हैं।

ज्ञानगंगा के सुधाजल से प्यास बुझाने की सुन्दर कामना रखने वाले पाठकवृन्द अपने हृत्कटोरे को इस पय से लबालब भरने में न चूकेंगे।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

शरीर की उत्पत्ति गर्भ से होती है। शुक्र और शोणित का संयोग होने पर जब यह गर्भाशय में आत्म प्रकृति विकारों से भी संयुक्त होता है तब उसे गर्भ संज्ञा प्राप्त होती है। अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार एवं पंचतन्मात्राएं यह आठ आत्म प्रकृतियां कहलाती हैं तथा पंचज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, चक्षु, रसना, स्पर्श एवं घ्राणेन्द्रिय), पंचकर्मेन्द्रिया (हस्त, पाद, गुद, उपस्थ एवं वाणी) पंचमहाभूत (आकाश, तेज, अप, वायु एवं पृथ्वी) एवं उभयेन्द्रिय मन यह सोलह

से प्राप्त रक्त एवं रस आवृत्त कर लेता है और गर्भ इसी से अपनी पोषक सामग्री प्राप्त कर वृद्धि को प्राप्त होता है। इसके पश्चात् गर्भ के वाह्य, पोषक आवरण से अनेकों रसांकुरों का निकलना प्रारम्भ हो जाता है जिनके कारण गर्भावरण एवं गर्भाशय की कला के मध्य अनेकानेक अवकाश उत्पन्न हो जाते है। इन अवकाशों में गर्भाशयिक रक्तवाहिनियों द्वारा निरंतर रक्त आपूर्ति होती रहती है। इस अवस्था के प्रारम्भ में तो इन झीलों को रक्त केवल केशिकाओं द्वारा ही प्राप्त होता है किन्तु इसके वाद की अवस्था में जब गर्भावरण के अंकुरशाखायुक्त एवं और लम्बे हो जाते हैं तब यह स्थान-स्थान की धमनियों एवं शिराओं का भी भक्षण कर लेते हैं जिससे धमनियों द्वारा रक्त आने एवं शिराओं द्वारा उसके वापस लौटने की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। छः सप्ताह की अवस्था तक गर्भावरण के रसांकुर इन झीलों के रक्त में उपस्थित पोषक सामग्री द्वारा गर्भ का पोषण करते हैं। जिसे महर्षि चरक के शब्दों में उपस्नेह एवं उपस्वेद विधि से सम्पन्न होना कहा जा सकता है। इसके वाद अपरा का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। इस समय से ही रसांकुरसि का कुड़ना प्रारम्भ हो जाता है जो अंत में नष्ट हो जाते हैं। केवल अपरा वनने के स्थान पर के रसांकुर ही शेष रहते हे। रसांकुरों द्वारा पोषण अधिक से अधिक केवल तीन माह तक होता है। इसके पश्चात् अपरा एवं नाभिनाड़ी के निर्माण का कार्य पूर्ण हो जाता है और पोषण उसी के माध्यम से प्रारम्भ हो जाता है। सुश्रुत के उपर्युक्त शब्दामृत के असंजातांग प्रत्यंग प्रविभागम् का प्रयोग गर्भ के विशेषण के रूप में किया गया है। सामान्यतया अंग प्रत्यंगों से हस्त पाद आदि का ही ग्रहण किया जाता है किन्तु यहां पर इससे तात्पर्य अपरा एवं नाभिनाड़ी से है। इससे ज्ञात होता है कि उपर्युक्त गर्भ के विशेषण का प्रयोग उसी गर्भ के संदर्भ में किया जाता है जिसकी अपरा एवं नाभिनाड़ी पूर्ण नहीं वनी है। इस उपर्युक्त आयुर्वेदीय विवेचन की व्याख्या निम्न शब्दों में की गई है। स्त्री वीज पुंवीज से संयुक्त होने के पश्चात् स्त्रीवीज कोष विकास के प्रारम्भिक काल से ही अपना पोषण प्राथमिक डिम्व कोशिका के कोष काय में ही संचित पोषक सामग्री से करना प्रारंभ कर देते हैं। यह सम्भव है कि यह पोषण प्रथम तो अत्यन्त सान्द्र रूप में स्थिर रखा जाता है किन्तु क्रमशः सुगमता से शोषित होने के योग्य अधिक तरल रूप में बीजपुटी की गुहा एवं प्राथमिक पीतक कोष में तत् पश्चात् निश्चयात्मक पीत कोष में निकलता है। इसके साथ ही यह भी कहा जाता है कि बीजपुटी गर्भाशयिक ग्रन्थियों एवं गर्भाशय में स्थित होने की प्रक्रिया की अवधि में गर्भाशय भित्ति के नष्ट हुए भाग से भी अपना पोषण प्राप्त करता है। इसके उपरान्त के लगभग दो सप्ताह के काल में भ्रूणीय मंडलक अपने पोषण के लिए उल्व, सीलोम एवं पीतक कोष की गुहाओं को भरने वाले द्रव से मिलने वाले द्रव्यों पर आधारित रहता है। इस तरल द्रव्यों में सम्भवतः बीजपोषक के द्वारा गर्भाशय ऊतक एवं माता के रक्त से शोषित द्रव्य ही होते हैं। यह द्रव्य उल्व एवं पीतक कोषकों की भित्तियों के द्वारा विसरित होने के कारण कुछ रूपान्तरित हो जाते हैं। किन्तु भ्रूण विकास के प्रारम्भिक काल से ही आपूर्ति के यह स्रोत्र वन्द हो जाते हैं। तंत्रिखातिका, तन्त्रिछिद्र के वन्द होने के कारण एक नलिका के रूप में परिवर्तित हो जाती है, एक्सोसीलोम अत्यधिक संकुचित
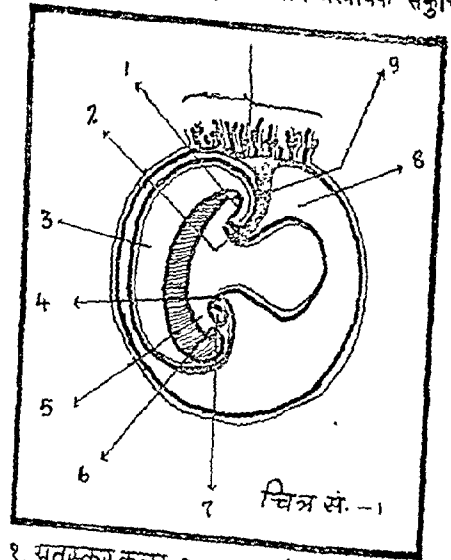
१. अवस्कर कला २. अपरापोषिकानाल ३. उल्वगुहा ४. अनुप्रस्थपट ५. अग्रान्त ६. मुखकला ७. हृदयावरण ८. अतिरिक्त भ्रूणीय सीलोम ९. संयोजक वृन्त.

होकर सीलोम से विच्छिन्न हो जाता है। पीतक वाहिनी का अभिलोमन पीतक कोष (Yolk Sac) को आन्त्रपथ से

चित्र सं. 2

१. पीत कोष २. उल्ब ३. उल्ब एवं जरायु की संयोजकीय रेखा ४ अनुप्रस्थ पट ५. उल्बीय गुहा ६. हृदयावरण ७. अग्रान्त्र ८. अपरा पाधिका नाल ९. अवस्कर कला १० नाभिनाड़ी में— अतिरिक्त भ्रूणीय सीलोम ११. अभिलोपित पीतक अन्तर्वाहिनी

अलग कर देता है (चित्र संख्या १ एवं २)। इसलिए इस काल में अन्य साधन से पोषक सामग्री प्राप्त करने हेतु माता ही एकमात्र विकल्प शेष रह जाती है। किन्तु यह तभी सम्भव है जब इसका सम्बन्ध अन्य प्रकार से भ्रूण संवहन से जोड़ा जाय। इसी कारण मानव भ्रूण में रक्तवहा प्रसूकतक का निर्माण इतना महत्वपूर्ण होता है।

इस सम्बन्ध में वैनडरस्ट्रिक्ट (Vender strict) सेबिन (Sabin) आदि के द्वारा किये गये शोध कार्यों से यह ज्ञात हो चुका है कि प्राथमिक रक्तवह प्रसू कतक का निर्माण तृतीय सप्ताह के प्रारम्भ में पीतक कोष या अन्तर्जन स्तर स्फोटिका को आवृत किये पूर्व मध्यजनस्तर के गहनतम भाग द्वारा होता है। इसी काल में इन कतकों को संयोजीवृन्त एवं जरायु के प्रारम्भिक पूर्व मध्यजनस्तर में भी पहचाना जा सकता है। यह इसके पश्चात् भ्रूणीय क्षेत्र में भी देखे जा सकते हैं। कतक अवकाश रक्तवहा प्रसू एवं कोषों में आपस में मिलकर केशिका जाल का निर्माण करते हैं। वे अवकाश जो निर्माण की प्रक्रिया में होते हैं उनमें अन्तः की ओर छोटे-छोटे मध्यजन स्तरीय कोषों के स्थानिक कोष समूह प्रक्षेपित करते हैं तथा रक्त द्वीपों के निर्माण हेतु कट जाते हैं। इन द्वीपों के घटक कोष रूपान्तरित होकर रक्त कणिकाएं बनाते हैं। जरायु में निर्मित वाहिनियां शीघ्र ही माता के रक्तपरिभ्रमण से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। भ्रूणीय क्षेत्र में विकसित वाहिनियां दो लम्बाकार मार्गों का निर्माण करती हैं जिनका अंधशीर्ष अन्त हृदयावरण की पृष्ठ भित्ति में प्रक्षेपित करता है। यह प्रारम्भिक वाम एवं दक्षिण महाधमनी होते हैं और इनका शीर्ष अन्तग्रसनिका के पार्श्वभित्ति पर कुछ सामने की ओर वक्र होकर हृदयावरण के शीर्ष पर पहुँचता है जहां वे आपस में संयुक्त होकर नलिकाकार हृदय का निर्माण करते हैं। भ्रूण के पुच्छीय अन्त पर वे प्रारम्भिक नाभि नाड़ियों के रूप में संयोजी वृन्त में जाकर जरायु में केशिकाओं में वितरित हो जाते हैं। जरायु पर से तनुशिरायें अभिसरित होकर दक्षिण एवं वाम नाभि शिराओं का निर्माण करते हैं जो आगे की ओर भ्रूणीय क्षेत्र के किनारे किनारे की ओर से होते हुए हृदय के पुच्छीय अन्त पर पहुँचती है।

यह भी स्मरणीय है कि परिहृदयिक गुहा कभी भी अतिरिक्त भ्रूणीय सीलोम से सीधे संपर्क स्थापित नहीं करती और उसकी शीर्ष सीमा के कायास्तर एवं आशयस्तर परस्पर मिल जाते है। (चित्र ३) (ग्रे पेज सं० १४४) शीर्ष पुटक के निर्मित हो जाने के कारण हृदयावरण के

चित्र सं. 3
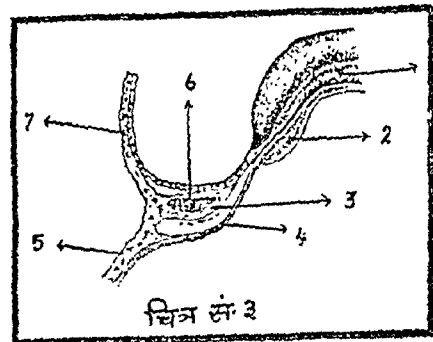
१. तन्त्रिकास्रात का तल २. आदि रज्जुपट्टिका ३ अधिहृत पेशी वृत्ति ४. पीतक कोष का अन्तर्जनस्तर ५. पीतक कोष का प्राथमिक मध्यजनस्तर ६. परिहृदयिक गुहा ७. उल्व का प्राथमिक मध्य-

तल उलट जाते हैं और मूल शीर्पसीमा अग्रनाल अग्रआन्त-रिक प्रतिहार के अग्र उपांत की भित्ति के समीप सम्बन्ध स्थापित होने के लिए आ जाते है (चित्र ४) चूंकि हृदया

चित्र सं. ४

१. अन्त्रिका खात का तल 2. अन्त. कलाहृदयनलिका ३. परिहृदयिक गुहा ४. अधिहृत् पेशीवृत्त ५. आदि रज्जु पट्टिका ६. अग्रमस्तिष्क ७ पीतक कोष का मध्यजनस्तर ८. पीतक कोष का अन्तर्जनस्तर.

वरण की पुच्छीय सीमा आगे से पीछे की ओर गहरी हो जाती है। इसके और नाल के मध्य स्थित पूर्वमध्यजन-स्तर एक चद्दर का निर्माण करती है जिसे अनुप्रस्थ पट कहते हैं। यह रचना भविष्य में महाप्राचीरा के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। नाभि एवं शरीर भित्ति की शिराएं जो कायस्तर में जाती हैं तथा पीतक शिराएं जो आशयस्तर में जाती हैं परस्पर में अनुप्रस्थ पट में मिल जाती हैं। इस प्रकार उन्हें हृदय के शिराअन्त की पुनः प्राप्ति हो जाती है।

इस प्रकार भ्रूण की रक्तवाहिनियां, ऊतकों एवं माता के रक्त से पोषक सामग्री एवं ओपजन ग्रहण किये हुए रक्त के मध्य परिभ्रमण स्थापित हो जाता है। भ्रूण को रक्त अपरा की नाभिधमनियां (Umblical Arterey) के द्वारा ले जाया जाता है तथा अपरा से रक्त पुनः भ्रूण में वापस बने शिराओं के द्वारा आता है जो नाभि नाल में आपस में संयुक्त होकर नाभिशिरा बनाती है। नाभिशिरा नाभि पर से उदर में प्रविष्ट होती है और उसकी शेष रही वाम शाखा (दक्षिण शाखा अपचयित हो जाती है) दात्र स्नायु (Falciform Ligament) के स्वतन्त्र परिसर से होते हुए यकृत् के आमाशयिक धरातल तक पहुँच जाती है यहां इसमें से दो तीन शाखएं निकल कर वाम पिण्ड एवं चतुरस्त्रा खण्डक को चली जाती हैं। यकृत् प्रतिहार पर यह प्रति-हारिणी शिरा की वाम शाखा से जुड़ जाती है जहां से इस विन्दु के सम्मुख एक बड़ी वाहिनी निकल कर यकृत् के पृष्ठ की ओर से होते हुए वाम यकृत् शिरा के अधः महा-शिरा में खुलने के स्थान से पूर्व जुड़ जाती है। इसे शिरा-वाहिनी कहते हैं। भ्रूण जीवन में प्रतिहारिणी शिरा नाभि-शिरा से छोटी होती है और उसकी वाम शाखा के नाभि-शिरा के साथ संयुक्त होने के स्थान से दूरस्थ एवं समीपस्थ

चित्र सं. ५
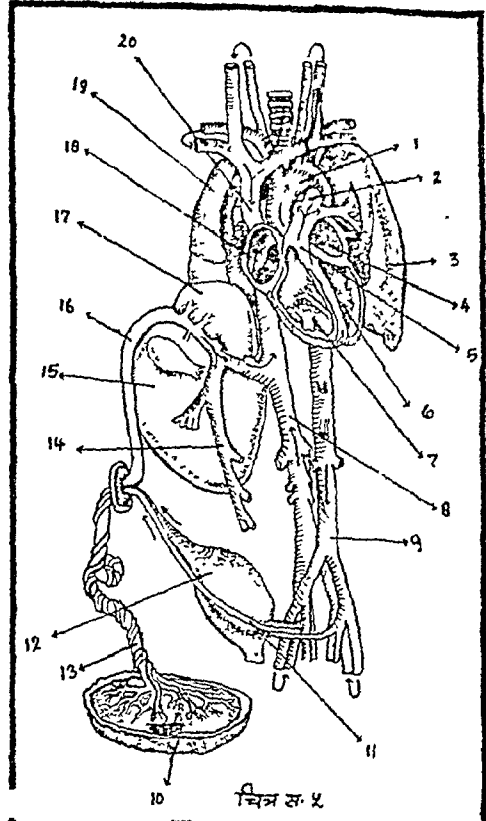
१. महाधमनी चाप २. धमनीवाहिनी ३. वाम फुफ्फुस ४. वाम अलिंद ५. फुफ्फुसीय प्रकाण्ड ६. वाम निलय ७. दक्षिण निलय ८. अधः महाशिरा ९. महाधमनी १०. अपरा ११. वाम नाभि धमनी १२. मूत्राशय १३. नाभिशिरा १४. प्रति-हारिणी शिरा १५. यकृत का दक्षिण पिण्ड १६. आग्रही वाम नाभि-शिरा १७. यकृत का वाम पिण्ड १८. दक्षिण अलिंद १९. दक्षिण फुफ्फुस २० ऊर्ध्व महाशिरा.

अंश यकृत् के दक्षिण एवं वाम भागों को क्रमशः ओपजन-युक्त रक्त पहुँचाने वाली वाहिनियों की शाखाओं के रूप में कार्य करते हैं। (चित्र ५) में इस प्रकार यह देखा जाता है कि वाम नाभि शिरा द्वारा लाया रक्त अधः महा-शिरा में तीन प्रकार से पहुँचता है, कुछ सीधे यकृत् में पहुँ-चता है और वहां से अधः महाशिरा से यकृत् शिराओं द्वारा लाया जाता है, काफी मात्रा में रक्त यकृत् में प्रतिहा-रिणी शिरागत रक्त के साथ परिभ्रमण करने के पश्चात् यकृत् शिरा के द्वारा अधः महाशिरा को पहुँचता है, शेष अधः महाशिरा में शिरावाहिनी के द्वारा पहुँचा दिया जाता है। यकृत् शिरा एवं शिरावाहिनी द्वारा अधः महाशिरा में लाये रक्त का मिश्रण अधः शाखा एवं उदरीय भित्ति से आये रक्त के साथ हो जाता है, और दक्षिण अलिंद में प्रविष्ट होता है तथा अधिकांश अंश अधः महाशिरा के कपाटों द्वारा रक्षित होता हुआ अण्डाकार रन्ध्र के द्वारा वाम अलिंद में पहुँच जाता है या थोड़ी मात्रा में फुफ्फुसीय शिरा द्वारा फुफ्फुस से लौटे रक्त के साथ मिश्रित होजाता है। अधः महाशिरा से हृदय को लौटे रक्त का अल्प अंश अण्डा-कार रन्ध्र से जाने के स्थान पर उर्ध्व महाशिरा के रक्त के साथ दक्षिण अलिंद निलय छिद्र से जाता है। वाम अलिंद से रक्त वाएं निलय को जाता है और यहां से महा धमनी की शाखाओं द्वारा हृदय, शिर एवं उर्ध्व शाखा में पहुँचता है। थोड़ा अंश ही आधोगामी महाधमनी में जाता है। शिर एवं ऊर्ध्व शाखा से रक्त ऊर्ध्व महाशिरा द्वारा दक्षिण अलिंद में और यहां से सम्पूर्ण दक्षिण अलिंद निलय छिद्र के द्वारा अधः महाशिरा से लौटे रक्त की थोड़ी मात्रा के साथ दक्षिण निलय में आ जाता है। यहां से यह रक्त फुफ्फुस प्रकाण्ट में चला जाता है। चूंकि भ्रूण के फुफ्फुस निष्क्रिय होते हैं इसलिए फुफ्फुस प्रकाण्ड द्वारा लाये रक्त की कुछ मात्रा ही फुफ्फुस में वितरित होती है। यह वितरण दक्षिण एवं वाम फुफ्फुसीय धमनियों द्वारा सम्पन्न होकर फुफ्फुसीय शिरा द्वारा वाम अलिंद में पुनः वापस लौटता है। अधिकांश भाग वाम निलय द्वारा भेजे गर्म रक्त की थोड़ी मात्रा से मिश्रित होता हुआ धमनी वाहिनी द्वारा महाधमनी को चला जाता है। महाधमनी से यह नीचे की ओर चलता हुआ अधः शाखा एवं उदर में स्थित अवयवों एवं उसकी भित्ति में वितरित हो जाता है किन्तु अधिकांश नाभि धमनी द्वारा अपरा को चला जाता है।

अपरा के द्वारा पोषण एवं विसर्जन का कार्य भ्रूण द्वारा अशुद्ध रक्त प्राप्त कर उसे पोषक सामग्री से मिश्रित कर एवं विसर्जन योग्य तत्वों से रहित कर सम्पन्न करता है। वाम नाभि शिरा द्वारा लाये रक्त में से कुछ अधः महाशिरा में प्रविष्ट होने से पूर्व यकृत् में परिभ्रमित होता है इसी कारण भ्रूण जीवन के प्रारम्भिक काल में यकृत् की आकृति अपेक्षाकृत बड़ी होती है। केवल फुफ्फुसीय शिरा ही वाम हृदय में सीधे खुलती है और इनसे लाये रक्त की मात्रा अत्यन्त अल्प होती है। जबकि दूसरी ओर के दक्षिण अलिंद में आने वाले रक्त की मात्रा अत्यधिक होती है तब वाम आलिंद की आपेक्षाकृत इस में दबाव भी अधिक होता है। इसी कारण फ्लैप के समान प्रारम्भिक पट वाम की ओर प्रविष्ठ होता है। इस से दक्षिण ओर से वाम की ओर प्रविष्ट होता है। इससे दक्षिण ओर से वाम की ओर की रक्त की गति भी अत्यधिक प्रभावित होती है। अतः महाशिरा का कपाट भी इस प्रकार स्थित होता है कि वाहिनी में आया सम्पूर्ण रक्त अण्डाकार ग्रन्थि के द्वारा वाम निलय को न पहुँच सके। जबकि दक्षिण अलिंद में उर्ध्व महाशिरा के द्वारा आने वाला रक्त सीधे दक्षिण निलय को चला जाता है। अपरा से भ्रूण को लाया हुआ शुद्ध रक्त अधः महाशिरा एवं प्रतिहारिणी महाशिरा के साथ मिलकर सीधे महाधमनी के चाप में चला जाता है। जहां से इस धमनी की शाखाओं द्वारा शिर एवं उर्ध्व शाखा को वितरित हो जाता है। अधोगामी महाधमनी में रक्त शिर एवं उर्ध्व शाखा से लौटने के बाद ही जाता है। केवल अत्यन्त अल्प मात्रा में वाम निलय से आकर उदर एवं अधःशाखा को जाता है इस प्रकार देखा जाता है कि भ्रूण के शिर एवं उर्ध्वशाखा को अधिक शुद्ध रक्त प्राप्त होता है।

जन्म के समय रक्तवह संस्थान में होने वाले परिवर्तन

जन्म के समय जबकि श्वसन प्रारम्भ हो जाता है, रक्त का अधिकांश भाग फुफ्फुसीय प्रकाण्ड से फुफ्फुसीय धमनियों द्वारा फुफ्फुस को जाता है और फुफ्फुसीय शिराओं द्वारा

फुफ्फुस से वाम अलिंद में वापस आ जाता है। दोनों अलिंदों में दवाब समान हो जाता है तथा अण्डाकार रन्ध्र पहले अस्थिति के कारण तत्पश्चात् प्रारम्भिक पट के द्वितीयक पट के साथ मिलने के कारण बन्द हो जाता है कभी-कभी इन दोनों पटों के अपूर्णता से मिलने के कारण इस छिद्र का कुछ अंश शेष रह जाता है जिसके द्वारा वहन होता रहता है और यह सम्पूर्ण जीवनकाल में बना रहता है। यह जब तक कि बहुत बड़ा न हो कुछ विशेष प्रभाव नहीं डालता।

जब नाभिनाल दो स्थानों से बांधकर उनके मध्य के स्थान से काट दी जाती है तो नाभिशिरा स्कन्दित हो जाती है तथा एक तन्तुमय नाल का रूप ग्रहण कर लेती है और यकृत् के वर्तुल स्नायु का निर्माण करती है शिरा वाहिनी भी परिवर्तित होकर युवाजीवन में शिरा स्नायु का रूप ग्रहण कर लेती है। इसका परिवर्तन महत्वपूर्ण होता है तथा कुछ काल के पश्चात् पूर्ण होता है किन्तु क्रियात्मक रूप में इसके बन्द होने की प्रक्रिया बहुत शीघ्र होती है।

जन्म से पूर्व इस वाहिनी का फुफ्फुसीय प्रकाण्ड द्वारा सीधे सम्पर्क हो जाता है अन्त में यह नाल का रूप धारण कर लेती है जो फुफ्फुसीय धमनी के प्रारम्भिक भाग के समीप स्थित महाधमनी के चाप से सम्बन्धित रहती है इसे धमनी स्नायु कहते हैं। कभी-कभी धमनी वाहिनी बन्द नहीं होती है इन परिस्थितियों में स्थिति सुधारने के लिए वाहिनी को उठा देना सहायक होता है।

हृदय की विकृतियां—भ्रूण जीवन में वृद्धि एवं निर्माण की प्रक्रिया में त्रुटि के कारण हृदय में उत्पन्न होने वाली विकृतियों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) **स्थिति में विकृति**—इसमें दो अवस्थायें हो सकती हैं—पहली स्थिति के अनुसार हृदय पूर्ण उलटा स्थित हो अर्थात् शीर्ष वाम की ओर होने के स्थान पर दक्षिण की ओर हो तथा दूसरी अवस्था में हृदय उरःभित्ति के निचले भाग में स्थित अवकाश के द्वारा वक्ष के धरातल पर प्रक्षेपित होता है।

(२) **विकास की त्रुटि या अपूर्ण पोषण के कारण होने वाली विकृतियां**—इसके कारण अत्यन्त गम्भीर विकृतियां उत्पन्न होती हैं जो सामान्यतया हृत्कन्द को प्रभावित करने वाली विकृति तथा कंदीय निलय उद्रेख (Venticular Ridge) के अपूर्ण शोषण के कारण होती है।

(३) **पटों की विकृतियां**—इसमें अलिंदों के मध्य के पट के अनुपस्थित रहने से लेकर अण्डाकार रन्ध्र के अपूर्ण बन्द होने तक की विकृति हो सकती है। निलयों के मध्य के कलावत पर से सम्बन्धित विकृति कभी-कभी त्रुटिपूर्ण शोषण या कन्द के विस्तार से सम्बन्धित होती है। इसमें की विकृति छोटी तथा जीवनकाल में स्वयं ही ठीक होने वाली होती है। कंदीय पर छिद्रित हो सकता है या न भी विकसित हो सकता है। कुछ अवस्थाओं में महाधमनी एवं फुफ्फुसीय धमनी की स्थिति उलटी हो जाती है।

(४) **आशयिक चापों की विकृतियां**—यह तीन हैं दक्षिण महाधमनी चाप, पेटेन्ट डक्टस आर्टिरियोसस, महाधमनी का संकोच।

शिशुओं में दन्त विकास

डा० अयोध्याप्रसाद 'अचल' एम. ए०, दर्शन, एम. ए., मनोविज्ञान
पीएच. डी., आयुर्वेद-बृहस्पति

इस शुभांक में हमें अनेक पी० एच० डी० विद्यावारिधि विद्वज्जनों ने कृतार्थ किया है। उनमें तीसरे पी. एच. डी. हैं डा. अचल जी जो दर्शन और मनोविज्ञान में पारंगत तो हैं ही आयुर्वेद के भी ज्ञानभाण्डागार हैं। आपने शिशुओं में दन्तविकास पर खोजपूर्ण और रोचक निबन्ध लिखा है। यह लेख अन्य लेखों से कहीं अधिक ऊँचे स्तर से विद्वान् लेखक ने लिखा है। इसमें पग-पग पर अन्वेषण की झलक और अन्वेषक की धीरता का प्रकाश है। कितना रोचक, कितना प्राञ्जल है यह लेख जो इसके लेखक की चाटुकारिता नहीं है अपि तु वस्तुस्थिति का परम प्रकाशन है। ऐसे ही लेखों से सुधाल्प जल से सुधानिधि छलछलाता रहे यह कामना है— उस परमपिता से, जिसने सुधानिधि के आरम्भ में ही इसके पिता को छीन लिया पर अपनी कृपाकोर हम अबोध बालकों पर तनिक भी कम नहीं की।

—गोपालशरण गर्ग

शिशुओं में दन्त-विकास का समय उनके जीवन का महत्वपूर्ण काल माना जाता है। स्त्रियाँ तो इसके सही सलामत पार हो जाने के बाद शिशु का नया जन्म ही मानती हैं। इस प्रक्रिया के साथ न जाने कितनी मान्यताएँ भावनाएँ, विश्वास तथा अन्धविश्वास आदि जुड़े हैं।

शिशुओं में दाँतों की उत्पत्ति दन्तबीजों से होती है। अष्टांग संग्रह में दन्तबीजों की कल्पना स्पष्ट रूप से मिलती है। न पुनर्दन्तोत्पत्तिर्दन्तानिर्गतानामपरिपातात्-धातु बीजाभावात्। उत्तर तन्त्र—२।

ये बीज प्रत्येक जबड़े में अस्थायी दाँत के लिए दस और स्थायी दाँतों के लिए सोलह होते हैं। अस्थायी दाँतों के बीज आगे और स्थायी दाँतों के पीछे होते हैं। कालान्तर में ये ही बीज दाँतों के रूप में विकसित होकर उचित काल पर मसूड़ों को छेदकर बाहर आते हैं। इसी को दन्तोद्भेद (Teething) कहते हैं।

शिशुओं में दन्तविकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्व तीसरे महीने से ही आरम्भ हो जाती है। इसी समय से उनके जबड़ों में दाँतों का विकास कार्य आरम्भ हो जाता है। जब वे जन्म लेते हैं उनके बीस दाँत बीज रूप में जबड़ों में वर्तमान रहते हैं। कालान्तर में वे ही बाहर निकलते हैं। [illegible]

लेखक

दांत गिरते हैं, स्थायी दांत उसकी जगह लेते हैं, कुछ नये भी निकलते और दन्त-विकास की यह प्रक्रिया प्रायः २५ वर्ष की अवस्था तक चलती रहती है जब तक कि प्राणी के पूरे ३२ दांत नहीं निकल आते।

दो प्रकार के दांत

जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है दांत दो प्रकार के होते हैं—अस्थायी या दूध के दांत स्थायी या पुनर्दन्त इन दोनों प्रकार के दांतों में प्रायः निम्न अन्तर पाया जाता है—

१—अस्थायी दांत पहले निकलते हैं और स्थायी दांत बाद को निकलते हैं।

२—अस्थायी दांत २० होते हैं जबकि स्थायी दांत ३२ होते हैं।

३—अस्थायी दांत जल्दी गिरते हैं जबकि स्थायी दांत देर तक टिकते हैं।

४—अस्थायी दांतों की अपेक्षा स्थायी दांत गुणधर्म की दृष्टि से भी श्रेष्ठ होते हैं।

५—अस्थायी दांत स्थायी दांतों की अपेक्षा छोटे होते हैं।

६—अस्थायी दांतों के निकलने के समय शिशु प्रायः परेशानी अथवा वास्तविक पीड़ा का अनुभव करते हैं जिससे उनकी भूख मर जाती है, चिड़चिड़ापन तथा घबड़ाहट बढ़ जाती है। स्थायी दांत अपेक्षाकृत आसानी से निकल आते हैं।

आगे के पृष्ठों में दोनों ही प्रकार के दांतों के विकास का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

अस्थायी या दूध के दांत

दूध के दांत कब आते हैं

भिन्न-भिन्न बालकों में दांत आने की प्रक्रिया भी भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। किसी-किसी बालक में पहला दांत तीन महीने की अवस्था में ही आ जाता है और किसी में साल भर का हो जाने पर भी नहीं आता। इनसे भी अधिक अपवाद (लगभग २००० पीछे १) वे शिशु होते हैं जिनमें जन्म काल में ही एक या दो दांत पाए जाते हैं। आयुर्वेद में इन्हें अशुभ माना गया है और इनकी शान्ति के लिए मारुती इष्टि का विधान किया गया है। द्रष्टव्य काश्यप संहिता : दन्तजन्मिकाध्यायः)।

साधारण बच्चों में ६–७ महीने का होते-होते पहला दांत आ जाता है और ९ महीने का होते-होते ३ दांत।

दूध के दांत किस क्रम में आते हैं—

नियमितः नीचे के दांतों की अपेक्षा पहले आते हैं। किसी-किसी केस में अपवादस्वरूप ऊपर के दांत पहले आते भी देखे गये हैं। सबसे पहले नीचे केन्द्र में दो दांत आते हैं जिन्हें निम्न केन्द्रीय कर्तनक (Lower Central Incisors) कहा जाता है। कर्तनक संभवतः इन्हें इसलिये कहा जाता है क्योंकि इनसे प्रायः काटने का काम लिया जाता है। इसके कुछ ही महीने बाद ऊपर के चार कर्तनक (Upper Central and lateral Incisors) निकल आते हैं। एक साल का होते-होते औसत बच्चे में ये छः दांत आ जाते हैं। इसके बाद कुछ महीने का अन्तराल आता है। उसके बाद बिना अन्तराल के छः दांत और नीचे के दो शेष कर्तनक (Lower latearl Incigors) तथा ऊपर-नीचे दो-दो दाढ़े (Fisst molars) निकल आते हैं। ये दाढ़ें कर्तनकों से कुछ दूरी पर निकलती हैं। बाद में इसी छूटी हुई जगहों पर दो-दो भेदक दांत, (Canine) जिन्हें सूए भी कहते हैं। निकलते हैं।
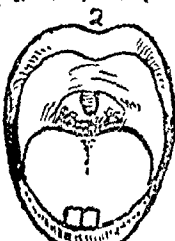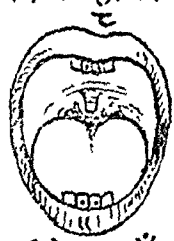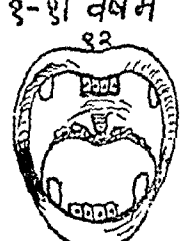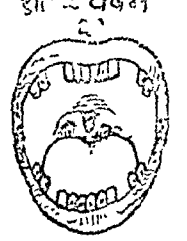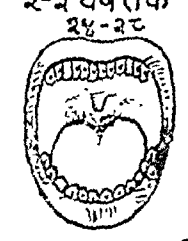
पहली चार दाढ़ें जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है औसत बच्चे में साल डेढ़ साल की उम्र के बीच निकल आती हैं। इसके बाद फिर कुछ समय का अन्तराल आता है। इसके बाद कर्तनकों और दाढ़ों के बीच छूटी जगहों पर
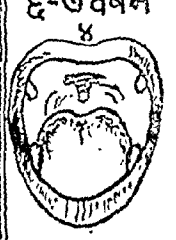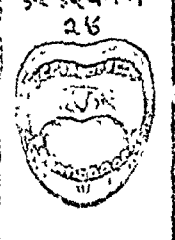
भिन्न-भिन्न आयु में निकलने वाले दाँत।

(चित्र में एक बार उत्पन्न हुआ दाँत दुबारा बिन्दुवार चिन्ह से दर्शाया गया है।)

कष्ट से निकलने वाले दूध के दाँत।

६ से ८ वें मास तक	८ से १० वें मास तक	१ वर्ष का होने तक
२	४	८
नीचे २ अगले कर्त्तनक	ऊपर के भी २ कर्तनक	ऊपर नीचे २-२ दाँत और

१-१। वर्ष में	१।-१॥ वर्ष में	१॥-२ वर्ष में	२-३ वर्ष तक
१२	१६	२०	२४-२८
ऊपर नीचे २-२ भेदक	२-२ भेदक और	बीच की खाली जगह	सब जगह भर गई

दूध के दाँतों के बाद आराम से निकलने वाले पक्के दाँत

६-७ वर्ष में	८-९ वें वर्ष में	१० से १२ वर्ष में	१२-१३ वर्ष में	१३-१४ वर्ष में
४	१२	२०	२४	२८

इसके बाद २०-२१ वर्ष की आयु में ४ अक्कल दाढ़ निकलती हैं

भेदक दांत निकलते हैं। औसत बच्चे में ये प्रायः डेढ़ से दो साल की उम्र के बीच आ जाते हैं। इनके बाद तीसरे वर्ष के पूर्वार्ध में चार दाढ़ें और (Second Molaro) निकलती हैं इन्हें मिलाकर पूरे बीस दांत हो जाते हैं जिन्हें दूध के दांत कहते हैं। नीचे के चित्र में दूध के दांत निकलने का क्रम दिखलाया गया है।

दन्तोद्भेद को प्रभावित करने वाले तत्व—

दांतों के विकास में अनेक प्रकार की व्यक्तिगत भिन्नतायें देखने को मिलती हैं। किसी के दांत पहले आते हैं, किसी के देर में। किसी के दांत मजबूत होते हैं, किसी के कमजोर किसी के छोटे होते हैं, किसी के बड़े। किसी के सुडोल होते हैं, किसी के ऊबड़-खाबड़। किसी के जल्दी गिरते हैं, किसी के देर से, आदि। दन्त-विकास में इन व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनेकानेक कारण हैं। जिनमें से स्वास्थ्य, वंशानुक्रम, जन्म के पूर्व तथा बाद का पोषण, यौन आदि प्रमुख हैं। नीचे इन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

दन्तोद्भेद और स्वास्थ्य

इस सम्बन्ध में दो अतिवादी विचारधारायें पाई जाती हैं। पहली या प्राचीन विचार धारा जो दन्तोद्भेद को अनेकानेक रोगों, अरिष्टों का जनक मानती है। दन्तोद्भेद काल में होने वाला सर्दी-जुकाम, बुखार, अतिसार, क्षुधानाश, यहां तक कि बालशोष तक को इसी की उपज माना जाता है। इन सभी रोगों का सम्बन्ध लोग दन्तोद्भेद से ही जोड़ने का प्रयास करते हैं।

दूसरी विचारधारा ठीक इसके विपरीत दन्तोद्भेद मात्र ही मानती है। उसके अनुसार बचपन का काल बीमारियों का काल है। इस बीच बच्चे अनेकानेक प्रकार के रोगों से ग्रस्त होते रहते हैं और इसी बीच दांत भी निकलतेहैं फलतः दोनों को लोग कार्यकारण रूप में ग्रहण करने लगते हैं जब कि ऐसा नहीं है। एक विद्वान् के शब्दों में—"पहले अनेकानेक बीमारियों का दोषारोपण दन्तोद्भेद पर कर दिया जाता था। अब यह स्पष्ट हो गया है किसी भी बीमारी का सम्बन्ध दन्तोद्भेद से नहीं जोड़ा जा सकता, यह एक हानिकारक अन्धविश्वास है जिसका सामना किया जाना चाहिए; क्योंकि यह धारणा सही बीमारियों के समय रहते निदान में बाधक है।" Formerly many diseases were blamed on teething. Now it is known that no diseases are connected with dentition; this is a harmful superstition that should be combated,as it Interferes with the timely diognosis of a true disease.—Childrens diseases by A. koltypin, Laugovai and vlasov.

उक्त दोनों ही विचारधारायें आंशिक रूप में सत्य हैं। अभिभावकों एवं चिकित्सकों को दोनों ही मामलों में सावधानी बरतने की आवश्यकता है। यह तो माना ही जा सकता है कि कुछ शिशुओं में दन्तोद्भेद काल में रोगप्रतिरोधक क्षमता घट जाती है जिससे उनके रोगों से आक्रान्त होने की सम्भावना बढ़ जा सकती है। दूसरी ओर बालशोष, गलग्रन्थि की विकृति तथा इसी प्रकार के अन्य रोगों से आक्रान्त शिशुओं में दन्तोद्भेद विलम्ब से होते देखा गया है। अतः स्पष्ट है कि दन्तोद्भेद तथा कतिपय बालरोगों में भले ही कार्य कारण-सम्बन्ध न खोजा जा सके या अभी तक न खोजा जा सका हो, पर इतना तो स्पष्ट मालूम होता है कि ये दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

वंशानुक्रम

दांतों का अच्छा, सुडौल, पंक्तिबद्ध, मजबूत एवं टिकाऊ होना बहुत कुछ वंशानुक्रम पर भी निर्भर है। इनमें परिवार की परम्परायें स्पष्ट रूप से लक्षित होती हैं। इसे नई और पुरानी दोनों विचारधारायें समान रूप से मानती हैं। डा० डोनाल्ड पैटरसन ने अपनी पुस्तक 'सिक-चिल्ड्रेन' में लिखा है—"दांतों के उद्भेद और उनके प्रकार-बनावट की बहुत सी अपसामान्यतायें वंशानुक्रमगत ही प्रतीत होंगी और इसमें कोई शक नहीं किया जा सकता कि अच्छे दांत कौटुम्बिक देन होते हैं।" काश्यप के शब्दों में—"दांतों का निषेक, मूर्तरूप होना, प्रकट होना, वृद्धि, पतन, गिरकर पुनः न निकलना, स्थिर रहना, क्षीण होना, हिलना, दृढ़ता एवं दुर्बलता इन सब बातों में जाति की विशेषता, निषेक, स्वभाव, माता-पिता का अनुकरण तथा अपने प्राक्तन कर्मों की अपेक्षा होती है ऐसा प्राचीन महर्षि कहते हैं।

"काश्यप-संहिताःदन्तजन्मिकाध्यायः।"

जन्म के पूर्व तथा बाद का पोषण

ऊपर संकेत किया जा चुका है कि बालक जिस समय गर्भ में होता है उसी समय तीसरे-चौथे महीने में ही–बीज रूप में ही उसके दांतों के निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। अतः इस समय गर्भवती के भोजन पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। उसके खाद्यपदार्थों में ऐसे तत्वों की आवश्यकता है जो बालक के पोषण में विशेष रूप से सहायक हों। खोजों से पता लगा है कि मजबूत दांतों के निर्माण में निम्न तत्व विशेष रूप से उपयोगी हैं— कैल्शियम तथा फास्फोरस (दूध एवं पनीर में), विटामिन-डी (काडलीवर आयल तथा धूप में), विटामिन-सी (संतरे रसीले फल, टमाटर, गाजर आदि) तथा थोड़ी मात्रा में विटामि-ए और बी भी।

जन्म के बाद भी बालकों में अच्छे दांतों के विकास के लिए उक्त तत्वों की उपयुक्त मात्रा में आवश्यकता है। उसे ऐसा संतुलित,आहार दिया जाए जिसमें अन्य पोषक तत्वों के अलावा ये चीजें भी उसे पर्याप्त मात्रा में मिल सकें।

यौन

प्रायः यह देखा जाता है कि लड़कियों के दांत जल्दी निकलते हैं और उन्हें तकलीफ भी कम होती है और ठीक इसके विपरीत लड़कों के दांत देर से निकलते हैं और उन्हें तकलीफ भी अधिक होती है। काश्यप ने इसका कारण बताते हुए कहा है कि लड़कियों के दांत सुषिर (सच्छिद्र) एवं मृदु होते हैं तथा लड़कों के दांत घन तथा स्थिर होते हैं। कतिपय नई खोजों के अनुसार यद्यपि लड़कियों में दन्तोद्भेद की प्रक्रिया, नियमतः, लड़कों की अपेक्षा पहले शुरु हो जाती है लेकिन दो साल का होते-होते लड़के इस मामले में लड़कियों से आगे निकल जाते हैं।

दन्तोद्भेदकाल में ध्यान देने योग्य बातें —

आपने देखा होगा कुछ बच्चों के दांत बड़ी आसानी से निकल आते हैं। मां-बाप को पता भी नहीं चलता और एक दिन अचानक अपने बच्चे की दंतुलिया देखकर वे खुशी से फूल उठते हैं। दूसरी ओर कुछ बच्चे हर दांत के निकलने के पहले काफी समय तक मसूड़ों से चीजों को चबाते-दबाते, लार गिराते और चिड़चिड़ाते रहते हैं। तंग करते में सारा घर सर पर उठा लेते हैं। ऐसे में पूरे धैर्य और सावधानी से काम लेने की आवश्यकता होती है।

दन्तोद्भेदकाल में बच्चे मसूड़ों में टीस एवं सुरसुराहट का अनुभव करते हैं। उन्हें इसी प्रकार की अन्य संवेदनायें भी हो सकती हैं। वे चीजों को मसूड़ों से चबाते-दबाते हैं। ऐसी हालत में हानि रहित रबर के खिलौने -छल्ले आदि बालकों के लिए लाभदायक सिद्ध होते हैं। ऐसे में पतले कचकड़े के खिलौने आदि देने में पूरी सावधानी बरतें। बच्चे उसे मसूड़ों से दबाकर तोड़ दे सकते हैं और उसका कोई टुकड़ा उनकी हलक में भी जा सकता है। इसी प्रकार रङ्गीन खिलौनों-फर्निचर आदि का रङ्ग भी बच्चों के पेट में पहुंचकर हानि पहुंचा सकता है। अतः रङ्गीन खिलौनों को देने के पूर्व यह अवश्य देख लें कि अगर बच्चा उन्हें चाटे-दबाए तो उसका रङ्ग न छूटता हो। कुछ बच्चों को ऐसे में कपड़ा चबाने की आदत भी लग जाती है। कपड़ा चबाता हो तो चबाने दें, घबरायें नहीं। इस क्रिया से उसे कोई हानि नहीं होने की। मात्र यह ध्यान रहे जो कपड़ा वह चबाता है वह स्वच्छ हो, हानि रहित हो। उसे कभी-कभी गर्म पानी में उबाल दें। जमीन पर गिर जाए, कोई पशु आदि स्पर्श करले तो साबुन से भली प्रकार धो दें।

बच्चे के मसूढ़ों को बिना जरूरत मलें दबाएं नहीं। चिकित्सक से राय लिए बिना कोई चीज लगाए नहीं।

प्रायः पहली चार दाढ़ों के आने के समय बच्चे ज्यादा तकलीफ का अनुभव करते हैं। इस बीच वे ज्यादा चिड़-चिड़े हो जाते हैं और कई-कई दिनों तक उनकी भूख गायब हो जाती है। रात में वे सोते में चौंक कर जाग जाते हैं। ऐसा कई-कई बार होता है। कभी-कभी तो ऐसे जाग जाने पर उन्हें जल्दी नींद नहीं आती और एक समस्या खड़ी हो जाती है। इस हालत में उसे दुलार [illegible] कर सकता है। ऐसे में कुछ नई पीढ़ी के [illegible] बच्चों को पास रखे मां-बाप [illegible] कि कहीं बच्चे का [illegible] से रात को जागने की आदत न लग जाए। [illegible] ऐसा नहीं होगा। [illegible] बच्चा इस [illegible] से निकल [illegible] उसमें फिर [illegible] आने लगेगा।

[illegible] महीने के बीच कभी-कभी [illegible]

स्तन-पान करते-करते एकबारगी पिनक जाता है। वह दूध में मुंह लगाता है, कुछ ही देर बाद तरह-तरह का मुंह बनाने लगता है जैसे कि उसे कुछ तकलीफ हो रही हो और फिर एकबारगी छोड़कर छटपटाने लगता है। ऐसा लगता है कि वह भूखा है लेकिन भूख शान्त करने के लिए ज्यों ही स्तनों में मुंह लगाता है फिर वही प्रतिक्रिया देखने को मिलती है। ऐसा लगता है जैसे चूसने की क्रिया से उसके दर्द भरे फूले मसूढ़े और भी दर्द करने लगे हों। ऐसे में उसके स्तनपान या बोतल पान की अवधि को कुछ हिस्सों में बांट दें। बीच-बीच में कुछ ठोस या अर्ध तरल खाद्य दें। अगर उसे बोतल से दूध पिलाया जाता हो तो बोतल के कुछ निपलों में छेद अधिक बड़े कर दें ताकि दूध शीघ्रता से उसके अन्दर चला जाए और कुमलाने की अधिक आवश्यकता न पड़े। लेकिन इन निपुलों को बाद में इस्तेमाल न करें। इसका ध्यान रखें आपका बच्चा कहीं चुभलाने के मनोवैज्ञानिक आनन्द से वंचित न रह जाए। अगर बच्चे की तकलीफ ज्यादा बढ़ गई हो और रोग का उस पर बार-बार आक्रमण हो रहा हो तो कुछ दिनों के लिए स्तनपान या बोतल से दुग्धपान बन्द करा दें। उसे कप या कटोरी से दूध पिलाएं। चम्मच का सहारा लें। अन्य खाद्यपदार्थों में मिलाकर दें। या कुछ समय के लिए दूध न भी पीएं तो कोई चिन्ता न करें।

विदेशों में तो माता-पिता प्रत्येक छः महीनों पर बच्चे को योग्य दन्त-चिकित्सक से दिखलाते रहते हैं ताकि बच्चे के दांत में शुरू से ही किसी तरह की खराबी न आने पाए और आए भी तो तुरन्त उसका निदान हो जाए। दूसरे ऐसा करने से बच्चा दन्त-चिकित्सक के पास जाते घबराता नहीं। पर अपने देश में तो अभी औसत आदमी के लिए इस प्रकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर भी इतना तो अवश्य है कि किसी भी प्रकार के दन्त रोग की शंका होते ही तुरन्त दन्त-चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। इसमें थोड़ी सी भी लापरवाही बाद में बड़ी परेशानी का कारण बन सकती है। कभी-कभी दूध के दांतों में दन्तक्षय या इसी प्रकार के रोग के उत्पन्न हो जाने पर भी अभिभावक उसकी विशेष चिन्ता नहीं करते। वे सोचते हैं अन्ततोगत्वा ये दांत तो गिर जायेंगे ही। पर उनका ऐसा सोचना गलत है। ऐसी स्थितियों में उन्हें तुरन्त दन्त चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए। अन्यथा एक दांत की खराबी दूसरे दांतों को खराब कर सकती है। आगे उत्पन्न होने वाले स्थायी दांतों में विकार का कारण बन सकती है।

यह देशी ही नहीं, विदेशी चिकित्सकों का भी मत है कि बहुत ज्यादा ठण्डी-गरम चीजें, कैण्डी, लालीपा, लेमनड्राप, टाफियां, एवं मिठाइयां बच्चों के दांतों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। उन्हें इनसे बचाइए। सफेद साफ चीनी दांतों के लिए सबसे अधिक हानिकारक है। मधु तथा कच्ची शक्कर, जिसे बूरा भी कहा जाता है, ऐसे हानिकारक तत्वों से रहित हैं। उनके इस्तेमाल में किसी प्रकार का खतराहींन।

शुरू में ही कहा जा चुका है बचपन की उम्र बड़ी नाजुक है। इस काल में अनेक रोगों का आक्रमण हो सकता है, होता है। ऐसे में आप यह सोचकर न बैठे रहिए यह सब दांतों की वजह से हो रहा है। दांत निकल आयेंगे अपने आप सब ठीक हो जाएगा। किसी भी रोग के उत्पन्न होते ही आप ठीक उसी प्रकार चिकित्सक की सलाह लें जैसे कि अगर दांत न निकल रहे होते तो रोग के उत्पन्न होते ही आप चिकित्सक के पास दौड़ते।

दांतों की सफाई

दांतों की सफाई की आदत बच्चों को शुरू से ही डालने की जरूरत है। इसके लिए जिसके परिवार में जो प्रचलित हो और जो उपलब्ध हो सके वही ठीक है। हां यह अवश्य ध्यान रखा जाए कि बच्चों को ऐसी चीजें यथा कड़ी दातुन, ब्रुश, तेज मंजन आदि शुरू में न दिए जाएं जिससे या तो वे अपने मसूढ़े छील लें या जो उनके कोमल मसूढ़ों को अनावश्यक रूप से हानि पहुंचाएं।

कुछ नई पीढ़ी एवं नई रोशनी के मां-बाप अपने बच्चों को ब्रुश पकड़ाने के लिए बड़े व्यग्र रहते हैं। उन्हें थोड़ा धीरज से काम लेना चाहिए। दो साल तो होते-होते आप एक दिन अचानक पायेंगे कि वह आपका या आपकी पत्नी का ब्रुश लेकर अपने दांतों पर घिस रहा है। यही

उपयुक्त समय है आप उसे बेबी-ब्रुश दें। इतना ही नहीं दांतों को ढंग से साफ करने की तालीम भी दें।

स्थायी दांत या पुनर्दन्त

लगभग छः साल की अवस्था में स्थायी दांत निकलना आरम्भ हो जाते हैं। इनके निकलने का क्रम भी प्रायः वही होता है जो दूध के दांतों का था। दूध के दांत जिस क्रम से निकले थे प्रायः उसी क्रम में एक-एक करके गिरते जाते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दांत निकलते आते हैं। औसतन छः साल के बच्चे में दो, आठ साल के बच्चे में १०-११, 'दस साल' के बच्चे में १४-१६, बारह साल के बच्चे में २०-२४ तथा तेरह साल के बच्चे से २७-२८ दांत निकल आते है। अन्तिम चार स्थायी दांत जिन्हें बोल-चाल की भाषा में अक्लि-दाढ़ (Wisdom teeth) कहा जाता है सत्रह से लेकर पच्चीस साल की अवस्था के बीच निकलते हैं। किसी-किसी में ये नहीं भी निकलते हैं। इस तरह जिस व्यक्ति में विजडम-टीथ आते हैं उसमें कुल मिला-कर ३२ दांत तथा जिसमें नहीं आते है उनमें २८ दांत ही रहते हैं।

दूध के दांतों के समान ही स्थायी दांतों के विकास में भी दो सक्रिय स्तर आते है इनके बीच कुछ समय का अन्तराल रहता है। लड़कों मे यह अन्तराल आठ साल चार महीने और ग्यारह महीने की अवस्था के बीच तथा लड़कियों में सात साल नौ महीने और दस साल की उम्र के बीच आता है। दूध के दांतों के गिरने और स्थायी दांतों के निकलने के मामले में भी लड़कियां लड़कों से आगे रहती हैं। मात्र अक्लि-दाढ़ें लड़कों में लड़कियों की अपेक्षा पहले आती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि सामान्य से कम बुद्धि वाले बालकों (Sule normal Children) में स्थायी दांतों का विकास प्रायः देर से होता है और ठीक इसके विपरीत प्रतिभाशाली बालकों में इनके निकलने का क्रम कुछ तीव्र हो सकता है। लेकिन शुरु में ही और किसी बालक में पहला दांत जल्दी आ जाए तो उसे तीव्रबुद्धि और अगर देर से आए तो उसे मन्दबुद्धि समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। दन्तोद्भेद में जैसा कि हम देख चुके है अनेक प्रभावशाली तत्व काम करते हैं।

अयोध्या प्रसाद, अचल प्राचार्य जे० जे० डिग्री कालेज
पो०—बुनियादगंज गया—८२३.००३

दांतो की स्वच्छता

जब बच्चे के दांत निकलने आरम्भ हों तो माता या धातृ को आवश्यक है कि वह दिन में कम से कम दो बार उसके दांत साफ करे। दांत स्वच्छ करने के लिए साफ कीटाणुनाशक रुई या बारीक मलमल के कपडे का कोमल टुकड़ा लेकर अंगुली पर लपेटे और पांच प्रतिशत नमक या बोरिक एसिड विलयन में भिगोकर बच्चे के दांतों और मसूढ़ों पर धीरे धीरे फेरे। इस प्रकार से उस समय तक दांत साफ करने चाहिए जब तक कि बच्चे के सारे दांत न निकल आवें।

जब दांत निकल आवें तो बच्चे को ऐसे भिन्न खाद्य पदार्थ सेब आदि फल जो कुतर कर खायें चबायें जिन्हें वह चबा सके, देने आरम्भ करें इससे दांतों का उचित व्यायाम होता है।

वैद्य श्री मदनमोहनलाल चरौरे बी०ए०एम०एस० (आयुर्वेदाचार्य) स० सं० 'सुधानिधि

सुधानिधि के प्रत्यक्ष कार्यसम्पादन में जो व्यक्ति चुपचाप डटा रहता है उसकी लेखनी का यह प्रसाद है। श्री मदनमोहनलाल चरौरे जी आयुर्वेदाचार्य तो हैं ही सोरों जी के पण्डा भी हैं जो हर क्षण अपने देवता को रिझाने में लगे रहते हैं। वे साहित्य देवता के भी पण्डा हैं। कवि भी हैं और कविराज भी। बाबूजी की दृष्टि से वे ओझल नहीं रह सके और उनके जाने के बाद भी बड़ी तन्मयता से अपने काम में संलग्न रहते हैं।

न जाने कैसे उन्होंने इस दुरूह लेख को आधुनिकतम विचारों के अनुकूल पूरा कर पाठकों को बड़े स्नेह से भेंट किया है जबकि रात दिन विशेषांक की छपाई चल रही है, उन्हें न रात चैन है न दिन में आराम। लेख अवश्य आपके ज्ञान की वृद्धि एवं पूर्वज्ञान के सुस्मरण का योग पैदा करेगा ऐसा मेरा विश्वास है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

कभी-कभी प्रसव के पश्चात् नवजात शिशु की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि इसके सभी अङ्ग प्राकृतिक रूप में विकसित नहीं हो सके हैं उनमें कहीं न कहीं कोई शारीर-विकृति है। इन विकृतियों को सहज शारीर विकृति (Congenital anatomical defects) की संज्ञा दी जाती है। इन विकृतियों में कुछ जीवन भर रहती हैं। कुछ को यदि तत्काल न सुधारा गया तो शिशु का जीवन दूभर हो जाता है। कुछ को शल्यविज्ञों की सहायता से सुधारा जा सकता है। हम नीचे कुछ खास-खास विकृतियों का वर्णन यहां प्रस्तुत कर रहे हैं ताकि उनसे पाठकगण भले प्रकार परिचित हो सकें।

१. हनुमत्स्वरूपता या माइक्रोग्नेथस

जब भ्रूण का शीर्ष भाग माता के गर्भाशय में अधिक-

काल तक अत्यधिक दबा हुआ रहता है तो जन्म के समय शिशु की हनु या ठोड़ी का विकास नहीं हो पाता और वह हनुमान जी की मूर्ति के समान छोटी रह जाती है। ठोडी के दब जाने से जीभ भी अन्दर की ओर खिच जाती है जिससे चित्त लेट कर दूध निगलना या श्वास-प्रश्वास क्रिया करना भी उसके लिए कठिन हो जाता है। यदि ये कठिनाइयां अधिक हों तो बच्चे को उत्तानशयन न कराकर अधोमुख शयन कराना चाहिए। इससे जीभ पीछे को नहीं जाती और श्वास मार्ग और अन्नमार्ग अवरुद्ध नहीं होता है। कभी-कभी अधो हनु को आगे निकालने के लिए विशेष प्रकार से कुशाबन्धन (स्प्लिट) बाधी जाती है।

२. खण्डोष्ठता तथा खण्डतालुता

इसे आधुनिक हिन्दी में क्लैफ्टलिप तथा क्लैफ्ट पैलेट कहा जाता है। भ्रूण के मुख भाग या आनन (फेस) का निर्माण छठे सप्ताह से नवें सप्ताह तक चलता है। आद्यमुख सिर के सन्मुख एक गर्तिका के रूप में बनता है। इसके चारो ओर एक मध्यवर्ती नासिकीय प्रवर्धन निकलता है। इसके दोनों ओर दो ऊर्ध्वहनु प्रवर्धन बनते है। ये तीनों प्रवर्धन आपस में संयुक्त होकर ऊपर के ओष्ठ और मुख की छत या तालु का निर्माण करते हैं। जब मध्यवर्ती नासिकीय प्रवर्धन के साथ ऊर्ध्वहनु प्रवर्धन बांये या दांये ओर का या दोनों ओर के नहीं मिलते तो एक ओर या दोनों ओर खाली जगह रह जाती है जिससे ऊर्ध्व ओष्ठ एक या दोनों ओर खण्डित हो जाता है। जब ये पीछे की ओर तालु में नहीं मिलते तो खण्डतालु का निर्माण करते हैं। खण्डतालु रहने से बच्चा माता का स्तनपान ठीक से नहीं कर सकता जो दूध वह चूसता है वह नासिका द्वारा बाहर आ जाता है। इससे ऊर्ध्वश्वसन मार्गों में रोग हो सकता है तथा मध्यकर्णपाक भी हो सकता है।

खण्डोष्ठता को ठीक करने के लिए शल्यकर्म करना होता है जिसके लिए शिशु की आयु ३ माह से पूर्व यह शल्यकर्म किया जाना जरूरी होता है। शिशु का भार आपरेशन के समय ५ किलो से कम न हो तो अच्छा है।

खण्डतालुता में दूध पिलाने की व्यवस्था पर सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए। क्योंकि बच्चा ज्योंही दूध चूसता है नाक के रास्ते वह बाहर निकल जाता है और बच्चा भूखा रह सकता है। इसके लिए चम्मच से दूध पिलाना सबसे
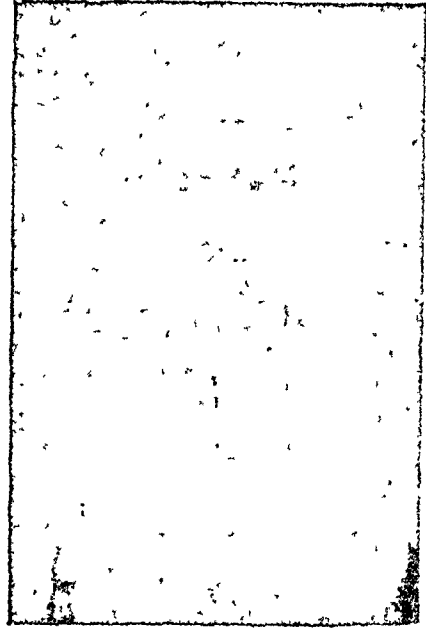
लेखक

अच्छा रहता है या लम्बे टीट वाली बोतल में दूध भरकर पिलाना चाहिए। कांच की निपिल शील्ड जिसके साथ लम्बा टीट हो, भी उपयुक्त रहता है।

खण्डतालुता का शस्त्रकर्म करना होता है। शस्त्रकर्म के पूर्व बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा रहना चाहिए। इस आपरेशन को १ से २॥ साल की आयु तक जब तक शिशु बोलना आरम्भ करे उससे पहले-पहले कर देना चाहिए। शस्त्रकर्म के पश्चात् अच्छी परिचर्या की जानी चाहिए।

खण्डतालुता वाले बच्चे ठीक से बोल नहीं पाते। शस्त्रकर्म के बाद भी उनकी वाणी सदोष रहती है क्योंकि बोलने में कार्यशील पेशियां दुर्बल रहती हैं।

क्लोम-अन्नवहस्रोत नालव्रण-

यह विकृति २-३॥ माह के शिशुओं में से एकाध को मिलती है। इसमें क्लोम और अन्नवहस्रोत दोनों मिल जाते है जिससे जो हवा श्वास के साथ फेफड़ो में प्रविष्ट होती है वह आमाशय में भी पहुंच जाती है। हवा से आमाशय फूल जाता है। यदि ऐसे शिशु को दूध पिलाया गया तो दूध नालव्रण द्वारा फेफड़े में पहुंच सकता है जिससे रोगी की

मृत्यु उसी प्रकार हो सकती है जैसे डूबने से होती है।

ऐसे रोगी शिशु का जन्मते ही आपरेशन किया जाता है अन्यथा फेंफड़े में पिया हुआ दूध या जल पहुँचकर उसके प्राण ले सकता है।

३. ग्रासनली प्रतिवाह–

इसे कार्डियो कैलेजिया या ईसोफेजियल रिफ्लक्स भी कहते हैं। इस रोग मे आमाशय के हृदय भाग के ढीले होने से जो कुछ आमाशय में खाने की क्रिया द्वारा पहुँचता है वह सब वमन द्वारा बाहर लौट आता है। यह वमन तब अधिक होती है जब बच्चे को औंधा करके लिटाया जावे। अशित पदार्थों के बार-बार अन्न प्रणालीय (ग्रासनाली) द्वारा निकलने मे इसमें व्रण होने का बहुत डर रहता है।

४. ग्रासनली संकीर्णता–

ग्रासनली यह अन्नवहस्रोतस् या अन्नप्रणाली (ओईसोफेगस) का आधुनिक नाम है। इसके अन्दर कई प्रकार से संकीर्णता (स्टिनोसिस) आ जाती है। कभी इसका निचला भाग संकीर्ण पाया जाता है कभी इसके विवर में एक काला सा जाल बन जाता है। निचले भाग की संकीर्णता के प्रमुख कारणों में ग्रासनली प्रतिवाह, ग्रासनली का कम लम्बा होना, ग्रासनली में अल्सर बनना, ग्रासनली में आमाशय की वृद्धि (हर्निएशन) होना, ग्रासनली में बार-बार आमाशय के पदार्थ लौट-लौट कर आने से उसकी कला प्रक्षुब्ध हो जाती है और उसमें व्रणी भवन होने लगता है जो बाद में व्रण-वस्तु बना देता है और ग्रासनली छोटी या सकीर्ण हो जाती है। ये संकीर्णताएं तीन प्रकार की होती हैं—

१. वयस्क ग्रासनली संकीर्णता जिसका विचार इस विशेषांक का प्रतिपाद्य विषय नही है।

२. नवजात शिशु की ग्रासनलीय संकीर्णता बच्चा उत्पन्न होते ही इस रोग का पता लगाना पड़ता है। बच्चा जो दूध पीता है उसे वह उगल देता है साथ में उगले दूध में बदबू मिलती है तथा रक्त भी आता है जो ग्रासनली में व्रणन का द्योतक है। बच्चे का भार घट जाता है और उसे कब्ज रहने लगती है।

३. सामान्य शिशु की ग्रासनलीय संकीर्णता वमन में रक्त आना और वमन करते समय दर्द होना। बाद में जब व्रणन ठीक होने लगता है तो रक्त नहीं आता और दर्द भी नहीं होता।

इस रोग के निदान करने के २ उपाय हैं एक है प्रत्यक्ष दर्शन (ओईसोफेगौस्कोपी) और दूसरा है बेरियम आहार को पिलाते हुए क्षकिरण चित्र लेना।

नवजात शिशु में ग्रासनली की संकीर्णता तथा जठर-निर्गमद्वारीय (पाइलोरिक) संकीर्णता में अन्तर करना पड़ता है। क्योंकि दोनों में वमन मिलता है। जठरनिर्गमद्वार में संकीर्णता होने पर बेरियम आहार चित्र में ग्रासनली प्राकृत रूप में पाई जाती है।

इस रोग की चिकित्सा शल्यविद् या सर्जन द्वारा सकीर्ण भाग को काटकर शेष को पुनः जोड़कर की जाती है। जब तक यह न किया जावे रोगी बालक को अच्छी विटामिन युक्त खुराक दें। मां का स्तनपान चालू रखें। आमाशय के अम्ल पदार्थ प्रत्यावहित होकर पुनः ग्रासनली में आकर और व्रणन न कर दें। इसलिए बच्चे को बैठाकर अधिक रखें न कि लिटाकर रखें।

जब ग्रासनली में जाला बनने से आहार के आवागमन में बाधा और वमन हो जिसका दूध पीते बालक में पता नहीं चलता क्योंकि दूध जाले से छन जाता है तब उसे काटकर निकालना या बूजी पास करके तोड़ना पड़ता है।

यह सारी व्यवस्था शल्यवैद्य द्वारा करनी होती है।

५. आंत्र की संकीर्णता एवं अविवरता–

सुधानिधि के हमारे मान्य सम्पादक श्री त्रिवेदी जी ने बताया था —

"जब मैं जामनगर के सुप्रसिद्ध इन्स्टीच्यूट फोर आयुर्वेदिक स्टडी१ एण्ड रिसर्च (जो अब गुजरात आयुर्वेद यूनिवर्सिटी में परिणत हो गया) में प्रोफेसर था तब मुझे पास में सिक्का में दिग्विजय सीमेण्ट कम्पनी में कुछ मित्रों से मिलने जाना पड़ा। वहां हनुमान् जी के मन्दिर पर दर्शन करते समय एक प्रौढ़ व्यक्ति से भेंट हुई। मेरे मित्रों ने कहा कि इनको कोई सन्तान नहीं है क्या इनको सन्तति हो सकती है। उनकी पत्नी को देखा जो रजोनिवृत्ति काल के बिल्कुल निकट थीं। दोनों का एक विशेष कल्प कराया गया और उनकी पत्नी को गर्भ रह गया जो दिनानुदिन वर्धमान होता रहा। जब मैं जामनगर से भोपाल के लिए विदा हुआ तो देखा कि स्टेशन पर एक प्रौढ़ दम्पति स्वेद से लथपथ पैदल ६ मील पार कर अपनी गोद में ८ दिन की नन्हीं बच्ची को लिए हुए मिलने आये। मुझे आयुर्वेदीय कल्प

की सार्थकता पर उस समय बड़ा गर्व हुआ। पर यह गर्व क्षणिक रहा क्योंकि उन्होंने कहा कि 'आपका आशीर्वाद तो फल गया और हमारा बांझपन का दोष मिट गया पर इस कन्या को टट्टी का मार्ग ही नहीं बना है।' वहां उपस्थित एक महिला चिकित्सक से मैंने उसकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था करने को कहते हुए भोपाल के अपने नये दायित्व के लिए मैंने प्रस्थान किया।" यह एक उदाहरण है।

भ्रूणावस्था में पांचवे सप्ताह के भ्रूण में महास्रोत या आंत्रमार्ग पूरा-का पूरा खुला रहता है पर पांचवें से दसवें सप्ताह के बीच आंत्रकला का निर्माण होने लगता है इस काल में आन्त्रविवर ब्लॉक या अवरुद्ध हो जाता है। बाद में पुनः मार्ग का निर्माण होता और १२वें सप्ताह तक रास्ता खुल जाता है। कभी-कभी इस काल में विकास की गति मन्द या अवरुद्ध हो जाती है तो आन्त्र का थोड़ा सा भाग या काफी बड़ा भाग ब्लॉक हो जाता है। पूर्ण अवरोध को अविवरता या आन्त्र का अट्रीशिया कहते हैं तथा अल्पविवरता को संकीर्णता या स्टिनोसिस कहते हैं।

अविवरता अधिकतर शेषान्त्र में मिलती है। कभी-कभी मध्यान्त्र अथवा ग्रहणी में भी मिल जाती है। अल्पविवरता या संकीर्णता पचास प्रतिशत ग्रहणी में मिलती है।

इन सहजविकृतियों के कारण बालकों में कई प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं -

अविवरता या स्थूल संकीर्णता में—

(१) बार-बार वमन जो जन्म के थोड़ी ही देर बाद शुरू होने लगती है। वमन में ६६ प्रतिशत बालकों में मल-पित्त (बाइल) निकलता है।

(२) कब्ज, पेट फूला हुआ मिलता है।

अल्पांशो संकीर्णता में -

(१) पित्त वमन जन्म के १ सप्ताह बाद आरम्भ होती है।

(२) कब्ज उतनी नहीं।

रोग का परिज्ञान करने के लिए नवजात शिशु के मल का अण्वीक्ष परीक्षण करना होता है यदि उनमें कार्नीफाइड कोशिका न मिलें तो अविवरता की पुष्टि होती है। प्लेन ऐक्सरे का चित्र भी अविवरता को स्पष्ट कर देता है क्योंकि ऊपरी भाग गैस से फूला हुआ और निचला भाग पिचका हुआ रहता है।

अविवरता असाध्य रोग है बच्चा एक सप्ताह में मर लेता है। आंत्रसंकीर्णता में कुछ महीने लग सकते हैं कभी-कभी संकीर्णता के रोगी पूरा जीवन भी जी लेते है।

इसकी सारी चिकित्सा शल्यात्मक (सर्जीकल) है।

६. मेकल्स अपवर्ध -

भ्रूणावस्था में कभी-कभी शेषान्त्रउण्डुक वाल्व से १॥ से ३ फीट ऊपर पीतक-आन्त्र वाहिनी (वाइटेलो इंटेस्टीनल डक्ट) का अवशिष्ट भाग शेषान्त्र के खुले भाग को नाभि से जोड़कर मेकल अपवर्ध (मेकल्स डाइवर्टिक्युलम) को उत्पन्न कर देता है जिससे नाभि से रक्तस्राव होना, पेट में दर्द होना, आन्त्रान्त्रप्रवेश या आन्त्रावरोध का खतरा पैदा होना या मल का इस नालव्रण से निकलना आदि खतर-नाक लक्षण मिल सकते हैं। यह सभी विशेषज्ञों द्वारा चिकित्स्य अवस्थाएं या विचार हैं।

७. मूलपीठ के सहज विकार

कभी-कभी मूलपीठ या मूलाधार (पैरिनियम) के निर्माण में काफी गडबड़ी देखी जाती है। गुद का ठीक निर्माण न होना, अतिसूक्ष्म गुद का बनना, गुद की अस्था-नता, आच्छादित गुद आदि।

गुद का अभाव जैसा कि ऊपर सिक्का वाले रोगी में बताया, मिल सकता है। उदर का फूलना, निरन्तर वमन होना और पूर्ण विबन्ध ये ३ लक्षण उसमें मिलते हैं। कभी-कभी मलाशय और मूत्रमार्ग के मध्य नालव्रण बन जाता है जिससे मल मूत्र मार्ग से निकल कर वहां रोग पैदा कर देता है। सूक्ष्मगुद को लैन्स से देखना पड़ता है बच्चा टट्टी नहीं कर पाता और चीखता है। कभी-कभी गुद की अस्थानता देखी जाती है। गुद लड़कियों की योनि में फूटती है। इसमें आपरेशन द्वारा पृथक् मार्ग बनाना पड़ता है। लड़कों में गुद मूत्रमार्ग में खुलती हुई देखी जाती है। आच्छादित गुद में जो साइनस बनता है उसे काट दिया जाता है। ये सभी विकृतियां सामान्य चिकित्सकों का विषय नहीं है।

८. जठरनिर्गम क्षेत्रीय संकीर्णता

इसे पाइलोरिक स्टिनोसिस कहते हैं। इसमें जठर-निर्गम क्षेत्र या मुद्रिका द्वार की पेशियों की अतिवृद्धि हो

जाती है। यह रोग किसी माता की पहली सन्तान में ८०% बालकों तथा २०% बालिकाओं में होता हुआ देखा जाता है। बच्चे के जन्म के बाद दूसरे चौथे सप्ताह में यह देखा जाता है वैसे १।। से २ माह के बालकों में इस रोग के लक्षण प्राय: देखे जाते है।

जठरनिर्गम क्षेत्रीय संकीर्णता क्यों होती है उसका कारण अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। इस रोग में मुद्रिका द्वार की उपकला स्वस्थ रहती है। वर्तुलपेशी सूत्रों में जितनी अतिवृद्धि होती है उतने लम्बे सूत्रों में नहीं होती। पौन इंच का पूरा क्षेत्र मोटा-मोटा और कड़ा हो जाता है उसमें रक्त की मात्रा भी कम रह जाती है क्योंकि उसमें प्रतिक्षण संकोच होता रहता है। इस संकीर्णता के कारण आमाशय का विस्फार हो जाता है और उसमें आमाशय शोथ या गैस्ट्राइटिस के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते है।

यह रोग उत्पन्न होते समय बालक के पेट पर हाथ फिराने से जठरनिर्गम क्षेत्र की संकीर्णता एक अर्बुद जैसे गोल मटोल लम्प (पिण्ड) के रूप में अंगुली द्वारा स्पर्श लभ्य होती है। देर तक अंगुली उस पिण्ड पर रखी जावे तो उसके संकोचन और प्रसारण की गतियों का भी अनुभव किया जा सकता है।

इस रोग के पांच लक्षण मिलते हैं;

१. उदर पर स्पर्शलभ्य पिण्ड की उपस्थिति।

२. पिण्ड में संकोच विकास या उद्वेष्टन होना।

३. वमन होना।

४. कब्ज होना तथा मिलना।

५. बालक के स्वास्थ्य का गिरते जाना। उसमें रस-क्षय या डिहाइड्रेशन के लक्षण मिलना तथा शरीर भार का घटते जाना।

यह रोग जितनी अधिक आयु के बालक को होता है उतना ही अच्छा रहता है।

इस रोग की चिकित्सा में लक्षणोपशम कब्ज का न होने देना, बालक का शरीर भार स्थिर रखना, बालक को औपसर्गिक रोगों से बचाये रखना चिकित्सक का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। पाइलोरोस्पाज्म मुद्रिकाद्वारीय आक्षेप का भी ध्यान रखना चाहिए।

एक काय चिकित्सक को आमाशय प्रक्षालन, स्तनपान न करने वाला बालक हो उसे गाढ़ा आहार और पर्याप्त मात्रा में तरल पदार्थ देना चाहिए।

औषधियों में वमन दूर करने वाली और आक्षेपहर देनी चाहिए।

जब कायचिकित्सक द्वारा बालक की दशा में सुधार न होकर यदि बालक की दशा गिरती जाय तो उसे शल्य-चिकित्सक को सौंप देना और आपरेशन द्वारा रोग से मुक्ति दिलानी चाहिए।

९. सहज महाबृहदन्त्र

इसे अंगरेजी में कंजैनिटल मैगाकोलन या 'हिर्शस्प्रंग व्याधि' कहा जाता है। यह रोग आंतों में पेशी-तन्त्रिका दोष (न्यूरो-मस्क्युलर डिफैक्ट) के कारण उत्पन्न होता है। इस रोग के लक्षण शिशु के उत्पन्न होते ही चालू हो जाते है। बालकों में यह रोग बालिकाओं की अपेक्षा सात गुना अधिक पाया जाता है। इसमें बालक को अत्यधिक आध्मान (पेट का फूलना) और सख्त कब्ज की शिकायत रहती है उसकी बड़ी आंत गुब्बारे की तरह फूल जाती है तथा उसका विकास रुक जाता है।

इस रोग में गुदनलिका का भाग तो संकीर्ण और प्राकृत रहता है किन्तु उससे ऊपर का अवरोही कोलन तथा अवग्रह कोलन के भाग की मांसपेशियों में अतिवृद्धि या हाइपरट्राफी हो जाती है। ये दोनों कोलन बहुत फैल जाते हैं। उनकी श्लेष्मलकला में व्रणन तक हो जाता है।

इस रोग के होने पर निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं:—

१. वमन—जन्म के पश्चात् बच्चे के पेट में पहली बार दूध जाते ही वह उसे उलट देता है। वमन में बाइल पाया जाता है।

२. उदर तरंग दृश्यमान—बच्चे के पेट पर आंत की तरंग स्पष्ट देखी जाती हैं।

३. आध्मान—पेट फूल जाता है।

४. कब्ज या विबन्ध रहता है।

यदि गुदमार्ग का अवलोकन किया जावे या उसमें कोई एनीमा ट्यूब पास की जावे तो एकदम वायु तथा मल निकल पड़ते हैं। गुद कड़ी ऐंठी हुई सी स्पर्श से मालूम पड़ती है।

कुछ काल तक ये सभी लक्षण चलते रहते हैं जिससे शिशु का स्वास्थ्य गिर जाता है।

ज्यों-ज्यों शिशु बालरूप धारण करता है, या तो रोग अपनी उग्रता यथावत् कायम रखता है या कुछ सौम्य हो जाता है। जब आंतों में कोई अवरोधात्मक स्थिति बनती है तभी पेट फूलता और उलटियां आती हैं अन्यथा कब्ज ही मुख्य लक्षण रहता है। मल या तो कड़ी गोलियों के रूप में रहता है या पतला रिबन जैसा निकलता है।

इस रोग के निदान में बेरियम आहार का प्रयोग बहुत लाभ करता है। इसमें रैक्टम या मलाशय का ऊपरी भाग डोरे सा पतला होता हुआ देखा जा सकता है। कोलन फूला और फैला हुआ तथा गैस से भरा हुआ निहारा जा सकता है। बेरियम आहार २ से १५ दिन तक आंतों में रहता हुआ देखा जा सकता है और आंतें पूरी तरह रिक्त कभी नहीं हो पातीं।

यदि रोग का उपचार ठीक से न किया गया तो लगभग ५० प्रतिशत रोगी बालक अपनी आयु का तीसरा वर्ष पार करते-करते काल कवलित हो जाते हैं। मृत्यु के कारणों में विसूचिका, अलसक, विलम्बिका, औपसर्गिक रोग जैसे ब्रोंक्रो न्यूमोनिया, छिद्रोदर और व्रणोदर आते हैं।

हिर्शु स्प्रंग व्याधि की चिकित्सा का मूलसूत्र है पेट को मल से रहित रखना इसके लिए बच्चे की गुदा में अंगुली डालकर या अनुवासन (स्नेह) वस्ति देने का रिवाज है। इससे मल और गैस दोनों के निकल जाने से बच्चे का आध्मान दूर होकर उसे बहुत आराम मिलता है। जो लोग दस्तावर दवा देकर कोलन खाली करना चाहते हैं वे अधिक सफल नहीं होवे।

इन बच्चों को अधिक कैलोरी वाला भोजन तो कराना चाहिए पर वह ऐसा होना चाहिए जिसमें मलांश कम बने।

इस रोग का स्थायी उपचार आपरेशन होता है जिसमें गुद वलियों को छोड़ शेष संकीर्ण भाग काटकर निकाल दिया जाता है।

१०. नाभिकीय हर्निया

कभी-कभी प्राकृत बालकों या शिशुओं में नाभि के ऊपर उदर के अंगों का दाब पड़कर हर्निया बन जाता है। इसे अम्ब्लाइकल हर्निया या नाभिस्थ हर्निया कहा जाता है। यह रोग १ से २ इंच व्यास के अन्दर देखा जाता है। हर्निया को दबाने से वह गुड़गुड़ की आवाज के साथ अन्दर चला जाता है। अंगुली के स्पर्श से यह भी ज्ञान हो जाता है कि नाभि के पास दोनों उदर दण्डिका पेशियों के मध्य में खुला स्थान है। जिसमें होकर ये अंग हर्निया बनाते हैं। इस खुले स्थान के चारों ओर एक सुदृढ़ वलय होता है जिसका निर्माण उदरदण्डिकाओं के कंचुक और अनुप्रस्थिका प्रावरणी द्वारा होता है। थायराइड की कमी वाले क्रैटिनों में यह रोग प्रायः देखा जाता है। क्रैटिनों में यह रोग थायराइड सत्व के प्रयोग से ठीक भी हो जाता है।

नाभिकीय हर्निया का इलाज आपरेशन है पर वह ३ वर्ष की आयु से पूर्व किसी बालक में नहीं किया जाना चाहिए।

यदि हर्निया बड़ा न हो तो चिपकाने वाली पट्टियां बांधकर वलय के किनारे एक दूसरे से सटाने का यत्न करना भी अच्छा रहता है। जो गेंद या गोली रखकर पेट पर पट्टी बांधते हैं उससे वलय के किनारे सदा अलग-अलग रहते हैं और हर्निया कभी ठीक नहीं होता।

११. सहज हृद्रोग

अंगरेजी में इसे कंजैनिटल हार्ट डिजीज कहते हैं। इस रोग के कई वर्ग हो सकते हैं:—

१. श्यावतायुक्त वर्ग के हृद्रोग।

२. अश्याववर्ग के हृद्रोग।

वे हृद्रोग जिनमें श्यावता (सायनोसिस) मिलती है

उसके निम्नांकित टाइप देखने में आते हैं :—

१. वाम से दक्षिण भाग की ओर रक्त जाने के कारण उत्पन्न हृद्रोग।

२. दक्षिण से वाम भाग की ओर रक्त जाने के कारण उत्पन्न हृद्रोग।

हृदय के वाम और दक्षिण भाग जो विल्कुल अलग-अलग होते हैं जव किसी सहज त्रुटि के कारण मिल जाते हैं तो वालक का वर्णश्याव पड़ जाता है और उसे सहज हृद्रोग मिल जाता है।

श्यावतायुक्त सहज हृद्रोगी वच्चों का श्वास तेज चलता है और थोड़ी हलचल से श्वासगति वढ़ जाती है। श्यावता का कारण रिड्यूस हीमोग्लोविन की मात्रा पर निर्भर करता है। हृदय के दोनों भागों में शंट या पार्श्व-पथ की उपस्थिति पर रोग निर्भर करता है।

हृद्विकार से ग्रसित वच्चे अपनी नवजातावस्था में ही काल कवलित हो जाते हैं। इसका निदान और चिकित्सा किसी विशेषज्ञ द्वारा करानी आवश्यक है।

अश्यावतावर्गीय हृदय के वालरोगों में वाम-दक्षिण हृद्भागों में कोई पार्श्वपथ या शंट का होना नहीं पाया जाता। इस वर्ग के रोग निम्नांकित हो सकते हैं :—

१. दक्षिण हृदयता--हृदय छाती में दाहिनी ओर होना।

२. महाधमनी का संपीडन।

३. हृत्कपाटों के विकार।

४. हृत्पटी के विकार।

इनके विषय में उचित विचार (निदान और चिकित्सा) हृद्रोग विशेषज्ञ द्वारा ही कराना चाहिए।

इस प्रकार शिशु शरीर की गर्भावस्था की विकृतियों के कारण नवजात शिशु में या आगे चलकर वाल्यावस्था में विविध सहज रोग हो सकते हैं उनमें कुछ की झलक ऊपर दी जा रही है। विशेष ज्ञान के लिए एतद्विषयक वाल-रोग चिकित्सा के वड़े ग्रन्थों का अवलोकन करना होगा

वालकों का चिकित्सा विधान

त्रिविधः कथितो वालः क्षीरान्नोभयवर्त्तकः। स्वास्थ्यंताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोग सम्भवः॥

वच्चे तीन प्रकार के होते हैं १. दुग्धपायी, २. दूध और अन्न दोनों का सेवन करने वाले तथा ३. केवल अन्न पर निर्भर रहने वाले। यदि दूध और अन्न दोषरहित होगा तो वालक भी स्वस्थ रहते हैं यदि ये दोनों दोषयुक्त होंगे तो वालक रोगी होंगे।

क्षीरपस्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्य चोभयोः। अन्नेन वा शिशौ देयं भेषजं भिषजा सदा॥

केवल दूध पीने वाला वच्चा यदि रोगी हो तो धाय जो अपना दूध पिलाकर वच्चे का पोषण करती है या माता को औषधि सेवन करावे, और यदि वच्चा दूध और अन्न दोनों का सेवन करता है तो धाय या मां और वच्चा दोनों को ही औषध देनी चाहिए। यदि केवल अन्न पर वालक निर्भर है तो उसे ही औषधि सेवन करानी चाहिये।

मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नेष्टं विशोषणम्। सर्वं निवार्यते वाले स्तन्यन्तु न निवार्यते॥

यदि आवश्यक हो तो धाय या माता को लंघन कराया जा सकता है परन्तु वच्चे को लंघन नहीं कराना चाहिये। विशेषतः रोगी वच्चे को सब कुछ निषेध किया जा सकता है परन्तु माता के दूध का निषेध नहीं करना चाहिये।

सुधानिधि

*

शिशु संपोषण खण्ड

*

इस खण्ड में

*

इस खण्ड में ४ लेखों का समावेश किया गया है।

शिशु आहार

लेखक–कवि. श्रीनिवास व्यास साहित्याचार्य, वी. आई. एम. एस. देवनगर,
नई दिल्ली–५

लेखक श्री व्यासजी सुधानिधि की आरम्भ से ही कुछ न कुछ भेट करते रहे हैं जिसे हमारे सन्मान्य पाठकवर्ग ने बड़े मनोयोग से ग्रहण किया है। आप सुयोग्य लेखक और परम साहित्यिक हैं। चिकित्सा और अध्ययन में तल्लीन समयाभाव के शिकार चाहते तो इधर उधर से मधुसंचय कर विशेषांक कलेवर की वृद्धि करते पर उन्होंने सदा एक प्रशस्त पथ का अनुसरण कर यह सिद्ध किया है कि इस युग में जब युवापीढ़ी अधीर होकर येन केन प्रकारेण अपना दायित्व निभाने में संलग्न है तब आप अपना एक प्रौढ़ पण्डित के अनुज और विद्यावरेण्य पिता श्री के पद चिन्हों पर सफलतया अपने गुरुपादों से प्रचलन कर रहे हैं।

–रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

भगवान् कश्यप के अनुसार मनुष्य से लेकर पर्वत और वनस्पति तक सभी को भूमिसार कहा जाता है। यद्यपि सभी पंच महाभूतगुणोत्पन्न है फिर भी पृथ्वी का बड़ा महत्व है। माता, गो, अजा आदि का दूध इसी धरती माता से उत्पन्न तृण सस्यादि के सेवन से बनता है इस कारण वह बुद्धिरूप माना जाता है। जिस प्रकार देव दैत्यों के सम्मलित प्रयास से सर्वौषधीसार रूप अमृत की प्राप्ति हुई इसी प्रकार गौ आदि की कुक्षियों के अन्दर सर्वौषधीसार रूप अमृतोपम दूध पैदा होता है। यह दूध जरायुज प्राणियों का जीवन है। जरायुजाना भूतानां विशेषेण तु जीवनम्। जरायुज का लक्षण–तत्र पशु-मनुष्यव्यालादयो जरायुजाः सुश्रुत ने दिया है। अस्तु इन सभी के लिए यह जीवन है। कश्यप ने जितने स्पष्ट और विस्तार से दूध के गुण लिखे हैं उतने अन्यत्र सुलभ नहीं हैः—

क्षीरं सात्म्यं हि बालानां क्षीरं जीवनमुच्यते ।
क्षीरं पुष्टिकरं वृद्धिकरं बलविवर्धनम् ॥

बालकों के लिए क्षीर (दूध) सर्वथा सात्म्य है। उनके लिए वह जीवन है बालकों की पुष्टि या उपचय और वृद्धि (Growth) और बल की प्राप्ति क्षीर से ही प्राप्त होती है जो बालक अत्यन्त क्षीण हो जायं और उनका शरीर कृश हो जाय उनके लिए भी क्षीर ही परमौषध माना जाता है। क्षीणानां च कृशनां च क्षीरं परममुच्यते। इस सबसे क्षीर के प्रति प्राचीन आचार्यों की दृष्टि की यथार्थता और व्यापकता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

दूध भी विविध प्राणियों के प्रयोग मे आते हैं। इन में माता का दूध सर्वश्रेष्ठ माना जाता है:—

No one will doubt that the most suitabel food on whieh an infant can be reared is the one designed by nature, namely breast milk...... विलिफ्रड शेल्डन।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने भी मानुष पय के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है:—

जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः ।
नावनं रक्तपित्तञ्च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम् ॥

इनमें पहली पंक्ति में मातृदुग्ध की जीवनीयता, ऐनाबोलिक शक्ति, ऐसिमिलेटिव पावर और शरीर को स्निग्ध रखने की विशेषता स्पष्ट हो जाती है।

माता का दूध भी ठीक है या नही इसका भी वैद्य को ध्यान करना चाहिए। कश्यप ने ग्रह दोषो से भी दूषित होने का संकेत दिया और कुपित दोषों के द्वारा भी दूध के दूषित होने को स्वीकार किया है।........पूतना स्वादुकटुके शेषाः संसृष्टदोषजाः।-सूत्रस्थान-अर्थात् पूतना ग्रहजुष्ट दूध मधुर और कटु रस वाला होगा तथा अन्य (ऊपर कहे हुए ग्रहो से दुष्ट हुए दूध के लक्षणों को छोड़ कर) लक्षण युक्त दूषित दुग्ध दोषों के सम्मिलित प्रभाव से होता है। मधुर दुग्ध मलमूत्र खूब लाता है। कषाय रस प्रधान दुग्ध मलमूत्र को कम करता है। कश्यप ने माता के दूध या धात्री दुग्ध को तैलवर्ण, घृतवर्ण, धूम्रवर्ण, एवं शुद्ध कई प्रकार का बतलाया है तथा शुद्ध दुग्ध को सर्वगुणोत्पादक मान कर धात्री को सदैव अपना दूध शुद्ध रखने पर जोर दिया है—

तस्मात् संशोधनपरा नित्यं धात्री प्रशस्यते।

धात्री दुग्ध जिन उपायों से शुद्ध किया जा सकता है वे हैं:—

i. कषाय पान-पाठा, शुण्ठी, देवदारु, मोथा, इन्द्रजौ, सारिवा, नील, कुटकी, चिरायता, त्रिफला, वचा, गुडूची, मुलहठी, मुनक्का, दशमूल के द्रव्य इनमें जो मिलें उनके कषाय।

ii. वमन

iii. विरेचन

iv. पथ्य भोजन

v. वाजीकरण द्रव्य सिद्ध स्नेहों का उपयोग

क्षीर शोधन पर यह सूत्र भी उत्तम और व्यावहारिक है:—

धातकीपुष्पमेलाच समङ्गा मरिचानि च ।
जम्बूत्वचं समधुकं क्षीर शोधनमुत्तमम् ॥

धाय के फूल, इलाइची छोटी, मजीठ, कालीमिर्च, जामुन की छाल और मुलहठी इनका चूर्ण या क्वाथ अच्छा दुग्ध शोधक कहा जाता है।

गाय बकरी का दूध, मांसरस, मद्य, घृत, तैल, वस्ति प्रयोग, मसूर, मूंग, शालि, कुलथी, कृत्रिम लवण ये सभी समयानुसार और मात्रानुसार सेवन करने से दुग्ध को शुद्ध करते हैं। भारी देर में पचने वाले स्निग्ध पदार्थ या मांस तथा दिन में सोना ये माता या धात्री को वर्जित माने जाते हैं ताकि उसका दूध बराबर शुद्ध बना रहे।

शुद्ध क्षीर के लक्षणों के दिग्दर्शन में भी कश्यप का कोई जोड़ नही है। वह कहते हैं कि वही दूध शुद्ध माना जाता है जिसके सेवन से—

i. निर्बाध गति से बालक का बल बढ़ता है,

ii. निर्बाध गति से बालक के अङ्ग प्रत्यङ्गों की वृद्धि होती है,

iii. निर्बाधगति से बालक की आयु का विस्तार होता रहता है,

iv. बालक नीरोग रहता और सुख का अनुभव करता

है, तथा

v. शिशु तथा धात्री दोनों में से किसी को कष्ट न हो:—

अव्याहतबलाङ्गायुररोगो वर्धते सुखम् ।
शिशुधात्र्योरनापत्तिः शुद्धक्षीरस्य लक्षणम् ॥
—क्षीरोत्पत्त्यध्यायः

कश्यप के अनुसार अशुद्ध क्षीर से उत्पन्न रोगों की शान्ति शुद्ध क्षीर सेवन से होती है।

संभवन्ति महारोगाः अशुद्धक्षीर सेवनात् ।
तेषामेवोपशान्तिस्तु शुद्धक्षीरनिषेवणात् ॥

किन्तु केवल मात्र शुद्ध क्षीर सेवन से ही अशुद्धक्षीरोत्थरोगों का विनाश हो सकता है इसे आजकल के विद्वान् पूरी तरह स्वीकार नहीं करते। वे तो उनकी पृथक् और विस्तृत चिकित्सा पर जोर देते हैं। पर अशुद्धक्षीर-जन्य महा रोगों की चिकित्सा करते समय जो बात उन्हें सतत याद रखनी होगी वह कश्यप का उपर्युक्त वाक्य ही है क्योंकि यदि चिकित्सा चलती रही और अशुद्ध धात्री दुग्ध भी दिया जाता रहा तो रोग निर्मूल कदापि न हो सकेगा।

धात्री या माता के दूध की मात्रा भी पर्याप्त होनी चाहिए। यदि दूध सूखता जाता है तब भी बड़ी समस्या शिशु पोषण की सामने आ सकती है इसलिए:—

शोधनाद्वा स्वाभावाद्वा यस्याः क्षीरं विशुष्यति ।
तस्याः क्षीरप्रजनने प्रयतेत विचक्षणः ॥

शोधन के कारण या स्वाभाविक रूप से भी जिस स्त्री का दूध उसके आंचलों में सूखने लगे उसके दूध को बराबर उत्पादित रखने के लिए योग्य चिकित्सक को सतत प्रयत्न करते रहना होगा।

माता के दूध को बढ़ाने के लिए मधुर रस युक्त पदार्थों का सेवन, द्रव पदार्थों का सेवन, नमकीन वस्तुएं, मद्य, सुअर और भैंसे के मांसों का रस, लहसुन, प्याज का प्रयोग और खूब सोना या आराम करना, क्रोध, मार्ग चलना, भय, शोक, और परिश्रम का परिवर्जन आवश्यक कहा गया है। शालि, साठी, दाम, कुश, कांस, गुन्द्रा, इत्कटर, सारिवा, खस और ईख की जड़ों के क्वाथों का सेवन उचित माना गया है। सुश्रुत ने क्षीर वृद्धि के लिए स्त्री के मन का प्रसन्न रखना भी अन्य साधनों के साथ आवश्यक माना है

अथास्याः क्षीरजननार्थं सौमनस्यमुत्पाद्य यवगोधूम शालिषष्टिकमांसरस सुरासौवीरकपिण्याकलशुनमत्स्य-कसेरुकश्रृङ्गाटकबिसविदारीकन्द मधुकशतावरीनलिका-लाबूकालशाकप्रभृतीनि विदध्यात्।—सु. सं. शा. अ.१०।

इसलिए दूध पिलाने वाली स्त्री को सदा प्रसन्न रखना चाहिए उसके मन पर आघात न हो, उसे चिन्ता और क्लेश न हो इसका ध्यान रखना होगा। क्रोध, शोक, अवात्सल्य के कारण भी स्त्रियों का दुग्ध सूख जाता है।

जब मां का दूध उपलब्ध न हो और धात्री की व्यवस्था करना सम्भव न हो तब जो दूध श्रेष्ठतम माना जाता है वह गाय का दूध ही है:—

तृणगुल्मौषधीनां च अग्राग्रं पय एवं हि ॥
खदन्ति मधुरप्रायं लवणं च विशेषतः ।
तत्सारगुणवैशेष्याद्गवां क्षीरं प्रशस्यते ॥
—काश्यपसंहिता।

यह उद्धरण गायों के खाद्य पदार्थ की ओर भी इङ्गित करता है। आजकल सब्जी मण्डियों के सड़े गले कचरे को खाकर पलने वाली गायों का दुग्ध माता के दूध की समता नहीं कर सकता है। उन्हें तो औषधाग्रों का वनस्पतियों का भक्षण कराने से ही उनसे खूब दूध निकलता है और ऐसा गो दुग्ध ही रसायन है.—

औषधाग्राति भक्षत्वाद्विरेचयति[1] तत् पयः ।
एतस्मात्कारणादुक्तं गवाक्षीरं रसायनम् ॥

स्वयं मदनपाल ने गोक्षीर को मधुर, शीत, गुरु, स्निग्ध, रसायन, बृंहण, स्तन्यवर्द्धक, वर्ण्य और जीवन माना है। वातपित्त और रक्तदोष नाशक भी इसे कहा गया है। आहार विशेष के सेवन से गोदुग्ध में अन्तर आता है इसे भावमिश्र भी स्वीकार करते हैं:—

[1] काश्यपसंहिता के हिन्दी टीकाकार श्रीसत्यपाल भिषगाचार्य वर्य ने विरेचयति का अर्थ विरेचन कराता है, लिखा है जो ठीक नहीं है जो अर्थ ऊपर श्रीनिवास जी ने किया है वह युक्ति-युक्त है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

स्वल्पान्नभक्षणाज्जातं क्षीरं गुरुकफप्रदम् ।
तत्तु बल्यं परं वृष्यं स्वस्थानां गुणदायकम् ॥
पलालतृणकार्पासबीजजातं गुणावहम् ॥

माता के दुग्ध और गाय के दूध में घटकों की क्या स्थिति है इस पर होल्ट की यह किंचित् परिवर्तित तालिका हृदयग्राही है जो विविध घटकों की प्रतिशत मात्रा का निरूपण इस प्रकार करती है:—

	प्रोटीन	वसा	दुग्धशर्करा	राख	जल	टोटल
गाय का दूध	३.५	३.५	४.७५	०.७५	८७.५०	१००
मां का दूध	१.२५	३.५	७.५	०.२	८७.५५	१००

प्रोटीनें गाय के दूध में अधिक होने पर भी मां के दूध में लैक्टैल्ब्युमिनों का अनुपात केसिनोजन की अपेक्षा दुगुना रहता है जबकि गाय के दूध में कोसिनोजनें लैक्टैल्ब्युमिनों से ३ से ५ गुनी तक रहती हैं। केसिनोजन बहुल गोदुग्ध आमाशय में बड़ा और कष्टपाच्य किलाट का रूप ले लेता है जिसे शिशु हजम उतनी आसानी से नहीं कर पाता जितनी आसानी से वह लैक्टैल्ब्युमिन बहुल मां के दूध को कर लेता है जो सर्वथा सुपाच्य होता है। मां के दूध में वसा भी सुपाच्य रूप ग्रहण करती है। मां का दूध अमृत मय होता है वह एक प्रकार का शर्बत ही है, इतना मधुर कि उसकी समता कोई अन्य प्राणिज दूध कर ही नहीं सकता। मां के दूध में कैल्शियम, सोडियम और पोटाशियम पर्याप्त होती है और वह सभी विटामिनों से भरपूर होता है। उसमें लोहे की कमी होती है जिसे पूर्ण करने के लिए लोह भस्म या मण्डूर भस्म का स्वल्प मात्रा में सेवन कराना आवश्यक होता है।

गाय के दूध को रोगाणु रहित करने के लिए औटाना या पाश्चुराइज्ड (१५०° फैरनहाइट तक आधा घण्टे तक गर्म करके फिर शीघ्र ५५° फ० तक ठण्डा कर बोतलों में भरना) करना आवश्यक होता है। अच्छी तरह उबला हुआ दूध भी जीवाणु रहित होता है।

जिस बोतल में भर कर बच्चे को गोदुग्ध दिया जावे उसे उसकी रबर के टीट को अच्छी तरह उबालकर प्रयोग करना चाहिए। जब तक बोतल की आवश्यकता न हो उसे उबालने के पश्चात् उबले पानी के बर्तन में ढंक कर रखना चाहिए। टीट का छेद न बड़ा हो जिससे अधिक दूध निकले न इतना संकीर्ण हो कि दूध ही न निकल सके। दूध पिलाते समय मां का कर्तव्य है कि वह बच्चे को गोद में उठा कर अधबैठी स्थिति में करके दूध पिलावे ताकि वह पेट में ही रहे बाहर मुंह से न निकल आवे जैसा खाट पर लेटकर दूध पीने वाले बच्चे का दूध प्रायः पलट आता है।

जैसा कि ऊपर की वाक्यावलि से प्रकट है गाय के दूध की प्रोटीनें और वसा सुपाच्य नहीं होतीं और बच्चे को अजीर्ण हो जाता है उसे दूर करने के लिए गाय के दूध में शुद्ध उबला हुआ पानी मिलाकर देना उचित माना गया है। कम से कम ६ महीने की आयु तक बच्चे को उबला पानी मिला दूध थोड़ी मिश्री या चीनी या दुग्ध शर्करा डाल कर देना ही चाहिए। पानी कितना मिलाया जाय और उससे प्रोटीन, वसा एवं दुग्धशर्करा की मात्रा कितनी हो जानी चाहिए इसे नीचे की तालिका व्यक्त करती है:—

आयु	अनुपात गोदुग्ध जल	प्रोटीन (प्रतिशत)	वसा (प्रतिशत)	दुग्धशर्करा (प्रतिशत)
०–२ सप्ताह	१ : १	१.७५	१.७५	२.४
२ स. से १६ स.	२ : १	२.३	२.३	३.२
४ से ६ मास	३ : १	२.६	२.६	३.५
६ से ६ मास	केवल गोदुग्ध	३.५	३.५	४.७५

दूध में चीनी या मिश्री मिलाना काफी होता है। दुग्ध शर्करा मिलाने की विशेष आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग ग्लूकोज मिलाते हैं जो उचित नहीं क्योंकि यह बच्चों के पेट में गैस पैदा करने लगता है। जब चीनी या मिश्री का पाचन नहीं होता तब बच्चे को हरे झागदार पतले दस्त होने लगते हैं। इस स्थिति में दूध में चीनी ग्लूकोज या शकर न डाले। उसके स्थान पर कुछ बालरोग विशेषज्ञ डैक्स्ट्रीमाल्टोज प्रयोग करने का सत्परामर्श देते हैं।

आयुर्वेदज्ञों के मत में गाय का दूध भी काली गाय का लेना श्रेष्ठतम है। सफेद रङ्ग की गाय का दूध श्लेष्मल होने से देर में पचता है। हाल की ब्याही गाय का दूध या जिस गाय का बच्चा मर चुका है उसका दूध त्रिदोष कारक कहा गया है। खल बिनौले जिस गाय को दिये जाते हैं उसका दूध भी भारी माना गया है—

वरं कृष्णागवां क्षीरं श्वेतानां श्लेष्मलं गुरु।
बालवत्सविवत्सानां गवांक्षीरं त्रिदोषकृत् ॥
पिण्याकाद्यशनाज्जातं क्षीरं गुरुकफावहम्[१]।

—मदनपाल निघण्टु

भावमिश्र ने कृष्णा गो के दूध का और सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है:—

कृष्णाया गोर्भवं दुग्धं वातहारि गुणाधिकम्।

'पीली गाय का—पीताया हरते पित्तं तथा वातहरं भवेत्॥ सफेद और लाल तथा चितकबरी गायों के बारे में लिखा है:—

श्लेष्म गुरु शुक्लायाः रक्ताचित्राति वातहृत्।

देश भेद से भी गोक्षीर के गुरु, गुरुतर होने का ध्यान दिया गया है:—

जाङ्गलानूपशैलेषु चरन्तीनां यथोत्तरम्।
पयो गुरुतरं स्नेहं यथाहारं प्रवर्तते॥

जांगल देशीय गायों का दूध गुरु, आनूप और पर्वतीय गायों का गुरुतर (अधिक भारी) होता है यह भिन्नता उनके उस-उस देश में खादित आहार के परिणामस्वरूप होती है।

भैंस के दूध को भगवान कश्यप ने गाय के दूध की अपेक्षा अल्प गुण वाला, स्निग्ध और दुर्जर बतलाया है—उसके कारण भी बड़े ही सुन्दर ढंग से दिये है।

क्रिमिकीटपतङ्गैश्च सर्वैरपि तृणाश्रितैः।
सह नानातृणं हीनं महिष्यो भक्षयन्ति हि॥
अवगाहन्ति तोयानि गर्भाणि च विशेषतः।
एतस्मात्कारणात् तासां क्षीरं कषायशीतलम्॥
शीतत्वाद् दुर्जरं स्निग्ध गुरु दाहनिबर्हणम्।
गवां क्षीरात् चाल्पगुणं महिषीणां पयो मतम्॥

—काश्यपसंहिता

अर्थात् क्योंकि भैंसें कृमि कीट पतङ्ग और सर्पों के द्वारा दूषित घास खाती हैं गहरे पानी में बैठी रहती हैं इस कारण उनका दूध कषैला और शीतवीर्य होता है। शीतल होने से दुर्जर (देर में पचने वाला) हो जाता है। इसमें वसा अधिक होती है इससे यह भारी होता है दाह शामक होता है। गाय के दूध की तुलना में भैंसों का दूध हीन गुणवाला होता है।

बकरी के दूध की प्रशंसा महात्मा गान्धीजी ने बहुत की है वे स्वयं उसका ही सेवन करते थे। काश्यप ने भी उसके सम्बन्ध में विशेष रूप से लिखा है—

अजानां अल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिबर्हणात्।
अल्पत्वाच्च बलित्वाच्च लघु दोषहरं पयः॥
अल्पत्वात्तद्घनं क्षीरं घनत्वादपि बृंहणम्।
शीतं संग्राहि मधुरं बल्यं वातानुलोमनम्॥

अर्थात् बकरी की छोटी काय होने और उसके द्वारा कटु तिक्त रस वाली वनस्पतियों के भक्षण करने से अल्प और बलिष्ठता युक्त दूध मिलता है जो हल्का और त्रिदोषशामक होता है। अल्प होने से घन और घन (गाढ़ा) होने से बृंहण होता है। वह शीतल ग्राही, मधुर, बल्य और वात का अनुलोमन करने वाला होने से बच्चों को दिया जा सकता है।

गधी और अश्वी का दूध रुक्ष माना जाता है जो वात और शोथ में उपयुक्त माना गया है। ऊंटनी का दूध भी हल्का होता है उसे जलोदरी में पथ्य रूप से प्रयुक्त किया जाता है। हथिनी का दूध भारी होने से बालकों के लिए उपयुक्त नहीं माना गया। इनके घटकों के सम्बन्ध में डॉ० राल्फ निकोल्स प्रदत्त निम्नांकित किंचित्परिवर्तित तालिका निश्चय ही ज्ञानवर्धिनी होगी—

विविध पशुओं के दुग्धों का संगठन (प्रतिशत में)

पशु नाम,	प्रोटीन	वसा	शर्करा	जल	क्षार	आयु० गुण
गाय	३.४	३.७५	४.७५	८७.३५	०.७५	मधुर शीतल गुरु
भैंस	५.०	७.६	४.५	८०.६	०.८	गुरु, शीत, मधुर स्निग्ध
बकरी	४.४	४.६	४.२	८६.०	०.८	लघु, शीत मधुर
भेड़	३.१	८.६	४.२	७६.४	१.०	गुरु स्निग्धोष्ण
गधी	१.७	१.३	६.५	९०.०	०.५	रूक्ष, उष्ण, लघु, मधुर [illegible]

[१] मदनपाल निघण्टु लिखते समय कफावहम् शब्द का प्रयोग उचित नहीं है कफावहम् उचित मालूम पड़ता है। क्योंकि गुरु दुग्ध कफकारक ही होगा कफहर नहीं। र. प्र. मि.।

घोड़ी	२·७	१·६	६·१	८९·१	०·५	रूक्ष, उष्ण लघु, मधुर अम्ल
ऊंटनी	४·०	३·१	५·६	८६·५	०·८	लघु, मधुर लवण
हथिनी	३·१	१९·६	८·८	६७·८	०·७	स्निग्ध,मधुर गुरु, शीतल
सुअरिया	१·३	४·८	३·४	८९·६	०·९	
कुतिया	११·२	९·६	३·१	७५·४	०·७	
बिल्ली	९·१	३.८	४·९	८१·६	०·६	
स्त्री	१·७	३·४	६·४	८८·२	०·३	लघु,मधुर शीतल

उक्त तालिका हम चिकित्सकों के नयनोन्मीलन भी करती है। साथ में जो आयुर्वेदीय गुणावलि दी गई है वह कितनी सटीक है इसे भी स्पष्ट करती है।

जव इन विविध प्राणियों के दुग्धों का प्रयोग कराना सम्भव न हो या इनकी उपलब्धि कष्टकर या दुर्लभ या चिकित्सक मत में हानिकर हो तो उस स्थिति में विविध प्रकार के डिब्बे के दूधों का प्रयोग वच्चों को कराया जा सकता है। इसी विषय में वाजार में मिलने वाले आहार द्रव्यों या शिशु आहारों का कुछ विवरण नीचे दिया जा रहा है—

अवौट—विडैलिन ड्राप्स, विडैलिन-ऐम ड्राप्स, विडैलिन-ऐम सीरप—ये तीनों ही विटैमिन अथवा तथा खनिज द्रव्यों से युक्त बाल हितकारी पेय पदार्थ हैं।

ऐक्रौन—एक्रोमाल्ट, ऐक्रोवीटाप्लैक्स विटामिन युक्त पेय हैं।

अलैम्बिक—आल्वाइट ड्राप्स (विटामिन पेय) प्रोटीन्यूल्स-यह विटामिन युक्त प्रिडाइजैस्टैड मिल्क प्रोटीन युक्त खाद्य है।

ऐटकोफार्मा—ब्रैनोमाल्ट (विटामिन खनिज पेय)।

वेयर—कैम्पोफरोन सीरप (खनिज विटामिन पेय)।

वंगाल इम्यूनिटी—टोनोकार्नीन फोर्टे (प्रोटीन विटामिन खनिज आहार)।

वंगाल कैमीकल—कोडीमॉल (पेय)।

ग्लैक्सो—कैसीलन-१२, कैसीलन (दोनों दुग्ध प्रोटीनों से वनती हैं। फैरैक्स यह विविध अन्नों से तैयार किया गया शिशु आहार है। ग्लैक्सो ड्राइड मिल्क यह सूखा हुआ दध का चूर्ण है। ऑस्टर मिल्क यह भी सूखा दूध चूर्ण है।

फाइजर—प्रोटीनैक्स (यह दुग्ध प्रोटीन तथा विटामिन युक्त खाद्य है)।

ड्रण्डू—प्रोटोकेसीन।

रैप्टाकोज—ग्रैप्टिन (ये दुग्ध प्रोटीन के विस्किट होते हैं)।

यूनिकैम—यूनी प्रोटीन, प्रोवीटा, यूनी प्रोटीन साल्ट्री।

वच्चों के जो आहार या खाद्य पदार्थ आज वाजार में प्राप्त हो रहे हैं उनमें कुछ तो सूखे हुए दूध के चूर्ण होते हैं। आज कज २ प्रकार से यह चूर्ण प्राप्त किया जाता है—एक गर्म रौलर पर दूध डालते जाना और उस पर चिपकी सूखी रवड़ी को छीलकर पीस लेना, दूसरे एक अति गर्म कमरे में ऊपर से दूध की फुहार छोड़ना जिससे दूध नीचे जाते-जाते अपना पानी उड़ा देता है और भूमि पर दूध का चूर्ण गिर जाता है जिसे एकत्र कर लेते हैं। इन सूखे दूध चूर्णों में से कुछ में घी की राशि यथावत् रखी जाती है जिसे फुलक्रीम ड्राइड मिल्क पाउडर कहते हैं। ग्लैक्सो के ऑस्टर मिल्क नं. २ ऐसा ही चूर्ण है जिसमें घी ३·३ प्रतिशत रहता है। ऐसे सूखे दूध का एक ड्राम एक औंस शुद्ध जल में घोलने से गाय के दूध का संगठन वन जाता है।

कुछ दुग्ध चूर्णों में कुछ परिवर्तन कर दिया जाता है। इनको मौडीफाइड (संस्कारित) दुग्ध चूर्ण कहा जाता है। इसका कारण यह है कि छोटे हाल के जन्मे बच्चे ३ माह तक गाय का दूध भी विना पानी मिलाए और उसे तनु वनाए नहीं ले सकते अन्यथा अजीर्ण और अतिसार होने की संभावना रहती है। इसके लिए इन संस्कारित दुग्ध चूर्णों में घी को कम करने की पद्धति प्रचलित है। इनमें प्रोटीन और कार्वोहाइड्रेट की मात्राओं में भी परिवर्तन कर दिया जाता है। हम नीचे ग्लैक्सो के ऑस्टर मिल्क नं० १ तथा २ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे सभी कुछ स्पष्ट हो जायगा। नं० १ संस्कारित दुग्ध चूर्ण है तथा नं० २ पूर्णघृत युक्त (फुलक्रीम) दुग्ध चूर्ण है—१ ड्राम दुग्ध चूर्ण में १ औंस शुद्ध जल मिलाने पर प्रतिशत प्रमाण।

	प्रोटीन	वसा या घृत	कार्वोहाइड्रेट या शर्करा
ऑस्टरमिल्क नं. १	२.१	२.५	७.०
ऑस्टरमिल्क नं. २	३.१	३.३	४.८

अनेक अन्य कम्पनियां भी संस्कारित दूध चूर्णों का निर्माण करती हैं। अलनबरी न. १ इसी प्रकार का दूध है जिसमें से कुछ केसीन निकाल दी गई है वानस्पतिक अल्ब्युमिन और लैक्टोज मिला दिया गया है डैक्स्ट्री माल्टोज लोहांश और विटामिन डी युक्त यह होता है इसमें प्रोटीन १.७, घृत ३.१ तथा शर्करा १०.६ प्रतिशत रहते हैं। यह नवजात से ३ मास तक शिशुओं को स्वास्थ्य-दायक सिद्ध होता है। इसी कम्पनी का नं २ भी संस्कारित दूध है जो ३ से ६ माह के शिशुओं को दिया जाता है इसमें प्रोटीन १.६, घी ३.० तथा शर्करा १०.४ प्रतिशत रहते हैं। इसी प्रकार काउ एण्ड गेट के हाफ-क्रीम दूध में प्रोटीन २.५, घी १.८ तथा शर्करा ७.२ प्रतिशत रहती है। इसका एक सपरेटा दूध में से घी बिल्कुल निकाल लिया जाता है इसे तभी तक देना चाहिए जब तक बच्चा घी पचाने में असमर्थ रहे इसमें प्रोटीन ३.५, घी ०.१ तथा शर्करा ५.३ प्रतिशत रहते हैं।

इन दुग्ध चूर्णों के अतिरिक्त बाजार में संघनित या कंडेंस्ड मिल्क भी मिलता है। इसे बनाने में यह प्रक्रिया अपनानी पड़ती है ताकि दूध का पानी इतना उड़ाया जाय कि उसका आयतन कुल दूध का एक तिहाई रह जावे। यह शर्करायुक्त या बिना शर्करा का इस प्रकार दो प्रकार का मिलता है। मधुर संघनित दुग्ध बच्चे को स्वास्थ्य हेतु अधिक लाभप्रद कहा जाता है पर शर्करा रहित संघनित दुग्ध का उपयोग भी बच्चों को किया ही जाता है। संघनित दुग्ध का डब्बा खुल जाने पर फिर उसे अशुद्धि से बचाने का विशेष ध्यान रखना चाहिए। हमने गांवों में ऐसे खुले डब्बों में चींटी और मक्खियां तक पड़ी देखी हैं जो सर्वथा हेय और त्याज्य है। ३ महीने तक के बच्चों को संघनित दूध के १ भाग में ३ भाग पानी मिलाकर तथा उससे ऊपर के शिशुओं को १ भाग में २ भाग पानी मिलाकर दूध तैयार कर पिलाना चाहिए। वृन्द मातृ-स्तन्याभाव में अन्य दूधों को तद्गुण करके देने का निर्देश करता है —

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्।

दूध के अतिरिक्त बच्चों के लिए अन्य आहार भी बाजार में मिलते हैं इनमें कार्बोहाइड्रेट अधिक और घी की हानि नगण्य होती है। ये सुपाच्य होते हैं इनमें गेहूं का कीआटा, ऐरारूट, डैक्स्ट्रीन, विटामिन ए तथा डी, तथा कभी-कभी जौ या ज्वार का प्रयोग भी किया जाता है। इनमें से किसका प्रयोग किस बच्चे के लिए उचित होगा इसे चिकित्सक से पूछकर देना चाहिए।

आयुर्वेद के विद्वान् भी इस दिशा में कभी किसी से पीछे नहीं रहे। काश्यपसंहिता का पहला अध्याय इसी प्रकार के लेहों का संग्रह है। वृद्ध जीवक के प्रश्नों का उत्तर देते हुए भगवान् कश्यप ने कितना सुन्दर लिखा है :—

अक्षीरा जननी येषां अल्पक्षीराऽपि वा भवेत्।
दुष्टक्षीरा प्रसूता या धात्री वा यस्य तादृशी॥
दुष्प्रजाताभृशव्याधिपीडितायाश्च ये सुताः।
वातिकाः पैत्तिका ये च ये च स्युः कफवर्जिताः॥
स्तन्येन ये न तृप्यन्ति पीत्वा-पीत्वा रुदन्ति च।
अनिद्रा निशि ये च स्युर्ये च बाला महाशनाः॥
अल्पमूत्रपुरीषाश्च बाला दीप्ताग्नयश्च ये।
निरामयाश्च तनवो मृद्वङ्गा ये च कर्शिताः॥
वर्चः कर्म न कुर्वन्ति बाला ये च त्र्यहात् परम्।
एवंविधान्हि शृणु लेहयेदिति कश्यपः॥

अर्थात् जिसकी मां या धात्री को दूध न उतरे या जिसका दूध दूषित हो या जो बीमार हो या बालक वातिक पैत्तिक या कफ वर्जित प्रकृति के हों तथा जिन बालकों को दूध पीने से तृप्ति नहीं होती है और वे दूध पीते-पीते भी रोते रहते हैं रात में भूख से चिल्लाते रहते हैं और जो अधिक खाने वाले होते हैं जिनकी अग्नि दीप्त होती है। इनके कारण दुग्धाहार पूरा नहीं पड़ता जिसके कारण थोड़ा मूत्र और थोड़ा मल उत्सर्जित करते हैं। यह अवश्य देखें कि वे नीरोग हैं। पर जो मृदु और कृश इसलिए होते चले जा रहे हैं क्योंकि उन्हें पूरी खुराक अकेले दूध से नहीं मिल पा रही जिससे वे तीन-तीन दिन पर मल त्याग करने लगे हैं। कश्यप जी का कहना है कि इस प्रकार के शिशुओं को लेह (बिकोफूड) देने चाहिए।

जो मन्दाग्नि वाले बालक हों अजीर्ण, अरुचि, ज्वर अतिसार, कामला, शोथ, पाण्डु, हृद्रोग, श्वास, कास, गुल्म रोग बस्तिरोग, आनाह, गलरोग, विसर्प, वमन अरोचक से पीड़ित हों या ग्रहबाधाओं से ग्रसित हों लेहन न करावें प्रतिदिन भोजन के बाद, दुर्दिन होने पर, पुरवा हवा के झोंके आने पर भी लेहन न करावें। लेह अनभ्यस्त न हो और

न अधिक मात्रा में हो ।

× × × न लेहयेदलसके नाहन्यहनि नाशितम् ।
न दुर्दिनपुरोवाते नासात्म्यं नातिमात्रया ॥

कश्यप के ये सारेवाक्य कितने अनुभव और वैज्ञानिकता से भरे हैं इसे संसार का कौन बालरोग चिकित्सक या पीडीयाट्रीशियन गर्वपूर्वक और नतमस्तक होकर स्वीकार न करेगा । दुख यह है कि बालाहार के प्रथम सोपानरूप इन लेहों का वर्णन करने वाले आगे के पृष्ठ काल के कराल गाल में छिप गये और अब उन्हें ढूंढ़ पाना सम्भव नही हमारी वेदना और विकलता ही अविशिष्ट रह गई है जो विज्ञान संरक्षण के अभाव में उस अन्धे युग से हमें प्राप्त हुई है जब बर्बर आक्रमणकारियों ने इस गौरव पूर्ण स्वर्ण देश को परतन्त्रता मे आवद्ध किया और हमारे ग्रन्थों से वेगमों के नहाने का पानी गरम किया गया ।

आयुर्वेद बच्चों को घृत देना सदा उचित मानता रहा है । वाग्भट द्वारा शिशुकल्याणकघृत, अष्टांगघृत, सारस्वत घृत, वचादिघृत आदि का उपयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । उसने दांत निकल आने के साथ-साथ मातृस्तन्य के अपनयन को उचित ठहराया है:—

अथैनं जातदशनं क्रमेण्णपनयेत्स्तनात् ।
पूर्वोक्तं योजयेत्क्षीरं अन्नं च लघु बृंहणम् ॥

अन्न के सम्बन्ध में दो ही गुण बतलाए हैं कि वह लघु (सुपाच्य) और बृंहण (ऐनाबोलिक) हो । उसने इस दृष्टि से एक प्रकार के मोदक का भी हवाला दिया है ।

चिरौंजी, मुलहठी, शहद, लाजा (खीलें), मिश्री इनसे मोदक बना बच्चे को दे इसे बच्चे बहुत पसन्द करते हैं ।

जब बच्चा १ वर्ष का हो जाय तो उसे बोतल से दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए । चम्मच और कप में उसे उसका लेह्य आहार देना चाहिए । ६ से १२ माह के बच्चे को सवेरे ८।। बजे, १२।। बजे, ४ बजे, ६ बजे तथा १० बजे रात इस प्रकार ५ बार आहार या दूध देने की प्रथा है पर १ वर्ष के बालक को सोते समय आहार न देना उत्तम होता है । १।। वर्ष के बालक को ठोस आहार दिया जा सकता है । फल प्राशन उनके स्वरस रूप में ३ माह की आयु से चल सकता है । पर ठोस फल १ वर्ष से पहले नहीं देने चाहिए ।

शिशु आहार में नूतनतम श्रृंखला कैरा डिस्ट्रीक्ट कोआपरेटिव मिल्क प्रोडयूसर्स यूनियन लिमिटेड आणन्द (गुजरात) ने बाल-अमूल प्रदान कर पूरी की है जो अमूलस्प्रे के समकक्ष है । बालअमूल, अमूलस्प्रे के प्रति १०० ग्राम में घटकों का तुलनात्मक अध्ययन नीचे की तालिका से स्पष्ट होता है:—

घटक	बाल अमूल में	अमूलस्प्रे में	घटक	बाल अमूल मे	अमूलस्प्रे में
प्रोटीन	२२·० ग्राम	२२·० ग्राम	विटामिन A....	१५०० इ. ने. यू.	१५००ई. ने. यू.
कार्बोहैड्रेट	६००. ग्राम	५०·० ग्राम	P ..	३०० "	४०० "
स्प्रे	७·० ग्राम	१८·० ग्राम	B1....	००५ मिग्रा	०.६ मिग्रा
कैल्शियम	१·० ग्राम	१·० ग्राम	B6....	५.० "	०.३ "
फास्फोरस	०·८ ग्राम	०·८ ग्राम	नियासीनैमाइड....	५०.० "	६.० "
लोहा	०·० मिग्रा.	४·० मिग्रा	C....	३६०	३०.० "
			कैलोरीज		४५०

३ माह के शिशु को १ चम्मच बाल अमूल देने से उसे प्रोटीन अच्छी मात्रा में मिल जाती है । बाद में यह मात्रा बढ़ा कर आधा बेबी फूड और आधा बाल अमूल तक की जा सकती है । यह बोतलपायी शिशु के लिये है । चम्मच द्वारा आहार लेने वाले बालकों को बाल अमूल में थोड़ा दूध और मिश्री मिलाकर या सूप, अण्डा, दाल के साथ मिलाकर भी दे सकते हैं । इससे बच्चों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा हो जाता है ।

बालकों को स्वस्थ एवं सुरक्षित रखने की

ज्ञातव्य सावधानियां

आयुर्वेद बृहस्पति श्री शिवकुमार वैद्यशास्त्री श्री शिव चिकित्सालय, रावतपाड़ा, आगरा

१. शिशु को गोद में उठाते समय सावधानी बरतनी चाहिए। असावधानी से उठाने पर उसकी हंसली उतर जाने का भय रहता है।

२. शिशु को समय पर सुलाने का प्रयत्न करना चाहिए किन्तु ऐसा करने के लिए अफीम जैसी नशीली वस्तुओं का सहारा नहीं लेना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार के मन्द विषों के द्वारा नाड़ी दौर्बल्यता, कोष्ठबद्धता आदि अनेकों व्याधियों से बालक जीवन भर ग्रसित रहता है।

३. शिशु को प्रायः एक वर्ष तक मातृ दुग्ध पिलाना ही अधिक हितकर होता है किन्तु माता के दूध के अभाव में और दूषित होने की दशा में बकरी या गौ का दुग्ध ही पिलाना चाहिए।

४. शिशु को प्रति दो-तीन दिन पश्चात् जन्म घुटी का सेवन अवश्य कराते रहना चाहिए। अथवा सोंठ, जायफल, सुहागा भुना और नमक या पीली हरड़, बालवच, सोंठ और नमक माता के दुग्ध में अथवा जल में घिसकर पिलाते रहने से बालक सदैव अपच आदि अनेक रोगों से बचा रहता है।

५. बालक के हाथ में प्रति समय मिठाई या अन्य खाद्य पदार्थ देते रहना उचित नहीं रहता है इससे पेट बिगड़ कर अपच और यकृत् रोग हो जाते हैं।

६. कुल्फी की रङ्गीन मीठी बरफ, बिमचूस की गोलियां पट्टियां किस्म के बिस्कुट, बासी भोजन, तेज मिर्च, खटाई वाले चाट पकौड़िया तथा बाजारू सस्ती एवं गन्दी मिठाइयों के आहार बालकों के स्वास्थ्य को चौपट कर देने वाले होते हैं। इनके सेवन से बालकों को प्रयत्नपूर्वक बचाना चाहिए। इनकी अपेक्षा बालकों के आहार में ताजा दूध और प्रतिदिन आसानी से मिल सकने वाले फलों का सेवन कराना अधिक उपयोगी होता है। रक्खा हुआ बासी दूध एवं डिब्बे आदि के सीलबन्द दूध का सेवन भी नहीं कराना चाहिए। क्योंकि ऐसे दूध का सेवन कराने से यकृत् की अनेक व्याधियों की तथा बाल शोष जैसे भयंकर रोगों की उत्पत्ति होकर बालकों के प्राण संकट में पड़ जाते हैं।

७. प्रसङ्ग करने के पश्चात्, सोकर उठने के पश्चात्, धूप में चलकर आने के पश्चात् तथा कोई सा भी शारीरिक परिश्रम करने के तुरन्त पश्चात् बालक को मातृ दुग्ध नहीं पिलाना चाहिए।

८. तीव्र, शीतल एवं बरसाती वायु में तथा लू चलने की दशा में बालक को घर के बाहर नहीं निकालना चाहिए इससे सर्दी गर्मी के रोग हो जाने और लू लग जाने का भय रहता है।

९. बालक को किसी भी प्रकार की मशीनरी या अग्नि के पास अकेला छोड़ देना भय से रहित नहीं होता है।

१०. दियासलाई या आतिशबाजी के किसी भी प्रकार के खिलौनों से खेलने देना संकट रहित नहीं होता है।

विद्या और विनय की विभूति के साथ अनुभव का प्रखर तेज संजोये श्री शास्त्री जी की सहज गरिमा से कौन प्रभावित न होगा। आप इण्डियन मेडिसिन बोर्ड उत्तर-प्रदेश के सदस्य रह चुके हैं। आप सफल चिकित्सक और सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी पुस्तकें समाज में आदर की लोकोक्ति चरितार्थ करती हैं, अभी-अभी ही आपकी बालकल्याण नामक एक १८२ पृष्ठीय पुस्तिका छापी गयी है। प्रस्तुत लेख उनके द्वारा वर्षानुवर्ष से संकलित ज्ञान-सामग्री का प्रत्यक्ष प्रमाण है। —मदनमोहनलाल शर्मा

११. वालक की दीपक और विजली से भी पूरी-पूरी सावधानी रखनी चाहिए।

१२. वालक को खुले चाकू और नुकीली चीजों से नहीं खेलने देना चाहिए। क्योंकि इनको आंख नाक में घुसेड़ कर वे जख्मी तथा अन्धे तक हो सकते हैं।

१३. वालक को कुए वावड़ी आदि जलाशयों पर अकेला कदापि नहीं छोड़ देना चाहिए। क्योंकि ऐसी भूलों से प्राण जाने की घटना तक होना भी सम्भव हो जाता है।

१४. वालक को मकान की खिड़कियों, छज्जों, मुंडेरों और छत्तों पर अकेला कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अन्यथा भीषण चोट लगना सम्भव होता है।

१५. वालक को चालू सड़क पर कभी नहीं खेलने देना चाहिए। अन्यथा भीषण दुर्घटना होना प्रायः सम्भव है।

१६. वालक को आभूषण नहीं पहनाने चाहिए अन्यथा इस कारण से प्राणः संकट में पड़ सकता है।

१७. वालक को सूर्यास्त के पश्चात् वृक्षों के नीचे नहीं ले जाना चाहिए। क्योंकि रात्रि में वृक्षों से आंगारिक वायु निकलती है जो वालकों के लिए अति हानिकर होती है।

१८. वालक जन्म से ही नकलची उत्पन्न होता है अतः अश्लील गाने, विषयभोग की वातें उसके सामने करने से वह शीघ्र उनमें लिप्त हो जाता है।

१६. वालक के अन्दर भूत-प्रेत का भय नहीं वैठाना चाहिए। क्योंति इस प्रकार के संस्कार जीवन भर के लिए भयभीत वना देते हैं।

२०. वालक मलमूत्र विछौने में करने का अभ्यासी न वन जावे इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिए। अन्यथा यह अभ्यास माता और वालक दोनों के लिए वड़ा कष्टप्रद होता है।

२१. वालक हाथ पैर चलाकर ही व्यायाम की क्रिया को पूरी कर लेता है। जिसके द्वारा पाचन शक्ति वढ़कर स्वास्थ्य ठीक वना रहता है अतः हाथ पैर चलाने को रोकना नहीं चाहिए।

२२. वालक को गोद में प्रति समय रखना उसे दुर्वल वना देने वाला होता है।

२३. वालक को मक्खी, मच्छर, चींटी, चेंटा वाले और सील भरे अपवित्र स्थान में कदापि नहीं सुलाना चाहिए।

२४. वालक के ओढ़ने विछाने के वस्त्र सदैव कोमल और शुद्ध होने चाहिए।

२५. प्रगाढ़ निद्रा में सोते हुए वालक को एकदम नहीं उठा देना चाहिए क्योंकि इससे चौंककर वालक मस्तिष्क सम्बन्धी अनेक प्रकार के रोगों से ग्रसित हो सकता है।

२६. वालक को नीच (ओछी) प्रकृति एवं स्वभाव वाले भृत्य नौकर के पास कदापि नहीं छोड़ना चाहिए। ऐसे संसर्ग से नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में पड़ जाने का पूरा भय रहता है।

२७. वाल्यावस्था के कारण वालक के अशुद्ध उच्चारण करने पर उसका सुधार करना परम आवश्यक होता है। ऐसा न करने पर वह जीवन भर वाणी दोष से ग्रसित स्वभाव वाला वन जाता है।

२८. वालक के त्रुटि वाले स्वभावों में यथासम्भव प्रेम पूर्वक ही परिवर्तन कराना चाहिए। धमका कर कराना तो अन्तिम और अप्रिय साधन ही हो सकता है।

२६. वालक को दण्ड देते समय उसके कोमल और मारक अङ्गों के वचाव की सावधानी अवश्य रखनी चाहिए ऐसा न करने से कभी-कभी माता पिता एवं गुरुजनों को भी जीवन पर्यन्त लज्जित और कलंकित होना पड़ता है।

३०. वालक की त्रुटियों को माता सदैव अरुचि (घृणाभाव) से देखने की अभ्यासी वने उन्हें दूर करने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील रहें। क्योंकि शास्त्र सम्मत वालक की माता ही आदि गुरु मानी जाती है।

३१. वालक को आरोग्य रखने के लिए औषधियों से अधिक शुद्ध वायु एवं प्रकाश की आवश्यकता होती है।

३२. तीन चार मास तक के शिशु को स्नान कराने से पूर्व उसके सर्व अङ्गों में तैल मर्दन कर आटे की लोई लगाकर शीत ऋतु में गरम जल से, ग्रीष्म ऋतु में शीतल जल से तथा वर्षा ऋतु में गुनगुने जल से नित्य स्नान कराते रहना चाहिए जव वालक ३ वर्ष की आयु का हो जावे तव उसको नित्यप्रति प्रातःकाल स्नान करने का अभ्यास डालें किन्तु स्नान के पश्चात् शरीर को सूखे वस्त्र से अवश्य पोंछ उसे तुरन्त सूखे वस्त्र पहना देना चाहिये।

३३. शिशु के चेचक का टीका लगाये गये स्थान पर घृत, मक्खन या चन्दन का तैल लगाते रहना चाहिये इससे टीके का स्थान शीघ्र ठीक हो जायेगा।

३४. शिशुओं के कानों में तिल का अथवा कडुवा तैल तीसरे चौथे दिन अवश्य डालते रहना चाहिये इससे कर्णेन्द्रिय और मस्तिष्क में खुश्की उत्पन्न नहीं हो पाती है।

३५. शिशु के दांत निकलने के दिनों में लार अधिक गिरती रहती है, अतः उसके गले में एक रुमाल या झुकनी बांध देनी चाहिए किन्तु वस्त्र को लार से गीला हो जाने पर उसे धोकर सुखाकर बदलते रहना चाहिए।

३६. शिशु की पाचनशक्ति ठीक होने की दशा में मल न पतला होता है और न अधिक गुठली लिए ही होता है। मल में अधिक दुर्गन्ध भी नहीं होती है किन्तु विपरीत इसके पाचनशक्ति विकृत होने की दशा में मल दुर्गन्धित होता है और संख्या में भी अधिक बार होता है।

३७. जो इच्छायें बालकों की आप पूरी नहीं कर सकते हैं अथवा पूरी करना उचित नहीं समझते हैं ऐसी बातों को पूरा करने का उसको आश्वासन नहीं देना चाहिए। अथवा वे भी स्वजीवन में अपनी प्रतीज्ञा भंग करने के अभ्यासी बन जावेंगे।

३८. बालकों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर उन्हें सार्थक एवं योग्यता से भरपूर ही देने चाहिए।

३९. बालक की प्रत्येक वास्तविक उन्नति में अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करके उन्हें भविष्य में अधिक उन्नति के लिए प्रेरित करना चाहिए।

४० बालकों के सम्मुख आप वही आचरण करें जिन्हें आप समाज के सामने निःसंकोच व्यक्त कर सकते हैं।

४१. बालकों को स्वास्थ्य की महत्ता का बोध कराने और अपनी उन्नति में लगन-शील बनने की रुचि उनमें भर पूर उत्पन्न करनी चाहिए।

४२. बालकों में स्नेह पाने की अभिलाषा जन्मजात होती है वे प्रेममय व्यवहार के भूखे होते हैं। प्रेममय व्यवहार से उनके संवेदनात्मक विकास में बल मिलता है और उनमें सहृदयता का उदय होता है।

४३. बालकों को मिट्टी खाने का अभ्यास न पड़ जावे इसकी भी सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि इससे पीलिया तथा अन्य अनेक प्रकार के उदर रोगों की उत्पत्ति होकर बालक का स्वास्थ्य चौपट हो जाता है।

४४. बालक को पैर पर पैर रखकर सोने या बैठने तथा बैठने पर पैर हिलाते रहने का अभ्यासी न बनने दें क्योंकि ये असभ्यता के चिन्ह माने जाते हैं।

४५. बालक को प्रातःकाल शीघ्र उठने और रात्रि को शीघ्र सोने का अभ्यासी बनाना चाहिए।

४६. बालक अपने समय को व्यर्थ नष्ट करने का अभ्यासी न बने इसकी पूरी सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि गया हुआ समय फिर प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

४७. बालक अभिवादनशील, वृद्धजनों की सेवा करने वाला तथा माता पिता एवं गुरुजनों का आज्ञापालक ही बने उसको शिक्षा देते रहना भी परमावश्यक होता है क्योंकि इनके द्वारा बालक को आयु, विद्या यश और बल इन चारों की प्राप्ति जीवन भर होती रहती है।

४८. बालक भगवान् की सर्वत्र विद्यमानता को जानने वाला हो और कर्मानुसार ही भगवान सबको फल देते हैं इसका भी उसे ज्ञान हो इससे उसे दुष्कर्मों के करने में भय और अच्छे कर्म करने की प्रेरणा सदैव मिलती रहती है।

४९. बालक जहां स्वच्छताप्रिय हो वहां सादा जीवन उच्च विचार वाला बनने का अभ्यासी भी बने इसका ध्यान रखना चाहिए।

५०. जिस बालक को स्वदेश की वेश भूषा संस्कृति सभ्यता और चिकित्सा आदि में रुचि होती है वह देश का गौरव बन सकता है।

विशेष—बालक के रुग्ण हो जाने पर प्राकृतिक नियमों के पालन के साथ आयुर्वेदीय योग्य चिकित्सक द्वारा ही चिकित्सा कराना परम श्रेयस्कर होता है क्योंकि उक्त चिकित्सा प्रणाली की औषधों को खान पान के द्वारा भी सेवन कराया जा सकता है। बालक ही प्रत्येक राष्ट्र के भावी नागरिक एवं कर्णधार होते हैं। अतः प्रत्येक देश के शिक्षकों एवं उनके माता पिता जिनसे उनका घनिष्ट तथा निरन्तर व्यवहार रहता है उन सबका यह परम कर्त्तव्य है कि देश के बालक सुरक्षित स्वस्थ एवं दीर्घजीवी बनें इन नियमों के बोध कराने का सर्व प्रथम ध्यान रखें। क्योंकि शिक्षा और स्वास्थ्य इनका समन्वयात्मक रूप ही मानव जीवन की सफलता की एक मात्र कुंजी है।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय कथित--

जातकर्म, शिशु संगोपन तथा स्तन्यदोष विचार

आचार्य वेदव्रत शास्त्री, कासगंज

चरक संहिता के शारीरस्थान के अन्तिम अध्याय से सद्योजात कुमार के सम्बन्ध में किये जाने वाले कार्यों का वर्णन किया गया है। ये कार्य निम्नांकित हैं।

१. प्रसवकालीन कष्टों के कारण कुमार को जो निष्प्राणता आ जाती है उसे दूर करने के लिए उसके कानों की जड़ में पत्थर बजाकर आवाज करना, ठण्डे या गर्म पानी से मुख धोना, सूप से हवा करना तथा वह सब करना जिससे कुमार होश में आ जाय और प्रकृतिस्थ हो जाय;

२. फिर उसके तालु-ओष्ठ-कण्ठ-जिह्वा आदि मुखस्थ भागों में कटे नख वाली शुद्ध अंगुली से या रुई के पिचु से साफ करना;

३. नाभि बन्धन से आठ अंगुल दूर धातु के शुद्ध तीक्ष्ण चाकू से (या ब्लेड से) नाभिनाल का काटना और सूत्र बांधकर उसके गले में ढीला-ढीला बांधना, नाभि पर लोध्रमधुक-प्रियंगु-देवदारु-हल्दी के कल्क से सिद्ध तैल चुपड़ना या इनका चूर्ण छिड़कना;

४. नाभिनाल यदि ठीक से न काटी गई तो उसमें आयाम, व्यायाम, उत्तुण्डिता, पिण्डलिका, विनासिका और विजम्भिका नामक किसी भी व्याधि का अविदाही-वातपित्तप्रशमन द्रव्यों की मालिश, चूर्ण छिड़कना या उनसे सिद्ध घृत से परिषेक करके ठीक करना, नाभिस्थ दोषों की गुरुता या लघुता का ज्ञान कर उचित उपचार करना;

५. नाभिनाड़ी परिकल्पना के बाद मन्त्रोच्चार के पश्चात् कुमार को शहद और घृत का मिश्रण चटाना और साथ में वेदमन्त्रों का उच्चारण करना, मन्त्रोच्चार के साथ ही सर्वप्रथम दाहिने स्तन का पान कराना तथा उसके सिरहाने मन्त्रोच्चारपूर्वक शुद्ध जल से पूर्ण घड़ा रखना (यह सब जन्मकर्म अन्तर्गत आता है);

६. जातकर्म के पश्चात् कुमार के रक्षाकर्म का विधान किया जाता है जिसमें सूतिकागार के चारों ओर कत्था, ककरौंदा, पीलु, फालसे की शाखाएं लगाना, सरसों अलसी और चावलों के कणों का सूतिकागार में बखेरना, दोनों समय वहां होम करना, वचाकुण्ठ क्षौमक, हींग, सरसों, अलसी, लहशुन आदि पोटली मे बांध द्वार पर लटकाना, उसके कमरे में (यदि शीतऋतु हो या पहाड़ी स्थान हो तो) तेंदू आदि की लकड़ी जलाते रखना, कमरे में १०-१२ दिन या जब तक का विधान हो मित्र-अनुज-अग्रजादि द्वारा मंगल, स्तुति गीतादि का विधान करना और वेदपाठी ब्राह्मणों द्वारा मन्त्रोच्चार कराना-इन सभी क्रियाओं से रोगकारी जीवाणुओं से रहित, उपसर्ग से दूर शोभन वातावरण का सृजन करना अभीष्ट होता है;

७. दसवें दिन प्रसूता स्त्री को उसके बालक के साथ सर्वगन्ध द्रव्यों, पीली सरसों और लोध्र के जल से स्नान करा नामकरण का विधान कराना, दोनों को शुद्ध पवित्र श्वेतवस्त्र धारण कराना और बच्चे के २ नाम-एक नक्षत्रों के अनुसार और दूसरा प्रेम का सरलाक्षर युक्त-रखना;

कुमारागार (Nursery)

कुमार को किस प्रकार के कमरे या नर्सरी में रखना चाहिए इस पर चरकसंहिता में अच्छा साहित्य मिलता है। इसकी विशेषताएं निम्नांकित तथ्यों से स्पष्ट होती हैं :—

१. कुमारागार का नक्शा वास्तुविद्याकुशल सिविल इंजिनियर को बनाना चाहिए और इसका निर्माण योग्य ओवरसियर से कराना चाहिए;

२. कुमारागार प्रशस्त स्थान पर, देखने में रम्य, सुप्रकाशित, वायु के झोकों से दूर किन्तु जिसमें एक ओर से वायु का बराबर प्रवेश हो सके ऐसा;

३. कुमारागार मजबूत पत्थर, ईंटों या कंक्रीट का बनाया जाना चाहिए ताकि उसमें कोई हिंसक प्राणी या पशु

या काटने वाला जीव जन्तु न प्रवेश कर सके, यही नहीं उसमें चूहे और पतंगे भी न फटक सकें;

४. उसमें इतने कमरे होने चाहिए :—

क—जल प्रकोष्ठ (वाटर रूम)।

ख—कूटने पीसने का प्रकोष्ठ (ग्राइंडिंग रूम)।

ग—मलमूत्रस्थान (लैवेटरी)।

घ—स्नानगृह (बाथरूम)।

ङ—चौका (किचन)।

च—शयनस्थान (स्लीपिंग रूम)।

छ—आसन स्थान (बैठक-ड्राइंग रूम)।

ये सभी कमरे प्रत्येक ऋतु में सुख देने वाले होने चाहिए तथा इनमें साज सज्जा बिछौना आदि भरपूर होने चाहिए।

कूलन) के पूर्ण नहीं हो सकती।

शयनासनास्तरणप्रावरण विचार

चरक ने खाट, आसन, बिछौना, ओढ़ना आदि के सम्बन्ध में भी स्पष्ट निर्देश किए हैं। इनकी विशेषताएं निम्नांकित होनी चाहिए :—

प—सभी कपड़े मृदु (मुलायम सॉफ्ट) हों;

फ—हलके (लघु या लाइट) हों;

ब—शुचि (पवित्र या स्टरलाइज्ड) हों;

भ—सभी कपड़े सुगन्धित हों,

म—स्वेद, मल, मूत्र, जन्तुयुक्त न हो यदि उनमें ये पदार्थ लग गये हों तो उन्हें हटा देना चाहिए;

य—यदि उन्हें बराबर हटाते रहना सम्भव न हो तो

शास्त्री जी को मैं एक व्यक्ति न मानकर एक संस्था मानता हूं। उन्होंने भारतीय संस्कृति के उन्नायक रामचरित मानसकार सन्त तुलसीदास को सोरों वासी सिद्ध करने में जो अथक परिश्रम किया है उसके कारण उनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में सदा जगमगाता रहेगा। आप मानस के पण्डित और आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान् हैं उनका वेष और वाक्शैली देख सुनकर हमें बरबस उनके मातुल स्व० श्री पं० गुरदत्त शर्मा की स्मृति सजीव हो जाती है जिन्होंने इस भू-भाग में अपना अमर यश छोड़ा। शास्त्री जी जितने साहित्यिक हैं उतने ही कवि भी हैं। उनकी कविताएं सुधानिधि के प्रथम पृष्ठ पर पाठकों द्वारा सदैव सराही जाती रही हैं। प्रस्तुत लेख कितने परिश्रम कितनी साध और कितनी खोज से लिखा गया है यह सहज ही प्रमाणित हो जाता है।

—र. प्र. त्रि.

---

५. यह मकान ऐसा होना चाहिए कि इसमें भूतग्रह बाधा और उपसर्ग किधर से भी प्रवेश न पा सके जहां बलिवैश्वदेव यज्ञ हवन आदि करने की तथा अन्य मंगल कर्म करने की व्यवस्था हो तथा जहां प्रायश्चित्त हेतु कर्म किए जा सकें।

६. इस कुमारागार में माता पिता के अतिरिक्त केवल निम्नांकित व्यक्ति आते जाते रह सकते हैं।

अ—पूर्णतः शौचाचार को मानने वाले व्यक्ति;

आ—वृद्ध जन।

इ—वैद्य या मेडिकल आफिसर।

ई—ये सभी व्यक्ति कुमार के प्रति अनुरक्त अपना सच्चा स्नेह रखते हों।

सारी व्यवस्था उन सबसे कहीं अधिक है जो आज के शिशु सदनों में संसार के किसी भी समृद्ध देश में देखी जाती हो। ऋतुसुख की कल्पना बिना एयरकण्डीशनिंग (वातानु-

उनको पानी और साबुन से अच्छी तरह धो सुखा और उपसर्ग नाशक धूपों से शुद्ध करके उपयोग में लाना चाहिए। बड़े बड़े स्टरलाइजरों या धोबियों की अपेक्षा घर में कपड़े धोने और सुखाने के बाद भी धूपित या सुगन्धित करना चरकीय काल की अपनी विशेषता रही है।

कपड़ों का धूपन निम्नांकित द्रव्यों के जलाने और उनके धुएं में कपड़ों को रखने से प्राप्त होता है:

जौ, सरसों अलसी, हींग, गुग्गुल, वच, चोरक (Angelica glauca Edgw) वयस्था (ब्राह्मी), गोलोमी (दूर्वा श्वेत), जटिला (जटामांसी), पलंकषा (गुग्गुलभेद), अशोकरोहिणी (Erycibe Paniculata roxb-प्रा० वन-वन्दानिह) तथा सांप की केंचुली।

कुमारधारणीय—

प्राचीनकाल में तत्काल शिशु को शुद्ध न दूध पहनाना

शिशुओं में दुग्ध पान की विधियाँ

रुई द्वारा दुग्ध पान

स्तन द्वारा दुग्ध पान

बोतल द्वारा दुग्ध पान

या धारण कराया जाता था । ये वही द्रव्य या पदार्थ होते थे जिन्हें विद्वज्जन विशेषकर अथर्ववेदज्ञ ब्राह्मण निर्धारित करते थे इनमें निम्नलिखित मुख्य होते थे:—

(१) विविध प्रकार की मणियां ।

(२) जीवित गैंडे, हिरन और नीलगाय या बैल के दाहिने सींग का अंश ।

(३) ऐन्द्री (इन्द्रवारुणी या गिरिपर्पट) जीवक, ऋषभक आदि औषधियां ।

कुमार के खिलौने और क्रीडनक—

बच्चे को खिलौने देने की परम्परा भी बहुत पुरानी है । ये खिलौने या क्रीडनक विचित्र प्रकार के, घोष (आवाज) करने वाले, सुन्दर या रङ्गबिरङ्गे, हलके, जिनके अग्रभाग तेजधार वाले न हों, इतने बड़े या मोटे कि मुख में न घुस जायं, जो प्राणहारक न हों तथा जो बच्चे को डर या त्रास न देने वाले होने चाहिए ।

वित्रासन का विरोध—

डर या त्रास बच्चे को कदापि न दिखाना चाहिए इसके विषय में चरक संहिता का यह कथन सभी माता पिताओं को सम्पूर्ण विश्व में स्वीकार कर लेना चाहिए:—

न ह्यस्य वित्रासन साधु-तस्मात् तस्मिन् रुदति अभुं-जाने वाऽन्यत्र विधेयतां अगच्छति

बच्चे को डराना उचित नहीं है इस कारण बच्चा यदि रोता है दूध नहीं पीता है अथवा और कोई बात नहीं मानता है तो भी ।

राक्षस पिशाचपूतनाद्यानां नामान्याह्वयता कुमारस्य वित्रासनार्थं नामग्रहणं न कार्यं स्यात्—

बच्चे को डराने के उद्देश्य से राक्षस, पिशाच, पूतना आदि के नामों को पुकारते हुए उनके नामों का ग्रहण कदापि न करना चाहिए ।

कुमारों में रोगप्रादुर्भाव और उपचार—

यदि तु आतुर्यं किंचित् कुमारं आगच्छेत् तत्र प्रकृति-निमित्तपूर्वरूपलिङ्गोपशय विशेषैस्तत्वतो अनुबुध्य-

उसे प्रकृति, रोगकारण, रोग के पूर्वरूप, रोगलक्षण, रोग का उपाय के विशेषों द्वारा तत्वरूप में जानकर

सर्वविशेषान् आतुरौषध देश कालाश्रयानवेक्षमाण श्चिकित्सितुं आरभेत—

सभी विशेषताओं को रोगी, औषध, देश और काल के परिप्रेक्ष्य में देखकर ही उसकी निम्न विधि से चिकित्सा आरम्भ करे:—

अब वायु स्तन्य के अन्दर विलोड़न क्रिया करने लगती है तब दुग्ध में फेन संघात कर देती है। उसके पीने से भी बालक की वृद्धि रुक जाती है और चिड़चिड़ा स्वर वाला बालक हो जाता है तथा पाखाना पेशाब अपानवायु का निःसरण कम से कम होता है। इस कारण वातज सिर रोग या पीनस का शिकार वह बालक बन जाता है।

और जब वायु कुपित होकर स्तन्य को सुखा देती है तब रूक्ष पान के कारण बल प्रतिदिन बालक का क्षीण होता जाता है। इस प्रकार वातज तीन विकार उत्पन्न हो कर बालक की वृद्धि को रोक देते हैं।

पित्तज विकार—उष्ण वस्तुओं से क्रुद्ध पित्त स्तन्य का आश्रय लेकर स्तन्य की विवर्णता-नील, पीत, असित, कर देता है उसका पान करने वाला शिशु विवर्णगात्रता, स्विन्नता को प्राप्त कर भिन्न विट्की एवं तृष्णालु होता है। तथा समस्त शरीर उसका उष्ण रहता है और दुग्धपान की इच्छा नहीं करता है।

और जब पित्त कुपित होकर क्षीर को दुर्गन्धित कर देता है तब बालक को पाण्डु और कामला में से कोई रोग हो जाता है।

कफज विकार—गुरु पदार्थों के सेवन से जब कफ कुपित होकर स्तन्य का आश्रय लेता है तब यदि क्षीर को वह स्नेहान्वित करता है तब तो बालक दूध डालने लगता है और लार डालता रहता है। क्योंकि उसके स्रोत नित्य उस अति स्निग्ध स्नेह के कारण उपदिग्ध रहते हैं अतः निद्रायुक्त एवं क्लम युक्त दिखाई देता है। श्वास कास भी उसे हो जाती है। मुख से कफ स्राव होता रहता है और अधिक प्रकोप होने पर तमक श्वास भी हो जाती है।

किन्तु जब कफ पिच्छिलता को स्तन्य में पैदा कर देता है तब दुग्धपान कर शिशु लालास्राव करता है मुख आंख पर सूजन मालूम पड़ती है, जड़वत् दिखाई देता है। लेकिन जब कफ क्षीराश्रयी हो जाता है तब अपनी गुरुता के कारण क्षीर में गुरुता ले आता है। उस स्नेहान्वित क्षीर का पान करने वाला बालक विविध कफजन्य व्याधियों का दास हो जाता है तथा विकृति दुग्धपानजन्य अन्य रोग भी उसे हो जाते हैं।

इस प्रकार भगवान् आत्रेय ने शास्त्र चक्षु वैद्यों के हेतु अष्ट स्तन्य रोगों का निदान वर्णित किया है।

चिकित्सा—भगवान् आत्रेय ने यहां चिकित्सा सूत्र का उल्लेख करते हुए कहते है कि धात्री को स्नेहपान से युक्त कर स्वेदन कर वमन करावे इससे वातादि दोषजन्य स्तन्य की शुद्धि सम्भव है।

वमन प्रयोग—दुधवच, फूलप्रियंगु, मधुयष्टी, श्लेष्मांतक, कुटज, सरसों, इनका कल्क निम्ब, पटोल के लवणीकृत क्वाथ के साथ पिलावे। इससे वमन हो जाने पर पेयादि लघु द्रव्यों का सेवन कराने के उपरान्त दोष, समय, बल का विचार कर स्नेहपान के अनन्तर विरेचन करावे।

विरेचन योग—त्रिवृता और अभया के कल्क को त्रिफला के क्वाथ द्वारा या मधु के साथ पिलावे।

इससे जब विरेचन हो जाय तब दोषनाशक अन्नपानों से शेष दोषों को शमन करें।

अन्न—साठी के चावल, समा के चावल, प्रियंगु (धान्य विशेष) कोदों, जौ।

शाक—वंशकटीर, वेत्राग्र, मटर का शाक, घृत संस्कृत।

दाल—मूंग, मसूर, कुलत्थी की दालों को निम्ब, वेत्राग्र, पटोल, वार्ताक, आमलक के क्वाथ द्वारा पकाकर या इनका कल्क डालकर सोंठ, मिर्चकाली, पीपल छोटी और सैन्धव से संस्कृत कर प्रयोग करावे।

मांस—मांसाहारियों के लिये, शश, कपिंजल, ऐण का संस्कृत किया गया मांस प्रदान करे।

जल—काकजंघा, सप्तपर्णत्वक्, अजमोदा और कुटकी का सिद्ध जल स्तन्य शुद्धि के लिए प्रयोग करे।

क्वाथ चिकित्सा—अमृता, सप्तपर्ण त्वक् का कल्क बनाकर जल से पीवे। या इनका क्वाथ कर सोंठ के साथ लेवे या केवल चिरायता का क्वाथ पान करावे।

इस प्रकार विशेष चिकित्सा विधि का वर्णन कर भगवान् आत्रेय ने सामान्य औषध प्रयोग को इस प्रकार कहा है—

सामान्य चिकित्सा—

(१) द्राक्षा, मधुक, सारिवा को द्विगुण जल में दूध के

साथ सिद्ध करके पिलाने से क्षीर दोष की निवृत्ति होती है।

(२) क्षीर काकोली को बारीक पीसकर सुखाम्बुना पिलावे।

स्तन्य शोधक लेप—पञ्चकोल और कुलत्थ को जल में पीसकर स्तनों पर लेप लगावे सूख जाने पर धोकर दूध निकाल दे। इस प्रकार भी क्षीर शुद्धि होती है।

फेनसघातज कफज स्तन्य के लिए विशेष विधि—

(१) पाठा, सोंठ, काकजंघा और मूर्वा के कल्क को उष्ण पानी से पिलावे।

(१) रसोंत, सोंठ, देवदारु, बेल की जड़, प्रियंगु को पानी में पीसकर स्तन्य पर लेप करे। शुष्क होने पर धोकर दूध निकाल देवे।

(३) चिरायता, सोंठ, अमृता का क्वाथ पिलाने से स्तन्यदोष की निवृत्ति होती है। अथवा—

(४) जौ, गेहूँ, सरसों को पानी में पीसकर स्तनों पर लेप लगावे सूखने पर धोकर दूध निकलवा देवे।

विशेष योग—पाठा, सोंठ, देवदारु, मोंथा, मूर्वा, गुडूची, वत्सकफल, चिरायता, कुटकी, सारिवा इनका क्वाथ या चूर्ण का सेवन कराने से भी स्तन्य शुद्धि होती है।

रूक्ष क्षीरा की चिकित्सा विधि दुग्ध का विशेष पान करावे, अथवा घृत तत्तद औषधियों से सिद्ध कर सेवन करावे और जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, मुग्दपर्णी, मापपर्णी, जीवन्ती, मधुक और पंचमूल वृहद् का बारीक पीसकर लेप कराने से भी स्तन्य रूक्षता दूर होती हैं।

क्षीर की विगुणता नष्ट करने के लिए प्रयोग— मुलेठी. मृद्वीका, क्षीरकाकोली (अभाव में शतावर), निर्गुण्डी इनका कल्क ताजीजल से पीने से क्षीर वैगुण्य नष्ट होता है और मुनक्का, मुलेठी का लेप भी प्रयोग करता रहे।

क्षीर दुर्गन्धता नष्ट करने के लिए—

(१) अजश्रृङ्गी २ भाग, त्रिफला १ भाग, हल्दी १ भाग, वच, १ भाग को घृत शीत दुग्ध के साथ सेवन करने से दूध की दुर्गन्धता का नाश होता है।

(२) अथवा अभया का चूर्ण कोप संयुक्त शहद में मिला कर चाटने से भी शरीर दुर्गन्धता दूर होती है।

(३) आवला, हरड़ चाटने से भी यही लाभ होता है।

क्षीर दुर्गन्धता नाशार्थ लेप—

(१) सारिवा, उशीर, मजीठ, लिसोड़े और चन्दन का लेप पूर्ववत्। अथवा—

(२) तेजपात, मोंथा, चन्दन, खस का लेप करावे।

स्निग्ध क्षीरा की चिकित्सा—

(१) देवदारु, मोंथा, पाठा, सेंधव को पीसकर गर्म जल से पीवे।

पिच्छिला क्षीरा की चिकित्सा—काकजंघा, अभया, वच, मोंथा, सोंठ, पाठा के चूर्ण को ईषदुष्ण जल से सेवन करे। तक्रारिष्ट का प्रयोग भी इसमें हितकर है जो अर्श के रोगियों के लिये है।

लेप—विदारीकन्द, बेलगिरी, मुलेठी का लेप भी लाभदायक है।

गुरु क्षीरा की चिकित्सा—त्रायमाण, अमृता, निम्ब पटोल, त्रिफला को क्वाथ विधि से पिलाने से दूध का भी भारीपन दूर होता है। अथवा—पीपरामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ का काढ़ा पीवे।

लेप—

(१) बला, नागर, शार्ङ्गेष्टा, मूर्वा का प्रलेप इसमें हितकर है।

(२) पृश्निपर्णी, पयस्या का लेप भी लाभ करता है।

भगवान् आत्रेय ने स्तन्य के जिन सूक्ष्म आठ दोषों का वर्णन किया है उनकी विशेष एवं सामान्य चिकित्सा का वर्णन उन्होंने चरक चिकित्सा के ३०वें अध्याय में किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपदेश दिया था कि—दोष दूष्य और मलादि के विगुणी भाव से जो अन्य स्त्रीमय और मनुष्यों के शरीर में होते हैं वे सब भी रोग बालकों को हो सकते हैं। परन्तु उनके अन्दर अल्पतर मात्रा में उनका प्रकोप होता है। बालकों के रोगों की निवृत्ति वमनादिक से शीघ्र हो जाती है क्योंकि परतंत्र एवं स्वतंत्र भेद से दो प्रकार के बालक होते हैं। परतंत्रों के लिए वमन एवं स्वतन्त्रों के लिये संशमनी चिकित्सा विधि करनी चाहिए।

शिशु सम्पोषण के विविध बिन्दु

कवि० दीनदयाल शर्मा 'सौभरि' वैद्य सुपरिंटेंडेंट कोयला खान श्रमिक कल्याण संगठन, धनबाद [बिहार]

लेखक श्री सौभरि जी आयुर्वेद के निष्णात हैं आपने दिल्ली के सुप्रसिद्ध आयुर्वेदिक तथा तिब्बिया कालेज से भिषगाचार्य धन्वन्तरि पाठ्यक्रम सस्वर्णपदक पूरा किया, फिर जामनगर में पोस्टग्रेजुएट ट्रेनिंग सेन्टर से हायर प्रोफीशियेन्सी इन आयुर्वेद [H. P. A.] नामक स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। आपका धन्वन्तरि कार्यालय एवं स्वर्गीय वैद्य देवीशरण गर्ग के साथ अति निकट का सम्बन्ध दीर्घकाल से चला आता है। आपने शिशुसम्पोषण की समस्याओं पर अपने ढङ्ग से प्रकाश डाला है-सरल शब्दों में अनुभव का पुटपाक करते हुए ज्ञान के आदान-प्रदान में किसी लक्ष्मण रेखा को स्वीकार नहीं किया है यह उनकी विशेषता है।

—मदन मोहनलाल चरौरे

स्नान—माता के विश्राम का प्रवन्ध करके शिशु को नहलाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो माता के कमरे से पृथक् दूसरे कमरे में नहलावें, जिससे माता के आराम में विघ्न न पड़े। कमरे का तापमान लगभग ७० फॅ० तथा खिड़कियां व दरवाजे वन्द होने चाहिए। प्रथम स्नान में शिशु की गर्मी को नष्ट होने से रोकना आवश्यक है। प्राक्पक्व शिशुओं को तौलते समय इसका विशेष ध्यान राखें। शिशु को नङ्गा करके शीघ्र नहला देना चाहिए। यदि केवल तैल मर्दन ही कर दिया जाय तो भी पर्याप्त व लाभदायक रहेगा। प्राक्पक्व शिशुओं को नहलाना उचित नहीं। एक अङ्गीठी के सामने रखी हुई कुर्सी पर विठा कर स्नान करायें। झुलसन से वचाने के लिए अङ्गीठी दूर रखें। पास में एक कुर्सी या छोटी मेज पर साबुन, दो तौलियां (एक मुंह साफ करने, दूसरी शरीर पोंछनेकी) रूई के फाये नेत्र धोने के लिए एक प्याले में अनुर्वलजल या वोरिक विलयन, उष्ण जैतून तैल, पाउडर और नाभिनाल के लिए व्रणोपचार रख लें। गर्म करने के लिए वंधकी (Binder)

नवजात शिशु स्नान

और वस्त्रों को अङ्गीठी के सामने ही रखना चाहिए। साविका (Midwife) स्नान पात्र के पास ही एक नीची कुर्सी पर बैठे। उसकी पीठ की ओर एक पर्दा टंगा हो। साविका अपनी गोद में मेकिनटोस की एक एप्रिन विछाकर वच्चे को सावधानी से उठाकर एप्रिन के ऊपर लिटा गर्म तुर्की तौलिया से ढक दे। पलकों को दो वार अनुर्वर वोरिक

विलयन से साफ करके अनुर्वर लिनन या रुई के टुकड़ों से सुखा लेना चाहिए। क्रमशः कान और नाक को स्वच्छ कर आनन को बोरिक विलयन या अनुर्वर जल से धोकर अनुर्वर लिनन या गाज से सुखा दें। सिर पर तैल लगाकर फिर शीघ्र ही साबुन से धोकर सुखा दिया जाता है। पानी नेत्रों और कानों में प्रवेश न कर जाय, इसकी बहुत सावधानी रखनी चाहिए।

मुख (आनन) और सिर को धो चुकने पर पलकों को खोलें, और प्रत्येक खुली आंख में १ प्रतिशत वाली ताजी बनी सिलवर नाइट्रेट की एक या दो बूंदें डाल दें। शरीर व शाखाओं को सुखाकर शिशु का मुख नीचे की ओर घुमा कर फिर पीठ को सुखा दें।

शिशु शरीर पर लगाने का साबुन यथा सम्भव क्षार रहित हो यशदभस्म (Oxide of zinc) आटा व बोरिक एसिड बराबर मात्रा में मिलाकर बनाया हुआ बुरकने का पाउडर उत्तम है। जात विष्ठा को नितम्बों पर चिपकने से रोकने के लिए पहले दो दिन उनके ऊपर जैतून का तैल लगा दें। फिर सामान्यरीति से पाउडर लगा दें। लम्बाई नापकर वेस्ट, बंधनी वर्ग फलालेन शिशु की पीठ पर रख, इसे पलट कर वेस्ट, बंधेज और वर्ग बांध दें अच्छी प्रकार से कुनिर्माण का पता लगावें। कुछ महीने तक प्रति दिन एक बार इसके बाद दिन में दो बार नहलावें। स्पंज और फलालेन का प्रयोग न करें। तौलिया को प्रति स्नान के बाद धोकर पृथक् रखें नहलाने और पोंछते समय रगड़ने की बजाय धीरे से निसिक्त करें। बला तैल, नारायण तैल या जैतून तैल लगाकर हाथों से साबुन और जल लगाकर धीरे-धीरे मलें। फिर धो दें। शरीर के आंकुचनों का विशेष ध्यान रखें शिशुसिर ऊपर को रख शिशु को स्नान पात्र में बैठा दें। उस समय साविका का एक हाथ उसकी बगलमें इस तरह लगा रहे कि अगुलियां बायें कंधे और बाहु के चारों ओर रहे। दूसरे हाथ से नितम्बों को सहारा दें। एक मिनट बाद निकाल कर तौलिए से सुखा दें। लपेटने वाले चोंगे सहित तौल लें, शृंगार समाप्त होने पर चोंगे को अलग कर उनका भार घटा दें।

नाभिनाल—नाल का ठूंठ ममीभवन होकर पांचवे दिन गिर जाना चाहिए। इसको बिल्कुल शुष्क रखें जिससे शीघ्र सिकुड़ जाता है। ठूंठ के आर्द्र रहने से यह संक्रमित हो सकता है, जिससे शिशु के मरने तक की आशंका है। स्नान कराने के बाद एक दूसरा बंध लगा दें। ठूंठ पर टिंचर आयोडीन या पंच गुण तैल लगाकर अनुर्वर गाज ऊपर से लपेट दें। यह सावधानी रखें कि आयोडीन त्वचा से न लग जाय। जिंक आक्साइड १ भाग, स्टार्च २ भाग मिलाकर बनाये चूर्ण को (विसंक्रमित करके) प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु यह गीला होकर उपरोधित (Clogged) हो जाता है और वंक्षणादि स्थानों में लगा रहने दें तो व्रण और फटन उत्पन्न हो सकती है। ठूंठ का सिरा ऊपर को पलट कर अनुर्वर लिंट या लैनिन से ढक दिया जाता है। इसके ऊपर रुई की एक वर्गाकार गद्दी रखकर व्रणोपचार को यथा स्थान रखने के लिए बंधेज बांध दिया जाता है। व्रणोपचार प्रतिदिन बदला जाता है। नाल के गीली हो जाने या नाल के अलग हो जाने के बाद नाभि के साफ नहीं रहने पर व्रणोपचार जल्दी जल्दी बदलना चाहिए। यदि नाभि संक्रमित हो गई हो तो दिन में तीन चार बार हाइड्रोजन पर आक्साइड (१० में १) से स्वच्छ करके नमक पोटली से सेंक करना चाहिए; या अनुर्वर ग्लीसरीन लगा दें। व्रण साफ होने पर १२ में १ के यूसोल का व्रणोपचार करना सबसे अच्छा रहता है। बंधकों इसमें फलालेन की दो पट्टियां या क्रेप पट्टी रहती है, जो
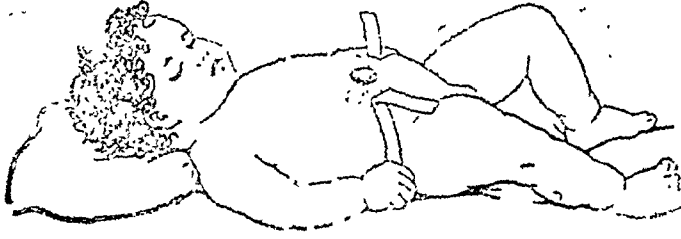
बच्चे की नाभि पर पट्टी बांधना

२० इंच लम्बी और ६ इंच चौड़ी होती है। द्विपुच्छ पट्टी बनाने के लिए बीच में सिली रहती है क्योंकि इनके सिरे बारी-बारी से लपेटे जाते हैं। परिचारिका शिशु को इस प्रकार लिटा ले कि उसका सिर बांई ओर रहे। पहले अपनी ओर के सिरे को मोड़े, फिर दूसरे सिरे को बारी बारी से मोड़ती चले बंधेज बहुत कसकर नहीं बांधना चाहिए, इसे यथा स्थान सी दें। पोतड़े (diapers) कभी भी पिन से नहीं लगाने चाहिए, क्योंकि सेफटीपिन शिशु के लग सकती है तथा मातृ विभाग के कर्मचारियों की अंगुलियां इसके कारण पूतिदोष युक्त हो सकती हैं। नाभिव्रण के भर जाने पर बंधकी की आवश्यकता नहीं रहती है। इसके अधिक प्रयोग से पीठ और उदर की पेशियों की वृद्धि में रुकावट उत्पन्न हो सकती है। शिशु की यथोचित श्वास क्रिया में भी बाधा उत्पन्न हो सकती है।

शृंगार और प्रशिक्षण–पोतड़े को कभी भी सोड़ायुक्त पानी से नहीं धोना चाहिए इसे प्रत्येक बार भोजन कराने के पहले बदल दें। भोजन कराने के अतिरिक्त जब कभी भी गीला हो जाय बदल दें। पोतड़े के गीले होने का पता शिशु के रोने से लग जाता है। गीले पोतड़े के कुछ समय तक त्वचा पर लगा रहने से नितम्ब खुरदरे हो जाते हैं, कभी-कभी इन पर एग्जीमा हो जाता है। इसलिए पोतड़े को बदलते समय प्रत्येक बार नितम्बों पर थोड़ा जैतून का तैल या वैसलीन मल देनी चाहिए। नितम्बों को साबुन पानी से धो सुखाकर पाउडर लगा दें पहले कुछ दिनों तक शोषक रुई की गद्दियों का प्रयोग करना अच्छा रहता है, क्योंकि इनमें जातविष्ठा सूखती रहती है। गाज और रुई से बने नेफिन प्रयोग किए जा सकते हैं। यात्रा समय ये विशेष लाभदायक होते हैं, क्योंकि इन्हें फेंका जा सकता है। नितम्बों के अधिक लाल पड़ जाने पर इन्हें हवा में अधिक से अधिक खुला रखना चाहिए। प्रत्येक बार दूधपिलाने के पश्चात् परिचारिका की गोद में शिशु को इस प्रकार बिठावें कि शिशु की पीठ परिचारिका के वक्ष से लगी हो। उसकी जंघाओं को परिचारिका अपने हाथों से पकड़ले। इस स्थिति में बिठाकर और एक छोटी कटोरी सामने रखकर पेशाब कराना चाहिए। इस प्रकार बच्चे शीघ्र मूत्र त्याग कर देते हैं और साविका या मातृ परिचारिका के कार्य निवृत हो जाने से पहले उनको अच्छी आदत पड़ जाती है।

वस्त्र—कपड़े उष्ण और ढीले हों। इसे श्वासक्रिया, शरीर, हाथों या पैरों की गतियों में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होनी चाहिए।

तालु पात चिकित्सा

हरीतकी वचाकुष्ठ कल्कं माक्षिक संयुतम्। पीत्वा कुमारा स्तन्येनमुच्यते तालु पातनात्॥

जिस बच्चे का तालुपात (गिर गया हो निम्नता आगई हो) उस बालक को हरड़, वच और कूठ इनके कल्क में शहद और माता के दूध के साथ पिलाने से रोग मुक्त हो जाता है। इसकी मात्रा १ वर्ष के बच्चे के लिए ¼ रत्ती परियाप्त है।

शिशु पालन की समस्याएं और उनका समाधान

डा० टी० एन० झा. जी० ए० एम० एस०
अध्यक्ष–राजकमल चिकित्सालय सुजौल (मधुबनी)

किसी भी देश का भविष्य उस देश की भावी सन्तान पर ही निर्भर रहता है, स्वस्थ मस्तिष्क में ही बुद्धि की स्थापना होती है, इसलिए बच्चों का स्वस्थ रहना अनिवार्य है। अक्सर देखा जाता है कि हमारे देश में बच्चों का लालन-पालन ठीक से नहीं हो पाता है और बच्चे बड़े-बड़े भयानक रोगों का शिकार बन जाते हैं। यह हमारे देश के भविष्य के लिए बहुत ही दुर्भाग्य की बात है, बच्चों का पालन उचित ढंग से होना नितान्त आवश्यक है क्योंकि आज के बच्चे कल के कर्णधार होंगे।

आजकल बच्चों के पालन में अनेक प्रकार की कुरीतियां देखने को नजर में आती हैं अतः इनका सुधार होना नितान्त आवश्यक है। बच्चों का शरीर कोमल होता है अक्सर देखा जाता है कि बहुत सी औरतें बालकों को उठाते समय जबर्दस्ती कड़ाई या लापरवाही के साथ उठाती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उन बालक पर अनेक प्रकार के रोग आक्रमण कर देते हैं ऐसा करने से उनकी अस्थियां टूट सकती हैं, जोड़ विश्लेषित हो सकते हैं, पेशियां विदीर्ण हो सकती हैं और नाड़ियां घातित हो सकती हैं, इसी के फलस्वरूप आगे चलकर अस्थियों का क्षय (Bone T. B.) या अंगघात होता है। कई बार क्रोध में आकर माताएं बालक के एक हाथ को पकड़कर उठाती हैं या खींच लेती हैं। बालक के ऊपर क्रोध करने की यह प्रथा बेहद खतरनाक है क्योंकि उससे कभी-कभी उपर्युक्त विकार उत्पन्न होकर बालक की जिन्दगी चौपट हो जाती है। माता या बालक के पालन के लिए रखे हुए किसी मनुष्य के लिए ऐसा कर्म करना अनुचित है। इस प्रकार का व्यवहार अक्सर अज्ञानता के कारण होता है। माता को अगर इसका परिणाम बताया जाय तो उनसे ऐसा निकृष्ट व्यवहार नहीं होगा। जब बालक बहुत रोता है या खाना नहीं या अन्य प्रकार से जिद करता है तब उसको चुप करने के लिए भूत-प्रेत पिशाच आदि के नाम का या चोर, डाकू, व्याघ्र, सिंह इत्यादि का डर दिखाते हैं यह एक बहुत बुरा व्यवहार है जो पहले से ही अभी तक चला आता है। परन्तु इस प्रकार नहीं करना चाहिये। मनुष्य और मनुष्येतर प्राणी में एक बात को छोड़कर सभी बातों में समता होती है और वह बात है ज्ञान, पशुओं में भी कुछ ज्ञान होता है और उसकी विशेषता यह है कि वह जन्म के समय से भी होता है और उतना ही मृत्यु तक रहता है। मनुष्य में जन्म के समय ज्ञान कुछ भी नहीं होता और मृत्यु के समय तक उसका ज्ञान बढ़ता जाता है। अर्थात् जन्म के समय मनुष्य और पशु की तुलना की जाय तो पशु कई दर्जे मनुष्य से अधिक ज्ञानी होता है। परन्तु उनके पश्चात् विकास देखा जाय तो पशु-पशु ही रहता है और मनुष्य-मानव होजाता है। इसका कारण यह है कि पशुओं का ज्ञान सहज और मनुष्यों का ज्ञान विकासशील होता है। इस ज्ञान का स्थान मस्तिष्क के सबसे ऊपर के भाग में होता है। इस भाग में अनेक नलिका एवं अनेक उभार होते हैं जिनमें ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक केन्द्र और उन केन्द्रों को जोड़ने वाले तार होते हैं। शारीरिक दृष्टि से विचार किया जाय तो मनुष्येतर प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में ही भारी मस्तिष्क का भाग अधिक होता है। सम्पूर्ण शरीर के कार्यों का नियन्त्रण मस्तिष्क में होता है। मस्तिष्कस्थ केन्द्रों और तत् सम्बन्धित तारों से कार्यों का नियमन बाह्य परिस्थिति,

---

लेख छोटा किन्तु सारगर्भित है किन्तु भाषा पर ध्यान न देते हुए इसमें बतलाए सुझाव और सावधानियों का ठीक-ठीक परिपालन माताओं, धात्रियों और चिकित्सकों को करना चाहिए। —गो. द. म.

शिक्षा, संस्कार, इत्यादि पर निर्भर होता है। वचपन में अगर किसी वात के लिए डर पैदा किया जाय तो आगे चलकर उस वात का डर निकल जाने पर भी उसमें डरपोक चित्तवृत्ति वैकल्प उत्पन्न होता है। संक्षेप में वचपन में वालक के साथ कोई ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिये जिससे कि उसके कोमल अविकसित मस्तिष्क पर अचानक जोर से प्रतिक्रिया हो, मस्तिष्क के ऊपर प्रतिक्रिया होने के साधन पंचज्ञानेन्द्रियां हैं। इनके अर्थो में अचानक तीव्र भेद उत्पन्न होने से वालक के मस्तिष्क के ऊपर बुरा असर होता है और स्थायी वन जाता है। इसलिए वालक को अचानक जगाना, ऊपर फेंकना, नीचे गिराना, अनेक रूपों को दिखाना इत्यादि कार्य नहीं करने चाहिये। इनसे वालक के मस्तिष्क के विकास में वहुत खरावी हो जाती है वालक का पृष्ठवंश जवतक मजवूत न हो तवतक उसको जवर्दस्ती वैठाना, उचित नहीं है। पृष्ठवंश कमजोर होने पर वैठाने से वह वक्र हो जाता है। जवतक वालक के पैरों में शक्ति नहीं आती तवतक उसको जवर्दस्ती पैरों पर न चलाना चाहिये। वरना तलवे सपाट होने का डर रहता है। हमारे आयुर्वेदज्ञों का कहना है कि वालक को प्रतिदिन थोड़ी देर वैठाया जाय, पर रोगी वालक को न वैठाया जाय, अकेला न वैठाया जाय, वैठाने का स्थान मृदुस्तर से युक्त हो उसके आस पास अग्नि शस्त्र इत्यादि चीजें न हों। जो उपर्युक्त सूचना के अनुसार वालक के साथ वर्ताव नहीं करता है वह वालक के स्वास्थ्य का नाश करता है। वालक के साथ हमेशा ऐसा वर्ताव होना चाहिये जिससे कि उसके मन पर आघात न हो, साथ-साथ वर्ताव से वालक को कोई खराव आदत न लग जाय। वालक को शून्य स्थान में अकेला न छोड़ना चाहिये क्योंकि वहां पर कंकर पत्थर रहने से वालक उसे उठाकर मुख में ले सकता है। धूलियुक्त भूमि होने से वालक का शरीर और कपड़े खराव हो जाया करते हैं तथा वहुत से वालक मिट्टी खाने लगते हैं। ऊंचे स्थान पर जहां पर कुछ भी आधार न हो ऐसे स्थान पर वालक को नहीं वैठाना चाहिये। अष्टाङ्ग संग्रह में वालक पालन के विषय में संकेत मिलता है। अनेक लोगों को सोते समय मुख पर वस्त्र ओढ़कर सोने की आदत होती है। यह आदत वहुत खराव है क्योंकि ऐसा करने से श्वास प्रश्वास के लिए स्वच्छ हवा नहीं मिल पाती है। वड़े आदमी में इस आदत से कोई ज्यादा नुकसान नहीं होता पर वच्चे के दम घुटते ही नींद में भी वह मुख पर वस्त्र गिरने पर हटा देगा। वच्चे का दम घुट के मरने का डर रहता है क्योंकि वे स्वयं वस्त्र को दूर करने में असमर्थ होते हैं। इसलिए जाग्रतावस्था में वालक के मुख पर यदि वस्त्र गिर जाय तो उसको तुरन्त दूर करना चाहिये पर निद्रितावस्था में उसके मुख पर वस्त्र कदापि भी न डालना चाहिये। जाग्रतावस्था की अपेक्षा निद्रितावस्था में मुखाच्छादन में अधिक खतरा होता है क्योंकि वालक के निद्रित होने के कारण वहुत देर तक उसकी तरफ कोई नहीं देता और निद्रितावस्था में वालकके निश्चल होने के कारण श्वासावरोध होने की सम्भावना अधिक होती है। इसका विशेष निर्देश करने का कारण यह है कि मच्छरों या मक्खियों से वचाने के लिए कई माताएं वालक निद्रित होने पर उसको पूर्णतया वस्त्र से अच्छादित कर देती हैं। मच्छरादि से वचाने का उत्तम मार्ग मशहरी है। वालक को पूर्णतया वस्त्र से अच्छादन नहीं करना चाहिये। वालक को द्वेषी लोगों से अलग रखना चाहिये क्योंकि उनके स्पर्श से नजर लगने की सम्भावना रहती है। नजर लगने की घटना पर किसी का विश्वास हो या न हो पर ऐसा अवश्य होता है। इसमें संशय नहीं, द्वेषी लोगों के स्पर्श से वालक को खुजली छाजन इत्यादि अनेक त्वचा रोग, नेत्रों के रोग, जुएं लिखें कृमि उपद्रव तथा गुह्यांगों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए किसी अज्ञात मनुष्य या वालकद्वेषी मनुष्य के पास वालक को नहीं देना चाहिये। वालक वृंह्य होता है स्वस्थावस्था में उसको पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक अन्न देना चाहिये। जव वालक रोग से पीड़ित हो जाय तव लंघन की आवश्यकता होती है उस समय लंघन कराया जा सकता है इसमें कोई आपत्ति नहीं. परन्तु उसकी उम्र तथा उपयोगिता देखकर लंघन कराना चाहिये तथा वालकों के हित के लिए तैल मालिश करना, उवटन लगाना, नहलाना, नेत्रों में अञ्जन लगाना, कोमल वस्त्र पहनाना और अत्यन्त मृदु पदार्थों का लेप, ये सभी कर्म वालकों के लिए जन्म से ही हितकर होते हैं। ●

*

शिशुरोग निदान खण्ड

*

इस खण्ड में

☆

इस खण्ड में ६ लेखों का समावेश किया गया है।

कुमार शरीरांग सम्पत्परीक्षा

आचार्यचरण श्री वैद्य वल्लभराम गुरु जी, नित्यानन्द आश्रम, ओढव, अहमदाबाद

प्रस्तुत लेख चरकानुशीलन लेखमाला की परम्परा में ग्रथित एक ऐसा लेख है जिसका उपयुक्त स्थान यह निदान खण्ड ही है। कुमार का स्वस्थ शरीर कैसा होना चाहिए। सर्वांग पूर्ण सुन्दर शरीर की कल्पना, अंग-प्रत्यंग की कसौटी ये सभी इस तरतीब से रखे हुए हैं।

इस लेख के लेखक हैं हमारे चिर परिचित वेद-वेदांग के महा पंडित योगशास्त्र और अध्यात्म विद्या के निकेत गुरुप्रवर आचार्यजी जिनसे सुधानिधि के सुहृत् पाठकगण पत्र के जन्मकाल से ही पूर्ण परिचित रहे हैं। -गोपालशरण गर्ग

नामकरण के बाद कुमार की प्रथम शरीर प्रमाण परीक्षा (एनाटोमीकल हैल्थ एक्जामिनेशन) का विधान बतलाया गया है।

कृते च नामकर्मणि कुमारं परीक्षितुं उपक्रमेत आयुषः प्रमाणज्ञान हेतोः।

इस परीक्षा द्वारा भगवान् आत्रेय ने एक सुन्दर स्वस्थ सुडौल न केवल जन्मजात कुमार की कल्पना की है अपि तु दांत वाले बालक तक का ज्ञान कराया है। जैसे आजकल हैल्थ ऐग्जामिनेशन के लिए नौर्म तय कर लिए गये हैं ठीक वैसे ही आत्रेय ने किये हैं। इतने छोटे बालक की स्वास्थ्य परीक्षा का विधान करना ही तत्कालीन भारतीय स्वास्थ्य रक्षा विशारदों की सूझ को साकार करता है। इस परीक्षा से यह ज्ञान मिल जाता है कि कुमार कितने दिन तक जियेगा और उसकी रोगप्रतीकारिता शक्ति कितनी होगी। परीक्षा निम्न चरणों में पूरी की जाती है।

१. **केश परीक्षा**—कुमार के सिर के बालों की परीक्षा की जाती है—वे बाल प्रशस्त माने जाते हैं जो एक-एक अलग-अलग उत्पन्न हुए हों, मृदु हों, थोड़े हों, चिकने हों, दृढ़मूल वाले हों और गहरे काले हों।

२. **त्वचा परीक्षा**—स्थिर और बहल हो—त्वचा पर झुरिया न हों वह काफी मोटी या कई पर्त वाली हो,

३. **शिर परीक्षा**—सिर की परीक्षा में चार बातें देखनी होती हैं—

i. प्रकृत्याऽति सम्पन्नम्—सिर प्रकृत (Normal) रूप में हो तथा अतिसम्पन्न (शुभ लक्षणों) से युक्त हो,

ii. ईषत्प्रमाणातिवृत्तम्—सामान्यतया जितना सिर का आकार बच्चे का होना चाहिए उससे कुछ बड़ा सिर हो,

iii. अनुरूपम्—सिर का आकार सिर जैसा propor-

tionate) हो,

vi. आतपत्रोपमम्—सिर छाते (umbrella) जैसा हो,

४. **ललाट परीक्षा**—कुमार के माथे की विशेष परीक्षा की जाती है। इसमें आठ बातें देखी जाती हैं।

i. व्यूढम्—चौड़ा माथा हो,

ii. दृढम्–दबाने से पक्का हो,

iii. समम्—इकसार (Even) हो,

iv. सुश्लिष्टशंखसन्धि—माथा कनपटियों के साथ अच्छी तरह बंधा हुआ हो,

v. ऊर्ध्वव्यंजनसम्पन्नम्–माथे की बालों से मिलने वाली रेखा ऊंची हो,

vi. उपचितम्–पुष्ट हो,

vii. वलिभम्—त्रिवलियों से युक्त हो,

viii. अर्द्धचन्द्राकृति—माथे का आकार अर्द्धचन्द्राकार (Semiluner) हो,

५. **कर्णपुत्रकपरीक्षा**–आयुष्मन्त कुमार के कानों की लौरें (lobes of the ear) बहल मोटे, विपुल (विशाल) दृढ़, समपीठ(एक सी पृष्ठ वाले), एकसी,नीचे की ओर अच्छी तरह बढ़ी हुई, पीछे से झुकी हुई और अच्छी तरह बंधी हुई हों;

६. **कर्ण परीक्षा**–कान के छेद बड़े हों,

७. **भ्रू परीक्षा**–कुमार की दोनों भौं या भृकुटियों की रचना में ५ बातें देखनी होती हैं,

i. ईषत्प्रलम्बिन्यौ–दोनों ओर थोड़ी-थोड़ी लटकती हुई,

ii. असंगते–परस्पर दोनों न मिली हुई,

iii. समे–दोनों का आकार प्रकार एक सा (सिमेट्रीकल) हो,

iv. संहते—दोनों घनी हों,

v. महत्यौ—दोनों का विस्तार बहुत हो,

८. **नेत्रपरीक्षा**—कुमार के नेत्रों की रचना के सम्बन्ध में ६ बातें देखी जाती हैं :—

i. समे चक्षुषी – दोनों नेत्र एक से हों, छोटे बड़े न हों

ii. समाहितदर्शने—स्थिर दृष्टि वाले हों ऐंचकताने न हों, सीधे देखने वाले हों,

iii. व्यक्त भागविभागे—आंखों के अन्दर के सब भाग और विभाग स्पष्टरूप से दिखाई दें जितने प्रमाण में स्वच्छ मण्डल, कृष्णमण्डल और श्वेतपटल होने चाहिए वे उतने प्रमाण में हों कोई छोटा या बड़ा न हो,

iv. बलवती-बलवान् हों अर्थात् देखने में दुबली आंखें न हों,

v. तेजसोपपन्ने—तेज या कान्ति (लस्टर) युक्त हों,

vi. स्वङ्गापाङ्गे—अपने अङ्ग में सुन्दर हों और अपांग (बाहरी कोनों) पर भी सुन्दर हों,

९. **नासिका परीक्षा**–कुमार की नासिका की रचना की परीक्षा में ४ बातें देखी जाती हैं–

i. ऋज्वी नासिका—नाक टेढ़ी मेढ़ी न होकर सीधी हो और सीधी-सीधी ही मुखमण्डल पर व्यवस्थित हो,

ii. महोच्छ्वासा नासिका—नाक की बनावट ऐसी हो कि वह कितना ही बड़ा उच्छ्वास ले सके, गहरी सांस लेने में समर्थ हो सके,

iii. वंश सम्पन्ना–नाक का बांसा शुभ रूप में स्थित (Well bridged) हो,

iv. ईषद् अवनताग्रा—आगे से थोड़ी झुकी हुई हो,

१० **मुख परीक्षा**—इसमें तीन बातें देखनी होती हैं—
i. महद्, ii. ऋजु iii. सुनिविष्ट दन्तम्–मुख बड़ा हो और जिसमें दांत ठीक-ठीक बैठे हुए हों,

११. **जिह्वा परीक्षा**–इसमें ४ बातें देखनी चाहिए–i. आयाम विस्तारोपपन्ना, ii. श्लक्ष्णा iii. तन्वी, iv. प्रकृतिवर्ण युक्ता जिह्वा—लम्बी, चौड़ी, चिकनी, पतली तथा स्वाभाविक रङ्ग वाली हो,

१२. **तालु परीक्षा**–तालु की रचना में ४ बातें—i. श्लक्ष्णं, ii. युक्तोपचयं, iii. ऊष्मोपपन्नं, iv. रक्तं तालु–तालु का चिकना होना, युक्त और उपचित, छूने से स्वाभाविक गरमी से युक्त और लाल वर्ण का हो,

१३. **स्वर परीक्षा**–कुमार के स्वर में निम्नांकित शुभ लक्षण मिलने चाहिए—

i. महान् स्वर–खुली हुई आवाज,

ii. अदीन स्वर–दीनता से रहित,

iii. स्निग्ध स्वर—चिकना,

vi. अनुनादी स्वर—प्रतिध्वनियुक्त Resonant)

v. गम्भीरसमुत्थस्वर—गम्भीर (deep toned)

vi धीरस्वर—धीर (उत्साहवर्धक)

१४. **ओष्ठ परीक्षा**—कुमार के होठों में ये विशेषताएं होनी चाहिए—

i. अतिस्थूल या अतिकृश न हों,

ii. इतने विस्तृत कि मुखविवर को पूरी तरह ढांक लें,

iii. रक्त उनका लाल हो।

१५. **हनु परीक्षा**—कुमारके दोनों जबड़े बड़े होने चाहिए।

१६. **ग्रीवा परीक्षा**—गर्दन में २ बातें देखनी होती हैं।

i. वृत्ता ग्रीवा—गर्दन गोल या वर्तुलाकार हो,

ii. नातिमहती ग्रीवा—बहुत बड़ी भद्दी न हो,

१७. **उरस् परीक्षा**—कुमार की छाती के बारे में भी दो बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

i. व्यूढं उरः—छाती विशाल (आकार में अपेक्षाकृत बड़ी) हो,

ii. उपचितं उरः—छाती भरी हुई (मांसल) हो,

१८. **जत्रु और पृष्ठवंश**—ये दोनों गूढ (गहराई में छिपे हुए) होने चाहिए। बहुत आगे को निकली हंसली की हड्डियां तथा पृष्ठवंश की कशेरुकाएं स्वास्थ्य की द्योतक नहीं मानी जातीं।

१९. **स्तन परीक्षा**—यद्यपि कुमारावस्था में स्तन(breasts) नहीं होते किन्तु उनके दोनों स्थान दिखाई देते हैं ये दोनों विप्रकृष्टान्तरौ स्तनौ बहुत पास न होकर दूरी पर होना शुभ माना जाता है।

२०. **पार्श्व परीक्षा**—अंसयातिनी स्थिरेपार्श्वे—बगलें(sides) अंसो के अनुसार नीचे को गिरती हुई और दृढ़ होनी चाहिए।

२१. **बाहु परीक्षा**—भुजाएं वृत्त (गोल),परिपूर्ण (भरी हुई) तथा आयत (फैली हुई)। होनी चाहिये।

२२. **सक्थि परीक्षा**—सक्थि (जांघें) भी बाहुओं की तरह वृत्त, परिपूर्ण और आयत हों।

२३. **अंगुलि परीक्षा**—अंगुलियां भी बाहुओं की तरह वृत्त, परिपूर्ण और आयत हों।

२४. **पाणिपाद परीक्षा**—हथेली (पाणि) और पैर दोनों ही महत् (बड़े) तथा उपचित (भरे हुए) हों।

२५. **नख परीक्षा**—नखों के सौन्दर्य पर तो चरक ने कलम तोड़ ज्ञान उंडेला है। इसके अनुसार उनके निम्नांकित लक्षण होने ही चाहिए—

i. स्थिर (दृढ़)

ii. वृत्त (गोल)

iii. स्निग्ध (चिकने)

iv. ताम्र (लाल)

v. तुंग (शिखराकार-नोकदार) तथा

vi. कूर्माकार (कछवे की पीठ की तरह उठे हुए) होने चाहिए।

२६. **नाभिपरीक्षा**—नाभि-दक्षिणवर्ता(दाहिनी ओर घुमाव वाली) तथा सोत्संग (गुम्बजदार vaulted) होनी चाहिए।

२७. **कटि परीक्षा**—कमर (waist) में ३ बातें होनी चाहिए:—

i. उरस्त्रिभागहीना—चौड़ाई में छाती से $\frac{1}{3}$ भाग कम यदि किसी की छाती १५. सें. मी. है तो कटि की चौड़ाई १० सें. मी. होनी चाहिए।

ii. समा—एक सी हो,

iii. समुपचित मांसा—पुष्टमांस वाली हो,

२८. **स्फिक् परीक्षा**—स्फिक् (buttocks) वृत्त (गोल) स्थिर (दृढ़), मांसल, न बहुत उठे और न बहुत दबे हुए अच्छे माने जाते हैं।

२९. **ऊरु परीक्षा**—ऊरु (thighs) या दोनों जांघें अनुपूर्व-वृत्तौअनुक्रम से गोल, अनुपूर्वं उपचययुक्तौ-तथा अनुक्रमानुसार भरी हुई हों। अर्थात् ऊपर से गोल और भरी हुई नीचे को क्रमशः छोटे वृत्त वाली तथा कम मांसल हों।

३०. **जंघा परीक्षा**—जंघा(Shanks)के सम्बन्ध में निम्नांकित विशेषताओं की ओर ध्यान जाना चाहिए।

i. नात्युपचिते नात्यपचिते जंघे—जंघा या टांगें न अधिक मांसल हों न बिलकुल मांसरहित हों,

ii. एणीपदे जंघे—टांगें हरिणी की टांग के समान

iii. प्रगूढ़सिरास्थिसन्धी जत्रु—टांगों में सिराएं (वेन्स) अस्थियां और उनकी सन्धियां मांस से ढकी (गहराई में) हों,

३१. **गुल्म परीक्षा**—गुल्म या टखने न बहुत मांसल न मांस रहित हों,

३२. **पादपरीक्षा**----ऊपर २४ वीं पाणिपाद परीक्षा में जो महत् (बड़े) और उपचित (मांसल) दो गुण बतलाये हैं वे तो हों ही साथ ही उनका पृष्ठ भाग कूर्माकार (कछवे की पीठ के समान मध्य भाग में उन्नत) हो पैर के चाप के ठीक से बने होने का प्रमाण होता है।

३३. **वातमूत्र पुरीष गुह्यांग परीक्षा**–इसके लिए चरक ने एक ही गुण प्रकृतियुक्तानि लिखा है। इसके अनुसार बच्चे के वात (flatus), मूत्र (urine) पुरीष(Stool) गुद तथा गुह्यांगों (पुरुष बालक में मेढ् वृपण और स्त्री बालिका में भग योनिद्वारादि) की परीक्षा करने पर उन्हें प्रकृतियुक्त या नौर्मल (Normal) मिलना चाहिए।

३४. **विविध भाव परीक्षा**—ये कई परीक्षाएं है—

स्वप्न परीक्षा–बच्चे को प्रकृत निद्रा आती है या नहीं

जागरण परीक्षा—जागते समय बच्चे की चेष्टा प्रकृत होती है या नहीं,

आयास परीक्षा–बच्चे की हाथ पैरों की गतियां प्रकृत हैं या नहीं वह इनके करने में कितने समय में थकता है,

स्मित परीक्षा—बच्चा हंसता कैसे है,

रुदित परीक्षा—उसका रोना चिल्लाना प्रकृत है या नहीं,

स्तन ग्रहण परीक्षा—आंचल दाबने में शिशु कितना समर्थ है इसका ज्ञान इन ३४ परीक्षणों के अतिरिक्त अन्य जो बतलाना रह गया हो वह सब भी प्रकृत होना चाहिए वह इष्ट है इसके विपरीत अनिष्ट होता है। ये सभी शुभ लक्षण कुमार के दीर्घायु होने की सूचना देते हैं।

—०—

प्राकृतिक निदान

यथा वक्त्रं तथा वृत्तं यथा चक्षुस्तथा मनः ।
यथा स्वरस्तथा सारो यथा रूपं तथाः गुणाः ॥

व्यक्ति का जैसा मुख होता है वैसा ही वृत्त (उसका भाव) होताहै तात्पर्य मुख, भावों के अनुसार बदलता रहता है। जैसे नेत्र होते हैं वैसा ही मन होता है। अर्थात् नेत्रों के द्वारा हम मन का अनुमान कर सकते हैं। जैसा स्वर होता है वैसा सार होता है, जैसा रूप होता है वैसे गुण होते हैं सारांश यह है कि बाह्य आकृति आदि आन्तरिक भावों के अनुसार होती है तथा तत्तद् भावों में बदलती रहती है। आंग्ल कहावत् चरितार्थ है Face is the index of mind. जो मन का भाव होता है, चेहरे पर स्पष्ट रूप से उसकी प्रतिच्छवि दिखाई देती है।

डा० एस० सी० गर्ग, एम. डी., डी. सी. पी. रीडर विकृति विज्ञान (पैथालोजी)
राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, लखनऊ

प्रस्तुत लेख एक बड़े विज्ञान विद्या विशारद की प्रखर लेखनी का सहज प्रसाद है। आजकल आधुनिक चिकित्सा विज्ञानवेत्ता किन किन साधनों का उपयोग करके शिशु रोगों का ज्ञान प्राप्त करते हैं उनका स्पष्ट आभास इस सुन्दर सुगढ़ लेख द्वारा प्राप्त हो जाता है।

डा० गर्ग ने शिशु रोग परीक्षा सम्बन्धी लगभग समस्त क्षेत्र को योग्यता पूर्वक स्पर्श किया है। इन परीक्षाओं से शिशु रोगों के परिज्ञान में पर्याप्त सहायता मिलती है। पश्चिमी वैद्यक गवेषकों ने शिशु रोग रहस्यों के उद्घाटन हेतु कितना परिश्रम किया है इसका भी आभास सहज ही इस लेख द्वारा हो जाता है। इस लेख के प्रकाश में इस खण्ड के अगले लेख को समझने में पर्याप्त सहायता मिलेगी जो इसी के कुछ अंश का विशदी कृत रूप है। डाक्टर गर्ग द्वारा प्रस्तुत इस कृति का आयुर्वेद जगत् में सर्वत्र स्वागत होगा इस विश्वास के साथ— —रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

स्तनपान करने वाले एक वर्ष तक की आयु के बच्चों शिशु कहते हैं। जीवन का प्रथम वर्ष इन मूक जीवों सबसे अधिक संकट कालीन होता है। क्योंकि इस य अङ्ग पूर्ण विकसित होने पर भी कार्य में अपरिपक्व ते हैं। साथ ही साथ जन्म के भार का प्रभाव होता व शरीर की प्रतिरक्षा अविकसित होती है। चिकित्सक को भी इस समय अन्य समय की तुलना में रोग सम्बन्धी प्रवीणता चातुर्य, अनुभव तथा कौशल के आधार पर बहुत अधिक देखभाल करनी पड़ती है।

वैसे तो इन शिशुओं में बड़ी अवस्था के अनेक रोग हो सकते हैं परन्तु शरीर क्रिया दूसरे आयु वालों से भिन्न होने के कारण कुछ रोग विशेष प्रकार के होते हैं।

प्रमुख संकट पैदा करने वाले रोग प्रसव कालीन आघात, मां को दी हुई औषधियों का प्रभाव, श्वासावरोध, प्रसव के समय के तथा बाद के संक्रामण रोग, जन्मजात रोग, जैसे हृदय रोग, अच्छिद्रगुदा, अयुक्त मेरुदंड, गर्भलोहित कोशिका प्रसूयता, जठरान्त्र शोथ व निर्जली करण, उदर-शूल इत्यादि अधिक महत्वपूर्ण हैं। इस काल में कुछ संक्रामक रोग मां द्वारा दी हुई ऐन्टिवाडी के कारण नहीं होते परन्तु यह क्षमता शनैः शनैः कम होती जाती है। कुछ रोगों की ऐन्टीवाडी तो बिल्कुल नहीं होती। रोग अपने प्राकृतिक रूप में भी नहीं होते, जैसे क्षयरोग में फेफड़ों में ह्वीजिंग का पाया जाना इत्यादि। इन विशेष रोगों व संकटों का शीघ्र निदान व चिकित्सा न की जाय तो ये प्राणनाशक भी हो सकते हैं। इस कारण इनके निदान में विलम्ब नहीं करना चाहिए। निदान हेतु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने प्रायोगिक व रोग लक्षण के आधार पर अनेक साधनों का पता लगाया है। इनमें से प्रमुख निम्न हैं:—

(१) विकृति जन्य (पैथोलोजीकल)
(२) एक्स-रे-चित्रण (रेडियोग्राफी)
(३) विद्युत् हृद्लेखन (इलैक्ट्रोकर्डियो ग्राफी)
(४) हृदयनाल शलाका प्रवेशन (कार्डिक कैथेटेरियेशन)
(५) विद्युत मस्तिष्क लेखन (इलैक्टोएनसीफलोग्राफी)
(६) त्वचा परीक्षण (स्किन टैस्ट)
(७) विविध
  (१) क्रोमेटिन लिंग निर्धारण (क्रोमेशन सैक्सिंग)
  (२) आधारी चयापचयदर (बेसल मैटावौलिक रेट)
  (३) रेडियो ऐक्टिव आइसोटोप्स

(विकृति जन्य साधन—

इसके अन्तर्गत रुधिर, सूक्ष्म जीव व सीरम रासायनिक ऊतक विकृति विज्ञान, पशु गृह तथा पशु पर परीक्षण इत्यादि हैं। इनमें अनेक उपकरण जैसे सूक्ष्मदर्शी माइक्रो टोम, वैद्युत कण संचलन, वर्ण मापक, फ्लेम फोटो मीटर ऊष्मायिम, केन्द्रापसार आदि द्वारा शरीर के ऊतक जैसे रक्त मस्तिष्क, मेरुतरल वमलमूत्र आदि की परीक्षा करके निदान किया जाता है। परीक्षा के लिये नमूनों को एकत्र करने की विधि अलग-अलग परीक्षण पर निर्भर करती है जो निम्न हैं:—

(१) रक्त रुधिर, सूक्ष्मजीव, से सीरम तथा रासायनिक परीक्षा के लिये एकत्र करते हैं इसकी विधि दो प्रकार की है:—

(अ) जब कुछ बूंदों की आवश्यकता हो जैसे रक्तकण गणना, होमीग्लोबिन, रक्तस्राव (B. T.) व स्कन्दन समय (C. T.) मलेरिया व फाईलेरिया के परजीवी का पता लगाना। शिशु के पैर के अंगूठे या ऐडी को स्पिरिट से साफ करके तथा सुखाकर निर्जीवाणुक नुकीली त्रिभुजीय कतरन सुई से वेधें। रक्त निकलने पर परीक्षा के अनुसार उसको एकत्र करें। रुधिर विज्ञानीय परीक्षा के लिये पिपट भरलें तथा स्लाइड बना लें।

रासायतिक परीक्षा के लिये माइक्रोपिपेट ०.०२ मि. लि. से रक्त लें। ३ बूंद १ प्रतिशत हिपेरिन युक्त ट्यूब में भी रक्त लिया जाता है। सुई को लौ पर निर्जीवाणुक किया जाता है तथा वेधे हुए स्थान पर ल्यूकोप्लास्ट चिपका देना चाहिए।

(ब) जब अधिक मात्रा में रक्त की आवश्यकता हो जैसे लोहित कोशिका अवसादन दर (E. S. R.) नव-

चित्र नं—१ शिशु में शिरावेध
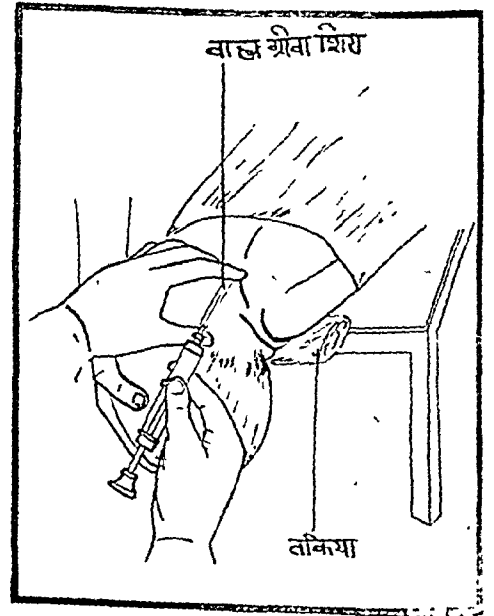
जातीय रक्त संलायी रोध, सिरम परीक्षा आदि में तब कोई भी उपस्थित शिरा जैसे शिरोवल्क शिरा (Scailo vein) या वाह्य ग्रीवा External jugelar) और्वी (Femoral)
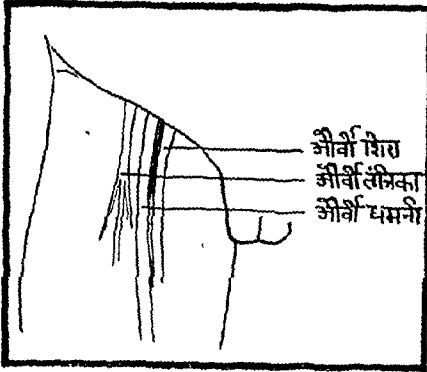
चित्र नं०-२, और्वी शिरा, धमनी और तंत्रिका में सम्बन्ध

चित्र नं० २ शिरा तथा फ्रन्टल साइनस से रक्त लिया जा सकता है। साइनस से रक्त लेने से मस्तिष्क तथा उसकी झिल्लियों में संक्रमण होने का डर लगा रहता है। सबसे अच्छी विधि वाह्य ग्रीवा शिरा से रक्त लेने की है। शिशुको मेज पर लिटाकर शिर को किनारे पर कपड़ों के ऊपर लटका दें। जैसे ही शिशु रोयेगा शिरा रक्त से भर जायेगी तभी निर्जीवाणुक पिचकारी द्वारा शिर की ओर खड़े होकर तथा वक्ष की ओर सुई करके शिरा वेध कर रक्त लेलें। पिचकारी व सुई तप्त वायु भट्टी में १६०.°सेग्रे. पर एक घंटा या वाष्प स्टर्लाइजर में १२०.°से. ग्रे.पर आधा घंटा तक रखने से निर्जीवाणु की जा सकती है। १० मिनट तक उबालना सूक्ष्म जीव विज्ञान परीक्षा के लिये ठीक नहीं है तथा यकृत्वर्ती वाइरस नहीं मरते हैं।

(क) अस्थि मज्जा परीक्षा के लिये इलियक क्रेस्ट या कशेरु का को वेधना चाहिये। स्टर्नम को नहीं वेधना चाहिये क्योंकि यह पतली होती है।

२. मल–मल को शिशु के नेपकिन से या गुदाफाल से (Anal Swab) एकत्र करें।

३. मूत्र–लड़कों में एक छोटी परीक्षण नली (चित्र ३) तथा लड़कियों (चित्र नं० ४) में एक कटोरे को जैसा

चित्र नं.-३, पुरुष शिशु मे मूत्र एकत्र करने की विधि

चित्रों में बांधा गया है बांधकर मूत्र एकत्र किया जा सकता है।

४. थूक–(Sputum) शिशु थूक निगल जाता है इस कारण नं० १० रवर नाल शलाका द्वारा आमाशय को सुवह धो कर नमूना एकत्र करें

५. विविध नमूने: —

१. सूक्ष्म जीव परीक्षा के लिए नमूना एकत्र करने के साधन तथा पात्र स्टूलाईज होने चाहिए।

२. ऊतक विकृति परीक्षा (Histopathalogy) के लिये ऊतकों को १० प्रतिशत नौर्मल सेलाइन में रखना चाहिए।

३. जो नमूने खराव होने वाले हों उनको प्रशीतित्र (Refrigerator) में रखना चाहिए। नमूना एकत्र करने के पश्चात् निम्न परीक्षा रोग निदान के लिये की जा सकती है।

(२) रुधिर विज्ञान या शौणिकी Haematology

श्वेत रक्त कणिका की सम्पूर्ण व विभेदक गणना:–इस परीक्षा में संक्रामक रोग मलेरिया, फाइलेरिया, श्वेतरक्तता ल्यूकीमिया, अरक्तता आदि के निदान में मदद मिलती है असामान्यता समझने के लिये इसकाल के सामान्य मान मालूम होने चाहिए जो तालिका नं० १ में दिये गये है।

इस समय शिशु में संक्रमण रोगों में लसिका कोशिकायें बढ़ती हैं। बहुरूपी केन्द्र श्वेत कण का बढ़ना पायोजीनक जीवाणु जैसे स्ट्रेप्टोकाकस, स्टेफिलाकाकस में निजी काकस आदि रोग होने का द्योतक है। इयोसिनोफल ऐलर्जी, दमे त्वचा के रोगों में बढ़ते है। लोहित कोशिका अवसादन दर जब शरीर में ऊतकों का नाश होता है तो बढ़ जाता है। शिशु में विनट्रोब विधि में नली आधी भरी जा सकती है तथा इसका सामान्य मान ०-६ मि० मि० एक घटे में होता है। इसके अतिरिक्त माइक्रोविधि से भी यह परीक्षा की जा सकती है।

लाल कण गण, हीमोग्लोबिन, रेटिक्युलोसाइट गणना, एम. सी. वी., एम. सी. एच. सी., पी. सी. वी. आदि परीक्षाओं से अरक्तता तथा उसके रूप का पता चलता है। इस काल में लोहे की कमी की अरक्तता विटामिन बी १२ या फोलीक ऐसिड की कमी की अरक्तता से बहुत अधिक होती है। सबसे अधिक ध्यान देने वाला रोग नवजात का रक्तसंलायी रोग (हीमोलायटिक डिजीज आफ दी न्यूबौर्न) है। यह माता तथा पिता के रक्त वर्ग और आर

तालिका न० १ शिशु के सामान्य औसत मान

	जन्म के समय	जन्म के एकदम बाद	२ से १५ दिन	३ माह	६ माह	१ साल
१	२	३	४	५	६	७
१—संपूर्ण श्वेतरक्त कण/घन मि. मी. विभेदक श्वेतरक्त कण%	२०,०००	१४,०००	१७,०००	१०,०००	१०,०००	१०००
२ न्यूट्रोफिल पोलीमोर्फ	६०	कम होते हैं	२५	३५	४०	४०
३—लिम्फोमाइट	२०	बढ़ते हैं	५५	५५	५०	५२
४ – इयोसिनोफिल	—	१–४	१–४	१–४	१–४	१–४
५ – मोनोसाइट	१२	—	१०	७	७	५
६—माइलो ब्लास्ट	१%	कम होते हैं सात दिन के बाद नहीं मिलते				—
७—माइलोसाइट	२–३%	„	„	„	„	„
८—संपूर्ण लालरक्त कण/घन मि. मी. क्रमशः	७००००००	६,६०००००	५००००००	४.२०००००	४'५०००००	४'७०००००
९—हीमोग्लोबिल ग्राम%	२०.७	१६.३	१७	११'५	११.५	१२
१०—गर्भीय	६३–९१%	कम होते होते एक साल के बाद नहीं मिलते				—
११ - कणिका माध्य आयतन M. C. V.	९५'८	—	९५'२	—	—	७५
१२—कणिका माध्य हीमोग्लोबिन M. C. H. C.	३२.७	—	३७	—	—	—
१३ - संकुलित कणिका आयतन P. C. V.	५०	—	—	—	—	३५
१४—रेटिकुलो साइट	३–४%	—	१%से कम	—	—	—
१५ केन्द्रक लालकण	२–३%	केन्द्रक कोशिकाओं के कम होते-होते नहीं मिलते				—
१६— रक्त बिम्बाणु (Patelets)	बड़े मनुष्य के समान होते हैं					
१७ रक्तस्राव समय (B. T.) मिनट	२–५	२–५	२–५	२–५	२–५	२–५
		„	„		„ होता है	
१८—स्कन्दन समय (C. T.) मिनट	लम्बा होता है,	बढ़ता है,	कम होने लगता है,	प्रो. की कमी से होता है तथा देने से ठीक हो जाता है		
१९—प्रोथ्रोम्बिन समय P. Time (सैकेन्ड)	„	„	„	„		
२०—बिलीरुबिन मि. ग्रा.%	२	३–१०	कम होने जगता है, तथा सामान्य हो जाता है।			
२१—मूत्र निकासी (मि. लीटर)	—	६०–९० मि.लि.	३०० मि. लि.			४००-५९० मि.लि.

मूत्र की परीक्षा से शिशु में निर्जलीकरण के बारे में पता चलता है। मल परीक्षा से शिशु के उदरशूल, उल्टी व पेचिस के कारणों का निदान करते हैं। इसकी परीक्षा से उपावशोषण तथा अपाचन (Tindigestion) व जियार्डिया आदि से उत्पन्न रोगों का निदान भी हो सकता है।

२. सूक्ष्म जीव विज्ञान व सीरम विज्ञान—इस विज्ञान से संक्रामक रोगो का निदान करते हैं जिससे चिकत्सा व निवारण में मदद मिलती है। ये निम्न प्रकार के होते हैं-

१. आलेप—शिशुओं में जन्म होते ही नवजात नेत्राभिष्यन्द जो 'गोनोकाकस निदान करते है स्ट्रेप्टोकाकस आदि से होता है, स्ट्रेप्टोकाकस व रोहिणी जीवाणु से रोग उत्पन्न होते हैं। इस कारण आंख, नाक व गले आदि को फाया स्लाइड पर लेकर तथा विभिन्न रंजन विधि से रंग कर निदान करते हैं।

२. संवर्ध तथा सूक्ष्मग्राहिता सूक्ष्म जीव को प्रयोगशाला में पैदा करके पहचानते हैं। जीवाणु तो कृत्रिम संवर्ध पर पैदा हो जाते है परन्तु वायरस के लिये जीवित संवर्ध जैसे अण्डा या बन्दर का गुर्दा काम में लाया जाता है। जीवाणु विज्ञान से ठीक रोग निदान हो जाता है। सूक्ष्मग्रहिता (सेंजिटिविटी) द्वारा रोग की औषधि जो बिलकुल ठीक होती है का पता चलता है। परन्तु यह परीक्षा हर जगह नहीं हो सकती तथा हर रोगी में पौजीटिव संवर्ध नहीं होता तब सीरम परीक्षा द्वारा निदान में सहायता लेते हैं। इससे जीवाणु के प्रतिपिंड (antibodies) सीरम का पता चलता है वीडाल टाईफाईड में तथा डब्लू. आर. व वी. डी, आर. एल. सिफलिस में करते हैं यह परीक्षा रोगों को अप्रत्यक्ष (indirect) रूप में निदान करता है।

(४) ऊतक विकृति विज्ञान Histopathology

इस परीक्षा में शरीर के ऊतकों को माइक्रोटोम द्वारा पेराफिन परिच्छेद (सैक्शन) व रंजन (स्टेनिंग) करके रोगों का निदान करते हैं। शरीर के निकले तरलों में कोशिकाओं की विपत्रण कोशिका प्रकरण (ऐक्स फोलिएटिव सायटोलोजी द्वारा परीक्षा करते है। इन परीक्षाओं में अर्बुद, सिरोसिस, वृक्कशोथ, क्षयरोग आदि का निदान करते हैं।

(५) एक्स-रे-चित्रण—

इस साधन से शरीर का निगेटिव चित्र लेकर या स्क्रीनिंग करके निदान करते हैं। जिन मार्गों का चित्र नहीं लिया जा सकता है उनको रेडियो ओपेक दवाई जैसे बेरायम सलफेट, सोडियम आयोडायड देकर देखते हैं। इस प्रकार इस परीक्षा को दो मार्गों में बांट सकते हैं।

(१) सादा चित्रण

इससे जन्मजात दोष जैसे दक्षिण हृदयता (Dextro cardia) अयुक्त मेरुदण्ड, अछिद्रित गुदा तथा अस्थिभंग आदि का निदान करते हैं।

(२) रेडियो ओपेक दवाई के बाद का चित्रण

इससे गुर्दे, पित्ताशय, श्वसनमली, आदि के रोगों का निदान करते हैं ह्वायटस, हर्निया, अन्त्रान्त्र प्रवेश का भी निदान होता है। मस्तिष्क निलय चित्रण (वैंट्रिक्युलोग्राफी) वाहिका चित्रण (ऐंजियोग्राफी) भी निदान में मदद करती है।

(६) विद्युत हृदय लेख—

इस उपकरण से हृदय के विद्युत तरङ्गों का ग्राफ बनता है। ये तरङ्गें हृदय के मांस पेशियों की क्रिया का विवरण देती हैं न कि उनके शारीरिक दोष का इस साधन से दक्षिण हृदयता हृदयरोध, पोटाशियम की कमी आदि का निदान होता है।

(७) हृदयनालशलाका प्रवेशन—

इसके द्वारा एक रेडियो ओपेक नालशलाका शिरा के द्वारा हृदय में पहुँचाया जाता है तथा अलग अलग कोष्ठों का दवाव मापने व रक्त के नमूने लेने में मदद करता है।

(८) विद्युत मस्तिष्क लेख—

इस साधन से शिशु के अपस्मार रोग का निदान करते हैं। इस उपकरण से मस्तिष्क के विद्युत तरङ्गों का ग्राफ बनता है जो रोग में असामान्य हो जाता है।

(९) चर्म परीक्षण—

यह अतिसुग्राहिता हाइपर सेंजिटिविटी पर निर्भर होती है। इनमें अनुग्र परन्तु प्रतिजनिक जीवाणु या उनके जीवविष को जीव विषाभ में बदल कर अन्तरत्वक मार्ग से इंजैक्ट करते हैं। कुछ समय बाद उस स्थान पर त्वग्

रक्तिमा को देखते हैं। शिशुओं में निम्न अधिक उपयोगी हैं।

(१).ट्यूबरकुलीन परीक्षण

इससे क्षयरोग के निदान में सहायता मिलती है विशेष कर बी. सी. जी. लगने के बाद या ग्रीवा में लसीका पर्व शोथ या ब्राकोन्युमोनिया, हूपिङ्ग खांसी, वायरल रोगों के बाद अगर हीलिंग हो।

(२) डीक परीक्षण

इससे स्कारलेट ज्वर की सुग्राह्यता ससेप्टीबिलिटी का पता चलता है। अगर यह पाजिटिव हो तो शिशु को यह ज्वर हो सकता है। तथा रोकने का टीका लगवा लेना चाहिए।

(३) शिक परीक्षण

इससे रोहिणी की सुग्राह्यता का पता चलता है। पोजिटिव होने पर इससे बचने का टीका लगवा लेना चाहिए।

(१०) विविध परीक्षण-

१. क्रोमोटिल लिंग निर्धारण—कुछ बच्चों में लिङ्ग का निर्धारण नहीं होपाता। इनमें दो प्रकार से लिङ्ग का पता चलाया जाता है।

(अ) न्यूट्रोफिल पोलीमोर्फ(चित्र नं० ५)में ड्रम स्टिक का पाया जाना स्त्री लिङ्ग का द्योतक है।

(ब) मुंह की श्लेष्मा कोशिका के केन्द्रक(चित्र नं.६) में लिङ्ग क्रोमोटिन का पाया जाना स्त्रीलिंग का द्योतक है।

२. आधारी चयापचय दर—(B. M. R.)–इस परीक्षा से गलगण्ड की क्रिया का पता चलता है। यह दर क्रटिनीजीम में कम हो जाती है पर विषैले गलगण्ड में बढ़ जाती है यह साधारणतया मां के रोग के कारण शिशु

चित्र नं०-५, पौलिमार्फ द्वारा सेक्स(लिंग)का पता लगाना
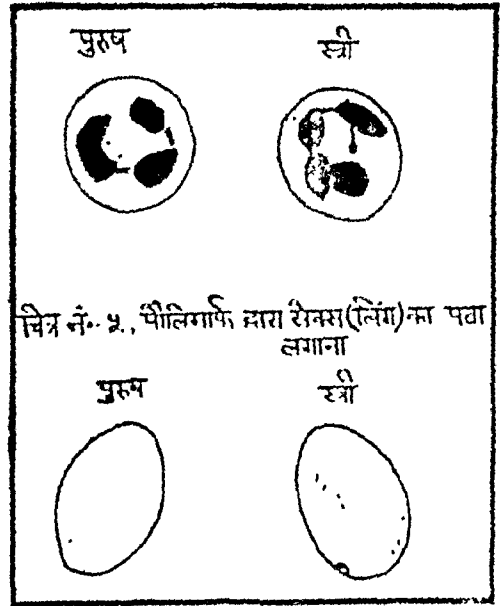
चित्र नं०-६, मुँह की श्लेष्मा कोशिका के केन्द्रक में सेक्स क्रोमेटीन

में पाया जाता है। जन्मजात गलगण्ड में दर सामान्य रहती है। ज्वर व तीव्र श्वेतरक्तता में बढ़ जाती है।

३. विघटनाभिक आइसोटोपस—इसमें विघटनाभिक तत्व शरीर के अन्दर के पहुँचाते हैं जो विशिष्ट अङ्ग में जाकर विघटनाभिक तरङ्ग निकालते हैं, जिनको गाइगर-मुल्लर गणक द्वारा पता लगाया जाता है इससे गलगण्ड (आयोडीन) मस्तिष्क के रोग (मरकरी) आदि के रोग का निदान होता है।

शिशु देश की बहुमूल्य निधि है इस कारण शिशु में रोगों का निदान अत्यन्त आवश्यक है, उपर्युक्त साधनों से अनेक रोगों का निदान होता है। परन्तु इनके अतिरिक्त भी और साधन हैं जो विशिष्ट रूप में प्रयोग में लाए जा सकते हैं।

हिचकी की चिकित्सा

सुवर्ण गैरिकस्यापि चूर्णानि मधुनासह। लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दितःशिशुः॥

उत्तम सोना गेरू के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से बच्चों का हिक्का रोग दूर हो जाता है एक बच्चे के लिए इसकी मात्रा ½ रत्ती तक की है।

बाल रोगों में आधुनिक निदान प्रयोगशालाओं में व्यवहृत

विविध परीक्षाएं

यह एक संकलित लेख है जो भाषा और सामग्री की दृष्टि से पूर्ण स्वतन्त्रता से लिखा गया है। इसे कई जीवाणु विज्ञानीय पुस्तकों की सहायता से पूरा किया है। इस लेख के लिखने में भारत सरकार शिक्षा मन्त्रालय की मानक् ग्रन्थों की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित डा. महेन्द्र प्रकाश गर्ग M. D. द्वारा लिखित मानव व्याधि की (ह्यूमेन पैथालोजी) से प्रचुर सहायता ली गई है। इन सभी के लिए हम उनका बहुत आभार मानते हैं। हिन्दी में इतनी सुन्दर इस विषय की यह बहुत अच्छी और आधिकारिक पुस्तक है। गत लेख में डाक्टर ऐस. सी. गर्ग M. D. ने जिन विषयों का विहंगम दृष्टि से अवलोकन किया है उन्हें इस पुस्तक में साङ्गोपाङ्ग प्रकट किया गया है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

[१] गले का पिचु आलेप

कण्ठ रोहिणी दण्डाणु, शोणांशिक मलागोलाणु तथा यन्य रोग कारक जीवाणुओं का निश्चित ज्ञान करने हेतु गले का पिचु आलेप या स्वाव स्मियर लिया जाता है। इसके लिए सबसे पहले एक कांच दण्डिका पर पिचु (स्वाव) लगाकर उसे कांच की परखनली में रख कर शुष्क ऊष्मा देकर उसे निर्जीवाणुक कर लेते हैं। रोगी को ोई कुल्ला या गला साफ का काम नहीं करने देते न उसके मुंह में कोई निर्जीवाणुक जलीय घोल ही डालने देते हैं। इस पिचु को गले या नासाफेरिक्स से घुमाते हैं। सावधानी यह रखते हैं कि पिचु कहीं मुख की श्लेष्मलकला को न छू ले। अगर बालक अपना मुख ठीक से न खोले तो जिह्वापीडक यन्त्र (टंग डिप्रेसर) से जीभ दबा और मुख के अन्दर रोशनी करके गले के जिस भाग में विकार है वहां पिचु का स्पर्श करते और परीक्ष्य सामग्री संग्रहीत कर लेते हैं।

पिचु द्वारा ग्रहीत परीक्ष्य सामग्री को एक विशुद्ध कांच पट्ट पर आलेपित करते हैं। फिर डिफ्थीरिया (कण्ठरोहिणी) के ज्ञान के लिए अल्वर्ट रंजन या नीसर रंजन से रगते हैं। ठीक रंजन हो जाने के वाद उसे माइक्रोस्कोप (अण्वीक्ष) के नीचे रखकर डिफ्थीरिया के जीवाणुओं का दर्शन करते हैं।

अन्य रोगों के निदान के लिए इस आलेप पट्ट को ग्राम रंजन से रङ्ग कर अण्वीक्ष में देखते हैं।

इस पिचु आलेप विधि से मेनिंगो कोकाय, कवक और गलशोफकारक विसेंट जीवाणु के दर्शन भी किए जा सकते हैं।

[२] चक्षु आलेप-

नेत्राभिष्यन्द, पोथकी, अश्रुधान पाक आदि नेत्र रोगों में वालक के चक्षु से रोगकारक जीवाणु युक्तस्राव को इकट्ठा किया जाता है। इसके लिए सबसे पहले अभ्रक के पतले कोमल पात्रों को जीवाणुरहित कर लिया जाता है। फिर शुद्ध हाथ से बच्चे की एक आंख का ऊपरी पलक उठा कर उससे इस पत्र द्वारा धीरे से स्राव ले लिया जाता है। इसी प्रकार दूसरी आंख के पलक को पलट कर भी स्राव ले लिया जाता है। इस स्राव को शुद्ध कांच पट्ट पर फैला कर उसका रंजन किया जाता है। रंजित पट्ट को अण्वीक्ष यन्त्र के नीचे रख देखते है। जिन-जिन रंजनों का प्रयोग किया जाता है वे इस प्रकार होते हैं।

पोथकी या ट्रैकोमा में—जीस्मा रंजन से रंग कर बेसोफिलिक (क्षार प्रिय) अन्तकायों का दर्शन करते हैं।

नेत्राभिष्यन्द में—ग्राम रंजन द्वारा मालागोलाणुओं तथा पुंजगोलाणुओं का दर्शन करते हैं।

नवजातीय नेत्राभिष्यन्द में--गौनोकोकाय का दर्शन करते हैं। नेत्र में हीमोफाइलस आफ कांकवीक्स का भी दर्शन इसी विधि से किया जाता है। काकवीक्स का दण्डाणु बच्चों में ऋतु परिवर्तनकाल में नेत्राभिष्यन्द करता है।

न्यूमोकोकस भी नेत्राभिष्यन्द कर सकता है अतः उसे भी ढूंढा जा सकता है।

[३] चर्म परीक्षा या स्किन टैस्ट-

आजकल यह परीक्षा बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। इससे किसी रोगाणु या लसी के प्रति वालक की उग्रप्रतिक्रिया का पता लगता है। किसी रोग के विरुद्ध बच्चे में कितनी क्षमता या प्रतीकारिता शक्ति है इसका भी ज्ञान होता है। आजकल पेनिसिलीन या प्रोकेन पेनिसिलीन या एण्टी टिटनस सीरम (A. T. S.) की पूरी सूई लगाने के पहले भी चर्म परीक्षा कर लेना प्रत्येक चिकित्सक का धर्म वन गया है। जो ऐसा नहीं करता वह रोगी के जीवन के साथ खिलवाड़ करता है और अपने को कानूनी शिकंजे में कसता है।

इसके लिए बच्चे के अग्रबाहु की संकोचक चर्म (Flexor aspect of the Forearm) को चुना जाता है। जहां कोई रक्तवाहिनी उभरी हुई न हो ऐसा स्थल चुन कर उसे ७०% अल्कोहल से सबसे पहले धो लेते हैं। जब अल्कोहल चमड़ी पर से सूख जाता है तब शुद्ध की हुई पिचकारी से जिसमें अति सूक्ष्म नोक वाली सूई लगी हो परीक्ष्य औषध के पतले घोल की ०.१ मिलीलिटर मात्रा चमड़ी के अन्दर प्रविष्ट करते हैं। ध्यान यह रखते हैं कि न तो चमड़ी के अन्दर न चमड़ी के नीचे के ऊतक में ही सुई का द्रव प्रविष्ट करे। इस द्रव को चमड़ी के ठीक नीचे के अवकाश में पहुँचाया जाता है। कुछ लोग खाल उठा कर सुई लगाते हैं। सुई का द्रव प्रविष्ट करने के पूर्व सिरिंज के पिस्टन को पीछे की ओर खीच कर देख लेना चाहिए कि उसमें रक्त या कोई द्रव तो नहीं आरहा; अगर आरहा हो तो सुई को निकाल दूसरी जगह दवा प्रविष्ट करते है। प्रतिक्रिया की जांच ५ मिनट से १ घंटे के अन्दर हो जाती है। यदि इस काल में चमड़ी लाल पड़ जाय या फूल जाय तो उस दवा का इंजैक्शन कदापि न देना चाहिए जिसका डाइल्यूट घोल चमड़ी में प्रविष्ट किया गया है।

टॉक्जिन, एण्टी टॉक्जिन के क्लीवन की जांच भी इसी प्रकार की जाती है। उसके लिए डिफ्थीरिया टॉक्जिन या अन्य टॉक्जिन को डाइल्यूट कर ०.१ मि. लि. की मात्रा में चर्म के नीचे उपर्युक्त विधि से ही प्रविष्ट करते हैं। क्लीवन की जांच में १२ से ७२ घंटे लगते हैं। सुई लगाने के बाद इस काल में स्थान लाल पड़ कर फूल जाता है और कड़ा पड़ जाता है। यह अस्त्यात्मक प्रतिक्रिया पाजि-

टिव रिऐक्शन माना जाता है अर्थात् बालक के शरीर में उस टॉक्जिन के विरुद्ध क्षमता का आभाव है, यह प्रकट होता है। यदि इस सुई के बाद १२-७२ घंटे में कोई लालिमा या ददोरा या कड़ा भाग न उभरे तो यह नास्त्यात्मक प्रतिक्रिया (नैगेटिव रिऐक्शन) प्रकट करती है अर्थात् बालक में उस टॉक्जिन के विरुद्ध प्रतीकारिता शक्ति उपस्थित है यह प्रमाणित हो जाता है।

ट्यूबर्क्युलिन चर्म परीक्षा भी इसी प्रकार की जाती है। उससे यह ज्ञात किया जाता है कि बालक को पहले यक्ष्मा का उपसर्ग लगा है या नहीं। इसमें परीक्ष्य द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में लिया जाकर चमड़ी पर उसकी प्रतिक्रिया ४८ से ७२ घंटे तक देखते हैं। यदि बच्चे की चमड़ी पर कोई धब्बा या ददोरा या लालरंग नहीं उत्पन्न हुआ तो प्रतिक्रिया नास्त्यात्मक मानी जाती है। यदि सूक्ष्म लाल धब्बा बना तो एक धन (+) अस्त्यात्मक; यदि १०-२० मि. मी. क्षेत्र में धब्बा बना तो ++ अस्त्यात्मक; २० मि. मी. से अधिक का धब्बा +++ पर यदि और भी सुस्पष्ट गहरा लाल उभरा और फैला हुआ सीधा बना तो ++++ अस्त्यात्मक माना जाता है।

यक्ष्मा हेतु यह चर्म परीक्षा कॉर्टीको स्टरॉइड लेने वाले बालक में या जिसे रोमान्तिका हो चुकी हो मिथ्या भी हो सकती है।

(४) टीका का उपयोग—

बालक में विविध घातक रोगों से प्रतीकार की शक्ति स्थायी रूप से लगाने के लिए टीका या वैक्सीनेशन लगाने की परिपाटी सभ्य जगत् में भले प्रकार प्रचलित है। ये टीके कम से कम इन रोगों के इतनी बार लगने चाहिए इसकी एक तालिका नीचे दी जा रही है। चिकित्सकों को अपने बालकों को तथा अपने से परामर्श लेने वाले बालकों को इसके लिए अवश्य परामर्श देकर मानवता की रक्षा करनी चाहिए। टीका लगाने से पहले अनुभवी चिकित्सक से परामर्श भी कर लेना उचित होगा। तालिक यह है—

टीका क्रम	किस आयु पर लगाया जाय	किसका टीका लगाना है	अन्य ज्ञातव्य
पहला टीका	२ से ६० दिन के अन्दर लगाया जावे	वी सी जी या क्षय निरोध टीका	इसे १० से १५ वर्ष की आयु में पुनः लगवा सकते हैं
दूसरा टीका	३ माह की आयु में	चेचक का टीका (स्मालपॉक्स वैक्सीन)	इसे कुछ लोग १ माह की आयु के बाद भी लगाते हैं
तीसरा टीका चौथा टीका पांचवां टीका	२ से ६ माह की आयु में	डिफ्थीरिया हूपिंगकफ टिटनस टिपिल वैक्सीन १-१ माह के अन्तर से ३ बार में	टिटनस का टीका जन्म के दूसरे दिन लगाया जाता है
छठा-सातवां आठवां टीका	६ से १२ माह की आयु में पुनः १५-२० माह की आयु में पुनः १॥-४ वर्ष की आयु में	इन्ऐक्टीवेटेड पोलियोमाइलाइटिस वैक्सीन का टीका १-१ माह के अन्तर से २ बार में	आजकल सुई से न लगाकर पिलाते भी हैं।
नवां-दसवां ग्यारहवा टीका	४ से ५ वर्ष की आयु में	१. टिपिल वैक्सीन का २. टी ए वी वैक्सीन का १-१ माह पश्चात् दो बार में ३. टी ए वी के १ माह पश्चात् उसकी दूसरी मात्रा के साथ चेचक का टीका	टी ए वी और स्माल वैक्सीन एक साथ लगा सकते हैं
बारहवां-तेरहवां चौदहवां टीका	१० से १४ वर्ष की आयु तक	१. वी सी जी वैक्सीन २. चेचक का टीका ३. टी ए वी वैक्सीन	अलग अलग काल में

(५) हीमोग्लोबिन (शोणवर्तुलि) परीक्षा-

अक्सर शिशुओं को अनीमिया या रक्तक्षय हो जाता है। कितना और किस प्रकार कितना रक्तक्षय है इसे जानने के लिए बालक की अंगुली से वेध करके रक्त लिया जाता है। फिर उसे हीमोग्लोबिन मीटर द्वारा जांच करते हैं। बालक की अंगुली की ऊपरी पोर को स्प्रिट से भीगी रूई से अच्छी तरह पोंछकर शुद्ध सुई से या एतदर्थ शुद्ध वेधयन्त्र से कोंच कर रक्त निकाल लेते हैं। कुछ बूंदें पोंछकर पिपट द्वारा २० घन मिलीमीटर रक्त काढ़कर हीमोग्लोबिन ट्यूब जिसमें N/10 का हाइड्रोक्लोरिक अम्ल १० अंश तक भरा हो डाल देते हैं। थोड़ी देर उसे घुमाते और हिलाते हैं ताकि रक्त अम्ल में अच्छी तरह घुल मिलकर एक रङ्ग हो जावे। फिर उसे हीमोग्लोबिनोमीटर में रखते हैं। १०-१५ मिनट पश्चात् उसमें डिस्टिल्ड वाटर की बूंदें डालकर हीमोग्लोबीनो मीटर के रङ्ग के समान बनाते हैं और देखते जाते हैं। फिर जब दोनों का रङ्ग एक हो जाय तब उसमें हीमोग्लोबिन की मात्रा पढ़ लेते हैं। मानव व्याधिकी के सुप्रसिद्ध लेखक भेषज महाविज्ञ श्री महेन्द्रप्रकाश गर्ग ने शोणवर्तुलि की स्वस्थ मनुष्यों में प्रति १०० घन मि. लि. सामान्य सीमा इस प्रकार बतलाई है (देखें उक्त ग्रन्थ का पृष्ठ ५७)—

नवजात शिशुओं	१३॥ से २० ग्राम% (धान्य)
१ वर्ष के बच्चों में	११ से १२ ग्राम%
१० वर्ष के बालकों में	१३ से १४ ग्राम%
पुरुषों में	१३॥ से १८ ग्राम%
स्त्रियों में	११॥ से १६ ग्राम%

(६) पुरीष परीक्षा (Stool Examination)

मल शब्द आयुर्वेद में सभी प्रकार के उत्सर्गित अपद्रव्यों के लिए प्रयुक्त होता है। फीकल मैटर या स्टूल के लिए पुरीष शब्द उचित होने से यही नाम उपयुक्त है। मल परीक्षा के स्थान पर पुरीषपरीक्षा हमने स्वीकार किया है।

आधुनिक नैदानिक (क्लीनीकल) व्याधिकी (पैथालोजी) में पुरीष परीक्षा प्रत्यक्ष देखकर या अण्वीक्ष द्वारा की जाती है। प्रत्यक्ष परीक्षा को ग्रौस एक्जामिनेशन भी कहते हैं। इसमें पुरीष की परीक्षा मात्रा, वर्ण, गन्ध, सान्द्रता, कृमियों की उपस्थिति तथा अन्य ज्ञातव्य इन शीर्षकों में की जाती है। मात्रा को तोलकर मालूम किया जाता है यह सामान्यतः बच्चों में ३५ से ७५ ग्राम होती है अधिक वयस्क शाकाहारियों में यह ३७५ ग्राम तक और लंघन करने से घटकर ७·५ ग्राम तक भी रह सकती है। जो बच्चे केवल दूध पीकर ही रहते हैं उनका पुरीष हलके भूरे रङ्ग का होता है। पीलिया से पीडित बच्चे का मटियाला पुरीष आता है। लोहे की भस्म या लोह योग जिस बालक को दिये जाते हैं उसका मल काला उतरता है। लाल रङ्ग का पुरीष रक्त के कारण भी होता है और कभी-कभी लाल चुकन्दर गाजर या टमाटर न पचने से भी हो जाता है। दुग्धाहारी या शाकाहारी पुरीष प्रायः गन्धहीन होता है। जो पुरीष क्षारीय प्रतिक्रिया देता है वह अधिक दुर्गन्धित होता है। अम्ल प्रतिक्रिया वाला पुरीष अम्लगन्धी होता है। आयुर्वेद पित्त के कारण भृश दुर्गन्धित पुरीष मानता है। आमदोष के कारण भी मल में बहुत दुर्गन्ध आती है।

सान्द्रता के लिए पक्वकदलीफल संकाश का उदाहरण आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है। मल ऐसा हो मानो पका केला हो प्राकृत पुरीष माना जाता है। देर तक टट्टी न आने से मल बहुत सान्द्र (गाढ़ा) और कड़ा हो जाता है। शिशु-पुरीष सामान्यतः मृदु होता है। अतीसार में पतला होजाता है तथा दन्तोद्भेद काल में फटा फटा मिलता है। प्रत्यक्ष परीक्षा में पुरीष में आम या म्यूकस या श्लेष्मा की उपस्थिति भी देखी जा सकती है।

पुरीष की खोज करने पर उसमें कृमि भी देखे जा सकते हैं।

पुरीष की प्रतिक्रिया बैसीलरी डिसेंट्री में क्षारीय तथा अमीबिक (कामरूपी) डिसेंट्री में अम्लीय होती है।

पुरीष की अण्वीक्ष परीक्षा को माइक्रोस्कोपिक एक्जामिनेशन आफ स्टूल नाम दिया जाता है। यह परीक्षा मुख्य रूप से पुरीष में उपस्थित कृमियों या पैरासाइट्स के ज्ञान के लिये की जाती है। इसके लिए बच्चे के मल का ऐसा भाग छांटा जाता है जो पतला हो और आम से युक्त हो। इसमें से थोड़ा सा लेकर नौर्मल लवणोदक (सैलाइन) में घोल कर इस घोल की एक बूंद कांच के शुद्ध किए हुए स्लाइड पर रखकर उसे कवरस्लिप से ढांककर अण्वीक्ष के

नीचे रखकर देखते हैं। एक दूसरे स्लाइड (सूप) पर घुले हुए मल की एक बूंद रखकर उस पर आयोडीन एवं पोटाशियम आयोडाइड सोल्यूशन की एक बूंद मिला देते हैं। इससे यदि रङ्ग नीला आ जाय तो पुरीष में स्टार्च की उपस्थिति प्रमाणित हो जाती है।

केवल लवणोदक मिश्रित पुरीपद्रव को अण्वीक्ष में देखने से उसमें अमीबा है या नहीं उसका ज्ञान होता है। अमीबा वर्धी (वैजीटेटिव) रूप में है या कोप (सिस्टिक) रूप में इसका भी पता चलता है। इसी प्रकार जियार्डिया, ई. नाना आदि का ज्ञान किया जाता है।

पुरीष के अन्दर कृमियों के अण्डों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए थोड़े से पुरीष को पहले संतृप्त लवण जल में घोल लेते हैं फिर इस लवण जलयुक्त पुरीष द्रवांश को काफी देर विशेष प्रक्रिया से घोलते रहते हैं फिर उसे स्लाइड के साथ सम्पर्कित करते हैं। यह सम्पर्क भी ३० मिनट चलता है फिर अण्वीक्ष में अण्डे की आकृति देखकर पुरीष में कौन कृमि हैं इसका ज्ञान करते हैं। इसे संकेन्द्रणीय पुरीषपरीक्षा कहा जाता है।

गण्डूपद कृमि (एस्केरिस लुम्ब्रीकॉइडिस या राउण्डवर्म) अंकुशमुखकृमि (हुकवर्म–ऐंकीलोस्टोमा डुओडिनेल), स्फीत कृमि (टीनिया सोलियम और टी-सैजिनाटा), सूत्रकृमि (थ्रैडवर्म) आदि आदि कृमियों के अण्डों (Ova) का इस प्रकार से ज्ञान हो जाता है।

अमीबा का ज्ञान अण्वीक्ष द्वारा पहले कही विधि से होता है।

प्रयोगशाला में मल की रासायनिक (कैमीकल) परीक्षा भी की जाती है इससे ऑकल्ट ब्लड (अदृश्य रक्त) फैट (स्नेह) तथा पुरीषज पित्तिजन (स्टर्कोबिलिनोजन) का ज्ञान किया जाता है। ये सभी परीक्षाएं श्री गर्ग द्वारा लिखित मानव व्याधिकी (Human pathology) नामक सुन्दर पुस्तक में वर्णित हैं और उसे महेन्द्र प्रकाश गर्ग सीतापुर से खरीदा जा सकता है।

[७] मूत्र परीक्षा–

बालक का मूत्र परीक्षार्थ प्रातःकाल का ही लेना चाहिए। जैसे ही मूत्र उपलब्ध हो जाय उसे परीक्षा हेतु प्रयोगशाला में तत्काल लाना चाहिए। मूत्र की सबसे पहले मात्रा का आकलन करना चाहिए। आयु के अनुसार बच्चों के मूत्र की मात्रा की किंचित् परिवर्तित तालिका उक्त पुस्तक से सामार नीचे दी जा रही है।

आयु		मात्रा मिलीलिटर में	आपेक्षिक घनत्व
२ दिन का नवजात शिशु		१ से ३०	१.००४ से १.००५
४-५ दिन	,,	७० से २००	१.००४ से १.००५
६-१० दिन	,,	२०० से ३००	१.००३ से १.००४
१-२ माह	,,	२५० से ४५०	१.००३ से १.००८
१-२ वर्ष	,,	४५० से ७५०	१.००८ से १.०१५
६-८ वर्ष	,,	८०० से १३००	१.०१० से १.०२०
८-१२ वर्ष	,,	१००० से १५००	१.०१० से १.०२०

मूत्र की भी प्रत्यक्ष, अण्वीक्ष और जीवरासायनिक ये ३ प्रकार की परीक्षाएं होती हैं। इनमें प्रत्यक्ष मूत्र परीक्षा में मूत्र का वर्ण, प्रतिक्रिया, गन्ध, आपेक्षिक भार का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। मूत्र की पारदर्शकता और पारभासकता का भी अध्ययन किया जाता है। गहरा पीला या लाल या गहरा भूरा मूत्र ज्वरावस्थाओं में पाया जाता है। फास्फेट्स की अधिकता होने पर उसका रङ्ग दूधिया सा हो जाता है। मूत्र के आपेक्षिक घनत्व के ज्ञान के लिए यूरीनोमीटर उसमें डाल कर ज्ञात करते हैं। घनत्व अधिक होने पर मूत्र को जल से तनु करके करते हैं कितना तनु किया गया उसका हिसाब होता है।

मूत्र की अण्वीक्ष परीक्षा से मूत्र की कोशिकाओं, स्फटिकों और निर्मोकों (कास्ट्स) का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। पहले मूत्र को सेंट्रीफ्यूज ट्यूब में डाल ५ मिनट तक उसका मन्थन करते (घुमाते) हैं। जब वह सान्द्र हो जाता है तब उसकी १-२ बूंद काच पट्टी पर डाल कवर-स्लिप से ढांक कर अण्वीक्ष द्वारा देखते हैं। इस प्रकार देखने से रक्त के लाल कण, श्वेत कण, पूय कोशिकाएं, उपकला के सैल (इपीथीलियल सैल्स), क्रिस्टल्स या स्फटिक तथा कास्ट दिखाई देते हैं। क्रिस्टल्स कई प्रकार के होते हैं:-

यूरिकाम्ल क्रिस्टल
कैल्शियम आग्जेलेट स्फटिक
कैल्शियम हाइड्रोजन फास्फेट क्रिस्टल

यूरेट्स स्फटिक

अम्लीय मूत्रस्फटिक

क्षारीय मूत्र स्फटिक

मूत्र की जीवरासायनिक परीक्षा (बायोकैमीकल यूरीन ऐक्जामीनेशन) का भी बड़ा महत्व है। इसमें शोथ युक्त बालक के मूत्र में अल्ब्युमिन का पता लगाना पड़ता है। अल्ब्युमिन का ज्ञान आसानी से कर लिया जाता है। एक परख नली का २-४ भाग मूत्र से भर कर उसे कुछ टेढ़ा कर ऊपरी भाग को गर्म करते हैं। २ मिनट बाद उसमें १० प्रतिशत शुक्ताम्ल की ५-६ बूंदें डालकर मूत्र में होने वाली प्रतिक्रिया को पढ़ते हैं। यदि मूत्र में कोई परिवर्तन न हो तो अल्ब्युमिन नहीं है। नाममात्र की सफेदी +, निश्चितसफेदी +, कण के साथ सफेदी + + तथा अपार दर्शक सफेदी + + + एवं पूरी नाल का श्वेत और पारान्ध हो जाना + + + + अल्ब्युमिन का निदर्शक माना जाता है।

मूत्र में ग्लूकोज की उपस्थिति फेह्लिंग घोलों या बेनेडिक्ट घोल से की जाती है। बैनेडिक्ट क्वालीटेटिव घोल से ५ मिलि एक परखनली में डाल ८ बूंद मूत्र के साथ १ मिनट तक गर्म करके फिर पानी में रखकर ठण्डा कर परखनली का रङ्ग देखते हैं। यदि रङ्ग नीला या हरा हो तो ग्लूकोज नहीं (—) या नैगेटिव है। यदि रङ्ग पीताभ हरा हो तो ०.५ प्रतिशत से कम ग्लूकोज मूत्र में है। यदि हरिताभ पीत रङ्ग हो तो ०.५ से १ प्रतिशत, पीला होने पर १ से २ प्रतिशत तथा सिन्दूरिया नारङ्गी रङ्ग होने पर २ प्रतिशत से अधिक मानना चाहिए।

अल्ब्युमिन एवं ग्लूकोज के मात्रात्मक परीक्षण की विधियां तथा अन्य परीक्षाएं मानव व्याधि की आदि से ज्ञात करनी चाहिए।

[८] ष्ठीव या थूक परीक्षा—

बालक को राजयक्ष्मा का उपसर्ग लगने पर उसके थूक की जांच प्रायः की जाती है और उसमें यक्ष्मा दण्डाणुओं की उपस्थिति को आंका जाता है। थूक का पहले आलेप (स्मियर) काच पट्टी पर बनाते हैं फिर उसे ग्राम तथा ऐसिड फास्ट रंजन से रङ्ग कर अणुवीक्ष द्वारा देखते हैं। उसमें ग्रामनैगेटिव माला गोलाणु, ग्रामपोजिटिव माला गोलाणु, यक्ष्मा दण्डाणु तथा कवकों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

बालक की वेदनाएं

शिरः शूल—शिरः शूल में बालक सिर को अधिक हिलाता है नेत्र बन्द कर लेता है, रात को सोते-सोते चिल्लाता है, उसे आहार से ग्लानि होजाती है। नींद नहीं आती है।

कर्ण वेदना—कानों की वेदना से बालक अपने हाथों से दोनों कानों का स्पर्श करता है, सिर को हिलाता है। ग्लानि और अरुचि हो जाती है निद्रा का नाश हो जाता है।

मुख रोग—मुख रोग में बालक के मुख से अत्यन्त लार गिरती रहती है। दूध से द्वेष हो जाता है, उसे पीड़ा का कष्ट अधिक होता है। पिये हुए दूध को पलट देता है तथा कष्ट से बारम्बार नाक से श्वास लेता है।

कण्ठ वेदना—गले की वेदना से भी बालक दूध पलट देता है तथा खाये पदार्थों के सेवन से उसे अजीर्ण हो जाता है एवं ज्वर अरुचि और ग्लानि हो जाती है।

उदर शूल—में बालक स्तन पान नहीं करता बहुत रोता है, बालक उदर को पेट की ओर सिकोड़ता है उदर में गड़गड़ाहट होती है गर्मी लगती है तथा मुख पर पसीना आ जाता है।

शिशुरोग विशेषज्ञ

डा० महेश आर० शाह एम० एस० ए० एम०
रिजनल रिसर्च सेण्टर, जोगिन्दरनगर (हि. प्र.)

हिमालय की क्रोड में बैठकर प्राचीन आयुर्वेद मनीषियों की पुरातन परम्परा का नूतन संस्कार संजोने वाले डा. शाह ने शिशुरोग विशेषज्ञ की कल्पना को मूर्त रूप देने हेतु उसे लेखबद्ध किया है। उन्होंने जिन सद्गुणों और ज्ञानप्राप्ति का मानक शिशुरोग विशेषज्ञ के लिए निश्चित किया है उन्हें उस ओर अपने दृढ़ कदम बढ़ाने वाले आयुर्विद्यावेत्ताओं को हृदयंगम करना ही होगा। डा० शाह आयुर्वेद के उदीयमान नक्षत्र हैं जो आजकल अपने प्रकाश से जोगिन्दर नगर के आयुर्वेदीय रिसर्च सैन्टर को आलोकित कर रहे हैं। पिछले वर्षों में अनेक आयुर्वेदीय पत्रिकाओं में प्रकाशित आपके लेख आपकी विद्वत्ता तथा आयुर्वेद सेवा के परिचायक हैं। सुधानिधि पर आपका विशेष स्नेह है। आशा है वह जहां भी रहेंगे सुधानिधि को अपने ज्ञान बिन्दु अर्पित करते रहेंगे। —गोपालशरण गर्ग

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में एक ही चिकित्सा विषय को भिन्न-भिन्न शाखाओं में बांट दिया गया है। एक सामान्य चिकित्सा विषय का स्नातक किसी विशेष विषय पर अध्ययन करे तो उसे उस विषय का विशेषज्ञ निष्णात या स्पेशलिस्ट कहा जाता है जिस प्रकार इ. एन. टी. विशेषज्ञ, हृद्रोग विशेषज्ञ, स्त्री रोग विशेषज्ञ, मानस रोग विशेषज्ञ आदि। आयुर्वेद में भी इसी विषय को बहुत पहले सोचा गया था। आयुर्वेदीय चिकित्सा को अष्टाङ्गों में विभाजित किया गया है। हर अङ्ग का सीधा सम्बन्ध चिकित्सा से ही है। इस युग में आयुर्वेद में भी भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ तैयार होने चाहिए जिससे कि वैद्य अपना ध्यान किसी एक विशिष्ट विषय पर केन्द्रित करके अधिकतम सफलता प्राप्त कर सके। प्रस्तुत लेख में शिशु रोग विशेषज्ञ किस प्रकार का होना चाहिये यह सामान्यरूप से सोचने का प्रयास किया गया है।

शिशुरोग विशेषज्ञ को सर्वप्रथम उत्तम वैद्य होना अत्यावश्यक है। आयुर्वेदशास्त्र में वर्णित श्रेष्ठ वैद्य के गुणों "दक्षः तीर्थात्त शास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक्"—से युक्त होना चाहिये। ऐसे वैद्य को शिशु रोग विषयक सर्व ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। कुछेक विशिष्ट गुणों का विचार निम्नरूप से किया गया है।

१. शिशु रोगी परीक्षा कौशल्य

शिशुओं में रोग सम्बन्धित परीक्षा करना अल्प अनुभवी चिकित्सक के लिये समस्या बन जाता है, क्योंकि शिशु स्वयं अपने मुंह से तो वेदना का वर्णन कर सकता नहीं है और परीक्षा करना आवश्यक होता है। रोगी के बारे में बातें रोगी की माता या सम्बन्धित व्यक्ति से पूछनी पड़ती हैं।[1]

• शिशु रोगी में सामान्य रूप से की जाने वाली पद्धति

1. The History of the patent and his illness must of Course, in the Case of young Children, be ascertained from the mother or friends.

अनुसार परीक्षा करना सरल बात नहीं है।[२] बड़ी उम्र के रोगियों में तो हर प्रकार से परीक्षा करना सरल है, क्योंकि वह हर प्रकार से परीक्षक के अनुकूल बनता है किन्तु बालक तो अनजान व्यक्ति को देखने, स्पर्श करने मात्र से ने लगता है और ऐसी अवस्था में परीक्षा करने से निदान में गलती होने की सम्भावना अधिक रहती है। ऐसे समय चिकित्सक को चाहिए कि उसे प्रथम शिशु से मित्रता कर लेनी चाहिये। उसे किसी खेलने वाली वस्तु स्टेथिस्कोप आदि देकर, सम्बन्धित व्यक्ति के पास सुलाकर या लेटाकर परीक्षा कर लेनी चाहिये। वैद्य की निरीक्षण शक्ति तीक्ष्ण होनी चाहिये, जिससे वह शिशु की हर चेष्टा का अवलोकन कर रोग सम्बन्धित अनुमान कर सके। आचार्य सुश्रुत कहते हैं कि 'शिशु जब किसी अंग विशेष का स्पर्श बार-बार करता हो और वहां स्पर्श करने से रोता हो तो वहां वेदना जाननी चाहिये।[३]

चिकित्सक को चाहिये कि शिशु की तरफ तीक्ष्ण नजर से न देखें और उसे अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में नग्न नहीं करना चाहिये।[४]

आचार्य चरक ने कहा है कि यदि कोई शिशु बीमार हो जावे तो प्रकृति निदानादि तत्पूर्वक जानकर समस्त आवश्यक स्वास्थ्यकारकऔषधि देश कालादि से जान रोग ज्ञान में सहायक-भावों को देखकर चिकित्सा की शुरुआत करनी चाहिये। (च. शा. ८/६५)

२. निदान-चिकित्सा सिद्ध हस्तता

उपरोक्त शिशु रोगी परीक्षा के सिद्धान्त से परीक्षा के बाद निदान करके चिकित्सा आरम्भ करनी चाहिये। साध्य एवं कष्टसाध्य रोगों में ही प्रवृत्ति करनी चाहिये असाध्य रोगों में कर्म करने से अर्थ, विद्या, यश की हानि होती है और समाज में वैद्य को अस्वीकार्यता मिलती है। रोग निदान करने में आयुर्वेदीय दृष्टि रखनी चाहिये उस रोग का त्रिदोषानुसार विभाजन करना चाहिये। शिशु रोग में वयानुसार रोगोत्पादक निदान होते हैं यथा—बालक के क्षीराद क्षीरान्नाद एवं अन्नाद ऐसे ३ प्रकार किये गये हैं इन भेदों को जानने से यह अनुमान कर सकते हैं कि उत्पन्न व्याधि के कारण १-माता के स्तन्य सम्बन्धित हैं २-माता के स्तन्य की तथा आहार की विषमता सम्बन्धित है तथा ३-केवल आहार सम्बन्धित है। इतनी सरलता होने के बाद चिकित्सा में भी सौकार्य होता है, जैसे १—जिस रोग से माता आक्रान्त हो उसकी चिकित्सा करने से तथा विकृत स्तन्य की चिकित्सा करने से २—स्तन्य की चिकित्सा करते हुए आहार परिवर्तन से तथा ३—लंघन दीपन पाचनादि एवं अपथ्य त्याग-पथ्य सेवन योजना करने से व्याधिप्रशम होता है।

औषध मात्रा का ज्ञान भी आवश्यक है। वयानुसार आयु के ३ भेद बाल मध्य एवं जीर्णावस्था रूप से किये हैं। १६ वर्ष पर्यन्त वय वाले बालक में औषधि मात्रा सामान्य से चौथाई या आधी दी जाती है। शिशु रोगों की चिकित्सा में औषधि योजना करते समय ध्यान रखना चाहिये कि उनमें विष द्रव्य मादक द्रव्य उष्णवीर्य द्रव्य का प्रयोग न हुआ हो। शिशु को औषधि देने की एक प्रसंगित विधि यह है कि, "रोगों के जो रोगनिवारक योग शास्त्र में कहे हैं उस रोग में उन योगों का कल्क बनाकर उसका लेप धात्री के स्तनों पर करके शिशु को स्तनपान कराना चाहिये।"[५]

३. कुमार भरण ज्ञान युक्तता

शिशु रोग विशेषज्ञ को आदर्शकुमारभरणविधि सम्बन्धित ज्ञान होना चाहिये। इस विषय में शास्त्रीयज्ञान

---

2. We Would emphasize the fact that it is offen not possible to be really systematic in one's examination of children.

३. अङ्ग प्रत्यङ्ग प्रदेशे तु रुजा यत्रास्य जायते।
मुहु र्मुहुः स्पृशति तं स्पृश्यमाने च रोदति॥
(सु. शा. १०)

4. Do not stare at the baby, do not ask the nurse to unclothe the child in your presence and try to be friend of the baby by any device you find necessary.
(Ref. No. 1,2,4—Clinical Method,)

५ येषां गदानां ये योगाः प्रवक्ष्यन्तेऽगदङ्कराः।
तेपुतत्कल्क संलिप्तो पाययेत् शिशुं स्तनौ॥

—शेषांश पृष्ठ १७६ पर।

बालरोगावलिज्ञान

आयुर्वेद बृहस्पति श्री शिवकुमार वैद्यशास्त्री, रावतपाड़ा, आगरा

शास्त्री जी का यह दूसरा लेख है जो इस विशेषांक में प्रकाशित हो रहा है। आपने पचास वर्ष पूर्व जब आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का इस देश में कोई अस्तित्व भी नहीं था तब बालकों के विविध रोगों के सम्बन्ध में भारतीय वैद्यों की क्या मान्यताएं थीं उनका ध्यान रखते हुए इस लेख को पूरा किया है। कहीं-कहीं चिकित्सा का सूत्र रूप में निर्देश कर दिया है। लेख उसी परिप्रेक्ष्य में विचारणीय है। - म० मो० चरोरे

१. शिशु के जिस अङ्ग में पीड़ा होती है उसे वह बार-बार छूता है किन्तु अन्य व्यक्ति के छूने पर रोने लगता है। इस प्रकार पीड़ित अङ्ग का सुगमता से ज्ञान हो जाता है।

२. यदि शिशु सोकर उठने के पश्चात् रोवे, जीभ निकाले और दूध की खोज में शिर इधर-उधर हिलावे तब जानना चाहिए कि शिशु भूखा है ऐसी दशा में दूध पिलाने पर वह चुप हो जाता है।

३. जब शिशु के मस्तक में पीड़ा होती है तब वह नेत्र मूंदकर रोता है। अतः शिरःशूल की चिकित्सा करने से रोना बन्द हो जाता है।

४. यदि शिशु बार-बार अपने पैरों को समेट करके अपने पेट की ओर मोड़े और पेट के छूने पर रोवे तब समझना चाहिए कि शिशु के पेट में ही पीड़ा है अतः उदरशूल की चिकित्सा से चुप हो जाता है।

५. जब शिशु रोवे और उसके मुख से झाग निकलें तो समझना चाहिए कि जूं या अन्य कोई कृमि उसे काट रहा है अतः उसे ढूंढ़कर निकाल देना चाहिए और काटे स्थान पर घृत या चन्दन का तैल लगा देना चाहिए रोना बन्द हो जावेगा।

६. जब शिशु के मलाशय या वस्ति स्थान में पीड़ा होती है तब वह बार-बार रोता है और मलमूत्र की रुकावट हो जाती है। उसका मुख मलीन हो जाता है। श्वास तीव्र वेग से चलने लगती है और आंतें बोलती हैं। ऐसी दशा में रबर की थैली में गरम पानी भरकर उससे सेक करें किन्तु ग्रीष्म ऋतु में बरफ तोड़ कपड़े में बांध उसे आध घंटे तक मलाशय एवं वस्ति स्थान पर फेरते रहने से टट्टी पेशाब खुलकर हो जावेंगे और बालक चुप हो जावेगा।

७. **नाभिपाक**—यह नाभि गन्दगी रहने या किसी कृमि आदि के काटने से हो टुण्डी पक जाती है। गरम पानी में वस्त्र डुबो-डुबो कर नाभि को साफ करें एवं सेकें फिर वेसलीन और घृत शुद्ध समान भाग में थोड़ी सी हल्दी का सूक्ष्म चूर्ण मिला इसका फाया टुण्डी पर रख हल्के वस्त्र की पट्टी लपेट दें। इस प्रकार करते रहने से नाभिपाक का कष्ट शीघ्र दूर हो जाता है।

८. **शिशु की त्वचा का लग जाना**—कोहनी, बगल, रान, और घुटने के नीचे कूंच में शिशु की त्वचा चिपकी रहती है अतः मैल जम कर कच्ची जिल्द होने से वह लग उठती है इसे गरम जल से शुद्ध करके इस पर भी वेसलीन

घृत समान भाग मिलाकर अनेक बार लगाते रहना चाहिए। कष्ट दूर हो जावेगा।

९. **शिशु का दूध डालना**—इसके अनेक कारण हो सकते हैं यथा शिशु के स्वयं के पेट विकार से, माता के पेट विकार के कारण, दूध के भारी हो जाने से, माता के दूध में गर्मी बढ़ जाने से अर्थात् भोजन आदि के बनाने के अग्नि कार्य करने के तुरन्त पश्चात्, चक्की आदि के पीसने के परिश्रम कार्य करने के तुरन्त बाद तथा प्रसंग करने के तुरन्त बाद माता का दूध गर्मी पाया हुआ दूषित होता है शिशु को ऐसा दूध पिलाने से शिशु तत्काल उलट देता है तथा अन्य अनेकों रोगों की भी इससे उत्पत्ति हो जाती है। सोंफ के अर्क में १ या २ बूंद कर्पूरासव देना चाहिए।

१०. **शिशु की दूध पीने की इच्छा न होना**—या तो माता के अजीर्ण रोग से ग्रसित रहने से ऐसा हो जाता है या गर्भिणी स्त्री का दूध पीते रहने से भी बालक की अग्नि मन्द हो कर ऐसा हो जाता है किन्तु ऐसी दशा में बिना भूख दूध पिलाने का प्रयत्न करना हानिकारी होता है। शिशु की अग्नि बढ़ाने के लिये लवणभास्कर चूर्ण आदि अथवा घुट्टी आदि का सेवन कराना उचित होता है।

११. **शिशु की नाभि हट जाना**—यदि शिशु दस्त के समय रोवे एवं दस्त पतला होवे तथा दस्त करते समय फिट्-फिट् शब्द होवे तब नाभि हट जाना समझना चाहिए। गुदा के नीचे एक नस होती है उसके अपने स्थान से हट जाने से ऐसा होता है चतुर दाई या इस कार्य में निपुण वृद्धा स्त्री के द्वारा इस नस को चढ़वा देना चाहिए।

१२. **हंसली जाना**—शिशु को बिना गरदन में हाथ लगाये उठाने पर झटका लग जाने से दर्द हो जाता है। गर्दन टेढ़ी हो जाती है इसे इस कार्य की ज्ञात स्त्री से सुतवा दें।

१३. **काग लटक जाना**—यह प्रायः गर्मी से होजाता है। इसमें शिशु दूध पीना बन्द कर देता है या दूध पीकर उलट देता है और रोता अधिक है। चूल्हे की राख और मिर्च काली दोनों के सूक्ष्म चूर्ण को अपनी ऊंगली पर लगा शिशु के तालु में लगा चतुराई से ऊपर को काग उठा दें अथवा—सिरके में माजूफल पीसकर ऊंगली पर लगा शिशु के तालू में लगाकर लटका हुआ काग ऊपर को उठा दें।

१४. **बाल उदर कृमि**—यह रोग शिशु को यदि उसकी माता के शौच में कृमि निकलने का रोग हो तो उसके द्वारा हो जाता है अथवा शिशु को मीठा खिलाते रहने या पाचन शक्ति विकृत रहने से भी इसकी उत्पत्ति शिशु को हो जाती है। बायविडंग का चूर्ण २-४ रत्ती की मात्रा में शहद, जल या माता के दूध में दें। तथा बकायन के बीज या रसोत जल में पीसकर गुदा पर लेप कर देने से भी कृमि रोग नष्ट हो जाता है।

१५. **बाल नेत्र पीड़ा**—इसके कई कारण होते हैं कभी गर्मी सर्दी से, कभी दांत निकलने के समय, कभी दूध पिलाने वाली माता की आंख दुखने के कारण इसमें प्रथम तीन दिन तक कोई तीव्र औषधि न डालें केवल घृत गरम करके लगा दें अथवा ग्रीष्म ऋतु में अर्क गुलाब डालते रहें।

१६. **बाल कास**—यह रोग भी बढ़ने पर शिशु को बड़ा कष्टदायक हो जाता है। अतः इसकी सावधानी के साथ योग्य चिकित्सक द्वारा ही चिकित्सा करावे। माता भी पथ्य पालन से रहे।

१७. **बाल अपच**—इसमें पतले दस्त अथवा दस्त और उल्टी दोनों साथ-साथ होते हैं। इसमें सुहागा भुना और खाने का सोडा १ से २ रत्ती तक माता के दूध या जल में घोलकर पिलावें अथवा सौंफ के अर्क में १-१ बूंद कर्पूरासव पिलाते रहें।

१८. **बाल यकृद् वृद्धि**—शिशु के लिए यह भी बड़ा ही घातक रोग होता है। इसकी उत्पत्ति आहार की अनियमितताओं, आहार बाहुल्यताओं, रखे हुये भारी ठंडे और डिब्बों के बन्द दूध और अधिक मीठे पदार्थों के सेवन द्वारा तथा लगातार शिशु को अजीर्ण रहने तथा मलावरोध बना रहने से ही होता है इसमें पथ्य का सुधार और ताम्र युक्त कुमारी आसव का सेवन भी उपकारी होता है।

१९. **बाल गुदपाक**—यह रोग मलमार्ग गन्दा रहने एवं अधिक दिन तक अतिसार रहने, चुनूनों के काटने या अन्य किसी भी कृमि आदि के काटने से हो जाता है। गुद मार्ग को गर्म पानी से साफ कर इस पर रसौत (जल में घिसकर) घृत या वेसलीन लगाते रहें।

२०. **बाल मुखपाक**—यह माता के उदर विकार या रक्त विकार से तथा कोई भी तीव्र औषध आदि बालक को

खिलाने से प्रायः होता है इसकी चिकित्सा सुहागा भूनकर शहद में चटाने या छोटी इलायची के दाने चकले पर पीस इस पर पानी डाल सफेद चन्दन घिसकर इसमें शहद मिला कर चटावें अथवा चन्दन के इत्र की ४ बूंद शहद में मिला कर रखलें और बार-बार चटावें।

२१. **बाल मसूरिका (रोमान्तिक)**—यह रोग ऋतु परिवर्तन के समय माता के रक्त में मासिक विकृति के कारण रक्त में उपस्थित विष से या अन्य किसी कारण से माता के रक्त में गर्मी आदि कारणों से ही प्रायः होता है। इसमें गृह की सफाई शिशु के वस्त्रों की सफाई तथा वायु शुद्ध रखना अत्यावश्यक है। नीम, गूगल, लोबान, सफेद चन्दन आदि की धूनी प्रातः सायं देते रहें। प्रायः यह रोग २४ से ४८ घंटे तक स्वयं शान्त हो जाता है।

२२. **बाल पक्षाघात**—यह रोग टाइफाइड बिगड़ जाने (मोतीझरा) या इसका विष शेष रह जाने से, वर्षा की भीगी वायु लग जाने या शीत ऋतु में ठण्डी वायु लग जाने से प्रायः होजाता है। चिकित्सा-मल्ल चन्द्रोदय, समीर पन्नग आदि अत्यल्प मात्रा में सेवन कराकर की जाती है।

२३. **बाल अस्थि विकार**—यह रोग व्याधिज, क्षीरज और गर्भज ३ प्रकार का होता है, एलोपैथिक विद्वान् इसका कारण जीवनीय डी० का अभाव, सूर्य का प्रकाश न मिलना आदि मानते है। आयुर्वेदिक सिद्धान्तानुसार गर्भिणी माता का दूध पिलाना, अशुद्ध एवं सील भरी वायु लग जाना तथा सूर्य प्रकाश का अभाव आदि होना माना जाता है। चिकित्सा अश्वगन्धारिष्ट, दशमूलारिष्ट आदि ३-३ माशे समान जल मिला दिन में ३-४ बार देने और उदर शुद्धि का भी ध्यान रखने से की जाती है।

२४. **बाल शोष**—इसकी उत्पत्ति बालक के दीर्घ समय तक किसी भी रोग से ग्रसित रहने, पोषक आहार की कमी आदि के कारण ही प्रायःहोती है। महामरिच्यादि तैल और लाक्षादि तैल का सर्व शरीर में मर्दन तथा कूर्मास्थि भस्म, शंख की रज को मिलाकर देने या कुमार कल्याण रस आदि के द्वारा की जाती है।

२५. **बाल गलौघ (डिप्थीरिया)**—यह संक्रामक एवं अति कष्ट साध्य रोग है। इसकी उत्पत्ति माता के गलत आहार विहार के कारण ही होती है। इस रोग में कफ और वायु की प्रधानता होती है। इसमें बालक का कण्ठ लाल सुर्ख और छिला सा हो कर बालक को खांसने छींकने, रोने आदि तक में अत्यन्त कष्ट होता है। साथ में ज्वर भी बड़ा तीव्र होता है।

२६. **बाल पाण्डु एवं कामला रोग**—शिशुओं को इसकी उत्पत्ति प्रायः दो कारणों से होती है। (१) यकृत्-वृद्धि से। (२) बालकों के मिट्टी खाने के कुपरिणाम से। पेट बढ़कर बालक के पेट की नसें नीली पीली पड़ कर तन जाती हैं। इस रोग को दूर करने के लिये २७वीं संख्या के प्रयोग को सेवन कराना और पथ्य का पालन कराना ही श्रेयष्कर होता है तथा पुनर्नवा मांडूर भस्म भी इसमें अति उपयोगी रहती है।

२७. **बाल आक्षेप**—जब बालक के मुख से झाग आ कर बेहोशी हो जाय तभी यह समझ लेना चाहिये कि इसे वातज आक्षेपक रोग है, बालकों केलिये यह रोग कष्टसाध्य मारक होता है। शिशु की दांती मिचने से पूर्व ही दांतों में चम्मच की डंडी आदि डाल देना आवश्यक होता है। क्यों कि औषध पहुंचने के लिये बाद में दांती खोलना बड़ा कठिन हो जाता है।

उपाय—श्वेत रङ्ग की दूब घास जिसे खेत या जङ्गल से बड़ी सुविधा से प्राप्त किया जा सकता है के दो-चार पत्ते और १-२ मिर्च काली को थोड़े जल के साथ रगड़ वस्त्र में छान इसे गुनगुना कर पिला देने पर वह अल्पकाल में ही रोने लगेगा अर्थात् शिशु होश में हो जाकर इस दिव्य बूटी के प्रयोग से बच जावेगा।

२८. **बाल त्वचा रोग**—बालकों के शरीर में खाज, खुजली तथा अनेक प्रकार के छाले, फफोले, रक्त के दूषित हो जाने के पश्चात् उठते रहते हैं। जो बड़े ही कष्टप्रद एवं संक्रामक होते हैं इसके लिये वृहद मंजिष्ठादि अर्क का सेवन कराना तथा लगाने के लिये नीम क्वाथ से साफ करने के पश्चात् चन्दन का तैल या राल का मलहम लगाना अधिक लाभप्रद होता है। माता को नमक बहुत कम लाल मिर्च, तैल, गुड़, खटाई तथा बासी एवं वेजीटेबिल के सेवन का त्याग कर देना चाहिये।

२९. **बाल नेत्र रोग**—शिशुओं के नेत्रों में कोई भी कष्ट हो जाने पर नेत्रों की सफाई निम्ब क्वाथ में बोरिक एसिड डाल वस्त्र का टुकड़ा या स्वच्छ रुई का टुकड़ा डुबा डुबा कर उससे सिकाई एवं सफाई प्रथम करें। अनेक बाल-

नेत्र रोग तो माता के स्तन के दूध की २-४ बूंद नेत्रों में डालने और स्तन दूध में ही वस्त्र का टुकड़ा या स्वच्छ रुई का टुकड़ा भिगोकर नेत्रों पर रख कर बांधने से ही ठीक हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त शिशुओं के सर्व नेत्र रोगों के नष्ट कर देने वाला नित्य के प्रयोग के लिये जिसके नित्य लगाते रहने से कोई नेत्र रोग हो ही नहीं पाता है। एक काजल का प्रयोग भी लिख रहे हैं।

प्रयोग—नौनी घृत १०१ बार कूप जल से धुला हुआ ५ तोला, नीम के तैल की पाड़ी हुई कज्जली ६ माशे फिटकिरी भस्म ६ माशे। बोरिक एसिड ६ माशे, जिंकआक्साइड ६ माशे।

निर्माण विधि—फूल की थाली में उपर्युक्त नौनी घृत और तीनों औषधों को मिलाकर फूल की ही कटोरी से ४८ घंटे रगड़ना चाहिये-प्रतिदिन जितने घंटे घोंट सकें उसे लिपते रहें और रात्रि को अर्क गुलाब डालकर थाली ढक कर रख दिया करें प्रातः अर्क गुलाब नितार फेंक कर पुनः रगड़ना प्रारम्भ कर दें इस प्रकार तैयार कर किसी शीशी या चीनी की ढक्कनदार डिबिया में भरकर रख लें। प्रातः सायं इसका प्रयोग नेत्रों में करते रहने से बाल युवा और वृद्धों को कोई नेत्र रोग नहीं हो सकता है तथा सर्व प्रकार के नेत्र कष्ट दूर हो जाते हैं।

पृष्ठ १७५ का शेषांश

एवं कर्माभ्यास दोनों आवश्यक है। यदि समय हो तो अन्य प्रान्तीय विधियों को जानकर उन सबसे एक अच्छी विधि बनाकर उसका ज्ञान शिशु माताओं को देना चाहिये। कुमार भरण में होने वाली गलतियों से उत्पन्न विकार सम्बन्धित ज्ञान भी देना चाहिये। आदर्शकुमारभरण द्वारा ही माता-पिता अपने शिशु को आदर्श व्यक्तित्व दे सकते हैं।

४. बाल मानस अनुभव युक्तता

शिशुओं में कई व्याधियां ऐसी उत्पन्न होती है जिसका सम्बन्ध बालमानस से साक्षात् रूप से होता है। केवल औषधि चिकित्सा से वे साध्य नहीं होतीं उनमें मानस चिकित्सा भी करनी पड़ती है। मानसदोष शान्ति के लिये ज्ञान, विज्ञान, मन्त्र जप तप, इच्छित वस्तुप्राप्ति आदि साधन है। आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र में बाल रोगों का कारण ग्रह-राक्षस देवतादि बाल शरीर में प्रविष्ट होकर अपने विशिष्ट लक्षण उत्पन्न करते हैं अतः विद्वान् वैद्य को उसे सम्यक्तया जानकर योग्य चिकित्सा द्वारा उनकी शान्ति करनी चाहिये।

उपरोक्त विवेचनानुसार गुणयुक्तता "शिशु रोग विशेषज्ञ" के लिये चाहिए केवल आयुर्वेद शास्त्र का नहीं किन्तु वर्तमान समय में जितनी चिकित्सा प्रणालियां हैं, उन सबका ज्ञान रखना शिशु रोग विशेषज्ञः की उत्तमता सिद्ध होगी।

आभार प्रदर्शन—लेखक डा. पी. एस. चतुर्वेदी आफिसर इन्चार्ज रिजनल रिसर्च सेन्टर, जोगिन्दर नगर का परम आभारी जिनके समय-समय के मार्ग दर्शन पर लेख प्रकाशित किया गया।

मुख पाक

अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रै र्मुख पाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्याभया जातापत्र क्षौद्रै स्तथा परम्।

पीपल वृक्ष की छाल तथा पत्तों को पीसकर मधु में मिलाकर मुख में धारण करने से अथवा दारु हल्दी मुलहठी, हरड़, चमेली के पत्ते इन सब को इकट्ठा पीसकर मधु के साथ लेप करने से मुख पाक रोग बच्चों का ठीक हो जाता है।

शैशवकालीन रोग ज्ञापक प्रश्नमाला

वैद्य श्री पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, जबलपुर

श्री शास्त्री का धन्वन्तरि कार्यालय से युगानुयुग से सम्बन्ध रहता आया है। आपने प्रत्येक चिकित्सक के लिए शिशुरोग ज्ञापक प्रश्नमाला तैयार कर भेजी है। इसके अनुसार प्रश्न करते जाइये और उत्तर नोट करते जाने से शिशु को किस रोग ने ग्रसित किया है वह रोग किस संस्थान, कोष्ठ या आशय में है इसका सहज ही ज्ञान हो जाता है। इस प्रश्नमाला का उपयोग वैद्य छात्रगण अपने आतुरालय में शिशुरोग इतिवृत्त लिखने के लिए भी कर सकते हैं। –म० मो० च०।

१. नाम और पूरा पता।

२. वर्तमान आयु।

३. शरीर की गठन और बनावट।
   (अ) ऊंचाई फीट-इन्च में।
   (ब) वजन सेर या पाउण्ड या किलो में।
   (स) शरीर-आकृति दुर्बली या मोटी ?
   (द) शरीर का रङ्ग।

४. पारिवारिक-वृत्तान्त।
   (अ) माता पिता हैं या नहीं ?
   (आ) उनका स्वास्थ्य कैसा है।
   (इ) नहीं हैं तो किस आयु में, किस रोग से उनका देहान्त हुआ ?
   (ई) मा-बाप अपने जीवन में किन-किन रोगों से ग्रस्त रहे और कैसे ठीक हुए।
   (उ) भाई-बहनों की संख्या ? यदि कोई मर गये हैं तो किस रोग से ऐसा हुआ ?

५. जीवन-निर्वाह का या माता पिता का ?
   (अ) वर्तमानपेशा। (आ) पुराना पेशा।

६. रोगोत्पत्ति व इतिहास।
   किस प्रकार रोग बढ़ा।
   रोग के साथ का इलाज।
   रोग कब से। है
   रोग के वर्तमान स्पष्ट-लक्षण।

७. इनमें से रोगोत्पत्ति का सम्बन्ध।
   कुनैन आदि का प्रयोग या दुष्प्रयोग।
   भीगना, सर्दी लगना या चोट लगना।
   आहार व्यवस्था या अधिक खाना या अनाप सनाप अव्यवस्थित आहार।

चर्मरोग या दब जाना।

जाड़ा, लू या तैल-गैस-धुआं आदि का लगना।

चेचक या मोतीझरे के बाद।

८-इनमें से कोई वंशगत रोग तो नहीं।

तपेदिक, दमा या कोढ़, मृगी, मूर्च्छा या वातरोग।

उन्माद या ब्लड-प्रेशर। पारा या रस कपूर-दोष।

बवासीर या चर्म रोग।

९. भूख और प्यास की स्पष्ट हालत।

किस खाद्य से विशेष-रुचि।

अरुचि किन खाद्यों से रही है।

पाचन का स्पष्ट-विवरण।

प्यास का आवश्यक वर्णन।

१०. इनमें से कौन पसन्द आता है?

गरम या ठण्डा। खुली हवा में या भीतर रहना।

अकेलापन या साथी-संगी?

जाड़ा, गरमी या बरसात।

चंचलता या स्थिरता।

११. इनमें से कोई रोग था या नहीं? था तो कैसे कब अच्छा हुआ?

(गरमी, कंठमाला, दमा, यक्ष्मा, श्वास या पारद-दोष आदि) (या डिपथीरिया, हूपिंगकफ, सर्दी-जूड़ी, अस्थि मार्दव, अत्यधिक कृशता, आंत्र विकार, फुफ्फुस-विकार जनित रोग, पोलियो, यकृद्दाल्युदर, यकृत्प्लीहावृद्धि, सर्वाङ्ग शोथ, कामला, बालदोष, उदर-वृद्धि, रीढ़ की हड्डियां झुकजाना, कूल्हे पर झुर्रियां हो जाना आदि।)

१२. पेट का कौन सा भाग फूला हुआ है।

१३. कोई दिमागी गड़बड़ तो प्रतीत नहीं होती।

१४. मुख से दुर्गन्ध तो नहीं आती।

१५. नींद का स्पष्ट विवरण।

१६. पाखाना कैसा होता है। रङ्ग और गंध क्या कैसे हैं? जांच हुई हो तो रिपोर्ट।

१७. मूत्र का रङ्ग, गंध, परिमाण। नीचे सफेदी तो नहीं जमती? जलन तो नहीं? जांच हुई हो तो उसकी रिपोर्ट।

१८. रोग वृद्धि का समय एवं कारण?

१९. रोग कैसे और कब घटता है?

विभिन्न रोगों में मुखाकृतियाँ

-विशूचिका से पीड़ित बालक

-मोटा बालक

धनुर्वात का रोगी बालक

चुल्लिका ग्रन्थि के रस की न्यूनता से पीड़ित बच्चा

२० ज्वर संबंधी पूरा विवरण। बराबर रहता या नागा देकर आता है? साथ में खांसी तो बराबर नहीं बनी रहती? निश्चित समय पर आता है या घटता-बढ़ता रहता है। मलेरिया, टाइफाइड, निमोनियां, क्या प्रतीत होता? मल-मूत्र, भूख, प्यास, दाह-पसीना-बेचैनी झिनझिनी, सिरदर्द आदि का विवरण। शरीर, नेत्र एवं जीभ का रङ्ग? नाखून कैसे हैं। रात को ज्वर नहीं आता?

२१. इन अवयवों में तो कोई रोग नहीं है?

१. आंख, २. नाक, ३. कान, ४. गला, ५. फेफड़ा आदि।

२२. तिल्ली, गुर्दे, और जिगर की परिस्थिति।

२३. और भी जो उल्लेखनीय हों। जैसे—अण्डवृद्धि, नेत्र विकार, चर्मविकार, अशक्ति, जल्दी-जल्दी जुकाम का होना, परेशानी, कुम्हलाया रहना आदि।

२४. और भी आवश्यक उल्लेखनीय बातों का पूरा विवरण दीजिये ।

नोट—प्रत्येक प्रश्न का पूरा-पूरा स्पष्ट उत्तर अलग पृष्ठों पर साफ लिखकर सम्हाल कर रख लेवें। दूसरों से यह पत्र-व्यवहार गुप्त ही रखें। और सावधानी से योग्य उहापोह- पूर्वक विचार करके गंभीर व उत्तम परामर्श देवें। की गई चिकित्सा की रिपोर्ट भी साथ में अवश्य रखें। यदि अन्य चिकित्सक सहायतार्थ आवें तो उनसे खुलकर स्पष्टतया बात करने में संकोच न करें।

★★

शिशु रोगों की परीक्षा में स्मरण रखने योग्य कतिपय बातें

* रोगी बच्चे किसी अपरचित व्यक्ति को देखकर डर जाते हैं। बच्चे को पेट देखने के लिए, रोगी बच्चे का उदर ढीला होना चाहिए। पर बच्चे रोकर उसे कड़ा कर देते हैं। रोगी बच्चे को स्टेथैस्कोप का सिरा फाउण्टेनपैन, पैन्सिल या चाकलेट कोई खिलौना देकर उनसे आत्मीय भाव बढ़ाकर उनको खेल में लगाकर ही उनकी भली भांति परीक्षा करनी चाहिए।
* डाक्टर हचिंसन ने लिखा है कि बालक की ओर न तो चिकित्सक को घूरकर ही देखना चाहिए। और न उपस्थिति में उसे नंगा ही कराना चाहिए। क्योंकि इन कार्यों से वे चिकित्सक से चिढ़ जाते हैं और भय खाते हैं। अतः जहा तक और जैसे भी हो उस बालक को अपना मित्र बना कर उसकी परीक्षा करनी चाहिए।
* सबसे पहले रोगी बच्चे के रूप, आकार प्रकार और वर्ण आदि को अच्छी तरह देखना चाहिए। फिर आराम से उसकी नाड़ी देखनी चाहिए। नाड़ी परीक्षा के बाद स्टैथैस्कोप द्वारा वक्ष परीक्षा करनी चाहिये। फिर जिस संस्थान का रोग हो उस संस्थान की विशेष परीक्षा करनी चाहिए।
* जब बच्चा रो रहा हो तो उसकी नाड़ी नहीं देखनी चाहिए क्योंकि रोने से १५–२० या २५ तक नाड़ी की गति अधिक हो जाती है। इसलिए रोते बच्चे को चुपकरा कर ही नाड़ी देखनी चाहिए।
* बच्चों में थर्मामीटर बगल, जांघ, या गुदा, में लगाते हैं। बच्चों में ताप वयस्कों की अपेक्षा अधिक होता है और जल्दी ही घटता बढ़ता रहता है। मामूली कारण से ही बच्चों का ताप बढ़ जाया करता है।
* बहुत छोटे बच्चों को थर्मामीटर बगल के नीचे जांघों के निचलेभाग को दबाकर या गुदा के अन्दर लगाने से थर्मामीटर के टूटने का भय नहीं रहता।
* गुदा के अन्दर तापमान मुंह के तापमान से आधा दर्जा अधिक और बगल तथा जांघ से एक दर्जा अधिक होता है।
* बच्चे पर गर्मी-सर्दी और वायुमण्डल का प्रभाव सरलता से होता है। यदि नवजात बच्चों को अधिक वस्त्र पहना दें तो उनका टैम्परेचर नार्मल से अधिक हो जायगा।
* कई बच्चों को जन्म से पहले ८–१० दिन में ज्वर हो जाता है। किन्तु कुछ दिन बाद यह ज्वर स्वयं उतर जाता है।
* बच्चों के ज्वर में गले और कान को ध्यान से देखें, क्योंकि इन अङ्गों में मामूली–सी खराबी आ जाने पर बच्चों को ज्वर हो जाता है।

(संकलिन)

शिरोरोग चिकित्सांक

*

चिकित्सा खण्ड

*

इस खण्ड को

★

इस खण्ड को निम्न उपखण्डों में बांटा गया है—

(१) शिशु ऊर्ध्व जत्रु रोगोपखण्ड

(२) शिशु श्वसन संस्थानीय रोगोपखण्ड

(३) शिशु कोष्ठ कोष्ठांग रोगोपखण्ड

(४) बालहृद्रोगोपखण्ड

(५) शिशु मूत्र प्रजनेन्द्रिय रोगोपखण्ड

(६) शिशु त्वगरोगोपखण्ड

(७) शिशु सप्त धातु रोगोपखण्ड

(८) शिशु विविध रोगोपखण्ड

(९) विविध चिकित्सा पद्धतियां तथा शिशु रोग

लेखक--डा० केशवानन्द नौटियाल ए.एम.एस., नौटियाल निवास, शंकुधारा वाराणसी

आयुर्वेद में इस विषय पर विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं होता। आयुर्वेद में मेध्य औषधियां तो मिलती हैं जो मेधा या बुद्धि का विकास करने की सामर्थ्य रखती हैं पर उन स्थितियों का विश्लेषण नहीं किया गया जिनके कारण मेध्य औषधों के देने की किसी को आवश्यकता पड़े। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान तथा मनोविज्ञान के धुरन्धरों ने एतद्विषयक प्रचुर साहित्य उत्पन्न किया है। मन्दबुद्धियों के विविध वर्ग बनाए हैं और उनके सामयिक स्वरूप और स्तर पर काफी प्रकाश डाला है। इस सारे विषय को मैण्टल डैफिशियेन्सी के अन्तर्गत रखा गया है। पश्चिमी देशों में तो इस विषय में कानून भी बनाए गये हैं।

बुद्धिमान्द्य या मैण्टल डैफिशियेन्सी को लेकर जिन विविध शब्दों का उपयोग किया जाता है उनमें कुछ नीचे दिये जा रहे हैं:—

(१) फीबिलमाइण्डेड--इसे आधुनिक हिन्दी में क्षीणबुद्धि कहा जाता है। इस वर्ग के बालकों की निरन्तर देख-रेख रखना आवश्यक होता है। इन्हें पढ़ने के लिए विशेष प्रकार की कक्षाओं की आवश्यकता पड़ती है। सामान्य पाठशालाओं में उनका बौद्धिक विकास नहीं हुआ करता है।

(२) ईडियट--इसे आधुनिक हिन्दी में जड़बुद्धि कहा जाता है। इन्हें यह होश भी नहीं रहता कि सामने नदी बह रही है उसमें वे डूब जायेंगे या आग जल रही है उसमें जल जायेंगे। इनकी हर क्षण चौकीदारी करनी पड़ती है।

शिशुओं की बुद्धि कैसी है कुशाग्र या कुण्ठित उसका ज्ञान करना कठिन होता है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बुद्धिमान्द्य पर बहुत अधिक कार्य किया है। प्रस्तुत लेख में हमारे चिरपरिचित डा. नौटियाल जी ने बहुत परिश्रमपूर्वक प्रकाश डाला है यही नहीं उन्होंने आयुर्वेद में भूतजुष्टता का सम्बन्ध बुद्धिमान्द्य परक आधुनिक रोगों के साथ जोड़ कर एक नई दिशा की ओर इङ्गित करके उन रहस्यों की कुंजी प्रस्तुत की है जो अभी तक मिस्ट्री ही बने हुए थे। सारा लेख आयुर्वेद को एक उच्च धरातल पर उस क्षेत्र में भी प्रस्थापित करता है जिस पर आयुर्वेद की कोई कल्पना भी नहीं करता था। एतदर्थ हम नौटियाल जी के विशेष ऋणी हैं। —गोपाल शरण गर्ग

(३) इम्बेसाइल–इन्हें नई हिन्दी में मूढ़ संज्ञा दी जाती है। वे अपनी ठीक-ठीक व्यवस्था करने में असमर्थ रहते हैं। वैसे साधारण कार्य वे कर सकते हैं।

मौरलडिफैक्टिव–ये नैतिकदोपयुक्त कहे जा सकते हैं। इनका व्यवहार सामान्य मर्यादाओं के बाहर होने से इनकी विशेष देख-रेख करनी पड़ती है।

इनमें कुछ तो विविध रोग वर्गों के अन्तर्गत आजाते हैं पर कुछ इनमें नही आते और उनको प्राथमिक अमनस्कता (प्राइमरी अमेंशिया) नामक वर्ग में रख दिया जाता है। रोग वर्गों में लघुशिरस्कता, अवटुवामन या क्रैटिन तथा मंगोल आदि में आते हैं। प्राथमिक अमनस्कता के वर्ग में आये हुए मन्द बुद्धियों की मन्दबुद्धिता का कोई ठीक कारण पता नही चलता वे विना ज्ञात कारण के ही मन्दबुद्धि होते हैं यही उनके पृथक् वर्ग में रखे जाने का कारण है।

बुद्धिमान्द्य जिन विविध कारणों से होता है उनमें कुछ नीचे दिये जाते हैं:—

i. मंगोलता, ii. अवटुवामनता, iii. सूक्ष्ममस्तिष्कता, iv. उदकशीर्षता, v. प्रसवकालीन आघात, vi. वंशानुगत जड़बुद्धित्व, vii. अपस्मारजन्य मनोभ्रंश, viii. फिरङ्ग-जन्य मनोभ्रंश, ix. एपिलोइया के कारण, x. मस्तिष्क पाकोत्तर कालीन आदि।

इनसब कारणों में बच्चे के माता पिता के मनो-विकारों से ग्रसित होने का इतिहास वहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। एक बार एक देश के लगभग २६०० पागलों या मनोरोगों से पीड़ित व्यक्तियों के माता पिताओं का विचार किया गया और यह पाया गया कि उनमें आधे रोगियों के माता पिता या अन्य कुटुम्बी जन किसी न किसी मनोविकार से पीड़ित या अपस्मारी रह चुके हैं। किन्तु यह विश्लेपण वड़े वड़े मनोविकारों से पीड़ित उन रोगियों का किया गया था जो पागल-खानों में थे। सामान्य बुद्धिमान्द्य के पीछे वंश या कुटुम्व की परम्परा कारणभूत होगी यह नहीं कहा जा सकता। डॉ. शैल्डन के अनुसार जिन परिवारों में मानसिक व्यप-जनन कर्त्ता विकार–अन्धतामय अनुवंशी जड़ बुद्धिता (Amaurotic family idiocy) या प्रमस्तिष्क पीत विन्दु व्यपजनन (Cerebro-macular Legeneration या शिल्डरामय होता है उनमें क्षीण बुद्धितायुक्त बच्चों का जन्म होता है।

चरक ने उन्माद की उत्पत्ति में जो कारण दिये हैं उन्हें हम मन्दबुद्धिता के लिए भी मान सकते हैं। उसमें भीरुता, उपक्लिष्टसत्वता, उत्सन्नदोपता, अनुचित आहार, तन्त्र प्रयोग, व्याधिवेग से क्षीण देहता, कामक्रोधादि वेगों की अधिकता, अभिघात आदि के कारण उपहत हुआ मन बुद्धि को प्रचलित करके तथा उदीर्ण हुए दोष मनोवह स्रोतों में फैलकर बुद्धिमान्द्य पैदा कर देते हैं।

कोई वालक बुद्धि मान्द्य से पीड़ित है या नहीं इसकी तत्काल जांच करना सम्भव नहीं होता। कई महीनों का शिशु जव हो जाता है तव पता लगता है कि वह मन्दबुद्धि है। वह भी तव जव साथ के अन्य वच्चों जैसा व्यवहार करने में असमर्थ हो जोता है तव उसकी मन्द बुद्धिता का पता लगता है। मंगोल का ज्ञान जन्म के साथ हो जाता है अवटु वौना या क्रैटिन की भी आदतों से उसका पता लगजाता है।

मन्दबुद्धि के कारण कोई शिशु अन्धा है या देख सकता है इसका ज्ञान जल्दी नही होता। पहले ही महीने में वच्चा चमकीली चीजों को देखने लगता है पर अन्धता का ठीक ठीक पता ६ माह की आयु के पहले होना कठिन होता है। इसी प्रकार कोई शिशु वहरा है या सुनता है इसका ज्ञान कुछ ही सप्ताहों की आयु वाले वालक के आवाज से चोंक जाने की प्रवृत्ति से लगाया जा सकता है।

वच्चे अपने हाथ में कोई न कोई वस्तु पकड़ लेते हैं। जव इस पकड़ का अभाव मिले तो बुद्धिमान्द्य का ध्यान जाना चाहिए। विविध शरीर क्रियाओं के द्वारा भी वच्चे की बुद्धि का पता लगता है। आमतौर पर ३ महीने का वालक सिर उठाने लगता है और ६ महीने का अपना सिर साधने लगता है। ९ माह का वच्चा वैठ निकलता है। १२ से १८ माह का वच्चा खड़े होना सीख जाता है। यदि इन कालों में वच्चा यह सव नहीं करता तो उसमें बुद्धि की कमी का अहसास किया जासकता है। पर कभी-कभी शारीरिक विकास की गड़वड़ी से वच्चा उठ वैठ नहीं पाता जवकि उसकी बुद्धि ठीक रहती है इसे भी देखना होगा। कोई वच्चा १०-१२ माह की आयु में ही शब्दों का उच्चारण कर निकलता है, पर कोई २ वर्ष तक

मनोविकार नहीं है पर इसके हाथ पैर बराबर हिलते रहते हैं। डरा डरा सा देखता है।

(५) **ब्रह्मराक्षस**—बालक बड़ा क्रोधी होता है और अपने को ही काष्ठ शस्त्र आदि से चोट पहुँचाता रहता है, बड़ा चपल होता है।

(६) **राक्षस**-इसकी भृकुटियां टेढ़ी होती हैं। नींद नहीं आती, देखने में विकट होता है। बड़ा होनेपर मद्य मांस स्त्री में विशेष रुचि वाला होता है। भोजन के समय बिना कारण मूर्खवत् हंसता है।

(७) **पिशाच**-बीमार रहता है बिना करण रोता है (रुदन्तमनिमित्ततः) सम्बद्धाबद्ध बोलता है,स्मृति हीन नङ्गा रहना पसन्द करता है।

(८) **प्रेत**-डरा हुआ और भोजन न करने वाला होता है और दिन भर तिनके तोड़ा करता है।

(९) **कूष्माण्ड**—रुक रुक कर चलता है। काला-कलूटा होता है। उसके वृषण सूजे हुए और लटकते हैं।

(१०) **निषाद**—नंगा रहना पसन्द करता है। दृष्टि चंचल होती है।

(११) **औकिरण**—चीखता है पानी से अधिक खेलना पसन्द करता है।

(१२) **वेताल**—शरीर कांपता रहता है और बहुत सोता है।

(१३) **पितृग्रह**—नेत्र मैले, शकल दीनता युक्त और तालु शुष्क. रुक-रुक कर बोलने वाला होता है।

इन ग्रहाविष्ट बालकों या व्यक्तियों की साध्यासाध्यता के विषय में वाग्भट ने लिखा है:-

कुमारवृन्दानुगतं नग्नमुद्धतमूर्धजम् ।
अस्वस्थमनस दैर्घ्यकालिकं संग्रहं त्यजेत् ॥

कुमारों के समूह से युक्त, नंगा रहने वाला, खड़े बालों वाला, अस्वस्थमन (मनोविकार) वाला, दीर्घकाल से इन लक्षणों से युक्त ठीक नहीं हुआ करता। आधुनिक विद्वान् भी सूक्ष्म मस्तिष्कता से पीड़ित बालकों को असाध्य मानते हैं।

जो गन्दे रहना पसन्द करते हैं; द्वेषी तथा ढीठ होते हैं। मंगोलों के बारे में लिखा है कि ये बड़े नकलची होते हैं। Fond of musical sound and good tempered (स्वाचारं सुरभि हृद्यं गीतनर्तनकारिणम्) होते हैं। इन्हें सुधारा जा सकता है। प्राथमिक अमनस्कता का सुधार सम्भव नहीं है। इन्हें ठीक ठीक ट्रेनिङ्ग देने से चलना, बोलना, छोटे छोटे काम करना सिखाया जा सकता है। ये सभी ग्रहजुष्ट या बुद्धि मान्द्य से पीडित व्यक्ति औपसर्गिक रोगों से शीघ्र पीड़ित हो जाते हैं जिसके कारण इनका अल्पायु होना अधिक सम्भव है।

बुद्धिमान्द्य या भूतजुष्टता की चिकित्सा क्या की जावे यह भी एक बड़ी समस्या है। वाग्भट लिखता है:-

भूतं जयेदहिंसेच्छुर्जपहोमबलिव्रतैः ।
तपः शीलसमाधीनदानज्ञानदयादिभिः ॥

अहिंसेच्छुक भूतों को जप, होम, बलि, व्रत, तप, शील, समाधान, दान, ज्ञान, दयादि से जीते। अर्थात् इनको दया पूर्वक शील, समाधान की ट्रेनिंग दें। व्रत, तप सिखावें और जप, होम, बलि आदि धार्मिक अनुष्ठानों से युक्त करें। इनको जितना जल्दी हो ट्रेनिंग दें। मलमूत्र ठीक स्थान पर त्यागने की ट्रेनिंग, शौचाचार की ट्रेनिङ्ग, हाथ पैर हिलाने की ट्रेनिङ्ग, बोलने खड़े होने, टहलने की ट्रेनिङ्ग तसवीरों खिलौनों से ज्ञान के विकास की ट्रेनिङ्ग, बोलने का अभ्यास। अच्छाहो कि ६-७ वर्ष की आयु के मन्दबुद्धि बालकों को बुद्धि विकासक गुरुकुलों में भेज दिया जावे जहां इस विषय के मास्टर गुरुओं की प्रत्यक्ष देख-रेख में उन्हें समाज के लिए उपादेय बनाया जा सके।

इन बच्चों के सुधार में औषधियों का उपयोग बहुत सीमित है। वाग्भट ने ऊपर जितने कर्म लिखे हैं उनमें औषधें देना नहीं लिखा। क्रैटिनों को थायराइडसत्व देना उग्रों को शामक दवा देना तगर या ब्रोमाइड इससे अधिक दवाएं आवश्यक नहीं हैं।

इनको धूप देना, मालिश करना, नस्य या अंजन देकर चैतन्य लाभ करना, शरीर पर प्रलेप और परिषेकों से उनकी मनोदशा सुधारने का विधान है।

मंगोलीयता मंगोल बच्चों में मिलती है। इन्हें मंगोल इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनकी आकृति मंगोल वंशियो नेपाली और चीनियों से मिलती जुलती होती है। ये बच्चे अपनी आंखों को ऊपर की ओर चढ़ाते रहते हैं जिससे पुतलियों के नीचे का श्वेत मण्डल चमकता रहता

है। वाग्भट ने स्कन्दी बालक के लक्षणों में भृशं ऊर्ध्वं निरीक्षते लक्षण दिया है। ये अपनी जीभ बाहर निकालते रहते हैं। ३-४ वर्ष की आयु के बालकों की जीभ में विदार (फिशर्स) हो जाते हैं कई दिनों में भी बच्चे बाहर जीभ निकालने की आदत वाले होते हैं पर उनकी जीभ में विदार नहीं हो पाते। मंगोल बच्चों की नाक से पूय युक्त स्राव बराबर बहता रहता है। उनकी नाक अक्सर रुंधी रहती है। उनका स्वर भी सूखा रहता है। उनका हाथ चौड़ा, अंगुलियां नुकीली, कनिष्ठिका अन्दर को मुड़ी हुई, पैरों के तलवे सपाट, बाल थोड़े और कान छोटे होते हैं उनकी त्वचा सूखी और रूखी होती है। कद उनका नाटा रहता है। देखने में फूले हुए लगने पर भी उनका शरीर भार अपेक्षाकृत् स्वस्थ शिशुओंसे कम रहता है। मंगोल बच्चों में से प्रति १० में १ को सहज हृद्रोग पाया जाता है जिसके कारण उनकी मृत्यु शैशव काल में ही हो जाती है। मृत बच्चों का पोस्ट मार्टम करने पर कोई खास बात नहीं मिलती अलबत्ता इनके दिमाग छोटे होते हैं और उनमें उभार कम मिलते हैं। अनुमस्तिष्क (सैरीबैलम) बहुत छोटा होता है। अण्वीक्ष द्वारा देखने पर मस्तिष्क में नर्व कोशिकाएं बहुत कम पाई जाती हैं।

मंगोल रोग बच्चों में क्यों होता है कहना कठिन है। पश्चिमी विद्वानों का ख्याल है कि प्रौढ़ माता पिताओं की सन्तति में मंगोलीयता आसकती है। पर इसका कोई विशेष आधार नहीं है मंगोल बच्चे प्रथम दो वर्षों की आयु में ही काल कवलित हो जाते हैं। इनकी बुद्धि का विकास बहुत कम होता है। ये बोलना और चलना तो सीख लेते हैं पर अधिक बुद्धिमत्ता के कार्यों के करने में असमर्थ रहते हैं।

सूक्ष्म मस्तिष्क वाले बालकों को माइक्रोसैफेलिक शिशु कहते हैं। इनका सिर बहुत छोटा और दबा हुआ होता है। एक दो वर्ष की आयु होने पर १३ इंचसे बढ़कर १५-१६ इंच तक ही उसकी परिधि हो पाती है। इनके माथे बहुत छोटे होते हैं मुखमण्डल प्राकृत रूप का होता है। ब्रह्मरन्ध्र या तो बन्द हुआ ही जन्म के समय होता है या जल्दी बन्द हो जाता है। इन सूक्ष्म मस्तिष्कीय शिशुओं के हाथ पैर कड़े होते हैं ऐसा लगता है कि मानों उनमें लकवा मार गया हो। इन बच्चों में अपस्मार के से दौरे बराबर आया करते हैं। स्कन्दापस्मार में भी ये दौरे लगते हैं। ये बच्चे बोलना और चलना बहुत देर में सीख पाते हैं। ये जड़ बुद्धि और पालने में ही अधिकतर लेटे रहते हैं जीवित रहने पर ये बड़े गन्दे रहते हैं। पूय शोणित गन्धश्च स्कन्दापस्मार लक्षणम् वाग्भट लिखता है।

नैतिक दोष वाले मानसिक रोगों से ग्रसित बालकों की आदतों का ज्ञान बहुत बाद में हो पाता है। कुछ गन्दी आदतों वाले होते हैं। कुछ गालियां बकते रहते हैं। कुछ बहुत झूठ बोलते हैं। कुछ चोर बन जाते हैं कुछ बहुत नृशंस और द्वेषी होते हैं। कुछ जानवरों को सताते रहते हैं। कुछ और गन्दी अनैतिक आदतों में फंस जाते हैं। पहले हमने जो विविध ग्रहों का विचार किया है उनसे ये आदतें मिलती जुलती होती हैं:—

(१) जिह्मदृष्टि दुरात्मान गुरुदेवद्विजद्विषम्।
निर्भयं मानिनं शूरं क्रोधनव्यवसायिनम्॥
(दैत्यग्रह)

(२) क्रोधनं वक्रगतिम् (सर्पग्रह)

(३) रौद्रचेष्टं क्षुद्रप्रहारिणम् आक्रोशन।
आत्मानं काष्ठशस्त्राद्यैर्घ्नन्तम् (ब्रह्मराक्षस)

(४) निर्लज्जं अशुचि शूरं क्रूरं परुषभाषिणं रोषणम्।
(राक्षस)

(५) लोल नग्न मलीमसम् (पिशाच)

(६) नग्नं धावन्त उन्मत्तदृष्टिम (निषाद)

इन सभी भूताकृष्ट शरीर या नैतिक दृष्टया पतित या चरित्र भ्रष्ट लड़कों की चिकित्सा बहुत धैर्य और समय की अपेक्षा रखती है। इनके लिए बाल पथ प्रदर्शक केन्द्रों की स्थापना आवश्यक होती है। यदि लड़के के माता पिता स्वयं भी गलत आदतों के हैं तो उसे घर से बाहर रखना पड़ेगा। इन्हें ६ मास से १ वर्ष तक बाहर ठीक विशेषज्ञों की देख रेख में रखना चाहिए।

आयुर्वेद इन गलत व्यवहार करने वाले बालकों को भूतबाधा जन्य दोष से ग्रसित मानता है इसलिए उसकी चिकित्सा के लिए निम्न उपाय बतलाता है:—

भूतं जलेर्दाहनैन्द्र च प होमधनियर्न. ।
नरः गौरस्वागतनमनानदर्शानिः ॥

जो बालक हिंसाशील प्रवृत्तियों के न हों उन्हें जप,होम, वलिकर्म, व्रत, तपस्या, शील, सुवीर, समाधीन, दान, ज्ञान दयादि के द्वारा सुधारना चाहिए।

इन कर्मों को जब बालक पर किया जाता है तब इस बालक लड़के को भी यह लगता है कि वास्तव में उसके गलत व्यवहार का कारण वह स्वयं नहीं बल्कि उस पर चढ़ा देव या दैत्य, भूत या राक्षस है जिसे निकाला जा रहा है तथा जब वह निकल जायेगा तब वह स्वतः ठीक हो जायगा। इस तरह उसके रोग का आकर्षण केन्द्र (Ceutes of att.uction) बालक स्वयं अपने को मान कर इन विचित्र भूतबाधाओं को मान लेता है और इस तरह उसके इन अनैतिक कारणों से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

जिन उपायों से इन बालकों के सुधार का यत्न किया जाता है उनकी सूची ऊपर दी जा चुकी है। जिन दवाओं का खिलाना, पिलाना, नस्य देना,धूप देना मालिश करना आवश्यक बताया गया है उनमें हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, लहसुन, हरताल, अर्क, वचा, सरसों जैसी उग्र दवाएं, सर्पगन्धा,जटामांसी(तिल, काकोली, क्षीर काकोली जैसी शामक दवाएं; गधा, घोड़ा, भेड़िया, ऊंट, रीछ, गोह, न्योला, शल्लकी, चीता, बिल्ली, गाय, सिंह और समुद्र के प्राणियों के चर्म, पित्त, दांत और नखों का प्रयोग पुराना घी आदि आते हैं। अनेक अगदों और घृतों का व्यवहार किया जाता है। विशेष विशेष दिन उचित स्थान पर औषधादिक से वलि कर्म कराया जाता है। बौद्ध धर्म में मायूदी महाविद्या ग्रह ग्रहीत के सुनाई जाती है तथा—

भूतेशं पूजयेत् स्थाणुं प्रमथाख्यांश्च तद्गणान्।
जयन् सिद्धांश्च तन्त्रान्त्रान् ग्रहान् सर्वान पोहति ॥

वाग्भट।

काश्यप संहिता में मेधावर्धक कुछ योग

ब्राह्मी मण्डूकपर्णी च त्रिफला चित्रको वचा। शतं पुष्पा शतावर्यो दन्ती नाग वला त्रिवृत्र ॥
एकैकं मधु सर्पिर्भ्या मेधा जनन मभ्यसेत्। कल्याणकं पञ्चगव्यं मेध्यं ब्राह्मी घृतं तथा ॥

ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, त्रिफला, चित्रक, वच, सौंफ, शतावरी, दन्ती, नागवला, निशोथ, इनका पृथक्-पृथक् मधु तथा घृत के साथ मेधा वृद्धि के लिये प्रयोग करे तथा मेधा वर्धक कल्याण घृत, पंच गव्य और ब्राह्मी घृत का लेहन करावे।

× × × ×

समङ्गा त्रिफला ब्राह्मी द्वे वले चित्रकस्तथा। मधु सर्पिरिति प्राश्यं मेधायुर्वल वृद्धये ॥

मेधा, आयु और बल की वृद्धि के लिये मंजिष्ठा, त्रिफला, ब्राह्मी, दोनों बला और चित्रक के चूर्ण को समभाग लेकर मधु एवं घृत के साथ मिलाकर प्राशन कराना चाहिये। यह घृत उत्तम मेधा जनक है।

× × × ×

कुष्ठं वटांकुरा गौरी पिप्पल्य स्त्रिफला वचा। ससैन्धवैर्घृतं पक्वं मेधा जनन मुत्तमम् ॥

कूठ, वट के अंकुर, गौरी (पीत सर्षप), पिप्पली, वच, सेन्धानमक को मिलाकर घृत के साथ घृत पाक विधि से पकाया जाय। यह घृत उत्तम मेधा जनक है।

नेत्रवैद्य डा० इन्द्रभान सी भटनागर गोल्डमेडलिस्ट, उदयपुर

डा. भटनागर ने उदयपुर में भारतीय शल्यशालाक्य धन्वन्तरि मिशन की स्थापना की है। आप क्रिया कुशल व्यक्ति हैं और आयुर्वेदीय पद्धति से नेत्र रोगों की शल्य क्रिया करते और चिकित्सा करते हैं। रोहे या ट्रकोमा नेत्राभिष्यन्द का ही एक प्रकार है जिसे कंजक्टीवाइटिस कहा जाता है। प्रस्तुत लेख में इस विषय पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला गया है आपने अपने व्यस्त जीवन से थोड़ा समय निकालकर एक अच्छा लेख और अपने अनुभव सुधानिधि के माध्यम से प्रकाशित किए हैं। आशा है उनसे पाठकों की अच्छी ज्ञानवृद्धि होगी। —गो. श. गर्ग

ब्रजभाषा में इस रोग को आंख आना कहा जाता है। नेत्र गोलकलला (कंजंक्टाइवा) में शोथ होना ही नेत्राभिष्यन्द या कंजंक्टीवाइटिस कहलाता है। आयुर्वेद नेत्र-रोगों की उत्पत्ति में अनेक कारणों को मानता है ये कारण नेत्राभिष्यन्द को उत्पन्न करने में भी कारणभूत होते हैं। हम यहां उन कारणों का उल्लेख करते हैं जो बच्चों में प्रायः मिलते हैं—

१. गर्म वातावरण के बालक को ठण्डे पानी से नहलाना या गर्मी से चलकर आये हुए बालक को वातानुकूलित ठण्डे कमरे में प्रविष्ट कर देना।

२. बच्चे की नींद में व्याघात पहुंचना।

३. आंखों को गर्मी पहुंचाना या स्वेदन करना।

४. धूल के वातावरण में बालक को रखना।

४. धुंए में बालक को रखना।

६. बच्चे का निरन्तर रोते रहना।

७. ऋतुओं का विपर्यय होना अर्थात् गर्मियों में जाड़ा और जाड़े में गर्मी पड़ना।

८. शारीरिक क्लेश होना।

९. आंख में चोट लगना।

नेत्राभिष्यन्द वात, पित्त, कफ और रक्त के कारण ४ प्रकार की होती है। वातिक अभिष्यन्द में कीचड़ कम आते हैं पर दर्द और किरकिराहट अधिक होती है। पैत्तिक नेत्राभिष्यन्द में आंखों में जलन मचती है स्पर्श पहुंचाने से

फालीकुलर कंजंक्टीवाइटिस (Follicular conjunctivitis)
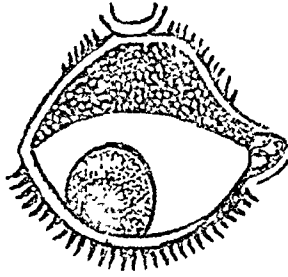
आराम मिलता है। गरम-गरम आंसू टपकते हैं। कफज नेत्राभिष्यन्द में आंखें सूज जातीं हैं और पलक भारी हो जाते हैं सेकने से आराम मिलता है। कीचड़ बहुत आते हैं आंखों में खूब खुजली चलती है बार-बार चिपचिपा स्राव निकलता है। रक्तज नेत्राभिष्यन्द में आंखें लाल सुर्ख हो जाती हैं आंसू भी लाल हो जाते हैं आंखों में जलन और ठण्डक से आराम पड़ता है।

आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने नेत्राभिष्यन्द की ५ मोटी-मोटी श्रेणियां की हैं।

१. कटारल कंजंक्टीवाइटिस—या प्रसेकी नेत्राभिष्यन्द।

२. अलर्जिक कंजंक्टीवाइटिस—सकण्डू नेत्राभिष्यन्द।

३. पुरुलेंट कंजंक्टीवाइटिस या सपूय नेत्राभिष्यन्द।

४. केम्ब्रेनस कंजंक्टीवाइटिस या कलायुक्त नेत्राभिष्यन्द।

५. वाइरस उपसर्ग जन्य या विषाणु नेत्राभिष्यन्द।

इनमें प्रथम और द्वितीय और तृतीय कफज नेत्राभिष्यन्द ही हैं। प्रसेकी नेत्राभिष्यन्द उपसर्ग रहित होता है जबकि शेष दो उपसर्गयुक्त होते हैं। सपूय नेत्राभियन्द पित्तज होता है। चौथा रक्तज तथा पांचवां वातज का ही भेद है। प्रसेकी नेत्राभिष्यन्द तीव्र, जीर्ण तथा कूपिकीय (फालिक्युलर) ३ प्रकार का होता है। अलर्जिक नेत्राभिष्यन्द ऋतु विपर्यय ज्वरों (हे फीवर, स्प्रिंग फीवर) के साथ-साथ देखा जाता है। कलायुक्त रोहिणी के कारण तथा बिना उसके भी होता है। विषाणुजन्य नेत्राभिष्यन्द ट्रैकोमा या रोहों के कारण भी पाया जाता है।

प्रसेकी या कैटरल कंजंक्टाइविटिस में स्राव श्लेष्म पयीय होता है, पलक सूज जाते हैं और भारी हो जाते हैं। नेत्रगोलक की अपेक्षा पलकों में सूजन अधिक होती है। खुजली एवं किरकिरापन बराबर मिलता है। रोग आसानी से २-३ सप्ताहों में ठीक हो जाता है। यह रोग बालक और युवक प्रौढ़ और वृद्ध सभी में हो सकता है तथा साल में कभी भी उत्पन्न हो जाता है। इसके भी अनेक भेद होते हैं उनके नाम हैं :—

१. अभिघातज नेत्राभिष्यन्द।

२. अति प्रकाशजन्य नेत्राभिष्यन्द।

३. औपसर्गिक नेत्राभिष्यन्द।

४. अश्रु प्रणालीदाह युक्त नेत्राभिष्यन्द।

५. क्षकिरण के नेत्र के निकट अन्तावरण जन्य नेत्राभिष्यन्द।
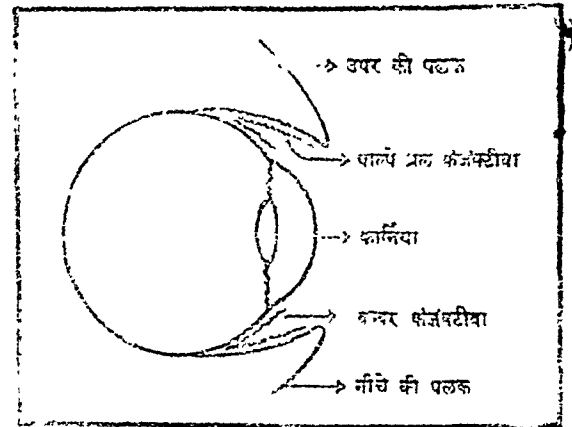
जीर्ण प्रसेकी नेत्राभिष्यन्द में पलकों की नेत्रकला लाल और चिकनी हो जाती है। कभी-कभी उसमें अतिदुष्टि होकर मखमली रूप भी देखा जाता है। सवेरे के समय तीव्र प्रसेकी जैसे ही नेत्र चिपक जाते हैं। आंख का किरकिरापन खुजली जलन ज्यों की त्यों रहती है। रात में ये लक्षण और कष्टप्रद रूप ले लेते हैं। यह सब स्थानीय प्रक्षोभ, धूल, धूप, गन्दे वातावरण की देन होता है।

बच्चों में एक कूपकीय नेत्राभिष्यन्द और देखा जाता है जिसमें निचले पलक की कला पर आलपीन के सिर बराबर बड़े कूपक या फालीकिल पैदा हो जाते हैं थोड़े दिन बाद कूपक मिट जाते हैं पर नेत्राभिष्यन्द चालू रहता है।

अलर्जिक नेत्राभिष्यन्द में शरीर के अन्य भागों की तरह नेत्रों में भी स्थानिक हाइपर सेंसिटिविटी देखी जाती है। रोगी के नेत्र से खूब पानी गिरता है और प्रकाश में बहुत चौंध लगता है। उस समय नाक से पानी आना जैसा कि अलर्जी में प्रायः देखा जाता है आता रहता है।

गोनोरोकाय (पूयमेह गोनाणुओं) के कारण सपूय नेत्राभिष्यन्द उत्पन्न होता है। अक्सर बच्चे की माता के गनोरिया से पीड़ित होते समय पूयमेहज स्राव जब प्रसव काल में उसकी आंखों में पड़ जाता है तब यह होता है इस आफ्थालमीया नियोनेटोरम कहते हैं।

कलायुक्त नेत्राभिष्यन्द में डिफथीरिया या डिफथीरिया रहित कारण मिलता है। डिफथीरिया जन्य रोग में पलक लाल सूजे हुए, गरम छूने से दर्द वाले होते हैं पलकों और अपांगों में एक प्रोटिनप्रधान झिल्ली या कला चढ़ जाती है जो नीचे के ऊतकों तक प्रविष्ट रहती है पतला सा स्राव निकलता रहता है जो पारदर्शक स्वरूप का होता है। गले या नासाग्रसनिका में डिफथीरिया मिल सकता है। यह रोग बहुत खतरनाक है।

कणात्मक नेत्राभिष्यन्द या ग्रेन्युलर कंजंक्टीवाइटिस इसे 'ट्रैकोमा' कहते हैं। यह एक स्पर्श से फैलाने वाला रोग है। यह जीर्ण (क्रानिक) स्वरूप का होता है। इसके प्रधान लक्षण, आंसू अधिक आना, खुजली, जलन, आंख में किरकिराहट दर्द और देखने में कष्ट ये लक्षण मिलते हैं। पलक सूजे-सूजे, आंख का छोर संकीर्ण, ऊपरी पलक का भारी होना आदि चिह्न मिलते हैं। इसे कुछ लोग 'कुकूणक' मानते हैं—

> कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ।
> जायते तेन नयनं कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥
> शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् ।
> शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥

अर्थात् कुकूणक क्षीरदोषज रोग है जो बालकों के पलकों में होता है। इसके कारण नेत्रों में खुजली होती है और बार-बार पानी बहता रहता है। बालक अपने माथे, अक्षिकूट और नाक को घिसता या मलता रहता है। वह सूर्य की धूप के देखने में असमर्थ हो जाता है और पलक इतने भारी होते हैं कि उन्हें उघाड़ खोलने में कष्ट

होता है। कुछ लोगों ने पलकों में सूजन स्वीकार की है—

> न ललाटं न च ग्रीवां अधः शक्नोति प्रवर्तितुं ।
> वर्त्मनि श्वयथुश्चास्य जानीयात्तं कुकूणकम् ॥

कुकूणक या ट्रैकोमा छूत का रोग है जो एक बच्चे से दूसरे बच्चे को स्कूलों में या बैरकों में या मेले ठेलों में एक ही कोठरी में बहुत से आदमियों के भरे रहने से हो सकता है। यह रोग आज विषाणुजन्य माना जाता है। नेत्र के पलकों में लिम्फोसाइट नामक रक्त के श्वेतकणों की भरमार हो जाती है। पलकों की कला से अंकुर उग आते हैं। पलकों में जो कण-कण से देखे जाते हैं वे लिम्फोसाइटों का समूहन बतलाया जाता है। कूपकीय नेत्राभिष्यन्द के कूपक (फालिकिल) ही कणों में परिवर्तित हो जाते हैं ऐसा कुछ लोगों का मत है।

नेत्र रोगों में पोथकी नाम से जो वर्णन मिलता है वह पलकों में स्थित कुकूणक की इन पिडकाओं का ही वर्णन प्रतीत होता है—

> स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसंनिभाः ।
> रुजावत्यश्च पिडकाः पोथक्य इति कीर्तिताः ॥

ये पिडकाएं स्रावयुक्त, खुजलीयुक्त, भारी, लालसरसों के स्वरूप वाली तथा दर्द युक्त होती हैं।

नेत्राभिष्यन्दों की चिकित्सा

आयुर्वेद में नेत्राभिष्यन्दों की चिकित्सा के सम्बन्ध में निम्न सूत्र मिलते हैं—

> १—लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
> उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥

अर्थात् लंघन (यह बालकों में सम्भव नहीं न आवश्यक है), आलेप, स्वेदन, सिरावेधन (यह भी बच्चों में उचित नहीं है) विरेचन, अञ्जन, आश्च्योतनादि से अभिष्यन्दों का उपचार करना चाहिए।

> २—त्रिफला[illegible] कालोक्तः
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

स्निग्ध उष्ण क्रियाओं से वातिक, मृदुशीत क्रियाओं द्वारा पैत्तिक तीक्ष्ण रूक्ष उष्ण विशद क्रियाओं से कफज नेत्राभिष्यन्द दूर होते हैं। सान्निपातिक नेत्ररोगों में तीक्ष्ण-उष्ण, मृदु-शीत क्रियाएं पर्याय क्रम से की जाती हैं। लोध्रपठानी, त्रिफला, मुलहठी, शर्करा, नागरमोथा पीसकर बनाए हुए शीतल जल के परिषेक से रक्ताभिष्यन्द दूर किया जाता है।

अगर नेत्राभिष्यन्द कारक दोष आमावस्था में हों तो जब तक वे पक्वावस्था में न आजावें तब तक अंजन और आक्षि-पूरण नहीं करने चाहिए।

नूतन अभिष्यन्द, में कई प्रकार के पूरण द्रव्यों के प्रयोग का विधान है इनमें आमलों के फूलों का स्वरस या सहंजन के पत्तों का स्वरस मधु और सैन्धव मिलाकर प्रयोग करते हैं। सहंजन पत्रस्वरस मधु मिलाकर उससे अक्षिपूरण करने से सभी प्रकार की नेत्राभिष्यन्द जन्य वेदनाओं को नष्ट करता है—

वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम्।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः॥

—अष्टांग हृदय

जब नेत्राभिष्यन्द के कारण आंख में जलन हो, पानी बहुत निकले और दर्द हो तो दारुहल्दी के रस से बनी रसौत में नारीदुग्ध मिला उससे अक्षिपूरण (नेत्र बन्द कर आलवाल बना भरना) करते हैं।

नेत्र कोथ दूर करने के लिए कन्नेर के ताजे पत्तों (किसल्या) के रस से अक्षिपूरण करते हैं।

आंख बन्द कर आंख के पलकों पर जो लेप लगाया जाता है उसे बिडालक कहा जाता है। आयुर्वेदज्ञ नेत्र के रोगों में बिडालक का बहुत उपयोग करते हैं। हरड़ काली को पीसकर घी मिला आंखों पर लेप करने से सभी प्रकार के अभिष्यन्दों में लाभ होता है।

आश्च्योतन में नेत्र में बिन्दु टपकाए जाते हैं। वातज नेत्राभिष्यन्द में महत्पञ्चमूल का क्वाथ गुनगुना करके बूंद-बूंद, डालते हैं।

पित्तज अभिष्यन्द में नीम के पत्तों के कल्क में लोध्र का चूर्ण रख अग्नि पर स्वेदन कर स्त्रीदुग्ध मिला कपड़े में छान इसकी बूंदें टपकाते हैं।

कफज नेत्राभिष्यन्द में फणिज्झक, आस्फोतक, कैथ, बेल, पत्तूर, पीलु, तुलसी में से जो मिले उसके पत्तों का गुनगुना रस डालते हैं या सुगन्धवाला, सोंठ, देवदारु और कुष्ठ का लेप करते है।

आजकल नेत्राभिष्यन्द में पानी में बोरिकाम्ल डालकर नेत्र को सेकते हैं। जिंक बोरिक बिन्दु या सल्फासीटैमाइड नेत्रबिन्दु डालते हैं। या बैटनेसोल ड्राप डालते हैं। कभी-कभी गरम जल से नेत्रों का सिंचन करके फिर बिन्दु डालते हैं। फिर नेत्र में नेत्राभिष्यन्द नाशक आइण्टमेण्ट डालते हैं फिर रुई रख पट्टी बांध देते हैं।

ट्रैकोमा में फिटकिरी की स्टिक पलकों पर फिराते हैं या सिल्वरनाइट्रेट टच करते हैं फिर टैरामाइसीन मलहम लगाकर पट्टी बांधते हैं। सल्फासीटैमाइड ३०% के बिन्दु भी चलते हैं। इसका सारा ज्ञान एक अच्छे नेत्र चिकित्सक द्वारा लेना चाहिए। सामान्य चिकित्सक को नेत्ररोगों की चिकित्सा आरम्भिक रूप की करके उसे नेत्र चिकित्सालय में पहुंचा देना चाहिए क्योंकि नेत्र जीवन की सबसे अमूल्य निधि है और इनके उपचार के लिए नेत्ररोग विशेषज्ञ का उपयोग ही हितावह रहता है।

रोहों की चिकित्सा-

आजकल रोहों की चिकित्सा दो प्रकार से की जाती है। एलोपैथी व आयुर्वेदीय।

१. एलोपैथी में कास्टिक लोशन अथवा नाइट्रिक-ऐसिड से टच करते हैं कई दिनों तक टच करना पड़ता है। विटामिन सी की टेबलेट देते हैं। मर्क्युरी क्रोम लोशन और यलो आक्साइड आइण्टमेंट प्रयोग करते हैं। इसमें कास्टिक अथवा नाइट्रिक ऐसिड स्पर्श करते समय बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। यदि कम्पाउण्डर की लापरवाही से स्पर्श करते समय यदि उनका पानी नेत्र के स्वच्छ भाग कार्निया को स्पर्श कर देगा तो इसकी आंख में फूला हो जायगा। सारा कार्निया सफेद हो जायगा और शिशु को आजीवन अन्धापन भोगना पड़ेगा। ऐसे केस देखे गए हैं।

२. **आयुर्वेदीय**—१. प्राचीन समय में हमारी माताएं तथा दादी मायें इस रोग की शिशुओं में बड़ी अच्छी चिकित्सा करती थीं। प्रथम रोगी को Castor oil थोड़ा दे देती फिर शिशुओं व बच्चों की पलकें उलटकर मिश्री

की तेज धार से अथवा फिटकरी की तेज धार से रोहों को रगड़ कर रक्त निकाल देती थी फिर बकरी के दूध अथवा भेड़ी के दूध की मलाई का फाहा बांध देती थी। गरम पानी से सेक करतीं बच्चा ठीक हो जाता था। बच्चों की आंखों में उनकी माता का स्तनदुग्ध का सीचन करती अथवा बकरी के दूध की आंखों में धार लगवातीं इससे भी बच्चा निरोग हो जाता था। यदि रोहे बड़े हों तो कुत्ते के चुच को पकड़ उसकी टांगों से रोहे फोड़कर खून निकालती थीं ये टांगें चाकू का काम करती हैं।

२. बच्चों के पलक पर जस्तभस्म + काला सुरमा मिश्रण कर रगड़ते रहें रोहे ठीक होंगे।

३. तुत्थभस्म, फिटकरी व कलमीशोरे से मिश्रित मलाई को पलकों पर फेरने से रोहे फूट जाते हैं परन्तु ध्यान रहे रगड़ कर आंखों को खूब धोलें उसका पानी आंखों में न जाने दें। फिर Yellow oxide Eyemid उस पर रगड़ कर मर्क्युरो क्रोम का Drop डालकर रुई रखकर पट्टी बांध दें, थोड़ी देर बाद दूध की शीतोष्ण मलाई की पट्टी बांधें इस प्रकार दिन में तीन बार पट्टी बांधने पर बच्चा आंखें खोल देगा। रोज मरक्युरी लोशन और Yellow Oxide मलहम लगाने से आंखें कुछ दिनों में ठीक हो जायगी। चावल, तेल, खटाई बन्द। उनकी माता को त्रिफला शहद के साथ चटावें। बच्चे को मिश्री घृत मिश्रित अथवा मुनक्का का घृत पिलावें। पलकों की कोर पर रसौत का विदारक लेप शीतोष्ण लगावें।

४. सुश्रुताचार्य ने लेपन पर शहद व घृत मिश्रित लगाने को कहा है। त्रिफला शहद के साथ रात्रि में चटावें।

५. जस्तफूल, फिटकरीफूल, तुत्थभस्म, समुद्रफेन इत्यादि से बनी टुकोमा पिल्स लेपन का प्रयोग करें।

कभी-कभी आंत्रिक ज्वर में तथा मसूरिका Smal pox में बच्चों की आंखें चली जाती हैं। व्रण आंख में फूटने के कारण फूला बन जाता है और बच्चा जिन्दगी भर के लिए अन्धा, होता देखा गया है। अत: Smal pox के समय गोघृत की बूंद का शीतल सिंचन नेत्रों में करते रहें तो व्रण नेत्र में नहीं बनता ऐसा कई बार अनुभव किया है।

शिशु नेत्र काजल

घटक—नैनी घी १०१ बार धुला हुआ ५ तोला, नीम के तेल में घोटी हुई [illegible] ६ माशा, बोरिक एसिड ६ माशा, जिंक आक्साइड ६ माशा।

निर्माण विधि—फूल की थाली में नैनी घी डालकर उपरोक्त शेष तीनों वस्तुओं में मिलाकर फूल की कटोरी से ४८ घंटे घिसना चाहिये। प्रतिदिन जितने घंटे आराम लिया जाय लिखते रहें और रात्रि को थाली में अर्क गुलाब छिड़क कर घिसना प्रारम्भ कर दें। तैयार होने पर किसी डिब्बी में बन्द करके रख लेते हैं।

उपयोग—यह सभी बालकों के नेत्रों के रोग में अनुभूत काजल है। यह आंखों की लालिमा, पानी गिरना आदि रोगों पर अकसीर है।

(संकलित)

बालकों में घ्राण स्राव
उनकी चिकित्सा

आचार्य श्री नाथूराम गोस्वामी शास्त्री, बी० आई० एम० एस० रायपुर, म० प्र०।

वैद्यविनोद नामक ग्रन्थ में नासा रोग का निम्नलिखित निदान दिया हुआ है :—

अरुचिः शिरसो जाड्यं नासास्रावः तनुः स्वरः।
क्षामः ष्ठीवेत्ततोऽभीक्ष्णं आमपीनस लक्षणम् ॥
स्वरशुद्धिः घनः श्लेष्मा परिपक्वस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् पीनस रोग की आमावस्था में नाक से पतला स्राव बहता है तथा जब पीनस या जुकाम पक जाता है तो घ्राण (नासा) से गाढ़ा कफ स्राव के रूप में निकलता है।

वाग्भट ने नासारोगविज्ञानीय का आरम्भ ही प्रतिश्याय से किया है। प्रतिश्याय, पीनस या जुकाम के निम्नलिखित कारण बतलाये गये हैं जो बच्चों में प्रायः मिलते हैं :-

i. बच्चे को ओस में सुलाना;
ii. बच्चे को ठण्डी हवा लगना;
iii. बच्चे को धूल के वातावरण में रखना;
iv. बच्चे को धुएं के वातावरण में रखना;
v. बच्चे का अधिक चीखना, चिल्लाना और रात्रि जागरण करना;
vi. बच्चे का तकिये पर सिर नीचा ऊंचा रहना;
vii. किसी ठण्डे कुएं का पानी बच्चे को पिलाना जिसे उसने पहले न पिया हो।

इनसे वातदोष या अन्य दोष कुपित होकर बालक में प्रतिश्याय या जुकाम पैदा कर देते हैं। इससे वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज में से कोई भी प्रतिश्याय बन सकता है। वातज प्रतिश्याय में बच्चे को छींकें बहुत आती हैं। नाक रुक जाती है, स्वर बैठ जाता है। ठण्ड लगती है जिससे स्वच्छ श्लेष्मा नाक से बहने लगता है-शिशिराच्छकफ स्रुतिः। पित्तज प्रतिश्याय में नासा के अग्रभाग में पाक हो जाता है ज्वर हो जाता है और इसमें गरम-गरम लाल पीला श्लेष्मा बहने लगता है-उष्णताम्रपीतकफस्रुतिः। कफज प्रतिश्याय में बच्चे को खांसी बहुत आती है, श्वास भी फूल जाता है, नाक में खुजली पड़ती है और नाक से चिकना सफेद रङ्ग का श्लेष्मा बहने लगता है—स्निग्धशुक्लकफस्रुतिः। त्रिदोषज में सर्व लक्षण एवं मिश्रित श्लेष्मा बहता है। रक्तज में कारण दूषित रक्त होता है। लक्षण पित्तज प्रतिश्याय जैसे होते हैं। सुश्रुत रक्तस्राव भी बतलाता है—रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तास्रावः प्रवर्त्तते ॥

ये पांचों प्रकार के प्रतिश्याय अपनी आमावस्था में उपर्युक्त लक्षण एवं स्राव घ्राण में उत्पन्न करते हैं। पर यदि इन सभी प्रतिश्यायों में किसी की उपेक्षा की जाय तो उनसे दुष्ट प्रतिश्याय की उत्पत्ति होती है :—

सर्व एव प्रतिश्याया दुष्टतां यान्त्युपेक्षिताः।

इस दुष्ट प्रतिश्याय में बालक की भूख घट जाती है

आचार्य गोस्वामी आयुर्वेद के उन इने गिने महारथियों में से हैं जिन्होंने अपने पाण्डित्य तथा चिकित्सानुभव से मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है। आपने स्वेच्छा से गवर्नमेण्ट आयुर्वेद कालेज रायपुरके काय चिकित्साविभाग से त्याग-पत्र देकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की। आपका यह लेख यद्यपि छोटा सा है पर उसमें विद्वत्ता और सिद्धता की पूरी छाप समा चुकी है। लेख सुधानिधि समाज अवश्य हृदयंगम करेगा इस आशय के साथ।

—र० प्र० त्रिवेदी

कटुतीक्ष्ण द्रव्य सिद्ध घृत पिलावे।

दुष्ट प्रतिश्याय में यक्ष्मानाशक बृंहण चिकित्सा तथा कृमिघ्न ऐण्टीसैप्टिक चिकित्सा का विधान है :—

यक्ष्मकृमिक्रमं कुर्वन् यापयेद् दुष्टपीनसम् ॥

—वाग्भट

सामान्यतः प्रतिश्यायों में तुलसी अदरख की चाय, लक्ष्मीविलास नारदीय रस तथा सितोपलादि चूर्ण शहद के साथ देते हैं। सज्वर प्रतिश्याय में त्रिभुवनकीर्ति और कफज में कफकेतु रस का सर्वत्र प्रयोग किया जाता है। सुहागा भुना शहद में चटाने से भी जुकाम ठीक हो जाता है। यूनानी हकीम मुनक्का, गुलबनफसा. गावजवां, उन्नाव, हंसराज और जटामांसी समभाग चूर्ण कर इसका फांट या चाय (४-४ रत्ती २ तोला पानी में डाल उबाल छान शहद डाल) २-२ घंटे पर देते हैं।

सामान्यतः आधुनिक उपचार इस प्रकार किया जाता है :—

i. बच्चे को हलका भोजन देना

ii. टट्टी साफ आती रहे इसका प्रबन्ध करना

iii. ऐस्प्रीन या ए. पी. सी. एनासीन या कोडोपायरीन देना

iv. रूमाल में नीलगिरी की बूंदें छिड़क कर उसे सुंघाना

v. विक्स वेपोरब नाक के आस पास मलना

vi विक्स की शीशी सुंघाना

vii. टिक्चर बैंजाइन १ किलो पानी में १ चम्मच उबालें और उसकी भाप बच्चे को थोड़ी-थोड़ी देर पर दूर से सुंघावें

viii बाजार में अनेक नासा बिन्दु मिलते हैं जैसे बेंजेड्रीन इन्हेलर, ऐण्ड्रीन, फीनौक्स सल्फेक्स इनकी बूंदें नाक में समय समय पर टपकाते हैं

ix. हाइड्रोकार्टीजोन युक्त या अन्य कॉर्टीकोस्टराइड युक्त नासाबिन्दु टपकाते हैं

x. ऐण्टी अलर्जिक दवाएं जैसे ऐविल, डेकाड्रोन आदि खिलाते हैं।

xi जिन विषाणुओं या जीवाणुओं के कारण नासा में पाक हुआ और जुकाम बना है उनको दूर करने के लिए दवाएं देते हैं। सल्फावर्ग की दवाएं, प्रोकेन पेनिसिलीन, टैट्रासाइक्लीन वर्ग की बूंदें या इंजैक्शन देते हैं। बच्चे की कोमलता और प्रकृति का ध्यान देकर ही चिकित्सा की जानी चाहिए यह ध्यान रहे।

आयुर्वेद शास्त्राचार्य श्री पं. बालकराम शुक्ल
ऋषीकेश

बालक के दन्तोत्पत्ति के समय सम्पूर्ण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषकर ज्वर, पुरीष भेद (अतिसार) कास, वमन, शिरोवेदना, अभिस्यन्द, पोथकी तथा विसर्प रोगआदि उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे बिड़ालों के पृष्ठ भंग के समय और मोरों की शिखा उत्पन्न होने के समय शरीर का कोई अवयव ऐसा नहीं जो पीड़ित न हो। अर्थात् सब शरीर में कष्ट हो जाता है। उस समय उत्पन्न हुए रोगों, में दोषानुसार रोगानुसार दोषों के बलाबल के अनुसार तथा रोगों के मूल स्थानानुसार तथा देश काल सत्व सात्म्य प्रकृति के अनुसार मनीषाति विचार कर वैद्य चिकित्सा करें।

दीर्घायु बालक का दन्तोद्भेद आठ मास के बाद होता है और अल्पायु वाले बालकों का दन्तोद्भेद चौथे मास के अन्त में होता है। अति बाल्यकाल में दन्तोद्भेद की वेदना से पीड़ित बालक जल्दी हृष्ट पुष्ट और बलवान नहीं होते हैं। कृश और दुर्बल रहते हैं अस्थि और मज्जा से दांतों का निर्माण होता है इस बाल्यकाल में अस्थि मज्जा पूर्ण रूप से शक्ति सम्पन्न नहीं होते, अतः उन दोनों का ६-७ वर्ष में पतन हो जाता है और उस अवस्था में उन धातुओं की पूर्ति होती है। अतः पुनः दांतों की उत्पत्ति हो जाती है।

दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामेव कारणम्।
पृष्ठभंगे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे।
दन्तोद्भवे च बालानां॥ ॥ अ० ६-३ ॥

वातादि दोष दूषित स्तन्य के लक्षण–

वात दोष से दूषित दूध जल पर तैरता है। तथा कषाय रस वाला झागदार रूक्ष होता है। पुरीष और मूत्र का विबन्ध रहता है। यह वात दुष्ट दूध के लक्षण हैं।

पित्त दोष से दूषित उष्ण अम्ल और कटु होता है तथा जल में डालने से पीली लकीरें दिखाई पड़ती हैं। और दाहकारक होता है धात्री के स्तनों में भी जलन होती हैं।

कफ दोष दूषित दूध कुछ-कुछ नमकीन होता है, और गाढ़ा और जल में डूबने वाला होता है। तथा पिच्छिल होता है दो दोषों से दूषित दूध दो दोषों, के लक्षणों से युक्त होता है। अत दोष दूषित दूध पीने से दोषानुसार रोगों की उत्पत्ति होती है।

विशुद्ध दूध के लक्षण–

जो दूध जल में डालते ही जल के साथ मिल जाता है और वमनादि दोषों से व्यक्त नहीं होता वह शुद्ध दूध होता है।

चिकित्सा

शिशु रोगी को देख कर दोष और रोग के अनुसार धात्री की चिकित्सा करे।

वातदूषित दूध में दशमूल का क्वाथ ३ दिन पिलावे इसके बाद वात रोग नाशक घृत पिलावें। उसके ऊपर द्राक्षासव पिलावें। इस प्रकार स्निग्ध हो जाने

यह आचार्य प्रवर का एक प्रसादरूप लेख है जिसमें दन्तोद्भेद और उससे संबद्ध समस्याओं का संक्षेप में विचार किया गया है।
–मदनमोहनलाल चौबे

—शेषांश पृष्ठ २०३ पर।

आयुर्वेदरत्न डा० जयनारायण गिरि 'इन्दु' होमियोभूषण, बी. ए. आनर्स
धजवा, मधुबनी (बिहार)

"वैद्यरत्न डा० जयनारायण गिरि "इन्दु' साहित्यिक प्रवृत्ति के सहृदय व्यक्तित्व युक्त हैं आपने क्षेत्र के ख्यातनामा और अति व्यस्ततापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले चिकित्सक हैं। "धन्वन्तरि" के 'आयुर्वेदिक सूचीभरणाङ्क' और 'कैंपसूल अंक' तथा 'अनुभूत योगमाला' के मैथिली अङ्क के यशस्वी सम्पादक। हिन्दी के अतिरिक्त मैथिली भाषा में भी चिकित्सा विषयक साहित्य के लेखक। 'इन्दु' जी का निवास स्थान सुदूर देहात में है जहां रूग्ण नारायणों की सेवा में अहर्निश मौजूद रहते हैं। इनके मामा उच्चैठ के भगवती मन्दिर के पुजारी हैं जहां कविकुलकुमुद कलाधर कालिदास को श्री मां भगवतीका वर प्राप्त हुआ था। इनके परिवार में आयुर्वेद व्यवसाय लगभग दो सौ वर्षों से चला आ रहा है और उसी परम्परा के निर्वाह में इन्होंने वकालत करने का विचार छोड़ दिया। आप एक अच्छे विद् लेखक हैं। ... ..." —गो० श० गर्ग

हमारे देश में आज मुखपाक का रोग विशेषकर बच्चों में अधिकांश रूप से पाया जाने लगा है। इस रोग को मुख-पाक, मुंह के छाले, पपियाहा (Stomatitis) आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। इस रोग में ओष्ठ, दन्तमूल, दांत, जीभ, तालु, गला और गले के प्रारम्भिक भाग रोग की अवस्थानुसार आक्रान्त हो जाते हैं जैसा कि "माधव निदान" का मत है—

"मुखगलौष्ठादि सप्त स्थान व्यापकतमा सर्वसरत्वं ज्ञेयम्।"

इस रोग के कई भेद होते हैं और प्रायः इसके सम्बन्ध में आचार्यों में न्यूनाधिक मतभिन्नता भी है। आचार्य माधव इसे (१) वातज (२) पित्तज और (३) कफज, ये तीन प्रकार के मुखपाक मानते हैं। सुश्रुत के अनुसार उपर्युक्त तीन भेदों के अतिरिक्त एक भेद और मानते हैं और वह है—

लेखक

रक्तज। आचार्य वाग्भट और शार्ङ्गधर महर्षि सुश्रुत द्वारा निर्देशित भेदों के अतिरिक्त एक भेद और मानते हैं और वह भेद है —सन्निपातज। अगर मुख्य रूप से देखा जाय तो मुखपाक के ३ भेद होते हैं। आचार्य सुश्रुत ने स्वयं चौथे भेद 'रक्तज' के सम्बन्ध मे लिखा है कि यह भेद स्वतंत्र नहीं है अपि तु पित्तज भेद के अन्तर्गत है। उनके शब्दों में :—

"रक्तेन पित्तोदित एक एवकैश्चित्प्रदिष्टोमुखपाक-
संज्ञः।"

—सुश्रुत निदान अ. १६

पाश्चात्य मतानुसार इसके तीन भेद होते हैं :—

1. Simple stomatitis (सामान्य)
2. Thrush or Parasitic stomatitis(पराश्रयी)
3. Cancrumorics or gangrene stomatitis (सकोथ)

वातज मुखपाक—इस मुखपाक के होने का एक ही कारण है और वह है वायु का प्रकोप। इस मुखपाक में सुई चुभने के समान पीडा होती है।

पित्तज मुखपाक—इस मुखपाक को 'लाल छाले' के नाम से भी जाना जाता है। ये छाले लाल रङ्ग के होते हैं और इसमें दाह हुआ करती है।

कफज मुखपाक—इसे "सफेद मुखपाक" या "सफेद छालो" के नाम से भी जाना जाता है क्योंकि इसका रङ्ग जीभ आदि की श्लैष्मिक कला के रङ्ग के समान होता है जो कि प्रायः श्वेतवर्ण के ही होते हैं। कफज मुखपाक के छालो मे पीडा होती है लेकिन खुजली नही होती है।

अब पाश्चात्य दृष्टिकोण से भी इसके भेदों पर दृष्टिपात करें तो अच्छा रहेगा।

१. सामान्य मुखपाक (Simple stomatitis)—इस प्रकार के (Stomatitis) मे मुख की भीतरी झिल्ली और मसूढो मे शोथ हो जाता है, पीडा रहती है और मोटे व्रण हो जाते हैं। तीव्र मुखपाक की दशा में कपोलतल, जिह्वा, ताल आदि सभी जगहों पर शोथ, छाले और व्रण हो जाते है। मुख से लालास्राव निरन्तर होता रहता है। थूक बहुत आता है और कभी-कभी ज्वर भी रोगी को हो जाता है। इस प्रकार के मुखपाक को आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से पित्तज या रक्तज मुखपाक की संज्ञा दे सकते हैं। इस प्रकार मुखपाक होने के कई कारण भी हो सकते हैं। सबसे प्रथम और प्रमुख कारण कोष्ठबद्धता ही है। बहुत से रोगियों के दांतो में मैल जम जाने के कारण उसमें कीड़े पड़ जाते हैं जिस कारण मुखपाक की उत्पत्ति सम्भव हो सकती है।

१. पराश्रयी मुखपाक(Thrush or parasitic stomatitis)—इस प्रकार के मुखपाक को आयुर्वेदिक दृष्टिकोण से कफज या श्वेत मुखपाक कहा जायगा। यह रोग सच पूछा जाय तो एक उपसर्ग से उत्पन्न होता है और उन्हीं बच्चो को यह होता है जो सदैव बोतलों के द्वारा दूध पीते हैं। बोतल को भली प्रकार साफ नही करने से जीवाणु विशेष मुख में दुग्ध के सङ्ग प्रविष्ट हो जाते हैं और यही इस प्रकार के मुखपाक का कारण होता है। इस प्रकार के मुखपाक से ग्रसित बच्चो को अतिसार भी होते देखा गया है। इस प्रकार के मुखपाक मे साधारण मुखपाक(Simple stomatitis) की तरह लालास्राव नहीं होता। बहुत से बच्चो को अतिसार के साथ-साथ दूध की उल्टी भी हो जाती है। यदि बच्चों की सावधानीपूर्वक परीक्षा की जाये तो उसके मुख की श्लैष्मिक कला एवं जिह्वा ऐसी श्वेत प्रतीत होती है जैसे दही जमा हुआ हो। यह मुखपाक मुह में सर्वप्रथम जीभ पर, इसके बाद कपोलो के अन्दर, तालु और कण्ठ में भी श्वेतवर्ण के छोटे-छोटे छाले पड़ते हैं जो

धीरे-धीरे बढ़कर मिल जाते हैं जिससे सम्पूर्ण मुख ही शोथ-ग्रस्त हो जाता है। बच्चों का शरीर बहुत कमजोर होजाता है। रोगग्रस्त बच्चों को प्रायः मन्द-मन्द ज्वर रहता है।

३. सकोथ मुखपाक (Gangrenous stomatitis)— अगर सच पूछा जाय तो इस रोग का यथार्थ कारण अभी तक भलीभांति नहीं ज्ञात हो सका है कि इस कोटि के मुख-पाक का एकमात्र कारण पोषण का अभाव हो सकता है। इसके सम्बन्ध में स्वर्गीय श्री सोमदेव शर्मा सारस्वत, साहित्यायुर्वेदाचार्य, M. A., A. M. S, D. Sc. A. ने निम्न शब्दों में इसके उग्रता और भयानकता का वर्णन किया है: —

"यह रोग प्रायः ३ से ६ वर्ष तक के बालकों में होता है। इस रोग का प्रारम्भ धीरे-धीरे होता है। मसूरिका, लाल ज्वर (Scarlet fever) तथा कुकुर खांसी आदि रोगों के पश्चात् मुख में कपोलों के भीतरी पृष्ठ पर डिप्थीरिया रोग की भांति एक छोटा सा व्रण बन जाता है जिसके बीच में वृत्ततन्तु होते हैं और उनके चारों ओर साधारण प्रदाह होता है तथा उसमें से सड़ा हुआ भाग पृथक् होता जाता है। यह व्रण शीघ्रता से आगे-पीछे तथा अन्दर से बाहर की ओर बढ़ने लगता है। यहां तक कि ७ से १० दिन में कपोल के आरपार हो जाता है और कभी-कभी सड़ान बढ़कर बाहर नेत्रों तक मुख के अन्दर जीभ, दांत, जबड़ा, कपोल की हड्डी तक फैल जाती है। जब कपोल के भीतर एक बड़ा व्रण दृष्टिगोचर होता है तब उसकी चिकित्सा की चिन्ता होती है। कपोल अधिक कठोर होता है तथा शारीरिक लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं। यद्यपि ज्वर साधारण होता है परन्तु वह सांघातिक रूप धारण कर लेता है। ज्वर, दुर्बलता आदि लक्षण बहुत तीव्र हो जाते हैं, नाड़ी तीव्र चलती है। कभी-कभी अतिसार तथा फुफ्फुस प्रदाह भी हो जाता है और रोगी ६ से १० दिन में मर जाता है। साध्यावस्था में व्रण ३ या ४ दिन में स्वयं भरने लगता है तथा ज्वर आदि शारीरिक लक्षण कम होने लगते हैं और रोगी १० या १२ दिन में अच्छा हो जाता है।"

माधव निदानके प्रणेता निम्न श्लोकों के द्वारा वातज पित्तज और कफज मुखपाक के निदान पर स्पष्ट रूप से लिखा है। यथा -

"स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्य-
स्याचितं सर्वसरः स वाताद्।
रक्तैः सदाहैस्तनुभिः सपीतै-
र्यस्याचितं चापि सपित्तकोपात्॥
अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णै-
र्यस्याचितं चापियि स वै कफेन्॥"

अर्थात् जिसमें तोदयुक्त स्फोटों से सम्पूर्ण मुख व्याप्त हो, वह वातज सर्वसर है। जो लाल, दाहयुक्त, पतले और पीले स्फोटों से व्याप्त हो वह पित्तज सर्वसर है और जिसमें वेदनारहित खुजलाहटयुक्त सवर्ण स्फोट हो वह कफज कहलाता है। सर्वसर का अर्थ मुखपाक होता है क्योंकि सम्पूर्ण मुख में फैलने के कारण ही यह मुखपाक रोग सर्वसर नाम से प्रख्यात हो गया है यथा —

(क) "सर्वमुखेषु सरतीति सर्वसरः।"

—'शार्ङ्गधर संहिता'-आपमल्ल व्याख्या

(ख) "सर्वसरा मुखपाका उच्यन्ते।"

—'माधव निदान'मेंमधुकोष व्याख्या।

(ग) "सर्वस्मिन मुखे ये भवन्ति ते सर्वसराः।"

—'सुश्रुत संहिता' निदान—डल्हणकृत व्याख्या।

चिकित्सा-

इस रोग की चिकित्सा करते समय हमें दो सिद्धान्तों पर चलना उचित प्रतीत होता है —

(१) स्थानीय

(२) पचनतन्त्रीय उपचार

स्थानीय उपचार के हेतु निम्न योग फलप्रद होते हैं—

१. शुद्ध टङ्कण को मधु में मिलाकर लेप करायें।

२. बोरोग्लिसरीन का प्रयोग दिन में तीन बार करायें। इसे बनाने के लिये एक भाग सुहागा और उसे बारीक पीस कर छः भाग ग्लिसरीन को जरा सी गरम खरल में डालकर मिला लें।

३. जेन्सन वायलेट को ग्लिसरीन में मिलाकर फुरेरी द्वारा लगाने से भी उपकार होता है।

४. इरिमेदादि तेल का कुल्ला करावें और उसे ही छालों पर भी लगायें।

शिशुओं में जिह्वा के रोग और उनके उपचार

कविराज श्री आनन्दराव वैद्य, शाहगंज, आगरा

शिशुओं में जिह्वा के रोगों का अलग से कोई खास वर्णन नही मिलता। जिह्वा में मंगोल नामक मस्तिष्क विकार से पीड़ित बच्चों में विदार पाये जाते हैं और जिह्वा को विदारित जिह्वा (फिशर्ड जिह्वा) कहा जाता है। कभी-कभी पेट में कृमि हो जाने पर शोषकपत्र निभ जिह्वा (ब्लौटिंग पेपर टंग) होजाती है। हुकवर्म के कारण यह प्राय: देखी जाती है। कृमिनाशक उपचार से जिह्वा ठीक हो जाती है।

रेखान्वित जिह्वा (ज्योग्राफीकल टंग)—यह प्राय: उन बालकों में जिनको संग्रहणी हो जाती है पाई जाती है। संग्रहणी की चिकित्सा से जिह्वा भी ठीक हो जाती है। एक रोग ऐरीथीमा माइग्रैन्स कहलाता है इसमें जीभ की ऊपरी सतह पर लाल लाल धब्बे बन जाते हैं जो कभी कहीं कभी कहीं बदलते रहते हैं। विविध ज्वरों में भी ये धब्बे देखे जा सकते हैं। कभी-कभी जिह्वा का रङ्ग काला हो जाता है जो जिह्वा के फिली फार्म अंकुरों के लम्बे और काले होने से हो जाता है। कालापन जीभ के मध्य तृतीयांश मे पाया जाता है। हुक्का पीने वालों की जीभ काली सी लाल पड़ जाती है। इन सभी के लिए कोई उपचार आवश्यक नहीं होता।

स्थूलजिह्वता या मैक्रोग्लौसिया – एक रोग है जो किसी-किसी में प्राकृतिक रूपमें भी रहता है। क्रैटिन बालकों की जीभ मोटी होती है। जो मूर्ख बच्चे जीभ को इधर-उधर करते और बाहर निकालते रहते हैं उनकी जीभ भी मोटी हो जाती है। क्रैटिन या बौनों में जो जीभ बराबर बाहर करते रहते हैं उनकी लम्बी और मोटी जीभ थायराइड देते रहने से कुछ सुधर जाती है।

कुछ लोग टंगटाई जिह्वा सेवनी की सूक्ष्मता को बोलने में बाधक मानते थे आज विद्वानों का मत है कि जिह्वा सेवनी कभी भी इतनी छोटी नहीं हो सकती कि वह कोई विकार पैदाकर सके।

सूक्ष्म हनुता अथवा विदीर्ण तालु होने पर या जिह्वा सेवनी (Fraenum) के लम्बा होने से जीभ पीछे की ओर सरक कर श्वासमार्ग का अवरोध कर सकती है। इन सबके लिए इन सब में शल्य चिकित्सा की जाती है। जिस बच्चे की जिह्वा लम्बी हो उसे उलटा कर दूध पिलाना चाहिए ताकि उसकी जीभ वायु मार्ग का अवरोध न करे सके।

सन्निपात ज्वरों मे जिह्वा खर स्पर्श, दग्धा (जलीसी) और शूकावृता हो जाती है। उसके लिए सन्निपात ज्वर की चिकित्सा करने से लाभ होता है।

मुख के सामान्य रोगों का प्रभाव जिह्वा पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए मुखपाक या मुंहा (स्टोमैटाइटिस) जब होती है तो उसका असर जीभ पर भी पड़ता है। मुख की अशुद्धि के कारण मुखपाक बच्चे को हो जाता है। दूध पिलाने वाली बोतल या उसकी टीट की गन्दगी या बच्चे के मुंह से मुंह मिलाकर उसे चूमना उससे उपसर्ग सीधा मुख तक जाता और मुख पाक हो जाता है।

सुश्रुत संहिता के निदान स्थान में जिह्वागत रोगों का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि— जिह्वागतास्तु कण्टकास्त्रिविधास्त्रिभिर्दोषैः अलास उपजिह्विका चेति ॥ इसके अनुसार जीभ पर ३ प्रकार के कण्टक उत्पन्न होते हैं इनमें वात से सागौन के पत्ते जैसी खुरदरी जीभ हो जाती है जगह-जगह उसमें विदार हो जाते हैं तथा रसज्ञान का भी ठीक-ठीक बोध नहीं होता। पित्तजन्य जिह्वा कण्टक में

वैद्यवर्य श्री आनन्दराव आगरे के उन नवोदित चिकित्सकों में हैं जिन्होंने अपने भगीरथ श्रम से अपने लिए एक सुन्दर स्थान बना लिया है आप आयुर्वेदीय शुद्ध चिकित्सा में विश्वास करते और उसी की प्रैक्टिस भी करते हैं। आगरे के मूर्धन्य विद्वान् श्री रणवीरसिंह शास्त्री जी के सहज सम्पर्क से उन्हें अमित लाभ हुआ है। आपका जिह्वा के रोगों पर यह लेख एक अछूते विषय पर अच्छा प्रकाश डालता है।

—गोपालशरण गर्ग

गलशुण्डिका शैथिल्य या काग गिरना

वैद्यविद्याप्रवीण श्री मोहरसिंह आर्य, मिसरी, भिवानी (हरयाणा)

परिचय—मुंह खोलने पर तालु के पिछले भाग में एक घुंडी सी दिखाई देती है। इसी को अलिजिह्वा कहते हैं। लोक भाषा में कौवा अथवा काग कहते हैं। यह काग अनेक कारणों से ढीला होकर बढ़ जाता है, नीचे की ओर लटककर जिह्वा के अन्तिम भाग पर टिक जाता है, इस दशा में इसको काग गिरना कहते हैं। यह विशेषतः बालकों का ही रोग है। बड़ों में नहीं होता।

कारण

१. गले की कण्डू—खुजली, २. जीर्ण शोथ।

३. गले की झिल्ली का शिथिल-ढीला हो जाना।

४. उष्ण भोजन करने के तत्काल पश्चात् शीतल जल पीने से।

५. गुड़ शक्कर अधिक खाने से।

लक्षण

१. कौवा ढीला होकर बढ़ जाता है तथा नीचे की ओर लटक जाता है।

२. शुण्डिका इतनी बढ़ जाती है कि जिह्वा के अन्तिम भाग पर टिक जाती है।

३. गले में सरसराहट होकर शुष्क कास उठती है। लेटने से कास अधिक बढ़ती है। सरसराहट काग के गले में लगने से होती है।

४. काग नीचे के भाग पर लगते ही कास उठती है, जिससे हिचकी उबकाई होती रहती है।

५. कभी-कभी वमन भी होती है।

६. बालक दूध नहीं पी सकता है, पीता है तो डाल देता है।

७. बालक से भारु रोया भी नहीं जाता है।

८. शरीर दुर्बल हो जाता है।

९. अन्न-जल से पीड़ा नहीं होती।

१०. कौवा शिथिल-ढीला तथा लाल सा दिखाई देता है।

११. बालक के मुंह से लार टपकती रहती है।

चिकित्सा सिद्धान्त

१. निदान परिवर्जन करें।

२. उष्ण, खाद्य पदार्थ न दें।

३. माता भी उष्ण पदार्थों का सेवन करे।

४. अम्ल वस्तु न दें।

५. लघु शीघ्र पाची भोजन दें।

६. साबूदाना दूध दें।

चिकित्सा

१. कण्ठलेप—लौंग, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कुलिंजन, मुलहठी, भुना चौकिया सुहागा, प्रत्येक ३ ग्राम, प्याज का स्वरस ६० मि. लि. संजीवनी सुरा ६० मि. लि. में।

सुधानिधि को मौलिक ज्ञानप्रद अनुभवपूर्ण सुन्दर लेख रूप अमृत बिन्दुओं से भरने में श्री आर्य का सुरुचिपूर्ण व्यसन रहा है। आप शालीनता के प्रतीक और नम्रता से ओत-प्रोत विद्वान् वैद्य हैं। आपने गलशुण्डिका के लटकने पर जो अनुसन्धानात्मक लेख लिखा है वह नितान्त मननीय एवं उसके नुस्खे प्रयोग में लाने योग्य हैं। श्री आर्य एतदर्थ निस्सन्देह धन्यवाद के विशेष पात्र हैं।

र. द. त्रिवेदी

समस्त द्रव्यों का वस्त्रपूत चूर्ण कर लें। पीछे प्याज स्वरस तथा सुरा सहित चूर्ण को एक कांच पात्र में डाल कार्क से मुख बन्द कर एक सप्ताह तक रख दें। दिन में २-३ बार हिला दिया करें। आठवें दिन छानकर रख लें। (धन्वन्तरि गुप्त सिद्ध प्रयोगांक भाग १)।

प्रयोग विधि प्रातः सायं फुरेरी से काग पर लगा दे।

गुण—काग वृद्धि २-३ दिन में ठीक हो जाती है। तालुपात में तालु पर लगावें, लाभप्रद है। तालु कण्टक में गुणप्रद है। विशेष अनुभूत है।

२ कौवा पर दिन में २-३ बार फिटकरी तथा मधु मिलाकर लगावे। अंगुली से लगाये।

३. केवल फिटकरी को पानी में मिलाकर रुई के फोहा से दिन में २-३ बार काग पर लगाएं।

४. मुलतानी मिट्टी को सिरका से पीसकर तालु प्रदेश पर लगावे।

५. माजूफल कालीमिर्च को सिरका में पीसकर अंगुली से काग पर लगावें।

६. सुहागा को भूनकर पीसकर इसका प्रतिसारण काग पर करें, लाभप्रद है।

७. कूठ, मिर्च, वच, सेंधव लवण, पिप्पली, पाठ तथा मोथा के वस्त्रपूत चूर्ण को मधु या तीक्ष्ण सिरका में मिला कर गलशुण्डिका पर प्रतिसारण करें।

८. पारिदादि लेप—रस सिन्दूर, रौप्यमाक्षिक भस्म स्वर्णमाक्षिक भस्म, सोंठ, मिर्च, पीपल, तालभस्म, सेंधा-नमक समान भाग लेकर यथाविधि कूट पीस वस्त्रपूत कर लें। इसे गोमूत्र में मिला गरम कर कौवा-काग पर दिन भर में ३-४ बार लगाए। यदि इसमें यथावश्यक मधु मिला लिया जाए और फुरेरी से काग पर लगाया जाए तो शीघ्र लाभ होता है।

९. अरिष्टादि लेप—रीठा, माजूफल, बहेड़ा दल समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर छान लें। पीछे मन्द कांच पर पका गाढ़ा करें। इसमें सुहागा का फूला १ भाग डाल उतार लें। इस रसक्रिया को फुरेरी से गलशुण्डिका पर दिन में ३-४ बार लगाएं।

१०. शूलान्तक धूनी—बच्चे के मुख को खोलकर इसका धुआं काग पर लगाने मात्र से सिकुड़ जाता है।

पृष्ठ २०४ का शेषांश

जीभ जलती सी लाल धब्बे वाली होती है। कफ जन्य जिह्वाकण्टक में जीभ भारी उसकी सतह पर मांस के अंकुर उग आते हैं। जिह्वाकण्टक जिह्वापाक (ग्लौसाइ-टिस) के विविध प्रकार हैं।

अलास का वर्णन इस प्रकार दिया गया है:—

जिह्वातलेयः श्वयथुः प्रगाढ़ः योऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥
जिह्वां स तुस्तम्भयतेप्रवृद्धो, मूले तु जिह्वाभृशमेतिपाकम् ॥

यह एक उग्र और असाध्य स्वरूप का रोग है जब यह त्रिदोषज हो जाता है तब यह निश्चित ही असाध्य बन जाता है। बच्चों में यह रोग बहुत कम होता है। इसे डा. घाणेकर ने सब लिंगुअल ऐब्सैस माना है। इसके लिए ब्राडस्पैक्ट्रम एण्टीबायोटिक दवाएं तथा शल्योपचार किया जाता हैं।

उपजिह्विका जिसे वाग्भट अधिजिह्वा मानता है। यह कफरक्तज रोग है। जीभ के नीचे उत्सेध होता और जीभ ऊपर को उठ जाती है इसमें बहुत लार टपकती हैं, कण्डू और दाह होता हैं।

वातिक जिह्वा कण्टक में उपनाहन, वातहर तैलों का नस्य, गन्धाबैरोजा, राल, गुग्गुल, देवदारु और मधुयष्टी चूर्ण को जीभ पर मलना ठीक रहता है।

पैतिक जिह्वाकण्टक में मधुर द्रव्यों का मलना, दुष्ट रक्त का निकाल देना, मधुर द्रव्यों का गण्डूष धारण करना ठीक रहता है।

कफज जिह्वाकण्टक में शहद में पिप्पली चूर्ण मिलाकर मलने और पीली सरसों और सेंधानमक डाल कर औटे पानी से कुल्ले करना ठीक रहता है।

जीभ में जड़ता आजाने पर भैषज्यरत्नावलीकार का यह प्रयोग उचित माना जाता है:—

जिह्वाजाड्यं चिरज माणक भस्म लवणतैलघर्षणं हन्ति।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्त जम्बीराद्यम्ल चर्वणं वापि॥

अर्थात् मानकन्द की राख नमक और तैल का जीभ पर घर्षण करना या थोड़े सेहुंड के दूध के साथ जम्बीरी नीबू आदि अम्ल पदार्थों का चर्वण करना पिछला प्रयोग बालकों को हितकर नहीं होगा घर्षण विधान ठीक रहता है।

★★

शिशु टॉन्सिलवृद्धि और उसका उपचार

वैद्यराज डा० रणवीरसिंह शास्त्री एम. ए, पी. एच. डी. आयुर्वेदाचार्य, आगरा

शायद ही कोई परिवार हो जिसमें शिशुओं को गल ग्रन्थियों की अभिवृद्धि (Inflammation of tonsils) न होती हो, यह गले का रोग है इसमें गले की दक्षिण वाम भाग स्थित ग्रन्थियां शोथयुक्त हो जाती हैं। किसी-किसी बालक की एक भाग की ग्रन्थी सूजती है यह दोषों के प्रकोप पर निर्भर होता है।

नामकरण एवं महत्वपूर्ण कार्य—

गले के भीतर काकल के समीप दायें बायें स्थित दो ग्रन्थियां बाह्य विकारी पदार्थों एवं दूषित वायु धूम धूलि और देह के लिए घातक रोगों के आक्रमण से देह की रक्षा में तत्पर रहती है। इनका कार्य प्रहरी के रूपमें बना रहता है, । शिशु देह के लिए असात्म्य पदार्थों के मुख या नासिका द्वारा प्रविष्ट होते ही ग्रन्थियां दोष को भीतर जाने से रोक कर स्वयं आत्मसात् करके शरीर के भीतर अनुकूल (सात्म्य) बनाती हैं और अधिक विकारों को नासिका एवं मुखादि के द्वारा प्रतिश्याय जल कफादि के रूप में बाहर निकाल देती है। प्रायः देखा जाता है कि ऐसे संघर्ष के समय ग्रन्थियां शोथित हो जाती है और अतीव कष्ट होने लगता है। इसी रोग को चिकित्सक गलग्रन्थि शोथ (Inflammation of tonsils) कहते हैं।

उपद्रव एवं रूप—गले की ग्रन्थियों के शोथ से शिशु के रोने का शब्द अस्पष्ट भरभराया या कंपित हो जाता है। गले के दोनों बाह्यभागों के दबाने से शोथ एवं कष्ट का आभास हो जाता है। बालक पानी या दूध पीने में असमर्थ रहता है यहां तक कि माता का दूध भी नहीं पीता कभी-कभी मुख में संगृहीत दूध नासिका द्वारा बाहर निकल जाता है। ग्रन्थियों के शोथाधिक्य से थूक और लार भी भीतर नहीं जाती या महान् कष्ट से जाती है। शिशु का मुह तमतमाया या म्लान हो जाता है अङ्गमर्द ज्वर, कास, छर्दि, श्वास, शिरःशूल, नेत्र पीड़ा, कर्णशूल, प्रतिश्याय, छाले, सर्वाङ्ग पीड़ा, मन्यास्तम्भ आदि उपद्रव कष्टकारक रोगों के रूप में शिशु को आयासित करते हैं चिड़चिड़ा बना देते हैं, और स्तन्यपान से विमुख कर देते हैं। कभी-कभी त्रुटिपूर्ण चिकित्सा या रोग की उपेक्षा से गलग्रन्थियां पक जाती हैं इनमें पूयोत्पत्ति से भृशं वेदना व उक्त उपद्रव बढ़ जाते हैं बालक अत्यधिक दुःखित हो जाता है, शीघ्र ही उचित चिकित्सा न होने से पूयविष सर्व प्रसृत-होकर भयङ्कर व घातक उपद्रव उत्पन्न कर देता है।

टाँन्सिल शोथ का संक्षिप्त निदान----

शिशु शरीर के लिए अनुपयोगी पदार्थ दूषितदुग्ध, मातृ-स्तन्य खाद्य एवं पेय पदार्थ, असात्म्य आहार विहार, अति शीतल अत्युष्ण वस्तुओं का प्रयोग खटाई, बर्फ का सेवन, अधिक रुदनक्रन्दन आदि, माता का असात्म्य आहार-विहार द्वारा उत्पन्न दूषित स्तन्यपान से गल ग्रन्थियां शोथित हो जाती हैं। किसी-किसी शिशु को माता पिता के पापिष्ट रोग उपदंश फिरङ्ग पूयमेह, प्रभृति विषज रोगों के रक्त में प्रभाव होने से भी गले की गिल्टयां सूज जाती है।

चिकित्सा एवं उपचार—

निदान को ध्यान में रखते हुए उपचार करने से

विद्या के निकेत, परम वैष्णव एवं आर्य संस्कृति के मुखरित स्वरूप डाक्टर शास्त्रीजी ने शिशुओं की टॉंसिल वृद्धि पर जो विचार अंकित किए हैं और जो अनुभूत चिकित्सा लिखी है वह सभी वैद्यों द्वारा स्वीकार करने योग्य है हम इस कष्ट और सुन्दर लेख के लिए शास्त्रीजी के विशेष आभारी हैं।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

त्वरित रोगों से छुटकारा मिलजाता है। जिन-जिन विशिष्ट कारणो से ग्रन्थियों की अभिवृद्धि हुई हो, कारणों रोगोत्पत्ति व रोग के उपद्रवों का उपचार करना एवं अनुभव और शास्त्र मर्यादा का आश्रयकर रोग की चिकित्सा करना श्रेयस्कर है। असात्म्य आहार-विहार का परित्याग जननी व शिशु के लिए हितावह है।

(१) स्तन्यपायी बालकों के लिए उनकी माता का पथ्य होना चाहिए ठण्डी, खट्टी, चरपरी, गुरु, पिष्टम्भि और पर्युषित वस्तुओं का सेवन वर्जित है। शीतल जल से स्नान शीतल वायु, वर्फ का पानी, अतिस्निग्ध गरिष्ठ, पक्वान्न, वेजीटेविल (जमाया तेल) या इससे निर्मित पदार्थ भी अहितकर है। ठण्डे तेलों का प्रयोग, इनसे वालक व माता का अभ्यङ्ग, शीतान्न, शीतल पान स्नान भी हानिप्रद है।

(२) स्नान, शिरःस्नान, भोजन, शीतल पान के पश्चात् तत्काल बालक को स्तन्यपान नहीं करना चाहिए। ठण्डे, गीले, शीतल, वस्त्रों का उपयोग शिशु के लिए हितावह नहीं है। पूर्व की वायु भी वर्जित है।

आन्तरिक उपचार--

(अ) फिटकरी का फूला, चोकिया सुहागा पुष्प, माजूफल अनार का छिलका इनमें से किसी एक या दो को १-१ रत्ती मिलाकर या ग्लैसरीन में मिला फुरैरी से अन्तःशोथित ग्रन्थियों पर दो तीन वार लगावें।

(आ) चतुर्भद्रिका चूर्ण, सितोपलादि, महासितोपलादि तालीसादि, लवङ्गादि, एवं भृंग्यादि चूर्ण में से किसी एक को १-१ रत्ती मधु या दूध के साथ तीन वार प्रयोग करायें मातादूध ही अनुपान के लिए सर्वोत्तम है।

(इ) अतीस मीठी १-१ रत्ती शहद या दूध में घिसकर तीन वार पिलावें।

(ई) वालक की उदर शुद्धि के लिए जन्म घुट्टी औटाकर पिलावें। छोटी हर्र १ रत्ती, गूदा अमलतास नया १ माशे, सौंफ १ माशे पानी में औटाकर पिलावें, चौकिया सुहागा भुना १ रत्ती, हींग भुनी १ चावलभर, नमक काला २ चावलभर दूध में घिस कर शिशु को प्रातः सायं दें। अत्यधिक रूक्षता में १ चाय के चम्मच के वरावर शुद्ध एरण्ड तैल वालक को देना चाहिए।

(उ) कुमारकल्याण रस ½ रत्ती से १ रत्ती तक दिन में दो वार मधु से दें, अरविन्दासव १५ बूंद से ३० बूंद तक कदुष्ण पानी मिलाकर दो बार दें।

(ऊ) गल ग्रन्थियों की अभिवृद्धि (शोथ) में गुल बनफसा१ माषे, सौंफ १माषे१॥ तोले जल में औटा १माषे मधु मिलाकर पिलावें। उष्ण ऋतु में इन दोनों औषधियों का शर्वत भी चटा सकते हैं। शीत ऋतु में लघुपिप्पली ½ रत्ती से १ रत्ती तक मधु में दें। जायफल ½ रत्ती से १ रत्ती तक दूध या शहद में दें। दुधवच या बालवच ¼ रत्ती से ½ रत्ती तक मधु घृत में दें। अडुसे की जड़ का स्वरस ३ बूंद तक मधु या दूध में सेवन करावें। इनमें से किसी भी औषधि के प्रयोग से गलग्रन्थि शोथ दूर हो जाता है।

गल ग्रन्थि शोथ पर बाह्य उपचार—

(क) शुद्ध घृत १ माषे, शुद्ध कर्पूर या डली कपूर मिला कर टॉन्सिलों के वाह्य भाग ग्रीवा पर मलें। हाथ या रूई से किंचित् सेक दें। शुद्ध घृत में २ रत्ती सेंधा नमक मिला कर वाह्य ग्रीवा में मलने से शीघ्र लाभ होता है।

(ख) काली जीरी ३ माषे गेरू १ माषे पानी में पीस कर कदुष्ण लेप कर दें, इससे शोथ व पीड़ा शीघ्र दूर होती है।

(ग) हरिद्रा १ माषे, लवण २ माषे, खोआ कच्चा मिलाकर पोटली बनाकर हल्का-हल्का पीड़ास्थली को सेक दें।

(घ) जिस भाग का टॉन्सिल बढ़ा हो, उसी भाग की मन्या, प्रगण्ड मांस पेशी अथवा हस्तांगुष्ठ तर्जनी मध्य स्थित धमनी का मर्दन करना चाहिए। रूक्षता निवारण के लिए तैल या घृत का प्रयोग करें। दो तीन बार मलने से आशातीत लाभ होता है।

(ङ) शिरस्तालु (ब्रह्मरन्ध्र) पर शुद्ध बादाम तैल, वादाम पाचित घृत, कट्फल घृत, या नारिकेल तैल कर्पूर मिश्रित कर दो तीन वार शनैः शनैः मर्दन करें, इन बाह्य उपचारों से भी गल ग्रन्थि शोथ शान्त होता है।

जननी के द्वारा शिशु रोग चिकित्सा-

शिशु मां के दूध पर निर्भर रहता है। उसका स्वयं कोई आहार विहार नहीं है जननी के आहार बिहार के अनुसार बालक की रुग्णता एवं स्वास्थ्य का निर्माण होता है।

आयुर्वेदतत्वमर्मज्ञ श्री मोहरसिंह आर्य वैद्य, मिसरी भिवानी

यह रोग विशेष रूप से शिशुओं का है। जब शिशु जन्म लेता है तो उसके शिर की कपालास्थियां अधूरी होती हैं। ब्रह्मरन्ध्र पर केवल त्वचा का ही आवरण होता है। इस आवरण का स्पर्श किया जाए, तो वहां धमन-स्पन्दन प्रतीत होता है। यह स्थान पिलपिला-ढीला होता है। जब तक कपालास्थि अधूरी रहती है तब तक ही इसमें पिलपिलापन पाया जाता है। जब तक यह स्थान पिलपिला कोमल होता है, तब तक अंगुली आदि से दबाने पर दब जाता है। इसको साधारण बोलचाल में तालुवा कहते हैं।

जब बालक बड़ा हो जाता है, तब तालु स्थान भी कठिन हो जाता है। उस स्थान की धमन-स्पन्दन क्रिया बन्द हो जाती है। ब्रह्मरध्र पर जो त्वचा का आवरण होता है, वहां कठिन अस्थि बन जाती है। पिलपिलापन समाप्त हो जाता है।

कारण--मस्तुलुंङ्गक्षयात् यस्य वायुस्तालवस्थि नामये।
(सु. शा. १०)

मस्तिष्क मज्जा से कुपित वात तालु की कोमल अस्थि को झुका देता है। मन्तव्य-यहां पर सुश्रुताचार्य वात के प्रकुपित होने से तालुकण्टक रोग मानते हैं। माधवाचार्य कहते हैं :—

'तालु मांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्।
(मा. नि. बालरोग)

अर्थात् तालुमांस में प्रकुपित हुआ कफ तालुकण्टक नामक रोग को उत्पन्न करता है। रसरत्न समुच्चयकार कहते हैं –'श्लेष्मा हृत्तालु मांसस्थः करोतिः कुपितः शिशोः। यहां पर कफ के प्रकुपित होने से तालुकण्टक रोग की उत्पत्ति मानी गई है।

२. रोगजन्य–तालुपात विशेषतः बालशोष के कारण होता है। बालशोष का यह विशिष्ट लक्षण भी है।

३. हीनपोषण से भी यह रोग हो जाता है। विरुद्ध आहार तथा दूषित दुग्ध पीने से होता है।

विद्वानों के विचार तथा मान्यता

१. माधव निदान में पढ़ा है--

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्।
तेन तालु प्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात् पानं शकृद्द्रवम्।
तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः॥

अर्थात् तालुमांस में प्रकुपित हुआ कफ तालुकण्टक उत्पन्न करता है। इससे तालु प्रदेश नीचा हो जाता है। तालुपात, स्तनद्वेष तथा दूध के पीने में कठिनाई हो जाती है। पतले दस्त होते हैं। प्यास लगती है, नेत्र कण्ठ तथा मुख में वेदना होती है। गर्दन झुक जाती है। वमन होता है।

श्री आर्य के कर-कमलों से यह दूसरा सुधा बिन्दु प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने तालुकण्टक या तालुपात का सम्बन्ध निश्चित रूप से ब्रह्मरन्ध्र के साथ जोड़कर अपने लेख को स्वरूप प्रदान किया है। अनेकानेक शास्त्रवाक्यों और उद्धरणों से अलंकृत उनका यह लेख अनेक अनुभूत औषध कल्पों की ओर भी स्पष्ट इंगित करता है जो इस रोग में सफल सिद्ध हुए हैं। र. प्र. त्रि.

---

२. शार्ङ्गधर संहिता 'सुबोधिनी' हिन्दी टीकाकार श्री प्रयागदत्त शर्मा आयुर्वेदचार्य रोग गणनाऽध्याय सात के विमर्श में लिखते हैं तालुमांस में कफ क्रुद्ध होकर तालु-कण्टक उत्पन्न करता है। इसमें सिर के ऊपर तालु (जहां स्पन्दन होता रहता है) धंस जाता है।

इसके आगे शर्मा जी विच्छिन्न लिखते हैं—विच्छिन्न इसे तालुपात भी कहते हैं। इसमें बालक स्तन पीने में अनमना रहता है, तालु में दर्द होने से मुश्किल से स्तन-पान करता है। प्यासा रहता है तथा पतला मल-त्याग करता है। आंख, कण्ठ और मुख में दर्द होता है तथा बालक सिर को मुश्किल से धारण करता है।

३. माधव निदान की 'विद्योतिनी' हिन्दी टीका में श्री सुदर्शन शास्त्री 'विमर्श' में लिखते हैं—'मुख में कण्टक के समान दाने या व्रण बन जाने के कारण बालक को दूध पीने में कठिनाई होती है। उदर की विकृति से जलबहुल मल निकलता है। शरीर में जल की कमी (Dehydration) के कारण मस्तिष्क-सुषुम्ना-जल (Cerebrospinal flluid) की भी कमी हो जाती है, जिससे शीर्षतालु (Anterior fontanellas) नीचे को दब जाता है।

४. रसरत्न समुच्चयकार कहते हैं—

'श्लेष्मा हृत्तालुमांसस्थ: करोति कुपित: शिशो:।
तालुकण्टकमेतेन तालुस्थाने च निम्नता॥
अर्थात्

५. शार्ङ्गधर संहिता में आचार्य राधाकृष्ण पाराशर ने बालरोग गणना-प्रकरण में तालुकण्टक लिखा है—(तालु का पाक होकर उसमें कांटे जैसे हो जाते हैं—Thrush) अगला रोग लिखा है—विच्छिन्न (तालुपात तालु नीचे की ओर खिसक आती है तालुकण्टक की प्रथमावस्था)।

६. वैद्य गगन राम यादव मिश्री, तालुकण्टक तथा तालुपात को पृथक्-पृथक् दो रोग मानते हैं। वे लिखते हैं—'तालु शिर का वह भाग है, जहां शिशु की कपाला-स्थियां अपूर्ण-अपक्व रहती हैं। जब तक यह स्थान अपूर्ण रहता है, तब तक वहां त्वचा का ही आवरण रहता है। इस त्वचा को स्पर्श करने पर धमन-स्पन्दन प्रतीत होता है। यह स्थान पिलपिला होता है। इसको अंगुली से दबाया जाए तो दब जाता है। इस स्थान को साधारण बोल चाल में तालुवा कहते हैं। यही ब्रह्मरन्ध्र या विवर कहलाता है। यह केवल एक झिल्ली (त्वचा) में बना होता है। जब शिशु दो वर्ष का बालक बन जाता है, तो यह झिल्ली कठोर बनकर अस्थि का रूप धारण कर लेती है। फिर वहां गड्ढा नहीं रहता और न ही स्पन्दन फड़कन प्रतीत होती है। यदि दो वर्ष की आयु के पश्चात् भी फड़कन प्रतीत हो तो उसमें कोई रोग कारण है। विशे-षत: यह स्थान बालशोष में अधिक फड़कता है। तालुपात में तो फड़कता ही है।

कई विद्वान् तालुकण्टक में 'गले में कण्टक के समान वाले व्रण तथा पाक मानते हैं। तालुकण्टक में कण्टक शब्द को देखकर ही ऐसा अर्थ करते हैं, जो ठीक नहीं। कण्टक का अर्थ यहां तालुगत दोष विकार होना चाहिए क्योंकि तालु में कफ दोष प्रकुपित होकर पिलपिलापन उत्पन्न करता है।

इस व्याधि में 'स्तनपान द्वेष' एक प्रमुख लक्षण है। शिशु जिह्वा तथा तालुप्रदेश की सहायता से ही स्तनपान करता है। जब स्तन को जीभ से दबाता है, तो स्तन ऊपर तालु प्रदेश में लगता है। तालु प्रदेश रुग्ण होने के कारण स्तनपान में सहयोग नहीं दे पाता। जिह्वा तथा स्तन की दाब से ऊपर उठ जाता है। और ऊपर उठने के कारण उसमें पीड़ा होने लगती है, इसीलिए स्तनपान में कठिनाई हो जाती है। फलस्वरूप शिशु स्तनपान से डरता है, यही कारण है कि शिशु स्तनपान से द्वेष करता है।

दूसरा लक्षण जल-बहुल-मल का त्याग कहा है। शिशु समय पर स्तन्यपान नहीं कर पाता है, तालु प्रदेश में पीड़ा होने के कारण ही शिशु कभी अधिक तो कभी कम दु:ख के साथ स्तन्यपान कर पाता है। यह एक मुख्य कारण पाचन विकार का बन जाता है। परिणामस्वरूप पतले दस्त होने लगते हैं।

तीसरे लक्षण में नेत्र आदि में पीड़ा होना बताया है।

तृतीय लक्षण मुख कण्ठ तथा नेत्र में पीड़ा होना बताया है। कर्पर-खोपड़ी की रचना २२ अस्थियों से मिल-कर हुई है। जिनमें आठ अस्थियों के परस्पर मेल से कपाल की रचना होती है। शेष १४ अस्थियों से चेहरे का

ढांचा बनता है। इस ढांचे में नेत्रों के गड्ढे, नाक तथा कर्ण के स्थान होते हैं। इन सब अस्थियों का परस्पर मेल मिलाप है। यदि एक स्थान में वेदना होती है तो पड़ोसी अवश्य ही प्रभावित होता है। ब्रह्मरन्ध्र की झिल्ली चारों ओर की अस्थियों से मिली हुई होती है। यह झिल्ली रुग्ण होने पर ढीली हो जाती है और नीचे की ओर खिचाव हो जाता है। इस प्रकार खिचाव के कारण ही पीड़ा होती है।

७. वैद्य मंगलचन्द्र आर्य लिखते है-

'मुख में व्रण अथवा दाने होने पर तालुकण्टक रोग नहीं कहा जा सकता है अपितु उसे मुखपाक कह सकते हैं; यदि तालुकण्टक में व्रण या दाने मानते हैं तो मुखपाक में क्या मानेंगे। मेरे विचार में तालुकण्टक का अर्थ तालु प्रदेश में कुपित दोष होना चाहिए।

तालुपात में--ब्रह्मरन्ध्र की झिल्ली पिलपिली होकर नीचे की ओर झुक जाती है। उसमें धमन प्रतीत होता है। अंगुली से दब जाती है। शिशु दूध नहीं पी सकता, वमन कर देता है। रोता रहता है। पाचन विकार हो जाते हैं। चिड़चिड़ापन हो जाता है। ये सभी लक्षण तालुपात में देखे जाते हैं।

८. श्री वाचस्पति मिश्रा 'तालुकण्टक' और 'तालुपात' को दो रोग मानते हैं।

साध्यासाध्य -शीघ्र चिकित्सा कर देने से रोग पूर्णतः ठीक हो जाता है।

चिकित्सा सिद्धान्त

१. निदान परिवर्जन करें।
२. सुपाच्य पौष्टिक आहार दें।
३. शोषरोगवत् उपचार करें।

चिकित्सा व्यवस्था

१—सुधाष्टक योग (सि. यो. सं.)

मात्रा २ से ८ ग्रेन तक। अनुपान—दुग्ध दिन में ३ बार दें।

२—मुक्तादिवटी (सि. यो. सं.)

मात्रा १ गोली। अनुपान-माता का दुग्ध। दिन में तीन बार दें।

मर्दनार्थ

महालाक्षादि तैल—समस्त शरीर पर मालिश करें। प्रातः काल धूप में बैठाकर धीरे-धीरे मर्दन करें।

प्रलेप

१. तालु प्रदेश पर पीली मिट्टी का लेप करें।
२. ईसबगोल को पानी में भिगोकर एक वस्त्र पर रखकर तालु प्रदेश पर लगाएं और इसको पानी से तर रखें।
३. हरड़, वच, मीठा कूठ तीनों को जल में पीसकर।

वैद्यों के अनुभूत योग

१ वैद्य गुगनराम यादव (वैद्य जी की आयु ८७ वर्ष है)।

१. स्वर्णभस्म १ भाग, मुक्ताभस्म २ भाग, प्रवालभस्म ३ भाग, गुडूची सत्व ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग, पृश्नपर्णी (बकरी के दूध में शोधित) ६ भाग लें।

—स्वर्णभस्म तथा मुक्ताभस्म तो एक सप्ताह अर्क बेदमुश्क में खरल करें। शेष द्रव्यों का पृथक् २ वस्त्रपूत चूर्ण करें। पीछे सबको मिला, एकजीव कर लें।

मात्रा—यथावश्यक। अनुपान - माता का दूध। दिन में २-३ बार दें।

गुण—तालुपात एवं शोषरोग नाशक है।

२. हरड़ वच और मीठा कूठ ने कल्क बना मधु मिलाकर माता के दूध के साथ पिलावें।
३. यवक्षार को मधु में मिलाकर तालु प्रदेश के गड्ढे में भर दें।
४. मुलतानी मिट्टी तथा माजूफल को सूक्ष्म पीसकर सिरका मिलाकर तालु प्रदेश पर लेप करें।

२ वैद्यभूषण मंगलचन्द्र आर्य के अनुभूत योग।

१. आंवलासार १० ग्राम, हरड़ १० ग्राम लेकर गुलाबजल में पीस तालु प्रदेश पर लगाएं।
२. सितोपलादि चूर्ण मधु में मिलाकर दिन में ३-४ बार चटाएं।
३. अनविध मोती १ ग्राम, स्वर्ण पत्रक १ ग्राम, ले। दोनों को अर्क बेदमुश्क में सात दिन खरल करें।

मात्रा—१ चावल, अनुपान—दुग्ध।
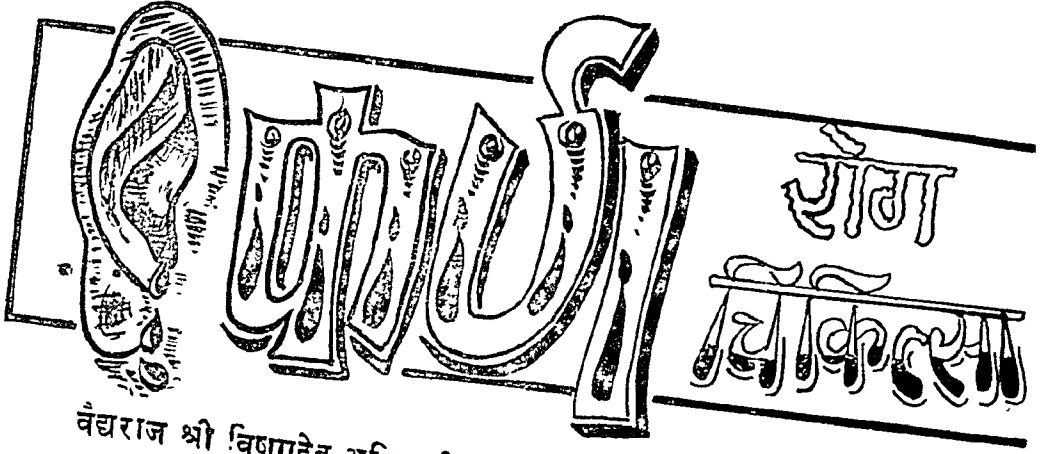
वैद्यराज श्री विष्णुदेव अधिकारी ए०एम०एस० (का० हि० वि० वि०)
सहायक संचालक आयुर्वेद, भोपाल, म. प्र,

श्री अधिकारी जी जहां आज एक उच्चासनस्थ अधिकारी हैं और मध्यप्रदेश के आयुर्वेद विभाग को अलंकृत कर रहे हैं, वहां वे एक सफल और अनुभव सिद्ध चिकित्सक के रूप में भी अमितयश अर्जनकर चुके हैं। आप भगवती के अनन्यभक्त और प्रसिद्धि परांमुख रहना पसन्द करते हैं। आपने कर्णशूल और स्राव पर जिस उत्तम साहित्य का स्रजन किया है वह निस्सन्देह श्लाध्य है। हमें विश्वास है कि भविष्य में भी वे उत्तमोत्तम लेख रूप सुधाविन्दुओं से अमृत-कलशरूप सुधानिधि को भरते ही रहेंगे। इनकी प्रतिभायोग्यता और अनुभव का समुचित उपयोग वैद्यसमाज के लिए अवश्य ही कल्याण-कारी होगा।

—गो० श० गर्ग

आयुर्वेद के ग्रन्थों में कान के अनेक रोगों के निदान और चिकित्सा का अच्छा वर्णन किया गया है। कर्णशूल को वातज, पित्तज- कफज, सन्निपातज तथा रक्तज इन पांच भेदों में बांटा गया है। रक्तज कर्णशूल का कारण अभिघात माना गया है। शेष चारों पृथक्-पृथक् या एक साथ दोषों के प्रकोप के कारण होते हैं।

वातज कर्णशूल बहुत तेज होता है। उसके साथ उस ओर के आधे सिर में भी दर्द हो सकता है। बच्चे को सर्दी
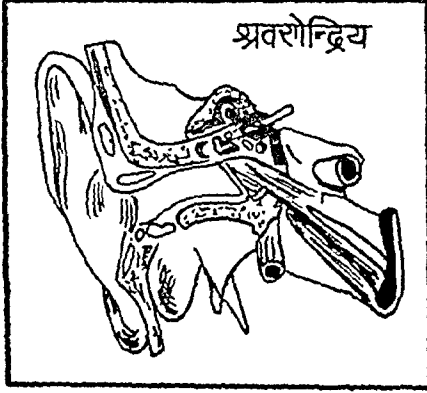
iii. वातहर वर्ग के द्रव्यों, कांजी तथा मूत्र के साथ घी-तेल-वसा-मज्जा रूप महास्नेह को पकाकर उस तरल को सुहाता गरम कान में छोड़े ।

iv. वृहत्पंचमूल (वेल, गम्भारी, पाटला,श्योनाक,अग्निमन्थ)मे से किसी एक वृक्ष की लकड़ी को रेशम से लपेट कर तैल से भिगोकर एक सिरे पर उसे जलावे । जो तेल टपके उसे इकट्ठा करले इस तैल को हलका गरम करके कान में चुवाने से तत्काल कान का दर्द बन्द हो जाता है। इस विधि से प्राप्त तेल दीपिका तैल कहलाता है ।

C. वातिककर्णशूल में वातव्याधि और प्रतिश्याय चिकित्सा में वर्णित चिकित्सा से भी लाभ होता है ।

वातिक कर्णशूल में वातनाड़ीशूल (न्यूरैल्जिया) के समान औषधि देने का आधुनिक विधान है । इनमें A. P. C. की गोलियां कोडोपायरिन, सैरिडोन आदि चलती हैं। इर्गापायरिन की गोली भी लाभ करती है । १२० बूंद ग्लिसरीन में १२ बूंद कार्बोलिक एसिड डाल गर्म करलें इसी में १० मिग्रा नोवोकेन मिला रखलें । कान में दर्द होने पर इसकी ३-४ बूंदें कान में छोड़ें । बोतल हिलाकर ही बूंदें ड्रापर में भरें तभी छोड़ें ।

घी का लेप किए आक के पीले पत्ते को अङ्गारों पर तपाकर उससे निकाले रस को कान में डालने से कान की तीव्र से तीव्र वेदना भी मिट जाती है ऐसा भैषज्यरत्नावली कार के निम्नांकित वाक्य का सारांश है :—

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं आज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनञ्च ।।

पित्तजकर्णशूल चिकित्सा —

A. मिश्री और घी के साथ विरेचन द्रव्य दें ।

B. i. द्राक्षा–मुलहठी इन्हें डालकर औटाये हुए दूध से कान भरा जावे ।

ii. मुलहठी, अनन्तमूल, चन्दन, खस, काकोली, लोध्र, जीवक, कमलनाल, कमलकन्द, मजीठ, सारिवा १-१ पल का कल्क, मुलहठी का क्वाथ, दूध २ प्रस्थ और तैल १ कुडव डाल सिद्ध करे । इस तैल के नस्य देने, मालिश करने तथा कान में डालने से पैत्तिक शूल । दाह, ऊष्मा सभी दूर हो जाते हैं ।

iii. केवल मधु डालने से भी लाभ होता है ।

कफजकर्णशूल चिकित्सा—

. पिप्पली सिद्ध घृत से रोगी को स्निग्ध करके फिर वमन करावे । धूम, नस्य, गण्डूष तथा स्वेदन कार्य करावे ।

B. i. लशुन, अदरक, सहंजन, सहैंजन भेद. मूली, केला, इनका रस सुहाता गरम-गरम डालें ।

ii. तैल, सैन्धव लगे आक के अंकुरों को कांजी में पीस सेहुण्ड के तने के खोखले में भरकर पुटपाक विधि से स्वरस बनाकर कान में टपकावे । इससे पित्तज-कर्णशूल शान्त होता है ।

iii. हींग, धनियां, सोंठ सिद्ध सरसों का तैल कान में डाले ।

iv. बांस की हरी छाल का कल्क, बकरी-भेड़ के मूत्र से तिल तैल सिद्धकर कान में टपकावे ।

रक्तजकर्णशूल चिकित्सा --पित्तजकर्णशूल के समान की जावे ।

कर्णपाक चिकित्सा

दोषज या रक्तज कर्णशूल में द्वितीय सोपान में पाक होता है। इसे दूर करने के लिए वाग्भट लिखता है —

पक्वं पूयवहे कर्णे धूमगण्डूपनावनम् ।
युञ्ज्यान्नाडीविधानञ्च दुष्ट व्रणहरं च यत् ।।

धूमपान, गण्डूपधारण, नस्य, नाड़ी द्वारा दवा फूंकना तथा दुष्टव्रणहर उपचार किया जावे । कर्णपाक एक इन्फ्लेमेटरी अवस्था है जिसमें विविध जीवाणु कान में व्रणशोथ या पाक पैदा कर देते हैं जिसके अन्त में पूयोत्पत्ति होती

—शेषांश पृष्ठ २१७ पर

श्वसनसंस्थानीय बाल रोगोपखण्ड

इस उपखण्ड के लेखकों का परिचय

इस प्रकरण के विविध लेखों के लेखकों के विषय में लेख के साथ सम्पादकीय टिप्पणी कागज की बचत की दृष्टि से नहीं लगाई जा रही। त्रिवेदी नामधारी जो लेखक इसमें हैं उनमें श्री आनन्दवल्लभ जी सिकन्दराराऊ तहसील में पीयूषपाणि प्रतिष्ठित वैद्य हैं जो लाखों रोगी हर वर्ष देखते और रक्षा करते हैं। श्री सुन्दरलाल जी बरेली के नव स्थापित २५ शैयाओं वाले आतुरालय के प्रधान चिकित्सक हैं जिन्होंने बरेली डिवीजन में अमित यश का अर्जन किया है। यह औषधालय उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व स्वास्थ्य मन्त्री और वर्तमान महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य धर्मदत्त जी द्वारा दान की गई लाखों रुपयों की सम्पत्ति से उन्हीं के नाम पर निर्मित है। दोनों ही प्रत्यक्ष परिवारीजन न होते हुए भी परम अभिन्न हैं। चि. सुशील और चि. जगदीश अपने भ्रातृज हैं और दोनों योग्यतापूर्वक आयुर्वेदीय चिकित्सा में अपने यश का विस्तार करने में प्रयत्नशील हैं। आचार्य उपाध्याय रायपुर आयुर्वेद कालेज में संहिताओं के अध्यापक और बहुश्रुत व्यक्ति हैं आयुर्वेद का उनका गहन अध्ययन है जिसका लाभ पोस्टग्रेजुएट एवं ग्रेजुएट कक्षाओं के छात्र उठा रहे हैं। श्री कौशिक जी हमारे नये लेखक हैं। आप श्री मस्तनाथ आयुर्वेद कालेज के सुयोग्य स्नातक और प्रसिद्ध चिकित्सक परम्परा के अनुयायी हैं। आपके पिताजी आयुर्वेद एवं तिब्बिया कालेज दिल्ली के स्नातक और दिल्ली में चिकित्सा एवं औषध विक्रय व्यवसाय में विख्यात हैं।

—रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी।

शिशु-श्वसन संस्थान के रोगों का सामान्य विचार

वैद्यराज श्री आनन्दवल्लभ त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य, सिकन्दराराऊ (अलीगढ़)

बालकों के श्वसनसंस्थान (Respiratory System) में जो रोग होते हैं उनमें रचनात्मक, वैकारिक क्रियात्मक और सैद्धान्तिक दृष्टि से अनेक विलक्षणताएं पाई जाती हैं। इन विलक्षणताओं का अध्ययन ठीक-ठीक बिना किए कोई अच्छा बाल चिकित्सक नहीं बन सकता। इस लेख में हम इन्हीं का विवरण संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

रचनात्मक विलक्षणताएं

यह स्मरण रहना चाहिए कि बालकों के फुफ्फुसों का आकार बहुत छोटा होता है। उसी अनुपात में उनके श्वास लेने के वायु मार्ग भी बहुत संकीर्ण होते हैं। इसके कारण ये मार्ग या प्राणवाही स्रोतस् किसी भी बाह्य द्रव्य से या श्लेष्मा से अथवा उनके सूज जाने से आसानी से अवरुद्ध

हो जाते हैं। इसलिए बच्चे में श्वासकृच्छ्रता प्राणनाशक जितनी जल्दी सिद्ध हो सकती है उतनी जल्दी वयस्कों में नहीं होती। चरक संहिता की प्राणवाही स्रोतों की दुष्टि बालकों में भी उतनी ही सटीक उतरती है जितनी कि बड़ों में अतिसृष्टं अतिबद्धं कुपितं अल्पाल्पमभीक्ष्णं वा सशब्द-शूलं उच्छ्वसन्तं दृष्ट्वा प्राणवहानि अस्य स्रोतांसि प्रदुष्टानीति विद्यात्। च. सं. वि. स्था. अ. ५)।

दूसरी विलक्षता होती शिशुवक्षरूप अस्थि पञ्जर, की बच्चा की छाती की हड्डियां मुलायम होती हैं। उनकी पसलियों का अस्थिभवन या कैल्सीफिकेशन भी पूरा-पूरा नहीं हुआ रहता इसलिए छाती किसी भी छाती के रोग में भीतर को धंस जा सकती है। शिशु का वक्षमध्यावकाश (मीडियास्ट्रीनम) भी चलनशील होता है जिससे छाती के अस्थिकोटर के अन्दर के कोष्ठांग इधर से उधर सरक सकते हैं और जटिलता पैदा कर सकते हैं।

तीसरी विलक्षणता होती है लसवाही संस्थान (लिम्फैटिक सिस्टम) का शिशु के वक्ष में पूर्ण विकसित होना। इसके कारण हाइलर (hilar) लसपर्व आसानी से प्रवृद्ध होते हुए देखे जाते हैं।

बच्चों का क्ष-किरण चित्र लेना भी कठिन होता है क्योंकि वे कभी इकचक नहीं बैठ पाते। रोने से भी यह चित्र बिगड़ सकता है। इस चित्र में बालग्रैवेयक ग्रन्थि (थायमस) बढ़ा हुआ देखा जाता है। छः महीने से नीचे के बच्चों में ब्रोंकोस्कोपी (श्वसनिकादर्शन) बिना अनेस्थीसिया किया जा सकता है परन्तु यन्त्र के कारण स्वरयन्त्र में सूजन भी हो जाती है जो कष्टप्रद होती है इसका ध्यान रखकर ही यह परीक्षा की जानी चाहिए।

क्रियात्मक विलक्षणताएं

बच्चे की श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया बहुत अस्थिर स्वरूप की होती है जो थोड़े से ऋतु परिवर्तन से भी बदल जाती है। रोगावस्था में तो उसमें निश्चय ही परिवर्तन हो जाता है। श्वास की गतियों के बारे में भी बालवैद्य को ठीक-ठीक ज्ञान रखना नितान्त आवश्यक है। नीचे प्रति मिनट गति दी जा रही है:—

४० बार — जन्म के समय
३० बार — एक वर्ष के शिशु
२५ बार — तीन वर्ष के बालक में

इन अवस्थाओं में श्वास गति में परिवर्तन रोग का द्योतक मानकर उस रोग की पूर्ण पूरी छीनबीन की जानी चाहिए।

वैकारिक विलक्षणताएं -

नासाकोटरों से लेकर श्वसन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म नलियों तक श्लेष्मलकला में बच्चे में सातत्य रहने से फुफ्फुसों से लेकर नासाकोटरों तक जो भी व्याधि होती है उसमें लिंक पाई जाती है। अर्थात् बालक को सर्दी होने से नाक बहने लगने पर फेंफड़े में भी श्लेष्मास्राव बढ़ जाता है।

सूक्ष्मश्वासनिकाओं का श्लेष्मा पूय द्वारा स्थान पर अवरोध होते रहने के कारण फुफ्फुस के थोड़े-थोड़े क्षेत्रों में प्रायः खण्डीय अवपात (सैगमेंटल कुलैप्स) पाया जाता है। इस विलक्षणता के कारण शिशुओं में लोबरन्यूमोनियां बहुत ही कम पाया जाता है तथा ब्रांकोन्यूमोनियां अक्सर पाया जाता है।

बच्चों को राजयक्ष्मा या टीबी वयस्कों (बड़ों) जैसी नहीं होती अर्थात् उसके कारण फुफ्फुसों में गुहिका (कैविटी) नहीं बनती। यहां इसका स्वरूप प्राथमिक सम्मिश्र (प्राइमरी काम्प्लैक्स) टाइप का होता है।

नैदानिक विलक्षणताएं -

यह सद याद रखना चाहिए कि बच्चों में श्वसन-संस्थान के रोग जितने अधिक देखे जाते हैं उतने बड़ों में नहीं होते। बच्चे किसी भी बाह्यद्रव्य को श्वसन मार्ग से पहुँचा देते और फिर खांसना आरंभ करते हैं। श्वास-नलिकाओं का शोथ या ब्रांकाइटिस प्रायः शिशुओं में पाई जाती है। इनकी खांसी भी विशिष्ट प्रकार (ट्रिगर पौइण्ट) प्रत्यावर्ती) की होती है। खांसी का कारण ग्रसनी शोथ या टांसिलशोथ या नासाकोटरपाकजन्य सपूयस्राव के गले तक जाने से होता है गले में कोई चीज चले जाने से झटकेदार (क्रूपी) खांसी आती है। उरःक्षत, श्वसनीशोथ की तीव्रता एवं श्वासरोग में खांसी मिलती है। यक्ष्मा में या न्यूमोनियां में खांसी कम आती है। प्लूरिसी में खांसी के साथ बालक दर्द से चिल्लाता है। अगर मध्यस्थानिका में

लसपर्व बड़े हो जाते हैं तो वक्स में बंद टाइप की म्यांगी (वौक्सी कफ) मिल सकती है।

श्वास मार्गों में अवरोध होने से घर्घर या स्ट्राइडर मिलता है। श्वसन या हृद्वाहिनी संस्थान के रोगों में श्वास-कृच्छता तथा श्यावता (सायनोसिस) मिलती है।

बच्चे थूक को निगल जाते है इसलिए उनके थूक के टाइप का पता नहीं चल पाता।

उरःक्षत के कारण कभी-कभी अंगुलियों के पोर थोड़े थोड़े मोटे भी होते हुए पाये जाते है पर यह लक्षण सहज हृद्रोग में जितना स्पष्ट होता है उतना स्पष्ट यहां नही होता।

बच्चे के वक्ष की परीक्षा कभी ठण्डे हाथों से नही करनी चाहिए। यही नहीं स्टैथैस्कोप लगाकर देखते समय भी उसका ठण्डा सिरा बच्चे की नंगी देह पर ठण्डा-ठण्डा नहीं छुआना चाहिए। एक पतले कपड़े के ऊपर से उसे रख श्रवण परीक्षा करनी चाहिए, सामान्यतः दर्शन, स्पर्शन, आकोटन और श्रवण रूप परीक्षा चतुष्टय का पूरा-पूरा प्रयोग वक्षपरीक्षार्थ करने चाहिए। दर्शन से श्वासप्रश्वास गतिकी विलक्षणता का बोध होता है। श्वसन के साथ छाती पसलियों में अन्दर की ओर खिंचती तो नहीं इसे देखा जा सकता है। स्पर्शनपरीक्षा से हृद् शीर्ष गति तथा कण्ठनाली की स्थिति का ज्ञान होता है। आकोटन बहुत कोमलतापूर्वक करना चाहिए अन्यथा बच्चे को कष्ट अधिक हो जाता है। श्रवण परीक्षा द्वारा श्वास-प्रश्वास के शब्द, राल्स, रोन्काई, क्रिपिटेशन स्पष्ट सुने जाकर रोगनिदान किया जा सकता है।

वक्ष परीक्षा के विशिष्ट परिज्ञान हेतु छाती का ऐक्सरे कराना या श्वासनालदर्शन (ब्रांकोस्कोपी) कराना होता है उन्हें उनेक विशेषज्ञों द्वारा कराया जाकर छाती के रोगों का पूर्ण ज्ञान करना होता है। वक्ष या प्राणवाही स्रोतों के रोगों की उत्पत्ति में चरक संहिता में दिये गये निदान कारणों को भी स्मरण रखना चाहिए।

क्षयात्सन्धारणात्-रौक्ष्यात् व्यायामात् क्षुधितस्य च।
प्राणवाहीनि दुष्यन्ति स्रोतांस्यन्यैश्च दारुणैः॥

पृष्ठ २१४ का शेषांश

है। इसे दूर करने के लिए व्रणशोथ नामक उपचार करना चाहिए।

आधुनिक व्रणशोथहर चिकित्सा सल्फा द्रव्य, पेनिसिलीन, टैट्रासाइक्लीन वर्ग के द्रव्य आते हैं। इनकी टिकियां कैपसूल, ड्राप्स या इंजेक्शन यथा मात्रा दिये जाते है।

पिचुवर्तियों से साफ करके कान का धूपन करते है। मुरसादिगण की दवाओं का चूर्ण भी कान में फूंका जाता है। सीवाजोल पाउडर, सीवासल्फ पाउडर भी कान में फूंकते हैं। पाक के आदि में स्वेदन और सेक लाभ करता है।

कर्णस्राव चिकित्सा

कान में जिस भी प्रकार का स्राव हो उसे पिचुवर्ति द्वारा या गरम पानी की पिचकारी से या हाइड्रोजन पर ओक्साइड डालकर साफ करते हैं। फिर कान में जीवाणुनाशक सीवाजोल या सैवासल्फ पाउडर फूंकते है फिर तैल भरते या सल्फासीटैमाइड कर्ण बिन्दु टपकाते हैं।

कर्णस्रावहर औषधकल्प

१. क्षार तैल का प्रयोग लाभप्रद है।

२. स्वर्जिकाक्षार, हींग, मूली, पिप्पली, सोंठ, सोया के कल्क १ भाग के साथ ४ भाग तिल तैल तथा १६ भाग सिरका डाल तैल सिद्ध करने से कर्णस्राव और शूल शीघ्र नष्ट होते हैं।

३. एक तोले माजूफल को १ छटांक सिरके में पका कर शीशी में छान कर रख लें। २-२ बूंदें २ बार डालने से वरसों से बहता कान भी ठीक हो जाता है।

कान का ठीक-ठीक सेक, सफाई, शोधन, एन्टीबायोटिक द्रव्यों का अन्तः बाह्य प्रयोग, कर्णबिन्दुओं का समय समय पर डालना तथा शरीर को उपसर्गकारी जीवाणुओं से बचाने से कान का पाक और स्राव ठीक होजाते है।

शिशु-कण्ठगतरोग और उनकी चिकित्सा

डा० श्री अनिलकुमार कौशिक जी०ए०एम०एस०, सब्जीमण्डी, दिल्ली

कण्ठ, गला या ग्रसनिका (फेरिंग्स) शिशुओं में प्रायः रोगग्रस्त हो जाती है। कभी-कभी गले में चुपचाप रोगकारी जीवाणुओं का आक्रमण हो जाता है जिसके कारण बच्चे को ज्वर आता रहता है। अतिसार तथा वमन होती रहती है। बड़े बच्चों में उदरशूल भी मिल सकता है। बच्चों के कण्ठगत रोगों का प्रधान कारण स्ट्रैप्टोकोकस हीमोलाइटीकस नामक जीवाणु का उपसर्ग होता है। यदि यह जीवाणु न मिले तो रोग प्रायः विषाणुजन्य मानना चाहिए। स्ट्रैप्टोकोकस हीमो जीवाणु पित्तज विकार उत्पन्न करता है जिसमें गले में सूजन, लाली, दर्द, ज्वर आदि लक्षण होते हैं। विषाणुओं के कारण कफज या कफवातज या शुद्ध वातज लक्षण मिलते हैं जिनमें गले में निगलते में कष्ट, कास और ज्वर के लक्षण मिला करते हैं।

गलपाक जब काफी दिन चलता है तो उसका असर ट्रान्सिलों पर पड़ता है। दरिद्रता के पाश में जकड़े, अंधेरे घरों में रहने वाले सीलदार जगहों में बसने वाले माता-पिता की सन्तानें गले के रोगों तथा टॉन्सिल शोथ के शिकार हो जाते हैं। भोजन की कमी, गन्दगी और सर्दी रोग की वृद्धि करते हैं।

टॉन्सिलों के साथ कण्ठशालूक (एडिनांइड्स) भी प्रभावित होते हैं। टांन्सिलों में उपसर्ग का अधिक महत्व होता है जबकि शाशूकों के कारण गले के अवरोध का अधिक महत्व होता है। ट्रांन्सिलों में उपसर्ग होने से बच्चे की भूख घट जाती है, उसे खांसी रहती है, खांसी सूखी और कष्टकर होती है, ट्रांन्सिलें बढ़ जाती हैं पर उनमें इतनी वृद्धि नहीं होती कि वे श्वसनमार्ग का अवरोध कर सकें। कण्ठशालूकों की वृद्धि से श्वसन मार्ग संकीर्ण हो जाने से बालक नाक से श्वास न लेकर मुख से श्वास लेने लगता है जिससे उसकी आकृति विचित्र हो जाती है, खुला मुंह- दवी नांक, ऊपर के दांत आगे को निकले हुए, खाली-खाली भाव। कण्ठशालूक जब ग्रसनीमध्यकर्णनली के मार्ग को अवरुद्ध कर लेते हैं तो बच्चा बहरा (बधिर) होने लगता है।

बहुत अधिक बढ़ जाने पर टांसिलों और शालूकों शल्योपचार द्वारा निकलवाने का विधान है किन्तु उससे पूर्व आयुर्वेदीय उपचार एवं जीवाणुहर आधुनिक द्रव्यों के प्रयोग से भी उन्हें ठीक किया जा सकता है।

आयुर्वेद में गले के १८ रोगों का वर्णन आता है— रोहिणी ५ प्रकार की, कण्ठशालूक, अधिजिह्वा, वलय, अलास, एकवृन्दक, वृन्द, शतघ्नी, गिलायु, कण्ठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांसतान तथा विदारी। रोहिणी का लक्षण और सम्प्राप्ति देते हुए लिखा है—

गलेनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसंच तथैव शोणितम्
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहन्त्यसून् व्याधिरयं तु रोहिणी ॥

पित्त कफ इन दोनों दोषों को मूर्च्छित करके गले में स्थित वात मांस और रक्त इन दो द्रव्यों को दूषित करके गले को अवरुद्ध करने वाले अंकुरों (मेम्ब्रेन) को जन्म देकर उसके द्वारा प्राणों को नष्ट कर देती है इस व्याधि को रोहिणी कहते हैं। वातजा, पित्तजा, श्लेष्मजा, संनिपातजा और रक्तज ये इसके ५ भेद है।

कण्ठशालूकों के बारे लिखा है—

कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूलभूतः
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति

गले में झरबेरी के बेर की गुठली के आकार की कफ जन्य जो ग्रन्थि बनती है जिसमें कण्टकवत् शूल उत्पन्न हो और जो खर और स्थिर स्वरूप की होती है। वह कण्ठशालूक कहलाती है। यह शस्त्रोपचार (आपरेशन) द्वारा ही साध्य मानी जाती है।

अलास, एक वृन्द वृन्त ये तीनों ग्रसनीपाक(फेरिंजाइटिस) के विविध रूप हैं। शतघ्नी गिलायु तथा गलविद्रधि ये तीनों गले में उत्पन्न उत्सेधों या रिट्रोफिरिंजियल ऐब्सस

के रूप हैं।

गलौघ अन्ननाली के मुख का अन्नजलावरोधी शोथ है। स्वरघ्न स्वरयन्त्र के शोथ का द्योतक है—

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं
भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु,
ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः॥

इसमें वातमार्ग कफसंयुक्त होने से आवाज फट जाती है। और कण्ठ सूख जाता है और बार-बार श्वास आती है।

बालक के गले के रोगों की चिकित्सा सदैव कुशल चिकित्सक या स्पेशलिस्ट द्वारा करानी चाहिए—

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्मभिः।
चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत्॥

कण्ठ के रोगों में काली हरड़ का क्वाथ शहद डालकर पिलाना या मुनक्का, कुटकी, त्रिकटु, दारुहल्दी, दालचीनी, त्रिफला, मोथा, पाठा, रसौत, दूब, तेजबल का चूर्ण शहद में मिला गले में लगाना चाहिए। गोमूत्र में पकाकर कुटकी, अतीस, देवदारु, पाठा, मोथा और इन्द्रजौ का काढ़ा पिलाना या गले में शलाका पर रुई लगाकर लगाना चाहिए। ये तीनों वातज, कफज एवं पित्तज गलरोगों को क्रमशः दूर करते हैं।

रोहिणी की चिकित्सा औपसर्गिक बालरोगोपखण्ड में विस्तार से दी गई है पाठकगण उसे वहां देख सकते हैं।

कण्ठशालूकों को तुण्डिकेरी (प्रवृद्ध टॉन्सिल) के समान विस्रावण और छेदन करना होता है। अधिजिह्विका को मण्डलाग्रशस्त्र से काटकर निकालने का विधान है। एकवृन्द का भी विस्रावण करना होता है। गिलायु भी शस्त्रसाध्य रोग है। अममर्मस्थ गलविद्रधि (retropharyngeal abscess) को सुपक्व होने पर भेदन करते हैं—

अममर्मस्थं सुपक्वञ्च भेदयेद् गलविद्रधिम्।

आयुर्वेद में कालक चूर्ण (घर का धुंआ, यवक्षार, पाठा, त्रिकटु, रसौत, तेजबल, त्रिफला, लोहभस्म, चित्रक समभाग) मधु के साथ मिला गले में लगाने से लाभ होता है। दूसरा पीतक चूर्ण (मनःशिला, यवक्षार, हरताल, सेंधानमक, दारुहल्दी की छाल का चूर्ण) घी में मिला लेप करते हैं। पहला जहां कफज व्याधियों को दूर करता है वहां दूसरा औपसर्गिक एवं वातिक गलरोगों में उत्तम कार्य करता है।

जैसे आजकल मुख द्वारा चूसने के लिए गोलियां (लोजेंजेज) देते हैं वैसे ही भैषज्यरत्नावली की यवक्षारगुटी भी है—

यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णम्।
क्षौद्रेण कुर्याद गुटिकां मुखेन तां धारयेत् सर्वगलामयेषु॥

अर्थात् यवक्षार, तेजबल, पाठा, रसौत, दारुहल्दी, पिप्पली समभाग लेकर चूर्ण कर शहद में घोट गोली बना मुख में चूसते रहें तो सभी प्रकार के गले के रोगों में लाभ करती है।

स्वरभेद या लेरिंजाइटिस का मुख्य कारण बच्चे का बारम्बार और जोर-जोर से चीखना, चिल्लाना या रोना है। इससे स्वरयन्त्र में वातादि दोष कोपकर स्वरभेद पैदा कर देते हैं। भावमिश्र ने वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षयज और मेदोभव ये ६ प्रकार के स्वरभेद लिखे हैं। वातज में गधे जैसा स्वर और फटा-फटा दम्त बच्चे को होता है। पित्तज औपसर्गिक रोगाणुओं के कोप का परिणाम है; कफज सर्दी से तथा कफ के कारण होता है। क्षयज में राजयक्ष्माजन्य उपसर्ग कारण होता है। मेदोज स्थानीय अर्बुद की ओर इङ्गित करता है।

स्वरभेद की बाल चिकित्सा में 'मृगनाभ्यवलेह' अच्छा काम करता है—

कस्तूरी १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, लौंग ३ भाग, वंशलोचन ४ भाग।

इन्हें चूर्णकर शहद में मिला रखलें तथा थोड़े मक्खन के साथ बच्चे को चटावें तो उसके गले का कष्ट मिट जाता है तथा स्वरभेद दूर हो जाता है।

स्वरयन्त्र के विकार के कारण बच्चे के गले से एक विशेष ध्वनि निकलती है जिसे अंगरेजी में स्ट्राइडॉर (Stridor) या घर्घर कहते हैं। यह घर्घर कई रोगों में देखी जाती है। निम्नांकित रोगों में यह घर्घर ३ महीने की आयु के पूर्व ही मिलती है।

१. सहज स्वरयन्त्रीय घर्घर संलक्षण।
२. प्रश्वसन घर्घर अवपात।
३. फिरंगजन्य स्वरयन्त्र शोथ।

४. सहज गलगण्ड ।
५. वालग्रैवेयक ग्रन्थि की वृद्धि ।
६. मध्यस्थानिक अर्बुद ।

३ महीने के वाद घर्घरध्वनि की उत्पत्ति निम्नांकित वाल रोगो मे मिलती है ।

१. रोहिणीजन्य स्वरयन्त्र शोथ वच्चे की आयु ६ मास से १२ साल तक होने पर भी यह रोग हो सकता है।

२. रोमान्तिका (मीजिल्स) की आरम्भिक अवस्था में।

३. लेरिंजिस्मस स्ट्राइड्यूलस—४ माह से १॥ वर्ष के वालक में यह रोग मिल सकता है ।

६ माह के वाद घर्घर ध्वनि की उत्पत्ति इन रोगों में मिलती है—

१. पश्चग्रसनीविद्रधि—६ माह से २ वर्ष की आयु तक ।
२. स्वरयन्त्रीय अंकुरार्बुद १ से ३ वर्ष की आयु तक।
३. वाष्प सूंघने से—१ से ३ वर्ष की आयु तक ।

२ वर्ष से ऊपर इन रोगों में घर्घर ध्वनि मिलती है—

१. स्वरयन्त्रीय घर्घर (लेरिंजाइटिस स्ट्रीड्यूला)–३ से ६ वर्ष कीं आयु तक।
२. दमा या श्वास रोग–२ वर्ष से ऊपर ।

स्वरयन्त्र में तीव्र और जीर्ण दोनों प्रकार का शोथ मिल सकता है। तीव्र स्वरयन्त्र शोथ ऊर्ध्व श्वसन मार्गो के उपसर्ग के कारण वनना है साथ में प्रतिश्याय और तुण्डिकेरी हो सकती है। वच्चे का गला वैठ जाता है। सूखी खांसी या घांस पाई जाती है। श्वासकृच्छ्रता तथा घर्घर मिलता है। वच्चे को पूर्ण विश्राम देना, वेंजौइन डालकर वफारा देना। मेंथौल का भी वफारा दे सकते हैं। इसके लिए किसी पात्र में खूब गरम पानी डाल देते हैं एक चाय की चम्मच भर कर स्पिरिट में घुले मेंथौल को उसमें डालकर वच्चे को तौलिया उढ़ाकर मेंथौल की भाप सुघाते हैं। थोड़ी देर वाद वच्चे को ३० मिनट तक गरम वातावरण में ही रखते है। गले के दर्द के लिए कोडीन या ऐस्पिरिन देते हैं। उपसर्ग दूर करने के लिए सल्फोनैमाइड, पेनिसिलीन तथा टैट्रासाइक्लीन में से जो प्राप्य हो देते है। ओक्सीटैट्रासाइक्लीन का इजैक्शन लाभ करता है।

कभी-कभी एक और तीव्र रोग वच्चे के गले को जकड़ लेता है यह स्वरयन्त्र–कण्ठनाड़ीशोथ या स्वरयन्त्र कण्ठ श्वसनिकाशोथ होता है। इसमें गला जकड़ जाता है कण्ठ से घर्घर ध्वनि आती है वच्चा अशक्त हो जाता है। स्वरयन्त्र और कण्ठनाड़ी में चिपकनी कला का निर्माण होने लगता है। यह रोग १ वर्ष के वच्चे से लेकर ६ वर्ष के वालक तक देखा जा सकता है। वालिकाओं की अपेक्षा वालक इस रोग से अधिक प्रभावित होते हैं। गले से स्वरयन्त्र से और कण्ठनाड़ी से पहले पतला फिर सपूय और फिर कलायुक्त स्राव वहता रहता है। अत्यन्तावस्था में इस कला से गला रुंध जाता है और वच्चे की प्राणरक्षा करना सम्भव नहीं होता। इस भयंकर रोग की चिकित्सा हेतु वहुत सावधानी वरतनी पड़ती है। वच्चे को आर्द्र वातावरण में रखते हैं ताकि उसके कण्ठ की कला सूख न जाय जो और संकट उत्पन्न कर दे। वच्चे को आक्सीजन के टेंट में रखना पड़ता है। वच्चे को ड्रिप विधि से ग्लूकोज सैलाइन चढ़ाने की आवश्यकता पड़ती है। टैरामाइसीन, क्लोरेम्फेनीकोल, पेनिसिलीन, ऐरीथ्रोसीन तथा अन्य एण्टीवायोटिक द्रव्यों का प्रयोग मुख द्वारा या इंजैक्शन द्वारा कराते हैं। डिफ्थीरिया का संशय होने पर डिफ्थीरिया ऐण्टीटाक्जीन देते हैं। वच्चों को ऐसी कोई दवा नहीं देनी चाहिए जो गले को खुश्क कर दे। खासकर ऐट्रोपीन या वेलाडोना अथवा मार्फिया नहीं देना चाहिए। यदि श्वसनमार्ग अवरुद्ध होने लगे तो कुशल सर्जन द्वारा स्वरयन्त्र में नली प्रवेश (इन्ट्यूवेशन) या कण्ठनाड़ीछेदन (ट्रैकियोटोमी) कराना आवश्यक हो जाता है। उरोऽस्थि के ऊपर खात का अन्दर अधिक धंसते जाना, वच्चे का श्याव पड़ना, मूर्च्छाग्रस्त होना और वहुत वेचैन हो जाना श्वासावरोध के प्रकट लक्षण माने जाते हैं। यदि ट्रैकियोटोमी करने पर भी छाती में कफ वढ़ता जाय तो व्रांकोस्कोप से देखते हुए सक्शन द्वारा कफ को निकलवाते रहना चाहिए।

यदि ठीक-ठीक उपचार किया जाय तो वच्चे की वहुत अधिक दुर्दशा होने से पहले उसकी रक्षा की जा सकती है। यदि पहले से सावधानी वरती जाय तो कण्ठनाड़ीछेदन की आवश्यकता भी नहीं पड़ती।

—शेषांश पृष्ठ २२८ पर

फुफ्फुस के कतिपय महत्वपूर्ण बाल-रोग।

डा० श्री सुशीलकुमार त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य ए. एम. बी. एस., पुरदिलनगर (अलीगढ़)

१. तीव्र श्वासनाल पाक

इसे अंगरेजी में ऐक्यूट ब्रॉन्काइटिस कहते हैं। यह रोग बच्चों से बुड्ढों तक हर आयु में सम्भव है। बच्चा एकदम बीमार पड़ जाता है। उसे ज्वर १०५° फ़ै० तक जा सकता है। उसे पेट में या छाती में अस्पष्ट दर्द की प्रतीति होती है कभी-कभी गला भी दुखते हुए पाया जाता है। बच्चे को श्वास लेने में कष्ट होता है। श्वास-प्रश्वास की गति बढ़ जाती है। छाती में श्रवण परीक्षा करने पर अनेक प्रकार के शब्द और सुरीली आवाजें सुनाई पड़ती हैं।

ज्वर, श्वासकृच्छ्रता, उरःशूल और खांसी ये चार लक्षण इस रोग में प्रायः पाये जाते हैं।

सापेक्षनिदान, दमा, ब्रांकोन्यूमोनिया तथा अन्य कासों से करना पड़ सकता है।

इस रोग की आधुनिक चिकित्सा ब्रांकोन्यूमोनिया की चिकित्सा के समान ही है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए कस्तूरीभैरव रस, मृगश्रृङ्गभस्म, त्रिभुवनकीर्ति रस तथा अडूसाक्षार मिलाकर देना होता है।

२. जीर्ण श्वासनाल पाक संलक्षण

इस रोग में खांसी एक अनिवार्य लक्षण होता है। अन्य लक्षणों की उपस्थिति होना आवश्यक नहीं। खांसी किन कारणों से हो सकती है इसकी पूरी पूरी खोज करके तदनुसार चिकित्सा की जानी चाहिए।

३. ब्रांको-न्यूमोनिया या श्वसनीफुफ्फुसपाक

यह रोग २ वर्ष के नीचे की आयु के बच्चों में प्रायः देखने में आता है। इस रोग के कई कारण बतलाए जाते है। इनमें एक है फुफ्फुस के अन्दर सीधे-सीधे उपसर्ग का पहुँचना। दूसरा है अन्य किसी कारण से इस रोग की उत्पत्ति होना। पहला कारण प्राथमिक या प्राइमरी कारण कहलाता है। दूसरा द्वितीयक कारण या सैकंडरी कॉज कहलाता है। द्वितीयक कारणों की सूची जो ब्रांकोन्यूमोनिया कर सकते हैं नीचे दी जा रही है—

i. किसी भी कारण से फुफ्फुसों में शोथ (इडीमा) होना

ii. बच्चे का किसी गम्भीर रोग से पीड़ित होना

iii. बालक द्वारा दूध का अन्ननली में ले जाने के बदले श्वासनली में चूस लेना

iv. ऊर्ध्वश्वसन मार्गों में उपसर्ग (यह ब्रांकोन्यूमोनिया को उत्पन्न करने का प्रमुख कारण माना जाता है।

v. तीव्र श्वासनालपाक

vi. रोमान्तिका

vii. कुकुरखांसी या हूपिंगकफ

viii. अग्न्याशय का फाइब्रोसिस्टिक रोग

ix. आग से जल जाना

x उष्णकटिबन्धीय (ट्रॉपीकल) व्याधियां

इस रोग का कर्त्ता मालागोलाणु तथा फुफ्फुसगोलाणु दोनों ही हो सकते है। शिशुओं में गुच्छगोलाणु भी यह रोग कर सकते है।

इस रोग में पूरा फेंफड़ा कभी विकारग्रस्त नहीं देखा जाता। फेंफड़े के छोटे छोटे क्षेत्रों में ४ प्रकार की विकृतियों में से कोई एक या कई मिला करती हैं। वे हैं -

i. उस क्षेत्र की अधिरक्तता (कंजैशन),

ii घनीभवन (कन्सोलीडेशन),

iii क्षेत्र का अवपात (कोलैप्स) तथा

iv. वातस्फीति (ऐम्फाइसीन्सा)

विकृति विज्ञान की दृष्टि से ब्रांकोन्यूमोनिया होने पर एवं मृत्यूत्तर परीक्षा में इस रोग से पीड़ित शिशु के फुफ्फुस को काटकर देखने पर कोई क्षेत्र अधिक लाल संघनित अवपतित तथा कोई वातस्फीति युक्त देखा जाता है।

रोग का आरम्भ अकस्मात् तीव्र ज्वर के साथ होता है। बच्चा ज्वर के कारण अशक्त हो जाता है। कभी-कभी बच्चे को ज्वर के साथ आक्षेप भी आते है। यह आवश्यक नहीं कि उसे खांसी साथ-साथ हो ही।

चिकित्सक द्वारा परीक्षा करने पर निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

i. शिशु गम्भीर रूप से रोग ग्रस्त-मुख श्याव भी हो सकता है।

ii. हृद्‌गति और श्वास-प्रश्वास गति बढ़ी हुई मिलती है।

iii. श्वसन कठिनाई से होता है गति ८० प्रति मिनट तक पाई जा सकती है। श्वसन कार्य करने वाली अतिरिक्त पेशियां भी श्वसनक्रिया में संलग्न देखी जाती हैं।

iv श्रवण परीक्षा करने पर क्रेपीटेशन छाती में सर्वत्र सुने जा सकते हैं।

v. रक्त की परीक्षा करने पर बहुन्यष्टिकोशिकाओं की संख्या में कुछ वृद्धि देखी जाती है।

इस रोग में आक्षेप, वमन, अतीसार तथा अति तीव्र ज्वर उपद्रव रूप में पाये जा सकते हैं। उपद्रव अधिक होने से रोग गम्भीर माना जाना चाहिए।

ब्रांकोन्यूमोनिया की चिकित्सा निम्न विन्दुओं के अनुसार की जानी चाहिए—

परीक्षा करने पर बालक रुग्ण दिखाई देता है उसका चहरा तमतमाया सा पाया जाता है। कभी-कभी अन्य वर्ण या विवर्ण भी मिल सकता है। नाड़ी की गति तीव्र पाई जाती है, श्वास की गति बढ़ी हुई मिलती है यही नहीं श्वसनक्रिया में सहायक अतिरिक्त पेशियां भी कार्यलग्न पाई जाती हैं। उरोऽस्थि के ऊपर का खात, अक्षकास्थियों के ऊपर के गर्त और निचली अन्तर्पर्शुकीय अवकाश प्रत्येक श्वास के साथ अन्दर को अधिक धंसते हुए पाये जाते हैं। जो इस बात का प्रमाण है कि बालक कठिनाई से श्वास प्रश्वासक्रिया कर रहा है। स्पर्शपरीक्षा करने पर कण्ठनाल अपने स्थान पर मध्य में ही पाई जाती है। हृद् स्पन्दन अपने ही स्थान पर होता हुआ मिलता है वह स्थानान्तरित नहीं होता। परिताडन पर कोई विकृति स्पष्ट नहीं होती। श्रवण परीक्षा करने पर विकृतिक्षेत्रों में फुफ्फुसों में कर्करध्वनियां या क्रेपिटेशन मिलते हैं।

इस रोग में यदि बच्चे के रक्त के श्वेत कणों का सकल गणन और सापेक्ष गणन कराया जाय तो बहुन्यष्टि कोशिकाओं एवं श्वेतकणों की वृद्धि पाई जाती है।

इस रोग में वमन, आक्षेप या कन्वल्शन्स, उच्चताप तथा अतीसार के उपद्रवों में से कोई भी उपद्रव मिल सकता है।

सापेक्ष निदान की दृष्टि से अन्य प्रकार के फुफ्फुसपाक श्वास या दमा, तीव्र श्वासनालपाक तथा सवेग नाड़ी द्रौत्य (पैरोक्जिस्मल टैकीकार्डिया) का ध्यान देना पड़ेगा यह ध्यान रखना होगा कि ब्रांको न्यूमोनियां सदा दुर्बल और कृश बालकों को पकड़ता है। कभी-कभी तो मौत सामने आ जाती है और बालक को ब्रांकोन्यूमोनियां हुआ है इसका पता भी नहीं चलता। रोमान्तिका और कुकरखांसी में चुपके-चुपके यह रोग बन जाता और प्राण ले लेता है और इसका पता केवल मृत्युत्तर परीक्षा में ही चलता है। फक्करोग से पीडित बालकों को यह रोग आसानी से हो सकता है। यह नहीं फक्कियों में यह मृत्यु का कारण भी बनता है।

निम्नांकित लक्षण इस रोग में पाये जा सकते हैं:—

१. रोग का आक्रमण तेजी से होता है।

२. ज्वर तेज हो जाता है जो धीरे-धीरे नीचे उतरता जाता है। जो १०० और १०३ के बीच में बढ़ता घटता रहता है।

३. श्वास गति तेज हो जाती है जो किसी-किसी में १०० प्रति मिनट तक पहुंच जाती है।

४. चेहरा चिन्ताग्रस्त और बेचैनी का तथा श्याव या तमतमाया हुआ होता है।

५. जिह्वा सूखी और खर स्पर्श होती है।

६. खांसी कभी-कभी रोग के साथ-साथ और कभी बाद में उत्पन्न होती है। बच्चे का करवट बदलते ही खांसी उठती है। खांसी बार-बार और थोड़े वेग के साथ आती है किसी-किसी बच्चे को खांसी बिलकुल नहीं मिलती।

७. रोग विना चिकित्सा ३-४ सप्ताह तक रहता है।

८. बच्चे की कोमल छाती में निचले भाग की पर्शुकाएं धंसी-धंसी सी देखी जाती हैं जो श्वास-प्रश्वास के साथ धंसती उभरती रहती हैं। उनके बीच के अवकाश में यह स्पष्ट देखा जाता है।

९. परिताडन या आकोटन करने पर फुफ्फुस में जहां संघनित होता है वहां मन्दध्वनि पाई जाती है।

१०. संघनित क्षेत्रों को स्टैथैस्कोप से श्रवण करने पर सूक्ष्म क्रैपिटेशनों के अलावा कडकड ध्वनि भी मिलती है कभी-कभी राल्स मिलते हैं जो गीली ध्वनियों के द्योतक होते हैं।

११- कभी-कभी विशेषकर रोग की गम्भीर अवस्था में चेन-स्टोक्स श्वसन हो जाता है। बच्चा श्वास लेते-लेते रुक जाता है चेहरा श्याव और हृदय मन्दगति से चलता है नाड़ी अतिक्षीण हो जाती है। कभी-कभी ऊर्ध्व श्वास २-४ आकर रोगी बालक की जीवन लीला भी समाप्त हो जाती है।

ब्रांकोन्यूमोनियां की चिकित्सा में यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि यह एक लम्बी बीमारी की शुरूआत है जिसमें बालक के फुफ्फुस के एक के बाद दूसरे क्षेत्र रोग-ग्रस्त हो सकते और रोग की अवधि बढ़ती जा सकती है। इसका दुष्प्रभाव बच्चे की शक्ति पर पड़ता है। बच्चा अशक्त होता चला जाता है और अन्त में मृत्यु तक को प्राप्त हो सकता है। इसलिए भिषग्वर को सबसे पहले बच्चे की शक्ति न घटने पावे इसका ध्यान रखना होगा।

क्योंकि यह रोग प्रायः जाड़ों में और सर्दी लगने से होता है। इसलिए बच्चे को गर्म रखना और सर्दी से बचाना परमावश्यक हो जाता है पर इसका अर्थ यह नहीं कि उसे ताजी हवा से वंचित कर दिया जावे। जितनी ही अधिक ताजी हवा बच्चे को मिलेगी उतना ही अच्छा रहता है। औक्सीजन की भी आवश्यकता पड़ सकती है इसका ध्यान रखना और प्रबन्ध कर लेना उचित होता है।

बच्चे को हलका और पोषक द्रव आहार देना चाहिए थोड़ी मलाई उतरा दूध और चाय दी जा सकती है।

हृदय की गति ठीक रखने के लिए निकैथैमाइड या कोरामिन की बूंदें। समय-समय पर देनी पड़ सकती हैं।

औषधियों की दृष्टि से प्रोकेन पेनसिलीन का इंजेक्शन द्वारा प्रयोग सदैव लाभप्रद रहता है यदि बच्चा उसके प्रति प्रतिक्रिया न करे तो। डाइक्रिस्टीसीन भी उतना ही काम करता है। पेनिसिलीन द्वारा जो रोगी ठीक न हों उन्हें टैट्रासाइक्लीन वर्ग की औषधियां या ऑक्सीटैट्रासाइक्लिन के जलीय या तैलीय घोल इंजेक्शन से या बूंदों के रूप में देते हैं। सल्फोनैमाइडों का पहले बहुत प्रयोग होता था अब पेनिसिलीन के साथ पैंटिडसल्फास के रूप में कर सकते हैं।

आयुर्वेद दृष्टि से अनेक उपयोगी दवाएं दी जाती रही हैं। परन्तु शुद्ध आयुर्वेद रोग-कारण जीवाणुओं पर विशेष प्रभावी नहीं होने के कारण आधुनिक द्रव्यों के साथ आयुर्वेदीय औषधियों का प्रयोग न केवल उचित ही रहता है अपि तु बच्चे को अनेक उपद्रवों से मुक्त भी रखता तथा शीघ्र रोगमुक्त कर देता है। ऊपर जिन्हें इंजैक्शनों या आधुनिक दवाइयों का प्रयोग बतलाया गया है उसके साथ-साथ यदि कस्तूरीभैरव का प्रयोग किया जावे या उसके साथ मृग श्रृङ्गभस्म और वासाक्षार भी मिलाकर दिया जावे तो सर्दी ज्वर, कास ये सभी सुधरते हैं। कफ और संघनन के क्षेत्र धीरे-धीरे विलुप्त होने लगते हैं और बच्चा शीघ्र स्वस्थ हो जाता है ब्रांकोन्यूमोनियां में ब्राडस्पैक्ट्रम ऐण्टी बायोटिक का प्रयोग अनिवार्य सा हो गया है उसे पाठक को अवश्य ध्यान रखना चाहिए। इनमें टैट्रासाइक्लीन, क्लोरटैट्रासाइक्लीन, औक्सीटैट्रासाइक्लीन, ऐरिथ्रोमाइसीन, क्लोरैम्फनिकोल, आदि आती हैं। अन्य दवाओं में पेनिसिलीन, स्ट्रैप्टोमाइसीन, वेसीट्रैसीन आदि का उपयोग किया जाता है।

बच्चे को खाट पर रखना और थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसका करवट बदलते रहना चाहिए। रात और दिन का कमरे का तापक्रम ६५° फैं० के आसपास रखना चाहिए। श्यावता आने पर ऑक्सीजनटैंट का प्रयोग करना चाहिए। टैट्रासाइक्लीन या ऑक्सीटैट्रासाइक्लीन १२.५ मिग्रा प्रति किलो शरीर भार के अनुसार प्रयोग करना चाहिए। बैंजाइल पेनिसिलीन ढाईलाख यूनिट हर १२ घंटे बाद उसे इजैक्शन से पेशी में देना चाहिए।

यह न भूलना चाहिए कि यह रोग काफी कष्टदायक होता है और इसके बहुत गम्भीर और मारक परिणाम निकल सकते हैं इसलिए शीघ्र और श्रेष्ठतम उपचार कराना चाहिए। छाती पर विक्स मलना या लनीमेंट टर्पेण्टाइन मालिश करना उचित होता है पर भारीप्लास्टर (एण्टीकंजेस्टीन प्लास्टर) चढ़ाने से बच्चे की श्वास प्रश्वास लेने की प्रक्रिया में और बाधा पड़ती है।

खण्डीय फुफ्फुसपाक चिकित्सा

आचार्य श्री श्रीनिवास उपाध्याय अध्यापक, शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय रायपुर म.प्र.

बच्चों में श्वसनी फुफ्फुसपाक (ब्रांकोन्यूमोनियां) जितना खतरनाक होता है उतना खण्डीय या लोवर न्यूमोनियां नहीं माना जाता। जो लोग यह मानते हैं कि खण्डीय फुफ्फुसपाक २ वर्ष से नीचे के बच्चों में ही होता है वे बहुत बड़े भ्रम में हैं। खण्डीय फुफ्फुसपाक किसी भी आयु में संभव है तथा २ वर्ष से नीचे के बच्चों में भी बराबर मिलता है। कभी-कभी तो ब्रोकोन्यूमोनियां से अधिक प्रतिशत लोवर न्यूमोनियां से शिशुओं में मिलते हैं।

खण्डीय फुफ्फुसपाक विकृति विज्ञान की दृष्टि से ४ सोपानों में मिला करता था पर चूंकि अब एण्टीबायोटिक दवाओं का व्यापक प्रयोग आरम्भ हो गया है इस कारण ये सोपान अब नहीं मिलते। इनके नाम हैं :—

i. रक्ताधिक्य या कंजेशन।
ii. लोहित यकृतीभवन या रैडहिपैटाइजेशन।
iii. धूसर यकृतीभवन या ग्रे हिपैटाइजेशन।
iv. शमन या विभेदन या रिजोल्यूशन।

रक्ताधिक्य होने पर श्रवण परीक्षा करने पर सूक्ष्म क्रैपिटेशन मिलते हैं। छोटे बच्चों में कफ नहीं निकलता पर यदि बालक थोड़ा भी बड़ा हो गया है और थूक सकता है तो वह मोर्चा लिये लोहे जैसे रंग का कफ थूकता है। लाल यकृतीभवन वह अवस्था है जब बच्चे के फुफ्फुस का एक भाग या खण्ड संघनित या कंसौलीडेटेड हो चुका है। श्रवण करने पर सीटियां बजती हैं और वाक् स्पृश्य कम्प (वोकल फ्रैमीटस) बढ़ जाता है। धूसर यकृतीभवन शमन का सूचक होता है इसमें वात कोशों में पूयकोशिकाएं भरी रहती हैं तथा फुफ्फसों से निःस्राव निकलने लगता है। शमनावस्था में निःस्राव सूख जाता है और क्रैपिटेशन या कर्कर ध्वनि सुनाई देने लगती है।

इस रोग का ६० प्रतिशत कारण फुफ्फुस गोलाणु या न्यूमोकोकाय होता है। इसलिए इसे न्यूमोकोकल न्यूमोनियां भी कहा जाता है। यह रोग सर्दी के दिनों में नवम्बर से मार्च तक अधिक होता है। बच्चों में छठी वर्ष तक बहुत देखा जाता है। बालक बालिका दोनों एक सरीखे इससे प्रभावित होते हैं। फुफ्फुसगोलाणु के अतिरिक्त मालागोलाणु, गुच्छगोलाणु, हीमोफाइलस इन्फ्लुएंजी, क्लैबसैला न्युमोनी आदि जीवाणु भी फुफ्फुसपाक कर सकते हैं। फुफ्फुसपाक के साथ-साथ बच्चों में प्लूरिसी भी देखी जा सकती है। पैरीकार्डाइटिस या ऐण्डोकार्डाइटिस भी मिल सकते हैं। बहुत गम्भीर अवस्था में बच्चा श्याव पड़ता जाता है और उसका हृदय फेल होने लगता है। पेट में भी कई उपद्रव मिल सकते है। उदर्याकला का पाक (पैरीटोनाइटिस) वृक्कपाक आदि देखे जा सकते हैं। फुफ्फुसगोलाणु का उपसर्ग मस्तिष्क तक जाने से मेनिंजाइटिस भी हो सकता है। जिससे बच्चा प्रलाप करता है। सन्धिपाक और मध्यकर्णपाक, कर्णमूलपाक आदि उपद्रव भी देखे जा सकते है।

इस रोग का संचय काल १ दिन से ७ दिन तक का माना गया है। बालक एकदम सहसा बीमार पड़ता है। लोग कहते हैं बच्चे को सर्दी लग गई। उसे झटके आते और कम्प चढ़ जाता है। शीतपूर्वी ज्वर हो जाता है। झटके के साथ थोड़ी-थोड़ी खांसी चालू हो जाती है। बीच-बीच में जहां फुफ्फुस खण्ड में संघनन होने लगा है बड़ा तेज दर्द होने लगता है जिससे बालक तड़प जाता है। खांसने से पीड़ा में और वृद्धि होती है। धीरे-धीरे श्वास फूलने लगती है। श्वास की गति बढ़ जाती है। २-३ दिन में दर्द कुछ कम होने लगता है खांसी भी ढीली और गीली होने लगती है थोड़ा-थोड़ा चिपकू कफ निकलने लगता है जो बाद में और बढ़ जाता है। कफ का रंग लोहे के मोर्चे जैसा (रस्टी) होता है। कफ में श्लेष्मा, रक्त के लालकण वायुकोशों की उपकला तथा फुफ्फुसगोलाणु

भरे होते हैं। कफ के साथ खून भी आ सकता है।

बच्चे को ज्वर १०३ से १०५° फै (३९°—४०.५° सेंटीग्रेट) तक चला जाता है। उसे नींद नहीं आती वह चिल्लाता चीखता और आंय-बांय-शांय बोलता (प्रलाप करता) है।

यदि बालक के रोगग्रस्त होते ही चिकित्सा आरम्भ करदी गई तो रोग के ये लक्षण प्रायः नहीं मिलते। उसे ज्वर, दूसरे दिन ही कम हो जाता है। प्रलाप बन्द हो जाता है। छाती का दर्द घट जाता है। श्वास की गति और नाड़ी की गति घटने लगती है। दूसरे तीसरे दिन फेंफड़े में संघनन के लक्षण तो मिलते हैं पर रोगज्ञापक लक्षणों का अभाव हो जाता है।

बच्चों में रोग का विक्षत फुफ्फुस शीर्ष (अपैक्स) में बनता है। उसे कम्प आक्षेप या कन्वल्जन्स और प्रलापादि आदि प्रायः मिलते हैं। बच्चों में इस रोग में सिर दर्द, वमन, आक्षेप, सिर का पीछे झुक जाना और कर्निग लक्षण का थोड़ा सा पाया जाने से मेनिंजाइटिस का भ्रम होना स्वाभाविक है पर छाती में दर्द, खांसी का होना और श्वास प्रश्वास गति की वृद्धि को देख कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि बालक खण्डीय फुफ्फुस पाक से पीड़ित है न कि मेनिंजाइटिस से।

कभी-कभी रोग फेंफड़ों में होने पर भी दर्द पेट में होता है और बच्चा पेट की ओर ही इशारा करता है। यहां भी भौतिक लक्षणों और चिन्हों के आधार पर चिकित्सक सही निदान कर सकता है।

रोग कितना बढ़ता है यह रोगी की शक्ति और चिकित्सक की बुद्धि पर निर्भर करता है। जितनी जल्दी रोग का निदान किया जाकर उचित चिकित्सा चालू कर दी जायगी रोगी उतनी ही शीघ्रता से इस रोग से मुक्त हो जायगा। २-३ दिन की चिकित्सा में ही बालक प्रायः स्वस्थ हो जाता है।

आश्चर्य इस बात का है कि आयुर्वेद के निदान ग्रन्थों में न्यूमोनियां का कोई एक स्थानीय सन्तोषप्रद वर्णन मिलता नहीं। क्योंकि न्यूमोनियां में ज्वर होता है इसलिए इसे ज्वर प्रकरण में ढूंढने पर आगन्तुक ज्वरों का कोई लक्षण न्यूमोनियां से नहीं मिलता। आठों दोषज ज्वरों में श्लेष्म पित्त ज्वर का कुछ लक्षण मिलता है—

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्राः मोह कासोऽरुचिस्तृषा।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्त ज्वराकृतिः ॥

कफ का अनुबन्ध तथा तीव्र ज्वर रूप पित्तोल्वणता मोह और कास ये सभी मिलाकर न्यूमोनियां के पास ले आते हैं। सन्निपात ज्वर के, 'तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम। ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥" के लक्षण भी न्यूमोनियां से मिलते है। चरक संहिता में जो दोषोल्वणता, दोषमध्यता तथा दोषहीनता के अनुसार संन्निपातों का श्रेणी विभाग किया गया है उसमें कफहीन पित्तमध्य वातोल्वण सन्निपात के लक्षण न्यूमोनियां से मिलते है:—

श्वासःकासः प्रतिश्यायो मुखशोषोऽति पार्श्वरुक्।
कफहीने पित्तमध्ये लिङ्गं वाताधिके मतम् ॥

खास कर पार्श्व पीड़ा श्वास और कास के ३ लक्षण तो स्पष्ट रूप से मिलते ही हैं। ज्वर तो सन्निपात में अवश्यम्भावी घटना है। चरक संहिता के चिकित्सा स्थान के तेईसवें अध्याय में वातज छर्दि के लक्षणों को देखकर ऐसा लगता है कि न्यूमोनियां के साथ किसी-किसी बालक या बड़े को उलटियां भी होती हैं उसी स्थिति का वर्णन इस में किया गया है।

"हृत्पार्श्वपीडा मुख शोषशीर्षनाभ्यर्तिकास स्वरभेद तोदैः।

भालुकितन्त्र में जो विभु फल्गु ये दो सन्निपात दिये हैं उनमें फल्गु पित्तश्लेष्माधिक्यजन्य सन्निपात है उसमें दक्षिण पार्श्व में तोद (खण्डीय फुफ्फुसपाक दक्षिण फुफ्फुस में इसी प्रकार वाम फुफ्फुसपाक भी कह दिया गया) तथा उरः शीर्ष गलग्रह और कफ पित्त का निष्ठीवन श्वास हिक्का प्रमीलकादि लक्षण न्यूमोनियां की ओर ही इङ्गित करते हैं।

वास्तव में न्यूमोनियां एक त्रिदोषज व्याधि है इसका आरम्भ वात प्रकोप से होता है। शीत ऋतु, शीतल आहार विहार के कारण वात प्रकोप होता हैं बच्चे का ओज घट जाता है और जीवाणुओं का आक्रमण होजाता है। जीवाणुओं के विष से पित्त प्रकोप होकर ज्वर हो जाता है। फुफ्फुस के विभिन्न भागों (वायुकोषों) श्वास नलिकाओं में निःस्राव जमकर कफ का रूप धारण करता है। शैत्य उसे

और बढ़ा देता है तब कफ प्रकोप बनता है। कभी कभी वात और पित्त ही कोप करते हैं जिनसे श्वासकासश्रम-भ्रमाः, लक्षण मिलते है। कभी पित्त और कफ कोप करते हैं:—

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सन्निपातः प्राकुप्यति ।
अन्तर्दाहो बहिः शीतं तस्य तन्द्रा च बाधते ॥
तुद्यते दक्षिणं पार्श्वं उरः शीर्षगलग्रहाः ।
निष्ठीवेत् कफपित्तं च तृष्णा कण्डूश्च जायते ॥
विड्भेदश्वासहिक्काश्च बाधन्ते सप्रमीलकाः ।
विभुफल्गू च तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥—

—भालुकितन्त्र मधुकोशव्याख्या से

जब वात और कफ का विशेप प्रकोप होता है तब शीत ज्वरोऽनिद्रा क्षुत्तृष्णा पार्श्व निग्रहादि लक्षण मिलते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि न्यूमोनियां त्रिदोषज व्याधि होने पर भी इसमें प्रत्येक दोष के प्रकोप का शेप दोषों के प्रकोप से सम्बन्ध आने से लक्षणों में अन्तर आता रहता है। ये सम्बन्ध इतने हो सकते हैं:—

वात और कफ का प्रकोप—श्वास कासाधिक्य, कफ निष्ठीवन, छाती में पीड़ा।

वात और पित्त का प्रकोप—भ्रम, श्रम, तीव्र ज्वर, सिर छाती पेट में दर्द,

पित्त और कफ का प्रकोप—तीव्र ज्वर, फुफ्फुस में संघनन, श्वास और कास की वृद्धि, कफ निष्ठीवन, उरोनिग्रह।

चिकित्सा में बालक के बल की रक्षा, शैत्य प्रतिरोध श्वास को प्राकृत करने की चेष्टा, ज्वर, शूल और कास को दूर करने का प्रयत्न करना पड़ता है। इस रोग में चिकित्सासूत्र इस प्रकार बनेगा:—

सन्निपात ज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्तमारुतौ ॥

न्यूमोनियां के आरम्भ में सबसे पहले आम दोष और कफनाशक रूक्ष उष्ण उपचार करना चाहिए। जब कफ का अनुबन्ध दूर होकर वायु मार्ग खुल जावें और श्वास प्रश्वास क्रिया अव्याहत गति से और प्राकृत रूप में चलने लगे तब पित्तनाशक या ज्वरहर और वातघ्न या स्निग्धोपचार करना चाहिए।

इस रोग में लंघन और स्वेदन दोनों का महत्व है। पर चूंकि बच्चों को लंघन निषिद्ध है इसलिए मातृदुग्ध का पुष्कल प्रयोग करना कदापि हानिप्रद नहीं रहता। स्वेदन का अर्थ सेक लेना चाहिए और तारपीन का तेल चुपड़ कर या नारायण तैल लगाकर नामें यां रुई से या बालू की पोटली से रूक्ष स्वेद बार बार देना चाहिए—

न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति ।
तस्मान् मुहुर्मुहुः कार्यं स्वेदनं सन्निपात नाम् ॥

सेक या अग्नि द्वारा उपचार की महत्ता दर्शाते हुए भैषज्य-रत्नावलीकार लिखते हैं:—

सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो भवेत् ।
विनावह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः ॥

किस सन्निपात में जलमय विग्रह होता है इसका विचार किया जावे तो वह कफोल्वण सन्निपातों में ही सम्भव है। न्यूमोनियां में उपद्रव रूप में उरस्तोय (प्लूरिसी विद ऐफ्यूजन) मिलता है। अतः उपर्युक्त वाक्य न्यूमोनियां के लिए सार्थक और सटीक बैठते है। खासकर खण्डीय फुफ्फुस पाक के लिए जो कम वातोल्वण या कफपित्तोल्वण होता है। श्वसनी फुफ्फुसपाक शुद्ध वातिक व्याधि है।

इसी सिलसिले में मातुलुङ्गादिनस्य का भी प्रयोग किया जा सकता है जो शिर, हृदय, कण्ठ और पार्श्व (पसली) के दर्दों को दूर करता है। क्योंकि इस तीक्ष्ण नस्य के प्रभाव से कफ का भेदन हो जाता है और वह बहने लगता है:—

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् ।
अन्यद्वागसिद्धिविहितं तीक्ष्ण नस्य प्रयोजयेत् ॥
तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते ।
शिरोहृदयकण्ठास्य पार्श्वरुक चोपशाम्यति ॥

बिजौरे नीबू और अद्रक के रस में तीनों (सेंधा, काला साभर) नमक डाल गरम कर नाक में टपकाते है। या अन्य विधि से बने तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करते है। बच्चे की नस्य कम तीक्ष्ण देना उचित रहता है।

कुछ लोगों ने भैषज्यरत्नावलीकार द्वारा निर्दिष्ट अष्टांगावलेहिका का उपयोग खण्डीय फुफ्फुसपाक के शमन हेतु मृगशृङ्गभस्म, भुनी हल्दी तथा रससिन्दूर मिलाकर देना भी स्वीकार किया है। अष्टांगावलेहिका में कायफल, पुष्कर-

मूल, काकड़ासिङ्गी, सोंठ, कालीमिर्च, पिप्पली छोटी, जवासा और कालाजीरा में आते हैं ये आठों १ १ तोले शृङ्गभस्म २ तोले, हल्दी ४ तोले और रससिन्दूर १।। माशे डालते हैं। इन सभी को श्लक्षण चूर्ण कर पान और अदरक के रस की ३-३ भावनाएं देकर शहद मिलाकर रख लेते हैं। यह हिक्का, श्वास, कास, कण्ठरोध और ऊर्ध्वश्लेष्मस्थानों से श्लेष्मा को हटाने का काम करती है।

केवल दशमूलक्वाथ में पिप्पलीचूर्ण या पुष्करमूल और पिप्पलीचूर्ण डालकर देना कास, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल, कण्ठग्रह, हृद्ग्रह को दूर करता है। यदि ऐण्टीबायोटिक दवा (टैरामाइसीन की बूंदें, ऐक्रोमाइसीन, मिस्टैक्लीन इम्प्रूव्ड पीडिट्रिकड्राप्स या डाईक्रिस्टीन) के साथ दशमूल क्वाथ दिया जाय तो फिर किसी अन्य दवा की जरूरत भी नहीं पड़ती। पिप्पलीचूर्ण ¼ से १ रत्ती तक ही डालना चाहिए अधिक नहीं।

अष्टादशाङ्ग क्वाथ तो मानो इसी रोग के लिये लिखा गया है :—

दशमूली शटी शृंगी पौष्करं सदुरालभम्।
भार्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः॥

दशमूल, कपूरकचरी, काकड़ासिंगी, पुष्करमूल, धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, कुटकी इनका चूर्ण करले फिर इनका फाण्ट या चाय बनाकर हर ४ घंटे पर बच्चे को पिलावें तो खांसी, हृद्ग्रह, पसली का दर्द, श्वास, हिचकी और वमन इन लक्षणों या उपद्रवों से युक्त श्वसनक या खण्डीय फुफ्फुसपाक या सन्निपात ज्वर दूर हो जाता है। ऐण्टीबायोटिक का प्रयोग यहां भी रोग को जल्दी काबू में ले आता है। ऊपर के प्रयोगों की अपेक्षा यह प्रयोग स्रोतों को शीघ्र शुद्धकर देता है किन्तु कड़ुआ होने से बच्चों को बहुत अप्रिय होता है।

कस्तूरीभैरव (शु० हिंगुल, शु० वत्सनाभ, शु० टङ्कण, जावित्री, जायफल, कालीमिर्च, पिप्पली छोटी और कस्तूरी बराबर बराबर) स्वल्प दारुण सन्निपात नाशक कहा गया है। बहुत अच्छा योग है इसमें पुष्करमूल या कूठ कड़ुआ और कपूर मिलाकर चाय या दशमूलक्वाथ के साथ देने से बहुत सिद्धि प्रदान करता है।

बालक का शरीर ठण्डा पड़ जाने पर मृतसंजीवनी सुरा की बूंदें जल में मिलाकर दी जाती हैं। मृगमदासव चमत्कारी लाभ पहुँचाता है।

आधुनिक चिकित्सा विद्या विशारदों ने इस रोग की चिकित्सा हेतु निम्नांकित व्यवस्था स्वीकार की है—

१. **सामान्य व्यवस्था**—रोगी बालक को अलग कमरे में शैया पर रखना चाहिए और जब तक ज्वर रहे दूसरे बच्चों को उससे अलग रखना चाहिए।

२. **आहार**—पेय पदार्थ देने चाहिए—चाय, दूध आदि

३. **जलाभाव**—यदि रोगी बालक में जलाभाव प्रकट होने लगे तो उसे ग्लूकोज सैलाइन ड्रिप विधि से दिया जा सकता है।

४. **कास**—खांसी बार-बार उठे और परेशान करे तो कोडीन २ से १० मिग्रा तक दे सकते हैं। वासानोल चटाना या ग्लाइकोडीन टर्प बसाका देना भी हितावह है।

५. **उरःपीडा**—छाती में प्लूरिसी के कारण पीड़ा हो तो ज्यादा नशीली चीजों का प्रयोग कभी न करना चाहिए। विक्स या लिनीमेंट की मालिश, कोडीन या अहिफेन या मार्फिया का प्रयोग अधिक कष्टदायक स्थिति में किया जा सकता है।

६. **प्राणवायु की कमी या अनोक्सिया**—आक्सीजन को टेंट, मास्क या कैथेटर से देने की तत्काल व्यवस्था की जानी चाहिए।

७. **घबराहट या शॉक**—इसके लिए कोरामिन या निकेथैमाइड का इंजेक्शन हाइड्रोकॉर्टीजोन का इंजेक्शन, डैकाड्रोन, बैटनैसोल या अन्य उसी प्रकार के सूचीवेध पेशी या शिरा में देना कदापि न भूलना चाहिए। मुख द्वारा भी इनका प्रयोग लाभ करता है।

८. **प्रलाप**—यदि बालक तीव्र अवस्था में बकझक करने लगे तो उसे इस स्थिति में आने के पूर्व ही ऐण्टीबायोटिक दवाओं का मुख द्वारा या सूचीवेध से प्रयोग करा देना उचित होता है। प्रलाप के लिए गुदमार्ग से पैरेल्डीहाइड का प्रयोग या कोई बार्बीट्यूरेट स्वल्पतम मात्रा में दे देना चाहिए।

९. **औषधिजन्य प्रतिक्रिया**—यदि किसी औषध के

इंजैक्शन से अलर्जी या ज्वर हो जावे तो निम्न विधियों द्वारा उसको तत्काल दूर करना चाहिए ।

आधुनिक औषधियां—

१. बेंजाइल पेनिसिलीन २॥ लाख तक ६-६ घंटे पर पेशी में इंजैक्शन से देते हैं, फिर ८-८ घंटे पर फिर १२-१२ घंटे पर देते हैं । प्रोकेनपेनिसिलीन दिन में एक बार प्रतिक्रिया का ध्यान रखकर देते हैं ।

२. सल्फोनैमाइड (सल्फामीजेथीन आदि) भी लाभ करती है । पेंटिडसल्फास पेनिसिलीन और सल्फोनैमाइड की मिश्रित टिकिया भी दी जाती है बच्चों को सल्फोनैमाइड आरम्भ में ०·५ ग्राम फिर १ से १॥ ग्राम प्रति २४ घंटे में ४ मात्राओं में देते हैं । बड़े बच्चों को (३ वर्ष से ऊपर) उपर्युक्त मात्रा का दूना तक दे सकते हैं ।

३. टैट्रासाइक्लीन—एक्रोमाइसीन, टैरामाइसीन आदि यथा मात्रा सुई से बिन्दु रूप में या गोली के रूप में ६-६ घंटे पर देते हैं । मुखद्वारा देने पर साथ में बीकम्पलैक्स का शर्वत या ड्राप्स भी देना चाहिए ताकि आंत का फ्लोरा नष्ट न हो ।

४. कास या श्वास बढ़ने पर आक्सीजन, हाइड्रोकार्टीज़ोन, सोमकल्प युक्त औषधियों का प्रयोग किया जा सकता है ।

अत: यह रोग मारक रूप शीघ्र धारण कर सकता है । इसलिए चिकित्सक को बहुत सतर्कता और सावधानी से अच्छी से अच्छी औषधि का प्रयोग करने से नहीं चूकना चाहिए । चिकित्सा में जीवाणु-विरोधी आधुनिक दवाएं तथा स्रोतोरोधहारी आयुर्वेदीय औषधियां दोनों का उपयोग परमावश्यक है । हमें किसी भी रूढ़ता का बिना शिकार हुए चिकित्सा करनी चाहिए चरक संहिता के इस पवित्र वाक्य का सादर स्मरण करते हुए—

तदेव युक्तं भेषज्यं यदारोग्याय कल्पते ।
स चैव भिषजां श्रेष्ठः रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् ॥

अर्थात् वही ठीक औषधि है जो स्वास्थ्य लाभ कराती है और वही चिकित्सकों में श्रेष्ठ चिकित्सक है जो रोग से मुक्ति दिलाकर स्वस्थ बनाता है ।

●●

पृष्ठ २२० का शेषांश

स्वरयन्त्रीय आक्षेप एक अन्य व्याधि है जो २ से ५ वर्ष के बालक में देखी जाती है । इसे लेरिंजाइटिस स्ट्राईड्यूलोसा या लेरिंजियल स्पाज्म कहा जाता है । इस रोग का कारण ऊर्ध्वश्वसन मार्गों का उपसर्ग ग्रस्त होना होता है । बच्चे को सर्दी जुकाम हो जाने पर और गले में खराश पैदा होने पर जब वह रात में सोने लगता है तो सोते-सोते एक दम जगकर श्वास लेने के लिए बहुत जोर लगाता है उसे कुत्ता खांसी और घर्घर शुरू हो जाते हैं । बच्चे का दम घुटने लगता है और मुख श्याव हो जाता है । थोड़ी देर में बालक स्वस्थ हो जाता है पर पुन: उसे रोग के दौरे पड़ने लगते हैं । इस रोग का आरम्भ सर्दी जुकाम से होता है इसलिए बच्चे को गरम वायुमण्डल में रखना चाहिए । रात में नींद ठीक आवे उसके लिए क्लोरल हाइड्रेट या तगर चूर्ण या जटामांसी फाण्ट पिला सकते हैं । रोग का दौरा पड़ने पर उसकी जीभ को बाहर की ओर थोड़ा खींचने से लाभ होता है । एण्टीस्पाज्मोडिक दवाएं दे सकते हैं । गरम-गरम दूध या काफी पिला सकते हैं । कभी-कभी जब आपातस्थिति उत्पन्न हो जाय तो कण्ठनाड़ीछेदन (ट्रैकियोटोमी) भी करनी पड़ सकती है पर वह शायद ही किसी को इस रोग में आवश्यक होती है ।

✶✶

शिशुरोग चिकित्सांक अवलोकन करके अपनी सम्मति अवश्य लिखें ।

उरःक्षत चिकित्सा विमर्श

वैद्यराज डा० श्री सुन्दरलाल त्रिवेदी बी. आई. एम. एस. वैद्य धर्मदत्त औषधालय, बरेली

उरःक्षत के साथ साथ फुफ्फुस का तन्तूत्कर्ष भी मिलता है। दोनों निम्नलिखित कारणों में से किसी या किन्हीं से उत्पन्न हो सकते हैं —

१. बच्चे को श्वसनी फुफ्फुसपाक (ब्रांको-न्यूमोनियां) का होना परिणामस्वरूप फेंफड़े के ऊतक में तन्तूत्कर्ष (फाइब्रोसिस) हो जाना जिससे वहां स्थायी व्रणवस्तु का निर्माण। उसी समय श्वासनलिका या श्वसनी या ब्रोंकस की प्राचीर में व्रणशोथ या शोथ का उत्पन्न होना जिससे श्वासनलिका की दीवाल का दुर्बल होना और उनका तन्तूत्कर्ष के कारण टेढ़ामेढ़ा होकर फैल जाना और उरःक्षत बना देना।

२. ब्रोंकस या श्वसनी में जीर्णशोथ (क्रॉनिक ब्रोंकाइटिस) होना।

२. फुफ्फुस में अन्तःपूयता या ऐम्पायेमा होना।

ब्रोंकीऐक्टैसिस का शाब्दिक अर्थ होता है श्वासनलिका का विस्फार (डाइलैटेशन आफ ब्रोंकाय)। यह विस्फार परिवर्तनीय और अपरिवर्तनीय दोनों प्रकार का मिल सकता है। अपरिवर्तनीय उरोविस्फार सदा उपसर्ग (इन्फैक्शन) के परिणामस्वरूप होता है। परिवर्तनीय उरोविस्फार का कारण उपसर्ग का सौम्य रूप का होना या उपसर्ग का बिल्कुल न होना होता है। कारण के दूर होते ही विस्फार ठीक हो जाता है। अपरिवर्तनीय उरोविस्फार या श्वसनी-विस्फार यथावत् बना रहता है उसका कारण दूर करने पर भी वह नहीं हटता। बच्चों में उरोविस्फार (श्वसनी विस्फार) के सभी रोगी प्रायः सुधर जाते हैं।

बच्चों में दो कारणों से श्वसनी विस्फार होता है। एक तो श्वसनियों (ब्रोंकाई) का छोटे आकार का होना और दूसरे फेंफड़े के उपसर्गों का बच्चों में बड़े की अपेक्षा अधिक पाया जाना।

श्वसनी विस्फार बच्चों में दाहिने या बांये फुफ्फुस के निचले खण्ड में प्रायः पाया जाता है। दाहिना मध्यखण्ड भी प्रभावित होता हुआ देखा जाता है। फेफड़ों के ऊपरी खण्डों में विस्फार प्रायः नहीं मिलता। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि ऊपरी खण्डों का स्राव आसानी से बह जाता है जबकि निचले खण्डों को अपना स्राव निकालने के लिए यत्न करना पड़ता है। दूसरे ब्रोंकसों की दिशा भी नीचे की ओर अधिक रहती है। यह कुछ विद्वानों का मत है कि दाहिने फेंफड़े के मध्यखण्ड में विस्फार बिना राजयक्ष्मा के नहीं हुआ करता।

बच्चों में उरःक्षत (श्वसनी विस्फार) आयु के अनुसार इस प्रकार माना जाता है:—

२५ प्रतिशत — १ वर्ष से पूर्व श्वसनी विस्फार शुद्ध होता है।

५० प्रतिशत — ३ वर्ष के पूर्व होता है।

७५ प्रतिशत — ५ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते मिल सकता है।

दरिद्री, अस्वास्थ्यकर वातावरण में रहने वाले बच्चे इस रोग से पीड़ित होते हैं।

इस रोग की विकृति का उत्तरदायित्व श्वसनी के अवरोध तथा उपसर्ग इन २ को ही दिया जाता है। उपसर्ग के कारण श्वसनी की श्लेष्मलकला नष्ट होकर वहां विद्रधि बना देती है। श्वसनी का पेशी स्तर तथा इलास्टिक ऊतक तक इससे प्रभावित होने लगता है बाद में विस्फार बन जाता है। श्वसनी अवरोध के कारण फेंफड़े का एक भाग अवपान (निपात) कर जाता है। निपतित फेंफड़े में वायुकोषों का स्थान संकुचित हो जाता है। छाती में नास्त्यात्मक दाब बढ़ जाता है जिससे श्वसनी तथा श्वसनिकाओं की दीवालों पर खिंचाव बढ़ जाता है जिससे श्वसनियां फूल या विस्फारित हो जाती हैं। अगर इसी समय वहां उपसर्ग भी हुआ तो 'उरःक्षत' का रूप बन जाता है।

उरःक्षत या उरोविस्फार या श्वसनी विस्फार के निम्नांकित कारण माने जाते है : —

i. नासाग्रसनी पूतिता (नेजो फेरिंजियल सैप्सिस) - इसे इसलिए लिया जाता है कि नासा कोटरों में यदि रेडियो ओपेक तेल डाल दिया जाय तो वह कुछ समय में फेंफड़ों में पहुंच जाता है और उसे वहां ऐक्सरे द्वारा देखा जा सकता है। यह सिद्ध करता है कि नासा कोटरों में या ग्रसनी में कहीं भी पूय या पूयकारक उपसर्ग उपस्थित हो तो वह फेंफड़े में भी उपसर्ग पहुँचा देता है।

ii. ब्रांको न्यूमोनियां—ऊपर इसका हवाला दिया जा चुका है।

iii. कुकर खासी।

iv दमा या तमक श्वास।

v. राजयक्ष्मा या टीवी।

vi. आगन्तुकशल्य इसका विचार किया जा चुका है।

आयुर्वेद में जो उरःक्षत के कारण "धनुपाऽऽयस्यतोऽत्यर्थ भारमुद्वहतो गुरुम्" आदि दिये हैं वे जवानों में होने वाले उरःक्षत के हैं। बच्चों में यह रोग हो सकता है इसकी कल्पना भी चरकसंहिता में इस प्रकरण में नहीं दिखाई देती। पाश्चात्यविद्याविशारद भी यह स्वीकार करते हैं कि कभी-कभी तो १० वर्ष की आयु तक इस रोग का पता नहीं लगता। ऐक्सरे के आविष्कार के पूर्व किसी भी चिकित्सा पद्धति के ज्ञाताओं के लिए उरःक्षत का ज्ञान कर लेना केवल अनुमान से ही सम्भव था। हां आयुर्वेद रोग लक्षण समुच्चय व्यक्त करने में कभी किसी से पीछे नही रहा।

उरःक्षतो स्याद्रुक्पूतिकफपूयास्त्र वान्तियुक्।
कासातिसारपार्श्वार्ति स्वरभेदारुचिज्वरैः॥
— अंजन निदान

कभी-कभी तो उरःक्षत के सभी लक्षण प्रकट होने में १ वर्ष का भी समय ले लेते हैं। इस रोग के ३ लक्षण महत्वपूर्ण हैं :—

i. कास (खांसी), ii. कफ और iii. रक्तष्ठीवन। आयुर्वेद में क्षतज कास का वर्णन करते हुए इनका खुलासा इन शब्दों में किया गया है :—

कुपितः कुरुते कासं कफ तेन सशोणितम्।
पीतं श्यावं च शुष्कं च ग्रथितं कुथितं बहु॥
ष्ठीवेत कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा।
सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना॥
पर्वभेद ज्वर श्वास तृष्णावैस्वर्यकम्पवान्।
पारावत इवाकूजन् पार्श्वशूली ततोऽस्य च॥

इसके परिणाम स्वरूप—

क्रमाद्वीर्यं रुचिः पक्तिर्बलं वर्णश्च हीयते।
क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं स्याच्च पृष्ठकटीग्रहः॥
—अष्टांग संग्रह निदान स्थान

कहना नहीं होगा कि सभी लक्षण बड़ों द्वारा जितने अनुभव किए जाते हैं उतने बच्चों द्वारा नहीं।

फिर भी बच्चों में जो लक्षण और चिन्ह इस रोग में प्रकट होते हैं वे हैं : —

i. बच्चे का शरीर भार या बल काफी समय तक यथावत् और प्राकृत रहता है बाद में रुचि, बल, पाचन-शक्ति, वीर्य और वर्ण में अन्तर पड़ता है।

ii. बच्चे को श्वास लेने में दिक्कत होने से श्यावता आती है। उसके अंगुली के पोरे मोटे हो जाते हैं।

iii. बच्चे की नाक बहती रहती है उससे कफ और पूययुक्त स्राव चालू रहता है।

iv. छाती की आकृति कपोतवत् या खात युक्त देखी जाती है।

v. परिताड़न पर छाती में मन्दता मिलती है।

vi. श्रवण परीक्षा करने पर विस्फारित स्थान खाली होने पर अनुवादी भरा होने पर मन्द मिलता है श्वास शब्द भी तदनुकूल मिलते हैं। क्रेपिटेशन एवं रांकाई मिलती है।

इनके अतिरिक्त बच्चे को कोटर शोथ (साइन्यूसाइटिस) तमकश्वास, यक्ष्मा, आगन्तुक शल्य में से कुछ भी मिल सकता है।

इस रोग का ज्ञान ऐक्सरे तकनीक में ब्रांकोग्राम द्वारा किया जाता है जो एक रेडियोलौजिष्ट द्वारा ही संभव है विस्फारित क्षेत्र में आयोडाइज्ड तेल के संचय को देखकर रोग का पता स्पष्टरूप से लग जाता है।

काफी समय से गीला गाढ़ा कफ निकलना जो पीला या श्याव दुर्गन्धित, गांठदार और बहुत सा एक ही बार में निकले, छाती में क्रेपिटेशन मिलें, अंगुली पोरे मोटे

हों और ब्रांकोग्राम साक्षी में प्रमाण हो तो रोग उरःक्षत मानना चाहिए।

लगातार प्रयत्न करने पर इस रोग से रक्षा १० से २० वर्ष की आयु तक हो पाती है। चरक कुछ और आगे बढ़ जाता है—

अल्पलिंगस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिंगं तु वर्जयेत्॥
चि. स्था. अ. १६

थोड़े लक्षण हों अग्निदीप्त हो रोग नया हो तो साध्य, साल पुराना याप्य और सर्व लक्षण युक्त असाध्य होता है। पर यह बड़ों में तो चलता है बच्चों में काफी समय तक रोग का पता ही नहीं लग पाता।

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम्।
माधव निदान।

चूंकि यह रोग दीन हीन दरिद्री परिवार के बालकों में होता है क्योंकि वे ही फुफ्फुस के रोगों से जल्दी संक्रांत होते हैं इसलिए बच्चों को पौष्टिक आहार, प्रकाशयुक्त हवादार वातावरण मिल सके ऐसी सामाजिक व्यवस्था बालकों को इस रोग से मुक्त रख सकती है।

उरःक्षत एक ऐसा रोग है जो चिकित्सा से पूरी तरह नहीं जाता। इसलिए इस रोग के उत्पन्न न होने देने के लिए प्रयत्न करना सबसे बड़ी इस रोग की चिकित्सा है। फुफ्फुस में तन्तूत्कर्ष होने की अवस्था में बच्चे को पौष्टिक आहार देना परम आवश्यक हो जाता है। साथ ही यतः यह रोग ब्रांकोन्यूमोनियां के बाद प्रायः हो जाता है इसलिए जो बच्चा ब्रांकोन्यूमोनियां से पीड़ित हो चुका हो उसकी अच्छी देख-रेख और पौष्टिक खाद्यपेय पदार्थों के प्रयोग से उरःक्षत की स्थिति नहीं बन पाती। ताजी हवा, हलका व्यायाम जिसमें थकान न हो भी बच्चे को कराने चाहिए। अधिक कफ निकलने पर बालक की शैया बीच से ऊंची कर दी जाती है ताकि मुख नीचा हो जाय उसे खांसने के लिए कहा जाय तो कफ आसानी से निकल जा सकता है। कुछ चिकित्सक सवेरे शाम बच्चे को उलटा करने की भी सलाह देते हैं।

औषधि चिकित्सा देने के लिए रोग परिवर्तनीय होना चाहिए या ऐसा होना चाहिए जिसमें उसकी अपरिवर्तनशीलता, सन्देहास्पद हो। शल्य चिकित्सा के लिए भी वे रोगी ही उचित माने जाते हैं जिनमें उरःक्षत एक स्थान पर सीमित हो।

औषधि चिकित्सा

i. नीचे मुख लटका कर सुलाना।

ii. उरःक्षत के स्थान पर छाती पर आकोटन करना।

iii. श्वास-प्रश्वास के व्यायाम कराना।

iv. ताजी हवा देना।

v. पेनिसिलीन, बेंजाइल पेनिसिलीन, स्ट्रैप्टो पेनिसिलीन, ऐक्रोमाइसीन, क्लोरैम्फेनिकोल का प्रयोग शस्त्रकर्म के पूर्व और पश्चात् दोनों अवसरों पर किया जा सकता है।

vi. कासहर औषधियां तथा कफ को पतला करने की दवाएं दी जाती हैं।

उरःक्षत की आयुर्वेदीय चिकित्सा राजयक्ष्मा तथा क्षतज कास एवं रक्तपित्त प्रकरणों में दी हुई है। 'बृहद्वासावलेह' को भैषज्य रत्नावलीकार ने 'बालानामपि वृद्धानां तरुणानां विशेषतः।' लिखा है जो "हन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं कासं पञ्चविधं तथा। रक्तपित्तं क्षयं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च" के प्रसंग में कहा गया श्लोकार्ध है। अतः इसका प्रयोग बच्चों को कराना चाहिए। इसमें २५-२५ भाग छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, वांसा का पंचाग और भारंगी लेकर एक द्रोण जल में पकावें चतुर्थांश भाग शेष रहने पर छान लें। क्वाथ के जल में १ प्रस्थ खांड डालें आधा कुडव घृत तथा १ कुडव शहद डालें। १ पल अभ्रक भस्म, ४ पल पिप्पली चूर्ण, १-१ कर्ष कूठ कडुआ, तालीसपत्र, कालीमिर्च, तेजपत्र, मुरामांसी, खस, लोंग, नागकेसर, दालचीनी, भारंगी, सुगन्धवाला, कूट कपड़छन कर अवलेह के रूप में बनने पर डाल दें और चीनी मिट्टी के पात्र में रखकर प्रयोग करें।

भैषज्य रत्नावली का ही 'विन्ध्यवासि योग' वक्षःक्षत, कण्ठ के रोगों, राजयक्ष्मा, बाहुस्तम्भ और अर्दित की उत्तम औषधि मानी गई है—

व्योषं शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा।
सर्वामयहरो योगः सोऽयं लोहरजोऽन्वितः॥

श्वसन संस्थान में आगन्तुक शल्य और उनका निवारण

वैद्य श्री जगदीशकुमार त्रिवेदी बी.ए. एम.एस. चिकित्सक आगरा महापालिका
आयुर्वेद औषधालय, धूलियागंज, आगरा

बालकों की आदत होती है कि वे अपने मुख में हर भली बुरी वस्तु को रख लेते हैं। रखने के बाद उसे निगल जाते हैं। कभी कभी वह बजाय अन्नमार्ग में जाने के श्वासमार्ग में चली जाती है और एक समस्या बन जाती है। कभी कभी बालक दूध निगलते समय या खाना अन्न मार्ग में ले जाते समय उसे श्वसनमार्ग में भी पहुँचा देते हैं इससे भी खाद्य पेय पदार्थ रूप आगन्तुक शल्य (फौरेन बाडी) श्वसनसंस्थान में पहुँच कर समस्या उत्पन्न कर देते हैं। यह स्थिति १ से ३ वर्ष के बच्चों में अधिकतर देखी जाती है आगे तो केवल बुद्धिमान्द्यग्रस्त बालक ही इसके शिकार होते हैं या अकस्मात् भी कारण बन जा सकता है जब छींक या अन्य कारण से मुख का ग्रास श्वासनली की ओर बढ़ जाय।

ये आगन्तुक शल्य (फोरेन बौडीज) ३ श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं:—

(१) बड़े आगन्तुक शल्य जिनका बड़ा आकार होता है और वे अवरोध पैदा कर देते हैं;

(२) क्षोभक शल्य जो क्षुब्धता पैदा करते हैं—इनमें वानस्पतिक द्रव्य सुपाड़ी आदि आदि आते हैं; तथा

(३) निष्क्रिय शल्य जो केवल पड़े रहते हैं और जिनसे कोई प्रतिक्रिया नहीं होती ये धातु की बनी चिकनी छोटी गोलियां।

ये शल्य जितने ही बड़े होते हैं उतने ही नीचे कम उतरते हैं। कुछ तो गले में ही अटक कर रह जाते हैं। कुछ स्वरयन्त्र पार कर लेते हैं और कुछ छोटे होने से श्वासनाल पार कर जाते हैं पर श्वसनिकाओं के मूख पर अटक जाते हैं। शीशे की गोलियां, अठन्नी या पैसा सिर्फ स्वर तक यन्त्र अवरोध करते हैं कुछ फुफ्फुसों मे अटक जाते हैं जैसे आहार के टुकड़े, गले के आपरेशन में टांसिल के टुकड़े दांत रक्त के थक्के आदि

आगन्तुक शल्य द्वारा स्वर यन्त्र का अवरोध

यह अवरोध नाटकीय ढङ्ग से आरम्भ होता है। बच्चा एक दम जोर-जोर से खांसने लगता है। अन्दर को बार-बार श्वास खींचता है सांस लेने के लिए बेचैन होजाता है उसका मुख श्याव पड़ जाता है। गले में घर्घर होने लगती है। जैसे ही ये लक्षण मिलें बालक का गला देखना चाहिए और यदि गले में कोई भी चीज अटकी हुई दिखाई या उसका आभास या ज्ञान हो तो बच्चे को फौरन उलटा करके हिलाना चाहिए। कभी उंगली डाल कर शल्य को निकाल सकते हैं। अगर सांस रुक रही हो और प्राण पर आबीती हो तो सर्जन को कण्ठ नाड़ी छेदन (ट्रैकियोटोमी तत्काल कर देनी होगी।

कण्ठनाड़ी के द्विधाविभजन स्थल पर अवरोध

कभी-कभी शल्य स्वरयन्त्र के क्षेत्र को पार करके नीचे उतर कर उस जगह पहुँच जाता है जहां कण्ठ नाड़ी (ट्रैकिया) दो भागों में विभक्त होती है। इस स्थिति में घर्घर (स्ट्राइडर) तो उतना नही होता जितना स्वर यन्त्र के अवरोध के समय देखा जाता है पर श्वास कष्ट अपेक्षाकृत अधिक होता है। चूंकि यह स्थान दोनों फैंफड़ों को हवा जाने का मार्ग है इसलिए यहां अवरोध होने से बालक का दम घुटने लगता है और उसका चेहरा श्याव (सायनोज्ड) पड़ जाता है। उरोऽस्थि के ऊपर खांच तथा निचली पर्शुकाओं के बीच के स्थान में धंसाव प्रगट होने लगता है।

यह भी एक आघात स्थिति है और बच्चे को फौरन श्वासनाल दर्शक (ब्रोंकोस्कोप) से देखकर शल्य को निकाल देना चाहिए। अगर चिकित्सक समर्थ न हो तो उसे अस्पताल भेजने में शीघ्रता करनी चाहिए।

फुफ्फुसों में अवरोध

आगन्तुक शल्य जब किसी भी प्रकार से फुफ्फुस के अन्दर पहुँच जाता है तब वह वहां कई प्रकार से हानि पहुँचा सकता है। पहला नुकसान होता है जब शल्य की भौतिक उपस्थिति के कारण फेंफड़े का कोई अंश वायु प्राप्त करने से वंचित हो जाय और फुफ्फुस के उस भाग का अवपात (कौलैप्स) हो जाय। फेंफड़े के एक अंश या खण्ड (लोब) के वायुमार्ग पर शल्य एक वाल्व के रूप में बैठ जाय, हवा अन्दर जाय तो पर निकलने में कठिनाई होने से वहां रोधज वातस्फीति (ऑब्स्ट्रक्टिव ऐम्फाइसीमा) उत्पन्न होजावे। कभी शल्य की क्षोभक प्रकृति होने से अवरोध उतना नहीं होता जितना कि क्षोभ (इर्रीटेशन) होता है। क्षोभ के कारण श्वासनलिका की श्लेष्मल कला प्रक्षुब्ध हो जाती है जिससे वहां उग्र स्वरूप का व्रणशोथ और बाद में द्वितीयक उपसर्ग वहां बन जाता है।

जितना ही शल्य बड़ा होगा उतना ही व्यापक क्षेत्र उसके द्वारा घेरा जायगा। जितनी देर चिकित्सा न की जायगी उतना ही विक्षत बड़ा होगा। प्रक्षोभ रहित छोटे शल्यों के चारों ओर तान्तव ऊति का घेरा चढ़ जाता है और वह कुछ समय बाद विलीन भी हो जाता है। कभी-कभी अवरोध, अवपात और उपसर्ग की त्रयी के कारण वहां उरःक्षत भी बन जाता है। उसके भी आगे बढ़ कर शल्य फुफ्फुस विद्रधि (लंग ऐब्सैस) के रूप में भी परिणत हो जाता है जो काफी गम्भीर अवस्था मानी जाती है।

शल्य के फुफ्फुस में अवस्थित हो जाने के समय उतनी तेजी नहीं पाई जाती जितनी स्वरयन्त्र या कण्ठनाड़ी या श्वासनाल के अवरोध काल में देखी जाती है। उनकी नाटकीयता उतनी गम्भीर नहीं होती फिरभी बच्चे के श्वास लेने में कष्ट होना, बार-बार साक्षेप खांसी (स्पाज्योडिक कफ) आना, बच्चे का बेचैन रहना तथा उसे मामूली ज्वर आदि लक्षण मिलते हैं। अगर खोज की जाय तो उसकी मां या धात्री यह बता सकती है कि एक बार थोड़ी देर के लिए उसका गला रुंध गया था और वह जोर जोर से खांसी भी था।

फुफ्फुस में अवस्थित शल्य वाले बालक को जब कोई चिकित्सक देखता और उसकी परीक्षा करता है तो उसे निम्नांकित स्थितियों में से कोई भी स्थिति मिल सकती है:-

(१) उसे एक भी लक्षण ऐसा न मिले जिसे देखकर वह अन्दाज कर सके कि बालक किसी वस्तु को निगल गया है और वह उसके फेंफड़े में अटकी हुई है;

(२) केवल फुफ्फुस अवपात (लंग कोलैप्स) के लक्षण मिलें—

(क) रोगी की छाती देखने पर अवपात क्षेत्र श्वास प्रश्वास के साथ हिलता डुलता हुआ नहीं या बहुत कम देखा जाता है।

(ख) ऊपरी खण्ड में अवपात होने पर कण्ठ-नाड़ी उसी ओर मुड़ी हुई पाई जाती है।

(ग) अगर फुफ्फुस का निचला खण्ड अवपतित हो तो हृदयस्पन्द अपने स्थान से हट जाता है और वाक्स्पृश्य कम्प (वोकल फ्रैमिटस) मन्द या तीव्र हो जाता है

(घ) परिताडन करने पर अवपात ग्रस्त फुफ्फुस क्षेत्र में मन्द(डल) ध्वनि मिलती है पर उसके बाहर के क्षेत्रों में अनुनाद (रेजोनेन्स) इसलिए अधिक मिलेगा क्योंकि वहां पूरक वातस्फीति हो जाती है।

(ङ) श्रवण परीक्षा करने पर अधिक भाग अवपात होने पर श्वास शब्द और वाक् अनुनाद दोनों ही मन्द पाये जाते हैं। यदि अवपात बड़े श्वासनाल या ब्रोंकस के पड़ोस में हो तो संघनित फुफ्फुसवत् श्वासनालीय श्वास शब्द सुने जा सकते हैं। उपजाप वक्षोध्वनि (ह्विस्परिंग) (पैक्टोरीलोकी) सुनाई देती है।

(च) क्षकिरण चित्र द्वारा अवपात का ज्ञान निम्न बिन्दुओं के द्वारा किया जा सकता है—

i. कण्ठनाड़ी में वर्तन (शिफ्ट)

ii. मध्यस्थानिका में वर्तन

iii. महाप्राचीरा का उठाव

iv. फुफ्फुस ऊतक के स्वरूप में परिवर्तन

v. अवपात के आसपास वातस्फीति

vi. अवपतित क्षेत्र की आकृति में अन्तर जिसे एक रेडियोलोजिस्ट ही बता सकता है।

(३) रोधक वातस्फीति के लक्षणों का पाया जाना— इनमें फेंफड़े के एक भाग में हवा अन्दर तो जाती है पर बाहर नहीं निकल पाती जिससे फेंफड़ा हवा से बहुत

अधिक फूल जाता है और मध्यस्थानिका को विरोधी दिशा में सरका देता है ।

(४) फुफ्फुस में व्रणशोथात्मक अर्थात् फुफ्फुसपाक के लक्षण उत्पन्न हो जाना जिन्हें न्यूमोनियां के प्रकरण में लिखा जा चुका है ।

(५) कभी-कभी उपर्युक्त चारों प्रकार के लक्षण मिल सकते हैं ।

फुफ्फुस में कहीं कोई आगन्तुक शल्य पड़ाहुआ है इसका ज्ञान करने के दर्शन, परिताड़ना, श्रवण के अलावा ऐक्सरे भी है । इससे रेडियो-ओपेक (क्षकिरण पारान्ध) शल्य आसानी से देखा जा सकता है और उसकी स्थिति निश्चित् की जा सकती है । अवघात और वातस्फिति के क्षेत्र भी सहायक वनते हैं । क्षकिरण चित्र (स्कायाग्राम) के अलावा स्क्रीनिंग भी सहायक होती है ।

ब्रौकोस्कोपी से भी शल्य को देखा और निकालजा सकता है ।

कभी-कभी शल्य खांसते-खांसते अपने आ वाहर निकल जाता है । कभी-कभी ब्रौकोस्कोपी से उसे दूर किया जा सकता है । कभी-कभी जव कोई उपाय कारगर नहीं होता तव वक्षच्छेदन (थोराकोटोमी) करके शल्य युक्त फुफ्फुस के अंश को निकाल देना पड़ता है यह वड़ा शल्यकर्म है । वच्चा खुलकर खांसे और गहरी श्वास ले इसका प्रयत्न करने से फुफ्फुसावपात सुधर जाता है और शल्य वाहर निकल जाता है । यह संयोग पर निर्भर करता है ।

पृष्ठ २३१ का शेषांश

एष वक्षः क्षतं हन्ति कण्ठजांश्च गदांस्तथा ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं वाहुस्तम्भ मर्यादितम् ।।

सोंठ, मिर्च, पीपल, शतावरी, हरड़, वहेड़ा, आमला, खरैंटी, कंघी और लोहभस्म समभाग कूट कपड़छान चूर्ण करते हैं ।

चक्रदत्त का सर्पिर्गुड क्षतक्षीणता, रक्तनिष्ठीवन, पीनस, उरःक्षत शोप, कास, ज्वर, का वहुत लाभदायक योग है । इसमें वला (खरैंटी), विदारीकन्द शालपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी छोटी, कटेरी वड़ी, गोखरू, पुनर्नवा, पंचक्षीरी वृक्षों (पीपल, पिलखुन, गूलर, वरगद, अंजीर या कठगूलर) के नये पत्ते या जटाएं, सव ४-४ तोले सवको १ द्रोण जल में क्वाथ कर चतुर्थांशावशिष्ट रहने पर छानकर इसमें क्वाथ का दुगुना दूध, विदारीदन्द का रस, वकरे के मांस का रस क्वाथ के वरावर जीवनीयगण के द्रव्य (अष्टवर्ग, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि-वृद्धि, मुलहठी, जीवन्ती) डाल १ आढक घृत का पाक करें । घृत सिद्ध हो जाने पर छान लें । फिर इस घृत में मिश्री ३२ पल, गेहूँ का भुना चूर्ण, पिप्पली, वंशलोचन, सिघाड़े का आटा १-१ कुडव डालें और कड़ाही में मन्द अग्नि पर एक रस कर लें, अव १ कुड़व शहद डालकर कोंचे से चलाकर लड्डू वांध दें । इसे वच्चे को खिलाने से उरःक्षत और तत्सम्वन्धी समस्त विकार दूर हो जाते हैं । ऊपर से दूध पिलाते हैं ।

छागलाद्यघृत (भै. र.) उरःक्षत सहित समस्त छाती के रोगों को दूर करने के लिए, स्वादिष्ट और उत्तम योग है ।

कण्ठ स्रोतोगत शल्य

**कण्ठ स्रोतोगते शल्ये बिसासंसक्तं शल्यं सूत्रं कण्ठे प्रवेशयेत् ।
अथ तद् ग्रहीतं बिज्ञाय शल्यं समेव सूत्रं विसं चाक्षिपेत् ।
बिसाभावे मृणालेष्वमेव विधि-**

यदि कण्ठ स्रोतोगन शल्य हो तो विस (कमलनालतन्तु के साथ सूत कण्ठ में डाले और जव जाने कि शल्य कमलनालतन्तु तथा सूत में अटक गया है तव झटपट कमलनालतन्तु के साथ सूत को खीं ले । इस विधि से शल्य वाहर आजायगा । विस के अभाव में मृणाल से भी यह क्रिया सम्पन्न हो सकती है ।

बच्चों में कोष्ठबद्धता क्यों कर होती है ?

जब बच्चो को ठीक आहार नहीं मिलता या जब उनके भोजन करने की आदत गलत होती है अर्थात् पहला भोजन पचने के पूर्व दूसरा आहार उसे कराया जाने लगता है। कभी-कभी बच्चे को मलत्यागने की आदत ठीक से नहीं दी जाती या शौचायल में अंधेरा होने से या अधिक सर्दी के कारण बच्चा जब शौचालय में जाने से डरता या हिचकिचाता है तो भी मलत्याग की प्रवृत्ति रुक जाती है और कोष्ठबद्धता का बालक शिकार हो जाता है।

अप्रवृत्ति होती है जिसे कोष्ठबद्धता कहा जाता है।

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदना: ।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीडनम् ॥

चरक ने अग्नि की दुष्टि के निम्नांकित कारण दिये है—

बच्चे को भोजन ठीक-ठीक मात्रा में और समय से न देने से, अजीर्ण पर अधिक भोजन करने से, विषमाशन से, असात्म्य-गुरु,शीत, अति रूक्ष, सन्दुष्ट भोजन करने से, व्याधि के द्वारा बच्चे का शरीर कृश होजाने से, देश, काल

श्री विजयशंकर त्रिवेदी का आरम्भिक प्राध्यापक जीवन रायपुर के सुप्रसिद्ध शासकीय आयुर्वेद कालेज से हुआ है। वहां आपने शल्य विभाग बड़ी कुशलता से सम्हाला हुआ था और उसमें चतुर्दिक ख्याति अर्जित की थी। आप आयुर्वेद के स्नातक ही नहीं अनुस्नातक भी हैं और उच्च कोटि के मनीषी विद्वान् हैं। इसी कारण उज्जैन के धन्वन्तरि आयुर्वेद महाविद्यालय को जब सेठी सरकार ने अपने हाथ में लिया तब आचार्य प्रवर को उसका प्रिंसीपल नियुक्त किया। इस महाविद्यालय के निर्माण में श्री जैन तथा डा. पिण्डावाला ने जो योगदान दिया है वह ऐतिहासिक महत्व का विषय है। प्राचार्य बनने के कुछ ही समय पश्चात् आपको डीन होने के नाते विक्रम विश्वविद्यालय जिससे यह कालेज सम्बद्ध है के वाइसचान्सलर बनने का भी सुयोग कुछ दिनों के लिए प्राप्त हुआ जो समूचे आयुर्वेद जगत् के लिए एक गर्व का विषय है। यह सम्मान एक वैद्य को एक विविध विषय और विद्याशाखा समन्वित विश्वविद्यालय में शायद पहली ही बार मिला है। श्री त्रिवेदी तन, मन और आत्मा से सर्वथा शुद्ध और सुन्दर व्यक्तित्व वाले शीलसम्पन्न और तपस्वी पुरुष हैं। —

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

कभी-कभी मानसिक दौर्बल्य होने से बालक मलत्याग की इच्छा होने और गुदभाग पर दबाव पड़ने पर भी मलत्याग करता नहीं तब भी कोष्ठबद्धता और उसके दूरगामी परिणामों का शिकार बालक होजाता है।

आयुर्वेद में अग्निमान्द्य और अजीर्ण का घनिष्ट सम्बन्ध माना गया है। यदि बालक की जठराग्नि ठीक है तो उसे अच्छी भूख लगती है और वह भुक्तान्न को अच्छे प्रकार पचा लेता है तथा उसे मल की प्रवृत्ति ठीक ठीक होने लगती है। यदि अग्निमन्द है तो आमाजीर्ण, तीव्र अग्नि के कारण विदग्धाजीर्ण और यदि अग्नि विषम है तो विष्टब्धा जीर्ण होता है इसी में मल और वात की

ऋतु के वैषम्य से और वेग विधारण करने से अग्नि दूषित हो जाती है जिससे थोड़ा भी अन्न पचाने में यह दुष्ट हुई अग्नि समर्थ नहीं होती। उसे अजीर्ण हो जाता है। और उस अजीर्ण के लक्षणों में विष्टम्भ भी एक लक्षण होता है।

कोष्ठबद्धता के कारण निम्नांकित लक्षण बालकों में देखे जाते हैं:—

i. जीभ पर फर या दही सा जमा हुआ,
ii. मुख से बदबूदार श्वास आना,
iii. बच्चा थोड़ा छूना भी बर्दाश्त नहीं करता,
iv. बच्चा थका थका सा नजर आता है।

v. कोष्ठवद्धता के कारण मल कड़ा होजाता है–जब सूखा हुआ और कड़ा मल गुदभाग से पास होता है तब वच्चे को कष्ट देता है। टट्टी करने में वच्चा चीख पड़ता है। उसके गुदमार्ग से खून आ जा सकता है कभी-कभी भगन्दर भी हो सकता है।

vi. गुद भाग पर अधिक जोर पड़ने से कांच भी निकल आती है।

अहैतुक महाबृहदंत्र ईडियोपैथिक मैगाकोलन)

इस रोगमें निरन्तर कोष्ठवद्धता रहती है सूखेहुए मल के एक भाग पर जीवाणुओं की क्रिया से पतला दस्त भी वन जाता है। मलाशय में स्पर्श से पत्थर सरीखा मल पाया जाने पर भी दस्त चलते रहते हैं। पेट में मलाशय क्षेत्र में अर्बुदाकार मलाश्म देखे जा सकते हैं। इस अहैतुक महाबृहदन्त्र रोग की विशेषता यह होती है कि मल जहां का तहां कोलन में अटका पड़ा रहता है और विना वस्ति कर्म के वाहर नहीं निकाला जा सकता है। गुद में अंगुली डालकर देखने से मलाशय मल से भरा पाया जाता है। यदि बेरियम खिलाकर इस भाग का क्ष–किरण चित्रण किया जावे तो मलाशय और कोलन दोनों ही वहुत विस्फारित देखे जावेंगे।

हिर्शस्प्रुङ्ग रोग

यह शिशुओं में कभी-कभी मिलता है। इसमें ३ मुख्य लक्षण पाये जाते हैं—निरन्तर कोष्ठवद्धता का होना, उदर का फूलना तथा वच्चे के विकास का रुक जाना। इस रोग में भी कोलन बहुत अधिक विस्फारित हो जाता है और उसकी दीवालों की अतिपुष्टि भी हो जाती है। रोग जन्मकाल से ही मिलता है। रोग वालकों में वालिकाओं की अपेक्षा अत्यधिक पाया जाता है। अनुपात ७-१ तक का बतलाया जाता है। ३०.००० हजार में से १ में हिर्शस्प्रुङ्ग रोग मिलता है ऐसा पाश्चात्य विद्वानों का मत है। कुछ ऐसा भी मानते हैं कि इसका सम्बन्ध पारिवारिक इतिवृत्त के साथ भी जुड़ा होता है। जब इस रोग का विचार किया जावे तो उसे निम्नांकित रोगों से पृथक् मान लेना होता है:—

(१) आन्त्रगत वात का रोग
(२) घातक आन्त्रावरोध (पैरैलाइटिक इलियस)
(३) अहैतुक महाबृहदन्त्र
(४) कोष्ठवद्धता

यह रोग, ऐसा स्वीकार कर किया गया है, और वैक तथा मिशनर के प्लैक्ससों की गण्डिकीयकोशिकाओं के अविकास (Aplasia of the ganglionic cells of the plexuses of auerbach and meissuer) का परिणाम है जो अवग्रह बृहदन्त्र या मलाशय के किसी खण्ड में पाया जाता है। इस आन्त्र खण्ड के ऊपर आंत फैल जाती है और मोटी हो जाती है। क्योंकि गण्डिकीय कोशिकाएं अविकसित हैं। इसलिए बृहदन्त्र के इस भाग में आंत-तरङ्गे उठती ही नहीं इसलिए मल उससे ऊपर के खण्ड में पड़ा रहता है और उसे फैलाता रहता है। यह स्थिति जन्म से उपस्थित रहती है और वच्चे को १ वर्ष की आयु में ही काल कवलित कर सकती है।

इस रोग के इतने लक्षण विविध कालों में मिलते हैं:–

जन्म से ही—

मल थोड़ी मात्रा में और वहुत देर से निकलता है, शिशु वमन करता है, उसका पेट फूल जाता है, ऊपर से पेट में आन्त्र तरंग उठती हुई दिखलाई देती है। उसकी गुद कसकर वन्द मिलती है जिसमें से अपान वायु और मल झोंके से निकलता है।

जन्म के बाद कुछ महीनों तक—

वमन, आध्मान, दृश्य आन्त्र तरंग तथा कोष्ठवद्धता के चारों लक्षण यथावत् मिलते हैं। वच्चा कृश होता चला जाता है, वह विवर्ण भी हो जाता है।

वच्चे के बड़े होने पर—

i. कोष्ठवद्धता चालू रहती है कभी-कभी इतनी तीव्र होती है कि वच्चा हफ्ते में एक वार ही मल त्याग करता है। यह इतिवृत्त जन्मकाल से ही मिलता है।

ii. वमन यदा-कदा रहती है जब विशेष आन्त्रावरोध हो जाता है तब।

iii. मल छोटी छोटी सख्त गोलियों के रूप में या पतला होने पर रिवन जैसा निकलता है।

iv. इस रोग में मल की असंयति (फीकल इन्कॉंटीनेन्स) नहीं मिला करती।

v. वच्चे के उदर की प्राचीर पतली, पेट गैस से

फूला हुआ इस पर सिराएं उभरी हुई, दवाने पर मलाशय और दृश्य आन्त्रतरंग देखी जा सकती है।

vi. गुद भाग स्वच्छ होता है। अंगुली प्रवेश कर परीक्षा करने पर मलाशय खाली पाया जाता है।

इस रोग में और अहैतुक मैगाकोलन में यही अन्तर होता है कि गुद हमेशा गीली मिलती है मलाशय में मलाश्य भरे मिलते हैं गुदच्युति या गुदभ्रंश मिलता है। आध्मान ही इस रोग की अपेक्षा मैगाकोलन मे कम मिलता है।

हिर्शस्प्रुङ्ग रोग मेआध्मान अधिक होने से महाप्राचीरा पेशी का बाया गुम्बद ऊपर उठ जाता है जिसे क्ष-किरण चित्र मे देखा जा सकता है। ऐसा मैगाकोलन में नहीं होता। वेरियम मील देने से हिर्शस्प्रुङ्ग तत्काल पता चल जाता है। जब वेरियम एक स्थान पर जाकर रुक जाता है और आगे नहीं वढ़ता है। वेरियम द्रव की बहुत अधिक मात्रा में जरूरत पड़ती है। २ से ४ लिटर तक द्रव फैले हुए आन्त्र खण्ड में आसानी से समा जाता है। द्रव ज्यों-ज्यों यहां आता है नीचे गण्डिकीय कोशिकाओं के अभाव से उत्पन्न संकोच के कारण ऊपर का आन्त्र खण्ड फैलता चला जाता है।

हिर्शस्प्रुङ्ग रोग एक शस्त्रकर्मसाध्य व्याधि है। नीचे के गण्डिकीय कोशिका विरहित आन्त्र खण्ड को काट कर निकाल देते हैं और फैलने वाले खण्ड को गुदभाग में जिसकी वलियां यथावत् रखी जाती है जोड़ दिया जाता हे औषध चिकित्सा इस रोग मे अधिक उपयोगी नही पाई जाती।

अहैतुक महावृहदन्त्र में वस्ति कर्म उपयोगी सिद्ध होता है यदि आन्त्र खण्डों में घुमाव या वाल्वुलस उत्पन्न होकर आध्मान हो जाता है तब एक फ्लेटस ट्यूब पास करके गैस को निकाल दिया जाता है। बच्चे को ट्यूब डालने से पहले जानुकूर्पर स्थिति में बैठा लेते हैं।

यह रोग याप्य या असाध्य रूप धारण कर लेता है इसे न भूलना चाहिए।

कोष्ठवद्धता की चिकित्सा—

सामान्य कोष्ठवद्धता से पीड़ित वालकों की चिकित्सा नीचे लिखे क्रम से की जाती है।—

(१) शिशु या वालक को पतला आहार जिसमें भूसी आदि कम हो देना चाहिए। फल लाभ करते हैं।

(२) बच्चे को व्यायाम कराना चाहिए।

(३) बच्चे के गुदक्षेत्र में नित्य अनीमा या फलवर्ति पास करना उचित नहीं होता क्योंकि उससे गुदस्थैर्य होकर अहित हो सकता है। इसी प्रकार विरेचन द्रव्यों का लगातार उपयोग भी उचित नही माना जा सकता। अंग्रेजी चिकित्सक एरण्ड तैल या कैस्टर ओइल का प्रयोग कोष्ठवद्धता में वर्जित करते हैं।

(४) छोटे बच्चों में मैगसल्फ दिया जा सकता है पर बड़ों में यह भी अनुपयोगी बतलाया जाता है।

(५) आजकल सनाय के ग्लूकोसायड निकाल कर ग्लैक्सेना या परसैनिड आदि जो दवाएं वनाई गई हैं वह कोष्ठवद्धता में लाभ करती है १ से २ गोली तक दी जा सकती हैं।

(६) अगर तथा लिक्विड पैराफीन का प्रयोग लाभप्रद रहता है।

(७) यदि कोष्ठवद्धता जीर्ण स्वरूप की हो रही हो तब प्रतिदिन विरेचनद्रव्यों का प्रयोग भी कराना पड़ सकता है। ग्लिस्रीन अनीमा, जैतून के तैल का अनीमा, दशमूल क्वाथ का अनीमा, सोपवाटर अनीमा सभी का वारी-वारी से १-१ दिन प्रयोग कर सकते हैं।

(८) यदि मलाश्मों को निकालने में विरेचन द्रव्य और वस्ति कर्म कारगर सिद्ध न हों तो बच्चे को स्पाइनल या जनरल अनीस्थीसिया देकर अंगुली से उन्हें निकाल देना चाहिए। गुदभाग मे धातु के बने यन्त्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उनसे आन्त्र छिद्रण जैसा प्राण नाशक उपद्रव हो सकता है।

(९) बच्चे को नित्य समय से मल त्याग करने की आदत डालनी चाहिए।

(१०) कोष्ठवद्धता से मुक्ति दिलाने के लिए गुलकन्द, ईसवगोल, ग्लैक्सैना, निशोथ, लवणभास्कर, मैगसल्फ मिक्चर, आरोग्यवर्द्धिनी, अश्वकंचुकी आदि नवीन प्राचीन दवाओं का एक के वाद एक का उपयोग करके कौन उसकी प्रकृति के अधिक अनुकूल है उसे देना चाहिए। ★★

शिशु अपच अजीर्ण और उसकी चिकित्सा

आयुर्वेदाचार्य डा० सत्यनारायण खरे ए. एम. बी. एस.
चिकित्साधिकारी–जिला परिषद् औषधालय, ककवारा (झांसी)

डा० खरे से सुधानिधि के प्रवर पाठक उसके जन्मकाल से ही परिचित रहे हैं। आप एक कर्मठ लेखक और सफल चिकित्सक के रूप में आयुर्वेद जगत् में प्रकाश रश्मियां विकीर्ण करते हुए अपना यश विस्तार करते जा रहे हैं।

डा० खरे को आधुनिक और प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र पर एक सा अधिकार प्राप्त है जो उनके लेखों में पग पग पर प्रकट होता है। आयुर्वेद अग्नि-मान्द्य को रोगों के मूल में मानता है जिसके कारण अजीर्ण उत्पन्न होता है। अपने इस तथ्य का विश्लेषण बहुत ही योग्यतापूर्वक किया है। अपच और अजीर्ण पर आपका यह सर्वाङ्गपूर्ण सुलेख है। भविष्य में भी विद्वद्वर खरे सुधानिधि को अपना सहयोग इसी प्रकार देते रहेंगे इस विश्वास के साथ। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

प्रस्तुत विशेषांक के लिये एक महत्वपूर्ण व्याधि पर भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षण हेतु कुछ अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूं।

उक्त व्याधि पाचन-संस्थान से सम्बन्धित है बालक जो भी आहार मुख द्वारा प्राप्त करता है वह इस संस्थान द्वारा पचकर रक्त निर्माण व वृद्धि में सहायता करता है। इस संस्थान से सम्बन्धित अङ्ग मुख, आमाशय क्षुद्र आंत्र व बृहदंत्र मुख्य हैं इनकी क्रिया नियमित रहने पर बालक स्वस्थ व बलशाली बनता है इनमें किसी प्रकार अनियमितता आने पर बालक अस्वस्थ हो जाता है एवं भोजन करना व्यर्थ हो जाता है।

बाल्यावस्था में अपचन व अजीर्ण रोग अधिक देखने को मिलता है इसमें आमाशय की क्रिया, उसके पाचन में काम आने वाले रस की क्रिया विकृत हो जाती है जिससे भोजन विलम्ब से पचता है अथवा बिना पचा ही मुख द्वारा बाहर निष्कासित कर दिया जाता है, इस प्रकार उचित ढंग से पाचन न होने की क्रिया को अपचन (Indigestion) कहते हैं व विलम्ब और कष्ट से पाचन होने की क्रिया को अजीर्ण (Dyspepsia) रोग से सम्बोधित किया जाता है।

इस व्याधि से ग्रसित होने के कारण बालक बहुत कमजोर हो जाता है एवं जो कुछ भी वह भोजन आहार सेवन करता है वह व्यर्थ ही निष्कासित हो जाता है जिससे आहार

रस द्वारा रक्त निर्माण नहीं हो पाता है।

पाचन-क्रिया का कार्य पित्त द्वारा होता है जिसमें पाचक-पित्त का कार्य मुख्यरूप से है। पाचकाग्नि क्षीण होने से आहार का पाचन अच्छी तरह से नहीं हो पाता। यह अग्नि शीत ऋतु में तीव्र होती है अतः पाचनक्रिया इस ऋतु में विकृत बहुत कम होती है। इसका विकार ग्रीष्मऋतु व वर्षाऋतु में अधिक होता है। इन ऋतुओं में जाठराग्नि क्षीण रहती है। इस कारण अपच व अजीर्ण रोग अधिक उत्पन्न होता है।

बाल्यकालीन अजीर्ण में आंत्र व यकृत् विकार अधिक देखने को मिलते हैं। इस प्रकार बाल्यकालीन अजीर्ण के तीन भेद माने गये हैं—

१. आमाशयिक (Dastric Dyspepsia) अजीर्ण।
२. याकृतिक (Hepatic Dyspepsia) अजीर्ण।
३. आंत्रिक (Intestinal Dyspepsia) अजीर्ण।

१. आमाशयिक अजीर्ण

इसमें बालक के आमाशय में विकृति उत्पन्न होती है, आमाशय कला का प्रक्षोभ होने से आमाशयिक शोथ उत्पन्न हो जाता है। यह अजीर्ण भी तीव्र व चिरकालीन दो प्रकार का होता है। इसमें आमाशय प्रदेश में पीड़ा, वमन, ज्वर एवं बाल के आक्षेप पाये जाते हैं। इसमें बालक बेचैन व शिथिल अवस्था में पड़ा रहता है। कभी-कभी वमन अधिक होती है।

इसमें प्राचीन आमाशय शोथ रहने पर चिरकालीन अजीर्ण की अवस्था देखने को मिलती है। अधिक शर्करा के प्रयोग से आमाशयिक श्लेष्मिक कला में प्रक्षोभ चलता रहता है। गर्म स्नेह भोजन का सेवन, भोजन निगलने व चबाने में असावधानी और शीत से इस रोग की अवस्था देखने को मिलती है। इस अवस्था में जिह्वा का परीक्षण करने पर श्वेत तहयुक्त जिह्वा देखने को मिलती है। इसमें आमाशयिक स्राव एवं इनका कार्य अनियमित होता है। इस कारण आमाशय से लवणाम्ल (Hydrochloric acid) बिना क्रिया किये ही वमन द्वारा बाहर निष्कासित हो जाता है।

२. याकृतिक अजीर्ण

तीन वर्ष से ऊपर की आयु के बालकों में जब भार

कम होने लगता है और क्षुधा नष्ट हो जाती है तब इस रोग की ओर ध्यान आकृष्ट होता है। जो बालक अधिक मात्रा में स्नेह पदार्थ घृत आदि का उपयोग करते हैं उन्हें यह विकार देखने को मिलता है। यकृत् धीरे-धीरे विकृत होकर अपना कार्य करना बन्द कर देता है। भोजन का मुख्य पाचन पित्तरस द्वारा क्षुद्र आंत्र में ही होता है जो कि यकृत् स्थित पित्ताशय से निष्कासित होता है। इसके रोगी को विबन्ध अधिक रहता है। रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। मुख से दुर्गन्धित श्वास और मल पीतवर्ण का हो जाता है। इसके बाद वमन चक्र, ज्वर, आम्लिकता (खट्टी डकारें) व शीर्षशूल आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

यह रोग दुग्ध, अण्डे, क्रीम के अधिक सेवन एवं अधिक मात्रा में सन्तरा का स्वरस पान कराने से यकृत् की कार्य-क्षमता क्षीण होकर उत्पन्न होता है। इससे संताप व अधिक वमन से यकृत्स्थित दूषित तत्व नष्ट होने लगते हैं।

३. आंत्रिक अजीर्ण

इस प्रकार से पीड़ित रोगी अधिक क्षयरोग के समान प्रतीत होने लगते हैं क्योंकि ऐसे बालकों को क्षुधानाश, शोष आदि रोग ग्रसित कर लेते हैं वैसे ही रोगी भोजन नहीं करता है अगर कुछ भोजन कर भी ले तो उसका पाचन नहीं हो पाता है ऐसी हालत में रोगी का शरीर क्षीण होता जाता है जो कि क्षयरोग के पूर्वरूप का चिह्न है।

आंत्रिक अजीर्ण का रोगी धातु दौर्बल्य, ग्लानि, कास तथा चिड़चिड़ापन से युक्त होता है ऐसे बालक भोजन के स्थान पर मिट्टी, खड़िया एवं कोयला आदि दूषित पदार्थ

चोरी से खाते रहते हैं। यह अजीर्ण रोग उन्हीं बालकों को अधिक होता है जो कि स्वयं अपने पैरों द्वारा संचालित हो कर इधर उधर फिरकर ऐसे पदार्थ सेवन करते हैं। जो बालक भोजन नहीं करते हैं और उपरोक्त दूषित पदार्थों के खाने की क्षुधा रहती है इसे विचित्र भक्षण कहते हैं।

अजीर्ण रोग की उत्पत्ति उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त कुछ निम्न कारण ऐसे देखने में मिलते हैं जिनसे अजीर्ण रोग की उत्पत्ति होती है उनका उल्लेख इस प्रकार से है—

बालकों का विभाजन आयु के अनुसार तीन प्रकार से किया गया है—

१. क्षीरप—इनमें एक वर्ष तक के बालक आते हैं जो कि अधिकतर मां के दुग्ध पर ही आश्रित रहते हैं। अतः ऐसे बालकों को जो अजीर्ण रोग होता है वह माता के आहार विहार के दूषित होने से होता है।

२. क्षीरान्नाद—इनमें एक से दो वर्ष तक की आयु के बालक आते हैं वह मां का दूध भी पीते हैं एवं कुछ अन्न भी सेवन करते हैं वह स्वयं व कुछ माता के दूषित आहार-विहार से पीड़ित हो जाते हैं।

३. अन्नाद—इसमें २ वर्ष से अधिक आयु वाले बालक आते हैं वह स्वयं अधिक, विषम, दूषित भोजन करने से अजीर्ण रोग से पीड़ित हो जाते हैं। इसी आयु में दन्तोद्भेद काल चलता है अतः इसमें भी उदर-विकार, वमन, अतिसार मुख्य रूप से देखने को मिलते हैं अतः इस आयु में बालक अधिकतर अधिक अजीर्ण से पीड़ित होते हैं। यह काल २ से ४ वर्ष की आयु तक चलता है। इस आयु में ही बालक अधिक रोगग्रस्त व क्षीण काय वाले हो जाते हैं जिनका स्वास्थ्य-संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है।

अतएव जैसाकि उपरोक्त उल्लेख है कि केवल माता के दुग्ध पर आश्रित (आधीन) रहने वाले बालक अजीर्ण रोग से कैसे पीड़ित होते हैं इसका अनुमान माता के आहार-विहार से लगाया जाता है अतः अजीर्ण के हेतु इस प्रकार से हैं—

"अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च
सन्धारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च ।
कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्त-
मन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥"

—अर्थात् अधिक जल पीने, कभी अधिक, कभी कम भोजन करने से, भूख मल मूत्रादि के वेग रोकने से, सोने के विपरीत (अनिद्रा-रात्रिजागरण) से समय पर तथा हितकारी एवं लघु भोजन करने से भी अन्न नहीं पचता है। एवं—

"तृष्णाभयक्रोधपरिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥"

—अर्थात् प्यास, भय, क्रोध से व्याप्त, लोभी, रोग तथा दीनता से पीड़ित या द्वेष से युक्त जो मनुष्य भोजन करता है उसका अन्न भलीभांति न पचकर अजीर्ण रोग की उत्पत्ति करता है।

जो बुद्धिहीन मनुष्य पशु की भांति अधिक अन्न सेवन करते हैं वे अनेक रोगों के कारणस्वरूप अजीर्ण रोग को प्राप्त करते हैं। दुग्ध पिलाने वाली स्त्रियों को मैथुन से वंचित रहना चाहिये। इस प्रकार के दुग्ध पिलाने से बालक अजीर्ण रोग से पीड़ित हो जाता है।

अस्तु उपरोक्त कारणों से बालक की माता अजीर्ण रोग से पीड़ित हो सकती है। इस प्रकार जिस व्याधि से माता पीड़ित होती है उसी रोग से उसका दुग्ध दूषित हो जाता है जिसके पीने से बालक भी पीड़ित हो सकता है। ऐसे बालकों के आमाशय में विकृति उत्पन्न हो जाती है जिससे वमन रोग अधिक देखने को मिलता है। अतः माता को चाहिये बालक को शुद्ध दुग्ध पिलावे।

अजीर्ण रोग का ज्ञान करने के लिए रोगी की निम्न लक्षणों के समान परीक्षा करना चाहिये जैसाकि शास्त्र में उल्लिखित है—

"ग्लानिर्गौरवविष्टम्भभ्रममारुतमूढताः ।
विबन्धो वा प्रवृत्तिर्वा सामान्याजीर्णलक्षणम् ॥"

अर्थात् शरीर में ग्लानि तथा भारीपन, उदर में पीड़ायुक्त कठिनता, भ्रम, वायु का अवरोध (उदराध्मान), मल का अवरोध या अधिक निकलना, यह सब अजीर्ण के सामान्य लक्षण हैं। इस प्रकार पूर्वों में अजीर्ण के वात, पित्त एवं कफ दोषानुसार तीन भेद बताये हैं, पर महर्षि सुश्रुत ने रस दूषित होने से रसशेषाजीर्ण चौथा अजीर्ण बताया है। मन्दबुद्धि के कारण इसके विस्तृत विवरण की आवश्यक-

कता नहीं है केवल स्त्रियों में अजीर्ण के हेतुओं का उल्लेख इसलिये किया है कि दूध पीने वाले बालक इनके आश्रित रहते हैं।

एलोपैथी मतानुसार अजीर्ण के भेद तीन प्रकार के हैं—

१. इन्द्रिय शैथिल्यजन्य अजीर्ण (Organic Dyspepsia)–इसमें आमाशयजन्य विकार जैसे कार्सीनोमा, आमाशय व्रण, श्लैष्मिक शोथ, आमाशय प्रसारण से आमाशय के तन्तुओं में विकृति हो जाती है।

२. व्यापार विकृतिजन्य अजीर्ण (Functional Dyspepsia)–इसमें आमाशय से सम्बन्धित नाड़ियों की क्रिया में अव्यवस्था हो जाती है। इस प्रकार नाड़ियों की क्रिया दूषित होने से आमाशय की गति तीव्र व कम हो जाती है। आमाशयिक रस में लवणाम्ल का ह्रास या अधिक हो जाना। इस प्रकार की क्रियायें आमाशय की संवेदन नाड़ियों की क्रिया में अव्यवस्था से हो जाती हैं।

३. वातवाहिनियों का विकृतिजन्य अजीर्ण (Nervous Dyspepsia)–इसमें भी आमाशय की नाड़ियां (Nervous) शिथिल हो जाती हैं।

इस प्रकार से अजीर्ण रोग में आमाशय में पीड़ा, अफ़रा मुख में बार-बार थूक आना, वमन, क्षुधानाश आदि लक्षण देखने में मिलते हैं।

इस प्रकार बालकों में अजीर्ण रोग से वंचित रखने के लिये कुछ उपायों का उल्लेख है जिनसे बालकों की पाचन क्रिया सामान्य रूप से होती रहे, व बालक आयु के अनुसार क्रमिक विकास करता रहे।

बालक के जन्म के १५ दिन या १ माह बाद बालक के भार में प्रति सप्ताह ४ से ६ औंस तक की वृद्धि होती है यह वृद्धि ६ माह तक बराबर होती रहती है। इसके लिये आहार के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

१. आहार पूर्णतः सुपाच्य हो।

२. यदि माँ का दूध दूषित है तो गाय या बकरी का दुग्ध उचित मात्रा में सेवन कराना चाहिये। इसके बारे में शास्त्रकारों का उल्लेख है कि शिशु को उसके जन्म के समय के भार से कम आहार नहीं देना चाहिये विशेषकर उसके जीवन के प्रारम्भिक सप्ताहों में।

"Never to feed a baby for less than to birth weight specially in early week of life."

३. बालक के लिये माता का दुग्ध सर्वोत्तम माना गया है अतः अधिकतर माता का दुग्ध ही अधिक पिलाना चाहिये लेकिन माँ को पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये।

४. शिशु को प्रति सेर भार शरीर के वजन के अनुसार २ छटांक (१२५ ग्राम) दुग्ध पिलाना चाहिये। माता के दूध की मात्रा ज्ञात करने के लिये उसको (माता) का दूध पिलाने से पहले व बाद में भार मालूम करने से पिलाये हुए दूध की मात्रा आ जाती है।

५. दुग्ध–आहार सेवन तभी तक महत्वपूर्ण है जब तक कि बालक का भार बढ़ता रहे व विकास होता रहे।

६. पाचन के अनुसार ही दुग्ध देना चाहिये।

उपरोक्त उपायों द्वारा अजीर्ण रोग से वंचित रहा जा सकता है। इसके कुछ उपद्रव भी होते हैं जिनका ज्ञान भी आवश्यक है। यकृत् जन्य अजीर्ण की तरह आंत्रिक अजीर्ण में कुछ आकस्मिक उपद्रव आते रहते हैं यह तीन प्रकार के हो सकते हैं।

१. अजितातिसार—इसमें बालक भोजन करते समय ही मलत्याग के लिये दौड़ पड़ता है। यह पक्वाशय की क्षोभयुक्त परावर्तन क्रिया के कारण होता है।

२. नाभिशूल—इसमें बार-बार नाभि के पास शूल का अनुभव होता है। शूल से बेचैन बालक दुहरा पड़ जाता है, एवं अकस्मात् पीड़ा के कारण श्वेत पड़ जाता है। इसका आक्रमण कुछ घण्टों तक लगातार रह सकता है।

३. संमोह—इसमें बालक अधिक पीड़ा के कारण श्वेतवर्ण (Pallor) का हो जाता है।

अजीर्ण रोग विकृत आंत्र की पैथालोजी का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि पाचन संस्थानगत श्लैष्मिक कला से श्लेष्मा का स्राव अधिक होता है जिससे पाचन के लिए जो आहार जाता है उससे यह लिपट जाता है जिससे अन्न का पाचन नहीं हो पाता एवं रस, रक्त का निर्माण नहीं हो पाता जिससे कोष्ठबद्धता एवं अतिसार दोनों की शिकायतें मिलती हैं। गले में भी श्लेष्मा स्राव मिलता है जिससे बालक को चिरकालीन प्रतिश्याय भी देखने को

मिलता है।

अतः इस रोग से वालक को अधिक समय तक पीड़ित नहीं रहना चाहिये अन्यथा उसकी आयु का संरक्षण भी कठिन प्रतीत होता है।

इस व्याधि से मुक्ति पाने के लिये निम्न उपाय व चिकित्सा करनी चाहिये–

अजीर्ण चिकित्सा

१. शीतऋतु में वालक की शीत से रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

जीवन नियमन–अजीर्ण से पीड़ित वालक के जीवन का नियमन आवश्यक है। अधिक देर तक अगर वह स्कूल में रहता है तो विश्राम देना चाहिये। निद्रा के लिये उचित वातावरण देना चाहिये। आराम, निद्रा, व्यायाम व खुली हवा में विहार करने के लिये व्यवस्था कर देनी चाहिये।

आन्त्रिक अजीर्ण में सामुद्रिक जलवायु तथा यकृत् अजीर्ण में पर्वतीय जलवायु लाभदायक देखी जाती है।

भोजन समय पर कराना चाहिये। भोजनोपरान्त वालक स्कूल दौड़कर न जावे। वालक का मुख, दांत नित्यप्रति साफ किये जावें।

२. आहार –वालक को भोजनानन्तर काल में कुछ भी भोजन करने को नहीं देना चाहिये। आंत्रिक अजीर्ण में श्वेत सार तथा शर्करायुक्त आहार नहीं देना चाहिये। मिठाई, आलू, कच्चे फल, शाक, दाख आदि भोजन वर्जित है। हरे शाकों को भलीभांति पकाकर, मूंग की दाल का यूप और सरल सुपाच्य भोजन देना चाहिये।

याकृतिक अजीर्ण में क्रीम, दुग्ध, अण्डों का सेवन वन्द कर देना चाहिये मधुर व चिकने पदार्थ नहीं देना चाहिये।

३. अगर शूल अधिक हो उदराध्मान, कोष्ठवद्धता हो तो वमन करा देना चाहिये। एनीमा द्वारा मलाशय साफ करने से आध्मान व शूल में लाभ होता है।

४. उदर की सेक करना चाहिये।

आयुर्वेद मे अजीर्ण में भोजन के पाचन पर वल दिया है अतः पाचन के लिये अग्निमुख चूर्ण, व्योपाद्य चूर्ण, शंखवटी, क्रव्यादिरस एवं अजीर्णकण्टक रस आदि योग है जो वालकों को दिये जाते हैं।

५. वाजार में कुमार कल्याण घुटी 'धन्वन्तरि कार्यालय' से निर्मित मिलती है। वालकों को उसका प्रयोग कराना चाहिये।

६. अरविन्दासव–यह भी वाजार में उपलब्ध हैं इसको भोजन के उपरान्त १/२ तोला की मात्रा में वरावर जल मिलाकर पिलाना चाहिये।

७. विभिन्न प्रकार के ग्राइप वाटर, मैक्राविन, ओस्टोकैल्शियम वी १२ शर्वत एवं मल्टीविटामिन शर्वत भी इसमे अच्छा लाभ करते हैं।

इनसे अन्न का पाचन अच्छा हो जाता है एवं रस-रक्त का निर्माण होकर वालक स्वस्थ, सुडौल प्रसन्न रहता है।

आंत्रिक अजीर्ण में सोडावाईकार्व १/२ रत्ती, नक्सवोमिका २४ रत्ती एवं जेंशियन १/२ रत्ती का मिश्रण वनाकर भोजन के १/२ घण्टे पहले इसे प्रयोग कराना चाहिये।

निद्रा लाने के लिये–पोटाशियम ब्रोमाइड १/२ रत्ती, पल्वराईको १/२ रत्ती, सोडावाई कार्व १/२ रत्ती, सीरपजिजीवर ५ वूंद, एक्वामेंथ पिपरमेंट १/२ छटांक तक।

इसे दिन में ३ वार में पिलाना चाहिये।

उपद्रवों में—

१. अतिसार में भोजन के पूर्व १-२ विन्दु अहिफेन का टिञ्चर देना चाहिये।

२. नाभिशूल में–भोजन के पूर्व टिंक्चर अहिफेन १ वूंद, टिंक्चर वेलाडोना २ वूंद देना चाहिये। सौम्य विरेचक का भी प्रयोग किया जा सकता है।

३. संमोह में–गले के कपड़े ढीले कर मुख पर शीतल जल डालकर धोना चाहिये। श्वास क्रिया विधिवत् चलाना चाहिये मूर्च्छाहर द्रव्य सुंघावें और हृदयोत्तेजक ब्राण्डी आदि अल्प मात्रा में देना चाहिये।

अस्तु 'सुधानिधि' के पाठकों की सेवा में यह लेख प्रस्तुत किया जा रहा है। उपरोक्त उपायों द्वारा अपने वालकों के स्वास्थ्य के संरक्षण का प्रयास करें क्योंकि यह अजीर्ण रोग वालक को क्षीणकाय वनाकर क्षयरोग (T.B.) उत्पादन में सहयोग देता है। अतः सभी भारतीय ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन कर पाठकों को स्वस्थ व सुखी वनायें। ★★

बालकों में अपोषण समस्या तथा उसका निराकरण

लेखिका श्रीमती मृदुला एम. शाह M. S. A. M. प्रादेशिक अनुसन्धान केन्द्र (आयु०)
जोगिन्दर नगर (हिमाचल प्रदेश)

यद्यपि इस लेख का स्थान शिशु सम्पोषण खण्ड में था किन्तु कोष्ठ-कोष्ठांग रोगों मे विशेषकर पचनसंस्थान से सम्बद्ध होने से इसे यहां समाविष्ट किया जा रहा हैं। आयुर्वेद पत्र-पत्रिकाओं में महिला लेखिकाओं की संख्या प्रायः नगण्य रहती है। श्रीमती शाह सदैव सुधानिधि पर अपनी अहैतुक कृपा बनाए रखती हैं उनके द्वारा रचित यह लेख योग्यतापूर्ण रीत्या तो लिखा ही गया है साथ ही आयुर्वेद की मूल प्रकृति के अनुरूप ही विषय विश्लेषण विशेष द्रष्टव्य है। मैं इसके लिए श्रीमती मृदुलाबेन के प्रति अपना आभार प्रकट करना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानता हूं। —गोपालशरण गर्ग।
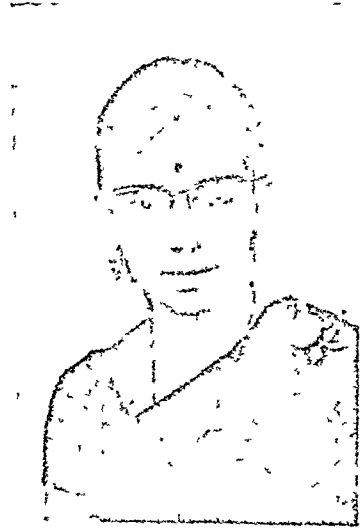
शिशु रोगों पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो ज्ञात होता है कि शिशुओं में रोगोत्पत्ति होने के प्रमुख कारणों मे आहारपरक निदान अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तों मे शिशु रोगों में भी विभिन्नता पायी जाती है। आहार परक निदानो पर विचार करने पर दो और बातें देखने को मिलती हैं। (१) परिवार की आर्थिक परिस्थित प्रवर होने पर बालक का अति पोषण होगा और (२) यदि परिवार की आर्थिक स्थिति हीन है—आय कम परिवार बड़ा होगा तो बालक का पोषण हीन होगा। रोगोत्पत्ति की दृष्टि से अति पोषण और हीन पोषण दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। अतिपोषण स्थौल्यकर है परन्तु स्थायी नही तथा हीन पोषण कार्श्यकारक है; अतएव उपरोक्त शिशुओं की आयुर्वेद मे वर्णित 'अष्ट निन्दनीय' प्रकार में गणना होती है। रोग की स्थिति दोनों से होने पर भी साध्यासाध्यता की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर रहता है। जैसे आचार्य कहते हैं कि

स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यं समोपकरणौ हि तौ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवाति पीडयेत् ॥

अति स्थूलता और अतिकृशता में कृशता अच्छी होती है, क्योंकि उपरोक्त दोनों अवस्थाओं में चिकित्सा के समान साधन रहने पर भी यदि दोनों समान व्याधि से आक्रान्त हो जायें तो वह व्याधि कृश की अपेक्षा स्थूल मनुष्य को अधिक कष्ट देने वाली होती है—

पुरातन से अनुभूत सिद्धान्त को आज के वैज्ञानिक चिकित्साशास्त्र की भी पूर्ण स्वीकृति प्राप्त है। उनके अनुसार स्थूलता या तो अनेक व्याधियों का निमित्त होती है या वह पूर्णरूप से आयासज श्वास कष्टता लाने में जिम्मेदार होती है।[1]

आजकल उत्तर अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और प्रायः सर्व युरोपीयन प्रदेशों में स्थूलता पोषण सम्बन्धि सबसे भयावह व्याधि है और जीवनीय तत्वों के अभाव में यावत मात्र व्याधियां होती है उनसे कहीं अधिक सिर्फ अकेली यह स्थूलता से होती है।[2]

स्थूलता के कारण शरीर की बनावट पर जो प्रभाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप मनुष्य शरीर अवसन्न प्रकार का हो जाता है जिसके चलते क्या-क्या कठिनाइयां उत्पन्न होती है यह तो सर्वविदित ही है। इसके अलावा स्थूलता के कारण मानसिक शरीरावयवदुर्बलता उत्पन्न हो जाती है जिसके फलस्वरूप पाचन सम्बन्धि एवं हृदय धमनी विकार उत्पन्न हो जाते है। अतएव अन्ततोगत्वा मनुष्य अल्पायु हो जाता है।[3]

माता का स्तन्य शिशु के लिये एक सर्वश्रेष्ठ आहार माना गया है—

Human milk is the ideal diet for a baby

जिन शिशुओं को माता से स्तन्यपान का सुख नहीं मिलता उनका शरीर एक महान् जीवनीय शक्ति से वंचित रहता है। किसी भी बाह्याहार में कोई न कोई पोषण तत्व की कमी अवश्य सदा रहती है किन्तु माता का स्तन्य शिशु के लिए सदा पथ्य होता है उसे सम्पूर्ण गुणों से युक्त पाया गया है। जिस बालक को दीर्घकाल तक स्तन्यपान कराया गया हो उसका शरीर बल भी जितना उत्कृष्ट होगा व्याधि प्रतिबन्धक शक्ति भी उतनी ही प्रबल होगी। उसके शरीर में अनेक महाव्याधियों के आक्रमण से लड़ने की क्षमता बनी रहती है।

स्तन्य को आयुर्वेद में रसधातु का उपधातु माना है। स्त्रियों में आहार परिणाम के बाद उत्पन्न रस जब स्तन्यवहस्रोतों द्वारा स्तनों में पहुँचता है तब वहां धात्वग्नि द्वारा पाक होकर सारभूत मधुर रस की उत्पत्ति होती है। सुश्रुतसंहिता में कहा है कि गर्भस्थिति होने पर अपत्यपथ से अप्रवृत्त आर्तवरक्त ऊर्ध्वगति से आकर अपरा उत्पन्न करते हुए ही वह स्तनों को भी पुष्ट करता है। स्तन्य प्रवृत्ति में स्वभाव और प्रकृति संयोग दो प्रमुख कारण माने जाते हैं। प्राकृतस्तन्य किसी भी दोष से दूषित नहीं होता, प्राकृत स्तन्य वर्ण रस स्पर्शयुक्त होता है, शंखसदृश वर्ण वाला मधुर रस युक्त शीत एवं फेन तन्तु रहित होता है। बालक को स्तनपान कराते समय माता या धात्री को स्नानादि कर्म से शुद्ध होकर सुगन्धित द्रव्यों का लेप करके शुभ्र एवं शुद्ध वस्त्र पहनकर ब्राह्मी-सर्वोषधि औषधियां धारण कर बालक को नवीन वस्त्र पहनाकर अपनी गोद में उत्तराभिमुख बिठाना चाहिये। फिर दक्षिण

---

1. Obesity will aggravate or may entirely account for breathlessness or excertion.
—The Pripciples and Practice of Medicine S. Davidson 127.

2. Obesity is the most Common nutritional disorders at the present time in north America, Great Britian and most Europian Countries and gives rise to more ill health than all the vitamin dificiences put to gather. —Davidson—454.

3. Apart from aesthetic Consideration, obesity leads to mechanical disabilities, predispotes to metabolic and Cardiavascular disorders, and so reduces the expectancy of life. —Davidson—457.

स्तन को सुखोष्ण जल से धोकर उसमें से दूध निकालकर अभिमन्त्रितकर प्रथम दक्षिण फिर वाम स्तनपान कराना चाहिये।

आधुनिक मतानुसार भी स्तनपान विषय में निम्न रूप से विचार किया गया है—

अ. स्तनपान के लाभ—(Advantage of Breast feeding)।

१. इसके लिए किसी भी प्रकार की पूर्व तैयारी की आवश्यकता नहीं।

२. इसमे कोई विशेष खर्च नहीं होता।

३. किसी भी समय प्राकृत स्वाद उष्णतायुक्त, सुप्राप्य होता है।

४. किसी भी प्रकार का अनुपान जानना आवश्यक नहीं।

५. श्वसन प्रणालि सम्बन्धित विकारोत्पत्ति में क्वचित ही जिम्मेदार होता है।

६. शिशु विकास में मानसिक रूप से महत्वपूर्ण योगदान रखता है।

ब. हानि (Disadvantages of Breast feeding)।

१. अति दुर्बल एवं अविकसित बच्चे स्तनपान करने में असमर्थ होते हैं। माता के दुर्बल होने पर बच्चे को जितने आहार ऊर्जा की आवश्यकता है वह नहीं मिल सकता है।

२. स्तन्य द्वारा माता शिशु को किसी प्रकार की एलर्जी दे सकती है।

क. स्तन्यपान में बाधाएं (Coutra indications of Breast feeding)।

१. बालक—१ दुर्बल २ फिरंगरोगी खण्डौष्ठ एवं सच्छिद्रतालु युक्त हो।

२. माता—अ. अस्थायी-स्तनव्रण-नाड़ीव्रण स्तन चुचूक पर विकार हो।

ब. स्थायी—१ प्रसूति के बाद तुरन्त पुनः गर्भधारण।

२. थनैली हुआ हो (Mastitis)।

क—स्त्राव—(Secretions) यह शिशु के बल एवं चूसने की रीति पर निर्भर करता है इसका सही अन्दाजा बालक की मुखाकृति से हो सकता है जितनी शक्ति अधिक होगी उतना स्राव अधिक होगा। बालक स्वस्थ हो और स्राव कम हो तो उसमें पीयूषग्रन्थि का स्रावाभाव समझना चाहिए तब माता को वह स्राव औषधि रूप से देना चाहिए।

ख—स्तनपान कला (Technique of feeding) माता और शिशु उचितासन में होना चाहिए। माता को चिन्ता, भय, क्रोध से रहित होना चाहिए, माता को प्रथम अपनी दो अंगुलियों से स्तन चुचूक पकड़कर दबा कर स्तनपान कराना चाहिये अन्यथा शिशु को श्वासावरोध हो जाता है। शिशु के कंठ में यदि अवरोध हो तो वह दूर करना चाहिए। स्तनपान के बाद शिशु को माता का अपने कन्धे पर उठाना चाहिए। अन्यथा स्तन्य बाहर आ जाता है।

इ - धात्री आहार परिचर्या—

१. स्तन के समय में माता के आहार में अधिक प्रमाण से जल का होना आवश्यक है करीब ३० औंस पानी माता को पीना चाहिए। हर आधे घन्टे पर १ ग्लास पानी पीना चाहिए।

२. आहार सप्रमाण और सर्वपोषक तत्वों से युक्त होना चाहिये।

३. आहार निद्रा और व्यायाम की बात में नियमित होना चाहिये।

४. दिन में १ से २ घन्टे का आराम लेना आवश्यक है।

५. निम्न बातें त्याज्य है।

(अ) अधिक मात्रा में अम्लाहार।
(ब) रूक्षगुण वाला फल।
(क) अजीर्ण करने वाला आहार।
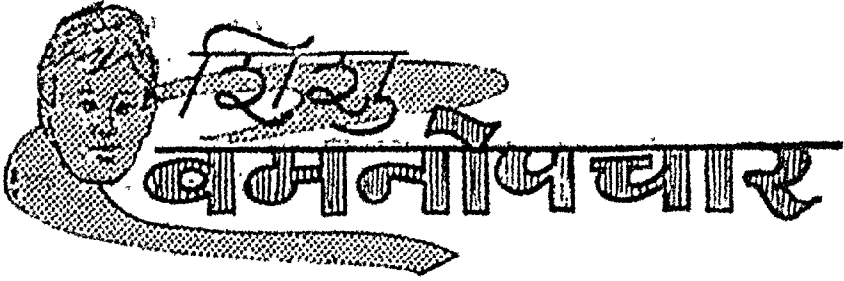
३. मस्तिष्कावसादक निद्राकर औषधियां तथा स्थावर जंगम विषयुक्त औषधि प्रयोग।

इ—स्तनपान प्रमाण—

प्रतिपाउण्ड भार पर २४ घंटों में २½ औंस दुग्धपान कराना चाहिये। यह देखना चाहिये कि शिशु दुग्धपान के बाद ३ घंटे सोता है। और जगने के बाद दुग्ध की अनु-

—शेषांश पृष्ठ २५१ पर

वैद्याचार्य श्री हनुमानप्रसाद अग्रवाल, राजकीय आयुर्वेद औषधालय, कारोई, भीलवाड़ा

आयुर्वेद में वमन या छर्दि को रोग के रूप में स्वतन्त्र व्याधि माना है किन्तु बालकों की वमन को स्वतन्त्र रूप से व्याधि नहीं मानकर समस्त बालरोगों के एक स्वतन्त्र अधिकार के अन्तर्गत ही शिशु वमन का अन्तर्भाव किया गया है। ऐसे ही ऐलोपैथी में वमन (वॉमिटिंग) को एक स्वतन्त्र व्याधि नहीं मानकर अनेक रोगों में का एक लक्षण माना है।

आमाशय स्थित प्राणदानाड़ी की शाखा और न्यूमो-गैस्ट्रिक नर्व द्वारा उत्तेजना प्राप्त कर आमाशय की मांसपेशियां बलपूर्वक संकोच करती हैं तो आमाशय स्थित आहार द्रव्य बलपूर्वक मुख की ओर धकेल दिया जाता है उसीको वमन, छर्दि, वान्ति, कै और वॉमिटिंग प्रभृति संज्ञाओं से जाना जाता है।

मूलतः कारण भिन्न-भिन्न होने पर भी वमन होने के लिए आमाशय की मांसपेशियों पर दबाव पड़ना और उनका संकोचन आवश्यक होता है। अतः शिशु वमन की चिकित्सा हेतु हमारा ध्यान इस ओर केन्द्रित रहना चाहिए कि हमारा प्रथम प्रयास यही होना चाहिए कि 'निदान परिवर्जनीयम्' के अनुसार हम उस कारण को दूर करने का प्रयत्न करें जिसके कारण आमाशय उत्तेजित हो रहा हो या हो जाता हो। इस हेतु हेतुविपरीत चिकित्सा क्रम के साथ हमें व्याधि विपरीत चिकित्सार्थ उतनी प्राथमिकता इसी बात को देना चाहिए कि हम उत्तेजित आमाशय को किसी प्रकार शान्त कर सकें। इन दो बिन्दुओं को हमें शिशु वमन चिकित्सा में सदैव स्मरण रखना होगा।

हेतु विपरीत चिकित्सा वर्णन के पूर्व शिशु-वमन के कुछ प्रमुख हेतुओं का वर्णन कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

(१) कभी-कभी शिशु अधिक मात्रा में स्तन-पान कर लेता है या फिर बड़ी शीघ्रता से दूध चूसता है जिससे दूध के साथ उसके आमाशय में अनपेक्षित वायु भी चला जाता है और फलतः आमाशय के आयतन पर अनपेक्षित दबाव पड़ने से वह उत्तेजित हो जाता है और बालक को वमन हो जाती है किन्तु ऐसी वमन चिकित्सा की अपेक्षा नहीं रखती है। ज्यों ही आमाशय कुछ रिक्त हो जाता है, वमन शांत हो जाती है। ऐसी अवस्था में आमाशय को विश्राम दे देना ही पर्याप्त होगा एवं भविष्य में इस प्रकार की पुनरावृत्ति से बचने के लिए माताओं को ध्यान रखना चाहिए कि वे सही भांति से एवं उचित मात्रा में ही शिशु को स्तन पान करायें।

वैद्यवर श्री अग्रवाल अपने क्षेत्र के प्रख्यात चिकित्सक तो हैं ही वैद्यसमाज में भी उनका स्थान सुरक्षित है। आप राजस्थान आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक संघ के जिलाअध्यक्ष पदको भी अलंकृत करते हैं। आपने शिशुओं की वमन और उसकी चिकित्सा नामक इस लेख में व्यावहारिक पक्ष को एक सिद्ध चिकित्सक की हैसियत से प्रस्तुत किया है कई अच्छे योगों को भी दिया गया है जिससे लेख उत्तमकोटि का बन गया है।

—म० मो० बरोर

शिशु वमन का अन्य हेतु होता है—माता का दूध दूषित होना। जब स्वस्थ शिशु स्तनपानोपरान्त बार-बार वमन करता दिखाई पड़े तो माता का स्तनपान कराना बन्द कर देना उचित होगा जब मातृस्तन्य में अम्लता बढ़ जाती है तब ऐसा होता है; अतः आयुर्वेद के स्तन्य शुद्धिकर-योग माता को देने चाहिए। मातृस्तन्य के अभाव में बालक को बकरी या गाय का दूध दिया जाना चाहिए। अगर डिब्बे का दूध दिया जाये तो यदा कदा नारंगी या नींबू-रस की कुछ बूंदें शिशु को पानी में मिलाकर पिलाते रहें। ऊपर का दूध देते समय या अशुद्ध मातृस्तन्य पान के साथ निम्न आयुर्वेदीय सुधाकल्प देने से दोष निवारण हो जाता है।

कली चूना	२ तोला	या	२० ग्राम
मिश्री	४ तोला	या	४० ग्राम
जल	३० तोला	या	३०० ग्राम

विधि—उपरोक्त तीनों द्रव्यों को मिलाकर घोल दें। चूना नीचे बैठ जाने पर साफ जल को नितार लें।

मात्रा—३ मास के बच्चे को ५ से १० बूंद।

१ वर्ष तक २० से २५ बूंद, ३ वर्ष तक ४० से ५० बूंद, कल्प दूध मिलाकर पिलावें।

उपयोग—इस अर्क के सेवन से आमाशय रस की विकृति से उत्पन्न बालकों के अपचन, दूध फेंकना, उदर पीड़ा, जुकाम, मन्दाग्नि, कब्ज आदि रोग दूर होकर वे नीरोग और बलवान होजाते हैं। यह योग 'धन्वन्तरि' में प्रकाशित हुआ था और बाजार में मिलने वाले अनेक सुधा कल्पों से उपयोगी और सस्ता है। जब बालक को गाय का दूध दिया जाय तो यह योग साथ में जरूर दिया जाये ताकि गोदुग्ध की अम्लता को यह क्षारीयता में परिणित कर सकेगा। स्मरण रहे दूध और रक्त में अम्लता बढ़ जाना आमाशयिक प्रदाह का कारण बनता है और आमाशयिक प्रदाह वमन का हेतु हैं।

बालकों की छर्दि के हेतुवों में आमाशय प्रदाह के अतिरिक्त तीक्ष्ण आशुकारी ज्वर, आमाशय-अन्त्रप्रदाह-रक्त की अम्लता की प्राप्ति (Acidosis) एवं परिवर्तित वमन भी उल्लेखनीय है। बालकों की काली खांसी (हूपिंग कफ) में भी उपद्रव रूप से बाल छर्दि होती है।

अब नीचे कुछ छर्दिनाशक शास्त्रीय योग दिये जाते हैं।

(१) बाल संजीवन रस—

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, जायफल, जावित्री और लौंग सब द्रव्य समान भाग लेकर पहले पारद, गंधक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को पीस कर मिलाकर आधा-आधा रत्ती की गोलियां बनालें।

मात्रा—१ से २ गोली तक। अनुपान—माता का दूध या शहद।

(२) बालार्क गुटिका—

शुद्ध खर्पर, प्रवाल भस्म, शृंग भस्म, शुद्ध सिंगरफ, सोहागे का फूला, सफेद मिर्च, कचूर और केशर इन ८ औषधियों को समभाग मिला जल में खरल कर आध-आध रत्ती की गोलियां बनालें।

अनुपान—माता का दूध या शहद।

मात्रा—१-१ गोली दिन में २ बार।

(३) बाल चतुर्थी या बालचातुर्भद्र चूर्ण—

नागरमोथा, पिप्पली, अतीस (मीठा) और कांकड़ा सिंगी, ये चारों द्रव्य समान भाग वस्त्रपूत चूर्ण बनालें।

मात्रा—१ से २ रत्ती अनुपान शहद।

उपरोक्त तीनों योग बालक की अनेक व्याधियों में लाभप्रद हैं। अगर ये शास्त्रीय योग आप बना नहीं सकें तो धन्वन्तरि कार्यालय या अन्य विश्वस्त फार्मेसी से खरीद लेने चाहिए।

अब नीचे शिशु वमन नाशक कुछ सरल योग लिखे जा रहे हैं।

(१) नागकेशर, इलायची, दालचीनी और तेजपात चारों समभाग का चूर्ण। मात्रा २ से ६ रत्ती तक अनुपान मधु।

(२) आम की मिंगी, सेंधानमक, धान की खील (चावलों की परवल) तीनों द्रव्य समभाग का चूर्ण २ रत्ती की मात्रा में मधु के अनुपान से चटाने से बालकों का दूध फेंकना बन्द होता है।

आम की मींगी से यहां आमकी गुठली का भीतरी भाग से है।

(३) अकेले मीठे अतीस का चूर्ण भी लाभप्रद है।

(४) पुनरावर्तक वान्ति होने पर शक्कर एवं श्वेत सर्जिक्षार (Soda Bi Carb) मिलाकर पानी से देना चाहिए।

★★

शारीर स्थान २।२६"

दिन में सोने से बच्चा निद्रालु, अञ्जन करने से अन्धा रोने से विकृति दृष्टि वाला, स्नान या उवटन करने से दुःखी तैल मर्दन करने से कुष्ठी, नखों को काटने से कुनखी, दौड़ने से बच्चा चंचल होता है। हंसने से दांत, ओष्ठ, तालु और जिह्वा ये सब श्याव होते हैं। अधिक बोलने से वकवादी, उच्च शब्द सुनने से वधिर, केशसंमार्जन से गंजा, वायु सेवन और परिश्रम से गर्भस्थित वालक उन्मत्त होता है। अतः ये कर्म छोड़ दे।

उपरिनिर्दिष्ट वातों से गर्भ पर ऐसा प्रभाव पड़ता है, तो मिट्टी खाने से क्यों न गर्भ पर उस का प्रभाव पड़ेगा और भी देखो-छान्दोग्योपनिषद् में कहा है:—

'आहार शुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।'

अर्थात् शुद्ध आहार से अन्तःकरण की शुद्धि बलपुरुषार्थ आरोग्य और वुद्धि की प्राप्ति होती है।

इस लिए माता को चाहिए कि वह अपनी सन्तान को योग्य वनाने हेतु मिट्टी आदि हानिप्रद पदार्थ न खाए। जो माता अपने आहार-विहार को ठीक रखती है, उनकी सन्तति भी कुकर्मरहित होगी।

लक्षण

१. अपचन-मिट्टी पचती नहीं हैं। स्रोतों का अवरोध कर देती है। पाचकरस का शोषण कर रूक्षता उत्पन्न कर देती है।

२. पाण्डुत्व-वालक का वर्ण, त्वचा नेत्र पीताभ हो जाते हैं।

३. रक्ताल्पता-मिट्टी में रक्तवर्धक शक्ति कहां? वालक का वर्ण मेंढक जैसा हो जाता है।

४. उदर-उदर वृद्धि, पेट वढ़ा हुआ, फूला हुआ, पेट पर नीली पीली नसें उभर आती हैं।

५. जिह्वा-जीभ मलावृत रहती है। चिकनी मिट्टी की परत सी जिह्वा पर जम जाती है।

६. शरीर-दुवला पतला कृश हो जाता है।

७. मुखाकृति-मृत्तिकाभक्षण करने वाले वालक का मुख मुद्राविहीन-पीताभ और उभरा हुआ होता है। भ्रूप्रदेश सूजा हुआ दिखाई पड़ता है।

८. नेत्र—पीताभ, गंदले से, नेत्रों के नीचे का स्थान तथा भ्रू फूले से-सूजे से दिखाई देते हैं।

९. पुरीष-अनियमित कभी अतिसार तो कभी कोष्ठ-वद्धता हो जाती है। कभी टट्टी में मिट्टी आती है।

१०. रोग—रक्ताल्पता, पाण्डु (मृत्तिकाभक्षणजन्य) अपचन, आध्मान, नक्तान्ध कृमिरोग इत्यादि।

११. सोते में चौंकना।

१२. स्वभाव में चिड़चिड़ापन।

विशिष्ट मन्तव्य—मिट्टी खाने से वातादिक दोष कुपित हो जाते हैं। कपैली मिट्टी खाने से वात, खारी मिट्टी खाने से पित्त और मधुर मिट्टी खाने से कफ कुपित होता है।

मिट्टी से पीलिया (पाण्डु) हो जाता है। नेत्र, गाल, भौं, पैर, नाभि तथा लिंग में शोथ आ जाता है। पेट में कृमि पड़ जाते हैं।

चिकित्सा सिद्धान्त

१—मृद्भक्षणादातुरस्य लौल्यादविनिर्वतिनः।
द्रव्यं भावितां कामं दद्यात्तद्दोषनाशनैः॥ (चरके)

अर्थात् यदि रुग्ण लोभवश मिट्टी खाने की आदत को न छोड़े तो उस आदत को छुड़वाने के लिए मिट्टी के दोष को नष्ट करने वाले द्रव्यों से मिट्टी को यथेच्छ भावना देकर खाने को दें।

२—निपातयेच्छरीरस्तु मृत्तिकां भक्षितां भिषक्।
युक्तिज्ञः शोधनैस्तीक्ष्णैः प्रसमीक्ष्य बलाबलम्॥ (चरके)

अर्थात् मृत्तिका रोगी के बलावल का विचार कर तीक्ष्ण संशोधन (वमन विरेचन) के द्वारा खाई हुई मिट्टी को शरीर से वाहर निकाले।

३—पाचन विकार दूर करने का यत्न करें।

४—मिट्टी खाने की आदत को छुड़वाने का प्रयत्न करें।

५—वालक को मिट्टी के स्थान पर न खेलने दें। स्थान का परिवर्तन कराएं।

६—कभी-कभी वालक धमकाने से भी मिट्टी छोड़ देता है।

७—क्षारीय पाचन दें।

८ प्रायः मिट्टी खाने वाले वालकों के उदर में चुरने चुन्ने सूत्रकृमि एवं गण्डूपद कृमि या केंचुए पड़ जाते

हैं। क्रमिरोग के लक्षण उपद्रव और चिकित्सा एक स्वतन्त्र विषय है जिसे स्थानाभाव से यहां अधिक नहीं दिया जा रहा। इस विषय पर एक स्वतन्त्र लेख आगे दिया जारहा है।

औषधि व्यवस्था

१—विडंगैलातिविषया निम्बपत्रेण पाठया।
वार्ताकैः कटुरोहिण्या कौटजैर्मूर्वयाऽपि वा॥ (चरक)
वायविडङ्ग,एला,अतीस,नीम की पत्ती,पाठा,बड़ी कण्टवारी, कुटकी इन्द्रयव और मूर्वा इनमें से किसी एक अथवा दो तीन मिलित द्रव्यों से भावित की हुई मिट्टी खाने के लिए देना चाहिए।

२—मिट्टी खाने वाले बच्चे बलहीन होते हैं, अतः वे तीक्ष्ण संशोधन के योग्य नहीं होते, इसलिए मृदु विरेचन का प्रयोग ही उत्तम कार्य कर जाता है।

मृदु विरेचन चूर्ण -
शुद्ध गन्धक २ भाग, शुद्ध मुर्दासंग २ भाग, छोटी इलायची १ भाग, सोया ३ भाग ले यथाविधि चूर्ण बनालें।
मात्रा—बलानुसार १ से ४ रत्ती तक।
अनुपान—गरम दुग्ध। दिन में ३ बार दें। पांच दिन तक देने से पेट साफ हो जाता है।

३—इस प्रयोग के सेवन से कदाचित् पेट साफ न हो तो कुटकी चूर्ण ६० ग्राम ले पानी के संयोग से कल्क बनाएं। फिर इसमें एरण्डस्नेह डाल गरम कर सुखोष्ण लेप पेट पर दिन में ३ बार करें। इस से पेट साफ होगा।

४—विषस्य विषमौषधम्–मिट्टी की मिट्टी ही औषधि है। केशर, मुलहठी, पीपल छोटी, निशोथ श्वेत चारों समान भाग लेकर यवकुट कर क्वाथ विधि से काढ़ा बना लें। इस क्वाथ में चिकनी मिट्टी की डली भिगोकर सुखा लें। इस प्रकार पांच बार भावना दें। पीछे इस मिट्टी को बालक को खिलाएं। इससे खाई हुई मिट्टी निकल जायगी। बालक को मिट्टी से घृणा हो जायगी।

५—पका केला मधु में मिलाकर खिलाने से मिट्टी पेट से निकल जाती है।

(पृष्ठ २४६ का शेषांश)

भूति होती है, प्रति सप्ताह भारवृद्धि होती है तो दुग्ध मात्रा ठीक और बालक स्वस्थ मानना चाहिए।

त–अधिक स्तनपान लक्षण—

१. उन्नत उदरवृत्त २. अत्यधिक रुदन ३. छर्दि ४. अतिसार ५. अजीर्ण ६. यकृत् वृद्धि आदि।

द.–हीन स्तनपान लक्षण—

१. मुख चर्वण द्वारा वायु प्रचूषण करना।
२. छर्दि अतिसार और अपोषण होता है।
३. पुरीष कठिन अत्यल्प सपित्त सश्लेष्म होता है।
४. शिशु का भार योग्य प्रमाण में नहीं होता।

उपसंहार—उपरोक्त अध्ययन से यह देखा गया है कि आदर्श विधिपूर्वक यदि शिशु को स्तनपान न कराया जाय तो पूर्ववर्णित अतिपोषण या हीनपोषण प्रकार की शिशु की स्थिति होती है यह दोनों स्थितियां अनेक रोगों का कारण बनती हैं। अतिपोषण महाव्याधियों का मूल कारण है, जो परिणाम में मृत्युकारक सिद्ध हो सकता है। आदर्श स्तनपान द्वारा ही शिशु का स्वास्थ्य उत्तम हो सकता है। इस सम्बन्ध में भावी माताओं का सुशिक्षित एवं सुज्ञात होना अत्यावश्यक है, जिससे कि उनकी पली हुई सन्तान स्वतन्त्र भारत का कर्णधार बन सके और देश के विकास में उपयुक्त योगदान दे सके। इस सम्बन्ध में भारत सरकार को उचित ध्यान देकर शिक्षण नियमावली में इस विषय का समुचित स्थान देना चाहिये।

आभार प्रदर्शन—लेखिका डॉ. पी. एन. चतुर्वेदी डी. ए. वाई. एम. प्रभारी अधिकारी, प्रादेशिक अनुसन्धान केन्द्र (आयु.) जोगिन्दरनगर की आभारी है जिनके उचित मार्ग दर्शन से यह लेख सम्पन्न हुआ।

धात्री लोह

आमला, लोहभस्म, त्रिकटु, हल्दी इनको समभाग लेकर मधु, घृत और मिश्री से बालक को चटाने से उसके पाण्डु और कामला रोग नष्ट हो जाते हैं। भै. र.

वैद्यवर्य श्री मुन्नालाल गुप्त, ५८।६८ नीलवाली गली, कानपुर

आयुर्वेद के प्रत्यक्षकर्मी चिकित्सक श्री गुप्त जी का कानपुर वैद्य समाज में अपना एक उच्च स्थान है। वे अपने को राजनयिक वैद्यों की श्रेणी से अलग रखते हुए सच्ची निष्ठा से आयुर्वेद सेवा में संलग्न रहते हैं। धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ से उनका सम्बन्ध पीढ़ियों पुराना है। स्वर्गीय श्री देवीशरण जी उन्हें अपना अग्रज मानते रहे हैं पिता जी से सन् १९२३ से ही वे सम्पर्क में आये हैं। बाद में प्राणाचार्य श्री बांकेलाल गुप्त जी के भी वे निकट सम्पर्क में रह चुके हैं। आपने इस विशेषांक के लिए दो लेख भेजे हैं जिनमें पहला इस उपखण्ड में दिया जा रहा है और दूसरा अनुभव खंड को अलंकृत करेगा। श्री गुप्त जी आयुर्वेद के प्रौढ़ विद्वान् हैं यह उनके इस लेख से सुस्पष्ट है। प्राचीन वैद्य परम्परा का निर्वाह करने वाले जो इने-गिने सुवैद्य आज दृष्टिगोचर हो रहे हैं उन्हीं में श्री गुप्त जी भी हैं। आशा है वैद्यसमाज उनके द्वारा लिखित और अनुभव में आये वाक्यों का समुचित आदर और यथार्थ उपयोग कर धन्य बनेगा। - गो० ग० गर्ग

ग्रहणीरोग, अतीसार के पश्चात् या ग्रहणी स्थान की विकृति तथा उससे निसृत रस की कमी से उत्पन्न रोग है जिसका विस्तृत विवेचन न लिखकर चिकित्सा ही लिखी जाती है।

शास्त्रीय सम्मति है कि-

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्।
अतीसारोक्त विधिना तस्यामं च विपाचयेत्॥
दोषंसामं निरामं च विद्यात्तत्रातिसारवत्।
लंघनैर्दीपनीयैश्च तथाऽतीसारभैषजैः॥

अर्थात्—ग्रहणी स्थित दोषों की चिकित्सा अजीर्णवत् करें, जैसे लंघन, दीपन और अतीसारवत् औषधियों के करने का यत्न करें। अतीसार के सदृश दोषों का साम और निरामता जाननी चाहिए। तत्पश्चात्-

पेयादि पञ्चलवणं पंचकोलादिभिर्युतम्।
दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यांसम्प्रयोजयेत्॥

अर्थात्— पेया आदि हलके अन्नों करके और पंचकोलादि करके पाचन करें एवं ग्रहणी में अग्निदीपन औषध दें तथा तक्र का पान करावें।

किन्तु कुछ रोग व रोगी ऐसे होते है जिनकी चिकित्सा में आम का पाचन का इन्तजार न करके स्तम्भन आवश्यक होता है। यथा —

दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यार्शो भगन्दरान्।
शोथपाण्डवामयप्लीहगुल्ममेहोदरज्वरान्॥
डिम्भस्थः स्थविरस्थश्चवातपित्तात्मकश्च यः।
क्षीणधातुबलस्यापि बहुदोषोऽतिविश्रुतः॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत्॥

बालकों के ग्रहणी रोग में निम्न सामान्य उपचार उपयोग में लाना हितकर है जब रोग इन उपचारों से निर्मूल न हो तब रस पर्पटी, पंचामृत पर्पटी, लौहपर्पटी इत्यादि का यथा आवश्यक उपयोग करें।

इसमें पूर्व रोगी बालक की ठीक से परीक्षा कर रोग का निर्णय करना चाहिए। रोगी के मल का रङ्ग, घनता, मल में किसी प्रकार की दुर्गन्धता की विद्यमानता अथवा अभाव, मल की प्रतिक्रिया तथा मल कितनी बार निस्सृत होता है, उसमें क्या-क्या वस्तु निस्सृत होती है इनके जानने से निदान में सहायता मिलती है। माता के दूध की खराबी से या रोगी बालक के खान-पान से क्या विकृति उत्पन्न हुई है, इसका निर्णय आवश्यक होता है, जिससे उसे पृथक् रहने का निर्देश किया जा सके।

इसके अतिरिक्त यह भी जान लेना परमावश्यक है कि रोगी बालक का रोग स्वतन्त्र है या परतन्त्र यानि दूसरी व्याधि में उत्पन्न संसर्ग दोष।

बच्चों के बारम्बार, थोड़ा-थोड़ा गांठदार और शूल के साथ मल निकलने की दशा में दोषों को बाहर निकलने की आवश्यकता का अनुभव जान, अभयामलकी कल्क, पंचसकार या कुटकी भिगोकर निकाले गर्म जल की उचित मात्रा देना हितकर होता है।

माता के पित्तदुष्टस्तन्य निरन्तर पान करते रहने से बालकों में फटे-फटे दस्तों का आना, शरीर का उष्ण रहना, प्यास की अधिकता, स्वेदाधिक्य, देह पाण्डुवर्ण होना इत्यादि लक्षणों में माता के दूध के शोधन की परमावश्यकता है इसके लिए—

देवदारु, पाठा, शुण्ठी, मुस्तक, मूर्वा, गुर्च, इन्द्र जौ, चिरायता और कुटकी इन सबका चूर्ण १ तोला लेकर, क्वाथ कर पिलावें। यदि बालक को यकृत् विकार से अतीसार हो तो यकृत् रोग की चिकित्सा करना परमावश्यक है।

बालयकृतादि लौह, प्रवालपंचामृत, कपर्दभस्म, शंखभस्म इत्यादि का उपयोग करना होता है।

दन्तोद्भव काल में भी बच्चों को अतीसार हो जाता है उस समय—

चूने का निथरा जल, या लवंग, जायफल, टंकणभस्म, जीरक समभाग ४-४ रत्ती की मात्रा में मधु में दें या माता के स्तन पर लेपकर दें, जिससे दूध पीता बच्चा उसे सेवन कर सके। टंकण भस्म मधु में मिलाकर बच्चे मसूड़ों पर मलें।

आनुवंशिक रोग में भी अतीसार होता है। ऐसी अवस्था में मातृकंटक की चिकित्सा परमावश्यक है।

काश्यप-संहिता में कथित फक्क रोग में भी अतीसार होता है उसमें भी फक्क रोग की चिकित्सा करना परमकर्त्तव्य है।

यहां गंधक रस और एलादिचूर्ण (योगरत्नाकरोक्त) मिश्रित कर दें।

आंत्रिक ज्वर, संक्रामक रोगों में अतीसार होता है अतः प्रथम मूलरोग की चिकित्सा के साथ ही अतीसार की चिकित्सा करनी चाहिए।

योग चतुष्टय

(१) धनियां, नागरमोथा का क्वाथ

(२) नेत्रवाला, सोंठ, नागरमोथा, पित्तपापड़ा का क्वाथ

(३) नागरमोथा, नेत्रवाला का क्वाथ

(४) कुड़े की छाल, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला का क्वाथ यथा आवश्यक समझकर प्रयोग करें।

मुक्ताभस्म के उपयोग से भी अतीसार में अप्रतिम लाभ होता है। आवश्यक समझें तो मुक्ताभस्म, भीमसेनी कपूर, जायफल के साथ दें।

निम्न प्रयोग भी ग्रहणी रोग में उपयोगी हैं—

(१) अजवाइन, सफेद जीरा, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल छोटी, कुड़े की छाल और सोंठ इस योग में दो भाग सोंठ है। चूर्ण कर शहद से दें।

(२) पीपल, सोंठ के चूर्ण में सूक्ष्म मात्रा में नमक मिलाकर शहद से दें।

(३) सोंठ, पीपल, बेलगिरी, कुड़े की छाल और अजवाइन इनके चूर्ण को जरा से घी का मोयन देकर शहद से चटावें।

(४) सोंठ, नागरमोथा, बेलगिरी, निशत्र, धीरशाकुल, हरड़ इनका चूर्ण बाल ग्रहणी रोगी को शहद से चटावें।

(५) सोंठ, बिल्व का चूर्ण गुड़ में मिलाकर दें।

(६) नागरमोथा, लोध, बिल्व इन्द्र जौ इनका चूर्ण शहद से दें।

बालकों में गुदभ्रंश तथा सफल उपचार

आयुर्वेद शास्त्राचार्य श्री पं. बालकराम शुक्ल
ऋषिकेश, देहरादून

गुदभ्रंश (Prolapsus Recti)

निदान-लक्षण–जो बालक रूक्ष प्रकृति वाला और दुर्बल होता है यदि वह मल त्याग करने के समय अधिक प्रवाहण करता है, अथवा जो बालक चिरकाल तक अतिसार, प्रवाहिका (डिसेन्ट्री) से पीड़ित रहता है, जिस बालक का गुदद्वार, और गुदप्रदेश की मांस पेशियां दुर्बल हो जाती हैं तथा, रोमान्तिका (मीजल्स), कूकुर खांसी (हूपिकफ) प्रभृत कारणों से परिगुदवातु, अथवा गुदकौकुन्दर वात, स्नेहभाग के शोषित हो जाने से रूक्षता उत्पन्न हो जाती है। उस उत्पन्न रूक्षता के कारण भी गुदभ्रंश हो जाता है। यह गुदभ्रंश, पूर्ण और अपूर्ण रूप से दो प्रकार का होता है। अपूर्ण में केवल मलाशय की श्लैष्मिककला का कुछ भाग गुदद्वार से वाहर निकल आता है परन्तु यदि यह अवस्था वरावर रहती है। तव पूर्ण गुदभ्रंश हो जाता है। तव मलाशयप्राचीर का दश इंच तक भाग वाहर निकल आता है। जिससे क्षुद्रान्त्र का भाग भी दिखलाई देता है। यदि गुदद्वार इस समय संकुचित हो जाता है तो उस समय आन्त्रावरोध हो सकता है।

प्रवाहणातीसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं वहिः।
रूक्षदुर्वलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत्॥

चिकित्सा

गुदभ्रंश की अवस्था में सवसे प्रथम स्थानिक प्रक्षेप के कारण, यथा, चिरकालिक विवन्ध, अर्श कृमिरोग, सन्निरुद्धगुद, प्रभृति को नष्ट करे और यदि मांस पेशियों की दुर्वलता के कारण गुदभ्रंश हो, तो उसका प्रतिकार करे।

स्वेदन

वालकों को गुदभ्रंश होने पर उसको साफ कर गुदा का स्वेदन करके फिर नारायणतेल की मालिश करके हाथ के वल के सहारे गुदा को अन्दर प्रवेश कर देवें। फिर एक पत्थर गरम करके उससे गुदा पर सेक करें। ऊपर से चमड़े या रवड़ का छेददार टुकड़ा लेकर उसके दोनों तरफ पट्टी वांध देवें। इसको गुदा पर रखकर गोफणवन्धन लगा देवें। इसको गुदा पर ऐसे वांधें जिससे छिद्र गुदद्वार पर ठीक आजावे तथा गुदद्वार इससे रुका रहे और अपानवायु का अनुलोमन करने के लिये गुदा का वार-वार स्वेदन करता रहे। तथा—कमलिनी के पत्ते पीसकर चीनी मिलाकर खिलावें तथा, इमली, चित्रक; चांगेरी, वेलगिरी, पाठा, और यवक्षार को समान मात्रा में लेकर चूर्ण वना लेवें। वालक की अवस्था के अनुसार चूर्ण की मात्रा तक्र के साथ देवें। इससे अग्नि दीप्त होकर मलत्याग आसानी से हो जाता है।

चाङ्गेरीघृत

चांगेरी (चूका) का रस सवासेर, शुण्कमूली का क्वाथ सवासेर, दही का पानी सवासेर, सोंठ, यवक्षार २॥-२॥ तोला, गोघृत ६ छटांक लेवें। पहले शुण्ठी को पीसकर कल्क वना लेवें। फिर उसमें जवाखार मिलाकर सवको मिलाकर घृतपाक विधि से घृत पकावें इस घृत को मात्रा से वालक को सेवन करावें। इससे गुदभ्रंश अच्छा होता है।

वाह्य प्रयोग—पुरानी चलनी का चमड़ा जलाकर भस्म वना लेवें। उसको जल में मिलाकर गुदा के चारों तरफ लेप करें। इससे लाभ होता है। तथा, आम, जामुन, की छाल और पत्तों के क्वाथ से गुदा पर सेचन करने से लाभ होता है।

विद्युत्चिकित्सा

इस चिकित्सा के द्वारा गुदा, और मूत्रेन्द्रिय के मध्य की पेशियों में संकोचनशीलता आती है। इससे गुदभ्रंश अच्छा होता है। जिस भांति वालक में रूक्षता का अभाव होता जाता है और स्निग्धता उत्पन्न हो जाती है वैसे ही गुदभ्रंश रुक जाता है। अतः वालकों में शस्त्रोपचार (आपरेशन) का प्रयोजन नहीं रहता है। ★

शल्यतन्त्रविद् डा० कविरत्न शर्मा ए.बी. एम. एस., डी. ए-वाई. एम., पी-एच. डी,
लैक्चरर-शल्यशालाक्य विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा-विज्ञान संस्थान के प्रजापतियों द्वारा जो नये अवे तैयार किए गये हैं उनमें जिन परिपक्व, मनोमुग्धकारी छविधारी घटों का सप्राण निर्माण हुआ है वह गौड़-चौधरी-उपाध्याय-प्रियव्रत-देशपाण्डे-शुक्ल गुरुघटपरम्परा का केवल नवीनोकरण मात्र ही न होकर एक स्वतन्त्र- सत्तात्मक ओजयुक्त पुष्ट और सबल परम्परा का नूतन रूप निखर कर आया है जिस पर कोई भी संस्थान और विश्वविद्यालय गर्व कर सकता है। दिवोदास की परम्परा मुखरित हो उठी है।

हमारे उपर्युक्त लेख के लेखक डाक्टर कविरत्न उसी परम्परा प्रसूत पादप के सुरभिसिक्त प्रसून हैं। जिनकी मंजुल मूर्ति, हृदयहारिणी चितवन और शल्यकर्मविद्या में सिद्धहस्तता की झलक ठग लेती है। उनका सर सुन्दरलाल अस्पताल का कक्ष और साधना की झांकी मैं कर चुका हूं अपने कष्ट निवारण के लिए जाने के कारण और स्वस्थ होने तक जाते रहने से। उनका लेख कपोल कल्पना नहीं है इस विषय में किए गये कविरत्न के अनवरत अध्यवसाय का वह सच्चा प्रतीक है बालकों में क्षारसूत्र चिकित्सा की उपादेयता उन्होंने ठीक ही सिद्ध की है। —रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

भगन्दर एक ऐसा रोग है जिसकी चिकित्सा अत्यन्त दुरूह है। सुश्रुत आदि प्राचीन आचार्यो ने इसे 'महागद' एवं 'घोर व्याधि' की संज्ञा दी है तथा इसे कष्टसाध्य एवं असाध्य माना है। यह बात विचारणीय है कि किसी भी आचार्य ने भगन्दर को 'साध्य' व्याधियों में नहीं गिनाया परन्तु सभी ने विस्तृत रूप से इसकी चिकित्सा का निर्देश किया है। चिकित्सा साधनों में भेषज, अग्नि, शस्त्र एवं क्षार का विविध रूपों में प्रयोग किया गया

है। यहां पर यह बतला देना असंगत न होगा कि भगन्दर 'याप्य' व्याधि नहीं है जो कि चिकित्सा करने तक दबी रहे तथा छोड़ देने पर पुनः उग्ररूप धारण करे। इसकी चिकित्सा के दो ही परिणाम होते हैं-या तो रोगी व्याधि-मुक्त हो जाता है अथवा उपद्रवों से युक्त होकर और भी कष्टमय जीवन बिताता है। अत एव भगन्दर की चिकित्सा में उचित समय पर उचित साधनों का ही प्रयोग करना चाहिए। अन्यथा चिकित्सा निरापद न होगी। यह बात ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक विज्ञान में भी जबकि शस्त्रकर्म चरमोत्कर्ष पर है, भगन्दर (फिश्चुला-इन-एनो) की चिकित्सा निरापद नहीं समझी जाती तथा प्रत्येक शल्यविद् इसका आपरेशन करने से कतराता है।

ऐसी घोर व्याधि यदि शिशुओं में हो जाए तो चिकित्सक के लिए विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है क्योंकि इसकी चिकित्सा में सभी तीक्ष्ण एवं कष्टप्रद विधियों का प्रयोग है जिनका कि शिशुओं में निषेध किया गया है। शस्त्रकर्म, क्षारकर्म तथा अग्निकर्म जैसे कठिन उपचारों को शिशु सहन करने में असमर्थ होता है। अत-एव ये जघन्य उपचार शिशुओं में करना सम्भव नहीं है। भगन्दर-चिकित्सा के प्रकरण में आचार्य सुश्रुत ने स्पष्ट शब्दों में संकेत किया है कि शिशुओं में भगन्दर होने पर विरेचन, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म तथा क्षारकर्म नहीं करने चाहिए। इनके स्थानों पर मृदु परन्तु तीक्ष्ण साधनों का सहारा लेना चाहिए।

> बहिरन्तर्मुखश्चापि शिशोर्यस्य भगन्दरः।
> तस्याहितं विरेकाग्निशस्त्र-क्षारावचारणम् ॥
> यद्यन्मृदु च तीक्ष्णं च तत्तत्तस्यावचारयेत्।
>
> सु० सू० ८/२८,२९

परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यदि ये सभी उपचार शिशुओं में वर्जित हैं तो फिर उनमें भगन्दर-चिकित्सा के और क्या उपाय हैं? वस्तुतः भगन्दर की चिकित्सा इन चारों उपायों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यहां पर यह बतला देना समीचीन होगा कि भगन्दर के लिए जिन भेषज-योगों का वर्णन किया गया है वे भी उग्र तथा क्षार-गुण-धर्म से युक्त हैं। "छेदन तथा लेखन ही भगन्दर की चिकित्सा है।" अत एव इसमें प्रयुक्त होने वाले भेषज भी उतने ही उग्र होते हैं जितने कि शस्त्र। इसके अति-रिक्त केवल भेषज से अभीप्सित छेदन-लेखन नहीं हो सकता। इसीलिए सुश्रुत ने मृदु परन्तु तीक्ष्ण उपायों की ओर संकेत किया है। ये उपाय क्या हैं? ये उपाय इन्हीं चारों में से हैं जो कि शनैः शनैः करने पर मृदु तथा अपने गुण के कारण तीक्ष्ण होते हैं। यहां पर यह स्मरण रखना चाहिए कि सुश्रुत का उपर्युक्त वाक्य भगन्दर-चिकित्सा के सम्बन्ध में है। अत एव इसमें वर्णित क्षार तथा अग्निकर्म भी इसी अध्याय से सम्बन्धित हैं। सुश्रुत संहिता में भगन्दर-चिकित्सा-प्रकरण में अग्नि तथा क्षार का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं बतलाया गया है। अपि तु शस्त्रकर्म के साथ ही अग्निकर्म अथवा क्षार-पातन का विधान है। परन्तु क्षार का प्रयोग क्षारसूत्र के रूप में अन्यत्र वर्णित है जो कि भगन्दर की स्वतन्त्र चिकित्सा है। इसलिए इस प्रसंग में जो क्षारकर्म का निषेध किया गया है वह शस्त्रकर्म के साथ प्रयुक्त क्षारकर्म ही समझना चाहिए। शस्त्र प्रयोग के उपरान्त क्षार प्रयोग घाव पर नमक छिड़कने के बरा-बर है जो कि अत्यन्त कष्टप्रद है और शिशुओं में इसका प्रयोग सर्वथा असंगत है। इसके अतिरिक्त शस्त्रकर्म भी शिशुओं में वर्जित है। अतः उसके साथ प्रयुक्त क्षार तथा अग्नि का भी निषेध किया गया है।

भगन्दर गुद-प्रदेश का रोग है जो कि स्वयं एक मर्म है। अतएव गुद प्रदेश में शस्त्र आदि का अवचारण सावधानी से करना चाहिए। क्षारकर्म भी एक कठोर कर्म है, परन्तु शस्त्रकर्म की अपेक्षा मृदु है। क्षारकर्म में भी, क्षार पतन की अपेक्षा क्षारसूत्र मृदु है क्योंकि इसका प्रभाव शनैः शनैः दीर्घकाल तक होता है। आचार्य सुश्रुत ने क्षारसूत्र का निर्देश मुख्यतः दुर्बल, भीरु तथा कृश व्यक्तियों में किया है। मर्मस्थलों में भी जहां कि शस्त्र का प्रयोग निषिद्ध है, क्षारसूत्र का प्रयोग विहित है—

> कृशदुर्बलभीरूणां नाड़ी मर्माश्रिता च या।
> क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न तु शस्त्रेण बुद्धिमान् ॥
>
> — सु० चि० १७/२९

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षारसूत्र का प्रयोग मृदुकर्म है तथा मृदु एवं तीक्ष्ण होने के कारण शिशुओं में प्रयुक्त किया जा सकता है। जो विकार तीक्ष्ण उपायों से

ही साध्य होते हैं तथा वे दुर्बल मनुष्यों में उत्पन्न हो जाते हैं वहां पर चिकित्सा कर्म को मृदु बनाकर उपयोग करना चाहिए। यद्यपि क्षार एवं अग्नि का बालक तथा वृद्ध पुरुषों में निषेध है तथापि आवश्यकता होने पर इन्हें मृदु बनाकर प्रयोग किया जा सकता है—

अग्निक्षार विरेकैस्तु बाल वृद्धौ विवर्जयेत्।
तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्यात् क्रिया शनैः।।

सु० सू० ३५/३२

इस मत से भी क्षारसूत्र का प्रयोग शिशुओं में शास्त्र संगत ही है। क्षार की गणना अनुशस्त्रों में की गई है। क्षारसूत्र के भी कार्य छेदन लेखनादि ही हैं। अतः क्षारसूत्र भी एक प्रकार का अनुशस्त्र है जो कि शस्त्रों का कार्य शनैः शनैः करता है। अनुशस्त्रों के उपयोगों की तीन अवस्थाएं आचार्य सुश्रुत ने बतलाई हैं। उनमें सर्व प्रथम शिशुओं में अनुशस्त्र का प्रयोग है—

शिशूनां शस्त्र भीरूणां शस्त्राभावे च योजयेत्।

सु० सू० ८/१६

इस कारण से भी क्षारसूत्र शिशुओं में भगन्दर की उपयुक्त चिकित्सा है। इन सभी बातों के अतिरिक्त अनुभव के आधार पर भी शिशुओं में क्षारसूत्र सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है। यह आरम्भ में ही बतला दिया है कि भगन्दर की चिकित्सा आधुनिक शल्यशास्त्र में भी अत्यन्त कठिन मानी गई है। भगन्दर-गति का सम्पूर्ण छेदन करने पर भी इसका पुनर्भाव देखा जाता है। इसका कारण व्रण का धीरे-धीरे भरना है जो कि अन्त में नाड़ी व्रण का रूप धारण कर लेता है। परन्तु यदि व्रण का छेदन भी धीरे हो और इसका रोपण भी धीरे हो तो नाड़ी व्रण बनने की सम्भावना नहीं रहती। यह उद्देश्य क्षारसूत्र द्वारा भली-भांति पूर्ण होता है क्योंकि यह गति को थोड़ा-थोड़ा काटता है तथा जब तक पीछे का घाव भर नहीं जाता, आगे काटने का काम बन्द रहता है। यही कारण है कि शस्त्रकर्म की अपेक्षा क्षारसूत्र द्वारा भगन्दर की चिकित्सा अधिक सफल है। इसमें रोग का पुनर्भाव नहीं पाया जाता। अतः शिशुओं में भी क्षारसूत्र भगन्दर की चिकित्सा का सर्वोत्तम साधन है।

*

बालक को स्वेदन प्रयोग

हस्तस्वेदं च शूलेषु बालकानां विधापयेत्। षड् वर्ष प्रभृतीनां तु पटस्वेदः प्रशस्यते।।

बालकों को यदि किसी कारण शूल हो और उसमें स्वेद की आवश्यकता हो तो उन्हें हाथ से स्वेद देना चाहिये अर्थात् हाथों को गरम करके उनके द्वारा स्वेदन करना चाहिये। तथा ६ वर्ष से अधिक अवस्था वाले बालकों को पटस्वेद (वस्त्र से) देना चाहिये। वस्त्र द्वारा स्वेदन करने में इस बात का पूर्णरूप से ज्ञान नहीं हो सकता है कि बालक को कितना स्वेद दिया जा रहा है ऊष्मा कितनी पहुँच रही है। छोटे बालकों में अधिक स्वेदन नहीं किया जाना चाहिये। इसलिये उनमें हस्तस्वेद का विधान किया गया है। हाथों द्वारा दिये गये स्वेदन को हम पूर्णरूप से नियन्त्रित कर सकते हैं। चार मास तक के बालक के लिये हस्तस्वेद का विधान दिया गया है।

शिशुओं की सामान्य आन्त्रिक व्याधियां

डा० प्रफुल्लभाई बी. दवे बी. ए. एम. एस., एम. बी. बी. ए. इत्यादि जामनगर (गुजरात)

(१) **कोष्ठबद्धता**—इस विषय पर एक स्वतन्त्र लेख की कल्पना मैं कर रहा हूं जो शिशुरोग चिकित्सांक में किसी सुयोग्य लेखक ने लिखा होना चाहिए। मैं इस रोग के विषय में कुछ थोड़े से तथ्य प्रस्तुत कर रहा हूं।

i. जो शिशु मां या धात्री के दूध से ही अपना पोषण पाते हैं वे प्रतिदिन मल त्याग करें यह आवश्यक नहीं दूसरे तीसरे दिन उन्हें झाड़ा (मल) आता है।

ii. कार्बोहाइड्रेटों की कमी, पेय पदार्थों का अभाव और भोजन की कमी ये तीन आहारजन्य कारण हैं जो कब्ज उत्पन्न करते हैं।

iii. क्रेटिनों में चयापचयक्रियाओं की कमी से भी आंत की क्रिया कम होकर कब्ज हो जाता है।

iv. हिर्शस्प्रुङ्ग रोग, मेकाकोलन, सहज पाइलोरिक स्थैर्य आदि आन्त्रिक कारणों से भी कब्ज होती है।

v. कब्ज या कोष्ठबद्धता की चिकित्सा कारण के अनुसार की जानी चाहिए। फलों का रस, गुलकन्द, छोटी हरड़ का चूर्ण, मिल्क आफ मैग्नेशिया में से किसी का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है।

(२) **उदर शूल या आन्त्र कॉलिक**—जब आंतों में तरंगे या पेरिस्टालिसिस बहुत द्रुत गति से या झटके से आने लगती हैं तब उदर शूल होता है। आन्त्रतरंगों के ये झटके कई कारणों से होते हैं इनमें आन्त्रगत अवरोध(इंटेस्टीनल ऑब्स्ट्रक्शन) एक बहुत गम्भीर कारण है जो बहुत कम होता है। पेट में गैस का जमाव और उसे निकल पाने को मार्ग न मिलना दूसरा बड़ा कारण है।

उदरशूल के कारण शिशु चीख उठता है, पैरों को सिकोड़े रहता है और उसे बेचैनी तथा घबराहट बढ़ जाती है। यदि कोई चिकित्सक उसके पेट को छूने या टटोलने की कोशिश करता है तो बच्चा उसका हाथ हटा देता है।

उदरशूल के साथ बच्चे के रुदन से उदर कड़ा पड़ जाता है इस कारण यह ज्ञात नहीं हो पाता कि बच्चे का पेट आन्त्रावरोध के कारण कड़ा है या रोने से, इसके लिए बच्चे को शान्त होने या सोजाने पर तब परीक्षा करनी चाहिए।

उदरशूल होने पर बच्चे का पेट नरम रुई से सेकना या तारपीन तेल चुपड़ कर गर्म पानी से भीगी तौलिया निचोड़ कर सेकना अच्छा रहता है।

उदरशूल के कारणों को भलीभांति जांच कर ही चिकित्सा की जानी चाहिए। सामान्य उदरशूल ऐण्टीस्पाज्मोडिक दवाओं से ठीक हो जाता है। बैरलगन एक ऐसी ही दवा है। उसकी बूंदें देना या गोली पानी में घोल कर देना या सूचीवेध द्वारा उचित मात्रा में बैरलगन पेशी में पहुँचाने से या अन्य उसी प्रकार की औषधि देने से तत्काल लाभ होता है। स्पाज्मिडोन का प्रयोग भी दर्द रोकने के लिए किया जाता है पर उसमें अहिफेन सत्व होने से कब्ज कर सकता है।

आन्त्रावरोध होने पर सर्जन को दिखाना चाहिए।

आयुर्वेद में शंखभस्म और हिंग्वाष्टक चूर्ण आंत की गैस को आसानी से पास कर उदरशूल दूर कर देती हैं।

बच्चे को दूध इस प्रकार पिलाना चाहिए कि दूध के साथ वह बहुत सारी गैस पेट में न पी जाय।

(३) **वमन या वौमिटिंग**—जो बच्चे जल्दी-जल्दी

डा. प्रफुल्लभाई सौराष्ट्र आयुर्वेद समाज के कीर्तिस्तम्भ और सौजन्यमूर्ति श्री बालूभाई वैद्य के सुयोग्य ज्येष्ठ पुत्र हैं। आप एक होनहार नवयुवक और उदीयमान चिकित्सक हैं। आपने जिस योग्यता के साथ इस लेख को पूर्ण किया है उससे कोष्ठ या पचन संस्थान के तीन सामान्य बालरोगों का एक अच्छा परिचय पाठकवर्ग को सहज ही मिल जाता है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

बहुत सा स्तन दुग्ध पी जाते हैं वे प्रायः उलटी करके दूध पटकते रहते हैं। यह स्थिति चिकित्सक द्वारा उतनी ध्यान देने की नहीं जितनी माता द्वारा विचारणीय है। यद्यपि वमन आमाशय क्षोभजन्य व्याधि है फिर भी इसकी उत्पत्ति में आन्त्रों के रोग भी महत्वपूर्ण भाग अदा करते हैं इसलिए इसे आन्त्रिक रोगों के साथ ही दिया जा रहा है।

स्तनपान के साथ पेट में हवा भर जाने से न केवल उदरशूल अपितु उलटी भी हो जाती है। कभी-कभी दूध पिलाने वाली बोतल के टीट में छेद रह जाने से बोतलपायी शिशु भी हवा अधिक पी जाता है और बाद में दूध उलट देता है।

शिशु वमन के अन्य कारणों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं:-

i. आन्त्रावरोध जो गम्भीर कारण है।

ii. किसी भी औपसर्गिक रोग के कारण बच्चे को उलटियां आ सकती हैं न्यूमोनिया, ओटिटिस मीडिया ही नहीं मध्यकर्ण शोथ भी वमन उत्पन्न कर देता है।

iii. कुकरखांसी में उलटी प्रायः अवश्य होती है।

iv. वातल प्रकृति के बच्चे (नर्वस शिशु) बिना कारण भी उलटी करते रहते हैं।

v. आहार या फीड्स में गड़बड़ी अधिक प्रोटीन या फैट युक्त दूध उलटी कर सकता है

vi. कड़वी दवा पिलाना या दूध पीने के बाद पेट के दबने से भी उलटियां हो सकती हैं।

vii. पेट में कृमि होने के कारण भी वमन सम्भव है।

उलटी की चिकित्सा कारणानुरूप की जानी चाहिए। एण्टी इमेटिक दवाएं (वमनहर द्रव्य) दी जा सकती हैं। लार्जेक्टिल, सीक्विल तथा इसी प्रकार अन्य दवाएं प्रायः चिकित्सक व्यवहार में लाते हैं। इन औषधियों का अन्धाधुन्ध प्रयोग सदैव अनुचित रहता है इससे बच्चे को लाभ की अपेक्षा हानि अधिक हो सकती है। शटी या कपूरकचरी आयुर्वेद की एक अच्छी वमनहर औषधि है। चरक फार्मेस्युटिकल्स लैब बम्बई का योगीर्दन सीरप जिसमें चन्दन, दालचीनी, इलायची [illegible], पिप्पली तथा वंशलोचन के घटक होते हैं बच्चे प्रेम से पीते हैं और वमन बन्द हो जाती है।

मयूर पुच्छ भस्म ½ से १ रत्ती की मात्रा में देते हैं। नीबू के छिलके की अन्तर्धूम भस्म बना उसे आधी रत्ती से १ रत्ती की मात्रा में देते हैं।

कृमिरोग की वमन के लिए कृमिनाशक दवाएं देनी पड़ेंगी। आन्त्रावरोध में शल्यकर्म निष्पादन करना होगा। औपसर्गिक रोगों में उस-उस रोग को दूर करने के लिए उपसर्गनाशक ओषधियों का उपयोग आवश्यक होगा।

अधिक बार उलटी करने के कारण शरीर में उत्पन्न जलाभाव या डिहाइड्रेशन को दूर करने के लिए सिरा से ड्रिप विधि से या पेशी में ग्लूकोज या सेलाइन चढ़ाना होता है।

वातज प्रकृति वाले बालक को वात-नाशक उपचार थोड़ा-थोड़ा बार-बार भोजन देना आवश्यक होता है।

सभी उलटियां आमाशय के उत्क्लेश से होती हैं इसलिए आमाशय को प्रक्षुब्ध होने से रोकना महत्वपूर्ण होता है।

वमननाशक योग—

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तं मधु सर्पिषा।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत्॥

जो बच्चा दूध पीकर उसका वमन कर देता है उसे छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरी के फलों के रस [illegible] [illegible] को मधु और घी के साथ चटावें। दोनों कटेरी के फलों के रस की पूर्ण मात्रा [illegible] रत्ती है।

चुन्ने-चुरने या पुरीषजकृमि

आयुर्विद्याविनोद श्री मोहरसिंह आर्य \वैद्य, मिसरी चरखीदादरी, भिवानी

*

यह छोटे वड़े पतले तथा अनेक रंग रूप के चपटे तथा गोल होते है। ये प्रायः श्वेत और काले पीले ताम्रवर्ण एवं भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगों में पाये जाते हैं। इनके अंण्डे इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता के विना देखना असम्भव है। धीरे-धीरे ये वढ़ते हैं लाल वर्ण के कृमि तो ६ इंच तक लम्वे देखे गये हैं। श्वेत वर्ण के कृमियों की लम्वाई १ से सवा इंच तक होती है। इनका मुख्य निवास पक्वाशय-मलाशय है। पक्वाशय में उत्पन्न होकर विकसित और वढ़ते हैं। ये वृहदन्त्र में रहने वाले रात्रि में गुदा के वाहर आते हैं।

पर्याय-पुरीषजकृमि, गिंडोये, चुनूने, अन्त्रादा, चुनमुने, थ्रेडवर्म (Thread worm) दर्भ कुसुम, तन्तु कृमि।

कारण—

१. अजीर्ण भोजी —पहले खाया हुआ भोजन पचे विना ही पुनः पेट को भोजन से ठूंस कर भर लेना पाचक विकार से।

२—मधुर पदार्थो का अति सेवन—गुड़, शक्कर, लड्डू खीर आदि गरिष्ट पदार्थो का अत्यधिक सेवन करने से।

३—अम्ल पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने से।

४. द्रवप्रिय— शर्वत, चीनीयुक्त दुग्ध व छाछ आदि का अति मात्रा में प्रयोग करने से।

५. पिष्ट पदार्थों का अत्यधिक सेवन करने से, यथा मैदा से वने खाद्य पदार्थ।

६. गुड़ तथा गुड़ से वने खाद्य पदार्थो का अति मात्रा में सेवन करने से।

७. व्यायाम वर्जी—शारीरिक श्रम न करने से।

८. दिवाशयानो-दिन में सोने से,

९. विरुद्ध भुक-विरुद्ध भोजन करने से।

ये नौ कारण माधव निदान में वतलाये हैं।

थोड़े से परिवर्तन के साथ ये कारण शिशुओं को भी शिकार वना लेते हैं। ममता की मारी मा हर वक्त वालक को दुग्ध पिलाने के चक्कर में रहती है। वालक तनिक सा रोया कि मा ने झटपट दुग्ध पिलाना आरम्भ किया अथवा वाजार की गली सड़ी मिठाईयां खिलाती है। रोने नहीं देती, रोना हाथ पांव इधर-उधर पटकना वालक का व्यायाम है इस लिये वालक को यह व्यायाम कर लेने दें।

११.गुड़ दुग्ध आदि के अतिरिक्त मांस-मछली खाने से।

१२. विरुद्ध भोजन के सेवन से, यथा—मछली तथा दुग्ध।

१३. दूषित मांस का सेवन करने से,

१४. दुष्ट जल पीने से।

लक्षण—

१. उदर—वालक का उदर साधारणतयां फूला हुआ, तना हुआ रहता है। पेट में शूल, दर्द रहता है।

२. गुदा—लाल रहती है। गुदा में खुजाल हुआ करती है। विशेषतः सोते समय खुजली अधिक होती है।

३. शौचादि टट्टी—पतली अनियमित, कभी दस्त तो कभी मलवद्धता रहती है। पेट में शूल-दर्द रहता है।

जैसा कि गत लेख की टिप्पणी में दिया गया श्री आर्य सदैव विषय की सीमा तकही लेख का व्याप रखते हैं इस लेख में उन्होंने मृत्तिका भक्षण से संबद्ध कृमि रोग विशेषकर पुरीषज कृमियों पर प्रकाश डाला है। शीर्षक के शब्द पंजाबी के हैं जो थ्रेडवर्म या सुत्रकृमि के निदर्शक हैं। इनकी भाषा भावबोधनी सजीव और विचार सटीक होते हैं यह सब इस लेख में भी प्रमाणित हो रहा है।

गो० श० शर्मा

---

४. बालक नासिका को नोचता है।

५. निद्रावस्था में दांत पीसता है।

६. मुख से लालास्राव होता है।

७. जब कृमि गुदा में काटते हैं तो बालक रोता है चीखता है रोते समय ऊपर की ओर चढ़ता है। अकस्मात् चौंक कर रोता है।

८. जब यह कृमि सायं सोते समय बाहर निकलना चाहते हैं तब गुदौष्ठ में काटते हैं बालक चौंक कर रोता है।

९. यह कृमि पुरीषोण्डुक एवं बृहदन्त्र में रहते हैं। ये कृमि गुदा में भयानक रूप का कण्डू उत्पन्न करते हैं। यह कण्डू इतनी तीव्र होती है कि खुजलाते-खुजलाते गुदा क्षत-युक्त हो जाती है।

१०. शरीर दुबला हो जाता है और वर्ण बदल जाता है। मुख पीला पड़ जाता है।

११. अरुचि रहती है। भूख कम हो जाती है।

१२. रोग पाण्डु, रक्ताल्पता, अग्निमान्द्य, तथा कृशता,

१३. जब ये कृमि गुदा से बाहर आते हैं तो गुदकण्डू खुजली, गुदा का उकवत, योनि प्रदाह और मूत्राशय में उत्तेजना उत्पन्न करते हैं।

१४. बच्चे विशेषतः पेट के बल सोते हैं।

प्राग्ज्ञान —सूत्रकृमि गुदकण्डू को अन्य हानि नहीं करते।

चिकित्सा सिद्धान्त —

मूल सिद्धान्त-निदानं परिवर्जनम्।

१. शारीरिक स्वच्छता एवं व्यावहारिक स्वच्छता।

२. कृमियों को मूर्च्छन कर निकालना।

३. कृमिघातक उपचार करें।

४. कृमिपातन चिकित्सा करें।

५. वस्ति प्रयोग—आशुकारी लाभप्रद है।

६. कृमि नाशक औषधियों के सेवन से पूर्व यथेष्ट मात्रा में गुड़ खिलायें। इससे कृमि एकत्र हो जाते हैं, फिर आधा घण्टा पश्चात् कृमियों को मूर्च्छित करने के लिए औषधि दें फिर तीव्र विरेचन देकर कृमियों को निकाल दें। अनुभूत है।

७. गुदा में कृमिनाशक तैल लगायें।

८. कृमिघ्न क्वाथ से गुदा प्रक्षालन करें।

९. रोगी को रात्रि में कृमिनाशक दवा देकर प्रातः काल तीव्र विरेचन दें।

१०. पाचनशक्ति का पूर्ण ध्यान रखें।

वस्ति चिकित्सा

१. विडङ्गादि वस्ति—

वायविडंग, त्रिफला, सहंजन की छाल, मैनफल, मोथा, दन्ती मूल, पलाशबीज, खुरासानी अजवायन, कमीला, वनतुलसीपत्र, दोना, तथा मरुवा प्रत्येक १५ ग्राम लेकर ३ लिटर जल में पकावें। जब चतुर्थांश शेष रहे छानकर उसमें विडंगादि तैल २५ मि. लि. मिला एनिमा करें।

लवण वस्ति—

बालक को रात के समय एरण्ड स्नेह ६ ग्राम पिलायें। प्रातःकाल जब विरेचन बन्द हो जाय, इससे ३—४ दस्त होंगे पीछे सैंधव लवण ३ ग्राम जल मिलाकर १ औंस में पिचकारी करें।

निम्बादि वस्ति—

निम्बत्वक्, पलाश बीज, इन्द्रयव, वायविडंग, अरण्य जीरक तथा कुटकी समान भाग ले यथा-विधि क्वाथ बना अनुवासन वस्ति के रूप में दें। तंतुकृमि शोधक है। अथवा।

निम्बपत्र को कूट जल में औटा कर छान लें, उसमें थोड़ा सा लवण मिलाकर एनिमा करें।

औषधि व्यवस्था

कृमिमुद्गर रस (र. सा. सं.)—

शुद्ध पारद १० ग्राम, शुद्ध गन्धक २० ग्राम, शुद्ध कुचला ५० ग्राम, अजमोद चूर्ण २० ग्राम, विडंग चूर्ण ४० ग्राम, पलाश बीज चूर्ण ६० ग्राम, पारद गन्धक की कज्जली बनावें, सबको एकत्र कर निम्बपत्र स्वरस में खरल करलें।

मात्रा —१ से ४ ग्राम तक। अनुपान—मुस्तकादि क्वाथ समय-प्रातः तथा सायंकाल।

गुण—यह कृमिविकार को दूर करने में उत्तम है।

मुस्तादि योग—

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, नागर मोथा, पलाश के बीज सेंके हुए, वायविडंग छिलका निकाला हुआ, दाड़िम के मूल

—शेषांश पृष्ठ २७१ पर।
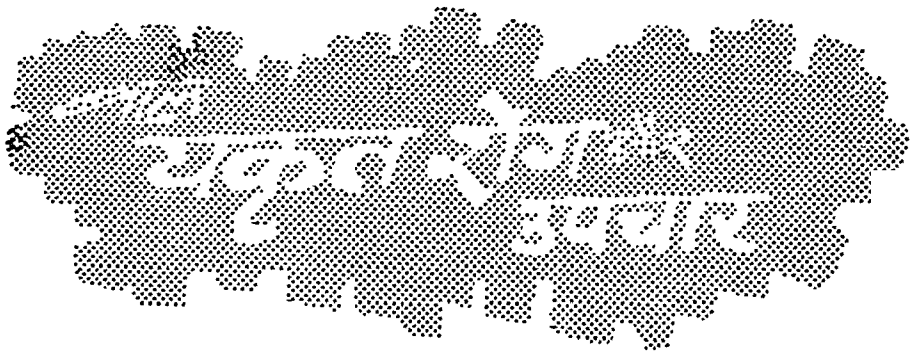
आयुर्वेदरत्न डा० जयनारायणगिरि 'इन्दु' बी० ए० आनर्स
धजवा, मधुबनी (बिहार)

हमारे देश के भावी कर्णधारों के बीच इस रोग का व्यापक प्रचार है, जिसे चिन्ताजनक कहा जायगा। साधारणत: यह रोग ६ माह से ५-६ वर्षों के बीच की अवस्था में होता है। दिन-प्रतिदिन इस रोग के प्रसार के कई कारण हैं। माता पिता बच्चों को अनियमित और भूख से अधिक भोजन देते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि माताएं बच्चे के तनिक रोने पर ही दूध पिला देती हैं, ऐसा करना हानिकारक है। इसका कारण तो दूसरा ही होता है। बहुत सी ऐसी भी माताएं हैं जिनके दूध ही नहीं होता या कम होता है अथवा अधिक मात्रा में तो होता है लेकिन खराब होता है। ऐसी मां बच्चों के लिये कृत्रिम दूध का प्रयोग करने को विवश हो जाती हैं जिससे यकृत् की वृद्धि होती है। मलेरिया अमीबाजनित प्रवाहिका आदि रोगों के संक्रमण के फलस्वरूप यकृत् विवृद्धि की परिणति भी यकृत् पाली विवृद्धि अथवा संकोच के रूप में हो सकती है। चरक भगवान् इसकी संप्राप्ति में लिखते हैं—

"रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः।
प्राणापानाग्नि संदूष्य जनयन्त्युदरम् नृणाम् ॥"

अर्थात् संचित हुए दोष स्वेदवाही तथा जलवाही स्रोतों में अवरोध पैदा करके तथा प्राणवायु और जाठराग्नि को विकृत् करके यकृत् वृद्धि उत्पन्न करते हैं। सम्प्रति लोग दिनों दिन विलासिता के दलदल में फंसते जारहे हैं। प्रत्येक साल एक नया बच्चा जन्म लेकर इस धरती के भारको बढ़ाता है। एक तरफ परिवार नियंत्रण की बात हो रही है तो दूसरी तरफ लोग कहते हैं—'एक लाल एक लाख।' बच्चा एक वर्ष का भी नहीं हुआ कि माताएं गर्भवती हो जाती है। शास्त्रानुसार जब तक बच्चा दूध पीता रहे तब तक मैथुनकर्म नहीं करना चाहिये। हमारे कुछ भाई तो ऐसे भी हैं जो छठियार के दिन भी नहीं चूकते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि जिस रज से शुद्ध दूध का निर्माण होता है वह रज मैथुनकर्म में पात होने से दुग्ध दोषी और भारी हो जाता है जिससे बच्चों को नाना प्रकार की व्याधियां आ घेरती हैं जिनमें बालयकृत्वृद्धि भी एक है।

इस रोग में बालक का पेट फूल जाता है, बच्चे दूध नहीं पीते हैं क्योंकि उन्हें अग्नि की मन्दता हो जाती है, अङ्गों में शिथिलता आ जाती है, वायु तथा मल का अवरोध हो जाता है रुग्ण बच्चों को बहुधा शोथ हो जाया करता है। चरक के चिकित्सा अध्याय १३ में निम्न रूप से इसके लक्षण उल्लिखित हैं—

दौर्बल्यारोचका विपाकवर्चो मूत्रग्रहतमः प्रवेश पिपासाङ्ग-

'इन्दु' जी सरल भाषा में विषय को पाठकों के हृदय में उतारने वाले उदीयमान लेखक हैं आपकी शैली तथा विद्वत्ता से सुधानिधि के पाठक पूर्व परिचित हैं। हमारा विश्वास है कि आपका प्रस्तुत लेख विशेषांक के सर्वोत्तम लेखों में से एक है जो पाठकों के लिये निश्चय ही अत्यन्त उपादेय है।

गो० श० गर्ग

मर्दच्छर्दि मूर्च्छाङ्गसाद कास श्वास मृदु ज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्य वैरस्यपर्वभेदकोष्ठ वातशूलान्यपि चोदरमरुणवर्ण विवर्ण वा नीलहरितहारिद्रराजिमद्भवति एवमेवयकृदपि दक्षिण पार्श्वस्थं कुर्यात्तुल्य हेतुलिङ्गौपधित्वात्तस्य प्लीह जठर एवावरोध इत्येतद्यकृत प्लीहोदरं विद्यात् ।

अर्थात् दुर्बलता, अरुचि, दूध ठीक से न पचना अथवा भोजन का ठीक से परिपाक नहीं होना, मल-मूत्रावरोध, आंखों के सामने अन्धकार प्रतीत होना,प्यास अधिक लगना अंगड़ाई, वमन, मूर्च्छा, शरीर में भारीपन, खांसी, श्वास मन्दज्वर, अफरा, अग्नि का नाश, कृशता, मुख का विरस होना, गांठों में शूल, उदर में वायु की उपस्थिति से पीड़ा, पेट का लाल अथवा शरीर के समान वर्ण होना और नीले हरे व हल्दी के रङ्ग की रेखा और नसों के जल से पेट का घिरना यही प्लीहा वृद्धि के समान लक्षण हैं इसी तरह दाहिनी ओर बगल में यकृत् भी प्लीहा के समान ही बढ़कर उदर रोग को प्रकट करता है। प्लीहा और यकृत् के हेतु लक्षण और औषधि में तुल्यता है इसलिए दोनों के यही लक्षण होते हैं। शिशु यकृत् के सभी रोगियों को कामला हो जाता है, यह निश्चित है। इस रोग में बहुधा कृमि के लक्षण भी उपस्थित होते देखे गये हैं। कभी रक्तातिसार के लक्षण प्रकट हो जाते हैं, रोगी दुर्बल और क्षीणकाय हो जाता है पेट में जलोदर हो जाता है, हाथ पैर में सूजन हो जाती है, रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा और जिद्दी हो जाता है।

चिकित्सा—

(१) अधपके बड़े पपीता के बीज निकाल उसमें आधा पाव सेंधा नमक भर दें और कपरोंटी करके १० सेर उपलों में फूंक दें। स्वतः शीतल होने पर निकाल कर खरल करलें। तीन माशा की मात्रा में तीन बार बच्चों को चूने के पानी के साथ दें। आश्चर्यजनक लाभ होगा।

अनुभूत योग माला के "बाल रोग चिकित्सांक"

(२) लौह भस्म १ तोला, नौसादर २ तोला, कलमी शोरा २ तोला, रेवन्द चीनी १ तोला सबको पीसकर रखें। यह औषधि १ से २ रत्ती दिन में २-३ बार सेवन करावें। अर्क सौंफ अथवा क्वाथ सौंफ के साथ दें।

—लेडी डाक्टर दमयन्ती देवी त्रिवेदी

(३) सर्वाङ्ग सुन्दर रस पिप्पली चूर्ण के साथ अवस्थानुसार मात्रा निर्धारण कर देने से आशातीत सफलता प्राप्त होती है।

(४)'धन्वन्तरि' के 'शिशुरोगाङ्क' में श्री विद्याभूषण वैद्य आयुर्वेदाचार्य B.A. पृष्ठ४१६ में एक योग लिखा है जो वास्तव में बहुत ही उपयोगी है। उसे मैं उद्धृत कर रहा हूं जिससे पाठकगण लाभान्वित हों—

शोथ भस्म लोह—सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़, बहेड़ा, आंवला, द्राक्षा (मुनक्का), पोहकरमूल, सुगन्धवाला, कचूर, लौह भस्म, घुड़बच, लौंग, काकड़ासिंगी, दालचीनी, सौंफ, बहेड़ा, वायविडंग, धाय के फूल प्रत्येक २ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करके फिर इस चूर्ण में माण्डूर भस्म ३८ तोला मिलाकर कम से कम ३ घंटे घिसें। फिर कुटज (कुड़े) की छाल के स्वरस अथवा क्वाथ में घोटकर गोला बनावें। इस गोले के चारों ओर जामुन के कोमल पत्ते लपेटें। अब इस पर मिट्टी का एक अंगुल मोटा लेप करें और सूखने पर लघुपुट में पकावें। शीतल होने पर औषधि निकालकर पीसकर शीशी में रखें। पूर्ण मात्रा २ रत्ती।

लाभ—सारे शरीर के शोथ को विशेषतः शोथयुक्त ग्रहणी रोग का नाश करती है, आठों उदर रोगों विशेष रूप से बालयकृत् में चमत्कारी है। साधारणतः आंत्रशोथ यकृत् शोथ, प्लीहा शोथ, गर्भाशय शोथ इन सब में लाभकारी है। बालयकृत् में यह एक सप्ताह में ही लाभ दिखाती है।

ताप्यादि लौह—हरड़, बहेड़ा, आमला, सोंठ, मिर्च, पीपल, चित्रक मूल, वायविडंग प्रत्येक २॥ तोला, नागरमोथा १॥ तोला, पीपलामूल, देवदारु, चव्य, दालचीनी, दारुहल्दी, १-१ तोला, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिक भस्म रौप्य भस्म तथा लौह भस्म प्रत्येक १० तोला, मण्डूर भस्म २० तोला और मिश्री ३२ तोला इन सबको मिलाकर घिसें अर्थात् हरड़ से लेकर दारुहल्दी तक द्रव्यों का चूर्ण कर फिर उसमें अन्य द्रव्य मिलाकर घिसें।

लाभ—पाण्डु, कामला, यकृत्, बालयकृत् आदि में परम लाभकारी है।

प्रयोग—शोथ भस्म लौह तथा ताप्यादि लौह २-२ रत्ती मिलाकर एक पूर्ण मात्रा बनती है। एक वर्ष के

वालक को एक पूर्ण मात्रा की ८ मात्रा, २ वर्ष के वालक को ६ मात्रा और ४ वर्ष के वालक को चार मात्रा करके दिन में तीन या चार वार आवश्यकतानुसार दूध के अनुपान से दें।

प्रशंसा—वालयकृत् की द्वितीय अवस्था में अत्यन्त उपादेय है—यह परीक्षित है।

(५) मूली को चीरकर चार-चार फांकें वनालें और चीनी की रकावी में रखकर उनपर ६ माशा पिसा नौसादर छिड़ककर रात में ओस में रख दें। सुवह इससे जो पानी निकलेगा उसको पीकर ऊपर से मूली की फांकें खिला दें। इस प्रकार १ सप्ताह यह क्रिया करने से विशेष लाभ होता है।

(६) अकरकरा २ भाग तथा इन्द्रयव (मीठा), सोंठ, जीरा और पीली कौड़ी की भस्म १-१ भाग लेकर सवका महीन चूर्ण एकत्रकर शीशी में भर कर रखें। मात्रा—बच्चों को ४ रत्ती से १ माशा तक और वड़ों को २ माशे से ४ माशे तक दिन में २-३ वार योग्य अनुपान के साथ या केवल उष्णोदक के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

आक का पान एक इन्च चौकोर लेकर महीन कतरकर ५ तोले जल में पकावें। अच्छी तरह पक जाने पर जल आधा रह जाने पर छान लें। थोड़ा ठण्डा होने पर उसमें सेंधा नमक १ रत्ती मिलावें। यह मात्रा तीन वर्ष तक के वालक की है। इस प्रकार ६ दिन तक रोज प्रातः पिलावें। इससे प्रतिदिन २-३ साफ दस्त आकर पेट मुलायम हो जाता है। पथ्य में खिचड़ी, चावल छाछ कुल्थी-यूष दें। —स्व० श्री कृष्णप्रसाद त्रिवेदी जी

"धन्वन्तरि" के वनौषधि विशेषांक खण्ड १से साभार।

(८) वाल यकृत् वृद्धि में गोमूत्र वड़ा ही उपकारी सिद्ध हुआ है। कविराज श्री एस. एन. वोस के शब्दों में—

'वाल यकृत् विवृद्धि में मूत्र का प्रयोग वड़ा ही लाभदायक होता है। प्रतिदिन प्रातःकाल ताजा गोमूत्र ५ से १५ वूंद तक पानी अथवा दूध के साथ शिशु को पिलाने से आश्चर्यजनक फल मिलता है। इसके अलावा गोमूत्र से यकृत्प्रदेश में स्वेदन भी विशेष लाभ दायक होता है।

(९) Liv. 52,3 tab, Cirosine 10 tab, Macrabin 3 tab. और yattren Bayer co का ३० ग्रेन। इन सवको मिलाकर ६ खुराक वनालें। दिन में दो वार इसका सेवन करायें और ऊपर से Kumaresh ५ से १० बूंद दें। आश्चर्यजनक लाभ करेगा। मेरा परीक्षित है।

(१०) इस रोग में Liver Extract की सुई अमृततुल्य सिद्ध हुई है। अवस्थानुसार १ से २ सी. सी. हर तीसरे दिन लगाने से अवश्य लाभ करेगा।

(११) Delphicoi with methionin या Livergin का प्रयोग विवरणपत्रानुसार करायें।

(१२) वृहत् लोकनाथ रस आधा माशा, सर्वाङ्गसुन्दर रस १ माशा, कपर्द भस्म १ माशा, लौह भस्म १ माशा, Becadex tab 10 इन सवको खरल कर १० मात्रा वना लें। भोजनोपरान्त इसे मधु के साथ चटाकर ऊपर से कुमार्यासव दें। सप्ताह में ३ वार Liver Extract की सुई दें। अवश्य लाभ करेगा। मैं यही चिकित्सा व्यवस्था अपने रोगियों पर करता हूं। करीव एक माह में ही रोगी पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने लगता है।

पथ्यापथ्य - गाय का दूध, वकरी का दूध, सोंठ, चव्य लाल साठी चावल, जौ, मूंग, परवल, करेला, पुनुर्नवा का शाक, नींबू, आंवला, गोमूत्र, शहद आदि।

अपथ्य—जल में रहने वाले जीवों का मांस, आनूपसंचारी जीवों का मांस, पानी वाले शाक, मिट्टी से वने द्रव्य तिल, व्यायाम, भ्रमण, दिन में सोना, सवारी का प्रयोग, अधिक गर्म, नमकीन, खट्टे जलन डालने वाले, भारी पदार्थ और अधिक पानी का पीना आदि।

औदकानूपजं मांसं शाकं पिष्टकृतं तिलान्।
व्यायामाध्वदिवास्वप्नं यानयानञ्चवर्जयेत्॥
तथोष्णलवणाम्लानि विदाहीनिगुरूणि च।
नाद्यादन्नानि जठरी तोयापानञ्च वर्जयेत्॥

—चरक चि. अ. १३

—★—
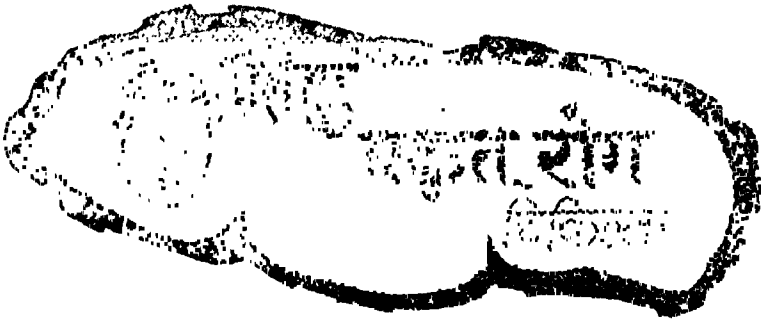
आयुर्वेद वृहस्पति आचार्य विरिञ्चिलाल शास्त्री, अध्यक्ष–श्री माहेश्वरी आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय, इस्लामपुर, जि० झुंझुनू (राजस्थान)

शास्त्री जी आयुर्वेद के माने हुए सफल एवं यशस्वी चिकित्सक हैं जिन्होंने आयुर्वेद द्वारा मानव समाज की सेवार्थ अपना जीवन अर्पण कर रखा है। आपने बाल यकृत् पर अति संक्षेप में यद्यपि विचार प्रकट किए हैं पर आपने अपने द्वारा अनुभूत कई योगों को प्रकट कर सुधानिधि के माध्यम से एक सुन्दर आदर्श प्रस्थापित किया है। वैद्यसमाज उनके इन प्रयोगों से बहुत लाभान्वित होगा ऐसी हमारी आशा है।

- गोपालशरण गर्ग

आजकल प्रायः यह रोग विशेष रूप से बच्चों में व्याप्त है। साधारणबोलचाल में, देखना वैद्य जी इसको लीवर तो नहीं है, इस पर मैंने कई बार बहुत से व्यक्तियों को कहा कि लीवर है तो भी क्या ? इसके लिए हमें विचार करना चाहिए कि इसका मुख्य कारण क्या है ? जो भी हो इस तरह में विचार करना अत्यावश्यक है। मैं जहां तक विचार कर सका हूं या हमारे शास्त्रों ने इस पर जो कुछ लिखा है वह तो स्पष्ट है कि हमारे शरीर में जितने भी रोग होते हैं उतने हमारे आहार विहार के अपथ्य रूप से करने से होते हैं। आहार विहार पथ्य रूप से करना उपयुक्त है लेकिन रोग के प्रादुर्भाव का कारण तो अपथ्य ही माना गया है। लेख के विशद होने के भय से इसका निदान संप्राप्ति आदि जो हमारे ग्रन्थों में लिखा है वही है अतः इनका दिग्दर्शन न कराकर इसके प्रारम्भिक लक्षण मात्र ही ठीक समझते हुए लिख रहा हूँ—

जैसे कभी उल्टी (वमन) होना अतिसार (दस्त) होना एवं इसी प्रकार कभी कब्ज (बद्धकोष्ठता) का हो जाना या उदर में कृमि (चूरणिये) हो जाना आदि लक्षण क्रमशः बारबार होते रहते हैं। इनमें कभी सब एक साथ भी हो सकते हैं और एक-एक दो-दो तो होते ही रहते हैं। अग्नि (भूख) प्रारम्भ में कुछ ठीक रहती है फिर धीरे-धीरे ठीक रहती-रहती कम हो जाती है बच्चा प्रसन्न मुख नहीं रहता अर्थात् सदैव अप्रसन्न (चिड़चिड़ा) सा रहता है शरीर में दाह (जलन) होने के कारण आंगन में (फर्श पर) जमीन में लोटता रहता है और चेष्टा करता रहता है लेटने को सायंकाल विशेष रूप से या सदैव हल्का-हल्का (मीठा) ज्वर

होता रहता है। इसका कारण नींद में भी बाधा रहती है अर्थात् कम सोता है अच्छी नींद नहीं आती है। वैसे ज्वर का ताप शरीर पर हाथ रखने से मालूम देता है चेहरे पर कुछ पिलाई या सफेदी जैसा रंग दिखाई देने लगता है पेशाब भी लाल थोड़ा पीला जैसा होता है किसी-किसी को तो पेशाब घोड़े, गधे जैसा होता है जो थोड़ी देर में जम भी जाता है—

बाल यकृत् के लिए प्राचीन ग्रन्थों में प्रायः कुछ सूक्ष्म विवरण मिलता है परन्तु वर्तमान समय में तो बहुत मात्रा कस्बों शहरों में विशेष यकृत् के रोगी बड़े एवं बच्चे मिलते ही रहते हैं। बहुत कम संख्या ऐसे बच्चों की ही नहीं बड़े-बूढ़ों की भी है जो यकृत् (लीवर) के मरीज न हों पर लोगों का यकृत् जैसा काम करना चाहिए वैसा नहीं करता है। यकृत् शरीर के दाहिनी ओर पसलियों केनीचे होता है बांईं ओर प्लीहा होती है। दाहिनी ओर दावने से दर्द भी करता है एवं कठोरता तो महसूस होती ही है। शिर दर्द, जिह्वा मलीन, रक्त की कमी, मन्दाग्नि, दाहिने स्कंध में पीड़ा, टट्टी गन्दी तथा कीचड़ जैसी होती है मुख का स्वाद भी अजीब तरह का, जैसे साबुन खाये हुए जैसा, तथा कब्ज बना रहता है पेट में वायु का जमाव रहता है वायु से आध्मान पेट फूला हुआ सा रहता है वैसे प्रायः बच्चों को यह रोग उसकी माता के अस्वस्थ, दूध से या माता का दूध न मिलने से डब्बे का दूध सेवन करते रहने से ज्यादातर होता पाया जाता है। यह रोग प्रायः छः मास के बच्चे से लेकर ४ वर्ष के बच्चे तक ज्यादातर होता है इसके उपद्रव निम्न होते हैं जैसे—

कब्ज, दस्त, आध्मान, कामला, पीलिया, अग्निमान्द्य, वमन, शोथ, जलोदर, आक्षेप (कमेड़ा) प्रवाहिका (रक्त आम मिश्रित अतीसार) या सिर्फ अतीसार भी मिलता है। अस्तु साध्यावस्था में पथ्यपूर्वक निम्न औषधियों का सेवन कराया जावे तो बच्चा तन्दुरुस्त और स्वस्थ हो जाता है नहीं तो बचपन की यह बीमारी आखिर तक परेशान करती है। यह सत्य है कि इस बाल यकृत् में जो व्यक्ति डटकर पथ्यपूर्वक चिकित्सा किसी एक वैद्य की नहीं कराते वे वैसे ही उपद्रव ग्रस्त होकर जीवन नष्ट करवा लेते हैं। हम यहाँ बाल यकृत् पर निम्न औषधियां देते हैं जिसको किसी प्रकार का भ्रम हो तो पूछताछ करे बच्चों के यकृत् (लीवर) होने पर चिकित्सा की लापरवाही नहीं करें—

कौमारेश्वर

घृतकुमारी का रस १ पाव तथा कलमी सोरा २५ ग्राम तथा हरिद्रा (हल्दी) १५ ग्राम तीनों को मिला कर धूप में शीशी में मजबूत डाट लगा १५-२० रोज या एक मास रखकर छान लेवें। बच्चों को ७ बूंद से लेकर ३० बूंद चौबीस घंटे में, एक वर्ष के बच्चे को एक-एक चम्मच दोनों टाइम देवें बहुत जल्दी ठीक होते पाये गये हैं। मात्रा अवस्थानुसार चिकित्सक के परामर्श से लेवें। इसी प्रकार पेटेंट दवाओं में भी "कुमारेश" ही उपयोगी है।

स्वर्णवंगक्षार अवस्थानुसार बच्चों को आधी रत्ती से दो रत्ती तक दिन में तीन-चार बार देने से विशेषोपयोगी पाया गया है। इसके साथ डाबर का नं. ३ कुमार्यासव ज्यादा फायदा करता है।

लेकिन उपरोक्त मेरे योगों में एक योग, और जनरल, बाल यकृत् में प्रयोग करता हूँ—

रेवन्दचीनी, सुहागा और कपर्दिका का तथा अजवाइन बराबर की पीसकर १॥ रत्ती या अवस्थानुसार देते रहना बहुत फायदा करता है और आक (अर्क) के पीले पत्तों का रस, काले नमक की भस्म करके भी देता रहता हूँ नींबू की सिकंजी के साथ।

चित्रकमूल, शुण्ठी का कल्क बनाकर दिलाता हूँ दूध से, आठ पहर भिगोई गई दोनों चीजें होनी चाहिए।

कभी-कभी विरेचन भी दे देता हूँ जन्मघुटी में सनायको रेवन्दचीनी में मिलाकर, यदि पेट ठीक रहेगा, तो दवा जल्दी कार्य करेगी। दवाओं में माण्डूर, स्वर्णमाक्षिक, शंख, कपर्दिका, शुक्ति, बड़ी इलायची, कुटकी, कचनारछाल वगैरह का भी प्रयोग अकेले अकेले या दो दो वस्तु मिलाकर देता रहता हूँ।

बाल हृद्रोगोपखण्ड

रोगियों के अध्ययन से यह प्रमाणित हो जाता है कि बच्चे का हृदय अधिक सहिष्णु होता है। उदाहरण के लिए, लोबर न्यूमोनिया में बच्चों के हृदय का तीव्ररूप में फेल होना बड़ों की अपेक्षा कम देखा जाता है; इसी प्रकार तीव्र उपसर्गों में ज्वर की विभीषिका बच्चों में क्रियातिपात की अपेक्षाकृत कम उत्पन्न करती है। इसका प्रथम कारण बच्चे के हृदय का अधिक बड़े आकार का होना है, दूसरे बच्चों की वाहिनियों का अधिक चौड़ा होना परिणामस्वरूप हृदय की पम्पशक्ति के प्रति कम प्रतिरोध होना क्योंकि रक्तदाब कम होता है, तीसरे बच्चों में जीर्ण उपसर्ग और नशा करने (तम्बाकू, शराब पीना) आदि का अभाव होता है; तथा अन्त में बच्चों की केशिकाओं का अधिक चौड़ा होना जो वृद्धिगत शिशु के पोषण के लिए लाभप्रद परिस्थितियां उत्पन्न करती हैं। —प्राब्लिम्स आफ पीडियाट्रिक्स —प्राविड्यूटिक्स आफ चिल्ड्रेन्स डिजीजेज से साभार

इस उपखण्ड में निम्न-लिखित लेखों का संकलन किया गया है :—

बालहृद्रोग और उनके प्रमुख लक्षण

(बालरोग विषयक एक रूसी पुस्तिका तथा माधवनिदान के आधार पर संकलित)

संकलनकर्त्ता—आयुर्वेदाचार्य डा. गजेन्द्रसिंह छोंकर ए. एम. बी. एस.

हमारे देश में सोवियट रूस का चिकित्सा विज्ञान का बहुत साहित्य उपलब्ध हो रहा है। यह साहित्य आधुनिकतम ज्ञान से भरपूर तो है ही बहुत सस्ता और चित्रों एवं रेखांकनों तथा तालिकाओं से युक्त और सरल भाषा में भी है। इस उपखण्ड के आरम्भ में जिस पुस्तक से उद्धरण दिया गया है उसी से यह लेख हमारे मित्र डा. छोंकर ने तैयार किया है। र. प्र. त्रि.

हम नीचे कुछ हृद्रोगों के नाम और उनके लक्षण दे रहे हैं जो प्रायः बच्चों में पाये जाते हैं।

१. हृत्पेशीशोथ या मायोकार्डाइटिस—

बड़ों की भाँति ही बच्चों में यह रोग देखा जाता है। इसमें मुख्य लक्षण निम्नांकित मिलते हैं :—

i. हृदय का फैल जाना।

ii. हृदयस्पन्द का मन्द होकर विसरित हो जाना।

iii. हृदयस्पन्द बाहर और नीचे की ओर मिलना।

iv. हृदध्वनि का मन्द और दबा हुआ होना।

v. माइट्रलवाल्व (द्विकपर्दी कपाटिका) से सम्बन्धित पेशीय भाग की असमर्थता के कारण कभी-कभी प्रकुंचन मर्मर का पाया जाना।

vi. नाडी का दुर्वल, द्रुत और अनियमित मिलना।

vii. कभी-कभी वल्गित नाल (गैलप रिद्म) का मिलना।

viii. कभी-कभी रक्तदाब का कम होना, कोष्ठांगों में रक्ताधिक्य होना, यकृत् की वृद्धि और उसमें शूल होना।

२. हृदयावरणशोथ या पेरिकार्डाइटिस—

इस रोग में निम्नांकित रोग लक्षण पाये जा सकते हैं :—

i. निःस्रावी हृदयावरणशोथ में हृदय के एक क्षेत्र में जिसका आकार एक ऐसे समभुज त्रिकोण का होता है जिसके कोण गोलाई लिए हुए हों, हृद्ध्वनि मन्द (डल) मिलती है।

ii. हृदय का हृद्-यकृत् कोण सपाट हो जाता है और हृत्स्पन्द आंख से देखना सम्भव नहीं होता।

iii. हृद्ध्वनियां दवी हुईं और क्षीण सुनाई देती हैं।

iv. अधिजठरस्पन्दन (इपीगैस्ट्रिक पल्सेशन) मिलता है।

v. वालक की नाड़ी दुर्वल, कोमल और क्षुद्र पाई जाती है।

vi. रोग की आरम्भिक अवस्था में घर्षध्वनि (फ्रिक्शन साउण्ड) पाई जाती है। यही ध्वनि सजलहृदयावरणशोथ का जल खींच लेने के वाद भी सुनी जा सकती है।

vii. इस रोग में हृद्-लोष्ठ रूपता वहुत जल्दी विकसित होती है।

viii. श्वास का कष्ट से आना, हृत्प्रदेश में तीव्रशूल होना, शुष्क खांसी आना अन्य अन्य वे लक्षण हैं जो इस रोग में प्रायः पाये जाते हैं।

ix. रोगी को आराम अर्घ वैठी स्थिति में मिलता है वह न सो सकता है और न वैठ ही सकता है।

३. अन्तर्हृद्शोथ या ऐण्डोकार्डाइटिस—

जब हृदय के अन्तरावरण में शोथ हो जाता है तव जो लक्षण प्रायः देखे जाते हैं वे हैं :—

i. हृद्ध्वनि विसरित और तीव्र हो जाती है।

ii. हृद्शिखर क्षेत्र में एक विशेष स्पृश्य तरंग (थ्रिल) कभी-कभी पाई जाती है।

iii. रोग की आरम्भिक अवस्था में हृदय का द्वितीय शब्द दवा हुआ और छोटा सुना जा सकता है।

iv. आगे चलकर विक्षत की स्थिति के अनुसार प्रायः प्रकुंची और वहुत कम अनुशिथिली मर्मरध्वनि हृद् शिखर क्षेत्रों में सुनी जा सकती है।

v. वालक की नाड़ी की गति द्रुत (तेज) हो जाती है तथा रोगी को ज्वर हो जाता है।

vi. हृदय की मन्दता इस रोग में वढ़ती जाती है पहले शिखर भाग पर फिर वांई और दाहिनी ओर।

४. सहज हृद् विकृतियां या कान्जेनिटल हार्ट लीजन्स—

वालक के हृदय में गर्भावस्था में ही कई प्रकार की विकृतियां हो जाया करती है उनमें से प्रमुख विकृतियों से सम्बन्धित लक्षणों का व्यौरा नीचे दिया जा रहा है :—

i. **पल्मोनरी आर्टरीज (फुफ्फुसाभिघा धमनी की संकीर्णता)**—जव अशुद्ध रक्त को लेकर हृदय से फुफ्फुस की ओर जाने वाली आर्टरी संकीर्ण हो जाती है तो निम्नांकित लक्षण पाये जाते हैं—

१. हृदय की परिसीमा दाहिनी ओर वढ़ने लगती है।

२. हृदय का दक्षिण निलय अधिक विस्तृत हो जाता है।

३. उरोऽस्थि के वांई ओर प्रकुंचन मर्मर ध्वनि दूसरी और तीसरी अन्तर्पर्शुकीय अवकाशों में पाई जाती है। यह ध्वनि वाहिनियों तक नहीं फैला करती।

४. फुफ्फुसाभिघा धमनी की द्वितीय ध्वनि वहुत घट जाती है।

५. तीव्र श्यावता और अंगुलिपर्वों का मुद्गरण ये दो लक्षण भी इस रोग में मिलते हैं।

६. इस रोग से पीड़ित वालक प्रायः अल्पायु होता है।

ii. **विवृत धमनी वाहिनी या पेटेंट डक्टस आर्टीरियोसस—**इस सहज विकृति के होने पर जो पल्मोनरी आर्टरी की संकर्णता के साथ भी पाई जा सकती है निम्नां-

कित लक्षण देखे जा सकते हैं : -

१. उरोऽस्थिमुष्टि (मैन्युब्रियम स्टर्नाइ) के बांई ओर हृद्‌क्षेत्र की मन्दता का मिलना।

२. कैरोटिड धमनियों और पीछे तक फैलने वाली तीव्र प्रकुंची मर्मरध्वनि का होना।

३- पल्मोनरी आर्टरी पर द्वितीय हृद्‌ध्वनि की तीव्रता का पाया जाना।

४. विशिष्ट स्पृश्य हृत्तरंग का मिलना।

५. हृदय के आकार की वृद्धि होना, तथा

६. इस रोग में प्राय: श्यावता का न मिलना।

iii. विवृत अन्तरानिलयी पट या पेटेंट इण्टर-वेण्ट्रीक्युलर सैप्टम—जब दो निलयों के बीच का छिद्र जन्म होने के बाद भी खुला रह जाता है तो यह स्थिति बनती है जिसके निम्नांकित लक्षण मिलते हैं : -

१. उरोऽस्थि के ऊपर तथा पृष्ठ पर दोनों अंस-फलकों के मध्य तीसरी चौथी कशेरुकाओं के स्थान पर एक कठिन प्रकुंची मर्मरध्वनि सुनी जा सकती है।

२. हृदय का स्वरूप इस विकृति में बहुत कम विगड़ता है। कभी हृदय थोड़ा सा बांये या दांये कुछ फैल जाता है।

३. इस रोग में अधिकांश रुग्णों में श्यावता नहीं पाई जाती है।

४. विवृत अण्डाकार रन्ध्र या पेटेंट फोरैमिन ओवेल होने पर कोई क्रियात्मक रोग लक्षण नहीं मिला करते।

iv. त्रिकपर्दी कपाट का संकीर्णन—बच्चों में विरलता से ही मिलते हैं।

संक्षेप में हृदय में सहज विकृति होने पर सामान्यतः इतने लक्षण मिला करते हैं—

१. ३ वर्ष की आयु के बालक में मर्मरध्वनि का मिलना, मर्मर तेज तथा क्लिष्ट होती है।

२. जीवन के आरम्भ के महीनों में श्यावता (सायनोसिस) मिलती है। यह श्यावता या तो बराबर मिला करती है या जब बच्चा रोता है तब मिलती है।

३. सहजविकृतियुक्त शिशुओं का शारीरिक विकास भी ठीक से नहीं होता।

आजकल हृदय की सहज विकृति का ठीक-ठीक ज्ञान करने के लिए जुगुलरवेन में रेडियो ओपेक पदार्थ का इंजैक्शन देकर थोड़ी-थोड़ी देर बाद ऐक्सरे चित्र लिए जाते हैं। इस पद्धति को ऐंजियोकार्डियोग्राफी कहते हैं। इसमें रेडियो ओपेक पदार्थ पहले महासिरा में फिर दक्षिणी अलिन्द, फिर फुफ्फुस परिसंचरण में जाता है तत्पश्चात् वाम हृदय में पहुँचता है।

इस पद्धति के अतिरिक्त हृदय का कैथेटराइजेशन दूसरी पद्धति है जिससे हृदय की सहज विकृतियों का पता लगता है।

इन सहज विकृतियों के कारण और विकार के बारे में अब काफी ज्ञान प्राप्त हो गया है। उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि शायद भ्रूण हृदय में अन्तः हृदयावरण शोथ उत्पन्न होने से ये सहज विकृतियां उत्पन्न होती हैं। कुछ विद्वान् इसे स्वीकार नहीं करते वे समझते हैं कि भ्रूण पर अनेक परिस्थितियों के प्रभाव के परिणामस्वरूप ये सहज विकृतियां उत्पन्न होती हैं। ये परिस्थितियां हैं—उपसर्ग, मादक पदार्थ, गर्भावस्था में माता के पोषण की गड़बड़ी आदि। कुछ लोगों का मत है कि माता का विषाणुजन्य रोगों के गर्भावस्था में उत्पन्न होने के कारण भी ये विकृतियां बन सकती हैं। गर्भावस्था के आरम्भिक ३-४ महीनों में माता के शरीर पर अत्यधिक रैडिएशन पड़ने से भी सहजविकृतियां बन सकती हैं।

v. परिसंचरणपात या सर्क्युलेटरी फेल्योर—आधुनिक विद्वानों के विचार में परिसंचरणपात की उत्पत्ति में २ तथ्य महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इनमें एक तथ्य है हृत्पेशी की दुर्बलता और दूसरा है वाहिनी चालन सम्बन्धी वे उपद्रव जो रक्तपूर्ति के पुनर्वितरण को प्रकट करते हैं। जिससे कोष्ठांगीय वाहिनियों में अत्यधिक मात्रा में रक्त, पहुँच जाता है जबकि त्वचा की वाहिनियों, शाखाओं की वाहिनियों और केन्द्रिय वातनाड़ीसंस्थान में रक्त की कमी हो जाती है। ये स्थितियां मूर्च्छा (Syncope), क्रिया–स्तब्धता (Shock) तथा निपात (Collapse) में पाई जाती हैं।

वाहिनीजन्य तथा हृदय सम्बन्धी रक्त की कमी के कारण उत्पन्न परिसंचरणपात के विभेदक लक्षण वी मॉलकेनेव, वाई. डोम्ब्रोवस्काया तथा टी सेवेदेव के अनुसार

६ बतलाये गये हैं जो इस प्रकार है :—

१. हृत्पेशीय संचरणपात में रोगी बैठे रहने में अधिक आराम का अनुभव करता है जब कि वाहिनीय संचरणपात में रोगी को आराम लेटने पर जबकि सिरहाना नीचा और पांइताना ऊंचा ही मिलता है।

२. हृत्पेशीय संचरणपात में ग्रीवा, त्वचा और शाखाओं की वाहिनियां रक्त से भरी हुई रहती हैं जबकि वाहिनीय परिसंचरणपात में ये निपतित या कोलैप्सड स्थिति में रहती हैं। हृत्पेशीय में सिराओं का दाब बढ़ा हुआ तथा वाहिनीय में घटा हुआ मिलता है।

३. हृत्पेशीय परिसंचरणपात में श्वासकृच्छ्रता (dyspnoea) पाई जाती है जबकि वाहिनीय परिसंचरण-पात में श्वसन दुर्बल और उथला मिलता है।

४. निपात या कोलैप्स की स्थिति में हृदय विस्फारित नहीं पाया जाता।

५. निपात की स्थिति में रक्तदाब स्पष्टरूप से घट जाता है। जबकि हृत्पेशीय पात में यह प्रायः बढ़ जाता है।

६. निपात (वाहिनीय परिसंचरणपात) में शरीर का रंग फीका (Pallor) पड़ जाता है जब कि हृत्पेशीय में यह श्यावता (Cyanosis) युक्त हो जाता है।

ऊपर हृदय और परिसंचरण सम्बन्धी इतने रोगों का वर्णन और लक्षण समुच्चय दिया गया है पर ये हृद्रोग या परिसंचरण रोग अकेले-अकेले न मिलकर कई-कई एक साथ मिले जुले मिलते हैं जिससे उनमें लक्षण भी मिले जुले पाये जाते हैं।

माधवोक्त हृद्रोग

माधवकर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ रोगविनिश्चय में जिसे माधवनिदान के नाम से पुकारा जाता है हृद्रोग-निदान पर एक *अलग अध्याय ही* दिया है। यह सत्य है कि यह अध्याय बालहृद्रोगों पर न होकर सभी आयु-वर्गीय रोगियों के हृद्रोगों के सम्बन्ध में दिया गया है इस कारण इससे बालरोगविषयक साहित्य के लिए पाठकों को विशेष श्रम करके ही कुछ प्राप्त करना होगा।

माधव हृद्रोगों की उत्पत्ति में निम्नांकित कारणों को मुख्य रूप से स्वीकार करते हैं :—

१. अत्युष्ण पदार्थों का सेवन,

२. अति गुरु आहार द्रव्यों का सेवन (भारी दूध का सेवन)।

३. कषैले और तिक्त पदार्थों का सेवन—यह यद्यपि बालकों में संभव नहीं पर माता में जब यह गर्भिणी हो या दूध पिलाती हो अवश्य सम्भव है। अफीम का सेवन या मद्यपान के कारण सहज हृद्विकृतियों की उत्पत्ति के जो कारण ऊपर दिये हैं उनका समावेश यहां किया जा सकता है।

४. श्रम या थकान (Fatigue)।

५. अभिघात या चोट (Trauma)।

६. अध्यशन–एक बार का आहार पचने के पूर्व पुनः पुनः बालक को खिलाना पिलाना।

७. प्रसंग—लगातार क्रिया शीलता और आराम का अभाव।

८. चिन्तन—बच्चों में अनुपयोगी।

९. वेगविधारण—समय पर बच्चे को टट्टी पेशाब की आदत का न होना।

हृद्रोगोत्पत्ति—

उपर्युक्त कारणों से पहले दोष प्रकुपित होते हैं ये दोष हृदयस्थ रसधातु को दूषित करते हैं जिससे हृदय की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है और हृद्रोग उत्पन्न हो जाते हैं :—

दूषयित्वा रसं दोषाः विगुणा हृदयं गताः।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते॥

विविध हृद्रोग और उनके लक्षण—

माधव ने ५ प्रकार के हृद्रोगों का वर्णन किया है :—

(१) वातिक हृद्रोग—यह हृत्पीड़ा (ऐंजाइना पैक्टोरिस) का द्योतक है। यह बालरोग न होकर वयस्क रोग है।

(२) पैत्तिक हृद्रोग—इसमें तृष्णा, ऊष्मा (ज्वर), दाह, चोष, हृदय की आकुलता, धुंआ सा घुटना और मूर्च्छा (Syncope) के लक्षण देखे जाते हैं।

(३) श्लैष्मिक हृद्रोग—इसमें हृदय कफ से व्याप्त हो जाता है गुरुता, कफ संस्राव, अरुचि, स्तब्धता, अग्निमान्द्य

और मुखमाधुर्य आदि लक्षण देखे जाते हैं यह हृत्पेशीय परिसंचरणपात का आयुर्वेदीय रूप है।

(४) सान्निपातिक हृद्रोग—इसमें हृत्प्रदेश में तीव्र वेदना और तोद तथा तीनों हृद्रोगों के लक्षण पाये जाते हैं।

(५) कृमिज हृद्रोग—जब बालक के पेट में कृमि पड़ जाते हैं तब भी हृद्रोग संभव होता है इसमें उत्क्लेद, मुंह में थुकथुकी, तोद, शूल, हृल्लास, अंधकार प्रवेश का भाव, अरुचि, श्याव नेत्रता, और शोथ मिलता है।

हृद्रोगोपद्रव—

हृद्रोगों में क्लम, अवसाद, भ्रम, शोष ये ४ उपद्रव मिला करते हैं। रोगी बालक क्रियाहीन, निपतित, चक्कर खाता हुआ और सूखा इनमें से कोई भी रूप ले लेता है।

कहना नहीं होगा कि आज हृदय और हृद्रोगों के विषय में जो विपुलज्ञान उपलब्ध है वह सूत्र रूप में प्राचीन काल में था। (संकलित)

पृष्ठ २६१ का शेषांश

या वृक्ष की छाल, करंजुवे की मींगी सेंकी हुई, इन्द्रजौ सेंका हुआ, कमीला, और किरमानी अजवायन प्रत्येक १ भाग अजवायन का सत और सेंकी हुई हींग प्रत्येक आधा भाग लें। प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बना, उसमें अन्य द्रव्यों का कपड़छन चूर्ण मिला, अनन्नास के पत्रों के रस में एकदिन मर्दन कर रखलें।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक।

अनुपान—मुस्तादि क्वाथ।

३. मुस्तादि क्वाथ—

नागर मोथा, मूसाकानी, पलाश के बीज, वायविडंग दाड़िम वृक्ष की छाल, दोनों अजवायन, तेजपत्र, किरमानी अजवायन, सुपारी, देवदारु, सहिंजन के बीज, हरड़दल, बहेड़ादल, आंवलादल, खैर की लकड़ी का चूरा, नीम की अन्तर छाल, और इन्द्रयव समान भाग ले कूट कर उसमें से १५ ग्राम द्रव्य सोलह गुना जल में पका, चतुर्थांश बाकी रहने पर उतार कर छान लें।

यह क्वाथ पीने, वस्ति तथा अनुपान के रूप में सब प्रकार के कृमियों को नष्ट करने लिए प्रयोग करें।

कम्पिल्लक योग—

शुद्ध कम्पिल्लक चूर्ण ८ ग्रेन, पलाश धन सत्व ८ग्रेन, दोनों को मिलाकर एक मात्रा करें। ऐसी तीन मात्रा दिन भर में १. गुड़ में मिलाकर दें। इससे कृमि निकल जाते हैं।

२. शुद्ध कबीला २ ग्राम दही में मिलाकर दें।

३. शुद्ध कमीला २ ग्राम गुड़ में मिलाकर दें।

कृमिघ्न वटी (भै. र.)—

मात्रा—२ से ४ गोली तक। दिन में ३ बार। तीन दिन तक।

अनुपान—गरम दूध या जल।

विशेष— ३ दिन के पश्चात् विरेचन दें।

हृद्रोगे अर्जुन त्वक् चूर्ण

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये।
हृद्रोग जीर्ण ज्वर रक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥

गौ का घी दूध अथवा गुड़ के शर्बत से जो रोगी अर्जुन की छाल के चूर्ण को पीते हैं वे हृद्रोग, जीर्ण-ज्वर तथा रक्तपित्त प्रभृति रोगों से मुक्त होकर दीर्घायु को प्राप्त होते हैं। मात्रा वर्तमान में–१ माशे से ४ माशे तक।

अर्जुन घृत

पार्थस्य कल्क-स्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्व हृदामयेषु।

अर्जुन त्वक् के क्वाथ तथा कल्क से यथाविधि घृत को सिद्धकर सम्पूर्ण हृद्रोगों में सेवन कराना चाहिये। मात्रा–आधा तोला। बच्चों को १ माशा।

विविध बालहृद्रोग और उनकी चिकित्सा

संकलनकर्त्ता—वैद्याचार्य डा० रामनिवास शर्मा केंट होम्यौ०, हाथरस।

यह लेख शर्मा जी ने आधुनिक बालरोग विषयक विदेशी तथा आयुर्वेदीय संहिता ग्रन्थों से संकलित कर तैयार किया है जो संक्षेप में हृद्रोग सम्बन्धी बालकों की विकृतियों और लक्षणों को एवं उनके चिकित्सा सूत्रों तथा उपचारों को प्रकट करता है। —र० प्र० त्रिवेदी

बालकों को कई प्रकार के रक्त संवहन सम्बन्धी रोग हुआ करते हैं। उनमें से प्रमुख प्रमुख बाल-हृद्रोगों का वर्णन हम नीचे की पंक्तियों में प्रस्तुत कर रहे हैं—

१. साइनस अतालता

इसे अंगरेजी में साइनस एरिथमिया कहते हैं। श्वास के अन्दर खींचते समय इस रोग में हृद्‌गति तीव्र तथा श्वास निकालते समय मन्द पाई जाती है।

इसका रोग की दृष्टि से विशेष महत्व नही माना जाता है। कभी कभी तो जब हृदय पूर्ण स्वस्थ होता है तब भी इसे सुना जा सकता है।

यह अतालता हृदय प्रदेश में चोट लगने या अन्तः हृत्कला में शोथ होने पर नहीं सुनी जाती।

बड़ों में यह अतालता गहरी श्वास लेने पर ही प्रकट होती है।

२. अतिरिक्त प्रकुंचन या ऐक्स्ट्रा सिस्टोल

हृदय की स्वस्थ ताल में जब कोई अतिरिक्त स्पन्दन और उत्पन्न हो जाता है तब अतिरिक्त प्रकुंचन और उससे पूर्व होने वाले स्वस्थ आकुंचन के बीच का अवकाश प्राकृत से थोड़ा या छोटा होने के कारण अगले हृदयस्पन्द के होने से पहले देर तक कोई स्पन्द नहीं होता और ऐसा लगता है कि कोई स्पन्द मिस हो गया है। हर तीसरे चौथे हृदय के स्पन्द के बाद नाड़ी ठहर जाती है यही अतिरिक्त प्रकुंचन है।

हृदय के चारों प्रकोष्ठों में से किसी में भी आकुंचन के कारण यह स्थिति बनती है यह आकुंचन कहां हुआ इसका पता इलैक्ट्रो कार्डिगोग्राम के द्वारा ज्ञात होता है। जिन बालकों के हृदय पूर्ण स्वस्थ होते हैं उनको अतिरिक्त प्रकुंचन नही होते। यह उन्हीं बालकों में पाये जाते हैं जिनके हृदय की पेशी को कहीं न कहीं आघात या उपसर्गजनित आघात लगा हो। आमवातज हृदयशोथ में तीव्रावस्था समाप्त होने के बाद इसीलिये ये पाये जाते हैं। किसी भी औपसर्गिक तीव्र ज्वर के बाद बालकों में अतिरिक्त प्रकुंचन मिल सकते हैं। फ्लू और रोहिणी इनमें प्रमुख हैं। अन्य रोगों में ये नहीं मिलते।

अतिरिक्त प्रकुंचन परिश्रम या व्यायाम के क्षणों में गायब होकर आराम के काल मे पुनः मिल जाते हैं।

इनके उपचार की आवश्यकता आधुनिक चिकित्सक नहीं समझते।

३. प्रवेगी हृद्‌क्षिप्रता

इसे पैरौग्जिस्मल टैकीकार्डिया कहा जाता है। यह बालरोग नहीं है। यह ४ दिन के बालक से लेकर वृद्धावस्था तक मिल सकता है। हृत्पेशी में प्रक्षोभजनक कारण की उपस्थिति इस रोग का प्रधान कारण माना जाता है। यह कारण दौरे के समय जल्दी जल्दी हृदय में आकुंचन उत्पन्न करता है। सामान्यतः ये आकुंचन साइनो औरिक्युलर नोड से चलते हैं। यह प्रक्षोभक कारण बालक में किसी सहज विकृति के कारण भी बन सकता है। बाद में हृत्पेशी में रोग होने से भी यह उत्पन्न हो सकता है।

रोग का दौरा (प्रवेग) एकदम उत्पन्न होता है। रोगी बालक की हृद्‌गति २०० प्रति मिनट तक हो जाती है। यह बढ़ी हुई गति कुछ मिनटों, कुछ घण्टों या कुछ दिनों तक भी देखी जाती है फिर दौरा स्वतः सहसा समाप्त हो जाता और बालक स्वस्थ होजाता है। प्रवेश काल में बच्चा छाती में वेदना की शिकायत करता है। प्रवेश के कारण बालक श्रान्त या श्याव और श्वासकृच्छ्रता से पीड़ित तक

हो जाता है।

रोग का निदान केवल प्रवेश काल (दौरे के समय) ही सम्भव है।

इस रोग की चिकित्सा में अजीर्ण, उपसर्ग और कोष्ठ-बद्धता को दूर करने के लिए चिकित्सक को उपाय करने चाहिए। अधिक प्रवेग जो वार-वार आते हों शामक दवाओं के उपयोग से शान्त किये जाते हैं। तगर का फाण्ट या ब्रोमाइड का उपयोग किया जा सकता है। पहले डॉक्टर लोग अधिक गम्भीर अवस्थाओं में स्ट्रोफेंथीन १/६००-१/२४० ग्रेन की मात्रा में सिरा में देकर रोग शान्त करते थे। मुख द्वारा डिजिटैलिन दी जाती है। क्वीनीडीन मुख द्वारा आजकल दिया जाता है।

४. अलिन्द विकम्पन या ऑरिक्युलर फिब्रिलेशन

यह रोग वालकों में प्रायः नहीं होता। जिन वच्चों को आमवातज हृद्रोग होता है उनमें यौवन के आरम्भ में यह रोग होता है। इसलिए इसे वालहृद्रोग नहीं माना जासकता इस कारण उसका वर्णन भी नहीं किया जा रहा।

५, हृद्रोध या हार्टब्लॉक

वच्चों में हृद्रोध के दो रूप विद्वान् वतलाते हैं। एक रूप हृदय की सहजविकृतियों के कारण वनता है। दूसरा रूप किसी अन्य हृद्रोग की उत्पत्ति (उपार्जित ऐक्वायर्ड हृद्-रोग) के वाद वनता है।

सहजविकृतियों के कारण वने हृद्रोध में रोध पूर्ण होता है। इसका अर्थ है इस रोग से पीडित वालक के हृदय के अलिन्द और निलय एक दूसरे से पृथक् समय पर प्रकुंचन करते हैं।

इण्टरवेण्ट्रीक्युलर पट विवृत होने के कारण यह विकृति आती है। क्योंकि हिजके वण्डल में सातत्य नहीं रहता। इस कारण हृदय के मध्य भाग में स्टेस्थौस्कोप से सुनने पर एक प्रकुंचन मर्मर ध्वनि मिलती है।

उपार्जित हृद्रोध पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकार का होता है। इसका कारण हिज के वण्डल में शोथात्मक या व्यपजनात्मक परिवर्तन होते रहते हैं। रोहिणी के कारण पूर्ण हृद्रोध और आमवात के कारण अपूर्ण हृद्रोध उत्पन्न होता है।

उपार्जित हृद्रोध में वार वार वालक मूर्च्छित हो जाता है। उससे मृगी जैसे दौरे पड़ते हैं। यही नहीं वच्चे की मृत्यु भी हो सकती है।

सहज हृद्रोध जीवन भर रहता है पर उपार्जित हृद्रोध हृत्पेशी के सुधार होने पर सुधर जाता है। सहज विकार-जन्य हृद्रोध के वालक को सीमित मर्यादा में काम कराना चाहिए इतना जितने से उसे श्वास न फूले। उपार्जित हृद्रोध में वालक को पूर्ण विश्राम जो शैया पर किया जावे परमावश्यक होता है। जब तक हृदय में शोथ का एक भी लक्षण रहे उसे शैया से उठने नहीं देना चाहिए।

मूर्च्छा के दौरों में ३ से ५ वूंद तक त्वचा के नीचे ऐड्रिनलिन हाइड्रोक्लोराइड (१००० में १ भाग) का इंजेक्शन देते हैं। ऐट्रोपीन ½ मिग्रा का त्वचा के नीचे सूचीवेध भी लाभ करता है। आमवातज हृद्रोध में कार्टिको-स्टरॉइड्स तथा सैलिसिलेटों का प्रयोग वालमात्रा में कराया जाता है।

६. आमवात (र्‍यूमैटिक) हृद्रोग

आमवातज हृद्रोग वाल्यावस्था का सवसे गम्भीर रोग माना जाता है। उपार्जित हृद्रोगों को उत्पन्न करने में यह मूल कारण वनता है।

आमवातज हृद्रोग द्वारा हृदय के समस्त अवयवों पर आक्रमण हुआ करता है। इस कारण इसमें हृदय की अन्तःकला, हृत्पेशी और हृदयावरण तीनों ही प्रभावित होते हैं इसलिए इन तीनों को मिलाकर आमवातज हृद्शोथ(र्‍यूमैटिक कार्डाइटिस) कहना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

आमवातज हृद्रोग सामान्यतः दरिद्रों का रोग है। जो वच्चे आर्द्र और झुग्गियों के वातावरण में पलते हैं जिन्हें पोषक पदार्थ काफी मात्रा में नहीं मिलते इस रोग से पीडित रहते हैं। यद्यपि जलवायु और खानपान रोगोत्पत्ति के प्रत्यक्ष कारण नहीं होते फिर भी इनका महत्व इसलिए है कि इनके ठीक रहने से वालक में रोग के उपसर्गकारी जीवाणुओं के प्रतिरोध करने की शक्ति वहुत वढ़ जाती है। यह यद्यपि सत्य है कि यह रोग एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक चलता चला जाता है पर उसमें आनुवंशिकता का कोई हाथ नही होता।

आमवातज हृद्रोग ३ वर्ष की आयु से नीचे प्रायः नहीं होता। पांच वर्ष के बालक को यह लग सकता है। ८-१० वर्ष के बालक इसके अक्सर शिकार हो जाते हैं।

इस रोग का आरम्भ होने से पहले बालक के टांसिलों में शोथ का होना या गले में शोथ का होना प्रायः पाया जाता है। टांसिल या गले के शोथ के इतिवृत्त मिलने के बाद तीसरे चौथे सप्ताह में आमवातज हृद्रोग के लक्षण प्रगट होने लगते है। कभी कभी गले में रोग बहुत मृदु स्वरूप का होने से बच्चे के माता-पिता उसका ध्यान भी नहीं दे पाते।

आमवातज हृद्रोग एक औपसर्गिक बालरोग है। इसकी उत्पत्ति मालागोलाणुओं से होती है। यह तथ्य यद्यपि स्वीकार कर लिया गया है फिर भी आमवात हृद्विक्षतों का कल्चर करने पर उनमें मालागोलाणु नहीं उगते ऐसा भी तथ्य सामने आया है। गले का उपसर्ग शोणसंलायी मालागोलाणु के द्वारा हो सकता है पर क्या यह मालागोलाणु हृदय में प्रवेश कर आमवातज हृद्रोग पैदा करता है और उसमें प्रत्यक्ष भाग लेता है ऐसा सिद्ध नहीं हो पा रहा। अब लोगों का यह विचार बना है कि शोणसंलायी मालागोलाणु के कारण एक प्रकार की अलर्जी बनती है उसी अलर्जी का परिणाम यह आमवातज हृद्रोग है।

कुछ लोग ऐसा भी अनुमान लगाते हैं कि बालकों का आमवातज हृद्रोग एक निःस्यन्दी विषाणु के कारण बनता है।

आमवातज हृद्रोग में निम्नांकित विकृतियां पाई जाती है—

i. हृदय का बड़े आकार का होना,

ii. हृत्कपाटों पर अंकुर (उद्भेद) उग आते हैं। ये अंकुर माइट्रल वाल्व (द्विकपर्दीकपाटिका) पर सबसे पहले उगते है फिर वे महाधमनीय कपाटिका, त्रिकपर्दी कपाटिका और फुफ्फुसी कपाटिका पर इसी क्रम में उगते हैं।

iii. रोग के जीर्ण हो जाने पर माईट्रल फ्लैप्स, कोर्डी टेंडिनी तथा कभी कभी महाधमनीय कपर्दिकाएं स्थूल और सिकुडी हुई हो जाती हैं।

iv. इस रोग में हृदयावरण शोथ (पेरिकार्डाइटिस) पहले या बाद में सामान्य शोथयुक्त या आसंजन (ऐधिझन) युक्त पाया जाता है। ये आसंजन हृदयावरण के दोनों पर्दों के बीच में ही नहीं बल्कि हृदयावरण और फुफ्फुसावरण के बीच या मध्यस्थानिका, महाप्राचीरापेशी आदि के साथ भी बन सकते हैं।

v. हृदय की वाहिनियों के समीप ही शोथ की छोटी छोटी नामियां उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें रूमेटी पर्विका, या ऐस्काफ नौड्यूल कहते है। ये पर्विकाएं हृत्पेशी में अगणित होती हैं। हृदयावरण तथा अन्तर्हृदकला में भी पाये जाते है। कपाटिकायों के अन्दर भी ये मिलते और कपाटशोथ उत्पन्न करते है। ये महाधमनी, अन्य मध्यमाकारी वाहिनी तथा फुफ्फुसों में भी पाये जाते है।

vi. आमवातज हृद्रोग के साथ अरक्तता, लसीकोशिकाओं की वृद्धि तथा सैडीमेंटेशन गति की वृद्धि भी मिल सकती है।

लक्षण—

१. यह रोग धीरे धीरे शुरू होता है। लक्षण आरम्भ में मिलते ही नही। कुछ दिन बाद बच्चे के संरक्षक उसे लेकर आते हैं जब बच्चे को जल्दी जल्दी श्वास आती है। थोड़ी अरक्तता होती है और उसका भार घटने लगता है। यदि इस समय उसके हृदय की परीक्षा की गई तो ज्ञात होता है कि बच्चे को हृद्रोग हो गया है तथा वह काफी प्रवृद्धावस्था में है।

२. पूछने पर ज्ञात होता है कि बच्चे का गला खराब था या उसके टांसिल बढ़ गये थे या उसे ज्वर हो गया था। यदि तभी से बराबर उसके हृदय की स्थिति पर अध्ययन किया गया होता तो हृदयशोथ (कार्डाइटिस) के आरम्भ होने का पूरा पूरा ज्ञान हो गया होता।

३. इस रोग में सबसे पहले बच्चा पांडुवर्ण का होता चला जाता है उसका वर्ण फीका पड़ता जाता है जो मटियाला या मोमिया होता जाता है।

४. उसके बाद रोगी ज्वराक्रान्त हो जाता है। तापांश १०० या १०१° F तक जाता है जो ७ से १४ दिन तक रहकर घट जाता या पूर्णतः ठीक हो जाता है। कभी कभी जब तापक्रम घट कर ९६° या नीचे पहुँच जाता है तब बालक दारुण अवस्था को पहुँच जाता है और मर तक सकता है।

५. बालक की नाड़ी की गति तेज होना शुरू होती है जो ज्वर के बढ़ने के साथ साथ बढ़कर १४० प्रति मिनट तक पहुँच जाती है। और जब तक तीव्र ज्वर या शोथ रहता है नाड़ी की गति बढ़ी हुई ही रहती है। ज्वर के ठीक होने के भी काफी दिनों बाद नाड़ी की गति सुधरती है।

६. बच्चे को उलटियां आती हैं और वह भोजन के प्रति अरुचि प्रदर्शित करता है।

७. नाक से रक्तस्राव भी प्रायः होता है।

८. हृदयावरण शोथ होने पर छाती में पीड़ा भी मिलती है।

९. रात के समय बच्चा डर कर चीखता हुआ भी पाया जाता है।

१०. चिकित्सक द्वारा जांच करने पर हृत्स्पन्द वाम चूचुक तक फैला हुआ मिलता है। थोड़ा परिताड़न करने से मन्दता का क्षेत्र भी बढ़ा हुआ मिलता है। कभी कभी यह मन्द क्षेत्र प्रतिदिन बढ़ता जाता है। शिखर भाग छोटा और मृदु होता जाता है वहां कोमल प्रकुंची मर्मरध्वनि उत्पन्न हो जाती है। जब इसी क्षेत्र में अनुशिथिलन मर्मर ध्वनि उत्पन्न होने लगे तो समझना चाहिए कि बच्चे के हृदय में विकृति उत्पन्न होने लगी है। इसके कारण शिखर पर दो के स्थान पर ३-३ ध्वनियां सुनाई पड़ने लगती हैं। ये ३ ध्वनियां हैं—प्रकुंची मर्मरध्वनि एक, द्वितीय हृच्छब्द दो, तो मध्य अनुशिथिलन मर्मरध्वनि तीन। ये ध्वनियां स्थानाश्रित होती हैं और केवल १ इंच के क्षेत्र में ही सुनी जा सकती हैं। अनुशिथिलन ध्वनि तब बनती है जब द्विकपर्दी कपाटिका के रोग के कारण स्थूल और कठिन हो जाने से अलिन्द का रक्त निलय द्वारा ग्रहण किया जाता है कभी कभी जब रोग दीर्घकालीन हो जाता है तब मध्य अनुशिथिलन मर्मरध्वनि का स्थान प्राक्-प्रकुंची मर्मरध्वनि ले लेती है। यह ध्वनि हृदय की गति तेज होने पर ही सुनी जाती है।

११. जब तीव्र शोथ धीरे धीरे ढलता जाता है तो ये मर्मरध्वनियां भी घटती जाती हैं। कुछ सप्ताहों के पश्चात् मध्य अनुशिथिलन मर्मरध्वनि तथा प्राक्-प्रकुंची मर्मरध्वनि शान्त होती हैं और उनका स्थान एक मध्य अनुशिथिल ब्रूई (Bruit) ले लेती है। कुछ बच्चों में प्रकुंची मर्मरध्वनि भी शान्त हो जाती है और लगता है कि हृदय अपनी प्राकृत स्वस्थावस्था को प्राप्त हो जायगा। ठीक तभी धीरे-धीरे माइट्रल स्टिनोसिस या द्विकपर्दी संकीर्णता चालू होने लगती है। इसमें शिखर का प्रथम शब्द तेज होने लगता है और मध्य अनुशिथिलन मर्मरध्वनि इसके साथ जुड़ जाती है जिससे इस तेज प्रथम शब्द के साथ एक गुड़गुड़ाहट (Rumbling) और सरसराहट (Slapping) का शोर चलता रहता है।

यह न भूलना होगा कि द्विकपर्दी संकीर्णता का रोग तत्काल नहीं उत्पन्न होता बल्कि कुछ समय बाद पैदा होता है और यह समय बाल्यकाल न होकर प्रायः तारुण्यकाल होता है।

१२. हृदय का आकार कपाटिकाओं के आघात पर निर्भर होता है। यदि कपाटिकाएं अधिक आघातग्रस्त हो चुकी हैं और उनके मुख संकीर्ण हो गये हैं और उनसे रक्त के आवागमन में कठिनाई होने लगी है तो हृदय की पेशी में फैलाव या वृद्धि होने लगती है जिसके कारण हृदय का आकार बढ़ जाता है और इसके कारण हृद्गति का सन्तुलन हो जाता है। हृदयस्पन्द दृढ़ तथा प्रथम हृच्छब्द कुछ लम्बा हो जाता है।

हृदय के फैलने या अतिचय के कारण छाती में प्रायः कोई उभार नहीं होता। पर यदि ३ वर्ष के आसपास हृदयशोथ होता है तो छाती में बांई तरफ उभार बना हुआ देखा जा सकता है।

(१३) सामान्यतः आमवातज उद्भेद द्विकपर्दी कपाटिका पर उत्पन्न होते हैं। यदि रोग गम्भीर रूप लेता है तभी महाधमनी कपाटिकाओं पर ये उद्भेद उगते हैं। जब ये उद्भेद महाधमनी के वाल्वों पर उत्पन्न हो जाते हैं तभी एक अनुशिथिलन मर्मरध्वनि उत्पन्न हो जाती है जिसे उरोऽस्थि के बायें किनारे पर सुना जा सकता है। जब एओर्टा में प्रत्यावहन या रिगर्जीटेशन चालू हो जाता है तब वाम निलय की पेशी का परमचय हो जाता है और हृदयस्पन्द या अपेक्स बीट नीचे की ओर पांचवी छठी अन्तर्पर्शुकाओं तक पहुँच जाता है।

अब हम आमवातजहृद्रोग के कारण उत्पन्न विभिन्न व्याधियों का थोड़ा ज्ञान कराना आवश्यक समझते हैं:—

हृदयावरण शोथ या पेरीकार्डाइटिस—

हृद्शोथ रहने पर हृदयावरण भी शोथयुक्त कुछ दिनों में हो जाता है। बच्चे का मुख चिन्ताग्रस्त, चेहरा

पाण्डुर और फूला सा देखा जाता है। ज्वर १०२° फै. तक हो जाता है। आरम्भ में छर्दि मिलती है। बच्चा बहुत बेचैन हो जाता है कभी-कभी सूखी खांसी, छाती में पीड़ा, पीड़ा कभी-कभी बायें कन्धे में ही प्रगट होती है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है हृदग्रस्पन्द घटता चला जाता है। हृत्पेशी की दुर्बलता के कारण कुछ समय बाद यह बिल्कुल भी सुनाई नही पड़ता है। हृदय बहुत अधिक विस्फारित हो जाता है। हृद्शब्द सुनाई नहीं पड़ते। जब घर्षणध्वनि सुनाई पड़ने लगती है तब रोग का निश्चय हो जाता है। पहले घर्षणध्वनि हृदय के आधार पर सुनाइ देती है जो शीघ्र ही सारे हृत्प्रदेश में सुनी जा सकती है। कभी- कभी बालक हृदयावरण शोथ से ग्रसित हो जाता है किन्तु उसके हृत्क्षेत्र में घर्षणध्वनि बिल्कुल भी नहीं सुनाई पड़ती। मृत्यूत्तर परीक्षाओं से इसका पता लगता है जब हृदयावरण शोथ तो मिलता है पर रुग्ण बालक के जीवन काल में घर्षध्वनि बिल्कुल भी नहीं सुनी गई। ऐसा तभी होता है जब हृदयावरण शोथ थोड़े क्षेत्र में हो या पीछे की ओर हो।

हृदयावरण शोथ के कारण कभी-कभी हृदयावरण के दोनों पर्दो में और कभी-कभी आस-पास की रचनाओं के साथ असंजय (ऐधीझन) बन जाते हैं।

रुमेटी पर्विकाएं—

आमवातज हृद्रोग में उपद्रव प्रायः मिलते है। एक उपद्रव है रुमेटी पर्विकाओ (र्‌यूमैटिक नौड्यूलों) का बनना। ये उभरी हुई हड्डियों के सिरों पर, कुहनी पर, टखनों पर कशेरुकाओं के ऊपर, पृष्ठवंश पर देखी जाती हैं। ये पर्विकाएं १ से लेकर १०-१२ तक भी हो सकती हैं। ये चमड़ी के नीचे गोली सी होती हैं जो ज्वार से मटर के दाने के बराबर तक आकार में पाई जाती हैं। कभी-कभी जब ये हथेलियों में बन जाते हैं तो हाथ में निकोचन (कंट्रेक्चर) कर सकती हैं उस समय हाथ की अंगुलियों में स्प्लिट बांधनी पड़ सकती है वैसे इनके उपचार की विशेष आवश्यकता नही होती।

त्वग्रक्तिमा—

हृद्शोथ के साथ साथ कभी-कभी बिना ज्वर के त्वग्रक्तिमा या लाल पित्तिका (ऐरिथिमेटस रैश) की उत्पत्ति देखी जाती है। यह समीपस्थ शाखाओं और शरीर मध्य भाग में पाई जाती है। यह तभी मिलती है जब आमवात हृदय को अभिभूत कर लेता है। इसका न कोई इलाज है और न यह किसी आमवातनाशक दवा से ही प्रभावित होती है। इसमें क्षोभ, खुजली कुछ भी नहीं होती।

रोग निदान—

सामान्यतः आमवातज हृद्रोग का निदान करना कठिन नहीं होता। पर कभी-कभी दिक्कत भी पड़ जाती है। उदाहरण के लिए हृदयावरण शोथ में शूल होने पर उसे बालक का उदरशूल समझने की भूल हो सकती है। कभी कभी अरक्तता या अनीमिया के कारण भी हृदय की आकार वृद्धि होजाती है और प्रकुंची मर्मरध्वनियां मिल सकती हैं इनसे चिकित्सक केवल अनीमियां के निदान की भूल कर सकता है और आमवातज हृद्रोग की विभीषिका को भुला बैठता है। कभी-कभी आमवातज हृद्रोग को सहज हृद्रोग से पृथक् करना कठिन होता है। निदानज्ञ को इन सबका ध्यान रखना आवश्यक है। हृद्गति का तेज होना हृदग्र पर प्रकुंचीत्रुई का मिलना तथा अन्य भौतिक लक्षणों से आमवातज हृद्रोग को पहचानना कठिन नहीं होता।

साध्यासाध्यता

यदि आमवातज हृद्रोग का निदान समय से कर लिया जाय, रोगी को पूर्ण विश्राम दिया जाय और परिचर्या पर विशेष ध्यान दिया जाय तो रोग को नियन्त्रित किया जा सकता है और रोगी की प्राणरक्षा की जा सकती है। यह एक लम्बी अवधि का रोग है। इसका विस्तार तारुण्य तक हो पाता है। इसलिए इसमें चिकित्सकों के लिए पर्याप्त समय रहता है। यदि सावधानी और सतर्कतापूर्वक उपचार किया जाय और बालक को अन्य या नवीन उपसर्ग से बचाते हुए रखा जावे तो साध्यता सम्भव है।

अधिकतर बच्चे हृद्शोथ का पहला झटका झेल लेते हैं पर ऐसा करने मे उनके हृदय का कचूमर निकल जाता है। हृत्पेशी और कपाटों पर गहरे घाव बन जाते हैं। यदि उन्हें दुबारा रोग का झटका नहीं लगा तो वे आराम से जीवन चला लेते है। हृत्पेशी थोड़ी मोटी, द्विकपर्दी कपाट में प्रत्यागमन की त्रुई मात्र पायी जाती है। कुछ में

द्विकपर्दी कपाट (माइट्रल वाल्व) मोटा होता चला जाता है उसमें निकोचन होने लगते हैं जिसके परिणाम स्वरूप शनैः-शनैः माइट्रल संकीर्णता (माइट्रल स्टिनोसिस) होजाती है। जो बच्चे को जीना दूभर कर देती है।

एक बार आमवातज हृद्रोग होजाने पर बार-बार रोग के आक्रमण का खतरा बन जाता है। प्रत्येक झटके के साथ हृदय को स्थायी आघात प्राप्त होता है। कभी-कभी बच्चा पहले झटके से मुक्त पूरी तरह नहीं हो पाता, रोग बढ़ता चलता है और वह उसके प्राणों को लेकर ही छोड़ता है। मृत्यु के पूर्व तक होश में रहता है और बहुत करुणा-पूर्ण दृश्य उपस्थित करता है। उसका व्यवहार विचित्र हो जाता है वह किसी एक व्यक्ति या नर्स के हाथ से ही दवा खाना पसन्द करता है। अपने चिकित्सक को छोड़ वह किसी से बातें नहीं करता। उसके आकर्षण का केन्द्र केवल एक ही व्यक्ति, सम्बन्धी या नर्स रह जाती है। बच्चे की बेचैनी और भयाक्रान्तता अवश्य ही बहुत कष्टप्रद होती है।

आमवातज हृद्रोग की चिकित्सा

आधुनिक बालरोग चिकित्सक इस रोग की चिकित्सा कई सीढ़ियों में करते हैं। इनमें पहली सीढ़ी है रोग की सक्रिय अवस्था। यह रोगारम्भ से लेकर कार्डाइटिस (हृद्-शोथ) बनने तक की अवस्था है। इसमें औषधि उतना काम नहीं करती जितनी कि अच्छी परिचर्या और बालक का पूर्ण विश्राम काम करता है। बच्चे को आराम से खाट पर गरम गरम गद्दों के बीच लिटाये रहना। लेटे लेटे ही दूध पिलाना टट्टी-पेशाब कराना और उसे निरन्तर लेटे रहने के लिए लुभाये रहना यह अच्छी परिचर्या के अन्दर आता है। यह परिचर्या और यह विश्राम रोगी बालक के सुधर जाने पर भी चालू रखना होता है। इस काल में बच्चे को पौष्टिक किन्तु शीघ्र पचने योग्य द्रव आहार देते रहना होता है। जितनी भूख हो उतना आहार देना चाहिए अधिक नहीं। दलिया, टोस्ट, दूध, दूध का दलिया और फल उसे दिये जा सकते हैं।

इस काल में भोजन और विश्राम के बाद जो अति महत्वपूर्ण वस्तु है वह है निद्रा। बच्चा खूब सोवे इसका प्रबन्ध करना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़े तो निद्रा लाने के लिए निद्राकर या शामक औषधियां भी दी जा सकती हैं।

इस काल में हृदय क्षेत्र की पीड़ा दूर करने और खांसी रोकने के लिए भी औषधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। छाती पर गरम-गरम सेक या पुल्टिस या एण्टी फ्लोजिस्टक लेप किए जा सकते हैं। यदि बच्चे को वमन आती हो तो वमनहर औषधि दी जानी चाहिए।

इस अवस्था में जब रोग की सक्रिय अवस्था चालू है क्या औषधि दी जानी चाहिए जो रोग के मूल कारण को दूर कर सके, इस पर विद्वानों की अलग-अलग राय है। पाश्चात्य चिकित्सक हृद्शोथ में ऐस्पिरीन या सोडियम सैलिसिलेट्स को निरर्थक मानते है, यद्यपि आमवातज सन्धिशोथ में तथा विविध प्रकार की वेदनाओं में इनका उपयोग है। इनके प्रयोग से आमवातज ज्वर कम हो जाता है पर उतनी जल्दी कम करने की आवश्यकता पाश्चात्य वाले चिकित्सक (शैल्डन आदि) नहीं मानते। प्राइस तो कोर्टीको स्टेराइडों को भी आपत्तिजनक बतलाता है। ये न कारण को दूर करते हैं न हृदय के नुकसान को ही रोक पाते हैं। इस सक्रिय अवस्था में कुछ आधुनिक विद्वान पेनिसिलीन की बड़ी-बड़ी मात्राएं प्रयोग करने का परामर्श देते हैं। कुछ औरोमीसिन टेट्रासाइक्लीन का उपयोग कराते है। कुछ लोग सोडियम सैलिसिलेट्स, कार्टीकोस्टेराइड्स, (डैकाड्रोन) बैटनेसोन आदि, तथा स्ट्रेप्टो-पैनिसिलीन या अन्य ब्रॉड स्पैक्ट्रम एण्टी बायोटिक्स का उपयोग करने की सलाह देते है।

जो लोग डिजिटैलिस का प्रयोग इस रोग में उचित मानते हैं उन्हें कई बाल चिकित्सक उचित नहीं समझते। उनका कथन है कि हृत्पेशी इस रोग में शोथयुक्त अर्थात् बीमार रहती है। यदि उसे डिजिटैलिस दी गई तो उसे जबर्दस्ती अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। बीमार पेशी से परिश्रम लेने से वह थक कर फेल हो सकती है। पर यदि एक बार हृद्शोथ हो चुका हो उसमें यदि पुनः हृद्शोथ उत्पन्न हो जाय तो उस स्थिति में डिजिटैलिस का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। डिजिटैलिस उस अवस्था में तब तक देना चाहिए जब तक बच्चे की नाड़ी ८० या ९० प्रति मिनट न हो जावे।

तीव्रावस्था में हृत्पेशी के फैलाव को सीमित करने में कुचेलकसत्व या स्ट्रिक्नीन का उपयोग भी किया जाना कुछ वाल चिकित्सक लाभप्रद मानते हैं।

हृद्शोथ रोग की चिकित्सा की दूसरी सीढ़ी आरम्भ होती है जव उत्तरोत्तर हृदय की क्रिया फेल होने लगती है। इस समय वालक को श्यावता आने लगती है। फुफ्फुसों मे रक्ताधिक्य हो जाता है यकृद्वृद्धि तथा सर्वाङ्ग शोथ के लक्षण मिलते हैं। हृदय का फेल्योर तीव्रावस्था में भी मिल सकता है और उस समय भी मिल सकता है जव माइट्रल वाल्व की संकीर्णता वढ़ती जाने से हृत्पेशी की सम्पूरकशक्ति घटती चली जारही हो। शैल्डन इस स्थिति में रक्त मोक्षण की सलाह देता है। The withdrawal of a small amount of blood is one of the best and quickest ways of giving relief. यह रक्तमोक्षण थोड़ा ही किया जावे इससे शीघ्र ही लाभ होता है। रक्तमोक्षण के स्थान पर हृत्प्रदेश मे २-३ जोंक लगाने की भी सलाह दी जाती हैं:–The application of 2 or 3 leeches over the precordia is an equally satisfactory methad. जलौका धीरे-धीरे और थोड़ा रक्त चूसती है जो तीव्र हृदशोथजन्य हृत्पात में उचित है। जीर्ण हृत्पात में सिरा से रक्तमोक्षण करके २५ से ५० मि. लि. रक्त तक निकालना आवश्यक होता है। यहां तो सुश्रुत संहिता में वर्णित रक्तमोक्षण और जलौकावचारण का ही मानों अध्याय खुल गया हो। रक्त निकलने से वच्चे को आश्चर्यजनक (स्ट्राईकिंग) सफलता का दावा शैल्डन करता है।

रक्तमोक्षण या जलौका प्रयोग के अतिरिक्त विरेचन कर्म की ओर भी चिकित्सक का ध्यान जाना चाहिए। अच्छी तरह मलत्याग हो तथा खुलकर कई वार मूत्रत्याग हो इसका विशेष ध्यान देने से सर्वाङ्ग शोथ घट जाता है।

डिजिटैलिस का टिंक्चर अथवा डाइगॉक्सीन का प्रयोग इस अवस्था में उचित माना जाता है। इससे हृद्गति ९० प्रति मिनट पर कायम रखी जा सकती है। डाइगॉक्सीन ०.२५ मिग्रा १-२ वार देने से काम चल जाता है।

यदि रोगी को जलोदर भी हो गया है तो उसे ठीक करने के लिए मूत्रल और विरेचक द्रव्यों का प्रयोग विशेष रूप से करना होगा। मर्सैलाइल या नैप्टाल या लैसिक्स का सूचीवेध और जलोदरारिरस उत्तम कार्य करते हैं।

रोगी चिकित्सा की तीसरी सीढ़ी रोगोपरान्त काल में आरम्भ होती है। इस अवस्था में रोगी वालक के हृद्शोथ की तीव्रावस्था दूर हो जाती है वच्चे का स्वास्थ्य सुधरने लगता है। इस अवसर पर चिकित्सक को वहुत सावधानी वरतने की आवश्यकता होती है। उसे पूर्ण विश्राम की स्थिति में कव तक रखा जाय इसे भी चिकित्सक को सीखना पड़ता है। आराम का काल निर्धारण करने में E. S. R. परीक्षा का वड़ा महत्व है। यह स्वस्थावस्था में ३ से ६ मि.मी. प्रति घन्टा होता हैं जव कि हृदशोथ में यह अङ्क ३० से ६० मि मी तक जा पहुँचता है। जव ई. ऐस. आर. घटकर १० मिमी प्रति घन्टा पहुँच जाय तो वच्चे का विश्रामकाल धीरे-धीरे घटाया जा सकता है। आरम्भ में वच्चे को १ घन्टा वैठाना फिर २ घन्टे तक वैठने देना फिर १ घन्टे खेलने देना आदि इस तरह करते-करते उसे दिन भर हलका खेल दोपहर को शयन और रात्रिभर विश्राम की आदत डाली जा सकती है। इस काल में वच्चे को सुपाच्य पौष्टिक आहार अच्छी मात्रा में देते रहना चाहिए।

रोग निवारण के लिए सतत प्रयत्न आमवातज हृद्रोग की चिकित्सा की चौथी सीढ़ी है। क्योंकि यह रोग एक वार उत्पन्न होकर फिर वड़ी कठिनाई से ठीक होता है। एक वार ठीक होने पर पुनः उसके आक्रमण का अर्थ है वच्चे को मौत के मुंह में जाने देना। इस रोग के निवारण हेतु उपाय करते रहना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि रोग का तीव्रावस्था में उपचार करना।

रोग का उत्पन्न न होने देना भी वहुत वड़ा काम है। कुछ लोग टॉन्सिल वृद्धि को रोग का कारण मानते हैं और टॉन्सिलों को निकाल देने की सलाह देते हैं। अनुभव यह वताता है कि टॉन्सिलों के काटकर निकाल देने के वाद भी काफी वच्चों को हृद्शोथ होता हुआ देखा गया है। क्योंकि टान्सिल निकाल देने के वाद भी गले में इतनी अधिक लसाभ टिश्यू रह जाती है जहां मालागोलाणु रह और पनप सके तथा हृद्शोथ उत्पन्न कर सके। वच्चे के

गले में कोई खराबी न हो इसके लिए विशेष प्रयत्नशील रहने की आवश्यकता होती है।

एक बार गला खराब हो जाने के ३-४ हफ्ते बाद हृद्शोथ उत्पन्न होता है। यदि शोणांशी मालागोलाणु नाशक उपचार गले की खराबी के समय ठीक से इस्तेमाल कर दिया जावे तो हृद्शोथ की उत्पत्ति को रोका जा सकता है। कुछ समय पूर्व तक जब तक ऐण्टीबायोटिक का युगारम्भ नहीं हुआ था गले की खराबी के बाद बच्चे को नियमित रूप से ऐस्पिरीन देते थे। फिर सल्फोनैमाइडों का प्रयोग किया अब पेंटिड सल्फा से लेकर ऐरिथ्रोमाइसीन तक दे रहे हैं।

जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है रोग की उत्पत्ति में घर की दरिद्रता, आस पास की गन्दगी, गीला वातावरण और पोषक आहार का अभाव सहायक कारण होते हैं इसलिए झोंपड़ी झुग्गियों या नोहरों की भीड़ घटाई जावे, उन्हें अच्छे मकान दिये जावें और वातावरण अच्छा बनाया जावे तो बालकों को इस भयानक रोग से बचाया जा सकता है।

आमवातज हृद्रोग की चिकित्सा के निम्न सोपान या स्टेजेज ऊपर वर्णित किये गये हैं:—

i. तीव्रावस्था की चिकित्सा

ii. हृत्पात की व्यवस्था,

iii. रोगोत्तर देखभाल, तथा

iv. रोगनिवारण और रोग प्रतिषेध हेतु सक्रिय कार्य

आयुर्वेद में यह रोग आमवात और शोथ के अन्दर सन्निविष्ट है। लक्षणों के अनुसार श्वास, कास, पार्श्वशूल तथा जलोदर और सर्वाङ्गशोथ के लिए किए गए उपाय कारगर हो सकते हैं। इनके विविध चिकित्सा सूत्र और योग इस प्रकार दिये गये हैं। बालकों में देशाद्युत कार्य ही करणीय हैं:—

आमवात—

लंघनं स्वेदनं तिक्तदीपनानी कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चाऽऽममारुते ॥
रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापोटलैस्तथा ।
उपनाहाश्च कर्त्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ।

योग रत्नाकर का वैश्वानरचूर्ण आमवात, गुल्म, हृद्रोग और बस्ति रोगों पर काम करने से उत्तम प्रयोग है:—

अजमोद	३	भाग
शुण्ठी	४	भाग
हरीतकी	१२	भाग

चूर्ण बनाकर गोमूत्र या गरम जल से ३ से ६ माशे तक दें। योगरत्नाकर का सिंहनाद गुग्गुल भी अच्छा काम करता है। यह आमवात के साथ श्वास, कास, गुल्म शूल उदर रोगों को भी दूर करता है।

इस रोग में ये कुपथ्य और असेवनीय माने गये हैं—

असात्म्यं वेगरोधं च जागरं विषमाशनम् ।
वर्जयेदाम-वातार्तो गुर्वभिष्यन्दकानि च ॥

शोथ—

आमवातज हृद्रोग की वृद्धि होने से फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य एवं सर्वाङ्गशोथ हो जाता है। सामान्य दिवाबली वातिक शोथ तो हृदय के रोग के ही परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है जब दिन भर काम करते रहने से थका हृदय पूरी शक्ति से पैरों की ओर संचरित रक्त को खींचकर ऊपर उठाने में असमर्थ हो जाता है तब पैर पर शोथ हो जाता है। रात में विश्रामकाल में शोथ शान्त हो जाता है:—

यश्चाप्यरुणवर्णाभः शोफो नक्तं प्रणश्यति ।
स्नेहोष्णमर्दनाभ्यां च प्रणश्येत् स च वातिक. ॥

निम्न लिखित श्लोक में जो शोथ के असाध्य लक्षण दिये हैं वे हृदय की विकृति के परिणामस्वरूप उत्पन्न शोथ के ही हैं:—

श्वासः पिपासा दौर्बल्यं ज्वरश्छर्दिररोचकाः ।
हिक्कातीसारकासाश्च शोथिनं क्षपयन्ति हि ॥

शोथ की चिकित्सा का सूत्र है—

अथाऽऽमजं लंघनपाचनक्रमै-
विशोधनैरुल्बणदोषमादितः ।

\+ + + +

शोथे वातोत्थिते पूर्वं, मानार्पं त्रिवृतं पिबेत् ।
तैलमेरण्डजं वाऽपि मन्त्रबन्धेऽपि तन्मतम् ॥
शाल्यन्नं पयसा युक्तं रसैर्वापि प्रयोजयेत् ।
स्वेदाभ्यङ्गाश्च वातघ्नान्वैस्तैलैश्च सन्निपात् ॥

इस शोथ में शुण्ठी, पुनर्नवा, एरण्डमूल शालपर्णी पृश्निपर्णी, कण्टकारी, वृहती और गोक्षुर का कषाय या फाण्ट अच्छा काम करता है।

सर्वांगशोथ पर पथ्यादि क्वाथ--

पथ्यामृतामार्ङ्गिपुनर्नवाऽग्निदार्वीनिशादारुमहौषधानाम् ।
क्वाथो निपीतोदरपाणिपादवक्त्राश्रितं हन्त्यचिरेण शोफम् ।

इसमें हरड़, गुडूची, भारंगी, पुनर्नवा, चित्रक, दारुहल्दी, हल्दी, देवदारु, सोंठ का क्वाथ बनाकर देते हैं। शीघ्र शोथ नष्ट होता है।

गुड़, पिप्पली शुण्ठी, का चूर्ण आमदोष सहित शोथहर है। इसी प्रकार पुनर्नवा देवदारु और शुण्ठी श्रृत दुग्ध भी शोथहर है।

शोफारि रस—

हिंगुल, जायफल शुद्ध, कालीमिर्च, शुद्धटंकण और पिप्पली को कूट पीसकर रखें। ½ रत्ती से १॥ रत्ती तक बालमात्रा है जो सर्वशोथहर माना गया है।

आयुर्वेद सभी शोथों तथा जलोदर में नमक, तैल, मद्य का प्रयोग वर्जनीय बतलाता है।

उदर रोग—हृदयशोथ का एक उपद्रव जलोदर भी है। साथ ही उदर रोगों की सम्प्राप्ति में कोष्ठांग का उत्सेध विशेष रूप से स्वीकार किया गया है। उस परिभाषा के अनुसार कार्डाइटिस या हृद्शोथ उसी प्रकार का उदर रोग है जैसा कि प्लीहोदर या यकृद्दाल्युदर क्योंकि इनमें भी आकार वृद्धि ही उदररोग-सूचक लक्षण है। पैरीकार्डाइटिस में हृदय का आकार वाम चूचुक से वामकक्षा तक चला जाता है जो उसे उदर की संज्ञा तक ले जाता है।

इस लिए यदि हृद्रोग या हृद्शोथ या हृदयावरण शोथ को एक उदर रोग मानकर इलाज किया जावे तो उसमें अमित लाभ होता है यह आचार्य त्रिवेदी का अनुभव है। और क्योंकि सभी उदर रोग जलोदर में परिणत होते हैं यदि उनकी ठीक-ठीक चिकित्सा न की गई तो इस कसौटी के अनुसार यतः हृद्रोग की अन्तिम परिणति जलोदर तक जाती है। इसलिए इसे उदर रोग की परिसीमा तक लाया जा सकता है।

उदर रोग की श्रेणी में रखने पर चिकित्सा सूत्र भी इसमें उदर रोग के लागू होंगे।

उदराणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं हितम् ।
क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वा सकृत् ।
ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा वा दिने दिने ॥

अर्थात् उदर रोग (यहाँ हृद्रोग) में बहुत अधिक मल संचय हो जाता है इस लिए शोधन कर्म हितकर है। इसके लिए दूध या गोमूत्र में एरण्डतैल डाल डाल कर देना चाहिए या बूंद-बूंद ज्योतिष्मती का तेल दूध के साथ देना चाहिए।

हृद्प्रदेश पर देवदारु, पलाश, आक, गजपिप्पली, सहंजना की छाल, असगन्ध, गोमूत्र में पीसकर गरम-गरम लेप करना चाहिए। वर्धमान पिप्पली घृतदुग्ध लाभ करता है। रोगी को केवल दूध पर रखा जाता है। ऊंटनी का दूध भी विशेष लाभ करता है। जलोदर होने पर जलोदरारिरस का या आरोग्यवर्द्धनी का प्रयोग यथा मात्रा कराते हैं।

अन्त में उदर में जितना परिवर्जन बतलाया है वे हृद्शोथ से पीडित बालक के लिए स्वीकार करने योग्य वर्जनीय आहार विहार हैः—

अम्बुपानं दिवास्वाप गुर्वभिष्यन्दिभोजनम् ।
व्यायामं चाध्वयानं च जठरी परिवर्जयेत् ॥

जल पीना, दिन में सोना (बच्चों में और हृद्रोगियों में यह निषिद्ध नहीं है), भारी अभिष्यन्दी आहार, व्यायाम, पैदल चलना या सवारी पर यात्रा करना हानिप्रद होने से वर्जित हैं।

हृत्प्रसारण तथा हृदयवृद्धि

ले०—कविराज उमाशंकर आचार्य ए.ऐस.वी. [स्वर्णपदक प्राप्त]
प्रधान चिकित्सक, केदारमल मैमोरियल आयुर्वेदिक हास्पीटल तेजपुर (आसाम)

कविराज आचार्य आयुर्वेद के मर्मज्ञ तो हैं ही उच्चकोटि के चिकित्सक भी हैं। आपने सरल भाषा में 'अर्चना' नामक सुन्दर सुशोभन गुडिया के हृद्रोग पर अपने ३५ वर्ष के अनुभवों के आधार पर की गई चिकित्सा दी है। सचैव भिषजां श्रेष्ठः रोगेभ्यो यः प्रमोचयेत् की आप साकार मूर्ति हैं और आरुणांचल के द्वार तेजपुर में बैठ कर अपने तेज से भयानक रोगों को भस्मीभूत कर आयुर्वेद की विजय पताका फहरा रहे हैं। उस क्षेत्र की ऐसी वनस्पतियों के अनुभवों पर एक लेख की या लेख शृंखला की मेरी कामना है जिनका वर्णन निघण्टुओं में साधारणतया नहीं है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

पूर्ववृत्त—कैप्टेन श्री शुक्ला अपनी इकलौती पुत्री अर्चना शुक्ला ५ वर्ष को लेकर चिकित्सार्थ होस्पिटल में आये। लगभग १ मास पूर्व अर्चना को श्वसनक सन्निपात (Pneumonia) हुआ था। मिलिट्री होस्पिटल के आतुरालय में भर्ती करवाकर विधवत् चिकित्सा की गयी, भरपूर माइसीन और प्रचुर पेनेसिलीन के प्रयोग से अर्चना व्याधि मुक्त भी हो गई, परन्तु ५ दिन के बाद ज्वर कास श्वास हृत्स्पंदन का प्रबल प्रकोप प्रारम्भ हो गया। पुनः आतुरालय में भर्ती करवादी गई। बी. आई. फ्लोजीस्टीन प्लास्टर लगाया गया। हृदय दौर्बल्य परिलक्षित कर कोरामीन, कार्डियोजोल से लेकर नार्मल सैलाइन तक प्रयोग हुआ, पर व्याधि मंहगाई की तरह निरन्तर बढ़ती ही गई। कई दफा एक्सरे कार्डियो ग्राम हुये, २० दिन के बाद निर्णय दिया गया कि हृदय विशेषज्ञों के परामर्शार्थ अर्चना को तत्काल वैलूर लेजाना चाहिये। यह सुनकर शुक्लादम्पति यद्यपि पूरी तरह निराश हो चुके थे, तथापि कैप्टेन शुक्ला का सम्बन्ध राजस्थान के अच्छे वैद्य घराने से था, दम्पति आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति से पूर्णतया परिचित एवं प्रभावित थे। इस कारण १५ मील चलकर नव स्थापित के. एम. आयुर्वेदिक होस्पिटल में अर्चना को चिकित्सार्थ लेकर आये तथा सारा वृत्तान्त सुनाया।

सम्मुख बैठी सुन्दर गुड़िया सी अर्चना की आकृति स्पष्ट ही गंभीर खतरे का आभास दिला रही थी। स्टेथोस्कोप से देखने पर अनुभव हुआ कि बालिका का सम्पूर्ण शरीर ही हृदय की धड़कन बनगया है। यदि तत्काल श्रेष्ठ चिकित्सा व्यवस्था न हुई तो अवश्य ही जीवन को खतरा हो सकता है। अष्टविधि परीक्षा के बाद शुक्ला दम्पति को रोग की विषमयता, कष्टसाध्यता आदि वस्तुस्थिति से अवगत करा दिया तब शुक्लादम्पति ने श्रद्धाभिभूत होकर एक साथ एक स्वर से कहा कि आचार्यजी! अर्चना आज से आपकी पुत्री है, आयुर्वेद की पुत्री है, हमारी अर्चना तो डाक्टरों के कथनानुसार मर ही चुकी है; तब मैंने भी ३५ वर्षीय चिकित्सानुभव के आधार पर कहा कि जब अर्चना आयुर्वेद की पुत्री है, तब आप निश्चिन्त रहिये अर्चना अवश्य-

लेखक

मेव स्वस्थ हो जायगी।

दुर्युक्त उग्रवीर्य (High Potency) की औषधियों के अतियोग के कारण ही हार्ट अबतक फट पड़ने को तैयार हो रहा था क्योंकि "भैषजं चापि दुर्युक्त तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम्"। अतः विना एक क्षण का विलम्ब किये ज्वरघ्न, कफघ्न, हृद्य बल्य, सौम्य औषधियों की व्यवस्था निम्न प्रकारेण चालू की गई :—

प्रातः ६ वजे—मल्लस्फटिका १ रत्ती, विषाण भस्म १ रत्ती
सायं ६ वजे—जयमंगल रस आधी वटी अगस्त्य हरीतकी १० ग्राम मधु १० ग्राम में मिलाकर चाय के अनुपान से।
प्रातः ५ वजे—मृगांक आधी रत्ती, शृंगाराभ्रक १ रत्ती,
रात्रि ५ वजे—खण्डकुसुमाण्ड में मिलाकर उष्ण दूध के अनुपान से।
भोजन से पूर्व—द्राक्षारिष्ट आधा ग्राम, कुमार्यासव आधा ग्राम, चतुर्गुण उष्ण जल के साथ।
भोजनोत्तर—मृतसंजीवनी सुरा आधा ग्राम, वांसारिष्ट आधा ग्राम चतुर्गुण उष्ण जल के साथ।
मध्यान्ह २ वजे—प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, नागार्जुनाभ्र १ रत्ती, माजून फलासफा में मिलाकर मुसम्वी के रस के अनुपान से।
अपरान्ह—मुक्ताम्वर वटी चौथाई रत्ती, जवाहर मोहरा ¼ रत्ती, चाय के अनुपान से।
रात में सोते समय—अनुभवी वटी १ उष्ण जल के साथ।

भगवान् धन्वन्तरि की अनुकम्पा से उग्र औषधियों के मारक विष का प्रभाव अमृतोपम आयुर्वेदीय औषधियों से पराभूत होता नजर आने लगा। १५ दिन की चिकित्सा के वाद तो शुक्ला दम्पति हमसे भी अधिक आशावान् प्रतीत होने लगे।

तीन मास की चिकित्सा के वाद खतरा टल चुका था श्री शुक्ला हमारे कहने पर वालिका को मिलिट्री होस्पिटल में जांच के लिये ले गये। वक्ष परीक्षा एक्सरे कार्डियोग्राम के वाद डाक्टरों ने जानकारी दी कि काफी सुधार हो चुका है, खतरा टल गया है। ६ मास की चिकित्सा के वाद वालिका पूर्ण स्वस्थ तथा नीरोग हो गई। शुक्ला-दम्पति ही नहीं उस कैम्प के सभी छोटे वड़े अधिकारी आयुर्वेद के इतने प्रवल भक्त वने कि सोलमारा कैम्प से १०-१५ मील चलकर प्रतिदिन ३०-४० की संख्या में चिकित्सार्थ आते रहते हैं। जय आयुर्वेद।

बालकों को औषधि निर्देश—

मधुर द्रव्य का प्रयोग—चतुर चिकित्सकों को चाहिए कि वह प्रमाद रहित होकर मधुर द्रव्यों के क्वाथ में दूध मिला कर उसे मृदु वनाकर वालकों में प्रयोग करें। अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूक्ष, अत्यन्त उष्ण, अत्यन्त अम्ल तथा जो द्रव्य विपाक में कटु (चरपरे) तथा जो औषधि पान और अन्य गुरु हो, वालकों के लिए त्याज्य होता है। अर्थात् उन्हें वालकों को कदापि नहीं देना चाहिए।

मूत्रवहसंस्थान बालरोगोपखण्ड

इस उपखण्ड में केवल निम्नांकित विषयों का समावेश किया जा रहा है —

(१) शिशुमूत्रप्रजननसंस्थानीय विकृतियों का विहंगावलोकन	संकलित
(२) निरुद्ध प्रकश (Phimosis)	वैद्य श्री हरिशङ्कर शाण्डिल्य
(३) बालवृक्काश्मरी	वैद्यविद्याविनोद श्री मोहरसिंह आर्य

शिशु मूत्र-प्रजनन संस्थान की विकृतियों का विहंगावलोकन

(संकलित)

बालकों के मूत्र प्रजनन संस्थान में कई विशेषताएं पाई जाती हैं। इनमें एक है भ्रूणावस्था में सातवें महीने तक वृक्कों का अपरिपक्व होना और दूसरी है शैशवकाल में तथा आरम्भिक बाल्याकाल में श्रोणि के अविकसित या लघु होने के कारण मूत्राशय का एक औदर कोष्ठांग (एब्डोमीनल आर्गन) के रूप में रहना। इस कारण इसे उस समय आसानी से टटोला जा सकता है, जब वह मूत्र से भरा हुआ हो।

शिशु वृक्कों की भी अपनी एक विशेषता होती है— ये अपना कार्य प्राकृतावस्था में तो ठीक से चला लेते हैं, पर इनमें संचित शक्ति बिलकुल न होने से संचित लवणादि इलैक्ट्रोलाइटों को वहा कर निकालने के लिए काफी पानी की आवश्यकता पड़ती है यतः शैशव में केवल दूध ही आहार होता है जिसमें जलीय मात्रा प्रचुर होती है, इस कारण वृक्क अपना कार्य इस अवस्था में सुचारु रूप से चलाते रहते है।

एक बात और भी ध्यान देने की है और वह है शिशुओं के वृक्क का भार एक वयस्क के वृक्क के भार की अपेक्षा अनुपात में अधिक होता है। उसके समस्त शरीर भार का सौवां भाग वृक्कों का होता है जबकि वयस्क के शरीर भार का दो सौ बीसवां भाग उसके वृक्कों का होता है। जन्म के समय शिशु का वृक्क ११-१२ ग्राम का होता है जो ५-६ माह में दूना, सालभर में तीनगुना और १५ वर्ष के किशोर में पन्द्रह गुना तक बढ़ जाता है। जैसे-जैसे शरीर बढ़ता है वृक्क भी बढ़ते हैं फिर भी इनका विकास अनियमित होता है। जीवन के प्रथम वर्ष मे इसमें बहुत वृद्धि होती है फिर तारुण्यकाल में दूसरी बार वृक्क तेजी से बढ़ते हैं। अपेक्षाकृत बड़े वृक्क होने के कारण ही ये औदरकोष्ठांग शैशवकाल में रहते हैं। दाहिना वृक्क बायें वृक्क की अपेक्षा आधे से एक सेंटीमीटर निचली सतह पर होता है। दो वर्ष के बालक में जितनी आसानी से वृक्कों का परिस्पर्श किया (टटोला) जासकता है उतना वयस्कों में सम्भव नहीं होता।

जैसा कि प्रत्येक वैद्य जानता है वृक्कों का काम उत्सर्जन का होता है। वृक्कों के द्वारा हमारा शरीर जल और जल में घुला कर खनिज द्रव्य तथा सेन्द्रिय द्रव्यों का उत्सर्जन करता रहता है। इससे चयापचयज मल द्रव्य बाहर निकलते रह कर शरीर का अम्ल-क्षार सन्तुलन और परासरणीदाव (आसमोटिक प्रैशर) नियमित किया जाता है। यह भी अब सर्वविदित है कि वृक्क एक अन्तःस्रावी ग्रन्थि के रूप में भी कार्य करता है और जब वृक्कों में रक्त-संचरण की कमी होती है तब वे रैनिन नामक हार्मोन तैयार करते हैं।

वृक्कों में मूत्र का निर्माण होता है। मूत्रांश उस रक्त से बनाया जाता है जो वृक्कों में रक्तवाहिनियों द्वारा आता है। जाने वाले रक्त में से मूत्रांश निकल जाता और वह अधिक शुद्ध और शरीर के लिये उपादेय बन जाता है।

आयुर्वेदीय परिभाषा में मूत्र एक प्रकार का मल है।

तत्राहारप्रसादाख्यो रसः किट्टं च मलाख्यमभिनिर्वर्तते। किट्टात् स्वेदमूत्रपुरीषवातपित्तश्लेष्माणः कर्णाक्षिनासिकास्यलोमकूपप्रजननमलाः केशश्मश्रुलोमनखादयाश्चावयवाः पुष्यन्ति।

यह मूत्र अन्य धातुओं तथा मलों के साथ शरीर में धातु साम्य स्थापित करता है—एवं रसमलौ स्वप्रमाणावस्थितौ आश्रयस्य समधातोः धातुसाम्यं अनुवर्तयतः।

—च० सं० सू० स्थान अ० २८

अन्न के किट्ट भाग से पुरीष तथा मूत्र की उत्पत्ति चिकित्सास्थान में चरक ने स्वीकार की है—किट्टमन्नस्य विण्मूत्रम्।

जब तक मलरूप मूत्र स्वमान में रहते हैं तब तक स्वास्थ्य रहता है। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से मल-मूत्रादिक के कम या अधिक मात्रा में उत्पन्न करने में वात, पित्त, कफ और रक्त इन चारों दोषों का विशेष हाथ होने से मूत्र-प्रजनन संस्थान के रोगों की उत्पत्ति या स्वास्थ्य के संरक्षण में इन चारों का उसी प्रकार महत्व है जैसा अन्य रोगों की उत्पत्ति में होता है।

वृक्कों और मूत्रवह संस्थान के अन्य अवयवों की विकृति या प्रकृति के ज्ञान के लिए आज कल निम्नांकित खोज या परीक्षण किए जाते हैं:—

१ मूत्र का परीक्षण
२. वृक्कक्रिया परीक्षण
३. सिरा द्वारा गोणिका चित्रण या पाइलोग्राफी
४. क्षकिरण चित्रण
५. सिस्टोग्राम या यूरेथ्रोग्राम द्वारा परीक्षण

इनका विवरण एतद्विषयक बड़े ग्रन्थों से किया जाना चाहिए। विशेषांक की मर्यादा पुस्तक से भिन्न होने से इनका केवल नामोल्लेख ही किया जा रहा है।

आगे हम कुछ उन लक्षणों का विचार करेंगे जो मूत्रवह संस्थान की विकृति से सम्बद्ध होते हैं। ये है—

१. मूत्र में एल्व्यूमिन का निकलना।
२. मूत्र में रक्त का आना

(१) मूत्र में एल्व्यूमिन का निकलना या ऐल्व्यूमिन मेह या ओजोमेह—

नये हिन्दीकार जिन्हें शब्द बनाकर हिन्दी को पुष्ट करने से बढ़कर अंगरेजी को हिन्दी के शरीर में सदा के लिए प्रविष्ट करने की धुन है इस लक्षण को एल्व्युमिनमेह नाम देते हैं। हम भी उसे उसी रूप में दे रहे हैं—यथा राजा तथा प्रजा के अन्धानुकरण के आधार पर।

पेशाब में ऐल्व्यूमिन कई रोगों में मिलती है। बच्चे को तेज ज्वर आ जाने के बाद, टान्सिल बढ़ने पर, न्यूमोनियां में, तीव्र हृदयशोथ या जीर्ण हृत्पात के रोगियों के मूत्र में ऐल्व्युमिन मिल सकता है।

कभी कभी बिना किसी रोग के भी ऐल्व्युमिनमेह ६ वर्ष से तारुण्यकाल तक बालकों को हो सकता है। बच्चे के शरीर की वृद्धि के साथ साथ उसकी क्रियाशीलता के अनुपात में मूत्र के साथ प्रोटीन निकलती है यह ऐल्व्युमिन या ग्लोब्युलिन में से कुछ भी हो सकती है। इसे ऑर्थोस्टैटिक ऐल्व्युमिन्यूरिया कहा जाता है। ऐसे बच्चे या तरुण जल्दी थक जाते हैं उनके चेहरे पर निराशा झलकती है। ठोड़ी छाती की ओर झुकी हुई रहती है, छाती सपाट होती है। अंसफलक की हड्डियां और मेरुदण्ड बाहर की ओर निकला हुआ मिलता है। पेट आगे निकला रहता है खाना ठीक से पचता नहीं, अजीर्ण और कोष्ठबद्धता बनी रहती है। वह अरक्तित होता है हृदय का स्पन्दन उसे सुनाई देता है। वह डरता सा रहता है।

चरक के ये लक्षण जो ओजक्षय के बतलाये गये हैं उसमें मिलते हैं—

विभेति (डरा हुआ) दुर्बलोऽभीक्ष्णः (बहुत कमजोर)

ध्यायति (चिन्तित) व्यथितेन्द्रियः (ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय शिथिल)

दुश्छायो (चहरे की चमक घटी हुई) दुर्मना (न्यूरैस्थीनिक)

क्षामश्चैव (और पतला दुबला) ओजसःक्षये (ओजक्षय से हो जाता है)।

वैद्य और हकीम लोग ऐसे बालक को प्रमेह से पीडित बतलाया करते हैं। इसी आधार पर कुछ लोग ओज को ऐल्व्युमिन की संज्ञा देते हैं। और ऐल्व्युमिन्यूरिया को ओजोमेह कहते हैं। अल्व्युमिन्यूरिया एक प्रकार का कफज प्रमेह है।

इन प्रमेहों के जो पूर्वरूप चरक ने गिनाए हैं वे अल्व्युमिन्यूरिया के भी लक्षण हैं—

स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलाङ्गता च
शय्यासनस्वप्नसुखे रतिश्च।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो
घनाङ्गता केशनखाति वृद्धिः॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो
माधुर्यमास्ये करपाददाहः।
भविष्यतो मेहगदस्य रूपं
मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च॥

मूत्र में चींटी लगना न केवल शर्करा के कारण ही होता है बल्कि ऐल्व्युमिन के प्रति भी चींटी की प्रीति कम नहीं होती। अण्डे की सफेदी पर चींटी लगना इसका प्रमाण है।

यह रोग क्यों होता है इसके लिए एक कारण दिया जाता है बालक का खड़े होकर चलना, दूसरा है वृक्कों की सिराओं में रक्ताधिक्य होना, तीसरा है कैल्शियम की शरीर में कमी होना। चौथा कारण वृक्कपाक या नैफ्राइटिस है।

ऑर्थोस्टैटिक ऐल्व्युमिन्यूरिया की चिकित्सा के लिए ओजोमेहहर चिकित्सा उपयुक्त मानी जाती है। भैषज्यरत्नावलीकार के ये शब्द चिकित्सक का मार्गदर्शन कर सकते हैं :—

१. दोषदूष्यान् विचार्यैव निदानं परिवर्जयेत्। (कारण को दूर करना)

२. विशेषाद्योजयेत्तत्र लोहमुख्यं हि भेषजम्। (लोहभस्म का प्रयोग करना)

३. वृक्कशोथसमुद्भूते त्वोजोमेहे विनिश्चितम्।
रसोद्भूतं विशेषेण शीलयेत् न तु औषधम्॥

(वृक्कशोथजन्य (नैफ्राइटिस युक्त) ओजोमेह में पारद से बना कोई योग प्रयोग में न लाना)

निम्नयोग भी उपयोगी हैं—

i. ओजोमेहान्तक रस—इसमें प्रवालभस्म २, स्वर्ण१, मुक्ता १, शतपुटी लोहभस्म १ डाल जल में घोटकर आधी आधी रत्ती की गोली बनाकर प्रयोग में लाते हैं। इसे मधु के साथ १-१ गोली देते हैं। इससे न केवल ओजमेह बल्कि उसके कारण हृद्दौर्बल्य तथा शोथ भी दूर हो जाता है।

ii. हरड़, अनार की छाल, सोया, बेल और बबूल की छाल समभाग की चाय बनाकर देने से ओजोमेह दूर होता है।

३. चन्दन, मुलहठी, आमला, गुडूची, खस और मुनक्के की चाय में आधी रत्ती फिटकिरी का फूला डाल कर देने से ओजोमेह दूर होता है।

इस रोग में यदि कोई उपसर्ग हो तो उसे दूर करने के लिए ब्राड स्पैक्ट्रम एण्टी बायोटिक दवाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए। आहार में प्रोटीन अधिक देते रहना चाहिए तथा थोड़ा बहुत खेल कूद—इतना जितने में वह थके नहीं, कराते रहना चाहिए।

अन्त में पुनः ये वाक्य पथ्यापथ्य निदर्शक हैं :—

पथ्यं मांसं तथा मत्स्यानातपाग्नि निषेवणम्।
मधुरं दुष्टशीताम्बु स्नानपानादिके त्यजेत्॥

अर्थात् पथ्य में प्रोटीन (मांस, मत्स्य) अधिक लें धूप और अग्नि का सेवन करें। मधुर पदार्थ कम लें। नहाने और पीने में शीतल या दूषित जल का सेवन न करावें।

(२) रक्तमेह या हीमैच्यूरिया

पेशाब में रक्त का आना यह पैत्तिक प्रमेह का लक्षण है—

क्षारोपमं कालमथापि नीलं
हरिद्रमांजिष्ठमथापि रक्तम्
एतान् प्रमेहान् प्रवदन्ति पित्तात्॥

रक्तमेह के स्थानिक और सर्वांगीण २ प्रकार के कारण होते हैं। स्थानिक कारणों में वृक्कशोथ, वृक्कमुखशोथ, क्रिस्टलमेह, अभिघात, अश्मरी, वाहिकार्बुद, उद्वृक्कता वृक्कों का बहुग्रन्थिक रोग, राजयक्ष्मा, मूत्राशय में अश्मरी या आगन्तुक शल्य, मूत्रमार्गीय व्रण प्रमुख कारण हैं। सर्वाङ्गीय कारणों में रक्तपित्त और रक्तपित्तकारक रोग जैसे ल्यूकीमियां, पर्प्यूरा, हीमोफिलिया एवं नवजात शिशु का रक्तस्रावी रोग तथा रोधगलन या आमवातज हृदन्तः शोथ के अन्तःशल्यों के कारण भी रक्तमेह हो सकता है। इसे मांजिष्ठमेह (हीमोग्लोबीन्यूरिया)से पृथक् करके निदान करना पड़ता है।

चिकित्सा रक्तपित्त (अधोग रक्तपित्त)के अनुसार करनी पड़ती है।—चरक ने बालकों के रक्तपित्त रोग में संशमनी चिकित्सा की महत्ता स्वीकार की है—

बलमांसपरिक्षीणं शोकभाराध्वकर्षितम्।
ज्वलनादित्यसन्तप्तं अन्यैर्वा क्षीणमामयैः॥
गर्भिणीं स्थविरं बालं रूक्षाल्पप्रमिताशिनम्।
अवम्यमविरेच्यं वा यं पश्येद्रक्तपित्तिनम्॥
शोषेण सानुबन्धं वा तस्य संशमनीक्रिया।

भैषज्यरत्नावलीकार इसे 'स्तम्भनैः समुपाचरेत्' लिख कर स्तम्भन द्रव्यों के प्रयोग पर जोर देते हैं। अडूसे के पत्तों का स्वरस मधु और शर्करा मिलाकर पिलाना, शालमली (सेमर) या कोविदार के फूल शहद में पीसकर चटाना, बच्चे को कूष्माण्डखण्ड देना चाहिए यह स्वादिष्ट होने से बच्चे आसानी से सेवन कर लेते हैं। दूर्वाद्यघृत का प्रयोग तो वस्ति द्वारा भी हितकर बतलाया है मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मसु तद्धितम्। उशीरासव पिलाते हैं। अन्य रक्त-स्तम्भक आधुनिक औषधियां विटामिन के, विटामिन सी. क्लौडन, स्टिप्टोवियोन आदि देते हैं। कैल्यिम ग्लूकोनेट का सिरा द्वारा प्रयोग करते हैं।

वृक्कशोथ या नैफ्राइटिस

यह एक भयंकर बालरोग है जो अनेक कारणों से होता है, वृक्क शोथका अर्थ वृक्कों में घातक आघात का होना है। वृक्कपाक कई प्रकार का होता है। तीव्र गुच्छ-नलिकीय,अनुतीव्र सारऊतकीय आदि कारणों के सम्बन्ध में शीत, दीर्घकालीन ज्वर, विसूचिका, आमवात, मसूरिका तथा अन्य औपसर्गिक रोग कारणभूत होते हैं।

वृक्कशोथ या वृक्करोग के आरम्भ में निद्रानाश, अग्निमान्द्य, शोफ (आंखों के आसपास, चहरे पर तथा पैरों पर) नाड़ी की द्रुतगति होना तथा त्वचा में रूक्षता आदि मिलती है।

इस रोग के प्रमुख लक्षण इस प्रकार मिलते हैं:—रक्तमेह, सर्वाङ्गशोफ, वमन, रक्तदाब की वृद्धि, ज्वर, शिर-शूल, पाण्डु रोग, स्वेद का अभाव, वृक्क स्थानीय पीड़ा, कटिशूल, मूत्र का कष्ट से थोड़ा-थोड़ा निकलना, हाथ पैरों का ठण्डा होना, मूत्र में ऐल्ब्युमिन का बराबर निक-लना, मेढ्र में दाह और बेचैनी का होना। इससे फुफ्फुस, प्लूरा यकृत्प्लीहा हृदय आदि कोष्ठाङ्गों में भी विकार बन जाते हैं। आगे चलकर मूत्रविषमयता और मूर्च्छा भी हो सकती है और मृत्यु भी।

इसका चिकित्सा सूत्र है:—

जलौकालाबुशृङ्गैर्वा सिरायाः मोक्षणेन वा।
रक्तं विनिर्हरेत् प्राज्ञो विविच्य तु बलाबलम्॥
विरेचनं स्वेदनं च बाष्पस्वेदनमेव वा।
मूत्रप्रवर्तकं यत्स्यात् यद्वा शोणित शोधनम्॥
पोषणं यच्च धातूनां यच्च वह्नेः प्रदीपनम्।
अन्नपानौषधं हृद्यं वृक्करोगेषु योजयेत्॥

—भैषज्य रत्नावली

इस रोग में शैया पर विश्राम, सुपाच्य आहार, उप-सर्गों की आधुनिक द्रव्यों से चिकित्सा करना, अरक्तता के लिए लौहयोग देना और उपद्रवों को दूर करने हेतु उप-चार करना पड़ता है।

इसकी आधुनिक चिकित्सा में विश्राम, सुपाच्य आहार मूत्रल द्रव्य, ऐण्टीबायोटिक द्रव्य, कौर्टिस्कोस्टैराइड्स, ऐण्टी हिस्टैमिनिक ड्रग्स का समन्वय करना पड़ता है। मूत्र के लिए धातुज मूत्रल हानिकारक माने गये हैं। इस रोग में पेनिसिलीन, स्ट्रैप्टोमाइसीन, क्लोरैम्फैनिकौल, ऐरीथ्रोमा-सीन, टैट्रासाइक्लीन, आक्सीटैट्रा सायक्लीन आदि आवश्य-कतानुसार देते हैं।

कौर्टीजोन, हाइड्रोकौर्टीजोन, डैक्सामीथाजोन आदि कार्टीकोस्टराइड भी देते हैं पर इन्हें अधिक लाभप्रद नहीं

— शेषांश पृष्ठ २८८ पर

निरुद्ध प्रकश (Phimosis)

वैद्य श्री हरिशंकर शाण्डिल्य भिषगाचार्य, शाण्डिल्य निवास, भरतपुर।

निरुद्ध प्रकश का वृक्करोगों से कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है किन्तु मूत्र संस्थान में मेढ़ का अपना एक विशेष स्थान है। वही मेढ़ जब रोगग्रसित हो जाता है शिश्न चर्म जब पीछे हटने का नाम नहीं लेता तब यह रोग बनता है। भोज के शब्दों में—

मेढ़ान्ते चर्मणि यदा मारुतः कुपितो भृशम्। द्वारं रुणद्धि स शनैः प्रकाशश्च मुहुर्भवेत्॥
मूत्रं मूत्रयते कृच्छ्रात् प्रकशस्तु यदा भवेत्। वातोपसृष्टमेढ्रस्तु मणिर्न च विशीर्यते॥
निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधिं विद्यात् सुदारुणम्।

अतः इसको इसी उपखण्ड में समाविष्ट कर लिया गया है। इस लेख के ख्याति-प्राप्त लेखक श्री शाण्डिल्य जी हैं। आपने संक्षेप में किन्तु शल्यकर्म की पूरी प्रक्रिया सावधानी के साथ प्रस्तुत की है। इस सुन्दर सरल व्यावहारिक लेख के लिए हम उन्हें अनेक साधुवाद भेजते हैं।

—र० प्र० त्रि०

निरुद्ध प्रकश क्या है?

यह मुख्यतः शिशुओं में तथा विरल रूप में सभी आयु के पुरुषों में पाई जाने वाली एक कष्टकर स्थिति है। इस स्थिति में शिश्नमुण्ड के ऊपर का चर्म (Prepute) मुण्ड पर पीछे को नहीं खिच पाता है, जिससे मुण्ड अनावृत नहीं हो पाता है। मुण्डच्छद का छिद्र इतना सूक्ष्म होता है कि उसका मुण्ड पर पीछे की ओर सरकना मुश्किल हो जाता है और मूत्रत्याग में भी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। परिणाम स्वरूप मुण्ड के पीछे स्थित खात (खाई) में तथा मुण्ड एवं मुण्डच्छदान्तराल में मैल एकत्र हो जाता है तथा मैल के इकट्ठे होने के कारण उस स्थान पर कण्डू (खुजली) चलने लगती है।

यदा कदा यह मैल अश्मवत् कड़ा होकर बच्चों में पीड़ा का हेतु बन जाता है। बालक बार-बार मुण्डच्छद को पकड़कर आगे को खींचता है। इस स्थिति में अगर माता-पिता द्वारा ध्यान न दिया जाय तो मुण्डच्छद शोफयुक्त एवं व्रणान्वित हो जाता है।

निरुद्ध प्रकश के कारण—

आचार्य सुश्रुत के द्वारा प्रणीत सुश्रुत संहिता में इसके कारणों में वातदोष दुष्टि ही मुख्य रूप से स्वीकार की गई है। यथा—

वातोपसृष्टमेवं तु चर्म संश्रयते मणिम्।
मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥ (सु. सं.)

वात से दूषित शिश्नचर्म (Prepute) मणि को पूर्ण रूप से ढक लेता है तथा चर्म से ढकी हुई मणि मूत्र निकलने के मार्ग को बन्द कर देती है।

नव्य चिकित्सा शास्त्रियों ने इसके दो भेद माने हैं।

(१) जन्मजात और

(२) जन्मोत्तर

इनमें प्रथम जन्मजात में कारण चर्मवृद्धि दोष मानते हैं तथा द्वितीय जन्मोत्तर में कारण यथानुसार विभिन्न कारणों को व व्याधियों को मानते हैं। यथा—

शिशुओं में—

(१) शिश्नच्छद को बार-बार खुजलाना तथा पकड़-

कर आगे को खींचना ।

(२) नाखूनों द्वारा नोचने से क्षत हो जाना ।

युवकों में—

(१) पूयमेह (मूत्रमार्ग से पूयस्राव का होना) ।

(२) हस्तमैथुन ।

(३) गुदमैथुन या अप्राकृतिक मैथुन ।

वृद्धों में—

(१) मूत्राशयाश्मरी (Ston in the blader)

(२) मूत्रपथीय शोथ (Urethritis)

(३) पौरुषग्रन्थि वृद्धि (Enlargment of the Prostate) आदि कारणों से यह रोग स्थिति बन सकती है।

चिकित्सा—

इसकी मूल चिकित्सा तो मुण्डच्छद छेदन Circumcision ही है परन्तु हिन्दू सम्प्रदायी प्रायः बचने की ही कोशिश करते हैं। अतः ऐसी स्थिति में प्रथम मुण्डच्छद के छिद्र को चौड़ा करने और मुण्डच्छद को मुण्ड के ऊपर ले जाने का उपक्रम करना चाहिए तथा कभी-कभी इस उपाय से सफलता भी मिल जाती है।

छिद्र विस्तार कर्म—

इसके लिए सर्व प्रथम मुण्डच्छद को थोड़ा आगे की ओर खींचकर उसमें तरल पैराफिन Liguid perafin या जैतून का तेल olive oil या महानारायण तैल की कुछ बूंदें मुण्ड एवं मुण्डच्छदान्तराल में (दोनों के बीच में) डालकर शनैः-शनैः मुण्डच्छद को मुण्ड के ऊपर की ओर चढाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा प्रयत्न दिन में २ या ३ बार व ५ से १० मिनट तक प्रतिदिन नियमित रूप से करें। परन्तु ध्यान रहे कि शीघ्रता करने की दृष्टि से मुण्डच्छद को वेग से ऊपर चढ़ाने की कोशिश न करें, अन्यथा मुण्डच्छद मुण्ड के ऊपर चढ़कर परावर्तिका (Paraphimosis) की स्थिति पैदा कर देगा।

इस तरह की क्रिया एक या दो मास तक करने पर भी सफलता न मिले तो शल्यकर्म ही एक मात्र उपाय रह जाता है।

इस छिद्र विस्तारकर्म के समान ही उपचार आचार्य सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता चिकित्सास्थान अध्याय २० में वर्णित किया है। विस्तृत विवरण पाठक वहीं देखने का श्रम करें। क्योंकि लेख विस्तार भय से लेखक यहां प्रस्तुत नहीं कर रहा है।

शल्यकर्म परिचय—

इस शल्यकर्म से आशय मुण्डच्छद को काटकर पृथक् कर देने से है। मुसलमानों में यह कर्म प्रत्येक बालक में १ से ५ वर्ष की आयु तक करा दिया जाता है। प्रायः इस कर्म को वे लोग अपने सम्प्रदायी नाई से कराते हैं और इस अवसर पर एक समारोह का सा आयोजन करते हैं। वे अपनी बोलचाल की भाषा में इसे "खतना" के नाम से पुकारते हैं।

इस कर्म के विषय में विद्वानों का मत है कि इस कर्म को शिशुओं में १ वर्ष की आयु में ही करा देना चाहिए क्योंकि इस समय शिशु को अधिक पीड़ा नहीं होती और रक्तस्राव भी अल्प होता है। तथा नाई से कराने की अपेक्षा चिकित्सालयों में योग्य चिकित्सक से ही कराना चाहिए, 'ताकि विसंक्रमित रूप से कर्म सम्पादन हो सके और पश्चात् कालीन' उपद्रवों (सैप्टिक होना या धनुर्वात आदि) से बचा जा सके।

पूर्वकर्म—

सर्व प्रथम शल्यकर्म करने से पूर्व पीडित व्यक्ति को निर्वेदन (संज्ञाशून्य) करने के लिए स्थानिक संज्ञाहरण किया जाता है एतदर्थ मुण्डच्छद के दोनों किनारों को पकड़कर और थोड़ा आगे की ओर खींचकर २% का प्रोकेन विलयन से भरी हुई सिरिंज की सूची को छिद्र के ऊपरी स्तर (इपिथिलियल लेयर) में से चर्म के भीतर प्रविष्ट किया जाता है और पिस्टन को दबाकर विलयन को वहां के ऊतकों में भरते हुए पीछे मुण्ड के पास तक चले जाते हैं। फिर सूची को पुनः बाहर की ओर थोड़ा खींचें पर चर्म से पूर्ण बाहर न निकालते हुए सूचीकी दिशा को बदल कर एक पार्श्व की ओर तिर्यक दिशा में ही चर्म में प्रविष्ट करते हुए विलयन को पूर्ववत् भरदें। फिर दूसरे पार्श्व में भी ऐसे सूचीको तिर्यक रूप से प्रवृष्ट कर विलयन भरदें। इसी चतुर्दिक में विलयन प्रविष्ट कर देने से मुण्डच्छद चारों ओर से संज्ञा रहित हो जाता है।

प्रधान कर्म

मुण्डच्छद के छिद्र के दोनों ओर धमनी (Artry

ceps)लगाकर शल्यविद(Surgoen)का सहायक मुण्डच्छद के चर्म को आगे की ओर व थोड़ा नीचे की ओर खींच लेता है। इससे मुण्ड पीछे की ओर चला जाता है। तब शल्यविद कैंची के द्वारा खीचे हुए मुण्डच्छद को बीच में से अनुप्रस्थ स्थिति में काट देता है। तत्पश्चात् दूसरी तेज नोंक वाली कैंची से प्रथम छेदन के ऊपरी सिरे से नीचे की ओर व कुछ सामने की ओर (मुण्ड की ओर) को काटता है, इस स्थिति में कैंची थोड़ी टेढ़ी दिशा में रहती है। इससे छेदन-मुण्ड के नीचे मुण्डबन्ध (Frenum) पर समाप्त होता है अब मुण्ड भाग एक ओर को प्रत्यक्ष हो जावेगा तथा शल्यविद इस छेदन के अन्तिम स्थान पर से मुण्ड भाग के चारों ओर की मुण्डच्छद को काटते हुए उसी स्थान पर आकर छेदन को समाप्त करता है। इस प्रकार मुण्ड पूर्णतया आवरण रहित हो जाता है। अब मुण्ड के पीछे घाई स्थान पर श्लैष्मिक कला को त्वचा को मिला विच्छिन्न सीवन कर्म कर दिया जाता है।

पश्चात् कर्म—

सीवन-कर्म करने के बाद व्रणित भग्न पर सल्फोनामाइड पाउडर (चूर्ण) छिड़क कर विशुद्ध गांज की स्निग्ध (किसी जीवाणुहर मलहर यथा फ्यूरासिन, पेन्सिलीन त्वक् मलहर आदि द्वारा) पट्टी द्वारा सामान्य व्रणोपचार विधि से व्रणोपचार कर दें। आयुर्वेदीय जात्यादि तैल या घृत का प्रयोग भी एतदर्थ प्रशस्त है।

२४ घण्टे बाद पुनः पट्टी को खोलकर व व्रण स्थान को स्वच्छ कर विसंक्रमित पट्टी द्वारा व्रणोपचार करें। इसी प्रकार व्रण रोपण होने तक करते रहें। प्रायः ५ से १० दिन में व्रण रोपण हो जाता है। ★

पृष्ठ २८६ का शेषांश

माना जाता क्योंकि इनसे शरीर में शोथ और बढ़ता है। जो रोगी बालक के कष्ट को और बढ़ा देता है।

ऐण्टीहिस्टेमिनिक ड्रग्स का प्रयोग-एण्टीस्टीन, सायनोपेत आदि लाभदायक पायी गई हैं।

मूत्रल द्रव्यों के स्थान पर ग्लूकोज का ड्रिप विधि से प्रयोग अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

भैषज्य रत्नावलीकार की वृक्कामयाधिकार की सर्वतोभद्रा वटी समस्त वृक्क रोगों को दूर करके बलवीर्य की वृद्धि करती है। इसमें स्वर्ण, रजत, अभ्रक, लोहे की भस्में शिलाजतु, गन्धक शुद्ध, स्वर्णमाक्षिक भस्म बराबर लेकर वरुण की छाल के रस में गोली बनाते हैं। मात्रा ½ से १ रत्ती २-३ बार देते हैं।

दूसरी माहेश्वरी वटी में स्वर्ण-मुक्ता, अभ्रक, फिटकरी, क्षीरकाकोली, लोह, महाबला, समभाग लेते हैं धातुओं की भस्मे ली जाती है इन्हें सूखी मूली, गोखरू, पुनर्नवा श्वेत के क्वाथ में घोटते है। इस क्वाथ की ७ भावनाएं दी जाती हैं इसकी फिर आधी-आधी रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखा लेते हैं। १-१ गोली ३-४ बार देते हैं। अनुपान आहार में केवल दूध ही देते हैं। यह वटी समस्त वृक्करोगों और उनके उपद्रवों को दूर कर देती है। जलोदर सर्वाङ्गशोथ, हृद्शोथ, ज्वर इन्हें दूर करती है।

—संकलित

सवर्णकरण योग

मंजिष्ठा, मनःशिला इत्यादि का घी एवं मधु के साथ मिलाकर लेप करना उत्तम सवर्णकरण (त्वचा के वर्ण के समान वर्ण का करना) योग है।

त्रिफला, जातिपुष्प (लौंग) कासीस तथा लोहचूर्ण इनका गोबर के रस (पानी) के साथ मिलाकर लेप करना उत्तम सवर्णकरण माना गया है। व्रण का रोपण होने के पश्चात् त्वचा आ जाने पर यदि उस स्थान की नवीन त्वचा का वर्ण देह की अन्य त्वचा के साथ न मिले तो उसका रंग उसके समान करने का यत्न करना चाहिये।

बालवृक्काश्मरी

वैद्यविद्याविनोद श्री मोहरसिंह आर्य, मिसरी, पो० चरखीदादरी

वृक्काश्मरी के विषय में लिखने से पूर्व वृक्क की रचना और उसके कार्य पर थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है। मूत्र संस्थान का मुख्य अवयव मूत्रोत्पादक यन्त्र वृक्क है। उदर गुहा में पृष्ठवंश के दोनों ओर एक एक वृक्क होता है। दक्षिण वृक्क वाम वृक्क की अपेक्षा कुछ नीचे रहता है। वृक्क का आकार सेम के बीज जैसा होता है। उसकी लम्बाई ४ इञ्च, चौड़ाई २॥ इञ्च तथा मोटाई २ इञ्च होती है। भार लगभग १०० ग्राम होता है। उसका वर्ण बैंगनी होता है।

वृक्क असंख्य गुच्छिकाओं एवं पतली पतली नलियों का समूह है। ये नलियां लम्बी होती हैं। धमनियों की सूक्ष्म विकेशिकाओं से ये गुच्छिकाएं बनती हैं। यह एक प्रकार की छलनी बन जाती है। जिसके द्वारा रक्त रस छन कर नलिकाओं में चला जाता है। नलिकाओं की भित्तियां इस रक्त रस में से शरीर के लिए आवश्यक पदार्थों को सोख लेती हैं और आवश्यक मल पदार्थों को छोड़ देती हैं। यह मल पदार्थ नलिकाओं के द्वारा मूत्राशय में पहुँच जाता है। यहां से मूत्रमार्ग द्वारा यह मल उत्सर्ग होता रहता है। प्रत्येक वृक्क से एक एक मूत्र प्रणाली निकल कर वस्ति से मिल जाती है। वृक्क के तीन मुख्य कार्य हैं :—१. रक्त से मल आदि त्याज्य अङ्गों को पृथक् करना, २. मूत्र का निर्माण करना, ३. रक्त का संशोधन करते रहना।

गुच्छिकाओं की विकृति हो जाने पर रक्त कम छनता है, मूत्र की मात्रा कम हो जाती है और रक्त से हानिकारक तत्वों का निष्कासन कम हो जाता है और अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं, उनमें वृक्काश्मरी भी है।

परिभाषा—जो त्याज्य अंश मल पदार्थ का ठोस भाग तलछट के रूप में स्थिर होकर वृक्क या वस्ति-मूत्राशय में कंङ्कड़-पत्थर बनते हैं, उनको अश्मरी-पथरी कहते हैं।

कारण—१. बालक पीठ के बल अधिक दिनों तक लेटे रहता है अथवा जब भी लेटता या सोता है तो पीठ के ही बल सोता है।

२. मूत्र संस्थान के उपसर्ग से सब प्रकार की अश्मरियां बनती हैं - मूत्र की प्रतिक्रिया में अम्लता प्रधान है।

३. मूत्र में तरलता की न्यूनता तथा घनता की वृद्धि अश्मरी का हेतु है.

पूर्वरूप—१. मूत्राशय फूला रहता है। २. मूत्राशय तथा उसके समीपस्थ प्रदेश में तीव्र पीड़ा रहती है। ३. मूत्रत्याग करते समय कठिनाई होती है।

लक्षण—१. मूत्रत्याग में पीड़ा, २. मूत्र गंदला अथवा पीव-पूय मिश्रित होना, ३. मूत्र में रक्त का आना, ४. मूत्र त्याग की इच्छा बार बार होना, ५. तीव्र वृक्क शूल-इसकी टीसें वृषण-जानु तथा सुपारी तक जाती हैं। ६. वृक्कद्वय में बड़ी अश्मरी होने से मूत्र सङ्ग हो जाता है। ७. जब पथरी वस्ति में होती है तो पेडू के स्थान पर बोझ प्रतीत होता है। ८. ज्वर हो जाता है। ९. शिश्नाग्र को पकड़कर बालक बार बार खींचता है।

उपद्रव—वृक्कों में जल भर जाता है अथवा पूयवृक्क हो जाता है।

लेखक प्रवर ने इस उपखण्ड हेतु यह अतीव उपादेय लेख प्रस्तुत किया है। श्री आर्य को बाल-रोगों की चिकित्सा में जो वैशिष्ट्य प्राप्त है उसी के आधार पर उन्होंने हमें इस विशेषांक हेतु अच्छे लेख प्रदान किये हैं। —र० प्र० त्रिवेदी

विशिष्ट मन्तव्य—पथरी कफाशय में होती है बालकों में कफ की प्रधानता होती है। अतः बालकों में पथरी होती है। जब पथरी वस्ति द्वार पर आ जाती है तब भयङ्कर वेदना होती है और जब सरककर आशय में चली जाती है तो पीड़ा शमन हो जाती है।

चिकित्सा सिद्धान्त—१. माता अथवा अन्य परिचारक जब देखें कि मूत्र में छोटी छोटी अश्मरी निकल रही हैं तो बालक का मूत्रत्याग थोड़ी देर के लिए रोक दें।

२. एक टब में गरम पानी डाल उसमें बालक बैठावें।

३. कुशल शल्य चिकित्सक से शस्त्रकर्म द्वारा अश्मरी निकलवा दें।

४. आवश्यकतानुसार सेंक, स्वेदन, अवगाहन, लेप तथा उत्तर वस्ति दें।

द्रव्य निर्माण विधि—

१. वृक्कशूलारि

कलमीशोरा २०० ग्राम, नवसादर २०० ग्राम, अहिफेन १० ग्राम, जवाखार ३० ग्राम, अपामार्गक्षार ४० ग्राम, मूली स्वरस १ लिटर, पलाण्डु स्वरस ५०० मि. लि. ले।

संगयहूद को गरम कर ५० बार मूली स्वरस में बुझावें और खरल कर पीसें सब द्रव्यों को कूटपीस एकत्र खरल करें, फिर मूली तथा प्याज स्वरस में डाल मन्दाग्नि पर पकावें। जब पानी शुष्क हो जाए तो खरल कर रख लें। मात्रा—१ ग्राम, बालकों के लिए दें। बड़ों को ४ ग्राम दें। अनुपान—जल। गुण—वृक्कशूलनाशक है।

२. अश्मरीनाशक

कलमीशोरा १०० ग्राम, भांग ५०० ग्राम लें। भांग को सूक्ष्म पीस लें। कलमीशोरा को कड़ाही में डालकर आग पर चढ़ा दें। जब शोरा पिघलने लगे तो भांग चुटकी चुटकी डालते जाएं। जब तमाम भांग जल जाये तो शोरा को एक घण्टा आंच पर ही रहने दें। फिर नवसादर १०० ग्राम लें। एक हाण्डी में नीचे ऊपर शोरा रख मध्य में नवसादर रख, सम्पुट करके २० किलोग्राम उपलों की आंच दें। शीतल होने पर निकाल पीस लें। मात्रा—बड़ों के लिए १ ग्राम। बालकों के लिए अवस्थानुसार १ चावल।

अनुपान—खरबूजा के बीज ६० ग्राम, शक्कर ६० ग्राम लें। बीजों को रगड़ जल के संयोग से सत निकाल, शक्कर मिला आग पर चढ़ा दें। जब सार घट जाए तो छान कर दें।

गुण—हर प्रकार की पथरी टुकड़े-टुकड़े होकर निकल जायेगी। खाने को दही न दें।

३. माजून अकरब

काकनज की जड़ १८ ग्राम, जितियाना रूमी १५ ग्राम, जुन्दबेदस्तर १२ ग्राम, अन्तरधूम में जलाया हुआ बिच्छू १० ग्राम, श्वेत तथा कृष्ण मरिच ८-८ ग्राम और सोंठ ३॥ ग्राम लें।

समस्त द्रव्यों को कूटकर वस्त्रपूत कर लें और तिगुने मधु की चाशनी में मिला लें।

मात्रा—८ ग्रेन। बड़ों के लिए १ ग्राम तक। प्रातःकाल दें।

अनुपान—अर्क सौंफ १५० मि.लि.+अर्क वजूरी ५० मि लि. अथवा जल।

गुण—यह वृक्काश्मरी को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करके निकालती है।

४. शास्त्रीय योग

१. पाषाणभेदादि चूर्ण (चरक), २. त्रुट्यादि चूर्ण (चरक), ३. शोभाञ्जनादि क्वाथ (चरक), ४. शरमूलादि हिम (सि. भे. म. मा.), ५. पाषाणभेद पाक (यो. र.) ६. तिलक्षारादि योग (यो. र.), ७. ऊषकादि चूर्ण (च. द.) ८. बदर पाषाण भस्म (सि. यो. सं.) ९. संगयहूद भस्म (र. सा. व. सि. यो. सं.), १०. हजरूलयहूद चूर्ण (रसतन्त्र.) ११. त्रिकण्टकादि क्वाथ (भै. र.) १२. आनन्द योग (भै. र.) १३. पाषाण भिन्न रस (भै. र.) १४. कुशादि घृत (भै. र.) १५. वरुणादि घृत (भै. र.) १५. पाषाणभेदादि घृत (भै. र.) १६. वरुणादि कषाय (भै. र.) १८. चन्द्रप्रभावटी (शा. सं.). १९. गोक्षुरादि गुग्गुल (शा. सं) २०. त्रिविक्रम रस (र. यो. सा.) २१. वीरतर्वादि क्वाथ (सु.सं.) २२. वृहद्वरुणादि क्वाथ (भै. र.) इत्यादि।

शिशु सन्धानुरोगोपखण्ड

इस उपखण्ड में निम्नांकित लेखों का संकलन और समावेश किया जा रहा है—

बच्चों के हड्डी के जोड़ों तथा पेशियों के रोग

लेखक—डा० देशबन्धु वाजपेई बी. एम. एस. (लखनऊ) आयुर्वेदाचार्य (दिल्ली)
डी. आई. पी. एल-होम (म्यूनिख-जर्मनी) डिमोंस्ट्रेटर
के. एच. मेडिकल कालेज हास्पीटल, कानपुर।

बच्चों में अधिकतर निम्न प्रकार के हड्डियों के जोड़ों तथा पेशियो के रोग देखने में आते है।

(१) शरीर के अङ्गों में दर्द रहना
(२) आमवातिक ज्वर
(३) आमवातिक संधिशोथ
(४) ओस्टियोमायलाइटिस (Ostoemyelitis)
(५) कमर का क्षय (Tuberculosis of hip)

इनकी चिकित्सा नीचे दी जा रही है।

(१) शरीर के अङ्गों में दर्द (Growing pain)

यहरोग बच्चों मे जब उनका शरीर बढ़ोतरी में होता है तब बहुत पाया जाता है। इसमें बच्चों के हाथ पैरों और शरीर के अङ्गो में दर्द हुआ करता है। चिकित्सा वैज्ञानिकों का कहना है कि ये तकलीफ बच्चों के विकास और उनके शरीर की वृद्धि के कारण होती है इसलिये इसे ग्रोइंग पेन कहा जाता है। कुछ चिकित्सा शास्त्रियों का कहना है कि इस प्रकार के लक्षण आमवात तथा गठिया के आक्रमण होने के पहले के हो सकते है लेकिन प्रयोगों से देखा गया है कि वर्षों तक आमवात या

लेखक

गठिया के लक्षण बच्चों में नहीं पैदा होते हैं। कुछ का कहना है कि यह आमवातज हृदयरोग(Rheumatic carditis) के कारण ऐसा होता है। केवल इस मत में देखा गया है कि कुछ लक्षण महीनों बाद बच्चों में प्राप्त होते हैं।

इस किस्म का दर्द क्षय वाले बच्चों में भी देखा जा सकता है। संक्रामक रोगों रोमान्तिका, फ्लू, जीर्ण मन्दाग्नि तथा श्वेतकणमयता (Leukaemia)में भी इसी तरह की पीड़ा मिल सकती है।

बहरहाल इस रोग के विषय में विद्वानों के अलग-अलग विचार हैं, फिर भी किसी ने अभी तक कोई निश्चित् मत व्यक्त नहीं किया है कि यह क्यों होता है ? अधिकतर यह रोग ६ से १० वर्ष की आयु के बच्चों को होता है।

लक्षण—दोनों हाथ, पैरों में पीड़ा तथा फटन होती है। इसमें भी पैरों में सबसे अधिक पीड़ा होती है। थकावट एवं जलवायु का प्रभाव भी रोग पर पड़ता है। वर्षा और शीत के मौसम में नमीं वाले मकानों मेंभी पीड़ा होती है। यदि थकावट के कारण पीड़ा होती है तो वह रात की निद्रा के बाद सुबह अपने आप दर्द में आराम मिल जाता है, थकावट वाली पीड़ा शाम या रात को अधिक होती है।

घर को सूखा तथा गरम रखने से तथा रजाई या गर्म कम्बल के ओढ़ाने पर आराम मिलता है। गर्म सेक से भी आराम मिलता है।

चिकित्सा-होम्योपैथिक—रसटाक्स, ब्रायोनिया, बेलाडोना, एकोनाइट, मैग्नेसियाफास, कोनियम इत्यादि दवाओं का लक्षणानुसार प्रयोग करें। बोरिक मेटेरिया-मेडिका केण्ट मेटेरिया मेडिका तथा केण्ट की रेपरटरी से दवाओं का चुनाव करना चाहिये।

बायोकेमिक—मैग्नेशिया फास ६ ×का प्रयोग दिन में ३-४ बार गर्म पानी के साथ दें। इनके अलावा काली फास ६ ×, कैल्केरिया फास ×, फेरम फास ६ ×, साइलिशिया ६ × आदि का व्यवहार करना चाहिये।

फिजियोथेरेपी—रात में सोते समय पैर की सूखी मालिश करना चाहिये। पट लिटाकर पूरी रीढ़ की मालिश ५ मिनट करें। मालिश नीचे से ऊपर की ओर करें।

सावधानी—नमीं तथा ठंड से रक्षा करें। कम्बल या रजाई ओढ़ाकर सुलावें। जहां भी भेजें ऊनी मोजे तथा दस्ताने पहनाकर भेजें। वातकारक तथा ठण्डे पदार्थ बच्चों को सेवन न करायें। अति मीठा तथा शक्कर का सेवन बच्चों को न करायें।

आमवातिक ज्वर—यह कष्टदायक व्याधि बच्चों में काफी पायी जाती है। इसमें शरीर के जोड़ों में सूजन तेज दर्द तथा बुखार होता है। जोड़ों की सूजन में विशेषता यह होती है कि पूययुक्त नहीं होती है। प्रायः इन सब उपद्रवों में हृदय रोग का भी पाया जाना संभव होता है। रोग की शुरुआत में गले की खराबी पायी जाती है।

लक्षण—रोग अचानक पैदा होता है। शुरू में ज्वर

डा. वाजपेयी जी गत वर्ष जर्मनी में थे और १८ देशों का दौरा कर वापस आये हैं! आप आयुर्वेदज्ञ तो हैं ही होम्योपथी और बायोकैमिक चिकित्सा विज्ञान के पंडित हैं। आपने इन्हीं पद्धतियों में अस्थि संधियों और पेशियों से सम्बन्धित बालरोगों की चिकित्सा सांगोपांग प्रस्तुत की है। हमारा विश्वास है कि आप आगे भी अपने अनुभव और विद्वत्तापूर्ण लेखों से सुधानिधि के पृष्ठों को अलंकृत करते रहेंगे।

—र. प्र. त्रि.

होता है। जो १०१° से १०४° फारेनहाइट तक रहता है। इसके साथ ही संधियों में दर्द होता है। जीभ गन्दी होती है,पेशाब का रङ्ग बदल जाता है और गाढ़े रङ्ग का होता है। दो चार दिन में ही रक्ताल्पता आ जाती है। पसीना बहुत ज्यादा निकलता है, इसके साथ ही शरीर पर अम्हौंरियों जैसे दाने निकल आते हैं।

संधियों में अत्यधिक पीड़ा होती है। जोड़ों को छूने या हिलाने से भी दर्द होता है। एक-एक करके शरीर के सभी जोड़ आक्रान्त होना शुरू हो जाते हैं। पहले घुटना एड़ी, कलाई, कुहनी के जोड़ प्रभावित होते हैं तथा इसी क्रम से दूसरे दूसरे जोड़ों में पीड़ा होनी शुरू हो जाती हैं।

अत्यधिक उपद्रव होने पर हृदय में शोथ पाया जाता है। चिकित्सा करने पर प्रायः सन्धियों का विकार ठीक हो जाता है पर हृदय रोग का बना रहना एक अशुभ लक्षण हैं।

चिकित्सा—आमवातज संधि-शोथ में देखें।

(३) आमवातज सन्धि-शोथ—आमवातिक ज्वर से मिलता जुलता इसका रूप है। यह मुख्यतया जोड़ों का रोग है जिसमें जोड़ों के चारों तरफ के पेरी आर्टीकुलर टीशूज (Peri Articular Tissues) में सूजन आ जाती है। आमवातज से पीड़ा पाने वाले अधिकतर रोगियों को ही यह रोग होने की ज्यादा आशंका रहती है। वैसे छोटे बच्चों में यह रोग कम पाया जाता है।

लक्षण—रोग की शुरूआत बुखार तथा जोड़ों की सूजन से होती है। कई बार बुखार नहीं भी होता है केवल जोड़ों में दर्द और सूजन होती है बाद में बुखार भी हो जाता है।

पहले घुटना, कलाई, कोहनी, अंगुलियों के जोड़ फूलते हैं परन्तु यह जरूरी नहीं है, शरीर का कोई जोड़ सूज सकता है।

जब जोड़ों में सूजन होती है तब सूजन से जोड़ चमकते हैं और इनका आकार गुल्ली के आकार का हो जाता है। इसके साथ अगल-बगल की या पास वाली पेशियों में सूखापन आता जाता है।

जोड़ों के मुलायम भाग की सूजन को छूने में बड़ी पीड़ा होती है जोड़ों में गति नहीं होती है तथा बालक बिस्तर पर पड़ा रहता है। बाद में जोड़ों में Fibrosis (तन्तुओं का बनना) शुरू हो जाता है, इससे जोड़ में जकड़न शुरू हो जाती है। बाद में ये तन्तु हड्डी के रूप में बदल जाते हैं और फिर यह स्थायी होकर जीवन भर के लिये जड़ता (Ankylosis) पैदा हो जाती है।

केवल ऐक्स-रे की सहायता से ही इस स्थिति को जाना जा सकता है। इसमें कोहनी के ऊपर वाली ग्रन्थि (Epitrochlear glands) में भी सूजन मिलती है।

रोगी का स्वास्थ्य गिर जाता है एवं रक्त की कमी हो जाती है। त्वचा पर काले धब्बे निकल आते हैं। शरीर की बाढ़ रुक जाती है तथा बच्चा नाटा हो जाता है। इसमें हृदय रोग की सम्भावना नहीं पायी जाती।

चिकित्सा—

होम्योपैथिक—एकोनाइट, एपिस,बेलाडोना, कैक्टस. कैल्केरिया कार्ब, कैस्केरा,कैमोमिला, चिनिनम सल्फ, सिमिसिफ्यूगा, डल्कामारा, इयुपेटोरियम पर्फ, फेरम फांस,काली बिच, लेडमपाल, मर्क्युरियस, पल्सेटिल्ला, रसटाक्स, सल्फ्यूरिक एसिड, सल्फर, वेरेट्रमविरिड, वायोला ओडोरेटा। इसके अलावा बोरिक मेटेरिया मेडिका, केन्ट मेटेरिया एवं केन्ट की रिपरटरी का अध्ययन करना अति आवश्यक है।

बायोकैमिक—फेरमफांस, कालीम्योर, कालीफांस, नेट्रम फांस, काली सल्फ, मैग्नेशिया फांस, नेट्रम म्योर, नेट्रम सल्फ, कल्केरिया फांस का सेवन करावें। निम्न बायोकैमिक दवाओं का मिश्रण अत्यन्त लाभदायक है कई बार का अजमाया हुआ है।

(१) फेरम फांस, काली सल्फ, मैगफांस को २-२ गोली मिलाकर दिन में ३-४ बार दें।

(२) कल्केरिया फ्लोर, कल्केरिया फांस, कालीफांस, मैगफांस, को २-२ गोली मिलाकर ३-४ बार दें।

(३) उपरोक्त में मैगफांस हटाकर नेट्रमम्यूर मिलाकर भी व्यवहार कर सकते है।

(४) बुखार की प्रत्येक दशा में फेरम फांस ६× तथा कालीम्यूर ६× मिलाकर दें। दर्द होने पर इसी में मैगफांस और मिला दें। कमजोरी होने पर कालीफांस मिला कर दें।

फिजियोथिरेपी—दर्द को दूर करने के लिये संधियों में हथेली से चक्राकार मालिश करें। इसके लिए आयल

आफ विंटरग्रीन का प्रयोग करें। जैतून के तैल का भी प्रयोग कर सकते हैं। संधियों को विश्राम के लिये स्प्लिण्ट बांधकर सीधा रखें। रीढ के निचले हिस्से (लम्बर रीजन) की मालिश ५ मिनट तक दिन में दो बार करें।

सावधानी—जब तक बुखार रहे केवल फल, फल के रस या दूध पर रोगी को रखें। पूरा विश्राम करें। ठंड से रक्षा करें। दर्द के स्थान पर सेक कर सकते हैं।

(४) आस्टियोमायलाइटिस (Osteomyelitis)—इसे अस्थिमज्जा परिपाक कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है (१) तीव्र और (२) जीर्ण

जब त्वचा के व्रणों से या श्वसन मार्ग से Streptooccus तथा Staphylococcus जीवाणु का संक्रमण होता है तब रोग के अनुकूल परिस्थितियां होने पर तीव्र एवं जीर्ण Osteomyctitis के लक्षण प्राप्त होते हैं।

तीव्र—इस प्रकार में लम्बी हड्डियां प्रभावित होती हैं इसके निदान में आमवात का भ्रम होता है। आमवात में जोड़ों की सूजन तथा पीड़ा एक स्थान पर स्थित नहीं होती है बल्कि एक के बाद दूसरे जोड़ प्रभावित होते रहते हैं। परन्तु इसमें ऐसा नहीं होता है।

स्थानिक पीड़ा, स्पर्श अक्षमता, बुखार, सूजन तथा रक्त की परीक्षा में श्वेत कणों की संख्या बढ़ी होने पर रोग के निदान में सहायता मिलती है।

जीर्ण—यदि तीव्र Ostiomyelitis पूर्ण रूप से नहीं ठीक हुआ तो रोग का रूप कम हो जाता है। बुखार कम हो जाता है लेकिन रक्त की कमी तथा कमजोरी बढ़ती चली जाती है और इसके साथ ही हड्डी का कुछ भाग गल कर अलग होने लगता है। Sequestrum formation और त्वचा पर नाड़ी व्रण भी होने की सम्भावना रहती है।

चिकित्सा—एकोनाइट, सिनिनम सल्फ, फांसफोरस गनपाउडर इनके अलावा अन्य औषधियों का व्यवहार करें

बायोकेमिक में फेरमफास, कालीम्यूर, साइलिशिया, कल्केरिया फास, कल्केरिया सल्फ, कल्केरिया फ्लोर, मैग्नेशिया फास का प्रयोग करें।

(५) कमर का क्षय—Tuberculosis of hip इसे कटि क्षय कहते हैं। क्षत स्थान Extra Articular या Intra Articular हो सकता है। प्रथम अवस्था में Acetabulum तथा जोड़ की Synovial प्रभावित होती है। रोग की दूसरी अवस्था में Femur -head ग्रीवा तथा Ilium प्रभावित होती हैं।

लक्षण—X–Ray के द्वारा रोग निर्णय करने में पूरी सहायता मिल जाती है। सामान्यतया बच्चों को घुटने में तेज दर्द होता है इस दर्द के कारण नींद उचट जाती है पेशियों के खिंचाव के कारण लंगड़ा कर चलने लगता है। अधिक दिन बीतने पर पैर की लम्बाई कम हो जाती है। पैर को सिकोड़ने, फैलाने तथा घुमाने में कष्ट होता है। जोड़ पर सूजन आ जाती है, दबाने पर बच्चा रोने लगता है।

चिकित्सा—कल्केरिया कार्ब, कल्केरिया फ्लोरिका, कल्केरिया फास, साइलिशिया। इसके अलावा अन्य औषधियों का प्रयोग करें।

बाकी के अन्य रोगों में से कुछ एक 'स्वमूत्र' के प्रयोग से ठीक हो गये हैं। इसके लिये डा० जयकिशन दास पांचाल शिवाम्बु चिकित्सा प्रचारक मंडल, १४ सूरज बिल्डिंग वाड़ी, एलफिन्स्टन रोड, बम्बई-१३ से पत्र व्यवहार करें। ★

लोमोत्पादन

जहां लोम उत्पन्न करने हों उस स्थान पर तेल, चुपड़ कर गौ घोड़े आदि चौपाये पशुओं की त्वचा रोम खुर (सींग) तथा अस्थि की भस्म का अवचूर्णन करें अर्थात् छिड़कें। इससे उस स्थान पर पुनः बाल उग आते हैं।

शिशुओं का मांसक्षय और उसकी सफल चिकित्सा

उद्भट विद्वान् वैद्य अम्बालाल जोशी, जोधपुर

"वैद्य जी ! इस वच्चे के एक इंजैक्शन लगाना है !"

मैंने वच्चे को गौर से देखा वच्चा सूखा सा है, वहुत-वहुत कृशकाय ! इसकी चिकित्सा स्थानीय एलोपैथिक हास्पिटल की चल रही थी। वहां से उन्होंने 'एम्वेस्ट्रीन के इञ्जैक्शन लिख दिये थे तथा अन्य क्षय रोग से सम्वन्धित दवा भी दी थी। वच्चा इतना शिथिल था कि उसे मृत्यु के निकट कह दिया जाय तो अनुचित न होगा। मैं यों तो इंजैक्शन लगाता ही नहीं हूँ जानता अवश्य हूँ; फिर भी औपचारिक दृष्टि से मैंने उसकी देह पर तथा पुट्ठे पर हाथ लगाकर कहा।

"भाई इसके शरीर में तो अस्थिमात्र शेष है मांस है ही नहीं इञ्जैक्शन कहां लगेगा। वही ले जाओ जहां यह लिखा गया है।"

"वैद्य जी ! वहां तक जाना हमारे लिये कठिन है। आप ही लगा दीजिये और फीस ले लीजिये।"

"भाई इस वच्चे के इञ्जैक्शन लगाना दयाहीनता का कार्य है यह मुझ से होगा नहीं। आप इसे अन्यत्र कहीं ले जावें।"

थोड़ी देर वे लोग सोचते रहे फिर वोले "तो वैद्य जी इसे कोई ऐसी दवा दिलावें जिससे यह ठीक हो जावे और इसकी (इञ्जैक्शन) की आवश्यकता ही न रहे।"

"हां यह कार्य मुझसे हो जावेगा। यदि तुम चाहो तो इसका आयुर्वेदीय उपचार किया जा सकता है।"

थोड़ी देर और ठहर कर "तो फिर आप ही उपचार प्रारम्भ कर दीजिये हम अंग्रेजी दवा वन्द कर देते हैं। यों भी इतने दिन देने के वाद भी इसे कोई लाभ तो हुआ नही है। दया भी आती है इसे चिल्लाता देखकर, जव सुई चुभोते हैं।"

मैंने रोगी को लिटाकर उसकी सम्यग् परीक्षा की वालक का उदर भाग पृष्ठ से सटा हुआ, हाथ पैर पतले अस्थिमात्र दीखती हुई, वक्ष की अस्थियें वाहर आई हुई मस्तक वड़ा, गाल चिपके से, आंखें वाहर आती हुई थीं ज्वर तथा कास भी था। दृष्टि से तो वालक का रोग असाध्य ही था। फिर भी भगवान् धन्वन्तरि का स्मरण कर मैंने चिकित्सा करना निश्चय किया। वालक क्या था अस्थियों का ढांचा ! कंकाल मात्र !!

रोगी के माता पिता साधारण गृहस्थ थे। वहुत अच्छे नहीं तो वहुत गरीव भी नहीं। पिता का स्वास्थ्य ठीक परन्तु माता शिथिल थी। संभवतः माता के दुग्ध के कारण ही शिशु रुग्ण हुआ मैंने यथा निर्णय कर रुग्ण के ठीक होने का आश्वासन दिया।

यह निश्चित है कि वालकों में मांसक्षय उनकी पाचन प्रणाली के विकृत होने के कारण रसक्षय, रक्तक्षय तथा तदनन्तर मांसक्षय होता है। यह पाचन प्रणाली की विकृति माता के दुग्ध की विकृति के कारण ही होती है। वालकों के रोग के दो और कारण भी हैं। (१) आनुवंशिक तथा (२) फिरंगोपदंशजन्य। प्रथम कारण में माता पिता की शिथिलता के कारण अथवा माता के दुग्ध में पोषक तत्वों

वाल्मीकि रामायण में आयुर्वेद ग्रन्थ के वहु प्रशंसित विद्वान् वैद्य श्री जोशी जी की लेखनी के चमत्कार से आयुर्वेद संसार में आज कौन अपरिचित मिल सकता है। सुधानिधि को उसके जन्मकाल से ही आपकी छत्रच्छाया प्राप्त रही है। आपने वड़े ही आकर्षक और रोचक ढंग से एक सत्य घटना के द्वारा मांसक्षय के संहार का मार्ग प्रशस्त किया है। आयुर्वेद के गढ़ राजस्थान में जहां एक के वाद एक आयुर्वेद भास्कर अस्तंगत होते जा रहे हैं श्री अम्बालाल जी अपने प्रखर तेज से आयुर्वेदाकाश को प्रकाशप्लावित करने में संलग्न हैं। आप आयुर्वेद के लिए ही अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में तत्पर हैं। —र० प्र० त्रिवेदी

की कमी के कारण बालक रोगी हो जाता है। दूसरे कारण में माता पिता के फिरंगोपदंश व्याधि से ग्रसित होने के कारण उनके कीटाणु पितृ संस्कार के कारण बालक के रक्त में प्रविष्ट हो जाते हैं और उसे कालान्तर में रुग्ण कर देते हैं। इसके सिवाय यक्ष्मा, श्वसनक ज्वर अथवा अन्य आगंतुक रोग भी बालक में मांसक्षय पैदा कर देते हैं। यहां यह कह देना भी उचित है कि डाक्टरों ने इस बालक को राजयक्ष्मा ग्रसित ही माना था तथा उसकी ही चिकित्सा की जाती रही थी।

माता के दुग्ध में पोषक तत्वों की कमी के कारण, बालक के दुग्धपान करने में असमर्थ होने के कारण, उदर विकृति के कारण भी बालक शिथिल हो जाता है। अष्टांगहृदयकार ने उत्तर तंत्र ३/२६ में इस प्रकार के एक रोग को शुष्क रेवती माना है :—

"जायन्ते शुष्करेवत्या क्रमात्सर्वांग संक्षयाः।"

यह कालग्रह के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है जो स्वयं विवादास्पद है यद्यपि कुछ विद्वानों ने इसे अंग्रेजी का (Marasmus) रोग माना है। परन्तु यह भी सर्व सम्मत निर्णय नहीं है।

आयुर्वेद मतानुसार माता के दुग्ध मे वातश्लैष्मिक विकृति के कारण वह दुग्ध शिशु के पेट में जाकर रसवाही स्रोतों का अवरोध कर देता है। स्रोत अवरुद्ध होने के कारण शिशुओं में अरोचकता, प्रतिश्याय, ज्वर, कास आदि लक्षण पैदा हो जाते है। बालक सूख जाता है मुख तथा आंखें श्वेत तथा स्निग्ध हो जाती हैं। कुछ भी हो यह रोग बालशोष से कुछ मिलता जुलता है या बालशोष समुदाय के अन्तर्गत आ सकता है।

बालक के मांसक्षय का कारण उसकी माता का दुग्ध निर्णय कर मैंने उसे माता का दुग्ध देना बन्द करवा दिया तथा अजादुग्ध प्रारम्भ कर दिया। तदनन्तर मैंने निम्न योग बालक के सेवनार्थ प्रारम्भ किया :—

योग—अजास्थि लोकनाथ मिश्रण

(१) अजास्थि चूर्ण १ भाग, लघुलोकनाथ रस १ भाग। मात्रा—२ रत्ती दुग्धसह दिन में २ बार।

(२) अश्वगंधा घृत ३ माशा, चूर्ण मिश्री ४ रत्ती, (मात्रा १) दिन में दो बार।

उपरोक्त प्रयोग की निर्माण विधि—

मृत बकरी की नलिकास्थि प्राप्त कर उसे साफ कीटाणु नाशक घोल से धोकर धूप में सुखालें (यह अस्थि खाई हुई नहीं चाहिये यानी पकाकर खाई हुई नहीं होनी चाहिये) फिर इसका बारीक चूर्ण बनालें। वस्त्रपूत कर लें। इस चूर्ण को शीशी में रख लें यह अजास्थि चूर्ण हुआ।

लघुलोकनाथ रस (नं. २)

शु० पारद १ भाग, गंधक ४ भाग, दोनों को खरल में डालकर निश्चन्द्र कज्जली बना लें। खरल धीरे हाथ से करें अन्यथा कज्जली उड़कर बाहर आ जावेगी। फिर इस कज्जली को पीली कौड़ियों में भरकर आक अथवा गो दुग्ध में पीसे हुए सुहागे से उन कौड़ियों का मुख बन्द कर दें। फिर दो शरावों में रखकर ऊपर से कपड़ मिट्टी लगाकर सुखाकर गजपुट की आंच दें। आंच अरण्य कण्डों की ही दें। फिर स्वांगशीतल होने पर इन कौड़ियों को यत्नपूर्वक निकाल लें। फिर खरल कर वस्त्रपूत चूर्ण को शीशी में भर कर रख लें। यह लोकेश्वर रस के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

अश्वगंधा घृत—अश्वगंधा ४० तोले, हरमल २० तोले, गाय का घी १॥ सेर, गाय का दूध १६ सेर। अश्वगंधा तथा हरमल का चूर्ण बनाकर आठ सेर जल में डालकर मिट्टी के बर्तन में पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर आग से हटाकर कपड़े से छान लें। फिर इस चतुर्थांश क्वाथ जल में उपरोक्त दुग्ध तथा गो घृत मिलाकर किसी कलईदार बर्तन में पाक करें। घृत मात्र शेष रहने पर आंच से उतार कर ठंडा होने पर किसी वस्त्र में छान लें। फिर किसी कांच की मोटे मुंह की बरनी में रख छोड़ें।

उपरोक्त योग के प्रयोग से १ माह में रोगी का ज्वर चला गया, कास मिट गया और बालक पुष्ट होने लगा। आयुर्वेद के इस चमत्कार से सभी आश्चर्य में पड़ गये तथा हर्ष से भर गये। पूर्ण चिकित्सा अवधि में अन्य औषधि परिवर्तन की आवश्यकता ही न रही। रोगी पूर्ण स्वस्थ था। इसी चमत्कार के कारण आज भी रोगी के माता पिता मुझसे स्नेह रखते है तथा प्रभावित हैं।

इसके सिवाय भी ऐसे अन्य रोगियों में मैंने जो प्रयोग

सफल पाये हैं वे निम्न हैं।

(१) **सुधाषटक योग**—प्रवाल भस्म १ भाग, शुक्ति-भस्म १ भाग, शंखभस्म ३ भाग, वराटिकाभस्म ४ भाग, कच्छपपृष्ठास्थि भस्म ५ भाग, गोदन्ती भस्म ६ भाग, इनको मिलाकर नीवू के रस की ३ भावना देकर खरल कर रख लें। यह प्रयोग स्व. पं. यादव जी प्रणीत है। हम इन औषधियों की भस्में न लेकर केवल कच्छपपृष्ठास्थि भस्म लेते हैं शेप की पिष्टियां ही लेते हैं। इस प्रकार यह योग अधिक प्रभावशाली होता है तथा बालरोगों में लाभ भी करता है।

(२) **मुक्तादिवटी**—मुक्तापिष्टी २ तोला, चांदी के वर्क, कमलकेशर, गुलावकेशर, कहरवापिष्टी, जहरमोहरा खताई पिष्टी, संगेयशव पिष्टी, गोरोचन असली सभी १-१ तोला, नागकेशर २ तोला, केशर ६ माशा, कपूर ३ माशा, गोदन्ती भस्म १२॥ तोला। इनको गुलावजल में मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलियां बनावें। यह प्रयोग पूज्य यादव जी प्रणीत है।

(३) **सुधाचूर्ण**—प्रवाल, मुक्ता, जहरमोहरा खताई अकीक, शंख, मुक्ताशुक्ति, पीतकपर्द, पुखराज, माणिक्य इन सबकी पिष्टी। सुधाचूर्ण (चूने की कलई), अभ्रक भस्म रौप्य भस्म, स्वर्ण भस्म ये सब - समान भाग अर्थात् १-१ तोला।

गो दुग्ध के साथ पांच दिन तक खरल करें। फिर टिकिया बनाकर गजपुट की अग्नि दें। ठंडा होने पर छान कर, इसे भी चूर्ण से द्विगुण वजन में वंशलोचन लेकर मर्दन करें। योग तैयार है।

मधुमालिनी वसन्त—शिगरफ २० तोला को अनार-दानों के रस में ७ दिन तक खरल करें ज्यों-ज्यों रस सूखता जावे नया रस डालते रहें। फिर सुखाकर चूर्णकर २० मुर्गी के अण्डों के रस के साथ लोहे की कड़ाही में डालकर अग्नि पर रखकर पाक करें। अग्नि मन्द रखनी चाहिये। इसे लोहे की कलछी से चलाते रहें। पूरा सूख जाने पर कड़ाही को अग्नि पर से उतार लें। फिर इसका चूर्ण कर कचूर, सफेद मिर्च, प्रियंगू ये तीनों ही शिगरफ (तैयार) के चूर्ण से आधा पृथक्-पृथक् मिलाकर अनार के रस में ७ दिन तक मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना लें। मात्रा १ रत्ती।

लघुमालिनी वसन्त--शुद्ध खर्पर ८ तोला, सफेद मिरच ४ तोले, शुद्ध शिगरफ ८ तोले सबको मिलाकर खरल करे। फिर इस चूर्ण में गो दुग्ध का मक्खन २ तोले मिलाकर नीबू के रस में खरल करता रहे। औषधि में मक्खन का चिकनापन हट जाने पर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें।

उपरोक्त लघुवसन्त मालती तथा प्रवालपिष्टी को समान भाग मिलाकर गूलर के दुग्ध में १२ घंटे तक घोटें फिर ½-½ रत्ती की गोलियां बना लें।

यह वटी बालशोपहर वटी के नाम से बताई गई है बालकों के हर प्रकार के शोष में उत्तम है।

उपरोक्त कुछ योग हैं जो बालकों के मांसक्षय में उत्तम पाये गये हैं। प्रकारान्तर से ये बालशोप या फक्क रोग में भी लाभप्रद हैं।

आवश्यकता हो तो महामाष तैल (सामिष) या लाक्षादि तैल आदि का अभ्यंग भी करा सकते हैं। मातृ-दुग्ध शोधन का प्रयास भी किया जा सकता है परन्तु जब तक यह शुद्ध न हो जावे तब तक इसे छुड़ा देना ही उत्तम है। अधिक सरलतापूर्वक अपनी सफलता का निर्णय करने के लिये बालक को तोल लेना है। यदि वजन में कुछ वृद्धि हुई है तो लाभ हो रहा है ऐसा निर्णय कर लेना चाहिये।

बालकों का मांसक्षय यों ही कृच्छ्रसाध्य रोग है जिसकी चिकित्सा वैद्यों को अति सावधानी से करनी चाहिये।

रस क्षय कारण तथा निवारण

वैद्य मौहरसिंह आर्य, मिसरी, पो० चरखीदादरी, जिला भिवानी [हरियाणा)

खाये हुए आहार द्रव्य को प्राणवायु आमाशय में ले जाता है, वहां क्लेदक कफ के स्नेहांश से कोमल हो जाता है और पीछे पाचकाग्नि उसे पकाकर रस तथा मल उत्पन्न करती है। अर्थात् पाचकाग्नि द्वारा पाचित आहार द्रव्य से रस धातु का निर्माण होता है। इसी रस से उत्तरोत्तर धातुओं का निर्माण होता है। यथा :—

सप्तभिर्देहधातारो धातवो द्विविधं पुनः ।
यथा स्वमग्निभिः पाकं यान्ति किट्ट प्रसादवत् ॥
—चरक

अर्थात्—शरीर को धारण करने वाली रसादि सप्त धातु क्रमशः प्रत्येक अपनी-अपनी धात्वग्नि के द्वारा परिपक्व होकर किट्ट और प्रसादरूप में परिणत होती रहती है।

जिस प्रकार जाठराग्नि अन्न पान-खाए हुए अन्न को पकाती है, उसी प्रकार रसादि सप्त धातुओं को पकाने हेतु सात धात्वग्नियां चरक ने कही हैं।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च ।
अस्थ्नो मज्जा ततःशुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रसादजः ॥

अर्थात् रस के अनन्तर रक्त का उसके पश्चात् मांस का, मांस के बाद मेद का, उसके बाद अस्थि का, अस्थि के पश्चात् मज्जा का और उसके पश्चात् शुक्र का निर्माण होता है। शुक्र से गर्भ की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार धातुओं के प्रसाद भाग से ही उत्तरोत्तर क्रमशः धातुओं की उत्पत्ति होती रहती है। सातवीं धातु शुक्र जो स्वयं शुद्ध निर्मल होता है - से किट्ट की उत्पत्ति नहीं होती

त एते शरीरधारणाद्धातव इत्युच्यन्ते । —सु. सू. १४

ये सातों धातुएँ शरीर का धारण-स्वरूपात्मक निर्माण करती हैं।

शुक्रं तु ओजः पोषकतया धारणपोषण योगाद्धातुरेव ।

इन सप्त धातुवों का विशेष महत्वपूर्ण कार्य शरीर के धारण के साथ पोषण करना भी है।

प्राणिनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे ।
गर्भोत्पादश्च कर्माणि धातूनां कथितानि च ॥ शा. सं.

शरीर में रस धातु का कर्म संतृप्ति पहुँचाना है। इसी प्रकार रक्त का कार्य-जीवन बनाये रखना, मांस का कर्म

हमारे शरीर में रस धातु अदृष्ट हेतुकेन कर्मणा सम्पूर्ण शरीर में संचरण करके शरीर का तर्पण, वर्धन, धारण, जीवन और यापन किया करती है। इसके क्षीण होने के कारण हमारे शरीर की अन्य सभी धातुएं क्षीण होजाती है, इसी रसक्षय को लेकर हमारे परम स्नेही लेखक प्रवर वैद्य श्री मौहरसिंह आर्य ने अपना यह विद्वतापूर्ण परम वैज्ञानिक लेख तैयार किया है। उन्होने कई अनुभवी चिकित्सकों के अनुभव का सार भी दिया है। आपने बच्चे के रोने को स्वास्थ्यवर्द्धक व्यायाम माना है। पाठक महानुभाव इस उत्तम संग्रहणीय लेख से समुचित लाभ उठावेंगे ऐसा विश्वास है।

म. मो. च.।

अस्थियों और सिरा-धमनियों पर आच्छादन, मेद का कर्म शरीर में स्निग्धता बनाए रखना, अस्थि का कर्म शरीर का संधारण करना, मज्जा का कर्म अस्थियों में सम्पूरित रहना और शुक्र का कर्म गर्भ की उत्पत्ति करना है।

रस क्या है। सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः
—सु. सं. शा. २

भोजन किये गये आहार का अच्छे प्रकार से परिपाक होने के पश्चात् जो सार भाग होता है। उसे रस कहते हैं

स तु द्रवः शीतः स्वादु स्निग्धश्चलो भवेत्।

वह रस द्रव-पतला, श्वेत, शीत, स्वादिष्ट, स्निग्ध और गमनशील होता है।

यह संक्षेप में रस और रस से बनने वाली उत्तरोत्तर धातुओं का वर्णन हुआ। रस ही एक ऐसी धातु है जो अन्य धातुओं के साथ शरीर की आधारशिला या नींव का पत्थर है। जब आधार शिला ही विकृत हो जाये तो दीवार किस के सहारे खड़ी रह सकती है। रस के साथ-साथ अन्य धातुएँ भी विकृत होकर रोगग्रस्त हो जायेंगी।

कारणः आहार विषयक—

१. आहार —प्राणिमात्र के बल, वर्ण तथा ओज का मूल शुद्ध आहार है। इससे शरीर की वृद्धि, आरोग्यता, इन्द्रियों की प्रसन्नता होती है। आहार की विषमता से रोग पैदा होता है। शरीर में धातु पाक के कार्य सदैव होते रहते हैं। इससे शरीर क्षीण होता है, उस क्षीणता की कमी की पूर्ति आहार-अन्न रस द्वारा होती है। अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिए शुद्ध आहार की आवश्यकता है। आहार से ही शरीर में उष्णता स्थिर रहती है और शक्ति का संचार होता है।

अनेक मातायें ऐसी हैं, जो बालक को एक मिनट भी रोने नहीं देतीं, झटपट स्तन्यपान कराती हैं अथवा दुग्ध पिलाती हैं। यह नहीं देखतीं कि रोने का कारण क्या है बालक को भूख है या नहीं, बालक के पेट में चाहे दर्द ही क्यों न हो परन्तु दुग्ध या अन्य पदार्थ खिला पिलाकर ही चुप करना ध्येय है। वे यह भी तो नहीं जानतीं कि रोना बालक का व्यायाम है। अत्यधिक आहार देने से जाठराग्नि दूषित हो जाती है और कालान्तर में पच्यमानाशय-ग्रहणी भी दूषित हो जाती है, परिणामस्वरूप अतीसार आरम्भ हो जाता है।

सगर्भा-माता, गौ भैंस अथवा धात्री आदि का दुग्ध जिस बालक को पिलाया जायेगा, वह दुष्ट दुग्ध बालक को अजीर्ण उत्पन्न कर देगा। अजीर्ण से आहार द्रव्यों का पूर्ण रूपेण पाक नहीं हो पाता, अतः अपक्व आहार (आम) रसवाहीस्रोतों का अवरोध कर लेता है, जिससे वात प्रकुपित हो जाता है, जो बालक में क्षय कर देता है, परिणामस्वरूप अन्न का रस बनने नहीं पाता अवरोध हो जाने से उत्तरोत्तर धातुएँ भी बनने नहीं पाती, अतः बालक क्षीण होने लगता है।

इस प्रकार विकृत आहार अन्न दुग्धादि के सेवन से अग्नि शान्त हो जाती है अथवा विकृत हो जाती है। अग्नि के विकार ग्रस्त होने से बालक व मनुष्य नानाविध रोगों से आक्रान्त होते हैं।

उत्तम आहार के बिना उत्तम रस का निर्माण नहीं होता, अतः रसक्षय होने लगता है। रस का क्षय होने से उत्तरोत्तर धातुएँ भी क्षय को प्राप्त होती हैं।

माता का आहार—माता या धात्री का आहार-विहार भी अनुकूल होना चाहिए। जब माता विविध प्रकार के गुरु पदार्थों तथा दुष्ट अन्नों का सेवन करती है तो उसका स्तन्य (दुग्ध) भी गुरु आदि अनेक दोषों से दुष्ट हो जाता है और फिर उस दुष्ट दुग्ध को बालक पीता है तो उसे वह पचाता नहीं जब दुग्ध, जो बालक का आहार है, वही नहीं पचेगा तो नानाविध रोग उत्पन्न होंगे ही विशेषरूप से शोष रोग जायमान होगा।

रस की उत्पत्ति पक्व आहार से होती है और पक्व आहाररस से दुग्ध की उत्पत्ति होती है, क्योंकि रस की उपधातु स्तन्य है। अतः माता भी शुद्ध आहार समय पर भूख लगने पर उचित मात्रा में सेवन करे, जिससे रोगरहित स्तन्य उत्पन्न हो। रसक्षय का सर्व प्रथम और मुख्य कारण हुआ 'आहार दोष' खाद्योज डी और खटिक की अल्पता, गर्भावस्था में पोषकतत्वों की न्यूनता, गर्भकाल में स्तनपान, दूषित अन्नपान तथा स्तन्य दुष्टि तथा उचित पोषक तत्वों के अभाव से रोग जायमान होगा।

पाचन विषयक

इस अवस्था में बालक की आन्त्रिक पाचन एवं शोषण शक्ति नष्ट हो जाती है। यकृत् की कार्य क्षमता कम हो जाती है। क्लोमग्रन्थि पूर्णतः क्रियाशील नहीं रहती।

३. रोग विषयक:—क्षय(T.B.)ज्वर, श्वसनक ज्वर मोती ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, सहज हृद्रोग, सहज फिरंग, आमाशय विस्फार, वृक्क श्रोणि शोथ, आदि।

४. गर्भज विकार -

गर्भावस्था में अपरिपुष्ट, अपुष्ट गर्भ, पूर्व कालिक गर्भ, पारिगर्भिक।

५ दारिद्र्य जन्य—

दरिद्रता तथा अस्वास्थ्यकर मकान में रहने से, सूर्य प्रकाश का अभाव, आदि। विशिष्ट—रसक्षय कोई स्वतन्त्र रोग नहीं है अपि तु एक लक्षण है जो उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न होता है। जब शरीर को धारण करने वाली धातु रस का क्षय हो जाता है, तो उत्तरोत्तर धातु रक्त, मांस,मेद, अस्थि, मज्जा प्रभृति का शोष होजाता है।

पूर्वरूप—१ बालक उद्विग्न तथा क्षुब्ध सा रहता है। स्वाभाविक चपलता कम हो जाती है। शरीर शिथिल हो जाता है, दुग्ध व भोजन का पाचन ठीक नहीं हो पाता है, बालक प्रतिदिन सूखता जाता है। पतले दस्त आने लगते हैं। शनैः-शनैः बालक सूख जाता है।

लक्षण—१. स्वभाव-चिड़चिड़ा तथा क्रोधी बन जाता है। २. हर समय ग्लानियुक्त रहता है। ३. रें-रें करता रहता है।

२. पाचनः— १. भूख कम हो जाती है, किसी-किसी बालक को अधिक लगती है। २. दुग्ध पचता नहीं, अतः बहुत कम पीता है। पीने के पश्चात् तत्काल वमन कर देता है।

३. मल, दुर्गंधयुक्त, छिछड़ेदार, लसदार, फटा हुआ, लपपब अथवा अर्ध पाचित, आमयुक्त, हरित अथवा पीत वर्ण, चावलों के धोवनवत्, कभी रक्त-मिश्रित होता है।

४. मानसिकावस्था — १. मन की बेचैनी अनुभव होती है। २. निद्रा कम आती है। ३. मस्तक पर स्वेद

५. सहायक लक्षण i. प्रायः शरीर गर्म रहता है ii. बार-बार कास तथा प्रतिश्याय होता है। iii. तालुपात-खोपड़ी पर गड्ढा पड़ जाता है। iv. बालक निरुत्साहित हो जाता है। v. बालक सीधा बैठ नहीं सकता। vi. बालक की आकृति म्लान होजाती है। vii. बालक सूख कर अस्थियों का ढांचा मात्र रह जाता है। viii. बालकके पुट्ठों (कूल्हों) पर झुर्रियां पड़ जाती हैं। ix. चमड़ी लटक जाती है। x. तापक्रम कम हो जाता है।

चिन्ह (Signs) —

I. आकृति—१. म्लान, पीताभ भूरी, २. हाथ पांव नितम्ब सूखे हुए, ३. नितम्ब के मांस प्रदेश में झुर्रियां ४. पेट फूला हुआ, आगे निकला हुआ ५. छाती की पसलियां उभरी हुई, ६. उदर-शिर तथा मुख की वृद्धि ७. चलने फिरने में असमर्थ, ८. हस्तपाद की सन्धियां शिथिल ९. गालो में गड्ढे १०. चेहरा सूख कर बन्दर जैसा हो जाता है, ११. मांस क्षय-कृशता आदि निश्चेष्ट,मलिनआभा १२. शुष्क दुर्बल हाथ पांव, निस्तेज मुख-मण्डल। उदर-वृद्धि, म्लान शरीर।

II. पाचनः—विकार के हेतु पेट तना हुआ,उभरा हुआ रहता है। उदर पर नीली-नीली नसें-शिरायें चमकती दिखाई देती हैं। २. यकृत्प्लीहा शोथयुक्त कठोर एवं स्पर्श-लभ्य।

III. कंकाल—१ कपाल चौड़ा २. कपालास्थि में मृदुता ३. कटिप्रदेश एवं पीठ में उभार ३. नेत्र पीतवर्णयुक्त, अक्षि गुहा में धसे हुए ४. हाथ पाव पतले पड़ जाते हैं।

IV. रक्त—१. रक्ताल्पता पाई जाती है।

V. अन्यच्च— १. ज्वर प्रायः १०० से १०१ डिग्री तक २. फुफ्फुस प्रसेक ३. जीन मैली ४. त्वचा का लचकीलापन जाता रहता है, तथा पीताभ भूरे वर्ण की हो जाती है।

रोगपरीक्षा—

१. बालक के कान की कोर-कर्ण पाली (कान के नीचे जो भाग लटकता है) को हाथ में खूब दबाकर देखें अर्थात् अंगुष्ठ तथा प्रदेशिनी अंगुली से रूपर्शता की शक्ति के साथ मीच कर देखें, बालक को तनिक भी दर्द नहीं होगा बालक रोयेगा नहीं, चिल्ला हो क्या कर देखें।

२. बालक के सिर पर(ब्रह्मरन्ध्र स्थान पर)तीन ग्राम गुड़ बिरका है,ऊपर एक मोटी जो की रोटी रखकर बाध दें

छः घण्टे पश्चात् रोटी को खोल कर देखें रोगी वालक होगा तो गुड़ नहीं मिलेगा। पिघल जायेगा।

३. मुर्गी के अण्डे की जर्दी एक कम्वल पर उसके ऊपर रुग्ण वालक को इस प्रकार वैठावें कि गुदा जर्दी पर रहे यदि रसक्षय या शोष रोग होगा तो पीतता गुद मार्ग से भीतर प्रविष्ट हो जायेगी।

उपद्रव-

अतिसार आध्मान वमन, हों उपद्रव अनेक। कास श्वास शोष को भी अन्त समय में देख।' कान में दर्द होने से पर्दे विकृत हो जाते हैं। आंख आ जाने से फूटने का डर रहता है। अस्थि में शोष होने से अस्थिक्षय हो जाता है। दांतों में कृमि लग जाते हैं।

चिकित्सा-सिद्धान्त—

शुद्ध वायु का सेवन करायें, प्रातः सूर्य प्रकाश दें।
मां की गोदमे शिशु हो, चतुर हो मर्दन अभ्यास में॥

माता ध्यान दें—

१. यदि वालक स्तन्यपान करता है तो नमकीन, मसालेदार, चटपटी तरकारी गरिष्ठ पदार्थ, अति गरम तथा खट्टी वस्तुओं से सदैव वचें। सुपाच्य-पौष्टिक भोजन करें।

२. भोजन वनाने के तत्काल पश्चात् वालक को स्तनपान न करायें।

३. अधिक देर अग्नि के पास रहने के पश्चात्, कहीं दूर से चलकर आने के वाद तथा चक्की चूल्हे के काम के पश्चात् आंचल का दूध वालक को न पिलायें। एक दो घण्टे वाद पिलायें।

४. शरीर पर स्वेद हो और देह गरम हो तव भी आंचल का दूध वालक को न पिलायें।

५. प्रायः ऐसी स्त्रियां देखी हैं जो रसोई घर में आग के सामने वैठी भोजन वनाती हैं तव उसी समय छोटा सा लल्लू जाग उठता है और रोता है तो ममता की मारी मां दौड़कर आती है और वच्चे को गोद में झटपट कमर को थपथपाती हुई स्तन मुंह में दे आग के पास वैठ जाती है जननी ऐसा न किया करें, लल्लू को कुछ देर रोने दें, यही तो इसका व्यायाम है, करने दो, तव तक आप भी स्वस्थ हो जायेंगी, आंच की गरमी दूर हो जायगी तव प्रेम से स्तनपान करावें।

६. जव तक लल्लू दूध पीता है, अधिक भोग विलास से दूर रहें। ब्रह्मचर्य का पालन करें।

७. जव स्वय भोजन करें तव वालक को स्तन-पान न करायें। इससे पाचन विकार उत्पन्न हो जाते है।

८. वालक को प्रतिदिन स्नान करायें।

याद रखें कि -

१. इस खिलती हुई कली को गोद में न दवायें। इसे खिलने दें, वढ़ने दें, खेलने दें।

२. हर समय गोद में रखने से वालक की पाचनक्रिया विकृत हो जाती है। स्वास्थ्य विगड़ जाता है रोग आ दवाता है। तव क्या होगा? यही कि फिर लल्लू न गोद में होगा और न खटिया में, हंसना, हंसाना खेलना तो स्वप्न वन जायगा।

३. भाई को लिटाकर हंसाकर, वैठाकर खिलाकर, अंगुली पकड़कर प्रातःसायं स्वच्छ वायु में घुमाया करें।

४. हव्वा से मत डराओ अपि तु शिवाजी की कहानी और मीठी-मीठी लोरियां सुनाओ।

सावधान—

मूर्ख लोग इसे आसेव, चुड़ैल की फटकार समझकर झाड़, फूंक, गण्डे डोरी तावीज कराते हैं। कुछ शैतान लोग टोटके ही वनाते हैं, वे चौराहे में कुमकुम अक्षत रख दीप जलवाते हैं।

स्मरण रहे—

यह रोग है, इसकी चिकित्सा करायें। अन्ध-विश्वास छोड़ दें।

औषधि के देने के पूर्व प्रवन्ध-

१. सुशिक्षित धात्री की परिचर्या करायें।

२. शिशु को उष्ण रखें। घर विस्तर ओढ़ना विछौना उष्ण हों साफ धुले भी हों।

३. पचन संस्थान को भार न दें, अर्थात् निश्चितकाल में अन्तर से दूध पिलावें। यह भी निश्चय करलें कि वास्तव में वालक भूखा है।

४. यदि वच्चा रोता है, तो उसका कारण देखें, उसे

दूर करें, रोता देखकर दूध पिलाने की चेष्टा न करें। पाचन विकार होने का भय रहता है।

६. माता के स्तनों में दूध न हो, धात्री का भी प्रबन्ध न कर सकें तो गाय का दूध दें। गो दुग्ध १ भाग में २ भाग या ३ भाग जल मिला, शक्कर से मीठाकर पिलावें। धीरे-धीरे दुग्ध की मात्रा अधिक करते जायें। दूध को तीव्र अग्नि पर उबालकर शीतल कर पिलावें। दुग्ध गरम कर ठण्डा होने पर मिश्री मिलाकर पिला सकते हैं।

७. लगभग छः मास का बालक अन्न की रुचि करता है, उस समय बालक को दलिया, खिचड़ी दुग्ध में भिगो कर गलाई हुई रोटी, खील, चावल आदि योग्य सुपाच्य पदार्थ दें।

८. बालक को निश्चित काल पर ही भोजन दें।

औषधि-व्यवस्था-

१. शिशु हितैषी वटी –

मात्रा-१ गोली, अनुपान-मातृदुग्ध व अर्क गावजवां। समय-प्रातः-मध्याह्न-सायंकाल। सहपान-१ घण्टे के पश्चात् गोमूत्रासव ५ से १० बिन्दु, व अर्क गावजवां मिलाकर दें।

२. मर्दनार्थ-महालाक्षादि तैल, प्रातःकाल धूप में लिटाकर धीरे-धीरे मालिश करें।

३. भोजन करने वाले बच्चे को भोजनोत्तर—अरविन्दासव, गोमूत्रासव, मधु मिलाकर ४० से ६० मि. लि. तक दिन में दो बार देते रहें।

१.हितैषी वटी-सुवर्ण पत्रक, अनबिंध मोती १०-१० ग्राम लेकर एक सप्ताह तक अर्क बेदमुश्क में खरल करें। फिर रजत पत्रक १० ग्राम मिला एक सप्ताह अर्क बेदमुश्क में खरल करें। यह पिष्टी बन गई।

यह पिष्टी ३० ग्राम, जहर मोहरा खताई पिष्टी १० ग्राम, कहरवा समई पिष्टी १० ग्राम, नागकेशर २० ग्राम, केशर ५ ग्राम, खूबकलां (अजादुग्ध में शोधित) १० ग्राम कर्पूर सत्व २ ग्राम, निम्बदंती भस्म (गोदन्ती को निम्बपत्र स्वरस में भावित कर बनाई भस्म) १२० ग्राम लें। सब द्रव्यों को कूट पीस एक जीवकर आठ दिन तक गुलाब जल में, आठ दिन अर्क बेदमुश्क में खरल करें।

मात्रा—१ से ४ रत्ती। अनुपान—दुग्ध तथा अर्क गावजुबां।

गुण विशेष—बालशोष की शर्तिया दवा है।

२. गोमूत्रासव-

गाय का मूत्र १ लिटर, विशुद्ध केशर १५ ग्राम केशर को खरल में घोटलें, खरल करते समय थोड़ा-थोड़ा गोमूत्र डालते जांय। फिर सब गोमूत्र और केशर खरल की हुई मिलाकर एक कांच के पात्र में डाल कार्क लगा धूप में रखदें, एक सप्ताह रखी रहने दें, फिर काम में लें।

वैद्य श्री गुगनराम यादव के अनुभूत योग —

वैद्य जी ८५ वर्ष के हैं, स्वस्थ हैं, चरक-चिकित्सा में विशेष आस्था रखते हैं।

१. नागबला (गुलशकरी) की छाल ६ ग्राम कूट गोदुग्ध में उबाल कर पिलावें।

२. अश्वगन्धा के चूर्ण ६ ग्राम को दुग्ध में उबाल मिश्री मिला पिलावें।

३. सुधाष्टक योग (सि. यो. सं. यादव जी त्रिकमजी) १ से ४ रत्ती तक दुग्ध से दें।

४. बालशोषहर योग-खूबकलां ४० ग्राम, अनबिंध मोती १ ग्राम, स्वर्ण पत्रक १ ग्राम लें। खूबकलां को उष्णोदक से धोकर स्वच्छ करके एक पोटली बांधलें और अजादुग्ध २ लिटर में दोलायन्त्र में मन्दाग्नि पर पकावें। जब दुग्ध गाढ़ा हो जाय तब पोटली निकाल कर छाया में शुष्क करें, और वस्त्रपूत चूर्ण कर रखलें। मुक्ता तथा स्वर्णपत्र को अर्क बेदमुश्क में निरन्तर सात दिन खरल कर रखलें।

मात्रा-खूबकलां चूर्ण १ ग्राम, स्वर्णमुक्ता पिष्टी २ चावल भर दोनों को खरल में डाल अर्क बेदमुश्क के छींटे देकर खरल करें। यह एक मात्रा है। अनुपान—दुग्ध।

गुण—बाल शोष की परीक्षित दवा है। मर्दनार्थ महालाक्षादि तैल काम में लें।

३. वैद्य भूषण मंगलचन्द आर्य की चिकित्सा विधि-

१. च्यवनप्राशावलेह दुग्ध में घोल कर दें। इसी प्रकार कुमारकल्याण घृत दें।

२. मर्दनार्थ—नारायणतैल, महालाक्षादितैल का प्रयोग करें।

३. मुक्तादिवटी (सिद्ध-योग-संग्रह) मात्रा—१ गोली अनुपान—दुग्ध।

पं० राजेश्वरदत्त शास्त्री की चिकित्सा विधि—

१. वसन्त मालती १ रत्ती, शिलाजित्वादि लौह २ रत्ती, शम्बूक भस्म २ रत्ती कुक्कुटाण्डत्वक भस्म ३ रत्ती मिश्रित ३ मात्रा। अनुपान–मधु दिन में ३ वार दें।

२. अरविन्दासव २ से ६ माशा, दो मात्रा, समभाग जल के साथ भोजन के बाद।

३. सुधाष्टक योग (सि. यो. सं.) २ रत्ती की मात्रा में दुग्ध के साथ दें।

४. वाल लाक्षादि तैल का शरीर भर में अभ्यंग करें।

५. वैद्य दलीपसिंह यादव की चिकित्सा-विधि–

१. पंचारिष्ट—अरविन्दासव, कुमारी आसव, द्राक्षासव, लोहासव रोहितकारिष्ट समभाग लें।

मात्रा—१ से ६ मास तक के बालक को २ बिन्दु, एक वर्ष से ५ वर्ष तक ५ विन्दु, फिर प्रति वर्ष एक विन्दु अर्थात् १० वर्ष के बच्चे को दस ही बूंदें दें, । न्यूनाधिक अवस्थानुसार दे सकते हैं।

अनुपान—ताजा जल, दुग्ध, दिन में दो वार दें।

गुण –सम्पूर्ण उदर रोग नाशक है। यकृत्प्लीहा रोगहर हैं। रक्तवर्धक है। शोपनाशक है।

२. मर्दनार्थ—महालाक्षादि तैल।

३. वाल पञ्चभद्र (सि. यो. सं.) रस सिन्दूर १० ग्राम यशद भस्म ५ ग्राम, गोरोचन १० ग्राम, शुद्ध गन्धक १० ग्राम, गोदन्ती भस्म ८० ग्राम लें, सवको एक दिन खरल में मर्दन करके रखलें।

मात्रा—२ से ४ रत्ती तक। अनुपान–मधु में चटाकर ऊपर गोदुग्ध पिलावें।

५. शास्त्रीय प्रयोग–

१. कुमार कल्याण रस (भै. र.) रस सिन्दूर, मुक्तापिष्टी स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म, लौह भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म को लेकर घृत कुमारी के स्वरस के साथ खरल कर मूंग प्रमाण गोलियां बनालें।

मात्रा—बालक की आयु तथा रोग की तीव्रातीव्रता का विचार कर आधी से १, गोली तक।

अनुपान—मिश्रीयुक्त गोदुग्ध। गुण-बालकों के समस्त रोग समूह को नष्ट करने में पूर्ण सफल है।

२. अश्वगन्धाघृत (भै. र.) गोघृत १ किलोग्राम, गोदुग्ध १० लिटर।

कल्कार्थ—असगन्ध ३५ ग्राम। पाकार्थ-जल ४ लिटर इन द्रव्यों को यथाविधि पाक करें, मात्रा-२-४ बूंद, अनुपान दुग्ध। पौष्टिक एवं बलवर्धक है।

अनुपान का महत्त्व

अनुपानं हितं युक्तं तर्पयत्याशु मानवम्।
सुखं पचति आहार आयुषः च वलाय च॥

–चरक

किसी भी औषध योग को हितकर अनुपान के साथ ही देना चाहिए। क्योंकि अनुपान बालक का शीघ्र तर्पण करके औषध और आहार को पचा देता है तथा उसके बल की वृद्धि करता है।

बालानां हि रसक्षये

वैद्य पं० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री, लाखा भवन, जबलपुर सिटी (म. प्र.)

शिशु रोगों में मूल कारण प्रायः रक्तक्षय होता है। इसके कारण बालक प्रायः पनप नहीं पाते। वे अकाल ही में कालकवलित हो जाते हैं। रक्तक्षय से उनका खून नहीं बढ़ पाता। फिर धीरे-धीरे खून की अपुष्टि के कारण अन्यान्य धातुएं भी वृद्धि को प्राप्त नहीं होतीं। इसी कारण प्रायः अनेक बच्चे अस्थिक्षय, अग्नि-मांद्य, सदा रोगी बना रहना आदि-आदि व्याधियों के शिकार बने रहते हैं। यदि कदाचित् वे जीवित भी रह गये तो जन्म-भर प्रायः रोगग्रस्त ही रहे आते हैं। एक के बाद एक होने वाली बीमारियां उनका पीछा नहीं छोड़तीं। फलतः सन्तान दर सन्तान वे कमजोर ही रहे आते हैं।

इसलिये बच्चों में होने वाले रक्तक्षय पर सरलतम भाषा में तथा सरल चिकित्सा द्वारा अनुभूत प्रकाश डाला जा रहा है।

वैसे तो प्रायः शिशुओं में रक्तक्षय की बीमारी का मुख्य कारण माता की लापरवाही अथवा पिता की दरिद्रता ही है। इससे बच्चों को निर्दोष एवं पोषक आहार नहीं मिल पाता। माता के वात, पित्त, कफ के दूषित होने के कारण दूषित हुआ मातृ दुग्ध प्रायः शिशुओं में रक्तक्षय का मूल कारण हो जाता है। बच्चों का शरीर बिल्कुल भी नहीं पनप पाता।

ऐसी स्थिति में हम बहुत गहरा विवेचन न करके बहुत ही सरल रूप में इस पर आवश्यक प्रकाश डाल रहे हैं। हमारी इस चिकित्सा को प्रायः पारम्परिक चिकित्सा ही कहा जा सकता है। फिर भी सावधानी के साथ देने पर यह [illegible] रूपों में [illegible] काम करती है।

१. कफज रोग होने पर—[illegible] का [illegible] या [illegible] की [illegible] या [illegible] का [illegible] बहुत अच्छा काम करता है। इसे विविध रूपों में तैयार करके [illegible] में [illegible] हैं। मात्रा—[illegible] का विभिन्न अनुपानों में [illegible] एक से १½ माशे तक की मात्रा में मधुयष्टि (मीठी लकड़ी हमारा कल्पित नाम बालसुधा) में मिलाकर देते हैं। चूर्ण की मात्रा १ रत्ती से सवा रत्ती तक ही होती है। दो से चार मात्रा तक प्रतिवार चौबीस घंटे में देते हैं। शहद के साथ देना या ऊपर से मां का दूध पिला देना बहुत ही अच्छा रहता है।

२. इसी तरह अनार का शरबत भी अनुपान रूप में बहुत अच्छा रहता है। इसको भी बालसुधा या बाल चतुर्थी के साथ योग्य मात्रा में, दिन में चार बार तक, कुछ दिनों तक देते रहना चाहिये। वैसे ही अनार का रस या शरबत बच्चों के लिये अनेक रोग नाशक एवं स्वास्थ्यप्रद होता है।

३. इसी तरह 'आम' भी एक उत्तम चीज है। आम का रस या आम की बर्फी या आम का मुरब्बा या आम्र-पाक या आम का बनाया हुआ 'मिल्क शेक' या आम का पतला अमरस और दूध किसी न किसी रूप में लगातार देते रहना आवश्यक है।

मध्यप्रदेश में अभी कई ऐसे वैद्यराज उपस्थित हैं जिनकी ओर सारा देश मार्गदर्शन के लिए अभी भी निहारता रहता है। इनमें कई एक तो जबलपुर को कृतार्थ किए हुए हैं। उन्हीं में श्री चन्द्रशेखर जी भी हैं। अन्तर यह है कि जबलपुरस्थ दो उच्च वैद्य नाड़ी पर ही अधिकतर हाथ रखते और समाज को रोग-मुक्त करते हैं किन्तु शास्त्री जी का हाथ लेखनी पर अधिक रहता है। वे सद्य जहां रोगी पर उपकार करते हैं वहां आप पेढ़ों पर उपकार करते हैं।

आपका रक्तक्षय पर लिखा यह लेख अपनी उन विशेषताओं से परिपूर्ण है जो प्रायः शास्त्री जी के लेखों में रहती हैं। —र. प्र. त्रिवेदी

लेखक
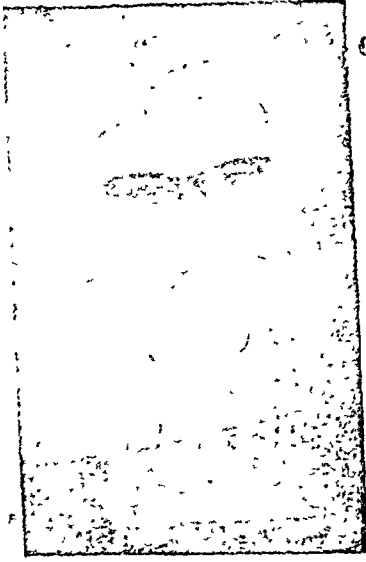
४. इसी तरह 'पालक की माजी' या तरकारी भी अच्छा काम करती है। साफ धुली हुई माजी और साफ धुला हुआ कपड़ा लेकर माजी को कूट डालें और रस निकाल लें। इसे १-२ चम्मच पानी के साथ यूं ही छोटे चम्मच से (न पिया जाय तो थोड़ी शक्कर मिला लें)। दिन भर में फसल के दिनों में २-४ चम्मच देते रहना चाहिये। देखने में तो यह छोटा लगता है, किन्तु अत्युत्तम रस रक्तवर्धक है। बहुत से बाल रोगी इसी उपाय से ठीक किये गये हैं।

५. शहद मिला हुआ 'आमलों का रस' भी मिलाकर योग्य मात्रा में दिया जाता है। इसके लिये शहद की मात्रा प्रायः आंवले के रस से दस गुनी होनी चाहिये। यदि १ माशे आंवले का रस हो तो १। तोले तक शहद डाला हो। अधिक होने में तो कोई हानि नहीं है, किन्तु कम नहीं होना चाहिये।

६. 'खीरा का रस' भी इस तरह काम में लिया जा सकता है। इसका शरबत ही बनाकर इस रोग में देते हैं। प्रायः 'शरबत कमलपुष्प' या 'शरबत नीलोफर' भी उचित मात्रा में प्रयोग किया जाता है। औषधि रूप में बालसुधा या बालचतुर्थी को काम में लिया जाता है।

७. प्रायः ऐसे बच्चों के लिये 'केला' भी बहुत अच्छा रहता है। केला का शरबत सा बनाकर अधिकतर औषधि के साथ प्रयोग में मात्रानुसार देते हैं।

८. 'किसमिस' भी शरबत या हलुए के रूप में काम में आती है। मुनक्का भी ऐसे समय में योग्य रूप में बहुत अच्छा काम करता है। कब्ज रहती हो तब।

९. 'केवड़े का शरबत' भी बालरक्तक्षय पर सहायक रूप में काम आता है। इसी प्रकार खजूर या पिण्ड खजूर खीर या पिसे काजू आदि के साथ मिलाकर हलुए के रूप में योग्य औषधियों के साथ प्रयोग में लेते हैं।

१०. 'गुलाब का शरबत' भी बच्चों के रक्तक्षय पर अच्छा काम करता है। गुलाब ताजा ही होना चाहिये। वह उस स्थिति में उत्तम लाभ करेगा।

११. 'गाजर' भी बालकों के लिये अत्युत्तम है। उसको घोटकर या कपड़े में रस निचोड़ छानकर फिर चम्मच से पाव से आधा तोले की मात्रा में दिन में ४ से ६ वार तक देते रहें। गाजर का मुरब्बा व बर्फी या खीर या हलुआ योग्यानुपान के साथ दिन में कई वार दें। मात्रा तथा पाचन का पूर्ण ध्यान रखें। गाजर से बच्चों के कठिन रोग भी सरलता से ठीक किये जा सकते हैं। यह उदर रोग मिटाकर शक्ति अच्छी तरह देता है और रक्तक्षय भी दूर करता है।

१२. इसी तरह 'गोभी के रस' से भी इलाज किया जा सकता है। ताजी गोभी ही काम की है। रस भी ताजा छना हुआ और औषधि के साथ देना चाहिये।

१३. 'रक्तक्षय' पर छुहारा चटनी आदि के रूप में प्रयोग में लें। यह स्वादिष्ट निरापद और उत्तम कारगर है। विटामिन युक्त है। हम उसे खूब ही काम में लेते हैं।

१४. 'टमाटर' तो बच्चों के लिये अमृत है। उसे विभिन्न औषधियों के साथ, टमाटरों की बर्फी या शरबत के साथ खूब प्रयोग में लेते हैं। यह दुबलों-पतलों को मोटा एवं लाल बना देता है। इसके रस, चटनी, सूप आदि के रूप में औषधोपयोग पाये जाते हैं। विभिन्न औषधियों और विभिन्न अनुपानों के साथ यह बहुत अच्छा काम करता है।

१५. इसी तरह 'तरबूज' का शरबत, या तरेकर का हलुआ, या उत्तम दही आदि भी औषधियों के साथ योग्य उचित मात्रा में काम में लिये जाते हैं।

१६. ऐसे ही नारियल के पानी, नारियल, नाशपाती या नीबू, मुसम्बी आदि को भी औषधि प्रयोगों के साथ नहीं भूला जा सकता है। मुसम्बी का रस या शरबत बनाकर विविध रक्तक्षयों में खूब ही प्रयोग में लेते हैं।

१७. इसी प्रकार पके पपीते का रस या प्याज का रस बच्चों के रक्तक्षयों में औषधि रूप में विभिन्न अनुपानों के साथ काम में आता है।

१८. भूरे कुम्हड़े का मुरब्बा या पेठा औषधोपयोग में मात्रानुसार काम में आता है। ऐसे ही फालसे का शरबत भी प्रयोग में लिया जा सकता है।

१९. 'बथुआ' भी उदर कीटजन्य रक्तक्षय में अच्छा काम करता है। इसे रस या शरबत रूप में काम में लेते हैं। ऐसे ही ब्राह्मी भी अपनी सानी नहीं रखती। ब्राह्मी, बादाम आदि मिलाकर बनाया गया शरबत भी वातरक्त-क्षय पर खूब काम करता है।

२०. यदि रक्तक्षय का कारण अतिसार हो तो बेल का मुरब्बा या बेल का कच्चा शरबत मिलाकर देते रहना चाहिये। यानी बच्चे की परीक्षा करके उसके रक्तक्षय का कारण आदि पूरी तरह जानकर योग्य वनस्पतियों या फलों आदि से इलाज करना चाहिये।

२१. इसी प्रकार लौकी, सलजम, शकरकन्द, सिंघाड़ा या साबूदाना आदि से शीरा आदि योग्य अनुपान तथा योग्य स्वाद वाली स्वादिष्ट औषधें मिलाकर रोग को दूर करें।

२२. सन्तरे को भी बाल रक्तक्षय में कभी न भूलें। यह रक्तक्षय के साथ टी. बी. को भी या अस्थि-मार्दव को भी मार भगाता है। सन्तरे और बादाम तथा ब्राह्मी का मिश्रित उपयोग बड़ों-बड़ों तक का अस्थिक्षय, टी बी आदि ठीक कर देता है। सावधानी से, पथ्य और संयम पूर्वक, इनका कुछ दिनों तक नियमित उपयोग करें। साथ में योग्य तैल आदि आदि की मालिश भी कराते रहें। चन्दनबला लाक्षादि तैल, अरविन्द तैल, कर्पूरादि तैल आदि-आदि बहुत ठीक रहते हैं। शेष क्रिया से, सफाई स्नान, उबटन, मालिश आदि पर पूरा-पूरा प्रतिदिन ध्यान रखें। आप रोगी बच्चों को रोगमुक्त करके अवश्य ही हृष्ट-पुष्ट नीरोग लाल एवं आकर्षक बना देंगे।

यहां पर शाकाहार या वनस्पति के आहार के द्वारा मुख्य रूप से बालकों के रक्तक्षय की चिकित्सा दी गई है। फिर भी तैल चिकित्सा, घृत चिकित्सा, आसवारिष्ट चिकित्सा, मालिश व्यायाम पथ्य चिकित्सा आदि भी निरन्तर करते रहें। प्रमाद न करें। आप बच्चे को रोग से बचाने में अवश्य ही कृतार्थ होंगे और पुण्य के भागी बनेंगे।

आनाह शूल चिकित्सा

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्ङ्गीरजोलिहन्। आनाहं वर्तिकं शूलं जयेत्तायेन वा शिशुः॥

सेंधानमक सोंठ इलायची, हींग तथा भारंगी इन पांचों को एकत्र करके चूर्ण करे उस चूर्ण की मात्रा—१ वर्ष के बच्चे को चौथाई रत्ती घृत या उष्ण जल के साथ सेवन करावे इससे आनाह तथा वातिक शूल नष्ट होता है।

फक्करोग या रिकैट्स

संकलन कर्त्री तथा लेखिका—कु० साधना त्रिवेदी बी. ए. (फाइनल), आयुर्वेदशास्त्री (द्वि. व.)

यह लेख आचार्य त्रिवेदी की पुत्री कु० साधना के द्वारा, के स्वयत्कीना, ए० रव्वूल, एम० रूसोलोवा द्वारा लिखित रिकेट्स नामक पुस्तक का सारांश है जो मास्को से मीर पब्लिशर्स द्वारा प्रकाशित है। इसके साथ कश्यपसंहिता के फक्करोगाध्याय के उद्धरण भी दिये गये हैं। उक्त रूसो पुस्तिका संग्रहणीय और पठनीय है। कु० साधना के अष्टांगहृदय विषयक लेखों से सुधानिधि के पाठक भलीभांति परिचित हैं ही। —म० मो० च०

कश्यप ऋषि ने अपनी संहिता में–

वाल: सम्वत्सरापन्न: पादाभ्याम् यो न गच्छति ।

स फक्क इति विज्ञेय: तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ।।

इस श्लोक के साथ फक्क रोग का वर्णन आरम्भ किया है जो यह सिद्ध करता है कि काश्यप संहिता के काल में जब लोग यायावर वृत्ति छोड़कर नगर ग्रामों का अधिवास कर रहे थे लोगों में इस वालरोग का प्रादुर्भाव हो चुका था। उससे पूर्व की संहिताओं में इस रोग का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता क्योंकि तब लोग खुली धूप में, शुद्ध वातारण में विचरण करने के आदी थे और उनके बच्चे भी हृष्टपुष्ट शरीरधारी थे। उसके वाद के कालों में और आजतक जब तक नवीन विज्ञान का पूर्ण उदय नहीं हो गया बालकों को यह भयानक रोग ग्रसित करता ही चला गया है।

आज जब दुनियां का नक्शा हमारे सामने है और विश्व के विभिन्न देशों के वालकों के स्वास्थ्य का अध्ययन करना सम्भव है हमें यह रोग अनेक देशों और विविध परिस्थितियों में होता हुआ मिलता है। उदाहरण के लिए ध्रुव प्रदेशों में और उन देशों मे जहां सूर्य के दर्शन छै छै महीने तक नहीं होते वहां के वालकों में यह रोग १०-१० वर्ष की आयु तक मिला है। आज से ४०वर्ष पूर्व दो रूसी खोजकों ने कौलगूयेव द्वीप के नैनेट्स जनजाति के वद्दुओं के बच्चों में १००% फक्क रोग ढूंढ निकाला था। ३ से १० वर्ष तक के बच्चे इससे पीड़ित थे। इस द्वीप की जलवायु बहुत ठंडी है। हवायें और कुहरा इसे घेरे रहते हैं। ध्रुव प्रदेश में होने से यहां तीन चार माह तक सूर्य नहीं निकलता। इस कारण इन वद्दुओं के बच्चे योरटा शिविरों में अंधेरे में पड़े रहते हैं उन्हें प्राकृतिक सूर्य का प्रकाश नहीं मिल पाता और वे रिकेट्स या फक्क रोग से पीड़ित रहते हैं। कभी कभी रीतिरिवाज और रहन सहन के परम्परागत तरीके भी वच्चों में रिकेट पैदा कर देते हैं। उदाहरण के लिये इसराइली वच्चों में तातारों में और वुरियात्स जनजाति के बच्चों में जिन्हें प्राय: घर के अन्दर रहना पड़ता है और जो सूर्य के प्रकाश से वंचित रहते हैं रिकेट्स से पीड़ित रहते है।

सूर्य की धूप कभी कुहरे के कारण और कभी धूल के कारण और कभी वादलों के कारण वच्चों को पूरी तरह नहीं मिल पाती वहां भी बच्चे इस रोग से पीड़ित हो जाते हैं। ईजिप्ट के वच्चे वातावरण में धूल भरी होने से रिकेटी पाये गये हैं। मेघालय में वादल इस रोग का कारण है।

कभी कभी उन देशों के वच्चों में भी यह रोग मिलता है जहां खुली धूप खूब मिलती है। चीन,जापान और भारतवर्ष के वड़े नगरों के वालकों में यह रोग होता है जबकि वे गंदे वातावरण मे पौष्टिक आहार की कमी के साथ साथ अंधेरे मुहल्लों में निवास करते हैं।

हमारे आचार्यों ने उगते हुए सूर्य के नमस्कार पर बहुत जोर दिया है। नंगे बदन प्रभात में व्यायाम करना और सूर्य की प्रथम रश्मियों को अपने शरीर पर पहुँचने देना। हमारी परम्परा रही है, सूर्योदय के समय बच्चे को निकालना आज भी अच्छा समझा जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में हम इसका महत्व समझ रहे हैं। सूर्य की पहली किरणें अल्ट्रा वायोलेट रेज ही होती हैं। अल्ट्रावायोलेट किरणें जब हमारी त्वचा पर पड़ती हैं तो वे शरीर में विटामिन डी का निर्माण करती हैं। यह विटामिन डी ही हड्डियों के निर्माण में सहायक होती है। इसकी कमी रिकेट्स पैदा करती है। कहा जाता है कि ज्योतिष शास्त्र अस्थियों पर सूर्यदेवता का नियंत्रण मानता है उनका यह निवास कितने ऊंचे वैज्ञानिक तथ्य पर आधारित था यह स्पष्ट हो जाता है। सन् १६०६ में हैन्समैन ने एक चिड़ियाघर के शेर चीतों के शावकों में भी रिकेट्स का पता लगाया था क्योंकि उनको जंगल का प्राकृतिक वातावरण अप्राप्त था और उनके बच्चों को सूर्य का सुप्रकाश बहुत कम मिला था। पहाड़ों पर ऊंचाई के कारण अल्ट्रावायोलेट किरणें हवा में खूब मिलती हैं पर ज्योर्जिया के पहाड़ों पर रहने वाले बच्चों में इसलिये यह रोग अधिक पाया गया क्योंकि उनके माता-पिता उनको खुली हवा में नहीं निकालते थे तथा उन्हें बराबर ढके रहते थे। आज भी हमारे देश में जो लोग बच्चों को सूर्य प्रकाश से वंचित रखते है उनमें यह रोग पाया जाता है।

विद्वानों ने पता लगाया है कि जो बच्चे जाड़े के दिनों में पैदा होते हैं उनमे गरमी में पैदा होने वाले बच्चों की अपेक्षा यह रोग अधिक पाया जाता है। क्योंकि जाड़ों में माता पिता अपने बच्चों को बहुत ढक कर रखते हैं और सूर्यधूप नहीं लगने देते।

युद्धकाल में जब पौष्टिक आहार बच्चों को देना संभव नहीं होता या जो दूध बच्चे पीते हैं उसमें विटामिन डी की कमी होती है उनमें फक्क रोग बन जाता है। विन्बर्ग ने सन् १६५५ में स्वीडन के २५३० फक्की बालकों का अध्ययन किया और उसने बतलाया कि उत्तरी और दक्षिणी स्वीडन की जलवायु में आकाश पाताल का अन्तर होते हुए भी उत्तरी भाग में छै महीने की रात रहती है और तापमान साल भर ०°सें. से नीचे रहता है पर दक्षिणी भाग में यह तापमान साल में केवल तीन महीने ही रहता है—रिकेट्स से मरने वालों की संख्या एक बराबर पाई गई पर स्वीडन वासियों ने सितम्बर से मई तक प्रत्येक बच्चे को १५०० यूनिट विटामिन डी लगातार देकर यह मरक संख्या काफी घटा ली है।

यह फक्क रोग क्यों होता है ?

ऊपर के उदाहरणों से हम इस रोग के निम्नलिखित कारणों को समझ सकते है—

१. माता या धात्री या दुधारू जानवर के शरीर पर सूर्य धूप का न पड़ना जिससे वे अपने शरीर में विटामिन डी बना सकें जो उनके दूध का घटक बन सके जिसे बालक पिये।

२. बच्चे को सूर्य धूप या अल्ट्रा वायोलेट किरणों या विटामिन डी के सेवन से वंचित करना। यह प्रवचना निम्न परिस्थितियों मे सम्भव है।

(क) ऐसे देश में रहना जहां सूर्य ही ६ माह तक न निकले;

(ख) ऐसे क्षेत्र में रहना जहां साल भर कुहरा छाया रहे, या आकाश हर समय धूल से भरा रहे;

(ग) ऐसी परम्पराओं का बालक को शिकार बनाना जिससे वह सूर्य धूप से वंचित हो जाय अधिक कपड़ों में या अंधेरी जगहों मे रखना।

३. गन्दी, गीली, अंधेरी गलियों का निवास जहां महीनों सूर्य के दर्शन भी नहीं होते हैं।

कश्यप धात्री द्वारा फक्क की उत्पत्ति को स्वीकार करते है और उसके दूध को दोषी ठहराते हैं।

धात्री श्लैष्मिक दुग्धा तु फक्कदुग्धेति संज्ञिता।
तत्क्षीरपो बहुव्याधिः कार्श्यात्,फक्कत्वमाप्नुयात्॥

उनकी क्षीरज फक्क की कल्पना आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से विटामिन डी रहित क्षीर की ही बनती है।

फक्क रोग के कारणों और विकृति का सामंजस्य

रिकेट्स नामक रूसी पुस्तक में निम्नांकित रेखांकन दिया गया है जो कारणों और विकृतियों के सामंजस्य को प्रकट करता है:—
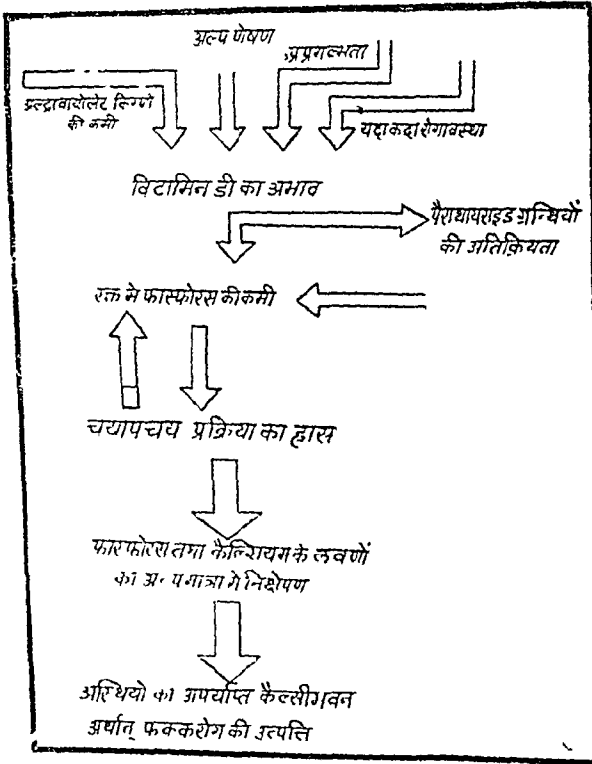
उक्त रेखांकनों से नीचे लिखी बातें सहज ही समझ में आ जाती हैं :—

१. बालक के शरीर में विटामिन डी का अभाव, बालक के शरीर पर अल्ट्रावायोलेट किरणों की कमी से, आहार द्रव्यों में विटामिन डी परिपूरित पदार्थों के न मिलने से, शिशु के अप्रगल्भ अवस्था में जन्म लेने से तथा जब तब उसके द्वारा रोगावस्था प्राप्त करने से हो जाता है।

२. विटामिन डी के अभाव से पैराथाइराइड ग्रन्थियों की क्रिया बढ़ जाती है।

३. इस क्रिया के बढ़ने से रक्त में फास्फोरस की मात्रा घट जाती है।

४. मात्रा के घटाव के परिणामस्वरूप चयापचय (मैटाबोलिज्म) की प्रक्रिया का ह्रास होता है।

५. इस ह्रास के कारण फास्फोरस और कैल्शियम के लवणों का निक्षेपण (डिपोजीशन) थोड़ी मात्रा में होता है।

६. उक्त निक्षेपण के थोड़ी मात्रा में होने से बालक की अस्थियों का कैल्सीभवन (कैल्सीफिकेशन-चूर्णीभवन) अपर्याप्त होता है और फक्क रोग या रिकैट्स उत्पन्न हो जाता है।

दूसरे बिन्दु पर पैराथायराइड ग्रन्थियों की क्रिया के बढ़ने का हवाला दिया गया है। इस क्रिया वृद्धि से वृक्काणुओं की नलिकाओं द्वारा फास्फेट्स का पुनर्शोषण घट जाता है जिससे पेशाब में फास्फेट्स की मात्रा काफी बढ़ जाती है यह रक्त की क्षारीयता को घटा कर अम्लीयता (ऐसिडोसिस) की वृद्धि कर देती है। रक्त की क्षारीय संचिति घटने लगती है और अम्लता बढ़ती रहती है। इस विषय में रूसी विद्वानों और विदुषियों ने काफी मौलिक कार्य किया है। उनके अध्ययन और खोजों के अनुसार फक्की बच्चों में जब रक्त के अम्लक्षार सन्तुलन में अन्तर आता है तभी फास्फोरस चयापचय में गड़बड़ी देखी जाती है। जब इन बच्चों को विटामिन डी काफी मात्रा में दी जाती है तब वृक्काणु-नलिकाओं द्वारा फास्फेटों का पुनर्चूषण बढ़ने लगता है। फास्फोरस चयापचय प्राकृत होने लगता है और शरीर में क्षार अम्ल सन्तुलन सुधरने लगता है।

शरीर के अम्ल-क्षार सन्तुलन को एक फक्की बालक में बिगाड़ने का काम न केवल विटामिन डी की कमी ही करती है अपि तु विटामिन बी और सी की कमी भी इसमें भाग लेती है।

फक्क रोग का शरीर रचना पर प्रभाव

फक्करोग में बालक की हड्डियों (अस्थियों) की रचना पर जो प्रभाव पड़ता है वह पुस्तकों में बड़े विस्तार से लिखा गया है। रूसाकोव ने १९५९ में बतलाया कि फक्की बालक की अस्थियां इतनी कोमल हो जाती हैं कि उन्हें चाकू से काटा जा सकता है और काटने वाला चाकू कुण्ठित तक नहीं होता। इस अस्थिमार्दव का कारण हड्डियों में कैल्शियम का प्रवेश ठीक से न होना या उनका कैल्सीभवन अपर्याप्त होना होता है। फक्की में अस्थि का कैल्सीभवन पूर्णरूप से रुक जाता है यह कहना सर्वथा असङ्गत है। वह तो अपर्याप्त रूप से होता है यही कहना चाहिए।

अस्थि निर्माण में चार स्थितियां आती हैं—

(१) अस्थिकोशिका की पुनरुत्पत्ति;

(२) अस्थि के तान्तव भाग का निर्माण;

(३) एक अक्रिस्टलीय चिपकने वाले पदार्थ (श्लैष्मिक पदार्थ) का निक्षेपण; तथा

(३) प्रोटीन पदार्थ का कैल्सीभवन।

फक्की की हड्डियों में अस्थिकोशिकाएं प्राकृत अस्थि की अपेक्षा बहुत कम होती हैं। तान्तव भाग बनता तो शनैः शनैः है किन्तु बन बहुत जाता है। उसका कैल्सीभवन भी बहुत कम होने से अस्थि का काठिन्य भी पूरा पूरा नहीं होता। पकने पर जैसे किसी मिट्टी की कच्ची हांडी पक्की और आकार में छोटी हो जाती है वह नहीं होती जिससे अस्थि बेडौल बढ़ी हुई और अस्थिमज्जा का अवकाश छोटा रह जाता है।

फक्करोग होने पर कैल्शियम का शोषण भी अच्छी मात्रा में नहीं होता। जब विटा. डी. का प्रयोग किया जाता है तब उसके शोषण की मात्रा बढ़ती है।

अस्थियों के कैल्सीभवन में कार्बोहाइड्रेटों की महत्ता को भी स्वीकार किया गया है। अस्थि बनने के पूर्व जो तरुणास्थि बनती है उसकी कोशिकाओं में पहले ग्लाइकोजन (मधुजन) संचित होती है बाद में इस मधुजन का स्थान कैल्शियम ले लेती है। कैल्शियम के तरुणास्थि कोशिकाओं में निक्षिप्त होते ही मधुजन वहां से सरक जाती है और कैल्सीभवन हो जाता है।

विनेग्रेडोवा तथा कार्पोव के गम्भीर अध्ययनों के परिणाम से एक बात और स्पष्ट हो जाती है कि अस्थि के कैल्सीभवन में एंझाइमों की एक बड़ी शृङ्खला सहायक होती है। ये एंझाइम हैं—

फास्फेटेज, फास्फोरिलेज,हैक्सोकीनेज, फास्फोग्लूकोम्यूटेज आदि आदि रक्त के द्वारा सेन्द्रिय फास्फोरस के यौगिक फास्फेटेज नामक एंझाइम की कृपा से निरिन्द्रिय फास्फोरस में बदल जाते हैं जिनकी आवश्यकता अस्थि में कैल्शियम साल्टों के निक्षेपण के लिए पड़ती है और यतः फास्फेटेज अस्थिकोशिकाओं में ही रहता है तथा इन कोशिकाओं की संख्या फक्करोग में घटी हुई रहती है इसलिए फास्फेटेज भी कम मात्रा में उपलब्ध रहने के कारण ही कैल्सीभवन कम होता है। यह निष्कर्ष रूसाकोव ने निकाला है।

आयुर्वेद की अस्थि की अग्नि (अस्थ्यग्नि) की कल्पना रूसाकोव की इस खोज से बिल्कुल स्पष्ट होगई है।

आजकल साइट्रिक अम्ल की महत्ता को भी कैल्सीभवन के लिए स्वीकार किया जा रहा है। इसकी महत्ता को ट्रफानोव ने १९५९ में प्रकट किया है। शरीर की कुल साइट्रिक ऐसिड का ९० प्रतिशत अस्थियों के अन्दर पाया जाता है। साइट्रिक ऐसिड कैल्शियम साल्टों को घुलाने का काम करती है। साइट्रिक अम्ल के चयापचय के साथ अस्थि-आधात्री का विकास जुड़ा हुआ रहता है। फक्करोगी में एंझाइमों की वह शृङ्खला जो साइट्रिक अम्ल तैयार करती है कुछ दबी दबी काम करती है। इस कारण अस्थियों का चूर्णीभवन ठीक से इस रोग में नहीं हो पाता।

फक्करोग में कैल्सीभवन होकर बाद में कैल्शियम धो दी जाती है ऐसा कहना ठीक नहीं है। वास्तव में तो इस रोग में कैल्सीभवन होता ही नहीं या बहुत थोड़ा होता है। धोये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

जब रोग दूर हो जाता है तो फक्की बच्चों की टेढ़ी मेढ़ी हड्डियां भी अपने स्वस्थ प्राकृत रूप को प्राप्त कर लेती हैं।

जो लोग यह मानते हैं कि फक्करोग का सम्बन्ध केवल बच्चे की अस्थियों के साथ होता है वे भी गलती करते हैं। फक्करोग तो सारे शरीर का रोग है जिसमें अस्थियां भी शामिल हैं। फुफ्फुसों में फक्करोग के कारण कई विकृतियां पाई जाती हैं जिनमें फुफ्फुस अनुन्मीलन (एटेलैक्टेसिस) एक है।

फक्करोग के प्रकार और रूप

विश्वभर के बाल चिकित्सकों ने सन् १९२५ में फक्करोग के श्रेणी विभाजन का मापदण्ड डिग्रियों में किया है। प्रथम डिग्री का फक्क एक सौम्य स्वरूप का रोग है। द्वितीय डिग्री का फक्क मध्यम कोटि का माना जाता है। १९४७ में इस श्रेणी विभाजन में पुनः परिवर्तन किया गया जिसका आधार रोग का काल रखा गया। रोग की उत्पत्ति के आधार पर फक्करोग के ३ काल या पीरियड माने गए हैं—

पहला है आरम्भिक काल—यह काल नवजात शिशु से लेकर एक वर्ष तक के शिशुओं में पाया जाता है। इसमें

निम्नांकित लक्षण प्रायः मिलते हैं—

१. वालक को स्वेद अधिक आता है ।

२. उसके पश्चकपाल भाग पर बाल नहीं उगते

३. वालक बेचैन रहता है ।

४. इस काल में अस्थि कंकाल में इतने परिवर्तन मिलते हैं—

i. ब्रह्मरन्ध्र के किनारों का मृदु होना ii. आरम्भमाण कपालशोप iii. सौम्य पर्शुका मणिका iv. दीर्घ अस्थियों के अधिवर्धों का स्थूल होना ।

प्रथम श्रेणी के फक्करोग में आरम्भिक काल पाया जाता है जो २-३ सप्ताह पर्यन्त रहता है । यदि इस काल में जैव परीक्षा की गई तो रक्त की फास्फोरस की मात्रा कुछ घटी हुई मिलती है तथा अल्कलाइन फास्येटेज नामक ऐंझाइज की क्रिया काफी बढ़ी हुई पाई जाती है। इस काल में कैल्शियम की मात्रा प्राकृत मिलती है ।

इस काल के क्ष-किरण चित्रों में या तो कोई खास अस्थिगत परिवर्तन मिलते नहीं या लम्बी अस्थियों की काण्डकोटि (मेटाफिसिस) में झल्लरपन तथा कुछ सुषिरता पाई जाती है ।

फ्लोरिड फक्क की स्थिति—यह रोग की उच्चत्तम मर्यादा की अवस्था है । इसमें वातनाड़ी संस्थान के लक्षणों के साथ ही अस्थि की विकृतियां उत्पन्न होती हैं । अस्थिमार्दवता, करोटि, वक्ष और शाखाओं की अस्थियों के परिवर्तन सब एक साथ ही उत्पन्न होते है । प्रथम डिग्री के फक्क में जहां अस्थिगत परिवर्तन अकेले अकेले और सौम्य प्रकार के होते हैं, द्वितीय डिग्री के फक्क में वे ही कुछ अधिक और स्पष्ट देखे जाते है। तृतीय डिग्री के फक्की में अस्थियों का विकृतरूप काफी बढ़ा हुआ पाया जाता है । इस अवस्था में कोष्ठांगों में विकृति मिलती है जिसके परिणामस्वरूप यकृत् और प्लीहा बढ़ जाते हैं पेशियों की तान घट जाती है । रक्त में कैल्शियम और फास्फोरस की मात्रा घट जाती है । क्षकिरण चित्रों में अस्थियों के चित्र धुंधले आते हैं। अस्थियों के सिरे चषक जैसे हो जाते हैं । अस्थियों की काण्ड-कोटियों में अम्लीयता पाई जाती है और उनकी वाह्यरेखा अस्पष्ट दिखाई देती है ।

रोगोत्तरकाल की स्थिति या शमित फक्क—छः माह के शिशु में जब फक्करोग का शमन होने लगता है तब रोग के लक्षण मिलते हैं । अस्थियों में कठिनता बढ़ने लगती है । ब्रह्मरन्ध्र के सिरे अधिक स्थिर हो जाते हैं। कपालशोप (क्रेनियोटेबीज) घट जाता है और दूर हो जाता है। स्थायी क्रियाएं तथा कोष्ठांगों की क्रियाएं पुनः चालू हो जाती है । इस स्थिति में रक्तस्थ फास्फोरस बढ़ जाता है पर कैल्शियम की मात्रा घटी हुई ही रहती है। फास्फेटेज नामक ऐंझाइम की गतिविधि बढ़ी हुई ही पाई जाती है। क्षकिरण चित्रों में कैल्सीभवन की एक चौड़ी पट्टी अस्थिनिर्माण क्षेत्र में बन जाती है ।

अवशिष्ट घटना काल—यह २-३ वर्ष के बालक में पाया जाता है । इस काल में फक्क प्रक्रिया शान्त होजाती है । कुछ प्रभाव वच्चे के शरीर पर रह जाते हैं जिसमें अस्थि की विकृतियां और अरक्तता मिलती हैं । अवशिष्ट घटना के द्वारा यह ज्ञात होता है कि रोग से पहले वच्चा पीड़ित हो चुका है तथा वह रोग द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी का रह चुका है । इस स्थिति में रक्तस्थ कैल्शियम और फास्फोरस की मात्रा प्राकृत हो जाती है तथा अल्कलाइन फास्फेटेज की क्रिया भी प्राकृत हो जाती है। क्षकिरण चित्र में अस्थियों के सुषिर भाग और वाह्यक कैल्सीभूत हो जाते हैं ।

रोग की गम्भीरता और श्रेणियां

रोग की गम्भीरता के आधार पर फक्करोग की तीन श्रेणियां की जाती हैं । इनमें से प्रत्येक में रोग लक्षणों की स्थिति इस प्रकार पाई जाती है—

प्रथम श्रेणी फक्क—सौम्य; वातनाड़ी संस्थान तथा अस्थियों में थोड़े लक्षण आरम्भ और अन्त में; रोगोत्तरकाल तक रोगी पूर्ण स्वस्थ हो लेता है और अवशिष्ट फक्क के लक्षण नहीं मिलते ।

द्वितीयश्रेणी फक्क—सौम्य गम्भीर; अस्थि, वातनाडीसंस्थान, रक्त निर्माता संस्थान तथा पेशियों में स्पष्ट परिवर्तन प्रकट होते हैं कोष्ठांगों की क्रियाएं भी मंद पड़ जाती है; यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदर; पेशी अल्पतानयुक्त तथा संचालन क्रियाएं मन्द ।

तृतीय श्रेणी फक्क—गम्भीर; वातनाड़ी संस्थान में तीव्र

परिवर्तन जिससे रोगी सोता नहीं, अग्निमान्द्य, प्रतिक्रियाएं मन्द; संचालन क्रियाएं और वाक् के विकास में गड़बड़ी मिलती है।

अस्थियां टेढ़ी-मेढ़ी, भग्नयुक्त,पेशीतान अत्यल्प, श्वसन संस्थान में गड़बड़ी, न्यूमोनियां, अजीर्ण, यकृत्-प्लीहा मे वृद्धि और काठिन्य, अरक्तता, चयापचय की गड़बड़ी इस तीसरी श्रेणी में पाई जाती है।

रोग की गति

रोग की गति का विचार करने पर तीव्र, अनुतीव्र तथा आवर्त (रिलैप्सिंग) इन तीन प्रकारों में फक्क रोग मिलता है। तीव्र फक्क में रोग लक्षण तेजी से फैलते है आरम्भकाल में बच्चा बहुत बेचैन रहता है, खूब पसीना उसे आता है, अस्थियां बहुत मृदु हो जाती हैं, रक्त में जैव रसायनिक अन्तर मिलता है। तीव्र फक्क रोग जीवन के प्रथम महीनों में तथा अप्रगल्भ(प्रिमेच्योर)शिशुओं में प्रायः मिलता है। अनुतीव्र या सबऐक्यूट फक्क में रोग धीरे-धीरे विकसित होता है। यह अपुष्ट बालकों का रोग है ६ से १२ माह की आयु में यह देखा जाता है। अस्थिमार्दव और कपालशोप मिलता है अस्थ्याम अति विकास—पुरःकपाल और पार्श्वकपालास्थियों के उभरे भागों में पाया जाता है पसलियों मे मणिका (रोजरी) मिलती है। दीर्घ अस्थियो में अधिवर्धों में स्थूलता पाई जाती है। आवर्ती फक्क में रोग के विशेष परिवर्तन पाये जाते है। गर्मियो मे रोग का विसर्ग और जाड़ों में उसका आवर्तन देखा जाता है। यदि रोग की चिकित्सा रोग को पूर तरह दूर किए बिना रोक दीजाती है तो रोग का आवर्तन होजाता है। आवर्ती फक्क में क्षकिरण चित्रों में कैल्सीभवन की उतनी पट्टियां मिलती हैं जितनी बार रोग का आवर्तन या पुनराक्रमण हुआ हो।

आजकल विद्वानो में फक्करोग के श्रेणी विभाजन को लेकर चर्चाएं उठ रही है और असन्तोष व्यक्त किया जा रहा है। उनका विचार है कि इस रोग में श्रेणी विभाजन का आधार अस्थियों की विकृति न होकर वातनाड़ीसंस्थान की विकृति होना चाहिए।

रोग लक्षण—

फक्क रोग के लक्षण वातनाड़ी संस्थान में पहले आरम्भ होते हैं बाद में अस्थियों में मिलते हैं। नीचे फक्क रोग में पाये जाने वाले विविध लक्षणों का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) वातनाड़ी संस्थान (नर्वस सिस्टम) सम्बन्धी लक्षण—

आरम्भ के इन लक्षणों को स्मरण रखना होगा:—

i. बेचैनी और प्रक्षोभ

ii. अश्रुपूर्णता

iii. नीद की गड़बड़ी और नीद में चोक पडना

iv. सोते और दूध पीते समय पसीने का आना। पसीने में दुर्गन्ध होती है वह चिपचिपा होता है जो त्वचा में खुजली पैदा करता है।

पसीना सिर से बहुत निकलता है। खुजली भी सिर में अधिक आती है। सिर के पिछले भाग को तकिए पर रगड़ने से सिर के पिछले हिस्से के बाल उड जाते हैं जिसे पश्चकपालखालित्य (ओक्सीपिटल ऐलोपेशिया) कहा जाता है।

v. पसीने के कारण बालक के शरीर पर दाने-दाने उग आते है। ये छाती और पीठ को भर देते हैं। इनमे खुजली भी खूब होती है।

आरम्भिक फक्क रोग मे अस्थियों के लक्षण उत्पन्न

होने के पूर्व ये लक्षण देखे जाते है ।

vi. इस रोग के आरम्भ में वासोमोटर (वाहिका प्रेरक) लक्षण भी मिलते हैं—वच्चे की चमड़ी पर थोड़ा सा भी दाव पडने से लाल धब्बा पड़ जाता है । ताप-नियन्त्रण में भी अन्तर पड़ता है ।

vii. छूते ही कष्ट (अति संवेदिता) इस रोग में मिलता है जैसे ही कोई वच्चे को गोद मे उठाता है वह रोने और चीखने लगता है । यह लक्षण रोग की तीव्रावस्था में वहुत उग्ररूप धारण कर लेता है ।

viii. क्रिया का अभाव—द्वितीय और तृतीय श्रेणी के फक्कियों में क्रिया का अभाव देखा जाता है । वच्चा निष्क्रिय पड़ा रहता है उसका हिलना डुलना घट जाता है। उनको वैठाना या खड़ा रखना कठिन होता है । ऐसे रोगी वालक सालभर में वैठना और साल में खड़ा होना सीखते हैं ।

ix. मनोविकारों की वृद्धि भी इस रोग में किसी-किसी में देखी जाती है । फक्की मनोभ्रंश (रैकिटिक डेमेशिया) एक मनोविकार है जो इस रोग मे मिल सकता है ।

x. वातविकार—फक्कियों में मिलता है । तीव्र या तृतीय श्रेणी के फक्की वालक तो ३-३ वर्ष की आयु तक भी वोलना नही सीख पाते । जव उन का ठीक-ठीक उपचार किया जाता है तव २-३ महीने के वाद में वैठना और उसके भी कुछ साल वाद वोलना सीखते है ।

(९) अस्थि संस्थान सम्वन्धी लक्षण—

वात नाड़ी संस्थान की विकृतियो के साथ ही साथ फक्क रोग मे अस्थियों के परिवर्तन भी देखे जा सकते हैं। जिन वच्चों के शरीर भार और वृद्धि में अधिक विकास पाया जाता है उनमें अस्थि सम्वन्धी विकृतियां इसलिये भी मिलती हैं क्योंकि इस विकास के लिये विटामिन डी की अधिक आवश्यकता होती है जिससे अस्थियों के लिये विटामिन डी कम हो जाती है। अलग-अलग अस्थियों का विकास वच्चों में अलग-अलग समय पर होता है । शुरू के छः महीने मे कपाल की अस्थियां विकसित होती हैं । यदि इस समय विटामिन डी की कमी हुई तो इनका प्रभाव कपाट की अस्थियों के पतले होने मे होता है । साल भर के वच्चे में छाती की हड्डियों में विकृति आती है । दूसरे और तीसरे वर्ष में शाखाओं की अस्थियां, कशेरुकायें, हनु तथा अन्य स्थानों की अस्थियां विकारग्रस्त होती हुई पाई जाती हैं ।

छः महीने को वालक जव फक्क रोग से पीड़ित होता है तव उसके ब्रह्मरन्ध्र के किनारे मृदु होजाते हैं और कपाल शोष के लक्षण भी मिलते हैं । यदि ऐसे वालक के सिर को दोनों हाथों में पकड़ कर दवाया जाय तो स्थान-स्थान पर चवन्नी वरावर कई क्षेत्रों मे हड्डियो मे कोमलता या लचीलापन मिल सकता हे । इस सव से वालक का सिर विकृत हो जाता है। पश्चकपाल क्षेत्र इसी प्रकार कई वच्चों में सपाट हो जाता है । जैसा कि नीचे के चित्र में दिखाया गया है।
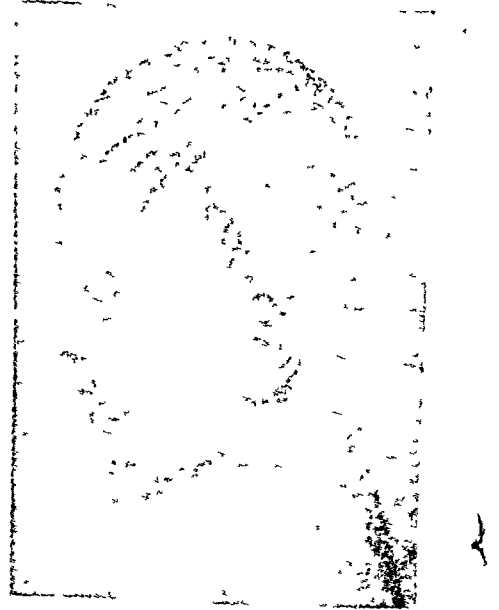
अस्थिमार्दवता के साथ ही साथ पुरः कपालास्थि और पार्श्वकपालास्थियों में उत्सेध उत्पन्न हो जाते हैं जो अस्थि-भवन केन्द्रो के अन्दर अस्थ्याभ ऊतक के अधिक निर्माण को प्रकट करते है।

फक्की वच्चों के दांत भी देर में उगते हैं । दूध के दांत स्वस्थ वालकों मे छः से आठ महीने मे उगने लगते हैं वे साल साल भर तक नही उग पाते और जो दांत उगते भी हैं वे भंगुर, खातयुक्त, वेडौल, और दूषित कवच युक्त

होते हैं।

पर्शुका जहां तरुणास्थि से मिलती हैं वहां फक्की बालक में स्थूल उभार बन जाते हैं। इन उभारों की एक माला सी बन जाती है जो छाती पर स्पष्ट देखी जाती है। इसे मणिका पर्शुका बीड्स या रोजरी कहा जाता है।

यह मणिका पांचवीं से आठवीं में विशेष देखी जाती है।

छाती में दोनों ओर एक खांचा भी देखा जाता है जिसे हैरीसन का ग्रूव कहते हैं। इसके कारण छाती कुक्कुट-शावकवत (चिकिन ब्रेस्ट) हो जाती है जैसाकि आगे के चित्र में दाहिनी ओर के बच्चे में देखा जा सकता है—

मेरुदण्ड में फक्क के कारण विकृति आती है जिसके कारण पार्श्वकुब्जता या अग्रकुब्जता बच्चे में देखी जाती है।

शाखाओं की अस्थियों में बहुत बाद में विकृतियां मिलती हैं। कलाइयों की हड्डियां मोटी हो जाती हैं और टेढ़ी पड़ जाती हैं। कभी गात्राओं की हड्डियां कभी अन्दर की ओर टेढ़ी हो जाती हैं। जिसे जेनूवेरम या धनुराकार पैर या अन्तर्नतजानु कहते हैं। कभी-कभी बहिर्नत जानु (जेनूवाल्गम) की स्थिति भी बनती है। नीचे के चित्र इन दोनों दशाओं को रुग्णी बच्चों में प्रकट करते हैं—

यदि फक्की बालक की उचित चिकित्सा न की गई तो उसकी श्रोणी में विरूपता पाई जा सकती है। लड़कियों में श्रोणी की विरूपता से आगे चलकर प्रसव कालीन बाधा

कुक्कुटशावक वक्ष
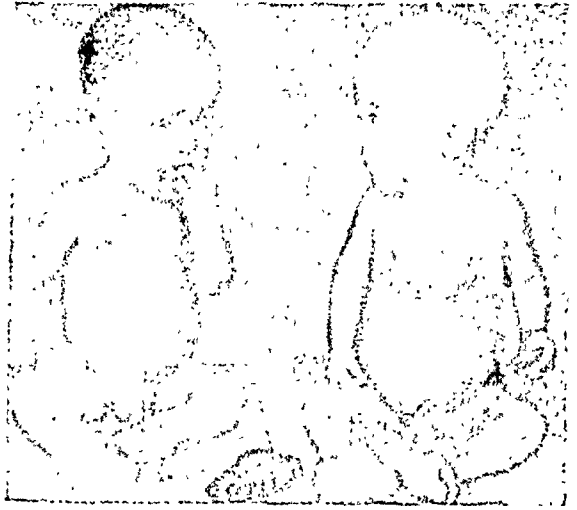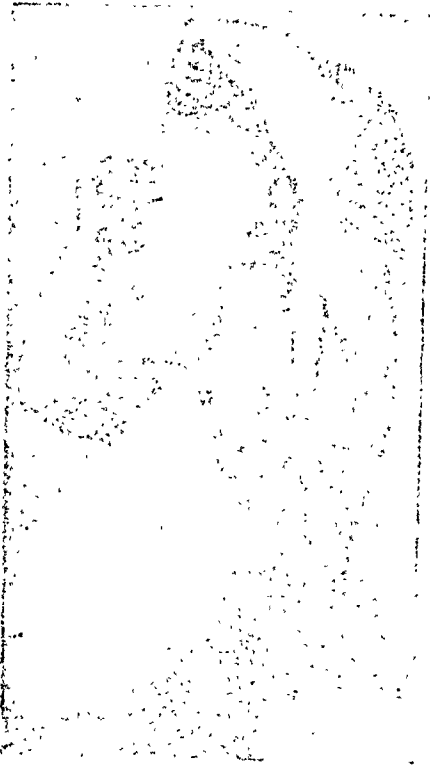
उत्पन्न हो सकती है।

(४) पेशी और स्नायुओं के विकार—

फक्क में पेशियां वात नाड़ी विकार के साथ ही विकृत होती हैं। पेशियां फूली हुई या पतली, तथा श्रान्त मिलती हैं उनमें तनाव कम रहता है। उसके स्नायु दुर्बल और ढीले ढाले रहते हैं। वह आगे झुककर बैठता है। ऐसे बच्चे आसानी से अपने सर को पैरों से पीठ के बल लेट कर मिला सकते हैं। पेशियों की यह गड़बड़ी फास-फोरस के चयापचय से मालूम पड़ती है।

(५) अन्य अङ्गों के विकार—

नीचे लिखे विकार और पाये जाते हैं:—

१. आध्मान या पेट का फूलना,

२. यकृत् और प्लीहा की वृद्धि,

३. अजीर्ण तथा कोष्ठबद्धता.
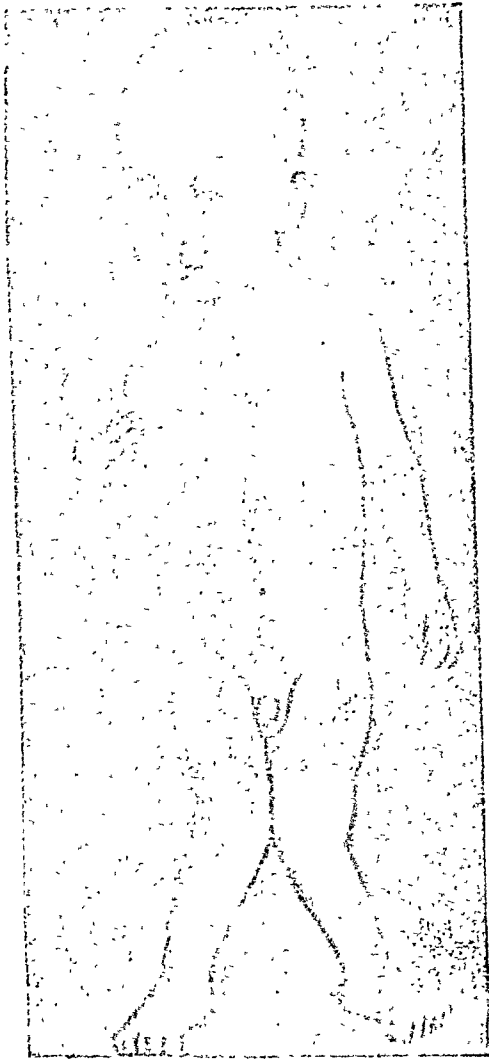
अन्तर्नत जानु

(४) फक्क में यकृत् की क्रियायें घट जाती हैं खास कर दूसरी और तीसरी डिग्री के फक्क रोग में।

(५) फक्की वालक की श्वसनक्रिया वढ़ जाती है जो १ मिनट में ४० से ५० वार जा सकती है।

(६) फुफ्फुसों का अनुन्मीलन (ऐटलैक्टैसिस) हो सकता है जिसके कारण न्यूमोनियां वन सकता है। जो आगे चल कर गम्भीर रूप धारण कर लेता है। यदि यह जीर्ण रूप का हुआ तो।

(७) रक्त संवहन की गति भी फक्की में कम हो जाती है। हृदय और वड़ी वाहिनियों को रक्त पूरी मात्रा में नहीं जाता जिससे रक्त यकृत् और प्रतिहारिणी सिरा में रुक जाता है।

(८) फक्की वालकों में कई प्रकार के हृद्विकार देखे जा सकते हैं। हृदय की गति मन्द या तीव्र अनियमित या रुक-रुक कर हो सकती है। श्वास की गति तेज हो सकती है। शरीर श्याव हो सकता है तथा नेत्रोत्सेध मिल सकता है।

वहिर्नत जानु
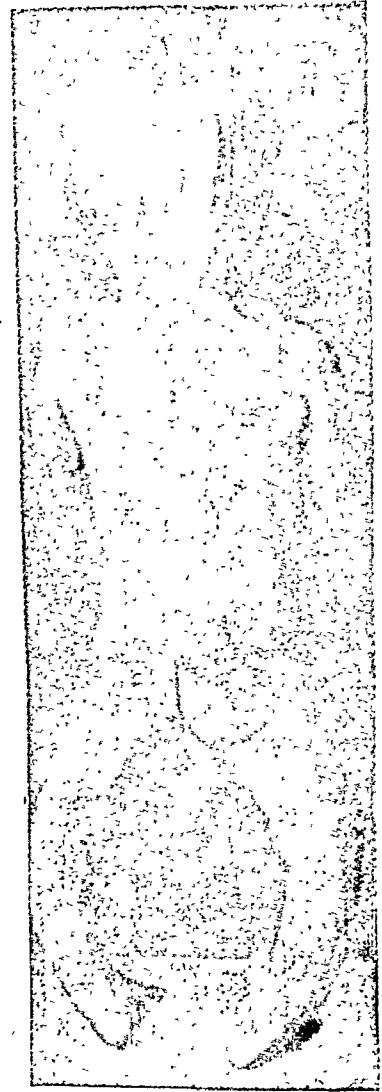
(९) अधिकांश फक्की वालको में अरक्तता या पांडु रोग मिलता है। रक्त के लाल कणो की संख्या घट जाती है

२ - संशुष्क स्फिचवाहूरुर्महोदरशिरोमुखः–यह अस्थि विकृतियों का स्पष्ट इंगित है जब स्फिक्, बाहु और ऊरु की अस्थियां शुष्क टेढ़ी मेढ़ी हो जाती हैं। पेट आगे निकल आता है सिर और मुख की अस्थियां भी फैल जाती हैं।

३ पीताक्षो हृषिताङ्गश्चदृश्यमानास्थिपंजरः–आंखें पीली, शरीर पर रोमहर्ष और अस्थियों का पंजर (पर्शुका मणिका, कपालशोष, अन्तर्नत जानु, मेरुदण्ड वक्रता आदि रूप में) दिखाई देता है। पाणिजानुगमोऽपि वा–हाथों या जानुओं मे विकृति मिलती है।

४ प्रम्लानाधरकायश्च, निश्चेष्टाधर कायो वा–निचला भाग म्लान और निश्चेष्ट रखा रहता है।

५––नित्यमूत्रपुरीपकृत्–बार-बार मूत्र और मल की प्रवृत्ति।

६—दौर्वल्यान्मन्दचेष्टश्च मन्दत्वात् परिभूतकः—दुर्बलता से मन्दचेष्टा और मन्दता से ढीलापन (अल्पमांसतान) देखी जाती है।

७. मक्षिकाकृमिकीटाना गम्यश्चासन्न मृत्युरुक्—फक्की के शरीर में मक्खी कीट और जीवाणु प्रवेश करते और उसे मारक रोगों से घेर लेते हैं।

८. विशीर्ण हृष्टरोमा च स्तब्धरोमा महानखः—उसके बाल झड़ने लगते हैं, रोमहर्ष होता है, रोमों में स्तब्धता और नख जल्दी बढ़ते हैं।

९. दुर्गन्धी मलिनः क्रोधी फक्क श्वसितिताम्यति – फक्की बालक के शरीर से पसीने की दुर्गन्ध आती है वह चिड़चिड़े स्वभाव का हो जाता है श्वास जल्दी-जल्दी लेता और मूर्च्छित हो जाता है।

१०. अतिविण्मूत्रदूपिका शिङ्घाणक मलोद्भवः–उसके शरीर में मल-पुरीष, मूत्र, नासामल—अधिक परिमाण में पैदा होते हैं।

ये १० लक्षण किसी भी फक्की में मिल सकते हैं। किन्तु व्याधिज फक्क में तो सभी पाये जाते हैं।

फक्करोग का प्रतिषेध

ऊपर के लक्षण समुच्चय से यह स्पष्ट हो जाता है कि फक्क रोग एक भयानक व्याधि है जो बालक के विकास में बाधा ही नहीं पहुँचाता उसे भविष्य के लिए विकलांग कर देता है तथा मार तक देता है। इसलिए समाज के संरक्षकों को ऐसे प्रतिषेधात्मक उपाय करने चाहिए जिससे बालक फक्क रोग से बचाये जा सकें। ये उपाय हैं :—

१. स्वास्थ्यवर्धक आहार और पोषणक प्रदान करना;

२. स्वास्थ्यप्रद स्वच्छ वातावरण में रखना;

३. अल्ट्रावायोलेट किरणों का प्रयोग कराना;

४. काडलिवर आयल, शार्क लिवर आयल तथा हैलीबट लिवर आयल का सेवन कराना;

५. विटामिन डी$_2$ का सेवन कराना।

इन सब उपायों से बालक के शरीर में विटामिन डी की कमी न होने देना ही मुख्य उद्देश्य रहता है। चिकित्सा से बढ़कर इन उपायों की महत्ता इसलिए बतलायी गई है क्योंकि चिकित्सा तो एक बार रोग दूर कर देती है पर वह रोग के पुनराक्रमण को नहीं रोक सकती। पर यदि इन उपायों का अवलम्बन ठीक से किया जावे तो रोग उत्पन्न होने और चिकित्सा करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है।

कश्यप ने गर्भज फक्क की कल्पना करके गर्भावस्था में माता के द्वारा बच्चे में रोग की कल्पना की है। यदि गर्भावस्था में माता को विटामिन ए, सी और डी तथा खनिज द्रव्य अच्छी मात्रा में न मिलें तो जन्म के बाद कुछ ही दिनों में शिशु फक्क से पीड़ित हो सकता है। इसलिए किसी बालक को फक्क रोग से पीड़ित न होने देने के लिए उसके जन्म के पूर्व ही फक्क का नियमन करना चाहिए। विद्वानों ने पता लगाया है कि गर्भ के अन्तिम २ माह में भ्रूण के अन्दर ६५ प्रतिशत कैल्शियम तथा ६४ प्रतिशत फास्फोरस निक्षिप्त या संचित किया जाता है। यदि यह मात्रा भ्रूण में उपस्थित न रही और प्रसव हो गया तो नवजात शिशु फक्करोग से पीड़ित हो सकता है।

विटामिन डी जहाँ खनिज चयापचय को नियमित करती है यह विटामिन सी के चयापचय को भी सुधारती है। विटामिन सी ऊतकों में कैल्शियम को फिक्स करती है तथा कुछ ऐंज़ाइमों की क्रिया को तेज करती है। विटामिन ए खनिज चयापचय को सुधारती है जिससे शरीर की वृद्धि होती है तथा विटामिन बी के साथ मिलकर रोगप्रतीकारिता शक्ति को बढ़ाती है।

यदि गर्भावस्था में माता को विटामिन डी अच्छी मात्रा में दी जावे तो शिशु में फक्क प्रतिरोधक शक्ति अच्छी हो जाती है। इसी प्रकार दूध पिलाने वाली माताओं को यदि डी₂ पर्याप्त मात्रा में दिया जावे तो उनके दूध से बच्चे को फक्क रोग नहीं हो पाता।

सामान्यतया ५०० इं. यूनिट विटामिन डी गर्भिणी माता को प्रतिदिन अन्तिम २ माह तक देना पर्याप्त माना जाता है इससे अधिक उनको हानि कर सकती है।

फक्कप्रतिषेध में आहार का महत्व

हर विद्वान् ने फक्करोग में विटामिन डी के पर्याप्त प्रयोग पर जोर न देकर सन्तुलित आहार पर अधिक जोर दिया है कि बालक में पाचनक्रिया और चयापचय क्रियाएं ठीक-ठीक चलती रहें। खनिजों का ठीक-ठीक चतापचय हो और विटामिनों का उपयोग ठीक-ठीक हो सके।

आहार के विषय में कुछ तथ्य हमें जान लेना उचित होगा। वे हैं :—

१. यदि भोजन में प्रोटीनों लोहे, तांबे और कोबाल्ट के सूक्ष्म अंश तथा विटामिन ए और सी की कमी हो भी तो विटामिन डी का पूरा प्रभाव नहीं पड़ेगा और फक्क रोग की प्रवृत्ति बढ़ सकती है।

प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि यदि प्रयोगी प्राणी के शरीर में प्रोटीन की थोड़ी भी कमी हो तो भी उसकी हड्डियों के रासायनिक संगठन में बाधा पड़ जाती है।

२. बच्चे के लिए मां का दूध अमृत तुल्य काम करता है। यदि बच्चा मां का दूध पीता है तो उसकी विटामिन डी की कमी काफी मात्रा में पूरी हो जाती है। साथ ही मां के दूध की ७० प्रतिशत कैल्शियम और ५० प्रतिशत फास्फोरस बच्चा आसानी से हजम कर लेता है जबकि गाय के दूध की कैल्शियम का ३० प्रतिशत और फास्फोरस का २० से ३० प्रतिशत ही हजम हो पाता है। पर यदि बच्चे को केवल दूध पर ही रखा जाता रहा और उसे अनाज आदि आगे चलकर न दिये गये तो भी उसे फक्क रोग हो सकता है और यह फक्क काफी तीव्र होता है। इसलिए १ वर्ष की आयु तक शिशु को १५ से १८ तोले तक अनाज भी सुपाच्य रूप में देते रहना चाहिए।

३. ऐसा आहार जिसमें वसा का अंश अधिक हो कैल्शियम को प्रक्षिप्त करके मल और मूत्र में निकाल देता है जिससे शरीर में कैल्शियम का शोषण कम होने से फक्क रोग हो सकता है। इससे शरीर में अम्लोत्कर्ष बढ़ जाता है जो अमोनिया तथा ऐसीटोन बोडीज उत्पन्न करके फास्फेट्स को मूत्रमार्ग से निकाल देता है।

चरक ने तो अधिक वसायुक्त दुग्ध को गर्हित माना है—

अत्यर्थशुक्लमतिमाधुर्योपपन्नं लवणानुसार घृततैल-वसामज्जगंधि पिच्छिलं तन्तुमत् उदकपात्रेऽवसीदत् श्लेष्मविकाराणां कर्तृ श्लेष्मोपसृष्टं क्षीरमभिज्ञेयम्।

४. यदि बच्चे के आहार में शाक और फल दिये जाय तो उसे विटामिनों के अतिरिक्त अनेक खनिज पदार्थ भी मिल जाते हैं। हरे शाकों और पत्ता गोभी या अन्य पत्रशाकों में अनेक कैल्शियम लवण पाये जाते हैं। इसलिए जब बच्चा १॥ से ३ माह का हो तभी उसे फलों का रस और शाक खिलाने चाहिए। सेब, नीबू, तथा गाजर का रस उसे देना शुरू कर देना चाहिए। अंगूर का रस पेट में फर्मेंटेशन करता है इसलिए नहीं देना चाहिए। अगर दें भी तो अकेला देना चाहिए। शुरू में ५ बूंद फल का रस प्रतिदिन दें फिर ३ बार ५-५ बूंद दे सकते हैं। २॥ माह के बच्चे को एक चाय की चम्मच भरकर दे सकते हैं पर यह मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाने पर ही पहुंचनी चाहिए। फूलगोभी, पत्तागोभी, गाजर, शलगम, सभी का रस दिया जा सकता है।

५. पांचवें छठे माह से अनाज दे सकते हैं। गेहूं जौ जई चावल ये सभी कैल्शियम फॉस्फोरस और लोहे से युक्त होते हैं। इनके आटे का दलिया, लड्डू आदि बनाकर थोड़ी मात्रा में दे सकते हैं।

६. मांसरस सातवें माह से और मांस ८-६ वें महीने से देते हैं इससे उसे प्रोटीन और फॉस्फोरस भरपूर मिल जाता है।

मांसस्य····पुनर्भूपं संस्कृतं क्षीरमेव वा।
शाल्यन्नेन सहम्नीयात् पिबेत् चापि नित्यशः॥
तेन प्राणं च लभते तथा रोगैश्च मुच्यते।

—काश्यप

७. शिशुओं को अण्डा देने के विषय में उत्तरी विद्वानों की विशेष सम्मति प्राप्त हुई है। उनका कहना है कि अण्डे की जर्दी में अनेक विटामिन, लाइपिड, लैसीथिन लोहा और फास्फोरस होता है इसलिए उसे बच्चे के जन्म के १ सप्ताह बाद भी देना शुरू कर सकते हैं। यह मात्रा पहले अति सूक्ष्म रहनी चाहिए। २ माह की आयु होने तक उसे आधे अण्डे की जर्दी तक दे सकते हैं। बड़ा बच्चा पूरी एक अण्डे की जर्दी (योक) ले सकता है। किन्तु अण्डे की जर्दी का उपयोग सामान्यतया ३-४ माह की अवस्था से किया जाना चाहिए उसे मां के दूध में फेंटकर देना उचित होगा। इसे उबालकर दें ताकि कोई विषाणुजन्य रोग बालक को न हो।

८. शिशु को विटामिन डी देने के लिए कई विधियां हैं जिनमें आहार या दूध पर अल्ट्रावायोलेट रश्मियां विकीर्ण करना या आटे में डी$_2$ मिलाना आदि। पर अपने देश में काड या शार्कलिवर आयल दूध में डालकर देते रहना अधिक सुगम प्रतीत होता है।

९. हमारे देश में सूर्योदय से पहले उठकर ताजी हवा और उषा की किरणें ग्रहण करने का जो रिवाज चला आ रहा है वह पूर्ण वैज्ञानिक है। इससे बच्चे को प्राकृतिक रूप में अल्ट्रावायोलेट किरणें मिलती हैं स्वच्छ हवा भी मिलती है। इससे फक्क विरोधी वातावरण उसके शरीर में तैयार होने लगता है श्वसन संस्थान भी सुधरता है और चमड़ी में रक्त का संचरण भी अच्छा होता है। उसे खुली हवा में नंगा शरीर कुछ देर रखना चाहिए। जब रूस की भयंकर सर्दी में वैज्ञानिक खुली हवा और सर्दी को नंगे बदन सहने के लिए बालकों को राय देते हैं तो हमारे देश में तो यह प्रथा और भी प्रोत्साहित की जानी चाहिए। उनका कहना है कि यदि बालक गर्मियों में पैदा हुआ है तो उसे जन्मते ही पहले हफ्ते में खुली हवा में और धूप में ले जावें। जाड़े में पैदा हुए बालक १ माह के होने पर जा सकते है। एक बात स्मरण रखनी होगी। वह यह कि अल्ट्रावायोलेट किरणें कांच के शीशे पार कर कमरे में नहीं पहुँच पातीं। इसलिए जो लोग अपने बच्चों को कांच की खिड़कियों से बन्द दरवाजों वाले बरामदों में सुला देते हैं वे उन्हें फक्करोग से नहीं बचा सकते। इन किरणों की प्राप्ति के लिए बच्चों को खुले वातावरण में ही रखना चाहिए। वायु स्नान और धूप स्नान न केवल बच्चों को फक्करोग से ही बचाता है अपि तु उनके शरीर में रक्त का संचरण भी बहुत सुधार देता है। पारफेनोव का तो यहां तक कहना है कि खुले आकाश से तथा सफेद बादलों से छनकर आने वाली किरणों में अल्ट्रावायोलेट रश्मियां खूब होती हैं इसलिए खुले बरामदों में बादल होने पर भी बच्चों को रखने से लाभ होता है। हलके रंगों से मकान की बाहरी सतह रंगने से भी उससे किरणें खूब परावर्तित होती हैं।

१०. बच्चों का मुंह गरम पानी से धुलाकर ठण्डे पानी से धुलाना, स्नान कराना, स्पंज कराना सभी लाभप्रद माने जाते हैं। सूखे कपड़े से शरीर रगड़ना भी लाभप्रद है। तेल मालिश हमारे यहां की पुरानी प्रथा है तेल मलकर बच्चे को नंगे बदन धूप में लिटाना यहां लगातार चलता आया है। मालिश या अभ्यंग से त्वचा, स्वेद ग्रन्थियां, त्वग्वसा ग्रन्थियां सभी सुधरती हैं। इससे त्वचा में अल्ट्रावायोलेट रश्मियों का प्रवेश और विटामिन डी की उत्पत्ति अच्छी होती है। बच्चों को खुली हवा और धूप में हाथ पैर हिलाने देना और व्यायाम कराना भी इसी उद्देश्य की पूर्ति करता है।

११. बच्चे को निद्रा भी काफी आनी चाहिए। उसे खेलने के लिए खिलौने देना भी लाभप्रद है। कश्यप का तीन पहिए का फक्करथक यदि बच्चा प्रतिषेधात्मक रूप में प्रयोग करे तो उसे फक्क होती ही नहीं।

त्रिचक्रं फक्करथकं प्राज्ञः शिल्पिकनिर्मितम्।
विदध्यात्तेन शनकैर्गृहीतो गतिमभ्यसेत्॥

१२. बच्चों के शरीर की क्रियाएं उत्तेजित करने के साथ बोलने के लिए भी प्रेरित करना चाहिए। बोलने वाले बालकों में फक्करोग कम मिलता है। बच्चे के मानसिक विकास के लिए भी कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। आज जो कैस्पियन सागर नाम से रूस और ईरान के बीच सागर है यह कश्यप सागर ही है। महर्षि कश्यप का आश्रम यहीं था। संभव है वह रूसी तट पर ही हो जहां बालरोग विशारद कश्यप रहते हों। क्योंकि आज सोवियट रूस बालरोगों में जो वैशारद्य देखने में आ रहा है वह कश्यप ऋषि

के मूक प्रभाव का ही परिणाम हो जिन्होंने कौमारभृत्य और बालरोगों पर एक संहिता ही रचदी थी।

प्रतिषेधात्मक दृष्टि से विटामिन डी₂ का प्रयोग बहुत किया जाता है। इसे देने की कई विधियां प्रचलित हैं :—

१—५०० इं. यूनिट से १५०० यूनिट तक प्रतिदिन ६ माह तक देना।

२—प्रति सप्ताह ३५०० से ३५००० इं. यूनिट देना।

३—६ से १० दिन के अन्दर ६ से ८ लाख यूनिट देना।

विटामिन डी₂ शरीर में कहीं संचित होती रहती हो यह पता नहीं लगता। इसे प्रतिदिन दिया जावे कि थोड़े-थोड़े काल के अन्तर से बड़ी मात्रा में। दोनों विधियों के समर्थन और विरोध में विद्वानों को पाया जाता है। अभी विद्वान् बड़ी मात्रा में विटामिन डी₂ देने के पक्ष में होते हुए देखे जा रहे हैं क्योंकि प्रतिदिन देने में लापर्वाही हो सकती है। इस विटामिन के शरीर में संचिति के प्रमाण भी मिले हैं, पर बड़ी मात्रा के प्रति प्रतिक्रिया बालक के शरीर में देखी जा सकती है अतः बड़ी मात्रा में विटामिन डी₂ सदैव अस्पताल में रखकर ही देनी चाहिए।

जो बच्चे विटामिन डी₂ पहले मास की आयु से ही लेते हैं उनमें फक्क रोग ३३ प्रतिशत और जो ६ माह की आयु से विटा डी लेते हैं उनमें ८३ प्रतिशत तक फक्करोग एक विद्वान् ने १९५३ में पाया था।

अप्रगल्भ शिशुओं में जिन्हें कश्यप गर्भज फक्क रोग से पीड़ित होने की सम्भावना व्यक्त करता है। ऐसे बच्चों को यदि अल्ट्रावायोलेट रश्मियों का किरणन और डी₂ का सेवन समय से कराया जावे तो उनमें फक्क रोग का होना रोका जा सकता है। इन बच्चों को प्रतिप्रषेधात्मक पूरी व्यवस्था करने पर भी फक्क रोग की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता उन्हें ५००० से १०००० और २५००० इं यू. प्रतिदिन तक डी प्रथम मास से ही देना चाहिए। ऐसे बच्चे जितने ही कम भार के पैदा होते हैं उतने ही अधिक फक्क रोग से पीड़ित होते हैं। साथ जितनी देर में उन्हें विटामिन डी₂ ही दिया जाता है उतने ही अधिक फक्क रोग उनमें पाया जाता है। इसलिए इन बच्चों का तो जन्म के ८ वें १० वें और १४ वें दिन डी₂ दी जानी चाहिए।

१०००-१५०० ग्राम भार के लिए ४-८ हजार यूनिट
१५००-२५०० ग्राम भार के लिए ८-१२ हजार यूनिट
विटामिन डी देने का विधान है। इसके साथ अल्ट्रावायोलेट किरणन भी शरीर पर किया जाना चाहिए।

सामान्यतः विटा डी₂ को प्रतिदिन देते रहना सामान्य बच्चों में प्रतिषेधात्मक दृष्टि से अच्छा रहता है। अप्रगल्भ शिशुओं में विशेष सावधानी से और अधिक मात्रा में उसे प्रतिदिन देना उचित रहता है।

फक्क रोग की चिकित्सा

फक्क रोग के सफल उपचार के लिए इतनी बातें जरूर जान लेनी चाहिए।

(१) रोग का निदान जितनी जल्दी हो सके कर लिया जाये।

(२) रोग की प्रक्रिया कहां तक पहुँची है और रोग कितना गम्भीर है इसे ठीक-ठीक जान लिया जावे।

(३) रोग का उपचार अच्छे से अच्छा तथा चुस्ती के साथ किया जावे।

(४) उपचार अनुक्रमित और सब दिशाओं और परिस्थितियों के अनुरूप और लम्बे समय तक चलाया जावे।

(५) उपचार करते समय रोगी बालक की आयु, शारीरिक अवस्था, स्थान की जल वायु, भार आदि सभी का ध्यान रखा जावे।

(६) चिकित्सक को रोगी बालक का आहार विहार, व्यायाम, मत्स्ययकृत् तैल तथा विटामिन डी₂ कितना देना है इसका ठीक-ठीक ज्ञान करके निर्देश करने चाहिए।

पथ्य—चिकित्सा करते समय पथ्य का ध्यान करना पड़ता है। जो लोग फक्की बालक को कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में देते हैं और लम्बे काल तक देते हैं वे उनके रोग को बढ़ाते हैं। इसलिए कार्बोहाइड्रेट अधिक नहीं देने चाहिए न अधिक काल तक देने चाहिए।

पत्तों के शाक—पातगोभी, पालक, मेथी, बथुआ, चौलाई का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यह न भूलना चाहिए कि बच्चा अपने जीवन के आरम्भिक महीनों में जो आहार लेता है विटामिन डी बहुत कम होती है। भार,

फल, अनाज, मांस किसी में भी डी नहीं होती। अण्डे और दूध में भी इसकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है जो फक्की की आवश्यकता की पूर्ति नही कर पाती । इस कारण रोगी बालक को अल्ट्रावायोलेट किरणन तथा काड-शार्क, या हैलीबट आयल का प्रयोग करना कदापि न भूलना चाहिए। इन किरणों के प्रयोग से फक्क रोग के आरम्भिक लक्षण जैसे कपाल शोष, स्वेदाधिक्य, बेचैनी आदि आसानी से मिट जाते हैं। किरणें कैसे दीजावे और कितनी मात्रा में दी जावें यह इसके विशेषज्ञ का विषय है।

मछली के यकृत् का तेल आहार के रूप मे देने से न केवल विटामिन डी प्राप्त होती है बल्कि उसमें विटामिन ए का भी भण्डार रहता है। इसमें तीसरे इसके वसा-अम्ल आसानी से हजम हो जाते है।

विटामिन डी

औषध के रूप में इस विटामिन का महत्व इसलिए अधिक है क्योंकि यह गन्ध और स्वादहीन पदार्थ है जो आसानी से बच्चे को दिया जा सकता है । इसके देने से वातनाड़ी-सस्थान में शान्ति आती है । चयापचय की क्रियाएं सुधरती हैं,खनिज चयापचय प्राकृत होने लगता है। अस्थिधातु में चयापचयिक क्रियाएं तेज हो जाती हैं उनमें अस्थिभवन प्राकृत रूप से चालू हो जाता है।

इस विटामिन का चिकित्सा के रूप में उपयोग निम्न लिखित विधियों से किया जाता है—

१. दीर्घकाल तक आंशिक मात्राएं देना—१ महीने तक प्रतिदिन २० से ४०.०.० यूनिट या २ महीने तक प्रतिदिन १० से २०,००० यूनिट देना।

२. भारी मात्रा में विटामिन का उपयोग करना—१,००००० से २,००००० यूनिट प्रतिदिन ५ से १० दिन तक देना या छह दिन में छहलाख यूनिट या ५ से १० दिन में दस लाख यूनिट देना।

३. उत्तेजक मात्रा देना—एक लाख यूनिट प्रति सप्ताह एक से दो महीने तक देना या दो लाख यूनिट चार से छह हफ्ते देना।

४. आघात चिकित्सा—इसमें पूरे रोग के लिये दी जाने वाली मात्रा दो या तीन दिनों में ही दे दी जाती है, जैसे तीन लाख यूनिट तीन दिन तक देना या पांच लाख यूनिट दो दिन देना।

फक्क रोगी के लिये नौ से दस लाख यूनिट विटामिन डी$_2$ की आवश्यकता पड़ती है। इसे कैसे दिया जाय? इसके बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत है। भारी मात्रा में विटामिन देने को कुछ लोग व्यर्थ मानते है वे समझते हैं कि यह मात्रा निष्क्रिय हो जाती है और बिना उपयोग में आये ही शरीर से बाहर निकल जाती है। रोगी बालकों के शरीर मे इतनी कैल्शियम भी नही होती कि इतने विटामिन का उपयोग कर सके। खुबूल ने १९५९ में तरुण चौरासी चूहों पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि विटामिन डी चूहे द्वारा सेवन करने के पश्चात् पहले यकृत् में फिर त्वचा में, यही नही पेशियों और आंत की दीवारों में भी संचित हो जाती है। इसी आधार पर प्रतिरोध और उपचार दोनों की दृष्टि से एक साथ भारी मात्रा में वितामिन डी$_2$ देने के प्रयोग चल पड़े। बालकोवीकोना ने १९६१ मे फक्की शिशुओं का अध्ययन करके यह बतलाया कि जिन बच्चों को पांच लाख यूनिट भारी मात्रा एक साथ दी गई थी उनमें फास्फोरस कैल्शियम चयापचय जितना जल्दी सुधरा उतना अन्य प्रकार से देने से नहीं।

भारी मात्रा में विटामिन डी$_2$ का उपयोग उन फक्कियों में विशेष किया जाता है जहां रोगी का इलाज देर में शुरू किया जाता है।

आघात चिकित्सा जिसमें एक दम बहुत बड़ी मात्रा में डी$_2$ दी जाती है वह नवजात शिशु मे जहां रोग में जटिलता हो प्रयोग करने का विधान है।

प्रथम श्रेणी फक्क रोग में ४॥ से ६ लाख यूनिट, द्वितीय श्रेणी मे ६ से ८ लाख यूनिट तथा तीसरी श्रेणी के फक्की में ८ से १२ लाख यूनिट डी$_2$ का प्रयोग किया जाता है।

उत्तेजक मात्रा सौम्य या मध्यम प्रकार के फक्कियों में दी जाती है जिसमें सातवें या दसवें दिन बड़ी मात्रा विटामिन डी दी जाती है।

विटामिन डी को किसी भी बालक को उसके भोजन के साथ देना चाहिए क्योंकि आहार की वसा और ग्रहणी का बाइल मिल कर उसे आसानी से प्रचूषित कर लेते हैं। कश्यप ने कल्याणघृत, तथा ब्राह्मीघृत का प्रयोग इसीलिए

बतलाया है कि इनकी मदद से दूध की विटामिन डी को प्रचूषित किया जा सके। घृत क्षीरं प्रयोजयेत्।

विटामिन डी और अल्ट्रावायोलेट किरणन दोनों को एक साथ देने के ५-७ दिन पूर्व कैल्शियम के योग देने चाहिए क्योंकि जब खनिज चयापचय में तनाव चल रहा हो तब फक्कविरोधी चिकित्सा उद्वेष्टप्रियता (स्पाज्मोफिलिया) उत्पन्न कर सकती है। कैल्शियम देने के साथ-साथ विटामिन डी की प्रतिषेधात्मक मात्रा या कांडलिवर आयल दिया जासकता है।

विटामिन डी प्रतिरोधी फक्क रोग

कभी-कभी विटामिन डी-प्रतिरोधी फक्क रोग देखा जाता है। यह तब होता है जब और भी कोई रोगी बालक को पाया जावे। प्रगल्भता,न्यूमोनियां,अजीर्ण,अल्प विकास, यकृत् के रोग, पित्त प्रणाली के रोग, वृक्क जन्य फक्क (रीनल रिकैट्स) ऐसे रोग हैं जिनमें फक्क रोग विटामिन डी प्रतिरोधी होता है। ये वे स्थितियां हैं जब विटमिन डी को प्रचूषण और सात्म्यीकण और रूप परिवर्तन में बाधा पड़ती है। ऐसी अवस्था में विटमिन $डी_2$ की बड़ी मात्रा को २५% साइट्रिक अम्ल के घोल तथा २० प्रतिशत सोडियमसाइट्रेट घोल में मिलाकर देते है। इससे आंतों में कैल्शियम साइट्रेट कम्प्लैक्स बन जाता है जिसके साथ विटामिन डी भी आसानी से प्रचूषित हो जाती है। जब अस्थिमार्दव, अस्थिसुषिरता, कपालशोष काफी हो तब साइट्रिक अम्ल के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है

जटिल फक्क रोग में विटामिन डी के साथ विटामिन ए, सी की कम्प्लैक्स और ई के प्रयोग की भी आवश्यकता होती है। विटामिन सी कंकाल में प्रोटीन का पोषण करता जिस पर कैल्शियम फिक्स होकर अस्थि का रूप लेती है।

फक्क की अरक्तता विटामिन डी के द्वारा दूर हो जाती है। कुछ मात्रा में बी १२ तथा लोहे का उपयोग भी आवश्यक होता है।

तेल मालिश और व्यायाम फक्क रोगी के लिए सदा लाभदायक सिद्ध होते हैं। कश्यप का राजतैल जिसे इक्ष्वाकु सुबाहु, सगर, नहुष, दिलीप, भरत और गय आदि इतिहास प्रसिद्ध राजाओं के बालकों को प्रयुक्त कराया गया था इसकी उपयोगिता को आज भी सिद्ध करता है त्रिचक्री को घुमाते रहना फक्की के लिए अच्छा व्यायाम प्राचीन काल में कहा गया है।

फक्की में वालुकास्वेद तत्पश्चात् उष्णोदक स्नान की महत्ता भी रूसी विद्वानों ने स्वीकार की है। लवणोदक स्नान को भी उन्होंने अच्छा माना है। एक बाल्टी गरम पानी में १००-२०० ग्राम नमक डालकर उसमें फक्की को स्नान कराने से उसके शरीर में चयापचय क्रियाएं सुधारती है ऑक्सीजन का शरीर भरसक उपयोग करता है तथा कार्बनडाई आक्साइड बाहर निकलने में आसानी होती है। बच्चे को ५ से १५ मिनट तक आयु के अनुसार लवणोदक स्नान करके अच्छे गुनगुने जल से स्नान कराके तौलिया से पोंछ देते हैं। नमक को सीधे पानी में न डालकर एक कपड़े में नमक की पोटली बना डाल देते हैं, फिर कपड़ा निकाल देते है। अगर नमक से बच्चे को कष्ट हो तो उसमें स्टार्च या सोडाबाईकार्ब भी थोड़ा सा मिला सकते है। जो बच्चे लवणोदक स्नान सहन न करें उन्हें सैलाइन-पाइन स्नान कराने की प्रथा है इसमें पाइन ऐक्स्ट्रैक्ट आधा या १ चाय की चम्मच भरकर तथा नमक या समुद्रलवण १०० से २०० ग्राम एक बाल्टी पानी में डालते हैं। इससे चयापचय क्रिया तेज होती है और बच्चे के चमड़े पर शामक प्रभाव भी पड़ता है।

अतिविटामिनता-डी

विटामिन डी जहां फक्करोग नाशक गुण रखती है वहीं खनिजों के चयापचय को हमारे शरीर में नियमित करती है, अस्थियों में कैल्शियम को निक्षिप्त करती है रिडक्शन आक्सीडेशन प्रक्रियाओं में भाग लेती है तथा शरीर में रोगापहरण सामर्थ्य को बलवान् बनाती है।

इतनी उपयोगी यह विटामिन कभी-कभी अतिमात्रा में सेवन करने से विषाक्त लक्षण उत्पन्न कर देती है। अति विटामिनता डी के लक्षण व्यक्ति-व्यक्ति में अलग-अलग रूप में और मात्राओं से बना करते हैं। सामान्यतया जब ३० लाख यूनिट से १॥ करोड़ यूनिट विटामिन $डी_2$ किसी के शरीर में पहुंचा दी जाती है तो अति विटामिनता देखी जा सकती है। यदि ३०-४० हजार यूनिट $डी_2$ प्रतिदिन महीनों दी जावे तो भी ये लक्षण मिल सकते हैं।

विद्वानों की राय है कि प्रतिकिलो शरीर भार पर ८००० यूनिट प्रतिदिन विटामिन डी यदि २० से ४५ दिन तक ही दी जाती रहे, तो अति विटामिनता नहीं होती। सेफ़मोव के मत से चिकित्स्य मात्रा की हजार गुनी इसकी विषाक्त मात्रा होती है।

आरम्भ में—अति विटामिनता डी में निम्न लक्षण मिलते हैं:—

i. बच्चे के स्वास्थ्य का गिरना, शिथिलता, ग्लानि और निद्रा में गड़बड़।

ii. भूख न लगना, अग्निमान्द्य, कोष्ठबद्धता, वमन हृल्लास।

iii. शरीर भार का न बढ़ना बाद में कम होते चले जाना।

iv. थोड़ा ज्वर रहना, कार्श्य, मुख का पीला पड़ना, त्वचा का रूक्ष होना त्वचा पर झुर्रियां (वलियां) पड़ना और खुजली होना।

कुछ दिन पश्चात्—

i. हृदय की गति का अनियमित होना, हृदय में प्रकुंची मर्मर ध्वनि मिलना।

ii. हृत्पेशी में विकृति आना जिसे इलैक्ट्रो कार्डियोग्राम से जाना जा सकता है। प्रकुंची रक्तदाब बढ़ जाता है।

iii. यकृद्दाल्युदर तथा प्लीहोदर।

iv. वातनाड़ीशोथ, बहुनाड़ीशोथ, नेत्रनाड़ी में विकृति, अवसाद, मोह, आक्षेपक और श्वेत कणोत्कर्ष।

v. मूत्र में कैल्शियम वृद्धि, शुक्ल मूत्रता, पूयमेह, शोणमेह, मूत्र में निर्मोक।

vi. रक्त में कैल्शियम की मात्रा की वृद्धि।

vii. हाइपरएजोटीमिया।

viii. आमाशय में स्रवणहीनता (ऐकाइलिया)।

इस स्थिति में बच्चे को आराम देना, आहार से कैल्शियम को निकाल देना, विटामिन ए, सी और बी कम्पलैक्स अधिक मात्रा में देना, ऐंज़ाइम देना, ग्लूकोज प्लाज्मा तथा रक्त का आधान, गामाग्लोब्यूलिन का प्रयोग इंसूलीन तथा ग्लूकोज साथ देना।

प्रैडनीसोन, प्रैडनीसोलोन का प्रयोग प्रतिदिन १-२ हफ़्ते तक देने से बहुत लाभ होता है। अन्य स्टैराइड योग भी लाभ करते हैं।

आरोग्य के लक्षण—

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च।
सृष्ट विण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य च लाघवम्॥
सुप्रसन्नेन्द्रियत्वं च सुख स्वप्न प्रबोधनम्।
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्यं समाग्निता॥
विद्यादारोग्य लिङ्गानि विपरीते विपर्ययम्।

अन्न में रुचि हो, खाये हुए अन्न का सुख पूर्वक पाचन हो जाता हो, मलमूत्र तथा वायु का निकलना, शरीर की लघुता, इन्द्रियों की प्रसन्नता, सुखपूर्वक नींद आना, तथा जागना, बलवर्ण तथा आयु की प्राप्ति, मन का प्रसन्न रहना तथा अग्नि की समानता ये आरोग्य के लक्षण जानने चाहिये।

चूसता रहता है, परन्तु धीरे-धीरे भक्षण करने लगता है। वह अन्न शिशु के पेट में आकर अजीर्ण उत्पन्न कर देता है जिससे उसे हरे पीले दस्त आने लगते हैं। ज्वर, खांसी का प्रकोप हो जाता है और शिशु प्रतिदिन शुष्क होने लगता है।

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि "दुग्धाशी वर्ष पर्यन्तंस्मात्" (भावप्रकाश) बच्चों का १ वर्ष तक भोजन केवल दुग्धपान ही रहना चाहिए।

"मातुरेवपिबेत् स्तन्य तत्पर देह वृद्धये" (वाग्भट) माता के स्तनपान करने से देह की वृद्धि होती है।

आजकल अधिकांश में शिशुओं को माता का दूध नहीं मिलता है या अत्यल्प मिलता है (अक्षीरा जननी-काश्यप संहिता)। माता के खान-पान और जलवायु में होने वाले परिवर्तन और जन्तुओं का संसर्ग आदि कारणों से शिशुओं में कृशता दृष्टिगोचर होती है। निर्बलता बढ़ने से बच्चे पंगु बन जाते हैं।

"क्षीरजं गर्भजं चैव तृतीयं व्याधि संभवम्। फक्कत्वं त्रिविधं प्रोक्तम् (काश्यप संहिता) क्षीरज, गर्भज, व्याधिज तीन फक्कत्व कहे जाते हैं।

क्षीरज--शिशु को प्रथम वर्ष में मातृ दुग्ध, गोदुग्ध, अजादुग्ध पौष्टिक रहता है। परन्तु वही दूध पूर्व से ही दूषित रहा तो शिशु शक्तिशाली के बदले निर्बल होता है।

जिस माता का दूध कफदुष्ट है उसे 'फक्क दुग्धा:' कहा है। ऐसे दुग्धपान से अग्निमांद्य होकर कफस्थान में वक्षस्थल, गला, श्वास, नाड़ी प्रभृति स्थानों में कफ समाविष्ट होकर बच्चा कृश होने लगता है।

गर्भज--"गर्भिणी मातृक: क्षिप्रं स्तन्यस्य विनिवर्तनात्।
क्षीयते म्रियते वाऽपि सफक्को गर्भ पीडित:॥
-- (काश्यप संहिता)

गर्भिणी माता का बदला हुआ दूषित दूध पीकर उस पर ही रहने का प्रसंग शिशु पर आने से वह धीरे-धीरे क्षीण होकर अन्त में काल के गाल में चला जाता है।

गर्भ धारण होने से स्तन्य में परिवर्तन होता है और गर्भिणी स्तन्य से बच्चे का पोषण भलीभांति नहीं होता। स्वाभाविक रूप से छ: मास में मातृस्तन्य का प्रमाण भी बहुत कम होने लगता है। शिशु स्तनपान को न पाकर उसके लिए हठ करता है। अनशन से शिशु को अग्निमांद्य, वमन, दस्त हो जाते हैं।

शिशु के दुग्धपान काल में प्रसंग का सर्वथा निषेध है। माता-पिता को उस काल में पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। शत-प्रतिशत शिशुओं को सूखा रोग होने का प्रमुख कारण यही है। प्रसंगोपरान्त शीघ्र दुग्धपान कराने से शिशु को अग्निमांद्य, वमन, दस्त रोग लगते हैं और शिशु यकृत् रोग से पीड़ित हो जाता है। गर्भकाल से शिशु के दुग्धपान तक लगभग २½ वर्ष तक माता-पिता को ब्रह्मचर्य से रहना अनिवार्य है अन्यथा शिशु का यकृत् अवश्य दूषित हो जायगा। धात्री का दुग्धपान करने वाले शिशु पर यह नियम नहीं है।

व्याधिज—ग्रहणी, पाण्डु, यकृत् वृद्धि, विषमज्वर, जातजफिरंग (आतशक) प्रभृति रोगों की क्षीणता के कारण बाद में सूखा रोग हो जाता है।

लक्षण--यकृत् रोग में शिशु के नितम्ब के मांस प्रदेश पर सलवट पड़ना, हाथ-पैर की दुर्बलता, वक्षस्थल का दब जाना और पेट का उभार व उस पर नसों का दीखना, हरे-पीले दस्तों का बार-बार होना, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, ठीक समय पर दन्तोद्भव न होना। अस्थियों में वक्रता होना, शिशु के नेत्र चिकने तथा श्वेत हो जाते हैं।

इस रोग में अस्थि विकृति अधिक रहती है। मांसधातु, उरुभाग और बाहुक्षीण होने के कारण वह भाग सूखा हुआ दिखाई देता है। उदर की वृद्धि हो जाती है।

उपचार देहाती लोग झाड़ फूंक करवाते हैं, पर मेरा इस पर एकदम विश्वास नहीं है। झाड़ फूंक से यकृत् रोग दूर नहीं हो सकता है। मेरुदण्ड की अस्थि की मालिश औषधोपचार आदि लाभकारी है।

आयुर्वेदिक--

(१) असगंध चूर्ण ६ रत्ती गर्म जल से दें।

(२) 'धन्वन्तरि' कार्यालय, गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, डाबर प्रभृति द्वारा निर्मित "कुमार्यासव" का प्रयोग विधियन के अनुसार कराना चाहिए। यह यकृत् व प्लीहा में विशेष लाभ करता है, शोथ हटाता, बल तथा रक्त की वृद्धि करता है। शिशु को मिठाई देना सर्वथा निषेध है।

(३) '[illegible]' ३ माशे जल या मट्ठे के साथ देना चाहिए।

(४) जिस समय चन्द्रग्रहण हो रहा हो उस समय वन में जाकर 'मयूर शिखा' को जड़ से उखाड़ लावें फिर उसे ३ अंगुल शिशु के गले में बांध दें, २१ दिनों तक बंधी रक्खें।

(५) गधी का दुग्ध प्रतिदिन ताजा लेकर शिशु के सम्पूर्ण शरीर में मालिश करें।

(६) अपामार्ग (ओंगा, चिरचिटा, लटजीरा) के सात पत्ते लेकर कत्था-चूना लगे बंगला पान में रखकर सब डंठल पीसकर शिशु की पीठ पर मलें बाद में सूखने पर शीघ्र ही भैंस का गोबर मलें। बार-बार गोबर डालकर मलते जायं और तेजी से पानी से धोते जायं। श्वेत रंग के कीटाणु निकलेंगे। उन्हें चिमटी से पकड़कर फेंक दें या छुरे से साफ कर डालें। प्रति तीसरे दिन यह प्रयोग सात बार करें।

(७) आक (मदार) के पत्ते जो स्वयं पक कर पीले होकर पृथ्वी पर गिर गए हों। उन्हें ताजा ही लेकर अग्नि पर सेको और मसलकर रस निकालो। इस रस की एक-एक बूंद दोनों नाकों के छिद्रों में डालकर नस्य दो तो सारा विकार, कीड़े आदि नाक द्वारा बाहर निकल जावेंगे। यह प्रयोग एक-एक दिन के अन्तर से तीन बार करें।

(८) द्रोणपुष्पी (गूमा) और आक के सात-सात पत्ते लेकर रस निकालो और रुई तर करके तालु पर रखो तो मस्तिष्क के कीटाणु नष्ट होंगे।[1]

(९) भैषज्य रत्नावली में लिखा है कि लाल कमल के फूल, खस, केसर या गम्भारी फल, नीलकमल, मजीठ, छोटी इलायची, मुलेठी, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, हर्र, बहेड़ा, आमला, [illegible], [illegible], [illegible], गोंद पलाश, परवल का पत्ता, [illegible], अर्जुन की छाल, [illegible], महुए के फूल, [illegible] प्रत्येक का चूर्ण १-४ तोला और मुनक्का १ [illegible] तथा धाय के फूल ६४ तोला का भी चूर्ण बनावें।

चिकनी मिट्टी के पात्र में २५ सेर ८ तोला जल डालकर उसमें ५ सेर उत्तम सौंफ और शहद २½ सेर डालकर घोल दें।

उस पात्र का मुख बन्द कर एक मास तक रखा रहने दें। पुनः प्रयोग में लावें।

मात्रा व अनुपान—बच्चों को २ से १६ माशे तक और बड़ों को १ से १½ तोले तक बराबर जल के साथ देना चाहिए। यह सुखण्डी की सर्वोत्तम औषधि है।

(१०) शंखभस्म ३ भाग, प्रवालभस्म १ भाग, शुक्ति-भस्म २ भाग, कौड़ीभस्म ४ भाग, गोदन्तीभस्म ६ भाग।

इनको एकत्र नीबू के स्वरस में खरल कर लें। २ से ८ रत्ती तक मात्रा को प्रातः व सायं दूध से दें।

(११) शंखभस्म ४ तोला को २० तोला जल में रात्रि को भिगो दिया जाय। प्रातःकाल उसको निथार लिया जाय। उस जल में ३२ तोला कूजा मिश्री डालकर पका लिया जाय। शहद के तुल्य होने पर शीशी में भर लें। यह शर्बत १ तोला, शंखभस्म १ रत्ती, गोदन्तीभस्म १ रत्ती मिलाकर प्रातः सायं चटा दिया करें।

(१२) लाक्षादितैल 'लालतैल' आयुर्वेदिक 'शंखपुष्पी-तैल' का अभ्यंग कराना चाहिए।

(१३) 'गोमूत्र' इस रोग की अच्छी औषधि है। १ वर्ष से कम आयु के शिशु को गोमूत्र नहीं देना चाहिए। १ से ४ वर्ष तक की आयु के शिशु को ६ माशा से लेकर १ औंस तक शुद्ध वस्त्र से छाना हुआ गोमूत्र से समान भाग जल मिश्रण करके शिशु को देना चाहिए। दिन में तीन बार से अधिक न दें। गोमूत्र सेवनकाल में अन्न का त्याग करा कर गोदुग्ध तथा फलों का ही सेवन कराना चाहिए।

(१४) '[illegible]' का चूर्ण २-३ रत्ती मात्रा में दूध में घोलकर देना चाहिए।

(१५) सफेद मुर्गी के अण्डे को तोड़कर एक [illegible] पर उसके भीतर का पदार्थ रख कर कम्बल पर रखे और उसी पर शिशु को बैठा दे। यदि सूखा रोग होगा तो [illegible] अण्डा के भीतर का पदार्थ [illegible] आवेगा। इसी प्रकार एक सप्ताह तक करने से शिशु [illegible] स्वस्थ हो जायगा।

---

[1] संख्या ४ से ८ तक के प्रयोग पं. [illegible] जैन शास्त्रीकृत "[illegible] रोग विज्ञान" [illegible], पृष्ठ २८,२९,३० से लिए गए हैं—(लेखक)

(१६) एक छटांक 'खूबकला' आधा किलो बकरी के दूध में उबालो तथा सुखा डालें। इसी प्रकार तीन बार आधा-आधा किलो दूध में उबालें तथा सुखाया जाय पुनः एक-एक माशे की मात्रा प्रति दिन प्रातःकाल खिलाने से शिशु पूर्ण स्वस्थ हो जायेगा।

(१७) जहरमोहरा के बने ग्लासों में जल या दूध शिशु को पीने को दें।

यूनानी उपचार

(१) वंशलोचन, छोटी इलायची के दाने, हजरुल-यहूद, दरियाई नारियल, जहरमोहरा खताई, छोटी हरड़, जर्दरू, पद्माख सभी ६-६ माशे, बढ़िया मोती ६ रत्ती।

सबको आधा सेर गुलावजल में घोंटकर सरसों जैसी गोलियां बना लें। मात्रा १ से २ गोली प्रातः दोपहर, सायं तथा रात्रि को माता के दूध से दें।

(२) छोटी इलायची के दाने २ तोला, गिलोय सत्व ५ माशा, कमलगट्टा की मिगी, करंज की मिगी, हजरुल-यहूद, वंशलोचन, पीली बड़ी हरड़ ४-४ माशे। पीपल की जटा, इन्द्र जौ, जहरमोहरा खताई, सफेद चन्दन, लाल-चन्दन ३-३ माशे। ऊदसलीब, कालीमिर्च, सफेद जीरा, केशर, अनबीधे मोती, सोने-चांदी के वर्क २-२ माशे।

घोंटने पीसने योग्य चीजों को यथा योग्य कूट पीस लें फिर आधा सेर गुलावजल में घोंटकर सुखावें फिर आधा पाव अर्क वेदमुश्क में घोटें, अन्त में अर्क केवड़े में घोटलें और मूंग जैसी गोलियां बनावें। इन पर ऊपर से चांदी के वर्क चढ़ावें और एक-एक गोली दिन में ३ बार गाय के दूध में दें।

(३) दरियाई नारियल, सौंफ, जर्दरू ७-७ माशे। संगेयहूद, जहरमोहरा खताई, मोती, वंशलोचन, नीलोफर, छोटी इलायची के दाने, गुलाव के फूल एक-एक माशा, भुना सुहागा २ तोला।

सबको अर्क गुलाब में ३ दिन तक घोटें फिर अर्क गाजवां में ३ दिन घोटकर रख लें। इसकी मात्रा २ से ४ रत्ती है। शर्बत बनफशा या मां के दूध से दें।

(४) राई को गोमूत्र में पीसकर पेट पर लेप करना हितकर है।

(५) अलसी तथा अण्डी के बीजों को पानी में पीस-कर यकृत् के ऊपर लेप करने से रोग में लाभ होता है।

(६) अमलतास का गूदा २ तोला को हरी मकोय के पानी में पीसकर यकृत् पर लेप करें। इससे यकृत् की सूजन दूर हो जाएगी।

होमियोपैथिक उपचार—

१. एब्रोटेनम ३०—शिशु का सारा शरीर सूख जाय, लेकिन पैर का सूखना ही अधिक दिखाई पड़े, इसे देने से जादू के समान असर करता है।

२. कल्केरिया आर्सेनिकम् ३०—शिशुओं के यकृत् और प्लीहा बढ़ने पर लाभप्रद है।

३. 'आर्सेनिक ६ या आर्सेनिक आयोड २X—शिशु के भलीभांति पोषण न होने के कारण 'सूखा रोग' होने पर देना चाहिए।

४. फास्फोरस ३०, एसिडफास ६ ये भी कभी-कभी लाभ पहुँचाती है।

५. 'एकोनाइट' ६, ३०—यकृत्-स्थान पर सुई चुभोने जैसा दर्द, श्वास कष्ट, शीतल वायु लगने से होने वाले दर्द आदि लक्षणों में दें।

६. 'नक्सवोमिका' ६,३०—यकृत् में टपक जैसा दर्द, यकृत् में सूजन व कड़ापन, दवाने से दर्द होना, भोजन अरुचिकर लगना आदि लक्षणों में हितकर है।

७. 'बेलाडोना' ३, ६, ३०—तीव्र ज्वर, यकृत् में दर्द, पित्त की अधिकता के लक्षणों में।

७. 'ब्रायोनिया' ६, ३०—मलावरोध, यकृत् में वेदना, पित्त की अधिकता में हितकर है।

९. 'चायना' ६—यकृत् का फूलना, सामान्य ज्वर, विशेष निर्बलता, भोजन न पचना आदि लक्षणों में।

१०. 'लाइकोपोडियम' ६, ३०—दायें बगल में दर्द, पेट में वायु, पतले दस्त, मलावरोध आदि लक्षणों में।

११. 'सल्फर' ३०—पुराने यकृत् रोग में इसे देना हितकर रहता है।

वायोकैमिक उपचार—

१. 'कलकेरिया फास्फोरिकम् ६X—यह इस रोग की प्रधान औषधि है। इससे मेरुदण्ड की वक्रता और ग्रीवा की शक्तिहीनता दूर होकर स्वाभाविक दशा को प्राप्त हो

जाते हैं।

२. 'नेट्रम फास्फोरिकम्' ६X—खाद्य पदार्थ के ठीक से न पचने के कारण रोग होने पर यही प्रधान औषधि है, परन्तु इसके साथ 'कलकेरिया फास्फोरिकम्' पर्यायक्रम से बीच बीच में दो एक मात्रा करके व्यवहार कराना चाहिए।

३. 'साइलिसिया' ६X—रोगी के मस्तक में अधिक परिमाण में पसीना और उदरामय के मल में अधिक दुर्गन्ध रहने पर उपयोगी है।

एलोथिपैक उपचार—

कतिपय पैटेण्ट गोलियां

१. एडवाइड—१ से २ कैप्सूल दिन में दो बार दें। (पेय रूप में भी आता है)

२. कैल्शियम डी रिडोक्सन—२ से ३ गोलियां प्रतिदिन दें।

३. कैलग्लुकोल 'डी'—१ से २ गोली दिन में दो बार प्रतिदिन दें।

४. कैल्सीनोल पैराथाइराइड सहित—१ से २ टिकिया प्रतिवार भोजनोपरान्त दें।

५. कैल्फोस्गोन 'डी' (लिली)—६ से १२ "पलव्यूल्स" प्रतिदिन सेवन कराने चाहिए।

६. डिसपेप्टाल (वोहरिंगर)—एक टिकिया दिन में दो वार भोजनोपरान्त खिलाना लाभप्रद है।

७. मियोनीन (वाइथ)—एक टिकिया दिन में तीन वार खिलाना चाहिए।

८. लिट्रीसोन (रोश)—तीन टिकिया दिन में तीन वार भोजनोपरान्त खिलावें।

९. लिव ५२ (हिमालय)—२ से ३ टिकिया दिन में २-३ वार। बच्चों को ड्राप्स ५ से ५ बूंद दिन में तीन वार।

कतिपय सुप्रसिद्ध पेय (Liquids & Drops)—

१. लिवर जिन शर्वत (स्टैण्डर्ड)—½ से ¼ छोटी चम्मच हर खाने के वाद दें।

२. लिविरुग्रा विदफोलिक एण्ड वी १२ कैडिला कं)—१-२ चम्मच हर खाने के वाद दें।

३. लिवोजिन (वी० डी० एच०)—१-२ ड्राम दिन में २-३ वार दें।

४. लिविग्नोन (पार्क डेविस)—१ या २ ड्राम खाने से पूर्व दें।

५. लिवो 'वी' कम्पलैक्स (यूनीकम कं०)—१-२ चम्मच खाने के वाद दें।

६. लैंडरलेक्स (लिडर्ले कं०)—विधिपत्र के अनुसार दें।

७. लैक्टोलाईसीन सीरप (सनवेज कं०)—½-२ चम्मच आयु के अनुसार दें।

८. कोलोयड कैल्शियम विद विटामिन 'डी' (वङ्गाल इम्युनिटी कं०) १-२ ड्राम खाने से १ घंटा पूर्व दिन में तीन वार।

९. मिनोलैंड सीरप (टी० सी० एफ० कं०)—२-२ चम्मच दिन में ३ वार दें।

१०. नेवीटोल माल्टकम्पाउण्ड (स्क्विव कं०)—२-४ ड्राम प्रतिदिन सेवन कराएं।

'यकृत् रोग' में कतिपय पेटेण्ट इंजेक्शन—

लिवर ऐक्स्ट्रैक्टविद विटामिन 'वी' १२ तथा फोलिक एसिड तीनों मिले हुए निम्नलिखित इंजेक्शन हैं जो पेशी में एक दिन के वाद लगाना चाहिए। ये इंजेक्शन यकृत् रोग के लिए 'रामबाण' हैं।

नाम	निर्माण करने वाली कम्पनियां
इंजेक्शियो हेपेटिस फोर्ट	सेनीटेक्स
एनीमिन्डोन	इण्डोफार्मा
वैराफोल	ऐंग्लोफ्रेंच ड्रग
प्रोलेक्स फोर्ट	वङ्गाल इम्यूनिटी
पर्नेविट	नियोफार्मा
फोलीवियोन लीवर	अमेरिकन
हिपाफोलीन	सिपला
हिपर रा फोर्ट	टूफर फार्मा
हिपर १२	ड्यूमेक्स
हिपोरलफोर्ट	सी० डी० सी०
हिप्टेमिन	कोम्टेक लेवोरेटरीज, वम्बई
लिवर ऐक्सट्रैक्ट फोर्ट	टी० सी० एफ०
यूनी-वी १२ फोलिक कम लीवर	यूनीकेम
लिवर ऐक्सट्रैक्ट विद फोलवाइट	लिटल
सायोट्रैट फोर्ट	एल्वर्ट डेविड

लेखक--आयुर्वेदवारिधि श्री चन्द्रप्रकाश मेहरा ५५७ मंटोला स्ट्रीट-नई दिल्ली-५५

आयुर्वेद के क्षेत्र में प्रायः लोगों का प्रवेश व्यवसाय हेतु ही हुआ करता है। किन्तु हमारे चिरपरिचित यौनविज्ञानविशेषज्ञ डा० मेहरा का प्रवेश व्यवसायात्मक दृष्टि से न होकर शौकिया हुआ है और यह प्रवेश चंचु-प्रवेश मात्र नहीं है अपि तु विषयों का सर्वाङ्गीण अवगाहन किया गया है। उनके लेखों के पढ़ने के लिए आयुर्वेद जगत् में एक जिज्ञासा रहती है। अभी इन्द्रप्रस्थीय वैद्यसभा द्वारा आयोजित रक्तचाप सेमिनार में कुछ समय के लिए गया तो जीवन में आपके प्रथम वार दर्शन हुए सांवला सलोना मोहक व्यक्तित्व, आंखों में शालीनता और आवाज में कशिश जिसके पास हो उसकी लेखनी चमत्कारपूर्ण न हो यह सोचा भी नहीं जा सकता। आपका यह लेख जितना रोचक है उतना ही सारगर्भित। काश ! हमारे देश में डा. मेहरा जैसे अमेच्योर आयुर्वेदज्ञों की कुछ और बड़ी संख्या होती ! ! —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

सूखा रोग से ग्रस्त वच्चा दिन प्रतिदिन कमजोर और दुवला-पतला होता जाता है। उसका जिगर व तिल्ली वढ़ जाते हैं। उसके नितम्वों का मांस सूख जाता है। वह हर समय रोता रहता है, चिड़चिड़ा हो जाता है और अपनी मां से चिपटा रहना चाहता है। उसे चैन की नींद नहीं आती। उसका चेहरा फीका और चूसा हुआ लगता है। उसके हाथ पांव की अस्थियां टेढ़ी नजर आती हैं।

वच्चे को वाकई सूखा रोग ही है इसकी पहचान यह है कि उसके कान की लौर(Ear lobe कान के नीचे लटकता हुआ मांस का मुलायम भाग जिसमें छेद करवा कर प्रायः स्त्रियां वुन्दे, वालियां पहनती हैं) को अपने अंगूठे और तर्जनी उंगुली से जोर से दवायें या नोचें तो वच्चा रोता नहीं है, उसे कुछ पता नहीं चलता मानो उसके कान की नसें सुन्न हो गई हों। अथवा उसे मरी मक्खी निगलवा दो; यदि सूखा रोग है तो उसे कै नहीं होगी वैसे साधारण अवस्था में कै हो जाती है। अथवा मुर्गी के कच्चे अण्डे की जर्दी अपनी हथेली पर रख कर उसे वच्चे की गुदा से सट कर रखें यदि सूखा रोग है तो जर्दी स्वतः ही खिचकर वच्चे के पेट में चली जायेंगी।

चिकित्सा

एक वंगला पान लेकर उस पर किसी पनवाड़ी से वरावर का चूना व कत्था लगवायें।(याद रहे वरावर चूना कत्था लगाने से पान तासीर में इतना अधिक गर्म हो जाता है कि यदि ऐसा पान कोई स्वस्थ व्यक्ति खाले तो चक्कर खाकर गिर पड़े, खाने के लिये पान पर कत्था अधिक और भीगा हुआ चूना जरा सा ही लगाया जाता है।) फिर पान के पत्ते के वजन के वरावर मकोय के पत्ते (अन्दाजन ३-४ पत्ते) लेकर दोनों वस्तुओं को चकले पर पीस कर मक्खन की तरह मुलायम चटनी तैयार कर लें। पत्थर की सिल पर भी पीसने से, वस दवा तैयार है।

वच्चे को पेट के वल लिटाकर अपनी उंगुली से थोड़ी सी यह चटनी उसकी सम्पूर्ण रीढ़ की हड्डी पर मलें। इस चटनी की मालिश से आप गौर से देखेंगे तो पता लगेगा कि पतले महीन धागे की तरह के कीड़े रीढ से वाहर निकल

आये हैं। उन कीड़ों को साथ में बैठा दूसरा आदमी पानी की धार उन पर डाल कर बहाता जाये अथवा हाथ से बीन बीन कर निकाल फेंकता जाये। याद रहे पानी मौसम के अनुसार ठंडा व गर्म प्रयोग में लायें। गर्मियों में ठंडा पानी और सर्दियों में गर्म पानी चटनी को जितना जोर से रगड़ोगे उतने ज्यादा कीड़े बाहर निकलेंगे। उसके बाद बच्चे के शरीर पर तेल की मालिश कर (महानारायण तेल, लाक्षादि तेल या सरसों का कड़वा तेल मालिश के लिये प्रयोग में ला सकते हैं) बच्चे को थोड़ा विश्राम देकर उसे स्नान करा-कर सुला दें। आप देखेंगे कि जो बच्चा सदा भिन्न-भिन्न करता और रोता रहता था अब चैन की नींद सोजाता है।

ऐसा प्रतिदिन प्रातः एक बार करें, जब कीड़े निकलने बन्द हो जायें तो समझें कि रोग दूर हो गया है। उपरोक्त चिकित्सा इस रोग का अचूक उपचार है। एक सप्ताह के भीतर ही रोग दूर होकर बच्चा चैन की सांस लेता है, उसके चेहरे पर हंसी लौट आती है उसका अकारण ही भिनभिनाना और रुदन करना दूर हो जाता है।

कुछ लोग कच्ची कंघी के तीन पत्ते लेकर उन पर कत्था चूना लगा कर सादे पान में रखकर मुंह से चबा कर उसकी पीक रीढ़ पर रगड़ कर सूखे रोग का उपचार करते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग उपरोक्त वर्णित अण्डे की जर्दी वाला प्रयोग एक सप्ताह तक करवा कर रोग निर्मूल करते हैं।

उपरोक्त उपचार के पश्चात् बच्चे को साधारण शक्ति-वर्द्धक औषधियां व पौष्टिक भोजन देकर पूर्ण स्वस्थ करायें। इसके लिये उसे शुद्ध गाय का दूध पिलायें और औषधि के तौर पर Cal-D-Min की एक गोली दिन में दो बार चूस चूस कर अथवा चबा कर खाने को दें। यह बड़ी स्वादिष्ट है। इसकी प्रत्येक गोली में निम्नलिखित औषधियें हैं :-

Dicalcium Phasphate I. P. ······O 650 G
Calciferol (vit. D--2 I. P. ······500 I. U.
palatable base ······ ············ Q. S.
(Peppermint Flavoured)

यह औषध M/S Kuti works (tablets); 98-B Lady Harding Rood, Mahim Bon bay—16 द्वारा निर्मित है।

बच्चों के लिये अमृत है। बच्चे प्रायः मां बाप से अपने खर्चने के पैसे लेकर गली मोहल्ले में बैठे हुए खोमचे वालों से मीठी गोलियां लेकर खाते हैं। यदि उसकी जगह ये उपरोक्त गोलियों का सेवन करें तो बहुत लाभदायक रहे। एक पंथ दो काज वाली कहावत चरितार्थ होगी। बच्चों को १मीठी गोली भी मिल गई और ताकत के लिये औषध भी। १००० गोली का डिब्बा लें तो २-३ पैसे की एक गोली पड़ेगी। लेकिन दिन भर में दो गोली से ज्यादा सेवन न करायें अन्यथा पतले झाग वाले दस्त होने की सम्भावना है, खास कर गर्मी के मौसम में।

यदि बच्चा बहुत छोटा है तो एक गोली को पीस कर उसकी चार खुराक बनाकर एक पुड़िया दिन में चार बार उसे सेवन करायें।

साथ में Becadex drops की पांचबूंदें (Glaxo Laboratories द्वारा निर्मित) या किसी अन्य कम्पनी की मल्टी विटामिन की बूंदें जल से, फलों के रस से, माता के दूध से, दिन में तीन बार सेवन करायें। अथवा राजस्थान लैबोटेटरीज, घमाणी मार्केट, जयपुर द्वारा निर्मित या किसी अन्य कम्पनी द्वारा निर्मित कुमार कल्याण वटी (स्वर्ण,मुक्ता युक्त) का सेवन दिन में दो बार करवायें। इसी प्रकार सर्वाङ्गसुन्दर रस (स्वर्ण युक्त) का प्रयोग भी लाभदायक रहेगा। जे एण्ड जे डीशेन, हैदराबाद द्वारा निर्मित Albo sang अल्बोसंग चूर्ण अथवा गोली का सेवन दिन मे तीन बार करायें।

बालसूखा रोग या मैरैस्मस

वैद्यरत्न डा० जयनारायण गिरि 'इन्दु' बी० ए० (आनर्स) धजवा, दरभंगा

इस रोग को सूखारोग, सूखियामसान, बालशोष, पारिगर्भिक, शोष, Marasmus आदि कहते हैं। यह एक प्रसिद्ध बहुव्यापक रोग है। इसे अंग्रेजी में Coeliac disease भी कहते हैं। आचार्यों का कहना है—

"संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते।"

इस व्याधि में शिशुओं के शरीर के रस, रक्त, मांसादि धातुओं का शनैः-शनैः संशोषण होने लगता है। धातुओं के क्षय के फलस्वरूप बच्चों में रक्ताल्पता, यकृत्विकृति, अस्थि-दुर्बलता, कमजोरी आदि लक्षण परिलक्षित होते हैं। बच्चों के सूखने के कई कारण हो सकते हैं लेकिन मैंने अपने चिकित्साकाल में इस रोग से ग्रसित ८०% बच्चों में चिरकारी अतीसार या प्रवाहिका का इतिहास पाया है। इसके अतिरिक्त अन्य कारणों में कृमिरोग, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा (T. B.) और खाद्य में अपोषक तत्वों का आहार भी पाया जाता है।

प्रायः देखने में आता है कि बच्चा ने जहां रोना प्रारम्भ किया कि उसकी माता तुरन्त ही उसे दूध पिलाने लगती है। बच्चों के चुप करने का एकमात्र तरीका वह दूध पिलाना ही जानती है। बच्चे को भूख है या नहीं उसका वह कोई विचार नहीं करती। बहुत सी माताएं तो स्तन लगाकर ही बच्चों को सुलाती हैं जिससे बच्चा रातभर दूध पीता रहता है। बच्चा जितना अतिखाय उतना ही उसके मां-बाप अच्छा समझते हैं। यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होता है। इससे तत्काल तो कोई खराबी उत्पन्न होती नहीं लेकिन पाचन तन्त्र शनैः-शनैः दुर्बल होता जाता है और अन्त में बच्चे को अतीसार रोग उठ खड़ा होता है। अगर चिकित्सक समझदार हुआ, तो दीपन पाचन औषधि देकर पाचन क्रिया को सुव्यवस्थित कर देता है जिससे स्थिति गम्भीर होने से बच जाती है। अगर बच्चा नीम हकीम के हाथ में चल गया तो उसे Sulphaguanidin या अफीमयुक्त दवा दे दी। इससे बच्चे के दस्त तो तत्काल कुछ रुकते हैं लेकिन बालक का कितना अहित होता है यह एक भुक्तभोगी ही जानता है। बाद में मल हमेशा फटा, छिछड़ेदार, लसदार और अत्यन्त दुर्गन्धित निकलता रहता है और बालक दिन-प्रतिदिन कमजोर होता जाता है। अतीसार का दूसरा कारण अस्वच्छता भी है। अस्वच्छता से अनेक प्रकार के जीवाणुओं का संसर्ग होकर अतीसार एवं प्रवाहिका की उत्पत्ति होती है। अतीसार प्रारम्भ होने पर लोग इसे छोटी तकलीफ समझकर उपेक्षित कर देते हैं। वे सोचते हैं कि दांत निकलने के समय अतीसार होना स्वाभाविक है। वस्तुतः यही अन्धविश्वास सूखा रोग का मूल कारण होता है। अत्यन्त छोटी आयु में अन्न के सेवन कराने से भी पाचनतन्त्र बिगड़ जाता है और बच्चा सूखने लगता है। सूखा के कितने ही रोगियों को आपने देखा होगा टांगें तथा नितम्ब सूखकर पतले हो जाते हैं लेकिन उदर बड़ा होता है। बड़े बच्चों में विशेषकर निर्धन परिवार के बच्चों में जबकि उसके शारीरिक वृद्धि हेतु पोषक तत्वों की प्रचुर मात्रा उपस्थित भोजन में रहनी परमावश्यक है, उसे मिल नहीं पाती जिसके फलस्वरूप उसकी वृद्धि रुक जाती है। बच्चों का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन ह्रासोन्मुख होता चला जाता है और बाद में बच्चा कंकालस्वरूप होकर परिवार की चिन्ता का विषय बन जाता है।

सूखारोग को रोग नहीं मानकर एक विशेष स्थिति मानें तो यह अत्यधिक उपयुक्त होगा क्योंकि यह स्वतन्त्र रोग न होकर लक्षण मात्र है। फिर भी लोग इसे स्वतन्त्र रोग मानकर ही चिकित्सा सम्पादित करते हैं।

वैद्यराज श्री इन्दु जी सुधानिधि लेखक परिवार के एक सुशोभनीय घटक हैं उन्होंने मांसक्षय या मैरैस्मस पर अपने उपयोगी विचार इस लेख द्वारा प्रस्तुत किये हैं। —म० मो० चरौरे

लक्षण—रसरक्तादि धातुओं के क्षय होने के फलस्वरूप बच्चों के चूतड़, बांह, टांग सूख जाते हैं। पेट और सिर का भाग बड़ा दिखाई देता है। शरीर से अरुचिकर दुर्गन्ध आती रहती है। स्वभाव से रुग्ण बालक चिड़चिड़ा हो जाता है। मुख से निरन्तर लार अथवा नाक से निरन्तर रेंट (पोंटा) निकलती रहती है। बच्चों को या तो अत्यधिक अतीसार रहता है या कोष्ठबद्धता ही।

चिकित्सा—छोटी आयु में यदि बच्चा अन्न या ठोस पदार्थ भोजन में लेता है तो उसकी पाचनक्रिया विकृत होकर उदर वृद्धि हो जाती है। अतएव अगर ऐसी स्थिति हो तो इस पर अविलम्ब ध्यान देना चाहिए। बच्चे की मां को उचित आहार विहार कराना चाहिए क्योंकि इससे मां के दूध में जो विकृति उत्पन्न होती है वह बहुत अंशों में दूर हो जाती है। बच्चे को शुद्ध सरसों के तेल की मालिश करके प्रातः धूप में लिटाना चाहिए। इससे विटामिन 'डी' का निर्माण होता है और रुग्ण शिशु स्वस्थता की ओर अग्रसर होता जाता है। कतिपय योग जो मेरी चिकित्सा क्रम में पूर्णतया सफल रहे हैं, निम्न हैं—

१. प्रवालभस्म १ भाग, मुक्ताशुक्तिभस्म २ भाग, शंखभस्म ३ भाग, कपर्दिका भस्म ४ भाग, कच्छपपृष्ठास्थि भस्म ५ भाग और गोदन्ती हरिताल भस्म ६ भाग को नींबू के रस में ३ दिन खरल कर चने प्रमाण की गोलियां बना लें। इसे १ से २ गोली प्रातः-सायं मां के दूध के साथ देने से आशाजनक लाभ होता है। यह सुधाष्टक हमारा कई बार का परीक्षित है।

२. अरविन्दासव के निरन्तर प्रयोग से आशानुरूप लाभ प्राप्त होता है।

३. शङ्खपुष्पी तेल की मालिश बराबर कराते रहें। इससे बच्चा पुष्ट होता है।

४. सैण्डोज कम्पनी का Macalvit 2 c. c और Balamyl (Squibb) 1 c. c. मिलाकर मांसान्तर्गत एक दिन छोड़कर चूतड़ में सुई देते रहें। यह अपूर्व गुणकारी व्यवस्था होगी।

५. Park Davis. Co का 'Abdec drop १०-१५ बूंद की मात्रा में दिन में ३ बार देना हितावह है।

६. Boots का 'kenitone' १ चम्मच भर दिन में दो बार भोजनोपरान्त दिया जा सकता है।

७. Macraberin (Glaxo) 5 tab+Redoxon 3 tab (Roche)+Calcium Sandoz 3 tob+Neomethedin (Neopharma) 3 tab + Isonex (Dumax) 100 mg-5 tob को अच्छी प्रकार पीसकर १२ खुराक बना लें। प्रातः-दोपहर और सायं १-१ खुराक दिन में तीन बार पानी के साथ सेवन करायें। यह बहुत ही उपकारी मिश्रण है और सूखा रोग में निश्चय ही लाभ करता है। अगर इस योग के साथ-साथ संख्या ४ में वर्णित Macalvit+Balamyl की सुई दी जाय तो सोने में सुहागा सदृश्य काम करेगी।

एक रस वर्जनीय

दौर्बल्यमद्दढत्वं च भवत्येक रसाशनात्।
दोषाप्रवृद्धिर्धातूनां साम्यं वृद्धिर्बलायुषी ॥
आरोग्यञ्चाग्निदीप्तिश्च जन्तोःसर्वरसाशनात्।
तस्मादेकरसाभ्यासमारोग्यार्थी विवर्जयेत् ॥

सदैव एक ही रस का सेवन करने से दुर्बलता और अदृढ़ता हो जाती है। इसके विपरीत सर्व रसों का सेवन करने से दोषों की कमी, धातुओं में समानता, बल और आयु की वृद्धि, आरोग्य तथा अग्नि दीप्त होती है। इस लिए आरोग्य को चाहने वाला व्यक्ति केवल एक रस के अभ्यास को त्याग देवे।

सुखराडी रोग की सफल चिकित्सा

ले०-विद्याभास्कर डा॰ इन्द्रमोहन झा 'सच्चन' पो. राँटी, मधुबनी (बिहार)

आचार्य डा० सच्चन अपने क्षेत्र के सुप्रसिद्ध चिकित्सक और ख्याति प्राप्त समाजसेवी हैं। आपकी साहित्य साधना भी किसी से छिपी नहीं है। आप सुधानिधि के लेखक परिवार के अन्तरंग आत्मीय जन हैं। सुखण्डी, सूखा, बालशोष, फक्क पर सभी ने कलम चलाई है किन्तु डा० सच्चन ने इसे जैसा हृदयङ्गम किया है अपने ढङ्ग से उसे सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। विशेष कर विविध शास्त्रीय उद्धरणों के संकलनों के माध्यम से अपनी बात कहना, चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें उनके अनुभव को मुखरित करती हैं। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

यह रोग अनेक नामों से प्रचलित है। यथा:—बालशोष, सुखण्डी, फक्क, बालमृद्वस्थि आदि। इसे अंग्रेजी में Rickets Wasting Tetany osteomalacia कहते हैं। लेकिन इन सभी नामों में Rickets तथा हिन्दी में सुखण्डी ही अधिक प्रचलित हैं।

सुखण्डी की परिभाषा देते हुए महर्षि कश्यप ने लिखा है कि:—

वाल: संवत्सरापन्न: पादाभ्यां यो न गच्छति।
सफक्क इति विज्ञेयस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्॥

अर्थात् एक वर्ष की अवस्था प्राप्त करने के बाद जो बच्चा कृशकाय हो तथा पैरों से चलने-फिरने में असमर्थ हो, तो उसे फक्क रोग से ग्रसित समझना चाहिए।

लक्षण (Symptoms)

बच्चा जब खूब खाता है, फिर भी सूखता चला जाता है। पेट आगे की ओर निकल जाता है। शरीर पीला पड़ जाता है। खासकर इस रोग से पीड़ित का हाथ-पैर, गर्दन पतली तथा शिर मोटा हो जाता है। खाने के लिये बराबर रोता रहता है। निरन्तर हल्का ज्वर आदि होजाता है।

प्रारम्भिक लक्षण—

इस रोग के प्रारम्भ होने से पूर्व निम्नलिखित लक्षण मिलें, तो समझना चाहिए कि सुखण्डी रोग होने वाला है। यथा:

(१) अक्सर बच्चे को फटाफटा बदरङ्ग हरा-पीला दस्त होता है।
(२) यदि बच्चा दिनभर रोता है चिड़चिड़ा स्वभाव का हो गया है, जमीन पर लेटने की इच्छा करता है तथा सुस्त रहता है, तो समझना चाहिए कि सूखा रोग होने वाला है।
(३) यदि बराबर हल्का ज्वर रहता हो, विशेषत: माथा और तालु अधिक गर्म हों, तो सुखण्डी का प्रारम्भिक लक्षण समझना चाहिए। ऐसा आयुर्वेद-विशेषज्ञों का दृढ़ मत है।

कारण (Cause)

इस रोग के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं:—

१. बालशोष होने का प्रमुख कारण Calcium phosphate एवं Vitamin D की कमी है। क्योंकि परीक्षण करके देखा गया है कि स्वस्थ हालत में ६३%तक रहता है किन्तु रोगावस्था में २१%तक। साथ ही साथ सर्वविदित है कि Calcium की कमी के कारण ही अस्थियां वक्र हो जाती हैं तथा विटामिन "डी" की कमी से शरीर

का विकास नहीं हो पाता है। इसलिए विटामिन 'डी' को Growth vitamin भी कहा गया है।

२. इस रोग का दूसरा कारण अस्वच्छ वातावरण माना गया है।

३. अल्प मात्रा में पोषक पदार्थ देने के कारण प्रायः शोषरोग देखा जाता है।

४. बच्चे के खानपान का असंतुलन होना भी इस रोग का प्रमुख कारण है। अधिक खाने से हाजमा अच्छी तरह से नहीं हो पाता, जिससे दस्त होने लगते हैं। वह अपौष्टिक दूध देना प्रारम्भ करते है और बच्चा धीरे-धीरे सूखने लगता है।

५. यकृत् (Liver) की खराबी से अधिक दिनों तक कब्ज रहने से भी सूखा रोग हो जाता है।

६- उपरोक्त कारणों के अलावा बालशोष होने के कारण निम्नलिखित भी है। यथा:—

अधिक सोने से, शीतल जल से, कफकारक पदार्थ अथवा कफकारक धात्री का दूध सेवन करने से शिशुओं में कफ की वृद्धि हो जाती है। अत एव रसवाही स्रोतों का अवरोध होजाता है स्रोतों के अवरुद्ध होने से शिशु को अरुचि, प्रतिश्याय, ज्वर और कास हो जाते हैं। बच्चा सूख जाता है। मुख स्निग्ध और सफेद होजाता है। इन सब कारणों की पुष्टि हमारे महर्षि ने भी की है। यथा:—

> अत्यह्नः स्वप्नशीताम्बुश्लैष्मिकस्तन्यसेविनः ।
> शिशोः कफेन रुद्धेषु स्रोतःसु रसवाहिषु ॥
> अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते ।
> कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः ॥
>
> अ० हृ० उत्तर २। ४४-४६

७. प्रसवोपरान्त पौष्टिक पदार्थों के न मिलने से माता का दूध पौष्टिक नहीं हो पाता है। जिससे शिशु का विकास रुक जाता है, जो आगे चलकर बालशोष का रूप धारण कर लेता है।

आयुर्वेदशास्त्र के मतानुसार बालशोष मुख्यतः तीन प्रकार का होता है। जैसे कि हमारे महर्षि कश्यप का कहना है।

> क्षीरजं गर्भजं चैव तृतीयं व्याधिसम्भवम्
> फक्कत्वं त्रिविधं प्रोक्तं...................... ... ॥

१. क्षीरज २. मातृजा या गर्भज ३. व्याधिज।

(१) क्षीरज सुखण्डी—प्रायः क्षीरज सुखण्डी रोग माता के श्लैष्मिक दुष्ट स्तन्यपान करने से होता है। जैसाकि हमारे आयुर्वेदाचार्यों का कहना है। यथा—

> धात्री श्लैष्मिक दुग्धा तु फक्कदुग्धेति संज्ञिता।
> तत्क्षीरपो बहुव्याधिःकार्श्यनिष्फक्कलमाप्नुयात् ॥

(२) गर्भज सुखण्डी—जो बालक अपनी गर्भिणी माता या धाय का दूध पीता है, वह दूषित दूध के पीने से उपरोक्त व्याधि से घिर जाता है। उसे गर्भज सुखण्डी कहते हैं। यथा—

> मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
> कासाग्निसादवमथुतन्द्राकार्श्यारुचिभ्रमैः ॥
> युज्यते कोष्ठवृद्ध्या तमाहुः पारिगर्भिकम्।
> रोगं परिभवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥

३. व्याधिज सुखण्डी निम्नलिखित जीर्ण रोग के बाद होता है। यथा—

(१) आंत्रिक ज्वर की निवृत्ति के बाद।,
(२) अतीसार के बाद।
(३) कृमि होने पर।
(४) वातव्याधि के बाद।

साधारणतः व्याधिज सुखण्डी को प्राइमरी रिकेट्स समझते हैं।

चिकित्सा में ध्यान देने योग्य बातें-

औषधि व्यवस्था करते समय चिकित्सकों को निम्नलिखित तीन बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। रक्तवर्द्धक, अस्थिवर्द्धक, व पाचन औषधियों की प्रधानता रखें। साथ ही साथ समय पर होने वाले उपद्रवों पर भी विशेष ध्यान रखें कि जो प्रायः हो जाया करते हैं।

चिकित्सा-

(१) प्रवाल भस्म, सीपी कौड़ी भस्म, मुक्ताशुक्ति भस्म खिटकी भस्म, गोदन्ती भस्म, शंखभस्म, सूखी हल्दी और शुद्ध मण्डूर। प्रत्येक ६-६ माशा, ले लें। सुहागा फुला ७॥ तोला, आमलकी रस ७॥ तोले। इन सबको कूट पीसकर छानकर १-१ रत्ती की गोलियां बना लें। प्रातः साय

१-१ गोली शीत ऋतु में मधु से वर्षा ऋतु में मिश्री से और ग्रीष्म ऋतु में शर्बत कासनी से दें। इसका प्रयोग करने से सूखा रोग पर आश्चर्यजनक फायदा होता है। साथ में सूखातैल, नारायणतैल, शतावरीतैल, अथवा महालाक्षादितैल से मालिश करनी चाहिए।

(२) अरविन्दासव—यह वालकों के समस्त रोगों को नष्ट करता है। यह वल, पुष्टि, अग्नि तथा आयु को वढ़ाता है। यह ग्रहदोष एव सूखा रोग (Rickets) की सर्वोत्तम दवा है। इसको ३ माशा वरावर जल के साथ मिलाकर दिन में ३ वार पिलाना चाहिए।

(३) सूखे वच्चे, जिनका मांस सूखकर चूतड़ की खाल भी सिकुड़ गई है, रीढ़ की हड्डी धनुषाकार हो गई है यों सारा शरीर हड्डियों का ढांचा प्रतीत होता हो, ज्वर, अतीसार हो, प्यास अधिक हो, इस प्रकार के वच्चे के लिए परीक्षित योग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है—

कच्छपास्थि भस्म—(कछुए की हड्डी की भस्म में खूबकला स्वरस १ तोला, गाजवां स्वरस, घी कुमारी के गुदे के रस की भावना देकर भस्म करें।) प्रवाल भस्म, शङ्ख भस्म, मुक्ता शुक्ति भस्म, गेरू और गिलोय सत्व प्रत्येक १-१ तोला लेकर कूट पीस और छानकर अवस्थानुसार १ रत्ती से ४ रत्ती तक मधु—घृत विषम भाग में मिलाकर दिन में ३ वार दें।

(४) च्यवनप्राशावलेह—इस महौषधि में विटामिन ए डी० सी० तथा कैल्शियम व पौष्टिक तत्व सभी मौजूद रहते है। यह रसायन है। इसके सेवन से वालकों की अस्थियां मजवूत, विकसित, मस्तिष्क और मांसपेशियां निश्चय ही शक्तिशाली होती हैं। फलस्वरूप वच्चे हृष्ट-पुष्ट, उत्साही और फुर्तीले होते हैं। अत एव सूखा रोग में इसे शहद व गिलोय सत्व मिलाकर सेवन करावें तथा ऊपर से दूध पिलावें।

कश्यप के भोजन के विषय में विकल्प

१—कालेऽश्नतोऽन्नं स्वदते तुष्टिः पुष्टिश्च वर्धते। सुखेन जीर्यते न स्युः प्रतान्ता जीर्णजा गदाः।

योग्यकाल में खाया हुआ अन्न स्वाद लगता है, शरीर को सन्तुष्ट करता है पोषण की वृद्धि होती है वह सुख पूर्वक जीर्ण हो जाता है तथा बार-बार भोजन के करने तथा अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होते।

२—सात्म्यं नामाहुरौचित्यं सातत्येनोपसेवितम्। आहार जातं यद्यस्य चानु शेते स्वभावतः॥

सात्म्य का लक्षण—सात्म्य औचित्य को कहते हैं। निरन्तर सेवन किया जाता हुआ जो आहार स्वाभाविक रूप से जिसके अनुकूल होता है उसे सात्म्य कहते हैं।

३—लघूनां नाति सौहित्यं गुरूणा मल्पाशस्तथा। मात्रावदश्नतो भुक्तं सुखेन परिपच्यते॥
स्वस्थ (स्वास्थ्य) यात्राग्नि चेष्टानामविरोधि च तद्भवेत्।

लघु पदार्थों को अत्यन्त सौहित्य से अर्थात् खूब पेट भरकर नहीं खाना चाहिये तथा गुरु पदार्थों को भी अल्प मात्रा से सेवन करना चाहिये। इस प्रकार उचित मात्रा में भोजन करने वाले व्यक्ति को खाया हुआ आहार सुखपूर्वक पच जाता है तथा वह मात्रा में खाया हुआ आहार शरीर की स्वास्थ्यरूपी यात्रा, जाठराग्नि तथा शरीर की चेष्टाओं का विरोधी भी नहीं होता।

४—उष्णं हि भुक्तं स्वदते श्लेश्माणं च जयत्यपि। वातानुलोम्यं कुरुते क्षिप्रमेव च जीर्यते॥
अन्नाभिलापं लघुतामग्निदीप्ति च देहिनाम्॥

उष्ण भोजन खाया हुआ मनुष्य को स्वादिष्ट लगता है, श्लेष्मा (कफ) को शान्त करता है, वायु का अनुलोमन करता है, शीघ्र ही जीर्ण हो जाता है, अन्न में रुचि उत्पन्न करता है, शरीर में लघुता तथा अग्नि को प्रदीप्त करता है।

शिशुओं के रक्त-रोग

वैद्य श्री वागीशदत्त आयुर्वेदाचार्य (प्राप्त स्वर्णपदक) गाजियाबाद ।

प्राय: शिशुओं के रक्तरोग आधिक्येन वर्षाऋतु में ही होते हैं और प्रबल वेग से होते हैं । ग्रीष्मर्तु में प्रचण्ड सूर्य के तीव्र ताप से संतप्त समग्र भू-मण्डल का वातावरण ही उत्तप्त हो जाता है । उन कोमलाङ्गों का सम्पूर्ण शरीर ऊष्मा से प्रभावित हो जाता है जिस प्रकार वर्षा ऋतु में प्रथम वर्षा का जल तप्त भूमि पर गिरता है उस समय भूमि के अन्दर से एक प्रकार की असह्य भाप निकलती है वह ऊष्मा जिस प्रकार प्राणियों को व्यथित कर देती है ठीक उसी प्रकार शिशुओं के शरीर से वर्षा ऋतु में फोड़े फुंसियों के रूप में रक्त विकृत कर निकलती है । वर्षा ऋतु में समय-समय पर तीनों ही दोष अपना-अपना प्रभाव भिन्न-भिन्न प्रकार से उग्र रूपेण दिखलाते हैं ।

किसी को इस समय शरीर से जले हुये के सदृश छाले, और किसी को पूयपूर्ण पीत वर्ण के छाले, अन्यों को दद्रु जैसे मण्डल कण्डु सहित निकलते हैं, शुष्क कण्डु भी निकलते देखी जाती है । किसी के शरीर पर स्थूल चकत्ते जिनमें छोटे-छोटे दाने जिससे लेसदार पानी (लसीका) का स्राव होता रहता है । बालक अत्यन्त दुखी होता है और रोता है क्योंकि पीड़ा भी होती है । यहां गाजियाबाद में किसी-किसी बच्चे को अभी तक इस रोग ने पीछा नहीं छोड़ा जब कि वर्षाऋतु का प्रभाव समाप्त प्राय है ।

दिन वर्षाऋतु के ही थे । एक शिशु का हताश अभिभावक आया और यह कहकर मेरे औषधालय में बैठ गया, 'लाओ इन्हें भी देख लें' । मैंने महती उत्सुकता से उसे और उसके शिशु रोगी को देखा । मैं उनसे प्रश्न करूं कि उससे पूर्व ही वह अभिभावक बोला-गाजियाबाद के चोटी के डाक्टर और हकीम देख लिये, एक वर्ष हो गया यह खुजली ठीक नहीं हो रही सैकड़ों इंजेक्शन, कैपसूल, और लापी आदि औषधियां सेवन कराने के बाद भी रोग ज्यों का त्यों है । उस बालक का शरीर और शिर फुंसियों से पूर्ण था, शिर की दशा इतनी दयनीय थी कि देखना भी कठिन था । शिर फुंसियों से भरा हुआ था जिनसे निकला हुआ स्राव मस्तक और कपोलों को भी आर्द्र कर रहा था । बच्चा रो रहा था, खुजला रहा था । इस द्रवित कराने वाले दृश्य ने मेरे हृदय को द्रवित कर दिया । मैंने अभिभावक को अनेक प्रकार से आश्वस्त कर औषधि व्यवस्था कर दी, नमक इत्यादि और दूध दही भी बन्द करा दिये । ५ वर्ष का बालक था, रोटी आदि सरलता से खा सकता था । बेसनी रोटी मक्खन के साथ खिलाने को बतलाई । स्नानार्थ नीम के पत्तों से उबाला हुआ पानी जिसमें पत्तों का हरित वर्ण पर्याप्त आ जाये बतलाया । खाद्य औषधि और पेय औषधि क्रमश: गन्धक रसायन और मंजिष्ठादिफाण्ट दिन में तीन-तीन मात्रा । शिर पर मरिचादि तैल और शिवयमलहम लगाने के लिये दिये । शिर के बाल पहले मुंडवा दिये । इस प्रकार पथ्य व्यवस्था कर तीन दिन की औषधि दे दी ।

आत्मीयता की पावन मूर्ति वैद्य जी ने जिन कठिन परिस्थितियों में यह लेख प्रस्तुत किया है वह उनके दृढसत्व और कर्मठ व्यक्तित्व को अनायास सहज ही अंकित कर देता है । आप उरुस्तम्भ से प्रपीडित थे चार माह से इस दारुण व्याधि से ग्रसित होने पर भी २-२,४-४ लाइन प्रतिदिन लिखते रहे और २ माह में यह लेख लिखकर भेज पाये । यह तथ्य स्वयं में एक बड़ी कहानी कहा जा सकता है । आपने रक्तरोग विषयक अपने अनुभव के साथ तथैव और विच्छू विष पर शतशोऽनुभूत उपचार भी दे दिया है ।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

तीन दिन के बाद बालक आया। खुजली और स्राव अवरुद्ध हो चुका था फुंसियाँ शेष थीं। १३ दिन में बालक का सिर पूर्णरूपेण रोगमुक्त होकर स्वस्थ हो गया। तीन वर्ष हो रहे हैं आज तक पुनः यह रोग उस बालक को नहीं हुआ है। जबकि एलोपैथिक इलाज से ठीक होने पर भी दुबारा तिबारा भी हो गया था।

योग निम्न हैं—

मध्य मंजिष्ठादिपानक

भावप्रकाशोक्त मध्य मंजिष्ठादि क्वाथ का योग—मंजीठ, बावची, चकवड़ (चक्रमर्द) हल्दी, आमले, अड़ूसा (वासा) शतावर, खरैटी, (कंघी) गंगेरन (बला) गोखरू, परवल की बेल, खश, गिलोय, लालचन्दन, इन सबको बराबर लेकर क्वाथ विधि से (अर्थात् ४ तोला द्रव्य, ४० तोला द्रव (जल) चतुर्थांश शेष) क्वाथ निर्माण कर द्रव से चौगुनी खांड की एकतार की चाशनी पाक करें इस प्रकार मंजिष्ठादिपानक निर्माण कर लें। बालक की १ तोला मात्रा एक समय इस प्रकार दिन में तीन मात्रा अर्थात् तीन तोला, बड़ों को ४ तोला, मात्रा पर्याप्त है। बच्चों को दोषाधिक्य से यदि रोग हो तो २ तोला मात्रा भी हानिकर नहीं होगी।

गंधक रसायन

त्रिफला चूर्ण ४ तोला, शुद्ध गंधक २ तोला, लोहभस्म १ तोला सबको मिलाकर भांगरे के रस में भावना देकर ३ दिन घुटाई कर सुखा लें। १ माशे मात्रा बालक को ३ मात्रा दिन में मधु मक्खन के साथ, बड़ों को ४ से ५ माशे तक उपर्युक्त अनुपान से दिन में ३ बार दें।

मरिचादि तैल

कालीमिर्च, निशोथ, नागरमोथा, हरताल, (पिण्ड हरताल) मैनशिल, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, बालछड़, लालचन्दन, इन्द्रायण, कन्नेर, आक का दूध, गाय के गोबर का रस, ये प्रत्येक द्रव्य एक-एक तोला, वत्सनाम विष २ तोला सरसों का तेल ६४ तोला इन सब द्रव्यों को चौगुने जल में तथा दुगुने गोमूत्र में पकावें, इस प्रकार मरिचादि तैल को सिद्ध कर सेवन करें।

स्वनिर्मित तथा अनुभूत योग

बावची, आमाहल्दी, नीलाथोथा, गंधक समान भाग, २॥-२॥ तोला मिलित १० तोला, आधा सेर सरसों का तैल। उपर्युक्त सम्पूर्ण द्रव्यों को पीसकर कल्क (चटनी) बना लें। कढ़ाई में एक साथ तेल सहित डालकर पाक करें, तैल सिद्ध होने पर छानकर रख लें। यह तैल सब प्रकार की खुजली को ठीक करता है मेरा शतशोऽनुभूत है। कढ़ाई में से तैल निकालने के उपरान्त शेष जो बचे उस का मलहम जैसा घोटकर बना लें। यह दद्रु, विचर्चिका आदि पर बहुत अच्छा काम करता है। मैं उपर्युक्त दोनों को बर्तता हूँ। अत्युपयोगी है।

ये प्रयोग बड़ों पर भी चमत्कारिक प्रभाव करते हैं। मैं हृषीकेश से आयुर्वेद विशारद हो करके आया था। मेरे घर के पास एक व्यक्ति को दोनों घुटनों से लेकर पैरों तक एक प्रकार से कोथ (सड़न) हो रहा था, चर्म लाल उस पर छोटी बड़ी फुंसियां थीं, जिसमें से लेसदार पानी बह रहा था, चलना फिरना दुष्कर था, नितम्बों के बल सरकता था। मैंने रसरत्न समुच्चय में गंधक के वर्णन में एक योग पढ़ा था। शुद्ध गंधक ६ माशा और कालीमिर्च ६ माशे दोनों एकत्र कर तिलतैल और अपामार्ग (चिरचिटा) के स्वरस या काढ़े में अच्छी प्रकार घोटकर उस रोगी के उतने अवयव पर लगवा दिया, धूप में बैठने को कहा, जितनी देर सहन हो सका धूप में बैठा। फिर तीसरे पहर क्षुधा लगने पर तक्र के साथ भात खिलवाया, रात्रि में अग्नि का सेक भी बतलाया इस प्रकार एक मास में वह रोग मुक्त हो गया। नित्य नीम के उबले पानी से धोकर औषधि लगाने मात्र से रोग मुक्त हुआ। उस समय अधिक ज्ञान न होने के कारण खाद्य औषधि नहीं दी गई थी।

ततैया विष पर अनुभूत

पाठकों के लिये विशेष—

एक बार आसव निर्माण के लिये गुड़ बाजार से लेने गया, जैसे ही भेली उठाई लाल ततैये ने काट लिया, एक दम चीख निकल गई, दुकानदार ने तत्काल उस दंश स्थान पर गुड़ चिपका दिया। दो तीन मिनट में दर्द बन्द हो गया। सूजन थोड़ी भी नहीं हुई। मैंने फिर अपने कई बच्चों पर अनुभव किया उन पर भी फल मिला। अर्थात् विष का प्रभाव तनिक भी नहीं हुआ।

संहिता के निदान स्थान के तेरहवें अध्याय में इन शब्दों में किया गया है—

स्निग्धाः सवर्णा ग्रथिता नीरुजो मुद्गसन्निभाः ।
कफवातोत्थिता ज्ञेया वालानामजगल्लिकाः ॥

इस विवरण से अजगल्लिका रोग में वालकों के शरीर में स्निग्ध (चिकनी त्वचा के वर्ण की, गांठदार, वेदना रहित, मूंग जैसी आकृतिवाली पिडकाएं (फुड़ियां या फुंसियाँ) उत्पन्न हो जाती हैं । इनकी उत्पत्ति कफ और वात इन दो दोषों के कारण होती है । यह मात्र वाल रोग ही नहीं है वड़ों को भी देखा जा सकता है ।

वालानामिति प्रायोभावित्वादुक्तं, तेन अवालानामपि दृश्यमानाः संगच्छन्ते । ऐसा श्री कण्ठदत्त का इङ्गित वास्तविक है - क्षुद्ररोगों में इसके उल्लेख का यही मन्तव्य भी है ।

अजगल्लिका का उपर्युक्त वर्णन यह भ्रम कर देता है कि मूंग जैसी अनेक दर्द रहित जो फुंसियां वालक के शरीर में उगती हैं वे लगातार वैसी ही बनी रहती हैं । इस भ्रम को भैषज्यरत्नावलीकार के तत्राजगल्लिकां आमाम् ने निर्मूल कर दिया है । अर्थात् अजगल्लिका की आम और परिपक्व दो अवस्थाएं हो सकती हैं । आम अवस्था में ये फुंसियां कड़ी और शूल रहित होती हैं वाद में उनमें पानी तथा पूय भी पड़ सकता है । यही नहीं, ये फुंसियां सूखी और कड़ी होती हैं इनको पहले मुलायम किया जाकर उनकी चिकित्सा की जाती है-कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम् ।

अजगल्लिका शब्द पर ध्यान देने से इन फुंसियों के स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है । अज या वकरी के गले में जैसे थन लटकते ऐसे ये भी लटकती सी होती है उभरी हुई तथा गल्लिका कहने से उनकी सूक्ष्मता का ज्ञान होता है ।

अजगल्ली की आमावस्था में जलौका द्वारा रक्तनिर्हरण करा कर फिर सीमी-सोरठी मिट्ठी-यवक्षार के कल्क को प्रत्येक पिडका पर लेप कर देते हैं । फिर कटेरी के छोटे कांटे से या आलपीन से वेध देते हैं उसी से यह ठीक हो जाती हैं । नई कटेरी के कांटे के वेध पर विशेष जोर दिया गया है ।
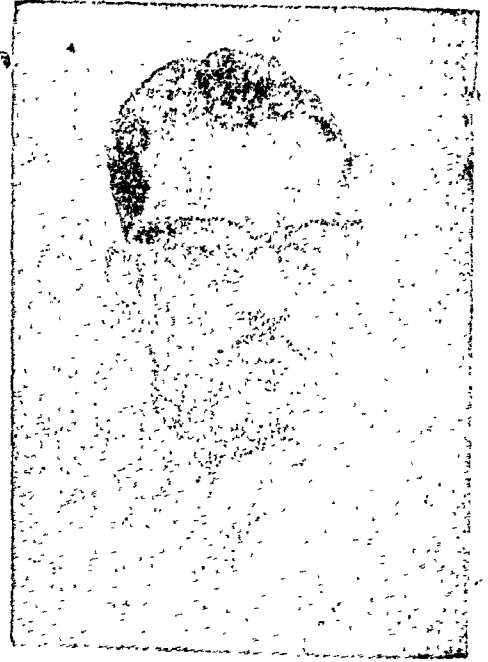
लेखक

नवीनकण्टकार्याश्च कण्टकैर्वेधमात्रतः ।
किमाश्चर्य विपच्याशु प्रशाम्यन्ति अजगल्लिकाः ॥

अड़ूसे की जड़ और इन्द्रायण की जड़ दोनों को सिल पर घिसकर उसे लेपने से भी यह दूर हो जाती है ।

और कठिन होने पर क्षार योगों से इसे गला कर उपचार करना चाहिए । स्नुहीक्षार या अपामार्ग क्षार का इस पर प्रयोग कर सकते हैं ।

अजगल्लिका एक क्षुद्र रोग है अतः इसकी आभ्यन्तरिक चिकित्सा भी क्षुद्ररोगहारक औषधों से ही की जानी चाहिए । इसके लिए रसकौमुदीकार मोहाद्रिवज्रपात रस या रसकामधेनु का हेमाद्रिरस दिया जा सकता है । दोनों का नुस्खा लगभग एक सा ही है ।

हेमाद्रि में पारद १, खर्पर १, गन्धक २, नागभस्म १, अभ्रक भस्म १, सभी को खरल में घोंट कज्जली श्लक्ष्ण बना ३ घण्टे तक मूषा में रख वालुका यन्त्र में पकाते हैं । फिर केवड़ा २०, कूठ २, निर्गुण्डी ३, सहंजन ५, पीपरामूल ७, चित्रक मूल ६, चव्य ७, वध्याककोंटकी ८, हींस ८, गजकर्णपलास २, (डोडाइन) कटेरी छोटी ३, विजौरा नींबू ४, वला १४, असगन्ध १४, घृतकुमारी १४ के काढ़ों या रसों की साथ में लिखी वार भावनाएं देकर १-१ रत्ती

की गोली बना रख लेते हैं। यह रस समस्त अर्श, अरोचक, मन्दग्नि, उन्माद, मेद रोग, गण्डमाला, अर्बुद, अपची, गलगण्ड, प्रमेह तथा मुष्क-लिङ्ग, आंख कान के समस्त रोगों तथा अजगल्लिका सहित सभी रोगों क्षुद्ररोगों को ऐसे नष्ट कर देता है जैसे सर्पों को गरुड़।—भुक्तो माषो निहन्त्याशु गरुडः पन्नगानिव। माषे की मात्रा ययस्कों की है। बच्चों को आयु के अनुसार १ से ४ रत्ती तक दे सकते हैं।

३—अहिपूतना दूसरा क्षुद्ररोग है जो बालरोग ही है इसके सम्बन्ध में सुश्रुत संहिता में लिखा है—

> शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत्।
> स्विन्ने वाऽस्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा॥
> कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते।
> एकीभूतं व्रणो घोरं तं विद्यादहिपूतनम्॥

अहिपूतना विषयक उपर्युक्त विवरण के अध्ययन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि आज के गवेषक चिकित्सकों की परम्परा का ही यथावत् स्वरूप प्राचीन भारत में प्रचलित था। रोगी का प्रत्यक्ष दर्शन करना। अनेक उसी प्रकार के रोगियों का विधिवत् अध्ययन कर रोग चित्र को शब्दों में प्रस्तुत करना। रोग चित्र का सम्बन्ध दोषदुष्टि के साथ जोड़ना। इस रोग में माता या धात्री अथवा परिचारिका की लापरवाही प्रत्यक्ष कारण बतलाया गया है। बच्चा जब कपड़ों में मल मूत्र त्याग कर लेता है तभी उसके गुद तथा मल से सने भागों को पोंछना और धोना चाहिए। जब इन अपान क्षेत्रों (नितम्ब, गुद, भग, गुद-कुन्दर स्थान) की स्वच्छता का ध्यान नहीं रखा जाता तब इसी प्रकार गर्मियों में जब बच्चे को इन भागों में पसीना खूब आता है और वह पसीना वहीं सूख जाता है और ये क्षेत्र अशुद्ध और अस्वच्छ हो जाते हैं यदि समय समय पर बालक को स्नान न कराया जाय या इन भागों को धोकर साफ न किया जावे तो वहां रक्त और कफ के कोप से खुजली (कण्डू) पैदा हो जाती है। खुजली से अथवा खुजाने से वहां स्फोट (पिडका) उत्पन्न हो जाते हैं जिनमें से स्राव भी निकलता है। ये स्फोट थोड़े दिन बाद एक दूसरे से चिपक कर पूरे क्षेत्र को एक कर देते और स्राव तथा कण्डूयुक्त बना देते हैं।

भोज ने केवल मात्र अपान क्षेत्र की स्थानिक अस्वच्छता को ही अहिपूतना का कारण न मान कर दुष्ट स्तन्य-पान या कण्टैमीनेटेड दूध के पीने को भी मल के न धोने के साथ कारण माना है :—

> दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च।
> कण्डूदाहरुजावद्भिः पिटकैश्च समाचिता॥
> सम्भवन्ति यथादोषं दारुणा ह्यहिपूतना॥

कारण के अतिरिक्त उसने केवल कण्डू ही नहीं रुजा और दाहयुक्त पिटकाओं का भी उल्लेख किया है। उसने रक्त और कफ को इस रोग का उत्पादक कारण न मान कर तीनों दोषों से ही इसकी उत्पत्ति स्वीकार की है। कफ से कण्डू, पित्त से दाह तथा वात से शूल या रुजा वाली अहिपूतना की कल्पना की है। दोनों ने इस शिशु त्वग्रोग को घोर अथवा दारुण बतलाया है।

आधुनिक विद्वान् अहिपूतना को नैपकिन रैश कहते हैं। इसका कारण अमोनियां के द्वारा बच्चे के अपानक्षेत्र की त्वचा का उचलना या निस्त्वचन माना जाता है। उनका कहना है कि मूत्र में यूरिया होता है। यूरिया पर यूरियेज नामक ऐंजाइम की क्रिया होने से यूरिया अमोनियां में बदल जाता है। आयुर्वेद में मलमूत्र दोनों का उल्लेख महत्वपूर्ण है। मूत्र में यूरिया होता है। यूरियेज का निर्माण कोलन (बृहदन्त्र) में अल्कलीजीनिस अमोनिया-जीनिस से होता है। इस कारण मल और मूत्र दोनों के मिलने से वह वातावरण बन जाता है जो अमोनिया तैयार करता है। राजा भोज ने जो दुष्टस्तन्यपान को इस प्रकरण में शामिल किया है वह भी नैपकिन रैश की धारणा में भाग रखता है। अमोनियां तभी बनती है जब माध्यम क्षार-प्रतिक्रिया वाला हो। यदि बच्चा मां का दूध पीता है तब महास्रोत का वातावरण आम्लिक होता है।। आम्लिक वातावरण में अल्कलीजीनिस अमोनिया-जीनिस की उत्पत्ति ठीक से नहीं होती। पर यदि बच्चे को ऊपर का दूध पिलाया जावे और वह अशुद्ध हो तो क्षारीय प्रतिक्रिया आंतों में पैदा होकर अल्कली अमोनिया पैदा कर देती है जो यूरियेज को जन्म देती है।

नैपकिन रैश को अमोनियाजन्य त्वग्रोग या डर्मेटाइटिस की उपद्रविका भी कहते हैं। यह रोग इस शिशु को कभी

न कभी होता हुआ देखा जाता है। तब तक जब तक बच्चे को नैपकिन पर रखा जाता है और वह स्वतः भूमि या शौचालय पर मलत्याग करना नहीं सीख जाता। केवल उन बड़े बालकों में भी यह रोग देखा जाता है जिनका रात में सोते-सोते मूत्र निकल जाता है। जिन बच्चों को अधिक दस्त हो जाते हैं और मल में यूरियेज निर्माणकारी अल्कलीजीनिस अल्क.अमो. हो तो, या जिनकी नैपकिनें गीली और गन्दी रहती हैं या जिनकी नैपकिनें साबुन या क्षार या डिटर्जेंट से इस प्रकार धोई जाती हैं कि उनमें इसका कुछ अंश रह जावे। वह बार-बार बच्चे की कोमल चमड़ी को क्षारीय करता रहता है जो मूत्र के संसर्ग से खुजली पैदा करके रोगोत्पत्ति कर सकती है।

जो स्फोट या पिडिकाएं अहिपूतना में बनती हैं वे अंगार जैसी लाल होती हैं जो ठीक होने पर भूसी छोड़ती हैं। अधिक दारुण अवस्था में बड़े-बड़े फफोले बन जाते हैं जो फूटकर सारी गुदक्षेत्रीय त्वचा और नितम्बों को लाल कर देते हैं। कभी-कभी पीठ तक रोग देखा जाता है यदि पीठ भी गीली रहती हो तो।

बालक स्वस्थ हो और माता या धात्री को यह ज्ञान हो कि गीली गन्दी नैपकिन इसे उत्पन्न करती है तथा बच्चे की स्वच्छता का बराबर ध्यान दिया जाता रहे तो रोग जल्दी ठीक हो जाता है। यह रोग मोड़ों और पर्तों के अन्दर वाले भाग में नहीं हुआ करता।

इसकी चिकित्सा भैषज्यरत्नावलीकार के मत में निम्न श्लोकों में दी गई है:—

१. अहिपूतनके धात्र्याः सर्वं स्तन्यं विशोधयेत्।
त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धावनं सदा॥
२. करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥

इन श्लोकों में स्तन्यदोष को दूर करने के लिए इङ्गित है व्रणों को धोने के लिए व्यवस्था है। करञ्ज, त्रिफला और तिक्तरसयुक्त द्रव्य चिराइता, पटोलपत्र, कटुका आदि से सिद्ध घृत का प्रयोग करना दुग्ध की शुद्धि करता है। त्रिफला और कत्थे के क्वाथ से व्रणों को धोना तथा पान और लेप के लिए रसौत का महत्व विशेष बतलाया गया है। रसौत और जल से एक प्रकार का ऐण्टीसैप्टिक लोशन बना लिया जाता है जिसे लगाने और पीने से अहिपूतना ठीक हो जाती है।

बच्चे को मलमूत्र त्याग की ऐसी आदत डालनी चाहिए कि उसके नीचे का नैपकिन सूखा और स्वच्छ रहे। नैपकिन को साबुन या सोडा से धोकर फिर गरम पानी में अच्छी तरह उबालना चाहिए ताकि उसमें लेशमात्र भी क्षारीयता न रह सके। नैपकिन यदि बड़ी हो तो उसे मुलायम बनाना चाहिए उसके नीचे कोई कोमल कपड़ा लगाना चाहिए।

जब चमड़ी से स्राव निकले तो बोरिक अम्ल (टंकण), सफेदा जस्त और सल्फानीलैमाइड पाउडर या केवल टाल्कम पाउडर और टंकण मिलाकर सूखा बुरकते हैं।

ऊपर जो सिद्ध तैल लिखा है उसे भी अहिपूतना के व्रणों पर चुपड़ सकते हैं।

४. **महापद्मविसर्प**—शिशुओं का तीसरा रोग यह विसर्प है जो नवजात शिशु में होता है और जिसे प्राणनाशक ही माना जाता है:—

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः।
पद्मवर्णो महापद्मनामा दोषत्रयोद्भवः॥
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत्।

यह विसर्प पद्मवर्ण का या कन्दियालाल होता है। यह शिशु के शरीर में आई हुई खरोंच के कारण या नाभिनाल कर्तन के समय लगे उपसर्ग के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। बस्तिशीर्षज या बाह्यगुह्यांगों पर भी यह देखा जाता है। इसमें लालरंग के विसर्पणशील उभरे हुए भयंकर विसर्प एक स्थान से दूसरे स्थान को फैलते रहते हैं। यही शंखों से हृदय और हृदय से गुद प्रदेश में फैलने की क्रिया ऊपर लिखी गई है। विसर्प ऐण्टीसैप्टिक औषधों की उत्पत्ति से पूर्व का रोग है। आजकल किसी भी व्रण या खरोंच के उपचार में जो सावधानियां बरती जाने लगी हैं तब से यह भयानक व्याधि तिरोहित हो चुकी है। शिशुओं का विसर्प क्षतज, मर्मज तथा त्रिदोषज होता है तथा इसे माधवकर ने सर्वथा असाध्य स्वीकार किया है:—

१. सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति।
— माधवकर।

—शेषांश पृष्ठ ३४७ पर

हो जाता है। किसी रोगी में ४२ दिन में भी उतरता है। इस ज्वर की आयुर्वेदिक और युनानी चिकित्सा बहुत बढ़िया थी, मंथर के विष को निकालने का यत्न किया जाता था मंथर ज्वर को एक दम तोड़ा न जाता था। मंथरज्वर के रोगी की शैय्या पर खूबकलां बिछाई जाती थी कि मंथर ज्वर के दाने दबने न पायें। लाहौर में बच्छो वाली में एक मूला पंसारी था, मंथरज्वर से पीड़ित बच्चे उसके यहां बहुत अधिक जाते थे। वह खूबकलां का चूर्ण, शर्बत बनफशा, अर्क कासनी और अर्क गिलोय के साथ देता था, ज्वर उतर जाता था और कोई भी उपद्रव नहीं होता था और न ही ज्वर का ताप बढ़ता और न ज्वर से घबराहट बढ़ती थी। वह वक्त अच्छा था। मंथरज्वर उतरने के लिए क्लोरोमाइसिटिन का व्यवहार न होता था।

मंथरज्वर का विष रक्त में लीन होकर जीवन को बर्बाद कर देती है।

बीबी बलबीर कौर जिला फिरोजपुर में स्कूल में पढ़ाती थी, आयु० ३० वर्ष थी, एक टांग कटी हुई थी और वह अविवाहित थी। उसे २ वर्ष से एक मूर्च्छा का दौरा आता था वह सुनती सब थी मगर गति न कर सकती थी। उसका भाई उसे चिकित्सा के लिए दिल्ली मेरे पास लाया। उसे दो वर्ष पूर्व मंथरज्वर हुआ था और टीके लगने के बाद ज्वर उतर गया मगर यह दौरा चालू हो गया, जहां टीके लगे थे वह स्थान उभरा हुआ था, और टीके का निशान वहां पर था, तभी हमें आयुर्वेद के महान् पण्डित और सफल लेखक श्री मोहरसिंह जी आर्य के एक लेख का स्मरण हो आया कि कभी-कभी टीका की दवाई रक्त में न फैलकर अपने स्थान पर रह जाती है और मंथर ज्वर के

कविराज सहगल बहुत रोचक ढंग से नई-नई खोजों से पूर्ण लेख लिखने में सिद्ध हस्त हैं। वे छोटे से छोटे लेख को भी पढ़ते हैं और उसका उपयोग पाठकों की ज्ञानाभिवृद्धि के लिए करते हैं। यह लेख इन सभी विशेषताओं से परिपूर्ण है। आपने अंग्रेजी मन्थरज्वरहर औषधि के बारे में उपद्रवों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। सारा लेख परमोपयोगी तथ्यों से ओतप्रोत है इस कारण इसे सर्व प्रथम स्थान पर इस उपखण्ड में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है पाठकगण उनके अनुभवों से ठोस लाभ उठावेंगे। विशेषकर उनके द्वारा बतलाये गये हरताल भस्म बनाने की विधियों को जानकर और भस्म बनाकर। —र० प्र० त्रिवेदी

क्लोरोमाइसिटिन एक चमत्कारिक औषधि है। इंजेक्शन अथवा कैपसूल से दी जाती है। ज्वर को तुरन्त उतार देती है। मगर जिन्हें माफिक न पड़े उन्हें मस्तिष्क और हृदय के रोग हो जाते हैं। अक्सर मंथरज्वर में क्लोरोमाइसिटिन प्रयोग से बच्चों को पोलियो और पक्षाघात हो जाते हैं। पैनसिलीन से एलर्जी और मृत्यु होती है सभी जानते हैं। ऐण्टीबायोटिक्स और सल्फा ड्रग्ज ने संसार के लोगों को असाध्य रोगों में फंसा दिया है। यह लफ्जों में टैरामाइसीन की कहना है। बार-बार मंथरज्वर आक्रमण करता है। दैहिक रोग नाशक शक्ति का ह्रास हो जाता है। व्यक्ति नित्य का रोगी हो जाता है। क्लोरोमाइसिटिन बेशक शीघ्र ज्वर को उतार देती है परन्तु

रोगी को पोलियो व वातसंस्थान का कोई रोग पकड़ लेता है। खैर इसके साथ करेले रस ने चमत्कार किया। हम उसे अन्य चिकित्सा के साथ-साथ २००ग्राम करेले का स्वरस रोजाना पिलाते इससे उसे वमन होता, कुछ दिनों में वमन द्वारा उसके रक्त का विष निकल गया। फिर उसे हृदय दौर्बल्य ने पकड़ लिया, खमीरा, आबरेशम जवाहर मोहरा बृहत् वात चिन्तामणि रस आदि के सेवन से उसे पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हो गया बीबी बलबीर कौर को अगर टीके न लगते तो उसे अनेकों कष्ट न होते।

देशी चिकित्सा में भले ही टाइम ज्यादा लगता है परन्तु परिणाम इसका बहुत बढ़िया है। आज से ४० वर्ष पूर्व लाहौर से बीस मील दूर एक गांव में रहने वाले एक मित्र

ने हमसे कहा कि हमारे गांव में एक चमार के पास श्वेत रज्जु की एक ऐसी दवा है कि उसके खाने से मंथरज्वर के दाने खुलकर निकल आते हैं और ज्वर उतर जाता है। गांव से पचास मील की दूरी से भी लोग इस दवा के लिए इसके पास आते हैं। हमने उसकी मात्रा पूछी और बता दिया कि यह कच्छपास्थि भस्म है। उसने हमारे बताने पर कच्छप अस्थि भस्म बनाकर रखली और दो वर्षों में ही एक प्रसिद्ध हकीम बन गया। अब जब कच्छप अस्थि का वर्णन आ ही गया है तो हम पाठकों का ध्यान धन्वन्तरि के सफल सिद्ध प्रयोगांक के पृष्ठ २५४ पर छपे डा० गजेन्द्रसिंह छोंकर के मंथरचिकित्सा के एक योग को उद्धृत करते हैं।

मन्थरज्वरहर योग—

हींग बिना भुनी, शिलाजीत शुद्ध, लौंग, कच्छप खोपड़ी, बड़ी इलायची के दाने, नारियल की जटा, तुलसी पत्र, पाषाणभेद तथा खशखश के दाने सब १-१ तोला लेकर गोबर के रस की तीन भावना दें गोली १-१ रत्ती की बना छाया में सुखा लें।

सेवन विधि—

गरम जल अथवा गोबर के रस से दिन में ४ बार सेवन करावें। उपद्रव सहित मंथरज्वर को अति शीघ्र लाभ होगा।

हमारे पिता गब्दत उल इतब्बा स्वर्गीय हकीम भवानीदास जी का कहना था कि हड़ताल वर्किया भस्म मंथर ज्वर की सर्वश्रेष्ठ औषधि है। वह गोदन्ती २ रत्ती, अभ्रक १ रत्ती, हरताल वर्कियो भस्म, ½ रत्ती सत्व गिलोय ४ रत्ती प्रवाल भस्म १ रत्ती मिलाकर दिन में ऐसी ४ पुड़ियां गिलोय और तुलसी के क्वाथ से दिया करते थे। कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि लाभ नहीं हुआ हो। ज्वर एकदम से नहीं धीरे-धीरे और बिना उपद्रव उतर जाता था, हमने भी अपने जीवन में आजतक इसी योग का प्रयोग किया है। अब हम हड़ताल भस्म की बात करते हैं और वह भी दो लफ्जों में, पेठे के रस अथवा चूने के पानी में दोलायन्त्र विधि द्वारा हड़ताल की पोटली को ३ घन्टा पकाने से वह शुद्ध हो जाती है। आयुर्वेदिक योगों में हड़ताल भस्म नहीं शु. हड़ताल का प्रयोग होता है पुराने चिकित्सक हड़ताल भस्म का प्रयोग करते हैं।

हड़ताल भस्म—

(१) शुद्ध हड़ताल १ तोला, पुनर्नवा स्वरस में खरल कर टिकिया बनावें। एक कड़ाही में पुनर्नवा की राख एक छ० बिछाकर उस पर टिकिया रखदें। उसके ऊपर पुनर्नवा राख डेढ़ पाव और डाल दें। नीचे अग्नि जलावें। जहां से धुवां उठे उस पर और पुनर्नवा राख डालें। दो घन्टे अग्नि देकर निकाल लें। भस्म तैयार है। इसी विधि से पीपल की राख के दाब में हड़ताल भस्म तैयार होती है। सुहागा खिले के मध्य में रख एक हंडिया में बन्द कर ३ पाव उपलों की आग देने से भी बन जाती है। सोड़ा बाई कार्ब के मध्य रख हंडियां में बन्द कर १ सेर उपलों की आग दी जाती है। श्वेत प्याज में खरल कर ½ सेर अमरबेल के लुगदा (पिसी हुई दवा के गोले में) में रखकर हांडी में बन्द कर २ सेर उपलों की आग देते हैं।

स्वर्गीय डा० ताराचन्द जी नैयर की डायरी में लिखी हड़ताल भस्म विधि हमें पसन्द है। इसमें हड़ताल उड़ती नहीं और काम भी ठीक देती है हम लगातार तीन वर्षो से इस विधि द्वारा हड़ताल भस्म बनाकर उसका प्रयोग कर रहे हैं। विधि इस प्रकार है-पहले हड़ताल को शुद्ध कर लीजिये। हड़ताल वर्किया १ तोला हरी लाल मिर्च ७ तोला, मिर्च का लुगदा बनाकर, उसमें हड़ताल की डली रख दें और इसे शकोरों में बन्द करदें। कपड़ मिट्टी करके एक सेर उपलों की बिना शोले की आग दें, भस्म पीतल के वर्ण की होगी। (यह श्वेत या काली नहीं बनती) इसे पीसकर रख लीजिये; गुण—ज्वर, कास, श्वास, नजला, रक्तविकार, त्वचा के रोग, प्रसूतज्वर, वात रोग गर्भाशय विकार, आतशक, वातरक्त, भगन्दर, राजयक्ष्मा, नामर्दी, हीन रक्तदाब, मन्दाग्निनाशक है, रक्त वीर्य पोषक है।

नोट—कुछ लोग समझते है कि रसमानिक्य और हड़ताल भस्म के गुणों में समानता है यह भ्रम है। हड़ताल भस्म के गुण हड़ताल भस्म में हैं वह रस मानिक्य में नहीं बाल मंथरज्वर में बेखटके अन्य औषधियों के साथ हड़ताल भस्म का प्रयोग कीजिये। यह मंथरज्वर की दो लफ्जों में कहानी है।

शिशु शय्यामूत्रता

या

बाल उदकमेह

आयुर्विज्ञान विषयक लेख लिखने में सिद्धहस्त
श्री वैद्य जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव
अरौल, कानपुर।

✡

परिचय—रात्रि के समय बालक या बालिका निद्रावस्था में अपनी शय्या पर मूत्र त्याग करते हैं इसे शय्या मूत्रता नामक रोग कहते हैं। प्राय: २ वर्ष बाद शिशु शय्या पर मूत्रत्याग करना बन्द कर देते हैं। यदि वे ३-४ वर्ष के बाद भी बिस्तर पर पेशाब करना बन्द न करें तो यह रोग माना जाता है। प्राप्तवयस्का कुमारियां भी १-२ प्रतिशत शय्या मूत्र करती हैं। माता कही जाने वाली नारी भी हजार में १ इस रोग से ग्रसित हो सकती हैं। यह रोग बालिकाओं और बालकों का १:३ के अनुपात से पाया जाता है। जिनके अभिभावक आरम्भ से ही सजग रहते हैं और जिनके रहन-सहन पालन-पोषण का स्तर ऊंचा है उन घरों में यह रोग कम पाया जाता है। अनेक बार यह रोग बिना चिकित्सा के भी ठीक होजाता है। गरीब मां-बाप, मजदूर, अशिक्षित घरों में यह रोग प्राय: पाया जाता है।

कारण—

१. अशिक्षा—अभिभावक पर्याप्त शिक्षित न होने के कारण शिशुओं को समय पर मलमूत्र त्याग करने का अभ्यास नहीं डलवाते और कभी-कभी मूत्रत्याग करने के लिए कहते भी हैं तो उपेक्षापूर्वक डाट फटकार देते हैं जिससे बालक के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उसके मन में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है। शिशु चिन्तित शोकग्रस्त एवं मौन रहता है। रात्रि में देर तक उसे निद्रा नहीं आती और जब देरी से नींद आती है तब शय्यामूत्र त्याग करता है। प्राय: अशिक्षित या अपर्याप्त शिक्षित अभिभावकों को शिशु-मनोविज्ञान का ज्ञान नहीं होता तो बाल स्वभाव को नहीं जानते अथवा जीवन की कठिन परिस्थितियों के कारण अभिभावकों के मन में कुण्ठाएं होती हैं जिनके कारण वे शिशुओं को सम्यक् प्रेम पूर्वक प्रेरणाएं नहीं दे पाते अतः माता पिता की असावधानी से शिशुओं को अन्य भी रोग हो जाते हैं। अभिभावकों को इसका ध्यान रखना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक कारण—संत्रास, अति संकोच शीलता, चिन्ता, भीति, लज्जा, उपहास-भीति, प्रतिस्पर्द्धा, असुरक्षा की चिन्ता, माता पिता या अभिभावकों की कठोरता, अनाथावस्था, मातृहीनता, व्यवसायहीनता, क्रोधी स्वभाव आदि अनेक कारण हो सकते हैं जिनके कारण शिशु और नवयुवक उक्त रोग से ग्रसित हो सकता है।

शारीरिक रोग—१. निरुद्धप्रकश, २. शिश्नशोथ, ३. अश्मरी, ४. कोष्ठबद्धता, ५. आन्त्रकृमि, ६. भगकण्डु, ७. भगशोथ, ८. वृक्कशोथ, ९. शिश्नावरण में गूथ-संचय, १०. वृषणकच्छू, ११. अनूर्जता, १२. सुषुम्णाकाण्ड विकृति, १३. गलशुण्डिशोथ, १४. उदरशूल, १५. आध्मान १६ चुल्लिकाग्रन्थि के स्राव की न्यूनता, १७. अपस्मार, १८. मलाशयकृमि, १९. मूत्राशयशोथ, २०. मूत्राशय संकोच आदि में से १-२ कारण भी हो सकते हैं २१. शिशु खेल में अधिक लीन रहने के कारण थक जाता है और रात्रि में किसी कारण से यदि निद्रा भी देर से आई तो शिशु शय्या पर मूत्रत्याग कर देता है। २२. मूत्रेन्द्रिय की अन्य विकृतियां भी हो सकती है। २३. प्रगाढ़निद्रा, २४. मधुमेह, २५. उदकमेह, २६. मूत्राशय के अन्य रोग आदि।

आदरणीय श्रीवास्तव जी ने एक ऐसे विषय पर लेखनी उठाई है जो आज भी परम दुश्चिकित्स्य माना जाता है। अनेक बालक बालिकाएं ही नहीं कई वयस्क भी शय्यामूत्रता के कष्ट से बराबर पीड़ित रहते रहे हैं। उन्होंने कई उपाय और अच्छे योग इस व्याधि के निराकरणार्थ दिये हैं जिन्हें पाठकगण लाभकर पायेंगे।

—गो० श० गर्ग

बालातिसार और मेरी सफल चिकित्सा

ले०—डा० महेश्वर प्रसाद उमाशंकर एवं लेडी डाक्टर शशि उमादेवी एम. हास्पीटल
मंगलगढ़ (समस्तीपुर)

आजकल समस्तीपुर का नाम पढ़ कर व्यक्ति चौंक जाता और उस हृदय विदारक भयंकर बम कांड की याद करके आहत हो जाता है जिसने बिहार के कई सुपुत्रों को उठा लिया वहीं समीपस्थ मंगलगढ़ में जनता जनार्दन की सेवा में स्वनामधन्य डा० दम्पति रोगनिर्मूलन के पवित्र कार्य में संलग्न रहते हैं। इन्हीं दोनों ने बाल अतीसार जैसे व्यावहारिक विषय पर यह लेख लिखकर भेजा है। दोनों ही धन्वन्तरि कार्यालय के प्रति और सुधानिधि परिवार के प्रति विशेष स्नेह रखते हैं। आपका लेखरूपी आशीर्वाद अवश्य ही पाठक वृन्द को पसन्द आयेगा। —गो. श. गर्ग

नन्हें शिशुओं या बड़े बच्चों का अतीसार चिकित्सकों के लिए एक उलझनपूर्ण समस्या है। बहुत से चिकित्सक महोदय तो इस दुष्ट रोग को रोकने में इतने निराश हो जाते हैं कि विवश होकर वे अहिफेन मिश्रित औषधि का बिना विचारे आवेश में आकर प्रयोग कर बैठते हैं। किन्तु जब इससे अत्यधिक हानि होती है तो हाय मल-मल कर पछताते हैं। नीचे इस बालातीसार रोग के कारण, उत्पत्ति, पूर्वरूप, लक्षण एवं उनकी सफल चिकित्सा पर प्रकाश डालेंगे जिनसे पाठकों को अभूतपूर्व लाभ प्राप्त होगा।

कारण—दूध की मलाई जैसे गरिष्ठ पदार्थ, तेल, अधिक नमक, चिकनाई वाले पदार्थों का बच्चे द्वारा अधिक सेवन, बिना पचे बारम्बार दुग्धपान या भोजन करना, दूध पिलाने वाली मां या परिचारिका को अजीर्ण, संग्रहणी या तीव्र अतीसार से ग्रसित रहना तथा उसका प्रभाव दूध में आ जाना, विषम भोजन, बच्चों के पेट में कृमि हो जाना, दूषित जल का सेवन करना, चिड़चिड़ेपन के कारण मन ही मन बच्चे का क्रोधित रहना, क्षुब्ध रहना या अन्य कारणों से अतीसार रोग हो जाता है।

उत्पत्ति की रूपरेखा—आंतों की भीतरी दीवाल के ऊपर श्लेष्मा की पतली कला (Membrane) है जिससे निरन्तर कई प्रकार के पाचक विकरें (Digestive enzymes) चूते रहते हैं। जब खाद्य पदार्थ आंतों में जाते हैं तो ये ही पाचक विकरें उन्हें पचाती हैं तथा पचे अन्न रस का शोषण भी करती हैं। किन्तु जब किसी कारणवश उस आन्त्रकला की रसशोषण की शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा विकृत हुए जलतत्व जब अधिक बढ़ जाते हैं तो वह पाचक विकरों को पतला कर देती है जिससे जठराग्नि दुर्बल पड़ जाती है। यही विकृत जल वात तत्व द्वारा उत्प्रेरित होकर मल के साथ मिलकर बाहर गुदमार्ग से प्रवाहित होने लगता है। यह प्रक्रिया बारम्बार होती है।

भेद—बालातीसार वातज, पित्तज, रक्तज, कफज,

त्रिदोषज और आमज ये कुल छः प्रकार के हैं ।

पूर्वरूप–अतीसार के पैदा होने से पहले के बच्चे हार्दिक प्रदेश, नाभि, गुदा, उदर और कुक्षि में सूचिका चुभने जैसी पीड़ा हुआ करती है । समस्त शरीर सुस्त और ढीला-ढाला सा प्रतीत होता है । अपान वायु बहुत कम निकलती है । प्रायः मलावरोध तथा पेट में अफरा रहता है । खाया हुआ दूध या भोज्य पदार्थ नहीं पच पाता । पेट के अन्दर 'गड़ गड़' शब्द करता रहता है ।

(१) वातज अतीसार–इस रोग में मल झागों से परिपूर्ण तथा शुष्क रहता है । यदा-कदा मल में आमरस मिला रहता है । उदर में वेदना बारम्बार होती है । बच्चा पेट पर हाथ रखकर खूब रोता है । हिलाने-डुलाने एवं गोद में लेकर खड़ा होने से चुप रहता है ।

(२) पित्तज अतीसार—इस रोग में दस्त पीले रंग का यकृत् विकार होने की दशा में हरा नीला या कुछ गुलाबी रंग लिए हुए होता है । बारम्बार प्यास लगती है तथा रोगी प्रायः मूर्च्छित सा रहता है । समस्त शरीर में दाह प्रतीत होता है । बच्चे को गुदपाक हो जाता है । गुदमार्ग का पक जाना पित्तज अतीसार का मुख्य लक्षण है । कच्चे पित्त की उपस्थिति होने पर दस्त का रंग नीला या काला होता है और दस्त से बहुत दुर्गन्ध निकलती रहती है जिससे घृणा होती है । किन्तु जब पक्व पित्त की उपस्थिति रहती है तो दस्त का रंग पीला होता है ।

(३) रक्तातीसार—पित्तज अतीसार ही दूषित होकर रक्तातीसार में बदल जाता है । इस में रक्त अधिक मात्रा में गुदमार्ग से आने लगता है । शौच करते समय पेट में मरोड़ और ऐंठन होने से पीड़ा होती है जिससे बच्चा बहुत तड़प-तड़प कर रोने लग जाता है ।

(४) कफज अतीसार— इस प्रकार के दस्तों में मल सफेद गाढ़ा और श्लेष्मा से परिपूर्ण बुरी गन्ध वाला और ठन्डा हुआ करता है । बच्चा यदा-कदा रोमाञ्चित हो जाता है, नींद और आलस्य काफी सताते हैं तथा बच्चे को भोजन से अरुचि हो जाती है ।

(५) त्रिदोषज अतीसार—इसमें सूअर की चर्बी जैसे बहुत चिकने या मांस के धोवन जैसे वर्ण वाले तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त दस्त होते हैं ।

(६) आमज अतीसार–जब बच्चा द्वारा पिया हुआ दूध या खाद्य पदार्थ नहीं पचता तब अपचनजन्य दोष कुपित होकर कोष्ठ में धातुओं और मलों को प्रकुपित करके दोषों के अनुकूल विविध वर्ण वाले एवं शूल से युक्त मलको बारम्बार बाहर निष्कासित करता है । इस रोग में बड़ी कठिनाई से ऐंठन के साथ अल्प मात्रा में मल निकलता है । मल प्रायः कच्चा ही रहता है । आमाजीर्ण के कारण दस्त होने से ऐंठन होती है और मल आंत में ऐसा चिपक जाता है कि जोर लगाने पर भी नहीं निकलता और वायु ही अनुलोमन होकर निकल पाती है । अतः हर बार दर्द और ऐंठन होती रहती है । मल बहुत दुर्गन्धित, आम से युक्त और चिपचिपाहट वाला होता है ।

चिकित्सा सिद्धान्त–

अतीसार के कारणों पर विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए । अतीसार विशेषकर अजीर्ण उत्तेजक पदार्थों के अधिक सेवन का कारण होता है । यदि नन्हा शिशु है तो ६ से १२ घंटा, ७ वर्ष के बच्चे को १८ से ४८ तथा अधिक उम्र के बच्चे को २४ से ६० घंटे उपवास कराना चाहिए तथा पाचन औषधियों का सेवन कराकर आम का पाचन कराना चाहिए, छोटे बच्चे को अनाज भी चिकित्सा क्रम में एक दम नहीं देना चाहिए । इसके अनन्तर यदि बच्चोंको अधिक प्यास लगे तो नागरमोथा एवं सुगन्धबाला से पकाया हुआ जल ही ठन्डा करके एक-एक चम्मच पीने को देना चाहिए । यदि उपवास के बाद भूख लगे तो बारीक कपड़े से छना हुआ मांड, पेया, अरारोट, फल बार्ली, अनार या सन्तरे का रस, नारियल का जल, दही की लस्सी नीबू और मिश्री का शर्बत, थोड़ी थोड़ी मात्रा में दिये जाने चाहिए ।

अनुभूत योग–

(१) सर्व अतीसारनाशी वटी—कुटज छाल ४ भाग, इन्द्रायन २ भाग, बालबिल्व गूदा २ भाग, मोचरस २ भाग, मागेरी पत्र २ भाग, सोंठ १ भाग, काली मिर्च १ भाग, छोटी पिप्पली १ भाग, ईसबगोल की भूसी २ भाग, नागरमोथा १ भाग, अफीम १ भाग, सफेद जीरा १ भाग

सौंफ चूर्ण १ भाग, छोटी इलायची के दाने आधा भाग।

निर्माण विधि---इनमें से काष्ठौषधियों को सर्व प्रथम कपड़छन चूर्ण कर फिर शेष द्रव्यों को मिला देवें। पश्चात् कुटज छाल के काढ़े से भावना देकर दृढ़ हाथों से खरल करके मधु से २-२ रत्ती की गोलियां बनाकर वायु में भली-भांति सुखाकर कांचडाटयुक्त शीशी में रख देवें। प्रयोग विधि—आधी से दो गोली मधु से प्रातः सायं, दोपहर एवं रात्रि को खिलावें।

(२) **सर्व अतीसारनाशी पानक**---उपर्युक्त औषधियों को जौ कुट करके इससे चौगुने जल में २४ घंटे भिगोकर छोड़ दें। तत्पश्चात् इसका क्वाथ कर आधा जल शेष रहने पर उतारकर दृढ़ हाथों से द्रव्यों को खूब मसलकर मिला देवें। तब पुनः क्वाथ करें जिससे आधा जल शेष रहे। अब इसे छानकर इसमें बराबर की मात्रा में मधु मिला देवें। इसको कांच डाट युक्तकांच शीशी में बन्दकर अन्धेरे में सुरक्षित रख देवें अथवा एक महीने तक जमीन में गड्डे में बन्दकर देवें। प्रयोग विधि—एक से दो छोटे चम्मच दवा ६-६ या आवश्यकता पड़ने पर ४-४ या ३-३ घंटे पर पिलायें।

(३) **सर्व अतीसार नाशी कैपसूल**—कुटज छाल घनसत्व, बालबिल्व गूदा का घनसत्व, अतीस मूल घनसत्व, नागरमोया घनसत्व, सोंठ घनसत्व, चांगेरीपत्र घनसत्व, मोचरस घनसत्व, सब बराबर-बराबर मात्रा में ले मिलाकर सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। तत्पश्चात् इसे बच्चों के निगलने योग्य कैपसूलों में भरकर रख देवें। सेवन विधि—१-१ कैपसूल ४-४ या ३-३ घंटे पर जल से निगलवावें।

(४) **सिद्ध प्राणेश्वर (भैषज्य रत्नावली)**—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, और अभ्रक भस्म शतपुटी प्रत्येक ४-४ माशा, सज्जीक्षार, जवाखार, सुहागे का फूला, पांचों लवण त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, सफेद जीरा, काला जीरा, चित्रक, अजवायन, हींग, वायविडंग, और सौंफ प्रत्येक १-१ माशा निर्माण वि०—इन्हें एकत्र करके सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण करें। पश्चात् जल के संयोग से १-१ माशे की गोलियां बनावें। सेवन विधि—शिशुओं को चौथाई तथा बच्चों को आधी गोली पान के रस से खिलाकर, ऊपर से गर्म जल पिला दें। गुण—यह भयंकर अतीसार, ज्वरातीसार और संग्रहणी की परम गुणकारी औषधि है।

(५) **अतीसारघ्न चटनी**—श्योनाक की ताजी छाल १ सेर को जौकुटकर ४ सेर जल में भली-भांति औटावें। एक सेर जल शेष रहने पर बारीक कपड़े से छान लें। अब इसमें १ सेर अनार का ताजा रस मिलाकर पुनः औटावें। रस जब गाढ़ा हो जाय तब नागरमोथा, यवक्षार, काला नमक, इन्द्रयव, सोंचर नमक, सैन्धव लवण, धाय का फूल, और छोटी पिप्पली प्रत्येक २-२ तोला का सूक्ष्म चूर्ण करके मिला दें। फिर इसमें पाव भर शुद्ध मधु भी मिला दें। बस चटनी तैयार है। सेवनविधि—३ से ५ वर्ष या इससे ऊपर के वय वाले बच्चे को यह चटनी चौथाई से आधा तोला, की मात्रा में दिन में और रात में चटाने से पतले दस्त, संग्रहणी, आंव, पेचिश, रक्तातीसार आदि अवश्यमेव ठीक हो जाते हैं। यह बहुत बार का पूर्ण परीक्षित योग है।

रोगी प्रतिवेदन (Case report)

(१) एक नन्हा शिशु, वय १ महीना ५ दिन, धर्म-हिन्दू, लिङ्ग—पुरुष। दस्त बहुत पतले पिचकारी की तरह होते थे। शिशु पहले हृष्ट-पुष्ट था किन्तु अब तीव्र अतीसार से काफी दुर्बल हो गया था। कभी-कभी दस्त में हरा हरा पदार्थ निकलता था जो यकृत् विकार को दर्शाता था। प्रातःकाल से "सर्व अतीसारनाशी पानक" एक छोटे चम्मच की मात्रा में मां के दूध के साथ सर्व प्रथम ४-४ घंटे पर और इसके बाद दूसरे दिन से ६-६ घंटे पर पिलाया गया, दोपहर एवं रात्रि को सोते समय 'यकृत् प्लीहारि लौह' चौथाई से आधी रत्ती की मात्रा में मधु के साथ चटाया गया। प्यास को दूर करने के लिए नागरमोथा का अर्क १५ बूंद की मात्रा में मां के दूध में मिलाकर २-२ घंटे पर पिलाया गया। उसी दिन शाम में दस्त थोड़े कम हो गये। दूसरे दिन सायं होते-होते दस्त बहुत कम हो गये जो तीसरे दिन प्रातः तक सामान्य पर आ गये। अब उसे उपर्युक्त औषधियों के साथ शक्ति और हृष्ट-पुष्टता के लिए "महाबला पुष्टई" दिव्य रसायन $\frac{1}{16}$ भाग की मात्रा में प्रातः सायं शुद्ध मधु के साथ निरन्तर सेवन कराया और "अमूल स्प्रे" नामक सूखा दूध गर्म जल में घोल कर पथ्य में दिया गया। १५ दिन के बाद "सर्व अतीसार नाशी पानक" का सेवन बन्द करके केवल "महाबला पुष्टई" सेवन कराया

गया तो डेढ़ महीने में उस शिशु के सभी कष्ट दूर होकर वह पहले से भी अधिक स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट हो गया।

(२) एक बालिका, वय ४ वर्ष धर्म–हिन्दू, दस्त के साथ आंव और रक्त निकलता था। मलत्याग के साथ अधिक कूंथन और मरोड़ होते थे। जिससे बालिका रह-रहकर काफी रोती चिल्लाती थी। कभी-कभी उसके उदर में भयंकर पीड़ा होती थी। दिन भर में दस्त १०-१२ से भी ऊपर तथा मल कम किन्तु आंव ज्यादे निकलती थी। थोड़ी-थोड़ी देर पर दस्त का वेग तो आता था किन्तु केवल आंव मिश्रित थोड़े मल के अलावा और कोई दस्त नहीं होता था। बालिका को दोपहर के समय ६६.५° फा० ज्वर चढ़ आता था जो बढ़ कर रात्रि में १००.५° फा० तक हो जाता था। उसे २४ घंटे तक पूरा उपवास कराया गया तथा आम के पाचन के लिए सौंफ एवं नागरमोथा का अर्क आधा-आधा तो०की मात्रा में पिलाया गया। इसके बाद सर्व अतीसारनाशी पानक दो छोटे चम्मच की मात्रा में ६-६ घंटे पर पिलाये गये। सिद्ध प्राणेश्वर (भै० र०) की आधी गोली मधु से चटाकर ऊपर से पान के रस में प्रातः और सायं प्रतिदिन पिलाया गया। शरीर की पुष्टि के लिए "महाबला पुष्टई" नामक दिव्य रसायन चौथाई पुड़िया दूध की ताजी मलाई के साथ खिलाई गई। लगभग १८ दिनों में समस्त रोग-कष्ट दूर होकर बालिका खूब शक्तिशाली बन गई।

(३) एक बालक, वय ७ वर्ष, धर्म—मुसलमान, उसे थोड़ा-थोड़ा दस्त किन्तु अधिक आंवयुक्त होता था। सन्ध्या समय हलका ज्वर भी चढ़ आता था। शरीर कृश और दुर्बल हो गया था। प्यास अधिक सताती थी। पेट में ऐंठन होती थी। उसे सर्व प्रथम ४८घंटे तक (उपवास) कराया गया। इसके अनन्तर अतीसारघ्न चटनी ½ तोला मात्रा में प्रतिदिन दो बार खिलायी गयी। प्रातः सायं सर्व अतीसारनाशी कैपसूल दो की मात्रा में जल से निगलवाये गये। पथ्य में पुराने हाथ से कुटे चावल का भात तथा मट्ठा दिया गया। प्यास लगने पर सौंफ का अर्क जल में मिलाकर दिया जाता था। भोजन के बाद सर्व अतीसारनाशी पानक दो छोटे चम्मच की मात्रा में दो बार प्रतिदिन पिलाया गया। दो सप्ताह में बालक पूर्ण स्वस्थ हुआ।

(४) एक बालक, वय ७ वर्ष २ महीना, धर्म – हिन्दू, उसे रक्तातीसार था। मल के साथ काफी रक्त आता था। उसे सर्व अतीसारनाशी वटी २ गोली की मात्रा प्रातः सायं दोपहर एवं रात्रि में मधु से तथा महाबला पुष्टई आधी पुड़िया भोजन के बाद दिन में २ बार दी गई। उसे १७ दिनों में पूर्ण लाभ हुआ।

उपसंहार—इसी प्रकार के अनेक रोगी-प्रतिवेदनों से ज्ञात होता है कि सर्व अतीसारनाशी औषधि आमातीसार में बेजोड़ लाभ करती है।

शिशु पेट मरोड़ पर—एरण्ड तैल—

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु, दोषान्तरेष्वीरणएकवीरे ।
को निष्टनन्नानिति कोष्ठशूली, नान्तर्बहिःस्नेहपरो यदि स्यात् ॥

मल के क्षीण होने पर, कफ-पित्त के अपना स्थान छोड़ देने पर और केवल वायु के ही प्रबल होने पर और पेट की मरोड़ से चिल्लाते हुए बालक का तैल (शुद्ध एरण्ड तैल) से बढ़कर अन्तः तथा बाह्य प्रयोग के लिए और कौन साधन हो सकता है।—वाग्भट

आयुर्वेदशास्त्री शेख फय्याज खां विशारद, भीनमाल (जालोर)

कफज्वर बालकों के लिए बड़ा कष्टदायक होता है। इस रोग में रोग निर्णय करना कुछ कठिन हो जाता है। जो शिशु बोलकर कष्ट स्थिति को बतला नहीं सकते वहां अन्य लक्षणों को देखा जाता है। कभी-कभी पेट फूला हुआ होता है और प्लूरा (फेफड़े की झिल्ली) भी ज्वरमयुक्त होती हैं और इस कारण भी पेट फूला हुआ दिखाई देता है परन्तु यदि बालक टसका करता हो तो पेट में व्याधि अधिक होने की सूचना है। ऐसी अवस्था में विरेचन या एनीमा देकर मल निस्सारण पहले आवश्यक हो जाता है।

पसलियां अप्राकृतिक रूप से ऊंची नीची होकर नथुनों पर भी श्वासकष्ट के चिह्न दिखाई देवें तो कफज्वर निमोनिया ही समझना चाहिए। इसके उग्ररूप को 'डिब्बा रोग' या 'बादलो वाला' रोग कहते हैं। स्टेथिस्कोप द्वारा फेफड़ों में कफ स्पष्ट रूप से झागयुक्त ध्वनि करता है। जिधर कफ का जमाव होता है उधर की पसलियों की ओर खिंचाव और दर्द से शिशु सिकुड़ता हुआ बेचैनी दिखाता है।

निमोनिया का प्रकोप निम्न स्थिति में अधिक कष्टदायक होता है।

१, सर्दी में जब हवा हो, अन्य समय में बादल होने पर भी कफ की मात्रा बढ़ जाती है।

२. माता के खानपान में ऐसे मौसम में दही छाछ आदि प्रयोग करने पर भी बच्चों में कफ की मात्रा बढ़ जाया करती है।

३. जो बालक ऊपर ओढ़कर सोते ही नहीं परन्तु माताएं जबरदस्ती उढ़ा देती हैं परन्तु नींद की अवस्था में बालक शुद्ध हवा हेतु छटपटाकर खुल जाता है और फेफड़े में पहुँचने वाली वायु के ताप में अन्तर पड़ते ही बालक रोगग्रस्त हो जाता है।

४. बीमार कमजोर बच्चे जो ज्वर, खांसी के शिकार रह चुके हैं उन्हें झट यह रोग हो जाने का खतरा रहता है।

५. यह ज्यादातर उन्हीं बच्चों को हुआ करता है जिनके मातापिता भी कफ प्रकृति के हों और इन रोगों के शिकार हों तो ऐसे बालक भी इस रोग के लक्ष्य होते हैं।

६. खांसी, कालीखांसी के कीटाणु श्वास द्वारा भी या झूठे बर्तन द्वारा भी प्रभावित होजाते हैं।

चिह्न—चहरा फीका, लालवर्णयुक्त अधिक प्रकोप पर हरा भी हो जाता है। श्वास लेने में कठिनाई। नथुने भी जोर से फैलते सिकुड़ते दिखाई दें, दर्द की तरफ वाले फेफड़े में कफ जमाव के कारण बालक उधर मुड़कर बेचैनी प्रकट करें। पसलियों पर उछाल सी दिखाई देवे तो यही बाल निमोनिया कहलाता है। जिसको दोषों के बढ़ जाने पर डिब्बारोग भी कहते हैं।

ग्रामीण लोग झाड़फूंक भी करवाते हैं परन्तु वास्तव

शेखफय्याज आयुर्वेद के अच्छे चिकित्सक और बृहत् सुधानिधि-परिवार के घटक हैं जो अब शीघ्र ही सरकारी सेवा से मुक्त होने जा रहे हैं! आपने बालश्वसनक पर अपने सभी प्रकार के अनुभवों को लिपिबद्ध कर दिया है जो अवश्य ही पढ़ने वालों के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण मसाला प्रदान करेगा। —म. मो. च.

में कफ प्रकोप दबने पर ही शिशु चैन की सांस लेता है। कई शिशु इस प्रकार समाप्त हो जाते हैं, केवल अनभिज्ञ माता-पिताओं के अन्धविश्वास पर।

यदि बालक को वमन विरेचन हो जावे तो स्थिति सुधार में सहायक होते हैं परन्तु आजकल लोग इंजेक्शनों पर ज्यादा आस्था रखते हैं।

चतुर वैद्य वमन विरेचन से दोष निकालने का पहले ध्यान देते हैं उन्हें यश प्राप्त होता है। दोष निकाले बिना ही कभी कभी दवा पिलाई जाती है और मूर्ख माताएं बच्चों को और कष्ट देती हैं। ग्रामीण और अनाड़ी स्त्रियों को अक्सर हानि उठाते देखा गया है—

बालक रोता रहता है और रोने के बीच में श्वास लेने के लिए रुकता है उसी के साथ दवा की घूंट डालदी जाती है जो पेट में न जाकर फेंफड़ों में पहुँचती है और वमन द्वारा नाक मुंह से वापस निकलती है शिशु की बेचैनी बढ़ जाती है।

मैं तो दवा दिलवाने के लिए एक दो समय अपने सामने ही दिलवाता हूँ और यदि तरीका दोषपूर्ण है तो सिखाकर फिर दूर करता हूँ।

१. खांसी के साथ कंठ की सूजन और कफज्वर हो, उसे ब्रांको न्यूमोनिया कहते हैं। यह गले पर और फेंफड़ों पर कब्जा कर लेता है। ज्वर तो कम भी होता है परन्तु कफ जम जाता है फेंफड़ों की नलियों में जमाव हो जाता है तो श्वास कष्ट बढ़ जाता है और गोरे रंग के बच्चों का चहरा लाल और होंठ नीले हो जाते हैं। 'कफ जहां ठोस होकर जम जाता है' उस ओर बालक मुड़कर बेचैनी प्रकट करता है। ऐसे भाग को 'Area of Consolidation' कहते हैं। अधिक प्रभावित होने पर—

ऐम्फाइसीमा तथा फुफ्फुस अवपात—फेंफड़ों में ऐंठन सी हो जाती है और बहुत अधिक ध्यान देने की जरूरत होती है।

बच्चों को गर्म परन्तु हवादार कमरे में रखना चाहिए। ग्रामीण बन्द झोंपड़ियों में आग जलाते हैं जहां धुआं भीतर ही रहता है वहां आक्सीजन न होने से रोगी को कष्ट होता है।

अधिक कष्ट दिखाई दे तो आक्सीजन पहुँचाई जानी आवश्यक है।

नस्य—यह सफल डिस्पेंसरियों में ही उपलब्ध हो सकता है। ग्रामीण जनता के लिए यही ध्यान रखा जाय कि रोगी के कमरे में ताजी हवा का प्रबन्ध हो और कुछ नस्य देकर छींक दिलवानी चाहिए। छोटे बच्चों के नथुनों के पास रुई पर कुछ बारीक पिसा 'कटफलादि नस्य' रख कर ले जाने से छींकें आनी शुरू होती हैं। माता का दूध पीते समय भी जरा सी चुटकी रुई पर रखी जाय तो सफलता मिलती है। छींक से दिमाग यथा नाक की श्वसन प्रणाली और गले तक का मार्ग साफ हो जाता है शुद्ध हवा फेंफड़ों में पहुँचना सुगम होता है। नाक बन्द होने की अवस्था में शिशु दूध नहीं पीता और मातापिता घबराते हैं परन्तु इस क्रिया से काफी लाभ होता है।

चिकित्सा—१. पहले छोटे बच्चे जो दवा पी न सकें उनके लिए एक ही आयुर्वेदिक सफल दवा शृंग्यादि चूर्ण या बाल चातुर्भद्र चूर्ण शहद में घोटकर तालु में उंगली से लगाते रहें मीठा होने के कारण शिशु चूसकर स्वयं गले में उतारता रहेगा। माता के स्तन के चूचुक पर भी लगा लगाकर दूध पिलाया जाय तो भी लाभ होता है। इसके साथ-साथ —

२. त्रिभुवनकीर्त्ति रस भी मिलाकर चटवाया जा सकता है।

३. अश्वकंचुकी रस गर्म चाय या दूध में मिलाकर सावधानी पूर्वक दिया जाय कफ और ज्वर के दोष निकल जायेंगे। मात्रा—½ रत्ती।

४. कफ कम करने के लिए 'कनकासव', कफघ्नी वटी, कफकुठार रस कोई भी एक चीज पिलाई जाय (यदि युक्तिपूर्वक पिलाई जाय तो)।

५. 'वासावलेह प्रवाही' 'इफेड्रेक्स' 'कम्फोकोडीका वसाका' कोई मीठी दवा पिलाई जाय।

६. पेनिसिलीन, क्रिस्टेनाइन पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टो पेनिसिलीन।

डाइक्रिस्टोसीन पेडियाट्रिक—कफ की तीव्रता कम करती है परन्तु देख लें मातापिता भी शिशु की प्रकृति है और इसकी एलर्जी होती है। ऐसों की सन्तान पर भी प्रभाव होता है खासकर कब्जी की हालत में, तो बिना जांचे

यह दवा देवें ही नहीं।

७. एट्रोपिन सल्फेट १/१००—१ सी. सी. में से भी कम करके आधा, अधिक कफ वेग के समय देवें कफ को सुखा देने में उत्तम है।

होम्योपैथिक इंजेक्शन—

वेलाडोना—यदि इन स्थितियों में हो—चहरा आंखें लाल, शरीर गर्म, बच्चा बेचैनी से इधर उधर उछलता हो पसीना ज्यादा हो। एट्रोपीन की तरह ही।

एकोनाइट नैप—जब ज्वर तेज हो, बेचैनी हो, सर को इधर उधर घुमाता हो, नाड़ी सुस्त तथा भारी हो, खांसी सूखी वार वार हो, फेंफड़ों में 'श्वासकष्ट हो' कफ खरखराहट से बोलता हो।

आर्सेनिकम—जब ज्वर वेग अधिक, शरीर निढाल कमजोर हो, फेंफड़ों पर वरम आ चुका हो श्वासकष्ट हो।

ब्रायोनिया—जब एकोनाइट दे चुकें ज्वर कुछ कम हो गया हो खांसी में कमी आ गई हो सरदर्द अभी गया न हो तो इसे दें।

फेरमफस—नाड़ी भारी हो सूखी खांसी हो, कभी वलगम निकलता हो 'कफ में खून निकलता हो' कालीम्यूर के साथ भी प्रयोग करें।

अन्य—सल्फाड्रिड, सल्फा थायाजोल, सल्फामीजेयिन आदि गोजिह्वादि क्वाथ के साथ प्रयोग करें। १ या २ गोली आयु या शरीर भार के अनुसार।

दिल की कमजोरी की अवस्था में कोरामिन ½ या १ मि. लि इंजेक्शन दिया जाय कस्तूरीभैरव रस भी हृदय को बल देने में उत्तम है।

बच्चों की तेल मालिश सीने पर तलवे हथेलियों पर करके सीने पर पान रखकर सेक करें। बालू तपाकर कपड़े में लेकर या नमक गर्म करके चपटी रबर की थैली भी मिलती है उसमें गर्म पानी भर करके सेक करें पहले अधिक गर्म हो तब कपड़ा लपेटे रखें ताप कम होने पर लपेट कम करते रहें और सेक करें।

बस्ति चिकित्सा का महत्व

वस्तिदानात् परं नास्ति चिकित्साऽङ्ग सुखावहा।
शाखा कोष्ठगता रोगाः सर्वार्धाङ्ग गताश्च ये॥
तेषां समुद्भवे हेतुर्वातादन्यो न विद्यते।

वस्ति चिकित्सा से बढ़कर शरीर के अङ्गों और प्रत्यङ्गों को सुख देने वाली कोई भी चिकित्सा नहीं है। शाखागत, कोष्ठगत, सम्पूर्ण शरीरगत अथवा अर्धशरीरगत जितने भी रोग हैं उनकी उत्पत्ति में वायु के अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है।

जेताचास्य प्रवृद्धस्य वस्ति तुल्यो न कश्चन।
तदुपार्धं चिकित्सायाः सर्वं वात चिकित्सितम॥

इस प्रकार इस प्रवृद्ध हुए वायु को जीतने के लिए वस्ति के समान अन्य कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार वस्ति क्रिया सम्पूर्ण वातरोगों की प्रायः आधी चिकित्सा मानी गई है। अर्थात् वातरोगों की सम्पूर्ण चिकित्सा में अकेली वस्ति ही लगभग आधी चिकित्सा है वातरोगों की चिकित्सा केवल वस्ति के द्वारा ही हो सकती है।

विविध शिशु रोग

आयुर्विद्या निकेतन प्राणाचार्य श्री हर्षुल मिश्र, रायपुर (म.प्र.)

स्वतन्त्रता सेनानी और आयुर्वेद के सफल चिकित्सक एवं मध्यप्रदेश में वैद्य समुदाय के विशिष्ट निरीक्षक वैद्यराज मिश्र जी की बूढ़ी नसों में भी अभी यौवन का अमन्द प्रवाह विद्यमान है जिसकी झलक उनके खोजपूर्ण लेखों की विशाल शृंखला द्वारा दृग्गोचर सहज ही हो जाता है। आपने सुधानिधि के इस विशेषांक हेतु अनेक लेख लिखे हैं प्रत्येक लेख में जिस बालरोग को उठाया है उस पर अपने अनुभव की अमिट छाप छोड़ दी है। हर लेख सजीव है और कुछ न कुछ नवीन ज्ञानप्रदाता भी है। र० व० त्रि०

बनने की क्रिया यथाविधि न होने से रक्त मांस मेद मज्जा अस्थि आदि धातुओं का ह्रास होने लगता है। परिणामतः बालक दुर्बल होने लगता है। पेट उभर आता है, और हाथ पैर क्षीण हो जाते हैं। पारिगर्भिक रोग चिकित्सा द्वारा साध्य है, यदि गर्भिणी मां के द्वारा, बालक को दूध पिलाना तुरन्त बन्द कर दिया जाय। यह रोग दो वर्ष से लेकर ३ वर्ष के आयु वाले उन्हीं बालको को होता है जो मा के गर्भवती हो जाने पर भी उसका दूध पीना बन्द नही करते।

पारिगर्भिक रोग की चिकित्सा—

(१) सर्व प्रथम बालक की गर्भिणी माता द्वारा दुग्ध पिलाना कतई बन्द किया जाना चाहिये, क्योंकि जब तक बालक गर्भिणी मां का दूध पीता रहेगा, तब तक उसे चिकित्सा से कोई लाभ नही होगा।

(२) स्वर्ण आयस कल्पमणी रस आधी गोली से १ गोली प्रातः सायं शहद से चटावें पथ्य के बाद बालक को चाय के चम्मच से एक चम्मच पेयऊर्जा पिलावें।

(३) हपु ल अष्टामृत–

द्रव्य–(१) उत्तम कान्तलौह भस्म जलतर १ तोला २. प्रवाल पंचामृत १ तोला ३. सौंफ का घनसार १ तोला ४. कच्चे बिल्व का चूर्ण १ तोला ५. आम की गुठली का चूर्ण १ तोला, ६. मरोडफली का चूर्ण ७. इन्द्रयव चूर्ण १ तोला, ८. शुंठी चूर्ण १ तोला।

निर्माण विधि—समस्त द्रव्यों को पत्थर के उत्तम खरल में डालकर खूब मर्दन करें, फिर मकोय के स्वरस की भावना देकर ४ रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखा शीशी मे भरकर डाट लगाकर रखदें तथा प्रसंगानुसार चिकित्सा में प्रयोग करें।

सेवन विधि —½ गोली से १ गोली तक पीसकर प्रातः सायं असली शहद अथवा मिश्री की चासनी से चटावे।

गुण —यह औषधि बालकों की संग्रहणी, पेचिस, मरोड़ वाले आमातीसार, मंदाग्नि, रक्तहीनता, यकृत् विकार, दुर्बलता को शीघ्र दूर करती है। पारिगर्भिक रोग तो इस औषधि से १५ दिन में शांत हो जाता है।

अष्टामृत, बालिग स्त्री पुरुषों के संग्रहणी अतीसार मन्दाग्नि, यकृत् विकार, पेचिस, आमातीसार के रोगों पर उसी प्रकार लाभदायक है जिस प्रकार बालकों को होने वाले उपर्युक्त रोगों पर लाभप्रद है। बालिग स्त्री पुरुषों को अष्टामृत की मात्रा २ गोली है। अनुपान–शहद, तक्र दधि आदि उपयुक्त है।

पारिगर्भिक रोगनाशक पथ्य—

१. पारिगर्भिक रोग गर्भिणी माता के दूध के विषैले प्रभाव से ही होता है इस लिए गर्भिणी मां का दूध पीना सर्व प्रथम बन्द होना चाहिए।

२. पारिगर्भिक रोग वाला बालक मिथ्याहार-विहार में विशेष रुचि रखता है, जिससे उसके रोग उतरोत्तर बढ़ते रहते हैं। अतः पारिगर्भिक से पीड़ित बालक को हितमित आहार करना चाहिए। स्वस्थ गाय का गरम मीठा दूध सर्वोत्तम पथ्य है। गाय के दूध मे समभाग जल मिलाकर उबाल लेना चाहिए। फिर उसमें शक्कर डालकर सुखोष्ण १० तोला की मात्रा में, प्रति ४ घंटे के अन्तर से दिन रात में तीन-चार बार पिलाना चाहिए। ज्यों-ज्यों बालक की अग्नि प्रदीप्त होती जाय ज्यों-ज्यों सुपाच्य अन्न की यवागु, गेहूँ की रोटी का फुलका, मुद्गमूल आदि क्रमशः मात्रा बढाते हुए सेवन करना चाहिए।

२. नाभिपाक—

नव जात शिशु का नाल काटने के बाद, उसके नाभि में विजातीय तत्वों की उपस्थिति से नाभि में व्रण होकर पूय निकलता है,तब उसे नाभि पाक कहते हैं। यह नाभि-पाक प्रायः नव जात शिशु को ही होता है यदा कदा १ वर्ष वा उससे बड़ी उम्र के बालकों की नाभि में मलीनता के कारण, कण्डुयुक्त आर्द्रता बनी रहती है।

नाभिपाक का सफल उपचार (१) नाभि में पानी नहीं लगने देना चाहिए। नीम के तेल में रुई का फोहा भिगोकर, उससे नाभि के व्रण को साफ करना चाहिए, फिर उस पर प्रवाल पिष्टी,टंकण चूर्ण,लाक्षा चूर्ण,स्फटिका चूर्ण समभाग मे मिलकार नाभि के क्षत पर बुरककर उस पर रुई का फोहा रखकर कपड़े की हल्की पट्टी बांध देना चाहिए। इस उपचार द्वारा तीन दिन से ७ दिन के अन्दर नाभिपाक अच्छा हो जाता है।

कासीसादि तैल लगाकर हाथ से दवा देने से, गुदवल्ली गुदा के अन्दर चली जाती है और बच्चे को राहत मिल जाती है। नित्य कासीसादि तैल का पिचु, शौच के बाद, गुदा में रखने से गुदभ्रंश स्थायी रूप से आराम हो जाता है ।

गुदभ्रंश पर अचूक मूषक तैल

एक मूषा मारकर और उसे कुचल कर उसका कल्क तैयार करलो। फिर इस चूहे के कल्क के वजन का दशमूल का कल्क तैयार करलो। दोनों के वजन से दूना, तिल्ली अलसी करंज किसी का भी तैल ले लो और उस तैल में उपर्युक्त दोनों कल्कों को इतना पकाओ कि कल्क जल कर काला हो जाय। फिर उस तैल को छान कर, उसका पिचु गुदा में रखने से अथवा बाहर निकले हुए गुदभ्रंश पर लगाने से अवश्य लाभ होता है। यह तैल अर्श की पीडा और कंडु को भी हरता है। अर्श की पीड़ा पर इस तैल को चूने के जल में फेंट कर लगाना चाहिये ।

(७) बालकों की अंत्रालजी पिटिका गठवन—

छत्तीसगढ़ में नवजात शिशुओं को, जिनके माता-पिता को फिरंग के विकार हो चुके होते हैं, वात कफ के प्रकोप से अंत्रालजी नाम की पिडिका के समक्ष कड़ी, बड़ी उन्नत (उठी हुई,उभरी हुई) गोलाकार, देर से पकने वाली किंचित् ललाई लियेहुए, व्रण शोथ के आकृति की पीडिका होती है, जो पकने पर अल्पपूयस्राव वाली होती है। यह अंत्रालजी (गठवन) बिना समुचित चिकित्सा के अपने आप कभी अच्छी नहीं होती। चिकित्सा के अभाव में नवजातशिशु के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, छत्तीसगढ़ के लोग इसे गठवन कहते हैं।

अंत्रालजी (गठवन) की सफल चिकित्सा
हर्षुल शोणितशोधक वटी

द्रव्य—फफूंद क्षार १ तोला, स्वर्णक्षीरी स्वरस घनसार १ तो०, स्वर्ण क्षीरी मूल त्वक् चूर्ण १ तो.,अनन्तमूल घनसार १ तो० उदुम्बरत्वक् घनसार १ तो., अर्कमूल त्वक् चूर्ण १ तो०, स्वर्ण- क्षीरी पंचांगक्षार.१ तो०,हिंगुल भस्म १ तो०, कालीमिर्च ४ तो०,

विधि—सब औषधियों को स्वर्णक्षीरी के स्वरस की भावना देकर खरल में खूब मर्दन करें फिर दो-दो रत्ती गोलियां बना छाया में सुखाकर रख ले।

सेवन-विधि—बच्चों को आधी गोली से १ गोली मां के दूध में घोलकर पिलावें तथा नवजात शिशु की मां के स्तन पर, १ गोली जल में पीसकर लेप करके फिर उस स्तन को नवजात शिशु को पिलाने से अंत्रालजी ठीक हो जाती है। शोणितशोधक वटी, बालक एवं बड़े स्त्री-पुरुषों के फिरंग जनित विकारों को दूर करती है। बड़े स्त्री पुरुषों को शोणितशोधक वटी २ गोली सुबह और २ गोली शाम को ताजे जल से निगलना चाहिये। नवजात शिशु की माता को शोणितशोधक वटी सेवन कराने से भी बालक के अंत्रालजी रोग पर लाभ होता है।

उपचार—१. शोणित शोधक वटी को पानी में घिस कर अंत्रालजी पर लेप करने से भी पीडिका अपने आप बैठ जाती है।

(२) पीडिका पकने पर–त्रिफला के काढ़े से व्रण को धोकर उसकी आर्द्रता, रुई के फाहे से शोषित कर उस पर निम्न तैल लगाकर पंच वल्कल चूर्ण बुरकें

(३) अंत्रालजी के व्रण पर त्रिफला की कृष्ण भस्म बनाकर शहद में मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

[८) शैशवीय अङ्गशैथिल्य वा अङ्गघात—
(Polio myelitis)

यह बालकों को होने वाला ऐसा लकवा है, जिससे बालक के अङ्ग विशेषतः हाथ पैर शिथिल होकर निष्क्रिय वा गतिविहीन हो जाते हैं। किसी बालक का एक पैर लुंज हो जाता है, किसी बालक के दोनों पैर लुंज हो जाते हैं। किसी बालक का एक हाथ लुंज हो जाता है किसी के दोनों हाथ लुंज हो जाते हैं। किसी के दोनों हाथ दोनों पैर लुंज हो जाते हैं। बालक उठ बैठ नहीं सकता, चलना फिरना यहां तक कि खड़ा होना भी उसके लिये हरकत असम्भव होजाती है। हाथ को हिला डुला नहीं सकता, हाथ की मुठ्ठी बांध नही सकता, हाथ पैर की अंगुलियों को स्वाभाविक ढङ्ग से हिला-डुला नहीं सकता, कोई चीज हाथ से उठा नहीं सकता। यह शैशवीय अङ्गघात (पोलियो) प्रायः ३ वर्ष वा ७ वर्ष की उम्र के अन्दर ह बालकों को होते देखा जाता है। इस रोग के बालक यथाप्रसङ्ग समुचित चिकित्सा न होने से जीवनभर लूले बने

रहते हैं। इस रोग के प्रारम्भ में अङ्ग क्षीण प्रतीत नहीं होते, परन्तु अङ्ग की मांस पेशियों और स्नायुओं की हर-कतें धीरे-धीरे कम होती जाती हैं और कुछ समय में बिल्कुल बन्द हो जाती हैं, जिससे वह अङ्ग निष्क्रिय हो जाता है। इस रोग के प्रारम्भ होते ही आशुगुणकारी समुचित चिकित्सा होने से तीन चार माह में रोग सम्पूर्ण रूप से आराम हो जाता है। यह रोग १ वर्ष से तीन वर्ष तक बना रहने से अतिकष्टसाध्य होजाता है परन्तु नीचे लिखी औषधि योजना से ६ से १२ माह के अन्दर सम्पूर्ण रूपेण अच्छा हो जाता है। इसमें पुराना शैशवीय अङ्गघात (पोलियो) रोग प्रायः असाध्य हो जाता है। इस रोग में चिकित्सा उस उम्र तक उचित है जिस उम्र तक बालक की उत्तरोत्तर बढोतरी होती रहती है।

औषधि योजना-हर्बुल ऊर्जावर्धनी वटी—

एरण्ड बीज छिले हुए ४ तो०, कांतलौह भस्म जलतर २ तोला, हिंगुल भस्म २ तोला, प्रवाल-पंचामृत २ तोला, बकायन त्वक्घनसार २ तोला, कायफल घनसार २ तोला, एरण्ड मूल त्वक् चूर्ण २ तोला, रास्नादि क्वाथ घनसार २ तोला, पिप्पली मूल ग्रन्थी चूर्ण २ तोला, शुंठी का महीन चूर्ण २ तो० स्वर्ण भस्म १ तो० (अभाव में स्वर्ण-माक्षिक २ तो०)।

निर्माण विधि—समस्त द्रव्यों को एक पत्थर के खरल में डालकर खूब मर्दन करें, फिर निर्गुण्डी के पत्रों के स्व-रस की भावना देकर एक एक रत्ती की गोलि यांबना छाया में सुखा स्वच्छ शीशी में भरकर रखदें।

औषधि की प्रयोग विधि-१ वर्ष के बच्चों को १ गो., २ वर्ष से ५ वर्ष के बच्चों को २ गोली मा के दूध में या शहद के साथ प्रातः सायं चटावें। ५ वर्ष के बच्चों को प्रातः मध्यान्ह और सायं औषधि देनी चाहिये। इसके सेवन से अङ्गघात धीरे-धीरे किन्तु अवश्य दूर हो जाता है इसमें संदेह नहीं।

ऊर्जा वर्धन तैल—

बहेड़े की मींगी का तैल	४ तोला
मालकांगनी तैल	४ तो०
महानारायण तैल	४ तो०
महामाष तैल	४ तो०
एरण्ड तैल	४ तो०
नीलगिरी तैल	१ तो०
तिलाढी तैल	१ तो०
पिस्तामीगी का तैल	१ तो०
बादाम मींगी का तैल	१ तो०

समस्त तैलों को एक शीशी में भरकर रखलो। प्रातः मध्यान्ह और शाम को तीन बार उपर्युक्त ऊर्जावर्धन तैल की मालिश करो। धीरे-धीरे इस तैल के प्रयोग से बालक के अङ्ग की ऊर्जा और बल बढ़ेंगे।

अङ्गघातगर्वातक वटी

कांतलौह भस्म १ तो०, प्रवाल भस्म १ तो०, शम्बूक भस्म १ तो०, सत्व कुचला १ तो० शुंठी चूर्ण १ तो०, एरण्ड मूल त्वक् घनसार ४ तो०,।

निर्माण विधि—सम्पूर्ण औषधियों को खरल में डाल कर, अद्रक स्वरस की भावना देकर एक-एक रत्ती की गोलियां बना लें।

प्रयोग विधि-१ वर्ष से २ वर्ष के बच्चेको आधी गोली से एक गोली; २ वर्ष से १० वर्ष तक के बच्चे को १ गो. से २ गोली प्रातः सायं क्रमशः मां के दूध में तथा गाय के ताजे गरम मीठे दूध में घोलकर पिलावें। यह औषधि बालिग स्त्री-पुरुषों के वातरोगों पर भी लाभदायक है। मात्रा २ गो० अनुपान—रसोन स्वरस और शहद। समय प्रातः सायं।

गुण—पोलियो, पक्षाघात, संधिवात, गृध्रसी, अङ्ग पीड़ा, अङ्ग शथिल्य, सर्वाङ्गमर्द, आध्मान, यकृत् विकार, रक्त क्षीणता, दुर्बलता को दूर करती है।
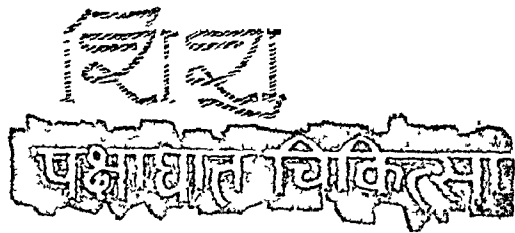
वैद्यविद्याधुरीण श्री अम्बालाल पण्ड्या
भाई पानि मुहल्ला खेपल घाटी, उदयपुर।

☆

चन्द्रलोक विजय रूपी विज्ञान की प्रगति के चरमोत्कर्ष के इस आधुनिक युग में चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में जिस तीव्रगति से ब्रोड स्पेक्ट्रम दिव्योषधियों के निर्माण से व्याधियों पर चमत्कारपूर्ण-सफलता प्राप्त हुई है उसकी तुलना में, उसी गति से अनेकों दुःसाध्य व घातक व्याधियों ने अपने क्षेत्र के विस्तार में वृद्धि की है। इन व्याधियो में से एक बालपक्षाघात (पोलियो मायलाइटिस) आज विश्व-भर में सर्वत्र जनता के लिये चर्चा तथा चिन्ता का कारण, एवं चिकित्सकों के लिये चुनौती का विषय बना हुआ है।

परिचय—बालपक्षाघात सामान्यतया किसी भी आयु के बालकों में हो सकता है परन्तु विशेषकर इसका आक्रमण ६ महिने की आयु से ४ वर्ष तक की आयु के बालको में अधिक होता है। इस व्याधि से पीड़ित बालकों में से अधिकांश सिद्ध चिकित्सा के अभाव में जीवनभर के लिये हाथ और पैर के पक्षाघात के कारण अपंग हो जाते है और अपने हाथ पैर से संपादित की जाने वाली आवश्यक क्रियाएं करने में असमर्थ होने से वे अन्यों के लिये भार स्वरूप बन जाते हैं। उनका जीवित रहना दूभर हो जाता है तथा भविष्य अन्धकारमय बन जाता है।

व्याख्या—शिशु पक्षाघात को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की भाषा में तीव्र पक्षाघात एक्यूट एन्टिरीयर पोलियोमायलाइटिस या इन्फेन्टाइल पेरेलीसिस हेन मेडिन डिसीज से जाना जाता है। पोलियो मायलाइटिस ग्रीक भाषा का शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ 'धूसर मज्जा का शोथ' होता है इसीसे इस शब्द को सुषुम्ना कांड के धूसर पदार्थ (ग्रे मेटर) के शोध के लिये प्रयुक्त किया जाता है। यह रोग संक्रामक तथा माहमारी के रूप में फैलने वाला भी होता है।

हेतु एवं सम्प्राप्ति—इस व्याधि का कारण एक विशिष्ट प्रकार के अत्यन्त सूक्ष्म विषाणु (वायरस) माने जाते हैं। ये विषाणु निस्यन्दनशील अर्थात् फिल्टर में से छनकर नीचे निकल जाते हैं अतः इन्हें 'फिल्टर पासिंग वायरस' कहते हैं। उच्चकोटि के बड़े सूक्ष्म दर्शक यंत्र के कक्ष मे भी ये विषाणु दिखाई नही देते हैं।

ये विषाणु नासिका, कंठ, श्वसन-मार्ग अथवा आन्त्र में प्रविष्ट होकर वहां से रसवाहिनियों में तथा उनमें से मध्यम वातवह मंडल और उनसे निकलने वाली वाहिनियों में प्रविष्ट हो जाते हैं। नाक व गले से बाहर निकलने वाले श्लेष्मल स्राव में ये विषाणु अधिक होते हैं और

आजकल शिशु पक्षाघात की शिकायत बालकों में बहुत देखी जा रही है। श्री पण्ड्याजी का यह लेख एक विहंगम दृष्टि से रोग के सब पहलुओं और उसकी चिकित्सा पर अच्छा प्रकाश डालता है। टाइप करवाकर लेख भेजने की इस कृपा के लिए हम पण्ड्याजी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। —गो. श. गर्ग

इसके संसर्ग में ही यह व्याधि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलती है। किन्तु ऐसा तभी होता है जब ये विषाणु उनकी किसी अवस्था विशेष मे ही उक्त स्रावों में विद्यमान हों।

शरीर में प्रवेश करके ये विषाणु पहले सुषुम्ना पर आक्रमण करते हैं जिससे सुषुम्ना के परमाणु दूषित होते हैं और उसके धूसर पदार्थ में विकृति उत्पन्न होकर उसमें से निकलने वाली आज्ञावाहिनियां (मोटर नर्वज) इनसे प्रभावित होकर विकृत हो जाती हैं। सुषुम्ना तथा आज्ञावाहिनियों के इस प्रकार विकृत होने से हाथ व पैर की चेष्टाओं को संचालित करने वाली स्नायुओं और मांस

सर्वांगघात आदि रोगों का जो वर्णन है वह शिशु पक्षाघात से मिलता है। इस व्याधि में आरम्भ में ज्वर होता है तदुपरान्त अन्य लक्षण होते हैं और ज्वर तो समाप्त हो जाता है किन्तु उससे उत्पन्न वातव्याधि वनी रहती है।

आयुर्वेद में खंजत्व और पांगुल्य के जो लक्षण वताये हैं वे इस व्याधि में मिलते हैं इसी प्रकार अववाहुक तथा वाहुशोष से उत्पन्न लक्षण भी मिलते हैं। उपर्युक्त वातव्याधियों की जो सम्प्राप्ति है तथा उनके जो अधिष्ठान और दोष एवं दूष्य हैं साथ ही जो लक्षण हैं वे वहुत कुछ इस व्याधि से समानता रखते हैं।

रोक-थाम के उपाय – आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा इनकी रोकथाम के लिये अथक प्रयत्न किये जा रहे हैं और इस हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शासन द्वारा तथा लायन्स क्लव, रोटरी क्लव आदि, सस्थाओं एवं संगठनों के माध्यम से प्रचार किया जा रहा है। इस व्याधि के प्रतिवन्ध के लिये निःशुल्क पोलियो वैक्सीन की मात्रायें वालकों को पिलायी जाती हैं तथा साल्क टाइप फार्मेलाइज्ड वैक्सीन की ३ सुइयां भी कुछ सप्ताह के अन्तराल में लगाई जाती हैं।

चिकित्सा—व्याधि का आक्रमण हो जाने पर रोगी वालक को पूर्ण विश्राम देना चाहिये तथा लाक्षणिक एवं वातव्याधिनाशक चिकित्सा करानी चाहिये। वात की चिकित्सा सूत्र के अनुसार स्नेहन स्वेदन तथा मृदुविरेचन कर्म करना चाहिये। स्नेह वस्ति इसमें वहुत लाभदायक होती है।

शिशु पक्षाघात में व्याधि की तीव्रावस्था तथा मध्य अवस्था के अनुसार चिकित्सा करनी पड़ती है।

व्याधि की अवस्था में जव ज्वर हो तो पहले ज्वर की चिकित्सा करना चाहिये। ज्वर मुक्ति के वाद भिन्न-भिन्न चिकित्सा करानी चाहिये।

ज्वर की अवस्था में—चन्द्रकला रस इस वालक की आयु के अनुसार प्रमाण में देना चाहिये। यदि व्याधि की तीव्र अवस्था हो और अचेतन होकर आक्षेप भी आते हों तो चन्द्रकला रस के साथ महावात विध्वंसन रस योग्य मात्रा में लेकर मकोय स्वरस तथा मधु के साथ देना चाहिये।

ज्वर निकल जाने के वाद - ताप्यादि लोह योग्य मात्रा में दिन में तीन वार देना चाहिये। इस अवस्था में अचेतन होने पर और आक्षेप आने पर सारस्वतारिष्ट जल मिलाकर देना चाहिये और ताप्यादि लोह भी चालू रखना चाहिये।

पक्षाघात के लिये नारायणतैल का मर्दन करना चाहिये। स्नायुओं की क्षीणता होने पर वलातैल का उपयोग करना चाहिये। वलातैल के मर्दन के साथ-साथ उष्ण-जल का रुई या कपड़े से वाष्पसेक भी करना चाहिये।

इनके अतिरिक्त एकांगवीर रस, समीरपन्नग, मल्ल-सिंदूर, महायोगराज गुग्गुल, व्राह्मीवटी तथा वातविध्वंसन रस आदि के द्वारा अवस्थानुसार अच्छा लाभ प्राप्त होता है।

प्रत्येक शिशु को इनसे बचाइये-

१—सर्प, विच्छू, पिस्सू, कनगोचर, मच्छर, उड़ीस, विर्नी, खटमल, फुआर कीट, छछूंदर, चूहा, चींटी-चींटा, कुत्ता, और विल्ली, की पहुँच न हो।

२—वालक स्वभाव से अवोध होते हैं यहां तक देखा गया है उक्त कुछ कीट पतंगाओं को वे पकड़ कर मुंह में डाल लेते हैं या पकड़ लेते हैं जो उन्हें काट लेते है और आपको पता नहीं लगता।

३—वासी (अन्न, फल, दूध) आदि न दें ये वालक के स्वास्थ्य को विगड़ने में हर समय तैयार रहते हैं।

४—वालकों को मिट्टी, राख, सिलेट, सेलखड़ी खाने से वचायें। ऐसे खिलौने न दें जिनका रङ्ग छुटता हो और वच्चे को हानि पहुँचाये।

—वैद्य द्वारका मिश्र

शरीर को दोषमुक्त करने के लिये कभी-कभी गीली चादर की लपेट की भी जरूरत पड़ सकती है, और कुछ दशाओं में पेड़ू व गर्दन पर एक साथ दिन में २-३ बार कपड़े की उष्णकर पट्टी देने की भी।

स्थानीय चिकित्सा के लिये रोज गले में १-१५ मिनट तक मेहन स्नान देना चाहिये। तत्पश्चात् गर्दन पर १ या १½ घंटा के लिये कपड़े की उष्णकर पट्टी लगानी चाहिये।

रोगी के शरीर से पसीना निकालने के लिये रोज एक बार उसे गरम पानी से भरे टब में २० मिनट तक लिटाना चाहिये या बैठाना चाहिये। उस वक्त उसके सिर पर ठंडे पानी से भीगी तौलिया अवश्य रखना चाहिये।

भयानक सिरदर्द, बेहोशी, या कोई हृदय-रोग हो जाय तो सिर व गर्दन पर बर्फ की थैली या कपड़े की ठंडी पट्टी बार-बार रखनी चाहिये। बर्फ के पानी का गरारा भी ऐसी हालतों में उपकारी सिद्ध होता है।

जब तक ज्वर दूर न हो जाय और रोगी के अन्य कष्ट कम न हो जायं उसे फलों के रस के सिवा और कुछ नहीं देना चाहिये। शहतूत का रस व अनन्नास का रस इस रोग में विशेष उपकारी होता है। इसके बाद कुछ दिनों तक फल और उसके बाद फल व दूध पर रोगी को रखना चाहिये।

२. बालपक्षाघात (Polio-myelitis)—

लक्षण—इस रोग में शिशु के मेरुदण्ड में सूजन आ जाती है, ज्वर भी रहता है। फिर धीरे-धीरे उसके शरीर का कोई विशेष अंग सुन्न और अवश हो जाता है। आमतौर पर बांहों और टांगों पर पक्षाघात का प्रभाव होता है।

उपचार—पूर्ण विश्राम। कुछ दिन उपचार के बाद हल्की कसरत। पक्षाघात के साथ यदि ज्वर भी हो तो पहले ज्वर की चिकित्सा करे। आक्रान्त अंग को सदैव गरम रखना इस रोग में जरूरी है।

यदि रोगी को ज्वर व कब्ज हो तो २ से ४ दिनों का उपवास व एनिमा या एनिमा के साथ सेब अंगूर व नाशपाती के बराबर-बराबर रस को एक में मिलाकर और उसे पीकर रहे। अन्यथा रोज १ पाव धारोष्ण गोदुग्ध आध-आध घंटा पर १ बजे दिन तक और शाम को ४ व ६ बजे सेब, अंगूर व नाशपाती का ऊपर लिखा मिश्रित रस १-१ गिलास तथा आधी-आधी छटांक मूंगफली या कच्चे नारियल की गिरी (नये रोग में यह आहार कम से कम ६ माह तक) फिर धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार अन्य फल, फल-रस, हरी व कच्ची साग-सब्जियों का कच्चा रस, उबली सब्जी, व उसका सूप, धारोष्ण दूध मधु, सलाद, मांड़ सहित नये चावल का भात, अंकुरित अन्न, राब, तथा चोकर समेत आटे की रोटी देवें। रोज नीबू का रस मिला जल प्रचुर मात्रा में पीना। नमक मसाला, चीनी, आदि उत्तेजक खाद्य पदार्थ बिल्कुल बन्द।

रोज सुबह एनिमा के बाद पूरे शरीर की, विशेषकर आक्रान्त अंग की लहसुन तेल की मालिश २० मिनट। फिर २० मिनट धूप नहान, तत्पश्चात् २० मिनट शरीर की ठंडी मालिश या १० मिनट घर्षण कटिस्नान। एनिमा के सिवाय यही उपचार शाम को भी। सूजन हो तो मालिश न करें। दिन में १ या २ बार रीढ़ पर गरम-ठंडी सेंक (५ मिनट × १ मिनट) ३ बार, फिर रीढ़ की गीली लपेट, जिसे ज्वर रहे तो आधे घंटे, और न रहे तो २ घंटे के लिये दें। दिन में १ बार आक्रान्त अंग को ३ मिनट गरम सेंक, फिर १ घंटा कपड़े की उष्णकर पट्टी। कमर की गीली लपेट रातभर। दिन में १ बार पहले आक्रान्त अंग को नमक मिले गरम पानी में डुबोकर पानी के भीतर ही नीचे से ऊपर मालिश १० मिनट तक करें, फिर अंग को तुरन्त १ मिनट तक केवल ठंडे पानी में रखें। ऐसा ३ बार करें। पीड़ित अंग में दर्द होने पर ५-६ बार गरम सेंक फिर ठंडी तौलिया से रगड़कर पोंछना।

डा० नाहर प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्र के अप्रतिम व्यवहारिक विद्वान् और सफल चिकित्सक तथा सुशिक्षक हैं। जिनकी अबाध लेखनी से जो कु मिलता है। तद्विद्य शास्त्रज्ञों और चिकित्सकों का स्वतः मार्गदर्शन करता है। —र. प्र. त्रि

पीले रंग की बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-आधी छटांक की ६ खुराकें रोज पीना इस रोग में उपकारी है।

३. सूखा रोग (Rickets)—

लक्षण—इस रोग में शिशु दिनों-दिन दुर्बल होता जाता है, बाढ़ रुक जाती है, खोपड़ी बड़ी व चौड़ी हो जाती है, वजन घटता जाता है, ज्वर रहने लगता है, टट्टी फटी-फटी, मटमैली और दुर्गन्धयुक्त होती है, नींद के समय शरीर के ऊपरी भाग पर पसीना आता है, रोगी चिड़-चिड़ा हो जाता है, पेट में जलन होती है, वमन व दस्त प्रायः होते हैं। कभी-कभी खांसी, हड्डियां टेढ़ी मेढ़ी-दर्दयुक्त, तथा शरीर पीला पड़ जाता है।

६ मास से २ वर्ष के शिशुओं को यह रोग अधिक होता है। रोग दूर होने में ३ से ६ मास लग सकते हैं।

उपचार—हल्की धूप में रोगी को नंगा लिटाकर तिल के तैल या मछली का तैल व जैतून का तैल बराबर-बराबर मिलाकर उससे उसके पूरे शरीर की मालिश १०-१५ मिनट तक रोज करें। परन्तु इस तैल मालिश के प्रथम ५ मिनट तक समूचे शरीर की सूखी मालिश भी अवश्य करें। मालिश सदैव नीचे से ऊपर की ओर करनी चाहिये। मालिश के बाद रोगी को ठंडे पानी से स्नान करावें और पुनः ५ मिनट तक उसके शरीर की सूखी मालिश करें, तैल मालिश एक बार शाम को भी करनी चाहिये।

दिन में २ बार एक-एक घंटा के लिये और तीसरी बार रात भर के लिये कमर की गीली लपेट लगावें।

रोगी को यदि कब्ज रहता हो तो सर्व प्रथम उसके पेड़ू पर गरम ठंडी सेंक (३ मिनट × २ मिनट) ३ बार देकर शहद या नीबू का रस मिले गुनगुने पानी का एनिमा देने के बाद ही मालिश का उपचार करना चाहिये।

यदि रोगी का पेट गरम हो तो रोज एक वक्त उस पर ३० मिनट तक गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी लगाने के बाद १० मिनट तक घर्षण कटिस्नान देना चाहिये, अन्यथा पेड़ू पर गरम ठंडी सेंक (३ मिनट × २ मिनट) ३ बार देकर १० मिनट तक घर्षण कटिस्नान देवें।

शरीर की अस्थियों के टेढ़ी मेढ़ी होने पर रोगी को रोज एक पावों का गरम स्नान देने के बाद भीगिया स्नान, फिर उन अस्थियों पर गरम ठंडी सेंक (३ मिनट × २ मिनट) ३ बार देकर ३० मिनट के लिये कपड़े की उष्ण-कर पट्टी लगावें।

ऐसे रोगी की छाती व मुंह पर रोज १ घंटा गहरा नीला प्रकाश, तथा पेट पर पीला प्रकाश डालना लाभ-कारी होता है। तथा ३ भाग आसमानी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल + १ भाग पीले रंग की बोतल का तप्त जल मिलाकर, उसकी ४ खुराकें भी पिलाना चाहिये।

रोगी को स्वच्छ वायु में रखा जाय और उसे पूर्ण विश्राम करने दिया जाय।

यदि रोगी दूध पीता बच्चा हो तो उसकी माता के दूध का सुधार होना भी आवश्यक है। यदि नहीं तो बच्चे के भोजन में बकरी का दूध, मक्खन, दही, भुने मेवे, नीबू का रस मिला पानी, सूप, चोकरदार आटे की रोटी, फल एवं फलों का रस, शहद आदि अवश्य रहने चाहिये। दूध में २ बूंद मछली का तैल मिलाकर पिलाना सूखा रोग में विशेष उपकारी होता है।

४. यकृत्-शोथ (Infantile Liver)—

इस रोग में रोगी शिशु का यकृत् बढ़ जाता है या उसमें सूजन आ जाती है। ऐसे शिशु चिड़चिड़े हो जाते हैं, उन्हें भूख नहीं लगती या कम लगती है, पेट खराब रहता है, मतली (वमन) मालूम होती है, पेट बढ़ जाता है, कभी-कभी ज्वर रहता है, यकृत् के स्थान को दबाने से वहां दर्द होता है, और अन्त में रोगी को पीलिया रोग हो जाता है।

उपचार—जब रोगी को ज्वर रहे तो रोज नींबू रस मिले जल का गुनगुना एनिमा, ३० मिनट के लिये, ३ बार गीली मिट्टी की ठंडी पट्टी, तथा ३ बार भीगिया स्नान या तेज ज्वर में शरीर की ठंडी मालिश करनी होती है। साथ ही उस दशा में नीली बोतल के सूर्यतप्त जल में पीली बोतल का बराबर का जल मिलाकर आधी छटांक की मात्रा में दिन में ४ बार देना चाहिये।

परन्तु जब रोगी को ज्वर न हो तो रोज उसके यकृत् और पेट की ५ मिनट सूखी मालिश करनी चाहिये। फिर गरम ठंडी सेंक (१ मिनट × १ मिनट) ३ बार, तत्पश्चात्

नीबूरस मिले पानी का गुनगुना एनिमा और अंत में १ घंटा के लिये कमर की गीली लपेट लगानी चाहिये।

रोज गरम जल में १० मिनट घर्षण कटिस्नान, कभी-कभी गीली चादर की लपेट यकृत् पर हर दूसरे दिन १०-१५ मिनट धूप नहान, फिर उसे ठंडी तौलिया से पोंछना, दिन में १ वार ३० मिनट के लिये गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी पेड़ू पर, तथा पेड़ू पर गरम ठंडी सेंक (३ मिनट × २ मिनट) ३ वार देकर रातभर के लिये कमर की गीली लपेट लगाना भी हितकर है।

सप्ताह में १ दिन भाप नहान १० मिनट का तथा उसके वाद १० मिनट के घर्षण कटिस्नान की भी जरूरत पड़ सकती है।

आसमानी रंग की बोतल का सूर्यतप्त जल आधी-आधी छटांक की मात्रा से दिन में ४ वार पीना, तथा उसी रंग का प्रकाश १०-१५ मिनट तक यकृत् पर डालना उपकारी है।

भोजन में रोगी को खट्टे फलों का रस, खट्टे फल, विना नमक की उबली सब्जी, छेने का पानी, मठा, मधु मिश्रित जल, मखनिया दूध, तथा नीबूरस मिला जल कुछ दिनों तक देना चाहिये।

यदि रोगी के पेट या शरीर के अन्य अंगों में पानी आ जाय तो उसे उसके गुर्दों की खराबी का लक्षण समझकर गुर्दों का इलाज करना चाहिये।

५. काली खांसी (Whooping Cough)—

लक्षण—यह एक संक्रामक रोग है। इसका जब दौरा होता है तब चेहरा लाल हो जाता है, गले से सीटी की भांति एक अजीब सी आवाज निकलती है, आंखों में पानी आ जाता है तथा कै हो जाती है। इस किस्म की खांसी का दौरा रात्रि में अधिक आता है।

उपचार—रोगी को हवादार जगह में रखना और पूर्ण विश्राम देना चाहिये। रोज गुनगुने पानी का मधु या नीबू का रस मिलाकर एनिमा देना चाहिये। (छोटे बच्चों के गुदमार्ग के भीतर गिलसिरिन की बत्ती या पान की डंडी पर थोड़ा सा नारियल का तैल लगाकर घुसा देने से मल निकल आता है।) फिर छाती पर गरम ठंडी सेंक (एक मिनट × ½ मिनट ३ वार देकर और हृदय पर गीला कपड़ा रखकर छाती की गीली लपेट ४५ मिनट से १ घंटे तक लगानी चाहिये। छाती की यह लपेट दिन में १ वार और लगानी चाहिये।

रोज दो वार सिर को ठंडे पानी से धोकर तौलिया स्नान, तथा रातभर के लिये कमर की गीली लपेट लगानी चाहिये। कुछ दिन वाद गले की गीली पट्टी की भी जरूरत पड़ सकती है।

आवश्यकतानुसार दिन में १ वार १ घंटा के लिये पैरों की लपेट लगाने के वाद साधारण स्नान, तत्पश्चात् शरीर की सूखी मालिश करनी चाहिये, विशेषकर छाती गले व पीठ की।

गहरी नीली बोतल के सूर्यतप्त जल की आधी-आधी छटांक की ४ खुराकें रोज पीनी चाहिये और उसी रंग का प्रकाश छाती पर १०-१५ मिनट डालना चाहिये।

इस रोग में यदि रोगी दो एक दिन उपवास कर सके तो अति उत्तम अन्यथा उसे फलों के रस, तरकारी के सूप, मधु मिले छेने का पानी, या माता के दूध पर रहना चाहिये। फिर फल, सब्जी आदि धीरे-धीरे लेने लग जाना चाहिये। रोज नीबूरस मिले ताजे जल का सेवन यथेष्ठ करना चाहिये।

६. चेचक (Pox)—

चेचक संक्रामक रोग है। यह तीन प्रकार का होता है—छोटी माता (Chicken Pox), वड़ी मात्रा (Small Pox) और खसरा (measles)।

छोटी माता ५ से १० वर्ष के शिशुओं को अधिकतर निकलती है। इसमें पहले दाने निकलते हैं और ज्वर वाद को चढ़ता है जो ९९° से १०१° तक जाता है। दानों का प्रसार शरीर पर तेजी से होता है। दाने दूर-दूर निकलते हैं और सर्व प्रथम प्रायः मुख, छाती, पेट पर निकलते हैं नये दाने रोज निकलते हैं, कुछ पकते हैं, कुछ सूखते हैं। नये दाने छोटे मोती के सदृश होते हैं। रोग ठीक होने की अवधि ७-८ दिन।

वड़ी माता की गिनती तीव्र संक्रामक रोगों में है। कभी-कभी इसमें प्रथम जाड़ा देकर तेज ज्वर चढ़ता है। साथ में शरीर में वेदना, वमन आदि सम्भव है। दूसरे या

रोग जब तक मिट न जाय रोगी को फल-रस तरकारियों के सूप, मधु व नींबू-रस मिश्रित जल तथा दूध पर रखना चाहिए।

८. गलसूआ (Mumps)

लक्षण—यह रोग ४ से १५ वर्ष तक की उम्र के शिशुओं को अक्सर होता है। बड़ों को भी होना सम्भव है। यह संक्रामक है। इस में गले की लाला ग्रन्थियां सूज जाती हैं। दोनों या एक गाल में सूजन आ जाती है। निगलने में कष्ट होता है। कभी-कभी ज्वर १०१° से १०४° तक हो जाता है। मुंह सूखता रहता है। रोग निवृत्ति अवधि ४-५ दिन।

उपचार रोग जब तक रहे या जब तक ज्वर न छूटे, रोज एक बार एनिमा, सिर धोकर रोज ३ बार तौलिया-स्नान, तेज ज्वर हो तो शरीर की ठंडी मालिश या पेड़ू पर गीली मिट्टी की ठंडी पट्टी दिन में ३-४ बार ३०-३० मिनट के लिए।

सिर को धोकर व पोंछकर सूजे गाल पर ४ मिनट व १ मिनट ठंडी सेंक दोनों ३ बार देकर गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी १ घंटा के लिए लगावें सुबह-शाम।

रोग का जोर जब तक कम न हो जाय केवल कागजी नींबू का रस मिला जल रोगी को पिलावें। यदि यह सम्भव न हो तो उसे फल-रस में थोड़ा जल मिलाकर दें। फिर फल-रस, फल, एवं माता का दूध आदि देवें।

गहरी नीली बोतल के सूर्य तप्त जल की ४ से ६ मात्रायें रोज उम्र के अनुसार पिलाना इस रोग में उपकारी है।

९. पसली चलना—

लक्षण—छाती में कफ जम जाने के कारण श्वास कष्ट, कभी-कभी ज्वर श्वास लेते समय एक या दोनों तरफ गड्ढा पढ़ जाना, तथा श्वास जल्दी-जल्दी लेना आदि इस रोग के साधारण लक्षण हैं।

उपचार—पैरों को सदैव गरम रखें। दिन में कई बार नीबू का रस मिला पानी पिलावें। रोग दूर होने पर माता के दूध, फलों के रस, मधु मिश्रित जल या छेने के पानी के सिवा और कुछ खाने को न दें।

रोगी को कब्ज हो तो पेड़ू पर १ मिनट गरम व १ ठंडी सेंक, दोनों ३ बार देकर एनिमा दें। दिन में २ बार पेड़ू पर ३०-३० मिनट के लिए गीली मिट्टी की उष्णकर पट्टी दें दिन में ३ बार छाती पर उसी प्रकार ठंडी सेंक देकर छाती की गीली लपेट लगावें।

गहरे नीले रङ्ग की बोतल का सूर्य तप्त जल अवस्थानुसार मात्रा में दिन ४ बार पिलाना और उसी रङ्ग का प्रकाश पेट व छाती पर डालना लाभकारी है।

१०. दांत निकलने के दिनों के कष्ट—

जो शिशु पहले से ही अस्वस्थ रहते हैं, छठे-सातवें वर्ष उनके दांत निकलने के दिनों में कई तरह की तकलीफें होती हैं, जैसे ज्वर आना, दस्त आना, दूध का न पचना, मुंह में छाले पड़ना, कै तथा खांसी सर्दी, आदि।

उपचार—दांत निकलने के दिनों में ऐसे शिशुओं को नीबू रस मिश्रित जल थोड़ी-थोड़ी मात्रा में यथेष्ट पिलाना चाहिये। उसे अधिक से अधिक विश्राम करने देना चाहिए। उसे ठंढ न लगने देना चाहिए। मसूढ़ों पर शुद्ध शहद की मालिश करनी चाहिए। मसूढ़ों में अधिक दर्द हो तो गालों पर २ मिनट गरम व २ मिनट ठंडी सेंक दोनों ३ बार देकर ४५ मिनट या १ घंटा के लिए कपड़े की उष्णकर पट्टी बांधनी चाहिए। चीनी खाना बन्द कर देना चाहिए। रोज रोगी को सिर को छाया में रखकर नंगे बदन १५-२० मिनट हल्की धूप में लेटना या बैठना चाहिए। और पूरे शरीर पर २० मिनट तक नीला प्रकाश डालना चाहिए।

दस्त लगने पर दिन में २ बार पेड़ू पर गीली मिट्टी की ठंड़ी पट्टी ३० मिनट तक रखनी चाहिए और जरूरत समझने पर रात भर के लिए कमर की गीली लपेट भी लगानी चाहिए।

जच्चा और बच्चा दोनों को गहरी नीली बोतल का सूर्य तप्त जल प्रत्येक २ घंटे पर १-१ चम्मच बच्चे को और दिन में ४ बार आधी-आधी चटांक की मात्रा से जच्चा को पिलाना इस रोग में बड़ा लाभ करता है।

लेखकप्रवर डा० केशवानन्द 'नौटियाल' ए. एम. एस., शंकुधारा, वाराणसी

आधुनिक औषधियों का शिशुओं में प्रयोग उतना ही सफल हुआ है जितना बड़ों में, फिर भी शिशुओं में उनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी होती है। उनकी चिकित्सा में मुख्यत: तीन कठिनाइयां आती हैं, १. निदान की कठिनाई २. प्रयोग विधि की कठिनाई और ३. मात्रा की कठिनाई।

शिशु बोल नहीं सकते। कुछ बड़े होने पर भी अपनी ठीक-ठीक वेदना व्यक्त नहीं कर सकते। उनके अधिकांश रोगों में अतीसार एवं ज्वर प्रकट होते हैं जिससे इन पर ही पहले ध्यान जाता है और मूल रोग की उपेक्षा हो जाती है। अपरिचित व्यक्ति (चिकित्सक)को देखकर बच्चा रोता है और परीक्षा नहीं करने देता। निदान में ये कठिनाइयां है। इन कठिनाइयों के कारण अधिकांश चिकित्सक ज्वर आदि लक्षणों को देखकर सल्फाड्रग्स और प्रतिजीवियों (Antibiotics) का प्रयोग प्रारम्भ कर देते हैं। शिशुओं के ऊपरी श्वसन मार्ग (Upper respiratory tract) के संक्रमण अधिकांशत: विषाणुजन्य होते हैं। इन पर सल्फा औषधियों और प्रतिजीवियों का कोई प्रभाव नहीं होता। इतना ही नहीं, इन औषधियों का एक माह से छोटे बच्चों पर गम्भीर विषालु प्रभाव हो सकता है। उदाहरण के लिए क्लोरेमफेनिकॉल((Chloramphenicol) का यकृत में ग्लूक्यूरोनिक एसिड (Glucuronic acid) से संयुक्त होने के बाद उत्सर्ग होता है। इसके लिए विशिष्ट एँझाइम की आवश्यकता होती है जो नवजात में नहीं होता। परिणामत: पूरी मात्रा में देने पर वह राख के रंग का और ढीलाढाला हो जाता है, पेट फूल जाता है, *अतीसार होने लगता है और परिसंचरण तन्त्र का पात* हो कर मृत्यु हो जाती है। इसका प्रयोग अपवाद स्वरूप तभी करना चाहिए जब स्टैफिलोकोकस का संक्रमण हो जो अन्य प्रतिजीवियों का प्रतिरोधी होता है। इस अवस्था में भी अत्यल्प मात्रा में (२५ मिग्रा. प्रतिकिलोग्राम प्रतिदिन से कम) प्रयोग करना चाहिए।

विटामिन के एनालोग (मीनेफ्थोन Menaphthone) सल्फाफ्यूराजोल (Sulphafurazole) और नोवोवायोसिन (Novobiocin) का प्रयोग समय से पहले उत्पन्न हुए शिशुओं में प्रमस्तिष्कीय नवजात कामला उत्पन्न करते हैं। अत: पहले का निश्चित संकेत (Indication) मिलने पर ही तथा अन्य दो का किसी भी हालत मे प्रयोग उचित नहीं।

टेट्रासाइक्लीन (Tetracycline)—सामान्यत: निर्दोष प्रतिजीवी माना जाता है परन्तु इसका प्रयोग छोटे बच्चों

अभिनव विज्ञान समन्वित चिकित्सा साहित्य के नये सर्जक जिनके ग्रन्थ हाथों-हाथ बिक जाते हैं तथा जिनकी लेखनी विषय का स्पष्टीकरण इतनी सरल और सजीव भाषा में करती है कि पाठक धन्य हो जाते हैं। उनकी कृपा सुधानिधि के जन्मकाल से आज तक अक्षुण्ण रही है और रहेगी। उन्होंने हमें कई सुलेख प्रदान किए हैं जिनके लिए हम बहुत-बहुत आभारी हैं। इस लेख से हमारे पाठक-परिवार की अमित ज्ञान वृद्धि होगी हो इसमें सन्देह नहीं है। —मदनमोहनलाल चरौरे

में या सगर्भा महिलाओं में अन्तिम तिमाही में करने से वह शिशु की बनती हुई और बढ़ती हुई हड्डियों में जमा हो जाता है। दांतों को पीला या भूरा कर देता है और इनेमल (Enamel) का अल्पविकसन (Hypoplasia) करता है। ऑक्सीटेट्रासाइक्लीन (Oxytetracycline) में यह दुर्गुण सबसे कम है।

दूसरी कठिनाई प्रयोग विधि की है। गोली, टिकिया अथवा चूर्ण का प्रयोग शिशुओं में नहीं कराया जा सकता। इनको वह निगल नहीं सकता या ये श्वास के साथ फुफ्फुसों में पहुँचकर उपद्रव करते हैं। पांच वर्ष से छोटे बच्चों को इनका अथवा कैप्स्यूलों का प्रयोग कराना ठीक नही। इंजेक्शनों मे प्रयोग आने वाले घोलों का पी एच (p H) ठीक-ठीक शरीर के अनुरूप नही होता अतः इनके प्रयोग से अत्यधिक शोथ एवं वेदना होती है। इनका यथा सम्भव कम प्रयोग करना ही अच्छा है। बच्चों को केवल तरल रूप में ही औषधियों का प्रयोग कराना सर्वोत्तम है। धन्यवाद है आधुनिक फार्मास्युटिकल उद्योग को जिसने लगभग सभी प्रभावशाली औषधियों को बिन्दु और सिरप के रूप में उपलब्ध करा दिया है। उन्हें रुचिकर भी बना दिया है

बड़े बच्चे मीठी और रुचिकर औषधि चम्मच से ले लेते हैं परन्तु शिशुओं को औषधि सेवन कराने में कठिनाई हो सकती है। शिशु को कपड़े में पूरा लपेट लें जिससे उसके दोनों हाथ और पैर बंध जावें। अब उसे अधलेटी अवस्था में चम्मच से दवा पिलावें। जब तक दवा पेट में न चली जाय चम्मच मुंह के अन्दर ही रखें। दूसरी सांस लेने के पहले शिशु को औषधि निगलनी ही पड़ेगी। यह ध्यान रखें कि जब शिशु सांस अन्दर खींच रहा हो उस समय मुंह में औषधि न डालें। कड़वी दवा बड़े बच्चों को भी बलात् पिलानी पड़ती है।

शिशुओं में मात्रा का ध्यान रखना अति महत्वपूर्ण है। एक विद्वान् का मत है कि शिशु को कम मात्रा दी ही नहीं जा सकती अर्थात् जिस मात्रा को हम कम समझते हैं वह भी शिशु के लिए अधिक है। पारम्परिक औषधियों के बारे में यह सत्य हो सकता है परन्तु प्रतिजीवियों के सम्बन्ध में यह सदैव सत्य नही है। मात्रा का पूरा ध्यान रखना आवश्यक है। जहां अधिक मात्रा विषाक्त प्रभाव कर सकती है वहीं अल्प मात्रा या अपूर्ण-काल तक की गई चिकित्सा हानिकर हो सकती है। उदाहरण के लिए सपूय मस्तिष्कावरण शोथ (Pyogenic Meningitis) में अपूर्ण मात्रा में या अपर्याप्त काल तक प्रतिजीवियों का प्रयोग शिशु को मृत्यु के मुख से बचा सकता है परन्तु उसे सदैव के लिए मन्द बुद्धि, जलशीर्ष (Hydrocephalus) युक्त अथवा अपंग बना सकता है। गोणिकावृक्क शोथ (Pyelonephritis) की अपूर्ण चिकित्सा (मात्रा या समय में) वयस्क होने पर चिरकारी शोणिकावृक्कशोथ और वृक्कपात (Renal failure) उत्पन्न कर सकती है।

मात्रा का विचार अनेक प्रकार से किया गया है। आयु के अनुसार, शरीर भार के अनुसार, शरीर के क्षेत्र-फल के अनुसार और 'प्रतिशत विधि' के अनुसार। इनमें कोई भी पूर्ण समाधान कारक नही है। प्रतिशत विधि के अनुसार पूरे समय पर उत्पन्न ३.२ किग्रा. के शिशु को वयस्क मात्रा की १२.५ प्रतिशत मात्रा देनी चाहिए। १ वर्ष के १० किग्रा. के शिशु को २५ प्रतिशत, सात वर्ष के २३ किग्रा, के बच्चे को ५० प्रतिशत और १२ वर्ष के ४० किग्रा. के बच्चे को ७५ प्रतिशत देनी चाहिए। आज-कल इसे अधिक सन्तोषप्रद माना जा रहा है। फिर भी औषधि देने के पहले शीशी या डिब्बे में मात्रा सम्बन्धी आदेशों को पढ़ लेना चाहिए।

ए. टी. एस. तथा डिफ्थीरिया एण्टिटॉक्सिन का प्रयोग वयस्कों के समान मात्रा मे ही करना उचित है क्योंकि इनकी मात्रा शरीर के आकार, भार आदि पर न होकर विष की मात्रा पर निर्भर करती है जो शिशुओं और बच्चों के रोग में कम नही होती।

कुछ औषधियां यथा बेलाडोना, एट्रोपीन, मॉर्फीन आदि बच्चे ठीक सहन नहीं कर पाते। इनका बहुत साव-धानी से और अत्यल्प मात्रा में प्रयोग उचित है।

इफेड्रीन वयस्कों में केन्द्रीय तन्त्रिकातन्त्र को उद्दीपित करती है परन्तु शिशुओं में यह शामक है। इसके प्रयोग से वे सोते हैं। इसी प्रकार एम्फेटामीन से अधिक चंचल बच्चों की चंचलता कम होती है।

औषधियों पर सामान्य विचार के बाद अब कुछ शिशु रोगों में आधुनिक औषधियों के प्रयोग पर संक्षेप में लिखा जाता है।

नवजात के संक्रमणों में—स्टैफिलोकोकस ऑरियस सबसे बड़ी समस्या है। यह प्रायः पेनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसिन और टेट्रासाइक्लीन का भी प्रतिरोधी होता है। इसके त्वचा के संक्रमणों में १ प्रतिशत नियोमाइसिन या बेसीट्रेसिन के मलहमों का प्रयोग सर्वोत्तम है। पलकें चिपकती हों तो इनका ही ०·५ प्रतिशत मलहम श्रेष्ठ है। *न्यूमोनिया, सेप्टिसीमिया, तीव्र अस्थिशोथ आदि उग्र संक्र*मणों में मेथिसिलिन (Methicilin) १०० मिग्रा. प्रति किग्रा. शरीर भार प्रतिदिन चार विभक्त मात्राओं में अन्तःपेशी दें। इसके स्थान पर क्लोक्सासिलिन (Cloxacillin) इसकी आधी मात्रा में दे सकते हैं। यदि संक्रमण अति उग्र हो और जीवाणुओं का पता लगाने में कुछ समय लगने वाला हो तो क्लोरेम्फेनिकाल २५ मिग्रा. प्रति किग्रा. शरीर भार प्रतिदिन (यह अधिकतम मात्रा है) के साथ क्लोक्सासिलिन या एम्पिसिलिन ५० मिग्रा. प्रति किग्रा. प्रतिदिन ४ विभक्त मात्राओं में दें।

ईस्केरिकिया कोलाइ (Escherichiacoli) से उत्पन्न मस्तिष्कावरण शोथ अथवा गोणिका वृक्क शोथ (Pyelonephritis) में क्लोरेम्फेनिकॉल उपर्युक्त मात्रा में तथा सल्फाडियाजीन १२५ मिग्रा. प्रतिचार घण्टे पर दें। साथ में प्रेडनिजोलोन (Prednisolone) २० मिग्रा. प्रतिदिन ७ दिन तक, १० मिग्रा. प्रतिदिन ७ दिन तक फिर ५ मिग्रा. प्रतिदिन ७ दिन तक देने से शीघ्र लाभ होता तथा बाद के उपद्रव (जलशीर्ष आदि) होने की सम्भावना कम हो जाती है। यदि वमन के कारण औषधि पेट में न रुकती हो तो एम्पिसिलिन ५० मिग्रा. प्रति किग्रा. प्रतिदिन या कोलिमाइसिन (Colimcin) १५०००० यूनिट प्रतिदिन चार विभक्त मात्राओं में अन्तःपेशी दें।

नवजात का रक्तस्रावी रोग—यह जन्म के २ से ५ दिन बाद होता है। यह अनेक तत्वों की कमी से होता है फिर भी विटामिन के (k) द्वारा चिकित्सा की जाती है। यह दो तीन दिन में स्वयं ठीक हो जाता है अतः विटामिन का प्रयोग करने से कितना लाभ होता है यह कहा नहीं जा सकता। यदि देना ही हो तो १-२ मिग्रा मीनेफथोन अन्तःपेशी एक बार दे सकते हैं। इसके स्थान पर विटामिन के (k_1) ५ मिग्रा की मात्रा में दे सकते हैं इससे प्रमस्तिष्कीय नवजात कामला होने का उतना भय नहीं रहता। अत्यधिक रक्तस्राव में रक्ताधान आवश्यक होता है।

नवजात का रक्तसंलायी रोग (Haemolytic Disease of the new born)—यह रीसस नास्तिक (Rhesus negative) माता का रीससआस्तिक (Rhesus positive) शिशु होने से होता है। शिशु के सम्पूर्ण रक्त को रीससनास्तिक उचित ग्रुप के रक्त का आधान कर बदल देना ही इसकी चिकित्सा है। यह विशेषज्ञों का कार्य है।

श्वसनतन्त्र के ऊपरी भाग के संक्रमण (Upper respiratory infections) ये अधिकांश विषाणुओं के संक्रमण से होते हैं। इन पर प्रतिजीवियों का कोई प्रभाव नहीं होता। नाक बहना, कास, ज्वर, पेट दर्द, आदि इनके लक्षण होते हैं। प्रारम्भ में आक्षेप हो सकते हैं। इनमें विश्राम और ज्वर कम करने के लिए स्पंजिग करना चाहिए अनिद्रा में क्लोरल हाइड्रेट २०० से ३०० मिग्रा. दे सकते हैं। *ढाई-तीन वर्ष के बच्चे को फ्वीनालबार्बिटोन* ५० से १०० मिग्रा. दे सकते हैं। यदि नाक बन्द होने से दूध पीने में कठिनाई हो तो दुग्ध पान के पूर्व दोनों नाकों में १ २ बूंद इफेड्रीन का 1% नार्मल सैलाइन में बना घोल डालना चाहिए।

यदि संक्रमण बीटाहीमोलिक स्ट्रेप्टोकोकाइ का हो तो बेन्जिल पेनिसिलिन ५००००० यूनिट अन्तःपेशी दिन में दो बार दें। केवल विषाणु संक्रमण में इसे न दें। आठ दस दिन में रोगी स्वयं ठीक हो जाते हैं।

तीव्र श्वसनी शोथ (Acute bronchitis)—ऊपरी भाग के संक्रमणों का नीचे की ओर प्रसार होने से यह होता है और उसी चिकित्सा से यह भी शान्त होता है। यदि रोग की उग्रता अधिक हो तो यह संक्रमण की आशंका में टेट्रासाइक्लोन समूह के प्रतिजीवी २५ मिग्रा. प्रति किग्रा शरीर भार प्रतिदिन की मात्रा में चार मात्राओं में बाट कर देने चाहिए।

एक वर्ष तक के शिशुओं में विषाणु से होने वाला शोथ सूक्ष्म श्वसनियों में पहुंच जाता है और शिशु की हाल

गम्भीर हो जाती है। इस अवस्था में ऑक्सीजन एवं आर्द्रता के प्रयोग से तुरन्त लाभ होता है।

शिशुओं का न्यूमोनिया—यह सामान्यतः स्टैफिलोकोकस ऑरियस के संक्रमण से होता है। यह जीवाणु प्रायः पेनिसिलीन और टेट्रासाइक्लीनों का प्रतिरोधी होता है। अतः क्लोरेम्फेनिकॉल का प्रयोग आवश्यक हो जाता है जिसे पूरी मात्रा में देना चाहिए। इसका प्रयोग अधिकतम १० दिन तक करें। यदि ३ दिन में स्पष्ट लाभ न हो तो एम्पिसिलिन ५० मिग्रा. प्रति किग्रा. शरीर भार प्रतिदिन चार मात्राओं में बांट कर मुख द्वारा या क्लोक्सासिलिन इसी मात्रा में दें अथवा मेथिसिलिन १०० मिग्रा. प्रतिकिग्रा प्रतिदिन अन्तः पेशी दें। श्वास कष्ट और श्यावता के लिए ऑक्सीजन का प्रयोग उचित है परन्तु ४०° से अधिक सान्द्र ऑक्सीजन का प्रयोग न करें। निद्रा के लिए क्लोरल हाइड्रेट २०० से ३०० मिग्रा. दें।

बच्चों का न्यूमोनिया—

दो वर्ष से बड़े बच्चों का न्यूमोनिया स्टैफिलोकोकस आरियस से कम ही होता है। यह अधिकांश न्यूमोकोकस से होता है जो पेनसिलिन सुग्राही होता है। इसमें ५००००० यूनिट बेंजिल पेनिसिलिन दिन में दो से चार वार अन्तःपेशी दें। तीन चार दिन बाद इन्जैक्शन के स्थान पर मुख द्वारा पेनिसिलिन वी २५० मिग्रा. की मात्रा में प्रति छः घण्टे पर अगले ३-४ दिन तक दें।

अन्तःपूयता (mpyema)—न्यूमोनिया का ठीक उपचार न करने पर यह होता है। बेंजिल पेनिसिलिन ५००००० यूनिट दिन में दो से चार बार अन्तःपेशी दें। सुई द्वारा पूय का निर्हरण कर उसी स्थान पर १००००० यूनिट पेनिसिलिन प्रतिदिन भर दें। सामान्यतः इतने से ही यह ठीक हो जाता है। जब पूय गाढ़ा हो और सुई से न निकलता हो तब शस्त्रकर्म आवश्यक होता है।

शिशुओं में अन्तःपूयता सामान्यतः स्टै० ऑरियस से होती है। उनमें पूय का कल्चर करके जीवाणुओं की सुग्राहिता को पता लगाकर प्रतिजीवी का प्रयोग करना उचित होता है। सामान्यतः मेथिसिलिन का प्रयोग अच्छा रहता है। १०० मिग्रा. प्रति किलो ग्राम शरीर भार प्रतिदिन अन्तःपेशी और पूय निकाल कर उस स्थान पर १०० मिग्रा. प्रतिदिन देना चाहिए। प्रति जीवियों से पूर्ण लाभ न होने पर शल्यचिकित्सक की सहायता अनिवार्य हो जाती है। मेथिसिलिन के स्थान पर क्लोक्सासिलिन का प्रयोग (उसकी आधी मात्रा में) किया जा सकता है।

थ्रश (Thrush) जेंशियन वायोलेट का ०·५ प्रतिशत घोल १ मिलि मात्रा में दिन में तीन वार पिलावें। घोल ताजा होना चाहिए। इसका प्रयोग अधिक दिन नहीं करना चाहिए। दूसरी सफल औषधि है निस्टैटिन (Nystatin) १००००० यूनिट की मात्रा में प्रति चार घण्टे पर दस दिन तक दें। यह जेंशियन वायोलेट से कम प्रभावी है।

हर्पीजजन्य मुखशोथ—(Herpetic Stomatitis) एफ्थस और व्रणी मुखशोथ हर्पीजसिम्प्लेक्स के विषाणु से होते हैं। सात आठ-दिन में स्वयं ही ठीक हो जाते हैं पोटैशियम क्लोरेट के घोल से दिन में तीन वार कुल्ले करने से लाक्षणिक शान्ति मिलती है। प्रतिजीवियों का प्रयोग अनावश्यक है।

आमाशयान्त्र शोथ- (Gastroenteritis) अधिकांश आन्त्रेतर संक्रमणों में भी वमन अतीसार होते हैं। अतः उक्त लक्षणों वाले शिशु का पूरा परीक्षण कर कारणभूत संक्रमण का पता लगाकर उसकी चिकित्सा करनी चाहिए यदि आमाशयान्त्र के ही संक्रमण हों तो नियोमाइसिन ५० मिग्रा० प्रति कि.ग्रा. पोलीमिक्सन वी ५००००० यूनिट प्रति कि०ग्रा० शरीर भार प्रतिदिन चार विभक्त मात्राओं में देने चाहिए। आमाशयान्त्र पथ से अवशोषित नहीं होते और स्थानिक जीवाणुओं पर कार्य करते हैं।

शिशु को पहले चौबीस घण्टे दूध नहीं देना चाहिए उसके स्थान पर आधी शक्ति का नार्मल सैलाइन १८० मि.ग्रा प्रति किग्रा. प्रतिदिन १२ विभक्त मात्राओं में प्रति दो घण्टे पर देना चाहिए। चौबीस घण्टे में स्थिति सुधर जाती है और अल्प मात्रा में दूध देना प्रारम्भ कर सैलाइन घटाते जाना चाहिए।

आक्षेप (Convulsions)—शिशु को तीन प्रकारों के आक्षेप हो सकते हैं १. जन्म के समय मस्तिष्क अभिघात से २. अल्पकैल्सियमरक्तता से और ३. अज्ञातहेतुक। अभिघात या श्वासावरोध (Asphixia) से होने वाले आक्षेपों में क्लोरल हाइड्रेट ६० से १२० मिग्रा. प्रति

चार घण्टे पर देते हैं। ऑक्सीजन की भी आवश्यकता हो सकती है। अल्प कैल्सियम रक्तता के आक्षेप जन्म के कई दिन बाद होते हैं। मां का दूध पीने वाले बच्चों को ये शायद ही कभी होते हैं। इन आक्षेपों में कैल्सियम क्लोराइड ३०० मिग्रा. प्रति तीन घण्टे पर तीन दिन तक देते हैं अथवा १० प्रतिशत कैल्सियम ग्लूकोनेट का ३ मिलि० घोल अन्तःपेशी देते हैं।

बड़े शिशुओं के अज्ञात हेतुक आक्षेपों में क्लोरल-हाइड्रेट २५० मिग्रा. प्रति चार घण्टे पर अथवा फीनो-बार्बिटोन ८ मिग्रा. प्रति चार घण्टे पर देते हैं। यदि इतने से आक्षेप शान्त न हों तो पायरीडॉक्सीन आश्रित आक्षेपों का विचार करना चाहिए। ये आक्षेप १० मिग्रा पायरी-डॉक्सीन अन्तःपेशी देने पर तुरन्त शान्त हो जाते हैं।

बच्चों को ज्वर प्रारम्भ होते समय प्रायः आक्षेप होते हैं परन्तु ५ वर्ष से बड़े बच्चों में ऐसा नहीं होता। इन बड़े बच्चों में पूरी परीक्षा करने के बाद यदि कोई कारण न मिले तो अज्ञातहेतुक आक्षेप समझने चाहिए। आक्षेप यदि कुछ मिनटों से अधिक रह जांय तो पैराल्डि-हाइड १ मिलि. प्रति सात किलो ग्राम शरीर भार के अनुपात से अन्तःपेशी देना चाहिए। अथवा सोडियम फीनो-बार्बिटोन ५ मिग्रा. प्रति किग्रा. शरीर भार अन्तःपेशी अथवा फेनिटॉइन सोडियम ५० से १०० मिग्रा. अन्तः पेशी दें।

अज्ञातहेतुक अपस्मार का निदान होने पर फीनो-बार्बिटोन सबसे सुरक्षित औषधि है। ३० से ६० मिग्रा. की मात्रा में दिन में दो या तीन बार दें अन्य औषधियां हैं फेनिटॉइन सोडियम ५० से १०० मिग्रा. दिन में २-३ बार इथोटोइन २५० से ५०० मिग्रा दिन में २-३ बार प्राइमिडोन १२५ से २५० मिग्रा. दिन में २-३ बार आदि। पेटी मल में ईथोसक्सिमाइड १२५ से २५० मिग्रा० या ट्राइमिथडोन १५० से ३०० मिग्रा. अथवा पैरामेथैडियोन १५० से ३०० मिग्रा० दिन में तीन बार अच्छा लाभ करती है। उपर्युक्त सभी औषधियों के विषाक्त प्रभावों का ज्ञान रहना आवश्यक है।

असंयत मूत्रता (Enuresis) दैहिक कारणों की पूरी छानबीन करने के बाद ही इसका निदान करना चाहिए गोणिकावृक्क शोथ, वृक्कपात, मधुमेह और उदकमेह (Diabetes insipidus) का भी विचार कर लेना है। इसमें अनेक औषधियां अस फलता या अल्पसफलता के साथ प्रयोग की जा चुकी हैं। आजकल इमिप्रामीन (पेटेन्ट नाम टोफ्रेनिल) १ या २ टिकिया सोते समय दी जा रही है और सफलता भी मिल रही है। अनेक शिशुरोग विशेषज्ञों का विचार है कि जिन बच्चों को बहुत छोटी अवस्था से ही मल-मूत्र त्यागने की ट्रेनिंग दी जाती है वे ही बिछौना अधिक भिगोते हैं। वस्तुतः १५ माह से पहिले शिशु मूत्र पर नियन्त्रण नहीं कर सकता।

कश्यप के बालपोषक दो अनुपम योग

१—विघृष्य धौते दृषदि प्राङ्मुखी लघुनाम्बुना। आमथ्य मधु सर्पिर्भ्यां लेहयेत् कनकं शिशुम्॥
सुवर्णं प्राशनं ह्येतन्मेधाग्निबलवर्धनम्। आयुष्यं मङ्गलं पुण्यं वृष्यं वर्ण्यं ग्रहापहम्॥
मासात् परममेधावी व्याधिभिर्न च धृष्यते। षड्भिर्मासैः श्रुतधरः सुवर्णप्राशनाद्भवेत्॥

पूर्व दिशा में मुंह करके धोये हुए साफ पत्थर पर थोड़े से पानी के साथ स्वर्ण को घिसकर (½ से ⅓ रत्ती) उसमें मधु और घृत (असमान मात्रा) मिलाकर प्रातः सायं ६ मास तक चटाने से बालक परम बुद्धिमान् दीर्घायु और व्याधिरहित होता है इसे सुवर्ण प्राशन कहते हैं।

सूत्रं

२—ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी, शतावरी, पुनर्नवा, (वन विशेष) किसी एक को मधु के साथ चटाने से बालक मेधावी होता है।

—वैद्य द्वारका मिश्र

यूनानी वैद्यक तथा बालशिरोरोग

ले०-वद्यराज हकीम दलजीतसिंह, चुनार आयुर्वेद यूनानी औषधालय,
चुनार (मिर्जापुर)

आयुर्वेद तथा यूनानी जगत् का कौन व्यक्ति होगा जो हकीम दलजीतसिंह की विद्वत्ता से परिचित न होगा। एक लम्बे समय तक अपने ही बल पर यूनानी वैद्यक की नाव को खेने वाले इस विद्वान् के समक्ष अच्छे-अच्छे विद्वानों के मस्तक नत हो जाते हैं। आप आजकल काफी समय से अस्वस्थ चल रहे हैं तथा शिशुरोग चिकित्साङ्क के लिये चाहते हुए भी हमें लेख भेजने में असमर्थ रहे हैं। सुधानिधि का यह विशेषाङ्क आपकी लेखनी से रहित न हो जाय इस उद्देश्य से आपके प्राणाचार्य में प्रकाशित एक पूर्व लेख को यहां स्थान दिया जा रहा है। आशा है यूनानी वैद्यक के प्रेमीजन इस सुन्दर लेख से लाभ उठावेंगे।

—गोपालशरण गर्ग

पाठकों को यह ज्ञात होना चाहिये कि यूनानी वैद्यक में बालपिपासाधिक्य रोग (उताश अत्फाल), बालापस्मार वा बालाक्षेप (तशन्नुज अत्फाल और उम्मुस्सिब्यान), नमस्कारी बालाक्षेप (उकाल अत्फाल या तशन्नुज सलामी) बालापतानक (कुज़ाज अत्फाल), जलमस्तिष्क अर्थात् मस्तिष्क का जलन्धर (माउर्रास, इस्तिस्काउदिमागो) और शिरोवृद्धि (तअज्जुमुर्रास) आदि रोगों का समावेश बाल शिरोरोगों में किया गया है। इनमें से प्रथम दो रोगों के निदान लक्षण-चिकित्सा आदि का वर्णन संक्षेप से यूनानी वैद्यक के मत से यहां किया जाता है।

लेखक

उताश अत्फाल (बालमस्तिष्कशोथ)

परिचय—

यह बालकों का एक रोग है जिसमें मस्तिष्क में सूजन हो जाती है और शिशु बराबर पानी मांगता है। इसलिये इसको उताश (पिपासा रोग) कहा जाता है। वस्तुत: यह एक प्रकार का सरसाम (मस्तिष्क शोथ, सन्निपात) है जिसे डाक्टरी (पाश्चात्य वैद्यक) में इन्फैन्टाइल मेनिन्जाइटिस (Infantile menigitis) कहते हैं।

नैदानिक लक्षण—

इस रोग में बालकों को अत्यन्त बेचैनी एवं प्यास होती है और वे अपने शिर को दायें-बायें उलटते पलटते रहते हैं। निद्रा नहीं आती, यदि झपकी (गुनूदगी) आती भी है, तो शिशु तत्काल चौंककर उठ बैठता है, ज्वर तीव्र होता है। शिशुका स्वभाव चिड़चिड़ा होता है और बारबार रोता है। हस्त-पाद में आक्षेपयुक्त अवस्था होती है, कभी मूर्च्छा की दशा होजाती है। कभी कभी अत्यधिक विरेक आते हैं। यह रोग साधारणतया बालकों को ग्रीष्म ऋतु में लू लगने से या धूप में अधिक काल पर्यन्त रहने से तथा दन्तोद्भेद
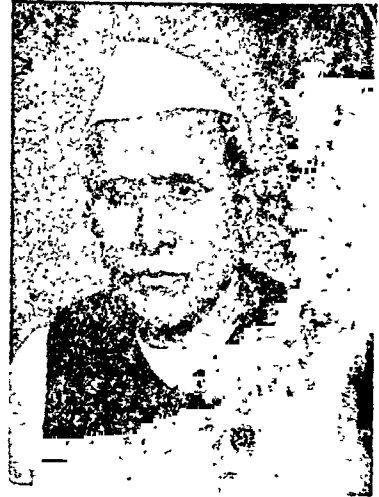
काल में मस्तिष्क में शोथ उत्पन्न होकर हुआ करता है परन्तु इस रोग का सबसे महत्व का कारण जो सामान्य रूप से होता है वह यह है कि प्राय: कतिपय नासमझ स्त्रियां सहवासोत्तर बिना कुछ खाये शिशु को तत्क्षण स्तन्य पान करा देती हैं जिससे इस रोग का प्रादुर्भाव हो जाता है। प्रथम तो स्तनपानकाल में शिशु की रक्षा के हेतु स्त्री प्रसङ्ग से यथाशक्य परहेज करे। क्योंकि इस क्रिया से स्तन्य प्राय: दूषित होकर शिशु के लिये विषवत् हो जाता है; पर यदि यह न हो सके तो उक्त क्रिया के पश्चात् पान या कुछ कलेवा करके कम से कम एक घण्टे के उपरांत शिशु को दूध पिलाना चाहिते।

चिकित्सा—सर्वप्रथम शिशु के मूर्वा (तालु) पर यह लेप लगायें।

प्रलेप—१ कद्दू हरे का छिलका, ककड़ी का छिलका, हरे कुलफा के पत्ते (बृहल्लोणीपत्र) ६-६ मा., हरे धनिये का निकाला हुआ स्वरस १ तोला, हरी मकोय का रस १ तोला, सिरका २ तोला

—इनको मिलाकर लेप करें। (इनमें से जो द्रव्यउपलब्ध हों, वे ही पर्याप्त हैं)।

अन्य लेप—२—शिरका, अर्क गुलाब १-१ तोला

—दोनों मिलाकर इसमें कपड़ा तर करके बराबर मूर्धन्य स्थान पर रखें।

पेय ओषधि—पीने के लिये निम्न योग देवें।

३ - गावजवानपत्र का लुवाव १ माशा, दो नग उन्नाव का शीरा ५ तोला, अर्क गावजवान में १ माशा छिले हुये काहू के बीजों का शीरा निकालकर ६ माशा

—शर्बत निलूफर मिलाकर थोड़ा-थोड़ा पिलाते रहें। यह योग १॥—२ वर्ष की आयु के शिशु के लिये है। इसी प्रकार वयानुसार इसका प्रमाण न्यूनाधिक किया जाय। यह सम्पूर्ण योग तीन-चार बजे तक पिला देना चाहिये और सायंकाल पुन: यह योग नवीन प्रस्तुत होना चाहिए जिसे रात्रि में समाप्त कर दिया जाय। यदि विरेक आते हों, तो इसी योग में १ माशा इलायची के बीजों का शीरा तथा भुने हुये १ माशा कुलफा के काले बीजों का शीरा (बीजों को जल में पीस-छानकर) योजित कर देवें। यदि कब्ज (मलावरोध) हो तो तरंजबीन (यवास शर्करा) ६ माशा और शीरखिश्त ६ माशा को चार तोले अर्क गावजवान में घोलकर कोष्ण पिलावें। यदि तृष्णा की अधिकता हो (जो प्राय: होती है) तो यह जल थोड़ा थोड़ा पिलाते रहें।

जल—४—जहरमोहरा २ माशा, वंशलोचन ६ माशा, कमलगट्टे की गिरी ३ नग, नीम के पत्र की डंटी की ढेपुनी (निंबपत्रदंडमूल) २॥ नग, रस २ माशा, सफेद इलायची ३ नग

—समस्त द्रव्यों को अधकुटा अर्थात् यवकुट करके पोटली में बांध और एक बरतन में जल भरकर उसमें पोटली की दवा को डाल देवें और थोड़ा-थोड़ा यह पानी शिशु को पिलाते रहें।

बालाक्षेप या बालापस्मार

पर्याय—तशन्नुज अत्फाल, उम्मुस्सिब्यान (अ०) उल्वक÷ (स०); बच्चों की मृगी (हि०); इन्फैन्टाइल कन्वलशन्स (Infantile Convulsions) (अं०)

रोग विवरण तथा निदान--इसका कारण मस्तिष्क की विकृति होती है, जो कष्टप्रसूति के समय शिर पर दवाव के कारण कभी-कभी हुआ करती है। मस्तिष्कीय शक्तियों के निर्बल होने से तथा श्लेष्मल द्रव्यों की अधिकता और खाने पीने में असावधानी के कारण 'स्तनपायी एवं अल्पवय शिशुओं में प्राय: स्तनत्यागोपरांत भी कतिपय शिशुओं को यह व्याधि हो जाती है। बालकों में प्रारम्भिक काल से सात आठ वर्ष तक आक्षेपयुक्त रोग प्राय: हुआ करते हैं; क्योंकि उक्त काल (वय, अवस्था) में वातनाड़ियाँ अत्यन्त स्पर्शनाक्षम एवं कोमल होती हैं जो सामान्य उत्तेजक कारण से प्रभावित हो जाती हैं। तात्पर्य यह कि शिश्वाक्षेप अधिकतया इतर स्थानगत कष्ट एवं व्याधि के कारण प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न हुआ करता है, विशेषत:

÷ गर्भाम्भसामवनात् श्लेष्मण: कण्ठगस्य वा।
संपर्काद् हृदये दुष्टो मार्गानावृणुते रस:॥
बद्धमुष्टिस्ततो मुह्येद्रोगैर्बालोऽभिभूयते।
हृद्रोगाक्षेपक श्वासकासच्छर्दि ज्वरादिभि:॥
उल्वकं सहजं व्याधिमम्बुपूर्णं च तं वदेत्।
]—(अष्टांगसंग्रह उत्तर २)॥

जबकि शिशु किसी कारणवश दुर्बल एवं शक्तिहीन हो यथा वह फक्क रोग पीड़ित हो अथवा उसे उत्तम आहार एव दूध उपलब्ध न होता हो।

उन वास्तविक दशाओं एवं व्याधियों के जिनसे उपद्रव के रूप में आक्षेप प्रगट होता है, कतिपय उदाहरण निम्न हैं:—दन्तोद्भेद, अन्त्रकृमि, वस्तिवृक्काश्मरि, अजीर्ण, मलावरोध, अतिसार, सर्दी लगना, भीगना, भय एवं निराशा का होना। इसी प्रकार कतिपय मस्तिष्क रोग एवं मस्तिष्कगत विकृति भी आक्षेप का कारण होती हैं। यथा–शोथ संन्यास (सकता) मस्तिष्कगत रक्ताल्पता या वृक्करोगों एवं रोमान्तिका (खसरा) जैसे ज्वरों के कारण मस्तिष्कगत रक्त में दुष्ट दोषों का पहुँचना। रक्तस्राव से भी कभी-कभी आक्षेप प्रगट हो जाते हैं।

सूचना—तीव्र ज्वर एवं फुफ्फुसशोथ आदिमें भी कम्प से ज्वर चढ़ने के स्थान में प्राय: शिशुओं को आक्षेप हो जाता है।

लक्षण—तीव्रता और अतीव्रता के विचार से इसके लक्षण दो प्रकार के होते हैं।

अतीव्र लक्षण—यह प्रसव के थोड़े दिन पश्चात् बालकों में प्रगट होता है। इसमें बालक 'प्रकटत: सोता हुआ प्रतीत होता है। नेत्र गोलक को घुमाता और ऊपर को चढ़ा लेता है। चेहरे की पेशियों में किंचित् स्फुरण की गति होती है। मुख के चारों ओर कभी एक नीला सा मंडल बन जाता है। बालक हलके कराहता है तथा उसके श्वास में कुछ कष्ट एवं कृच्छ्रता अनुभूत होती है। प्राय: दशा अजीर्ण एवं स्तनदोष के कारण उत्पन्न होती है। अत एव उक्त अवस्था में पाचन एवं हृद्य औषधियां प्रयोग करें। यथा-अर्क अजवायन, अर्क पोदीना, मिश्रेयार्क अर्क इलायची इत्यादि दवाउलमिस्क आदि के साथ।

तीव्र आक्षेप के लक्षण—इसमें बालक चीख मार कर मूर्छित हो जाता है तथा पेशियां आक्षेपग्रस्त होने लग जाती हैं। प्रारम्भ में हस्तपाद अत्यन्त खिचे हुये, उगलियां मुड़ी हुई, शिर सामने, पीछे या किसी एक पार्श्व की ओर बराबर चेष्टा करता है। नेत्रगोलक बाहर निकले हुये, ऊपर और भीतर को खिचे हुए होते हैं। नेत्र से नेत्रस्राव (अश्रु) जारी होता है। पुतलियां संकुचित जो अन्त में विस्तीर्ण और प्रकाश से अप्रभावित एवं संज्ञारहित होजाती है। बांछें ऊपर एवं बाहर की ओर खिची हुई होती हैं जिससे चेहरा कुरूप हो जाता है। चेहरे का रङ्ग प्रारम्भ से रक्तवर्ण, तत्पश्चात् नीलवर्ण हो जाता है। मुख से श्वेत झाग (फेन) निकलते हैं। पर यदि जिह्वा कट गई है, तो उक्त अवस्था में झाग का रंग रक्त के कारण रक्तवर्ण हो जाता है। स्वर यन्त्र (हंजराय) में आक्षेप होने के कारण श्वास कृच्छ्तायुक्त, अनियमित एवं कठिन होता है। ग्रैवेयी शिरायें रक्त से परिपूर्ण हो जाती हैं नाड़ी क्षीण एवं तीव्र होती है। औदरीय पेशियों के आक्षेप के कारण मलमूत्रोत्सर्ग पर अधिकार नहीं रह जाता। उक्त उपद्रव (जबतक कि बारी समाप्त न हो जाय) एक दो क्षण के लिये शांत होकर पुन: प्रकुपित हो जाते हैं। फिर जब बारी समाप्त होने लगती है तब बालक एक गम्भीर श्वास लेता है। हस्तपाद ढीले पड़ जाते हैं। चेहरे की निलाहट दूर होकर असली रङ्ग निकल आता है और भयातुर बालक की भांति रुदन करता है तथा रुदन करते-करते सो जाता है। स्वेद से शरीर क्लिन्न हो जाता या सन्यस्तावस्था में (बहालत कूमा या सुबात) बालक यमलोक सिधार जाता है।

स्मरण रहे कि आक्षेप कभी शरीर के एक ओर या केवल चेहरे की पेशियों में अथवा एक हाथ में या एक पांव में होता है। पुन: यदि उभय ओर आक्षेप प्रगट हो, तो दोनों ओर एक समान नहीं होता। अत एव चेहरा अधिक कुरूप हो जाता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि बारी जितनी हलकी होगी, उतनी ही चिरस्थायी रहेगी। कतिपय बालकों में दो चार घंटे विराम के पश्चात् बारी पुन: प्रगट हुआ करती है और दिन में तीन चार बार बारी आती है। यदि बारी नष्ट होने के पश्चात् शिशु अत्यन्त अनस्थैर्य के साथ दांत पीसे और करवट बदलता रहे और भली-भांति निद्रा न आये तो बारी के पुन: प्रगट होने की आशंका है। यह रोग जितना ही अधिक वय के बालक को हो उतना ही अल्प भयावह होता है।

परिणाम—इस रोग के परिणाम स्वरूप कतिपय बालकों के नेत्र में भेंगापन (हवल) हो जाता है। कतिपय

बालकों को अङ्गपात एवं पक्षाघात, कतिपय की बौद्धिक शक्तियों में विकृति तथा कतिपय की दृष्टि शक्ति, घ्राण शक्ति या वाक् शक्ति में विकार उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सा—आवेगकाल में ग्रीवा, वक्ष, कटि आदि के तङ्ग बंधनों को खोलकर ढीला करें। शिर को ऊंचा करके मुखपर शीतल जल के छींटे मारें। रोगी को हवादार स्थान में रखें। तदुपरान्त उष्ण जल में बालक को बैठाकर शिर के ऊपर शीतल जल डालें या बर्फ रखें।

यदि बारी लम्बी हो जाय, तो ग्रैवेयी धमनी (शिर वान सुबाती) पर किंचित् दबाव डाले और आक्षेप निवारक आघ्राण औषधियां (नगलने व समूमात) सुंघावें। सिरका जल में मिलाकर बस्ति देवें (सिरका १ भाग, जल ३ भाग)।

बारी दूर होने के पश्चात् मूल कारण की ओर ध्यान देवें, उदाहरणतः मलावरोध निवारणार्थ विरेचन औषधियों की बस्ति देवें। यदि आध्मान हो तो वातानुलोमन औषधियों का उपयोग करायें। यदि आमाशय में दूषित आहार का संचय हो तो, वमन औषधि प्रयोग द्वारा आमाशय की शुद्धि करें। यदि रोग का कारण अन्त्रकृमि हो तो उसके नाश एवं निर्हरण की ओर ध्यान देवें। यदि दन्तोद्भेदकाल हो, तो आवश्यकता एवं उपयोगिता और सुविधा के अनुसार दन्तवेष्ट (मसूड़ों) का भेदन करें।

रोग के हेतुओं की ओर ध्यान देने के सिवाय रोगोपशम काल में आक्षेपहर तथा मस्तिष्क एवं वातनाड़ियों को बल देने वाली औषधियां भी प्रयुक्त की जाती हैं। यथा—कस्तूरी, जदवार, कपूर, कस्तूरी, हिंगु, प्रभृति। ऐसी इस प्रकार की औषधियां सरलान्त्र के रास्ते बस्ति द्वारा प्रवेशित की जाती हैं, जबकि निगलना वर्ज्य होता है। आक्षेपहर बस्ति योग—

३५—कस्तूरी	२ रत्ती
कपूर	१ माशा
हींग	१ माशा
मुर्गी का अण्डा	१ नग
जल	१२ तोला

—सबको घोलकर बस्ति करें।

यदि संन्यास (मूर्छा, सुबात) की दशा हो, तो शिर पर शीतल जल डालें। यदि हस्तपाद (ऊर्ध्वाधः शाखायें) शीतल हों, तो उष्ण, उत्तेजक एवं बल्य औषधियों (उदाहरणतः दवाउल मिस्क, कपूर, मद्य आदि) से उन्हें उष्ण करें। व्यग्रता एवं व्याकुलता की दशा में वातनाड्यवसादक और रक्ताल्पता की दशा में लौह के योग प्रयुक्त करायें। बारी समाप्त होने के पश्चात् बालक की पुष्टि एवं बलवर्धन के लिये बल्य औषधियां तथा उत्तम रक्तवर्धक एवं लघु पथ्याहार सेवन करायें।

अपथ्य—यदि शिशु स्तनपायी हो, तो उसे स्तन्यपान कराने वाली (स्तन्यधात्री) को उत्तम आहार देना चाहिए तथा तरावट (रतूबत) उत्पन्न करने वाली वस्तुओं जैसे चावल आदि तथा उन वस्तुओं से जिनका उल्लेख मृगी के वर्णन में हो चुका है, परहेज करायें। यदि बालक सयाना हो तो उसके खानपान एवं अन्य उपायों से सावधानी रखें।

पथ्य—स्तन्यधात्री (स्तन्यपान कराने वाली स्त्री) को लघु शीघ्रपाकी आहार देना चाहिए। छागी-मांसरस चपाती के साथ या कुक्कुट का मांसरस, मूंग की दाल या अरहर की भुनी हुई दाल और पक्षियों का मांसरस आदि देवें। बालक यदि सयाना हो और खाता पीता हो, तो यही वस्तुयें क्षुधा से न्यून एवं सावधानीपूर्वक बालक को देनी चाहिए।

—★—

बालरोगों की होमियोपैथिक चिकित्सा

श्रीमती शशिउमादेवी, एच.एम.डी. (कलकत्ता), स्वर्णपदक प्राप्त, आयुर्वेदरत्न, प्रभाकर
मंगलगढ़ (समस्तीपुर) बिहार

बच्चों के बहुत से रोग होमियोपैथिक औषधियों से इस प्रकार आराम कर दिये जाते है कि लोगों को चमत्कार-सा प्रतीत होता है। उन्ही प्रभावशाली होमियोपैथिक औषधियों मे से कुछ का उल्लेख नीचे कर रही हूँ। आशा है, पाठक इससे पर्याप्त लाभ उठायेंगे। होमियोपैथिक चिकित्सा प्रणाली में रोग का चुनाव नही करके रोगी के समस्त शरीर और मन में मिलने वाले लक्षणों के आधार पर उपयुक्त औषधि का चुनाव होता है। फिर भी चिकित्सकों (पाठकों) के अध्ययन की सुविधा के लिए बच्चों के रोगानुसार औषधियों का उल्लेख कर रही हूँ।

बच्चों का अतिसार--

१. **इथूजा सिनैपियस**—नन्हें शिशुओं को दूध की उल्टी होना, बच्चो को दूध या दूध से निर्मित कोई वस्तु नही पचपाना, दांत निकलते समय या गर्मी के मौसम में दस्त और कै होना, बच्चा कुन्दबुद्धि का, व्याकुल और निरन्तर रोता रहता है। पतले दस्त, खींचन और अकड़न, प्रत्येक वार दस्त के बाद बच्चा कुछ समय तक अचेत पड़ा रहता है। हैजा में ज्वर आकर नाड़ी क्षीण या लोप हो जाये किन्तु प्यास बिलकुल ही नही लगे। पाखाने के साथ ही उदर में वेदना, दस्त का तीव्र वेग और अति-कुंथन होना। दस्त का रंग कभी हलका पीला, कभी जल के सदृश पतला और कभी उसमें आंव और रक्त मिश्रित रहता है। यह दवा ६ या ३० शक्ति की गुणप्रद है।

२. **कैल्केरियाफॉस**—दुबले पतले बच्चे जिनका शरीर क्षीण, रोगग्रस्त, पेट या तो खूब धंसा हुआ या खूब अफरा हुआ, सिर बड़ा, पसलियां कमजोर, माथे की हड्डियां पतली और कमजोर, बहुत विलम्ब से दांत निकलना आदि धातुगत लक्षणों से युक्त हो और उन्हें यदि दस्त हों एवं हैजा के कारण वमन व अतीसार हो, नन्हें शिशु के पेट में दूध एकदम नही ठहरता हो तथा दस्त का रंग हरा हो श्वेत हो और चिकने पदार्थ उसमें मिले हुए हों, बच्चा जिस पेय को पिये वही दस्त के साथ निकल जाय, दस्त गरम हो तथा उसके साथ वायु निकलती हो, शरीर ठण्डा होता जाता हो तथा बच्चा मुर्दे के सदृश चुपचाप पड़ा हो तो यह औषधि ३X और २०० X की शक्ति में चमत्कारी लाभ दिखलाती है।

३. **ओलियेण्डर** - जल की तरह पतला मल और उसके साथ बिना पचा हुआ खाद्य पदार्थ ज्यों का त्यों निकल जाय। जितनी बार अपानवायु निकले उतनी ही बार कुछ न कुछ दस्त होकर बच्चे की कच्छी (लंगोटी) में मल लग जाय तो यह औषधि गुणदायक सिद्ध होती है। शक्ति ३० और २००।

४. **ऐलो साक्रोट्राइना**-दस्त का रंग पीला, दस्त के पहले पेट खूब गड़गड़ आवाज करता है, अनजान में दस्त हो जाता है। खाने-पीने के बाद ही दस्त लग जाता है। इसमें ३० या २०० शक्ति की औषधि गुण करती है।

बच्चों को दूध की उल्टी—

१. **कैल्केरिया कार्ब**—बच्चे को दूध पिलाते ही दही जैसी जमी हुई खट्टी वमन हो जाती है। वमन होने के

श्रीमती डा. शशिउमादेवी अपने सुयोग्य विद्वान् पति के साथ मंगलगढ़ के सर्वमांगल्य प्रदायक एम. अस्पताल में समाज के स्वास्थ्य संरक्षण में अहर्निश तल्लीन रहती हैं। उनके व्यस्त जीवन के अवकाश के क्षणों का यह मधुर प्रसादरूप लेख निश्चय ही पाठक-प्रवरों को प्रसीदित करेगा। —गोपालशरण गर्ग

बाद ही भूख लगती है किन्तु कुछ खिलाने-पिलाने पर वह पच नहीं पाता। लक्षण तीसरे पहर और सन्ध्या समय बढ़ जाते हैं। यह स्थूल मोटे ताजे शिशु को ही होता है। शक्ति ३० और २००।

२. **इथूजा सिनैपियम**—शिशु या बच्चा दूध पीते ही दही की तरह थक्का-थक्का उल्टी कर देता है। प्यास बिलकुल नहीं रहती। उल्टी बहुत जोर से होती है। यदि कुछ समय तक दूध उदर में रहा तो बहुत बड़े थक्कों के रूप में उल्टी होती है। उल्टी में खट्टी गंध होती है। नींद एकदम नहीं आती। बच्चा बहुत कमजोर हो जाता है। शक्ति ६ या ३० क्रम।

३. **ऐण्टिमोनियम क्रूडम**—यदि बच्चे की समस्त जीभ पर दूध लगा हुआ हो ऐसा दिखाई देगा, बच्चा कोई मधुर वस्तु खाकर वमन करेगा और बच्चा चिड़चिड़ा एवं क्रोधी होगा तो यह दवा ३० से २०० शक्ति में लाभप्रद है।

४. **कैल्केरिया फास**—अतीसार के प्रकरण में देखें। शक्ति ३X गुणकारी है।

बच्चों का हैजा—

१. **कैल्केरिया कार्ब**—दूध पिलाते ही दही जैसी जमी हुई खट्टी, उल्टी, हरा या पीला दस्त, दस्त के साथ फटा-फटा दूध निकलता है। दस्त की गन्ध बहुत खट्टी या सड़ी-गली तेज गन्ध वाली होती है। बच्चा जिद्दी हो जाता है तथा गोद में लेकर रखने पर एकटक से मूर्खों की तरह देखता रहता है। शक्ति ३X लाभप्रद है।

२. **कैल्केरिया फास**—अतीसार प्रकरण देखें।

३. **कैम्फोरा आफिसिनेरम (कैम्फर)**—एकाएक वमन और दस्त होने लगते हैं। कुछ ही क्षणों में बच्चा दुर्बल हो जाता है तथा शरीर शीतल हो जाता है तो इस दशा में इसकी ६ शक्ति का प्रयोग गुणकारी है।

बच्चों का रोना

१. **कैमोमिला**—बहुत ही चिड़चिड़ा और क्रोधी बच्चा, शिशु का हर समय रोते रहना, केवल गोद में लेकर घूमने से थोड़ा शान्त रहता है, तो इसकी ३० या २०० शक्ति की दवा लाभप्रद है।

२. **सोरिनम**—बच्चों का रक्तहीन, अनिद्रा, गंदा स्वभाव, निरन्तर रोते रहना, दिन में तो अच्छी तरह खेलना-कूदना परन्तु रात्रि में रो-रोकर बहुत परेशान कर देना। कभी खूब छटपटाना और कभी काफी चिल्ला-चिल्लाकर रोना, ठंडी हवा एवं सर्दी सहन नहीं होना। शक्ति २०० ही।

बच्चों की सूखी खाँसी—

१. **ब्रायोनिया**—स्वर कर्कश, कफ एकदम नहीं निकलता, खांसी के साथ सिर में दर्द, रोते समय गला फंस जाता है। गले में कुट-कुटाहट, हल्का ज्वर, जीभ सूखी और खुरदरी, सर्वत्र सूखापन. इस दवा की ३X और २०० शक्ति गुणकारी है।

२ **एसक्लिपियस टियुबरोसा**—सांस छोड़ने के समय बाएं फुफ्फुस के नीचे के भाग में अधिक दर्द, सूखी खांसी, खांसने के समय पेट में दर्द, छाती की बीच की अस्थि के पीछे काटने जैसा दर्द जो सांस लेने या हिलने-डुलने पर और भी अधिक बढ़ जाता है। पर्शुकाओं की अस्थियों के मध्य में दबाने पर दर्द से बच्चा काफी रोने लगता है। इसका शक्ति क्रम मदर टिंक्चर या १X है।

बच्चों का चौंकना—

बेलाडोना—प्रबल ज्वर, लगातार सिर हिलाना, दांत कड़कड़ाना, सोये-सोये चौंक उठना, कभी रोना और कभी मूर्च्छित सा हो जाना, चेहरा और आंख लाल हो जाना, हाथ पैर ठण्डे हो जाना, पेट फूलकर कड़ा हो जाना, उदर में जोर के दर्द से बच्चे का लगातार और चिल्लाकर रोना आदि लक्षणों मे इसकी ३० या २०० शक्ति की औषधि चमत्कारिक लाभ दिखाती है।

शिशुरोग नाशक यंत्र-मंत्र चिकित्सा

श्री प० नन्दकिशोर शर्मा, सूर्य चिकित्सा विशारद, आगर (मालवा)

श्री नन्दकिशोर शर्मा जिन्होंने गत ४ वर्षों में यंत्र मंत्र विषयक ४ लघु विशेषांकों का सम्पादन कर जो ख्याति अर्जित की है वह किसी से छिपी नहीं है। आयुर्वेद जगत् में यंत्र-मंत्र चिकित्सा विषयक साहित्य के एक मात्र प्रस्तोता पं. नन्दकिशोर शर्मा सुधानिधि परिवार के शुभचिंतक ही नहीं मार्गदर्शक भी हैं। आपके लेख भविष्य में भी सुधानिधि को आलोकित करेंगे यही आशा है। — गो० श० गर्ग

बच्चों को सर्व प्रकार से सुरक्षित रखने वाला मंत्र

(ॐ ह्राम् ह्रीम)

इसको भोजपत्र पर (लालचदन को गंगाजल या शुद्ध जल मे घिसकर) लिखकर तावीज में भरकर लाल कपड़े में सीकर बच्चे के गले मे डाल देवें। ईश कृपा से बच्चा सर्व-ग्रह बाधा आदि से सुरक्षित रहता है बच्चा पैदा होने के १० दिन बाद गले मे पहना देना चाहिये।

बच्चों के लिये जादुई फीता—जो कुत्ता या कुतिया बिलकुल काले रंग का हो एक भी बाल सफेद न हो उसके बाल कतर लो। कागज की पट्टी पर ४०-५० बाल गोंद से चिपकाकर दुहरा कर दो जिससे कि बाल दीखने न पावें और कागज की पट्टी को काले रंग की रेशम या सूती कपड़े में रखकर तावीज नुमा बनाकर बच्चे के गले मे डाल दो विज्ञापनी लोग इससे पैसा कमाया करते हैं।

बच्चों के दांत उद्गम पर—बच्चों के दाँत उद्गम के समय महान् पीड़ा होती है इसके लिये प्रातःस्मरणीय श्री गोस्वामी जी ने श्री रामचरित मानस में कहा है।—

मिलत एक दारुण दुःख दे ही।
बिछुरत एक प्राण हर ले ही॥

उपरोक्त अवस्था आने के पूर्व आप निम्न प्रयोग करें। काले सिरस के बीज पानी में भिगो दें जब नरम हो जावें तब ४०-५० बीजों को सुई से छेद करके डोरे में इस तरह पिरोओ कि सब बीज आपस मे एक दूसरे से मिले रहें बाद में हरे या काले रंग का रेशमी या सूती कपड़े में गुलवंद की तरह सीकर बनाओ। ये फीता बच्चों के गले में बांधने से दांत निकलते समय बच्चों को कोई तकलीफ नही होती बिना कष्ट के दांत शीघ्र निकल आते हैं। बाजार में जो फीते मिलते हैं उनसे कई गुना फायदेमंद है। सुधानिधि के सुज्ञ पाठक बनाकर लाभ उठावें।

बच्चों के सूखा रोग पर चुटकला—कंघी (ककहिया) की ढाई पत्ती लगे पान मे रखकर मुंह से चबावें। जब पीक बन जावे तब उस पीक को लेकर दाहिने हाथ से बच्चे की पीठ पर गुदा से ऊपर चार अंगुल ऊंची रीढ़ की हड्डी पर डाल कर मलें। जब १०-१५ मिनट हो जावें तब रगड़ना बन्द कर दें और सफेद कोमल वस्त्र से पोंछ दें। आप देखेंगे कि सब रोग के कीड़े निकल आये हैं उन्हें फेंक देवें दूसरे दिन फिर करे। जब देखें कि कीड़े निकलना बन्द हो गये हैं दवा बन्द कर दें बालक स्वस्थ हो जायगा। सात दिन

—शेषांश पृष्ठ ३८४ पर

लेखक-डा० प्रकाशचन्द्र गंगराड़े, B. Sc., D. H. B., D. Pharma,
१३/२३ नार्थ तात्याटोपे नगर भोपाल-३ (म०प्र०)

शिशुओं को होने वाले सामान्य रोगों के अनुसार यहां पर हम उनकी प्रचलित पेटेन्ट दवाओं की संक्षिप्त किन्तु लगभग पूर्ण जानकारी देने का प्रयत्न कर रहे हैं। यह प्रयत्न कहां तक सफल सिद्ध होगा यह बात तो पाठकों के विचारों से ही मुझे ज्ञात हो सकेगी।

यों तो शिशुओं को विभिन्न प्रकार की बीमारियां तंग करती हैं लेकिन यहां पर हम प्रचलित रोगों की ही पेटेन्ट दवाओं का वर्णन करेंगे ताकि कलेवर अधिक न बढ़ जाये।

डा० प्रकाशचन्द्र गंगराड़े ने अल्प समय में ही आयुर्वेद पत्रकारिता में अच्छी ख्याति प्राप्त की है नवयुगीन लेखक वृन्दों में गंगराड़े विषय को सुगमता पूर्वक पाठकों के गले उतारने में निपुण ही नहीं अग्रगण्य भी हैं। —गोपालशरण गर्ग।

(१) सूखारोग-(Marasmus)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम-	सेवन कराने की विधि-
१. कैल्डीफेरम (Caldiferium)	१-१ गोली दिन में ३ बार दें।
२. बिकाडेक्स (Becadex)	१-१ गोली दिन में ३-४ बार दें।
३. एडेक्सोलीन (Adexolin)	१५ से २० बूंद नित्य दें।
४. ओस्टो माल्ट (Ostomalt)	१ से २ चम्मच दिन में ३ बार दें।
५. कोलाइडल कैल्शियम विथ विटामिन डी	१ से २ सी. सी. रोगानुसार मांस में इन्जैक्शन दें।
६. कैल्सिड (Calsid)	१-१ गोली दिन में ३ बार दें।
७. रूब्राप्लेक्स (Rubraplex)	½ से १ चम्मच ३-४ बार दें।

(२) अस्थि मृदुता (Rickets)--

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम -	सेवन कराने की विधि-
१. एब्डेक ड्रॉप्स (Abdec drops)	५ से १५ बूंद एक दिन में ३ बार।

२. प्रोटोविट (protovit)	१० से २० बूंद तक दिन में ३ वार।
३. कैल्शियम डी रेडोक्सान	½ से १ गोली दिन में ३ वार।
४. कैल्सिनोल (Calcinol)	४ से ६ गोली तक रोजाना दें।
५. आस्टो कैल्सियम (Osto calcium)	½ से १ गोली दिन में ३-४ वार।

इसके अतिरिक्त सूखा रोग में नीचे लिखी दवायें भी लाभदायक हैं।

(३.) कुकर कास (Whooping cough—)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम –	सेवन करने की विधि—
१. इफैड्रेक्स (Ephedrex)	१ से २ चम्मच दिन में ३-४ वार।
२. डाइओनीडोन (Dionidon)	½ से १ गोली दिन में ३-४ वार।
३. क्लोरोमाइसीटीन पार्मीटेट	१ चम्मच दिन में तीन वार दें।
४. टेट्रासाइक्लीन पेडिएट्रिक ड्राप्स	आवश्यकतानुसार प्रयोग करें।
५. पर्टुसिन (Pertussin)	१ से २ चम्मच ४-५ वार दें।

(४) आंत्र कृमि (Intestinal worms)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम—	सेवन करने की विधि—
१. सिपलाजान (Ciplazan)	१ से २ गोली दिन में ३ वार दें।
२. एन्टासिल (Entacyl)	२ गोली दिन में ३ वार दें।
३. एन्टीपार (Antepar)	४ से ८ गोली एक वार में।
४. हेल्मासिड विद सेना	उम्र के अनुसार दें।
५. पाइनोसाइड (pinocide)	आवश्यकतानुसार दें।

(५) दस्त लगना (Diarrhoea)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम—	सेवन करने की विधि—
१. क्लोरोस्ट्रेप (Chlorostrep)	½ से १ चम्मच दिन में ३-४ वार।
२. ग्वानीमाइसीनं (Guanimycin)	१ से ३ चम्मच दिन में ४ वार।
३. सल्फाग्वानाडीन (Sulphaguanadin)	१ गोली पहली मात्रा वाद में, ½ गो. ४-४ घंटे से।
४. मेक्साफार्म (Mexaform)	१ से ३ गोली प्रतिदिन दें।
५. सियोस्टेरान (Siosteran)	४ से ८ माइक्रो टेवलेट ३ वार दें।
६. केओपेक्टाल (Kaopectol)	१ से २ चम्मच दिन में ३ वार।

(६) चेचक (Small Pox)—

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम-	सेवन करने की विधि-
१. सीवाजोल (Cibagol)	२-२ गोली दिन में ३ वार।
२. सल्फाडायजीन (Sulphadiagine)	१-१ गोली हर ४ घंटे से दें।

३. स्ट्रेप्टोमाइसीन कैंपसूल	१-१ कैंपसूल ६-६ घंटे से ।
४. डर्मोइल (Dermoil)	दागों पर लगाना चाहिए ।
कोम्बायोटिक (Comboltic)	दिन में १ सूई लगा दें ।

(७) न्यूमोनिया (Pneumonia)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम	सेवन करने की विधि
१. पेन्टिड्स (Pentids)	१-१ गोली दिन में ३ बार दें ।
२. एल्कोसिन (Elkosin)	२ से ४ गोली आवश्यकतानुसार ।
३. सुबामाइसीन सीरप (Subamycin Syrup)	आवश्यकतानुसार सेवन करायें ।
४. पल्मोकोड (Pulmocod)	१-२ चम्मच ४-५ बार दिन में ।
५. विक्स वेपोरब	छाती पर मलना लाभदायक है ।
६. सल्फाट्रिपल	पहले ४ गोली फिर २-२ गोली ३ बार ।

(८) जिगर बढ़ जाना (Enlargement of Liver)

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम	सेवन करने की विधि
१. मीथियोनिन (Methionine)	१ से २ गोली ३ बार दें ।
२. लिव ५२ (Liv. 52)	½ से २ चम्मच ३ बार ।
३. मेक्राबिन (Macrabin)	१ से २ गोली ३ बार
४. कोलिबिल-एस (Colibil-S)	१ से २ चम्मच ३-४ बार ।
५. लिवोजिन (Livogin)	१ से २ ड्राम खाना खाने के बाद ।
६. सिरोसीन (Cirrosine)	१ से २ चम्मच जल के साथ ।

(९) बिस्तर में मूत्र करना—

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम	सेवन करने की विधि
१. इमेप्रिन हाइड्रोक्लोराइड	३० मि. ग्रा. की ½ गोली सोते समय ।
२. सर्पिना (Serpina)	½ से १ गोली २-३ बार दें ।
३. नियामिड (Niamid)	½ से २ गोली ३-४ बार ।
४. ट्रिप्टीजोल सिरप (Tryptizol syrup)	१-१ चम्मच दिन में ३ बार ।
५. एफीनाल (Ephynal)	¼ से ½ गोली दिन में २ बार ।

(१०) भूख कम लगना, भार कम होना व दुर्बलता

प्रचलित पेटेन्ट दवाओं का नाम	सेवन करने की विधि
१. इन्क्रीमीन सीरप (Incremin syrup)	१ चम्मच दिन में एक बार खाना खाने के बाद ।
२. मल्टीविटामिन पेडियाट्रिक ड्राप्स	½ से १ चम्मच नित्य दें ।

३. एब्डेक ड्राप्स (Abdec drops)	५ से १० बूंद दूध में दे ।
४. मेक्रावीरोन पीडिएट्रिक ड्रोप्स	१-१ ड्राम २-३ वार दें ।
५. किनेटोन (Kinetone)	½ से १ ड्राम ३ वार दें ।
६. टोनोफैरान ड्रोप्स	५ से १० बूंद २-३ वार दें ।
७. वीकाडेक्स ड्रोप्स	१५ बूंद तक रोजाना दें ।
८. निओफेरम इन्फेन्ट्स	२ से १० बूंद रोज दें ।

इन सभी औषधियों का प्रयोग चिकित्सक अपने विवेक से करेंगे, ऐसी आशा है ।

पृष्ठ ३८० का शेषांश

तक बच्चे की माता को ११ पत्ती नीम की ठंडाई पिलावें फिर रोग का आक्रमण नहीं होगा। यह एक ऐसा दिव्य प्रयोग है कि यथा नाम तथा गुण। बच्चों की पाचन शक्ति को स्वस्थ रखना इसका प्रमुख कार्य है । बच्चों को आरोग्यता प्रदान कर सुन्दर व बलवान बनाती है। बच्चों के हरे पीले दस्त दूर होते है । ऊपर का पिया दूध फौरन पचाती है गुण अमृत के समान है ।

एक और उत्तम योग—१ छटांक (५० ग्राम) पत्थर का चूना बिना बुझा हुआ किसी मिट्टी के पात्र में १ सेर पानी डालकर ३६ घंटे तक भिगोये रखें उसके पश्चात् धीरे से ऊपर का जल नितार कर साफ शीशी में भरकर रखें। पानी से दुगुनी शक्कर अथवा मिश्री की चाशनी एक तार आने पर उतार कर ठंडा होने पर वही चूने का पानी मिलाकर कुछ सुगंध डालकर रख लें। मात्रा १॥ माशा से ३ माशा तक दूध से देना चाहिये ।

दुग्धवर्द्धक पदार्थ—

नाडिका सगुडा सिद्धा हिङ्गुजाति सुसंस्कृता ।
क्षारं मांसरसो मद्यं क्षीरवर्धनमुत्तमम् ॥
वाजीकरणसिद्धं वा क्षारं क्षीर विवर्धनम् ।
घृततैलोपसेवा च बस्तयश्च पयस्करा ॥

नाडिका (कालशाक) को गुड के साथ सिद्ध करके उसे हींग तथा जायफल से सुसंस्कृत करे। यह सुसंस्कृत योग दूध, मांसरस, तथा मद्य से सिद्ध किया हुआ दूध, घृत सेवन, तैल सेवन तथा बस्तियां सभी क्षीर वर्धक (दूध को बढ़ाने वाले) हैं।

१. दुग्ध शोधक द्रव्य—

धातकीपुष्पमेला च समङ्गा मरिचानि च ।
जम्बू त्वचं समधुकं क्षीरशोधनमुत्तमम् ॥

धाय के फूल, एला, मजीठ, मरिच, जामुन की छाल तथा मुलहठी का चूर्ण उत्तम दुग्ध शोधक द्रव्य है।

शिशु औपसार्गिक रोगोपखण्ड

इस खण्ड में निम्न लेखों का समावेश किया गया है—

शिशुओं की प्रमुख औपसर्गिक व्याधि--

मसूरिका

विद्याविनयविभूति आचार्य डा० एस. टी. जोशी बी. एस.सी (ऑनर्स) डी.एम. ए.एफ.
भूतपूर्व आचार्य-गुलाबकुंवर बा आयुर्वेद महाविद्यालय, जामनगर

निरुक्ति--

"मसूर इव कायाति या पिडिका सा मसूरिका:"

शरीर के ऊपर जो मसूर की तरह पिडिकायें होती हैं उसे मसूरिका कहते हैं।

"या: सर्वेषु गात्रेषु मसूराकारा मसूरिका:"

च. चि. १२/९२

जो सम्पूर्ण शरीर पर मसूर प्रमाण की पिडिकायें होती हैं उन्हें मसूरिका कहते हैं।

रोग परिचय—

प्राचीन संहिताकारों ने इसका अति संक्षिप्त वर्णन किया है। आचार्य चरक ने इसको पित्त और कफ की विकृति से उत्पन्न बताया है। आचार्य सुश्रुत ने इसे क्षुद्र रोगों के अन्तर्गत लिया है। माधव निदान में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है, इसके बाद पं. शार्ङ्गधर ने शीतला नाम से विशद वर्णन किया है।

आचार्य माधव ने कटु अम्लादि पदार्थों के सेवन से दुष्ट हुआ पित्त रक्त को दूषित कर देता है, रक्त दूषित हो जाता है तथा सम्पूर्ण शरीर के ऊपर पिडिकायें निकलती हैं जिनकी आकृति मसूर, उड़द और मटर के समान होती है ऐसा लिखा है।

प्राय: बच्चों में होने वाला इस रोग का प्रारम्भ वसन्त ऋतु में होता है एवं ग्रीष्म में इसका उग्र स्वरूप देखने को मिलता है तथा वर्षा ऋतु में इसका प्रभाव कम दिखाई पड़ता है।

यह भयंकर औपसर्गिक जानपदिक व्याधि है। इस रोग ने संसार की बड़ी-बड़ी जातियों का इतिहास बदल डाला है और अधःपतन के मार्ग पर अग्रसर कर दिया है। कितने ही विद्वानों की बलि भी ली है। जिसमें आधुनिक शरीर रचना विज्ञान—"ग्रेज एनाटोमी" के महान् लेखक श्री "ग्रे" महाशय का ३५ वर्ष की युवावस्था में हुआ निधन अविस्मरणीय रहेगा।

आधुनिकविज्ञानदृष्ट्या पशुओं में भी मसूरिका के समान एक रोग गो मसूरिका (Vaccinia cow-Pox) होता है। सर्व प्रथम डा० एडवर्ड जेनर का ध्यान गया कि गायों के थनों के पास निकले गो मसूरिका के संघर्ष के कारण इनके स्फोट निकलने वाले ग्वालों को मसूरिका के रोगी के साथ रहने पर भी मसूरिका का संक्रमण नहीं होता, इस बात को सोचकर जेनर महोदय ने एक बालक पर प्रयोग किया। बालक के शरीर में गो मसूरिका (Vaccinia) का विष प्रविष्ट कर उस रोग को पैदा किया तदनन्तर मसूरिका का विष प्रविष्ट किया परिणाम देखा तो मसूरिका के स्फोट नहीं निकले। इससे जेनर ने निश्चय किया कि गो मसूरिका (Vaccinia) और मनुष्य मसूरिका दोनों रोग समान धर्मी हैं और गो मसूरिका का विष मसूरिका रोग के संक्रमण से बचाता है। मसूरिका के विष को मृदु बनाता है और प्रतिबन्धक है। आजकल (Vaccinia) रोग प्राय: लुप्त हो गया है।

पशुओं—बछड़े, खरगोश के ऊपर प्रयोग किया गया जिसमें इन पशुओं के शरीर में त्वचा द्वारा मसूरिका का विष प्रविष्ट कर दिया गया और यह विष मृदु बनकर गो मसूरिका (Vaccinia) के रूप में देखने को मिला, फिर इस Vaccinia का विष मनुष्य शरीर में प्रविष्ट करने पर मसूरिका प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न होने का निश्चय हुआ।

वर्तमान में प्रचलित जो टीका लगाया जाता है वह इन्हीं शोधों का परिणाम है। इसमें स्वस्थ बछड़े के शरीर में त्वचा द्वारा मसूरिका का विष प्रविष्ट किया जाता है जो मृदु होकर Vaccinia के स्फोट उत्पन्न करते हैं और इन्हीं स्फोटों में से अन्य जीवाणुओं का प्रवेश न हो इस सावधानी के साथ लसिका (Lymph) लिया जाता है। इसी में ग्लिसरीन मिलाया जाता है जिसका आजकल मसूरिका प्रतिरोधक टीका के रूप में मनुष्य शरीर में त्वचा द्वारा प्रयोग किया जाता है। संक्षिप्त मसूरिका को रोकने के लिए मनुष्य शरीर में गो मसूरिका Vaccinia Cow Pox रोग उत्पन्न किया जाता है इस प्रक्रिया को वैक्सिनेशन (Vaccination) कहा जाता है।

मसूरिका के भेद—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, और रक्तज प्रकार से मसूरिका के ५ प्रकार होते हैं और धातु भेद से ७ प्रकार होते हैं।

हेतु एवं सम्प्राप्ति—कटु, अम्ल, लवण, क्षार, विरुद्धाशन, अध्यशन, दुष्टान्न निष्पाव आदि शाक, दूषित जल-वायु का सेवन, शनि आदि ग्रह की दृष्टि पड़ने से देश भर में प्रकुपित हुए दोष दूषित रक्त से मिलकर सर्वांग शरीर एवं मुख के अन्दर भी मसूर आकृति समान पिडिकायें उत्पन्न करते हैं।

पूर्वरूप—ज्वर, कण्डु, अंगमर्द, अरुचि, भ्रम, त्वक्-शोथ, रक्ताभ शरीर वर्ण, रक्त नेत्रता, मुखशोष, कास,

---

स्नेहिल व्यक्तित्व और स्वाभिमान की मूर्ति डा. जोशी जामनगर के उन कतिपय आयुर्वेद के विद्वानों में से हैं जिनको छात्रों ने सदा सम्मान दिया है तथा जो शालीनता तथा क्रियावन्तस्फूर्ति के पुंजरहे हैं। अपने बड़ों का सम्मान करने और अपने कार्य में दक्षता के कारण सदाउनको आदर की दृष्टि से देखा जाता है। वे बहुश्रुत और पण्डित व्यक्ति हैं। शवच्छेदन से लेकर फिजियोलोजी और पैथालोजी प्रयोगशालाओं तथा चिकित्साकक्ष तक उनकी एक सी गति रही है। उन्होंने मसूरिका विषयक लेख भेजा है और पर्याप्तकाल बाद मुझे उनकी लेखनी के द्वारा लिखित अक्षरों को निहारने का अवसर मिला है। मेरा विश्वास है अब यह परम्परा सतत गतिशील रहेगी। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

एवं नेत्रों के भीतर निकलते हैं। इस प्रकार प्रथम ललाट में तथा अन्त में पादतल में स्फोट निकलते हैं।

स्फोटों के निकलने का प्रारम्भ होने से ज्वर और आनुसंगिक लक्षण शान्त हो जाते हैं, या बहुत अल्प हो जाते हैं, परन्तु २-३ दिन के बाद स्फोटों में द्वितीयक उपसर्ग के कारण पूय संचित होने पर स्फोटों के स्थान पर व्रण बन जाते हैं। इसलिये आतुर को श्वास-प्रश्वास, बोलने-चालने, आहार-विहार आदि में कठिनता होती है, पूययुक्त स्फोटों की स्थिति में शरीर में से विशेष प्रकार की दुर्गन्ध आती है तथा चेहरा भयानक सा दिखाई देता है। इस स्थिति में ज्वर की पुनरावृत्ति होती है जो स्फोट सूखने के बाद खुरन्ट जमने पर ही निवृत्त होता है, अर्थात् मसूरिका के प्रारम्भ में ३-४ दिन तक तीव्र ज्वर इसके बाद २-३ दिन तक शमन और पुन: प्राय: एक सप्ताह तक तीव्र ज्वर रहता है।

मसूरिका के स्फोट ज्वर आरम्भ के प्रथम २ दिन बाद पिडिका के रूप में पूर्व स्फोट, इसके बाद चौथे दिन से ७ वें दिन तक गांठदार वास्तविक स्फोट और ७ वें दिन से आठवें दिन तक द्रवयुक्त और ११ वें से १५ वें दिन तक पूययुक्त और उस के बाद ४-५ दिन तक खुरन्ट की स्थिति बनी रहती है, खुरन्ट के निकल जाने के बाद दाग बीच में कुछ दबे से दिखाई पड़ते हैं।

चिकित्सा--

प्रतिरोधक चिकित्सा—व्याधि उत्पन्न होने से पहले अथवा इसके आक्रमण के बाद घर के स्वस्थ व्यक्तियों में इस रोग का आक्रमण न हो इसके लिए निम्न योग उपयोगी हैं।

१. कदलीमूल स्वरस २ तोला में श्वेतचन्दन चूर्ण १ माशा मिलाकर १५ दिन तक सेवन करना चाहिए।

२. कालीमिर्च ४ रत्ती, हरिद्राचूर्ण १ माशा, मिश्री १ तोला, कारवेल्लक पत्र स्वरस १ तोला मिलाकर ७ दिन तक सेवन कराना चाहिए।

३. निम्बपत्र, हरिद्रा, विभीतक मज्जा, इनका समान भाग चूर्ण लेकर वयानुसार १ से ३ माशा तक जल के अनुपान से ७ दिन तक देना चाहिए।

४. धूपन—स्वच्छ वातावरण बनाने के लिए गुग्गुल देवदारु, चन्दन, निम्बपत्र, वच, जटामांसी, लोबान आदि द्रव्यों का धूपन करना चाहिए।

औषध योग--

मसूरिका की चिकित्सा के बारे में सामान्य जनता में ऐसी धारणा है कि इस रोग की चिकित्सा है ही नहीं, इसलिए प्राय: इसके आतुर चिकित्सक के पास कम आते हैं। यह बात किंचित् ठीक भी है कि इसकी सिद्ध औषधि न होते हुए भी कुछ योगों से पर्याप्त लाभ होता है। यथा—

१. अनन्तमूल चूर्ण ३ माशा, १ बार प्रात: तण्डुलोदक अनुपान से ७ दिन तक।

२. कालीमिर्च १ माशा, रुद्राक्ष १ माशा, जल में पीसकर प्रात:काल १ बार ७ दिन तक।

३. पटोलपत्र, गुडूची, नागरमोथा, चिरायता, निम्बछाल, यवासा, अडूसा, कुटकी, पित्तपापड़ा, समभाग लेकर क्वाथ बनाकर मिश्री या मधु का प्रक्षेप डालकर १ सप्ताह तक पीना चाहिए।

४. गुडूची, यष्टि, द्राक्षा, इक्षुमूल, दाडिमपत्र का क्वाथ बनाकर गुड़ या चीनी डालकर पिलाना चाहिए।

५. शीतला शामक वटी, मसूरिकान्तक वटी, वसन्तसुन्दररस, मसूरिकान्तक रस, गोरोचन मिश्रण।

(र. तन्त्रसार)

सर्वतोभद्ररस, दुर्लभोरस, (भै. रत्नावली)

पथ्य-आहार-

अन्नवर्ग—पुराणयव, गोधूम, शालिअन्न, मूग, मसूर चना, तुवरयूप;

शाकवर्ग—कारवेल्लक और पटोल;

फलवर्ग—द्राक्ष, दाडिम, आमलकी;

दुग्धवर्ग—नवनीत, घृत;

मांसवर्ग—जांगल मांस;

पथ्य विहार—आतुर को स्वच्छ, स्वतन्त्र, हवादार, किन्तु अल्प प्रकाशयुक्त कमरे में रखें। स्वच्छ वस्त्र एवं मृदु शय्या का ध्यान रखना चाहिए, पूर्ण विश्राम कराना चाहिए;

अपथ्य आहार—गुरु अन्न, कुलथी, उड़द, तिल, लशुन, कषाय, विदाही, अम्ल, कटु अन्न;

—शेषांश पृष्ठ ३९२ पर

पर बदबूदार चेप निकलता है। त्रिदोष में फोड़े बहुत होते हैं। चर्म पिडिका में फोड़े होने से कंठ रुक जाता है, अरुचि तन्द्रा, प्रलाप, बेचैनी यह असाध्य है।

रोमान्तिका पित्त से बालों के छेदों के समान छोटी छोटी लाल-लाल फुंसियां निकलती हैं, खांसी और अरुचि होती है। सबसे पूर्व ज्वर वेग होता है इसको रोमान्तिका या कसूमी माता कहते हैं।

धातुगत चेचक को मुख्य लक्षणों से जाना जाता है। यदि रसगत चेचक हो तो पानी के बुलबुले सदृश होती हैं, इनके फूटने से पानी सा बहता है, यह चमड़ी में होती है, क्योंकि इनमें थोड़ा ही दोष होता है, इसको दुलारी माता के नाम से पुकारा जाता है।

रक्तगत में तांबे के से रङ्ग के फोड़े निकलते हैं, ये जल्दी पकती हैं, इनके उपर की चमड़ी पतली होती है, इनके फूटने से इनमें से खून निकलता है। यदि यह बढ़ जांय तो कभी-कभी असाध्य भी हो जाती है।

मांसगत मसूरिका कड़ी व चिकनी होती है, यह बहुत दिनों में पकती हैं इनकी चमड़ी पतली होती है। शरीर में दर्द बेचैनी रहती है। खुजली सी चलती है,मूर्छा, दाह,जलन और बार-बार प्यास का लगना ये लक्षण होते हैं।

मेदोगत मसूरिका गोल नरम जरा ऊंची-ऊंची मोटी व काली होती हैं,इसके होने पर भयंकर ज्वर पीड़ा इन्द्रियों और मन को मोह चित्तकी व्यग्रता संतपिक लक्षण युक्त होती हैं, यह कुछ साध्य है इनसे कोई ही भाग्यवान् बचता हैं।

अस्थि मज्जागत मसूरिका बहुत छोटी रुखी चपटी और थोड़ी ऊंची होती हैं। इसके होने से अत्यन्त चित्त-भ्रम, वेदना और बेचैनी होती है, यह मर्मस्थलों को भेद कर शीघ्र प्राण हरण कर लेती है। सब अस्थियों में भौंरा के काटने की सी पीड़ा होनी है, शुक्रगत मसूरिका पकी हुई समान चिकनी और अलग अलग होती हैं। इनमें अत्यन्त पीड़ा होती है। नीलापन, बेचैनी,मोह,दाह उन्माद, उपद्रव साथ होते हैं, यह असाध्य हैं और रोगी का प्राणान्त हो जाता है। इनमें जो साध्य हैं वह रसगत,रक्तगत,पित्तज कफज, पित्तकफज यह बिना औषधि के भी ठीक हो जाती हैं। वातज, वात-पित्तज, वातकफज, मसूरिका कष्ट साध्य मानी गई हैं, इसकी चिकित्सा भी बहुत सोच समझ कर होशियारी से करनी चाहिए। सन्निपातज मसूरिका असाध्य होती है कोई मूंगे के समान लाल कोई जामुन के सकान कोई लोहजाल के समान और कोई अलसी के दाने जैसी होती है। खांसी, हिचकी, बेहोशी, तेज ज्वर, बकवाद, असन्तोष, व्यामोह, प्यास, दाह, नेत्रों का टेढ़ा, तिरछा व बांकापन तथा फटे से हो जाना ये लक्षण होते हैं। मुंह नाक और आंख से खून गिरता है। कंठ से घुर-घुर शब्द होता है। रोगी भयंकर श्वास लेता है। जो मसूरिका का रोगी केवल नाक से श्वास लेता है वह वायु और प्यास से तत्काल मर जाता है। मसूरिका के अन्त में कोहनी पहुंचे और कन्धों में सूजन होती है इसका इलाज कठिनाई से होता है।

वातजा वातपित्तोत्था: श्लेष्मवातकृताश्च या: ।
कृच्छ्रसाध्यतमास्तस्माद्यत्नादेता उपाचरेत् ॥

वातजनित, वातपित्तजनित और वातकफजनित मसूरिका बहुत यत्न करने पर शान्त होती है। अत एव बहुत सावधानी से चिकित्सा की जानी चाहिए।

असाध्या: सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ।
प्रवाल सदृशा: काश्चित् काश्चिज्जम्बु फलोपमा: ॥
लोहजाल समा: काश्चिदतसीफल संनिभा: ।
आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदत: ॥

त्रिदोषजनित् मसूरिका का वर्ण यदि प्रवाल, तमाल, जामुन तथा लौह जसा होजाय तो असाध्य समझना चाहिए।

कासो हिक्का प्रमेहश्च ज्वरस्तीव्र: सुदारुण: ।
प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽति घूर्णता ॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुपा ।
कंठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थवेदनम् ॥

उपरोक्त लक्षण भी असाध्यता की ही स्थिति है। चटपटे खट्टे खारी और परस्पर विरुद्ध पदार्थों के खाने,अधिक खाने, लोबिया उड़द तथा खट्टे सागों के खाने, विषैले फूलों के संसर्गों से दूषित हुई हवा और जल के योग से तथा देश में राहु या शनिश्चर आदि क्रूर ग्रहों की दृष्टि पड़ने से वातादि दोष कुपित होकर रुधिर के साथ मिलकर मसूर के समानफुंसियां उत्पन्न करते हैं उनको मसूरिका कहते हैं।

मसूरिका के भेदों के अन्तर्गत ही शीतला व बड़ी माता को द्रवामाता, प्राणिसहामाता, सर्पपिका माता, खसरा, दुख:को-द्रवामाता, हाममाता व चमरगोटी माता कहकर पुकारते हैं। इन्हीं के लक्षण देखकर जैसे राई, पीली रमसों, ऊर्द की तरह की लाल फुन्सियां व मरोड़ी जैसा छत्ता या मसूर व आग से जले फफोले के रूप में तथा ज्वर पहले या बाद में आदि जानकर रोग की भयंकरता को पहचाना जाता है। ध्यान रहे कि यदि प्रसव के पश्चात् नाल छेदन के समय बच्चे की नाल में एक दो चावल कस्तूरी रखदी जाय तो उसे बहुधा चेचक नहीं निकलती है। चेचक के प्रकोपकाल में बड़े रुद्राक्ष को जल में घिसकर एक सप्ताह तक नित्य प्रातः पीते रहने से शीतला का भय नहीं रहता है। रुद्राक्ष तथा कालीमिर्च का चूर्ण १ माशा तक ७ दिन बासी जल के साथ देते रहने से मसूरिका रोग नहीं होता है। वनकेले के ७-८ बीजों का चूर्ण दूध के साथ देने से भी मसूरिका रोग नहीं होता है।

ऐसे समय में गरम और शीतल क्रियायें हानिकारक हैं। भ्रष्ट स्त्री व मनुष्यों से रोगी को बचाना चाहिए। शरीर, वस्त्र, भोजन व स्थानादि की स्वच्छता का पूर्ण-रुपेण ध्यान रखना चाहिए। कमरे में मक्खियों से बचाते हुए कई बार धूप देना चाहिए। रोगी को स्नान तभी कराना चाहिए जब खुरन्ट सूखकर उतर जावें। रोग शमन के १ मास पश्चात् तक पथ्यपालन का पूर्ण लक्ष्य रखना चाहिए। अन्य बच्चों को रोगी के पास नहीं जाने देना चाहिए। रोगी के मलमूत्र पर राख या चूना डालकर बाहर खड्डे में गाड़ें या दूर कहीं फिकवा देना चाहिए। ध्यान रहे कि दाने भी किसी प्रकार टूटने नहीं चाहिए। नमक, तेल, मिर्च, खटाई, तम्बाकू, धूम्रपान, बासी पदार्थ का परहेज दो माह बाद तक करना चाहिए। ज्वर की तीव्रता में केवल दूध, ज्वर कम होने पर दूध चावल, या दूध, दलिया देवें।

मसूरिका ज्वर आने से पहले वमन, विरेचन दें। रोगी बलवान हो तो वमन के पश्चात् विरेचन दें। निर्बलों को शमन औषधि दें। विरेचन की आवश्यकता पर गुदा में ग्लीसरीन की बत्ती चढ़ाकर मल शुद्धी करावें, पंचतिक्त घृत का उपयोग खाने-पीने और मालिश में अत्यन्त लाभदायक है।

इस व्याधि में गरम करके शीतल किया हुआ जल-पान और औषधियां या शीतल क्वाथ देना चाहिए। जल गरम करने के समय खैर और विजयसार की छाल मिला-देना विशेष हितकर है। सरलता से दाने पकाने के लिए मसूरिका की पिडकाओं के पाककाल में गिलोय, मुलहठी, मुनक्का, ईख की जड़ व अनारदाने को पीसकर गुड़ मिला कर देना लाभदायी है। बेर का चूर्ण घी मिलाकर देना भी फायदेमन्द है। सर्व प्रकार की मसूरिका में परवल, नीम, अडूसा को पानी में मिलाकर क्वाथ कर उसमें वच, कुड़े की छाल, मुलहठी, और मैनफल का कल्क मिलाकर वमन कराने के लिये पिलाना भी हितकर है। करेले के पत्तों के ४ तोले रस में ३ माशे हल्दी मिलाकर पिलाने से वमन विरेचन होकर देह शुद्ध होती है, और रोमान्तिका विस्फोटक और मसूरिका का विष दूर होता है। छोटे बालक को शीतला निकलने पर गधी का दूध पिलाना हितकर है। सरल, देवदारु, अगर और गूगल की धूप दें व राल हींग और लहसन की धूप दें ताकि पिढिका के क्रमि मर जावें व मसूरिका की शांन्ति हो। मुह पर अधिक शीतला होने पर कच्चे दूध में भिगोया हुआ कपड़ा रखने से नेत्रों को हानि नहीं पहुंचती और मसूरिका के दानों के दाग भी नहीं रहते। लिसौड़े की छाल पीसकर आंखों पर लेप करना भी पीड़ा में लाभदायक है।

प्रारम्भिक स्थिति में रत्नगिरी रस धनियां और मिश्री के हिम के साथ दो दिन तक दिन में दो समय देने से विष सत्वर बाहर निकलता है और त्राण कम होता है। प्रवाल पिष्टी २-२ रत्ती दिन में ३ समय शहद के साथ रोग के अन्त तक चालू रखें।

अगर मसूरिका पहले बाहर निकल कर पीछे भीतर समा जाय तो कचनार की छाल का काढ़ा बनाकर उसमें सोना मक्खी का चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिए। रोगी की सेवा करने वाले को रोग से बचने के लिए पुरुष सीधे हाथ में तथा स्त्री बायें हाथ में हरड़ के बीज को बांध ले तो रोग नहीं लगेगा। यह संक्षेप में विवेचन दिया गया है।

—★—

शिशुओं में—

शीतला की सफल चिकित्सा

कविराज श्री अमरनाथ जी गुलाठी, स्नातक तथा निरीक्षक श्री वेदमंदिर संस्थानम् (आयुर्वेद विभाग) सिविलरोड, रोहतक

इस ज्वर की तीव्र विषैली-उष्णता शरीर के आधारभूत वीर्य को भी संतप्त कर देती है। अतः यह ज्वर अति कष्ट-साध्य है एवं चिकित्सा में पूर्ण सावधानी की आवश्यकता है। यदि ओजधातु भी प्रभावित हो जावे, तो यह सन्निपात-ज्वर मस्तिष्क को भी प्रभावित कर प्रायः असाध्य रूप धारण कर लेता है एवं रोगी अथवा शिशु अकाल में ही काल का ग्रास बन जाता है। अतः चिकित्सक का प्रथम कर्तव्य यह है कि इस ज्वर के होते ही मस्तिष्क की सुरक्षा का भली प्रकार ध्यान रखें।

आधुनिक चिकित्सकों ने इस ज्वर की शान्ति अर्थ अनेक औषधियों के अतिरिक्त स्मालपाक्स-वैक्सीनेशन का का आविष्कार किया है। यद्यपि आज यह उपाय संसार भर में प्रचलित है एवं सफल चिकित्सा मानी जाती है परन्तु इस चिकित्साप्रणाली के सदा रोगी एवं औषधि-अभ्यासी बनाने के दुर्गुण इस सूचीवेध में विद्यमान हैं। रोगी के शरीर में प्रविष्ट यह सूचीवेध की औषधि शरीर में अन्य रोगों की उत्पत्ति का कारण बनती है। इसकी विस्तृत व्याख्या फिर किसी समय पाठकों के सम्मुख रखेंगे। आज हम अपने निर्धारित विषय शिशुओं में शीतला की सफल आयुर्वेदीय चिकित्सा नीचे लेखनीबद्ध कर रहे हैं जिससे जन-साधारण एवं आयुर्वेद चिकित्सक लाभान्वित हों एवं आयुर्वेद के उज्वलतम-स्वरूप के भी प्रत्यक्ष दर्शन हों।

सफल आयुर्वेदीय चिकित्सा-

महासुदर्शन चूर्ण—

इस रोग की सफलतम एवं हानिरहित चिकित्सा है एवं इस रोग से बचने का (शतप्रतिशत-सफल) उपाय है। जहां शीतला का प्रकोप है तत्काल महासुदर्शन चूर्ण अथवा इसका अर्क मधु मिलाकर प्रयोग करना आरम्भ कर दें। भोजन में लवण एवं घृत (वसा) त्याग दें। ईश कृपा से कभी आक्रमण होगा ही नहीं। यदि आक्रमण का प्रथम चरण हो तो महासुदर्शन चूर्ण ही रोग शान्ति में समर्थ है।

परन्तु यदि रोगी द्वितीय चरण में प्रविष्ट हो चुका हो तो इस चूर्ण के अर्क के साथ गोदन्तीहरताल भस्म १०० मिलीग्राम में २५ मिलीग्राम मोतीपिष्टी सर्वोत्तम मिलाकर एक मात्रा बना लें। हर चार घण्टा पश्चात् एक मात्रा दी जावे एव २४ घन्टे में चार मात्रा प्रयोग करें। ईश कृपा से अवश्य सफलता मिलेगी। रोग की तृतीय अवस्था में यद्यपि सफलता की आशा कम होती है परन्तु भगवत् सहारे निम्न योग प्रयोग कर देखें—

खाने की औषधि-

१. गोदन्तीहरताल भस्म १०० मिलीग्राम।
२. मोतीपिष्टी सर्वोत्तम २५ मिलीग्राम।
३. अभ्रकभस्म १००० पुटी पुरानी २५ मिलीग्राम।
४. स्वर्णभस्म उत्तमतम १० मिलीग्राम।

शीतला की चिकित्सा आयुर्वेदीय पद्धति से कैसे की जा सकती है इस पर गुलाठी जी ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। लेख में जो योग दिये हैं उनका प्रयोग किया जाकर सद्वैद्यों को अपने अनुभव सुधानिधि में भेजने की प्रार्थना सहित।

—गो० श० गर्ग

—शेषांश पृष्ठ ३६७ पर

संकलनकर्ता-वैद्य कालीचरण पाठक वैद्याचार्य प्रवक्ता
श्री सपड़िया आयुर्वेद महाविद्यालय, हाथरस।

जीवाणु—इस रोग के जीवाणु का पता बोर्डे और गंगू ने सन् १९०६ में पहले पहल लगाया था। इसे हीमोफाइलस पर्टुसिस कहा जाता है। यह जीवाणु अचलनशील, सूक्ष्म अण्डाभ ग्रामनास्तिक और वातप होता है। इसे बोर्डे गंगूकल्चर माध्यम पर आसानी से संवर्धित किया जाता है। जिसमें आलू-ग्लिस्रोल-रक्तआगर का उपयोग किया जाता है। अब इसे केसीन-कार्बन-आगर पर भी उगाया जाता है। कल्चर या संवर्ध में पारे की तरह चमकीली इसकी कालोनियां बनती हैं। यह जीवाणु धूप, प्रकाश, उच्चतापक्रम आदि से शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है। सूखने और जीवाणु नाशक द्रव्यों से भी यह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जानपादिक रोग विज्ञान—

रोग का संक्रमण एक बालक से दूसरे बालक को होता है। रोग के आरम्भ में जीवाणु जितना सबल और आक्रामक होता है उतना बाद में नहीं देखा जाता। यह जीवाणु एक महीने तक रोगी बालक के थूक में पाया जाता है।

कुकुर कास के वाहक भी होते हैं जो स्वयं बिना बीमार पड़े भी रोग दूसरों को देते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जीवाणु के आक्रमण रूप रोग का प्रसार करते रहते है।

रोग बिन्दूत्क्षेप से उन बालकों में फैलता है जो काफी दिनों तक रोगी के संसर्ग में रहते है।

यदि कुकुर कास से पीड़ित रोगी को अलग कक्ष में रख दिया जाय तो भी उसका संक्रमण अन्यों को नहीं लगता।

इस रोग से एक से पांच वर्ष तक के बालक अधिकतर प्रभावित होते हैं। जितना ही छोटा बालक होगा उतना ही इसका प्रभाव उस पर जल्दी होता है। १० वर्ष की आयु और उसके बाद रोग प्रायः नहीं देखा जाता। एक बार का रोगाक्रमण ही स्थायी क्षमता प्रदान कर देता है इस लिये एक बार रोग हो जाने से पुनः उसका खतरा जीवन में प्रायः नहीं देखा जाता।

कुकुर कास का उपसर्ग रोमान्तिका के बाद सबसे अधिक तीक्ष्ण बिन्दूत्क्षेप उपसर्ग माना जाता है।

३. विकृति विज्ञान—

इस रोग में श्वसन संस्थान में विक्षत बनते हैं। स्वरयन्त्र, कण्ठनाड़ी, श्वासनाल सभी में प्रसेक या स्राव बनता और बहता रहता है। रोग का प्रभाव श्वसन संस्थान की श्लेष्मलकला श्वसनिक पेशियों और श्वासनलिकाओं के

प्रस्तुत लेख श्री पाठक जी ने आधुनिक चिकित्सा के कसी ग्रन्थों की सहायता से तैयार किया है इसमें इतने अधिक नये विचारों का संकलन हुआ है कि उन्हें बिना जाने इस रोग का सर्वतोभावेन ज्ञान होना सम्भव नहीं है। —गो. दा. गर्ग

वाह्य मार्गों तक देखा जाता है। पर ये विक्षत इस रोग के लिए ही विशिष्ट हों ऐसा नही है। खांसी के कारण वातायन फट या चौड सकते हैं। हृदय का दक्षिण निलय विस्फारित तक हो सकता है। फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य हो जाता है। आभ्यन्तरीय कोष्ठांगों में रक्तस्राव भी होता हुआ देखा जा सकता है। रूसी विद्वानों ने मृत्यूत्तर परीक्षण में मस्तिष्क की वाहिनियों में विस्फार, वातनाड़ी-संस्थान में विक्षत और मस्तिष्क में शोथ के चिन्ह तक पाये हैं।

४. रोगसम्प्राप्ति—

रोग का जीवाणु ऊर्ध्वश्वसन मार्गों से प्रवेश करता है और स्वरयन्त्र, श्वासनाल और श्वासनलिकाओं में बैठ जाता है। फुफ्फुस के वायुकोशों में भी चला जाता है पर रक्त के अन्दर या कोष्ठांगों में प्रवेश नहीं करता।

यह जीवाणु एक प्रकार का विषैला पदार्थ बनाता है वही रोगकारक होता है। श्वसनकला में जो वातनाडीय (तन्त्रीय) ग्राहक या रिसैप्टर्स होते हैं वे इस विषैले पदार्थ से बुरी तरह प्रक्षुब्ध हो उठते हैं जिससे तीव्र खांसी का दौरा चालू हो जाता है। यही विषैला पदार्थ जब रक्त में प्रविष्ट हो जाता है तब वह वाहिनियों के वातनाड़ी संस्थान में प्रक्षोभ करके वाहिनियों में आक्षेप या आकुंचन पैदा कर देता है। इससे रक्तदाव बढ़ता है। श्वसनिकाओं में संकोच होता है तथा स्वररज्जुओं में भी आकुंचन होने लगता है। इस विष से श्वसन केन्द्र तथा वाहिनीप्रेरक केन्द्र उत्तेजित होने के कारण ही विविध प्रकार के आक्षेप इस रोग में पाये जाते हैं।

रोग का क्रम इस प्रकार बनता हुआ बतलाया जाता है—श्वसनमार्ग के द्वारा नाड़ी तरंगों के लगातार प्रवाहित होते रहने से ग्राहक तन्तुओं के केन्द्रिय वात नाड़ी संस्थान में स्थायी उत्तेजना का अड्डा बना रहता है। इन ग्राहकों पर कुकुर खांसी के जीवाणुओं के द्वारा उत्पन्न विष का प्रभाव पड़ने से यह अड्डा और अधिक उत्तेजित हो जाता है। इस अड्डे के इस प्रकार उत्तेजित होजाने से यह वातनाड़ी संस्थान के अन्य भागों से भी नाड़ी तरंगों को अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसके कारण खांसी के प्रवेग या दौरे जोर-जोर से पड़ने लगते हैं। ये प्रवेग केवल श्वसन केन्द्रों की तरंगों के द्वारा ही प्रभावित नहीं होते बल्कि अन्य भागों में उत्पन्न नाड़ी तरंगों से भी पड़ने लगते हैं। इञ्जेक्शन लगाने से, तेज आवाज सुनने से या गले की परीक्षा करने मात्र से खांसी का दौरा पड़ जाना इसका सबूत है। अड्डे की बात कहना इसलिए भी जरूरी है कि जब रोग का उपसर्ग पूर्णतः समाप्त हो जाता है तब भी कभी-कभी बच्चे को ये दौरे पड़ते हुए देखे जा सकते हैं। रोगी का स्थान परिवर्तन करना उसे किसी खेल में तन्मय कर देना या वायुयान की यात्रा के दौरान यह अड्डा पहले से अल्प वातावरण में अपने को पाने के कारण उत्तेजित नहीं हो पाता और दौरा नहीं पड़ता।

खांसी को अनुपाधिक प्रतिवर्त (अनकण्डीशण्ड रिफ्लैक्स) माना जाता है। पर इस रोग के कारण यह सोपाधिक प्रतिवर्त का रूप ले लेती है। इसलिए जैसे ही बालक चिकित्सक को देखता है उसे दौरा पड़ जाता है। कभी कभी मुख में स्पैच्युला लगाते ही दौरा पड़ता है। यदि बच्चा कोई चलचित्र देख रहा हो और तब उसे दौरा पड़ जाय तो वैसे ही चलचित्र के दूसरी बार देखने पर अपने आप दौरा पड़ सकता है।

वार-बार खांसी के दौरे पड़ने तथा फुफ्फुसों में रक्त संचार में गड़बड़ी के कारण श्वसनकार्य में बाधा पड़ जाती है जिससे औक्सीजन की कमी या हाइपौक्सिया उत्पन्न होने लगता है। हाइपौक्सिया के कारण केशिकाओं की प्राचीरों में प्रवेश्यता बढ जाती है। जब इन पर कुकुरकास जीवाणु के विष का प्रभाव पड़ता है तो यह और भी बढ़ जाती है तथा वातनाड़ी संस्थान में उत्तेजक प्रभाव पड़ने लगता है। बारबार आक्षेप या कन्वल्जनों का होना हाइपौक्सिया तथा इस विष का परिणाम माना जाता है जो मस्तिष्कस्थ रक्तवाहिनियों को विकारयुक्त कर देता है।

औक्सीजन की कमी, तथा औक्सीडेशन प्रक्रिया में गड़बड़ी के कारण कार्बनडाई औक्साइड बढ़ने से अम्लोत्कर्ष की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। इन दोनों के कारण वातनाड़ी (तन्त्री) संस्थान में और अधिक प्रक्षोभ बढ़ जाता है।

लगातार खांसी के दौरों और उलटियों के कारण बालक की दुर्दशा हो जाती है। उसका पोषण ठीक नहीं हो पाता। उसके शरीर में विटामिनों की भी कमी हो जाती है। इन सबका भी उसके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

इस रोग के साथ अन्य उपसर्गों के होने से कई प्रकार के उपद्रवों की उत्पत्ति भी हो सकती है।

रोग का स्वरूप —

कुकुर कास का संचयकाल ५ से ८ दिन का साधारणतया माना जाता है। वैसे ३ से १५ दिन तक भी यह हो सकता है।

इस रोग की ३ अवस्थायें विज्ञों ने स्वीकार की हैं—

१. प्रसेकावस्था

२. प्रवेगावस्था

३. रोगोत्तरावस्था

प्रसेकावस्था—कभी सज्वर कभी निर्ज्वर होती है। बालक को सर्दी लगती और नाक बहने लगती है और रात में खांसी उठती है। इस अवस्था का काल ३ दिन से १४ दिन तक का होता है।

प्रवेगावस्था—यह प्रसेकावस्था से धीरे-धीरे बढ़कर प्रवेगावस्था चालू होती है। इसमें खांसी आक्षेप या दौरे के साथ आना शुरू होता है। थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक शृंखला में खांसी उठती चली जाती है। रुकती नहीं। तभी बच्चा जोर से श्वास खींचता है। स्वरयन्त्र के संकोच के साथ ज्यों ही हवा अन्दर जाती है एक विशेष शब्द होता है जिसे हूप कहते हैं। कुत्ते के भौंकने का सा स्वर इसी के कारण इस रोग को हूपिंग कफ या कुकर खांसी नाम पड़ा है।

एक प्रवेग या फिट या दौरा में कई हूप उठ सकते हैं। जितना ही उपसर्ग तीव्र होता है उतनी ही देर तक दौरा रहता है और उतनी ही अधिक संख्या में हूप बनते हैं। दौरे के अन्त में कफ का एक साफ चिपचिपा टुकड़ा निकल जाता है तथा उलटी हो जाती है। उलटी सौम्य रोग में कभी-कभी पर तीव्र रोग में बार-बार आती है।

दौरे के समय बालक का चेहरा लाल सुर्ख या श्याव हो जाता है। गर्दन की सिरायें फूल जाती हैं। आंखें लाल और अश्रु पूर्ण हो जाती हैं, पलक सूज जाते हैं, जीभ बाहर निकल आती है। उसकी नोंक ऊपर की ओर मुड़ जाती है। कभी-कभी बच्चे का पाखाना तथा पेशाब तक निकल जाता है। कभी-कभी आंख की कला और त्वचा में रक्तस्राव तक देखा जाता है।

दौरा थोड़ी सी ही उत्तेजना से, तेज आवाज के होने से, गले की परीक्षा करने और बच्चे के कपड़े उतारने मात्र से चालू हो जाता है। छोटे कमरे में जहां घुटन हो वायु का आवागमन न हो रात के समय दौरे पड़ा करते है। अधिक तीव्र रोग पर बालक का सर्वाङ्ग या टांगें सूज जाती हैं। जीभ के नीचे सेवनी पर एक व्रण भी देखा जाता है।

प्रवेगावस्था में ज्वर नहीं रहता पर यदि ज्वर उत्पन्न हो जावे तो उसका कारण किसी उपद्रव को मानना चाहिए। फुफ्फुसों की परीक्षा में वातस्फीति मिलती है। नाड़ी की गति बढ़ी हुई मिलती है। रक्तदाब के दौरे के समय बढ़ने से ही केशिकाओं के फटने से त्वचा या कलाओं में रक्तस्राव मिलते हैं। बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। नींद घट जाती है और मुख की पेशियों में कम्पन देखा जा सकता है। रक्तपरीक्षण पर श्वेत कोशोत्कर्ष तथा लसीकोशोत्कर्ष मिलता है।

प्रवेगावस्था २ से ८ सप्ताह तक प्रायः देखी जाती है।

रोगोत्तरावस्था—में दौरे कम और खांसी का झटके के साथ आना बन्द होजाता है। रोग के अन्य लक्षण भी धीरे-धीरे शान्त होते जाते है।

कुकुरखांसी के मृदु, सौम्य और तीव्र ये ३ रूप होते हैं। मृदु में ५ से १५ तक, सौम्य में १५ से २५ तक तथा तीव्र में २५ से ४० तक प्रवेग आते हैं। हर प्रवेग १५ मिनट का होता है तथा प्रत्येक प्रवेग में १० से २० बार हूप आते हैं।

६. उपद्रव—

इस रोग में निम्नलिखित उपद्रव मिल सकते हैं—

i. ब्रांको न्यूमोनियां।

ii. वातस्फीति।

iii. न्यूमोथोरैक्स।

iv. अपस्मारात्मक आक्षेप।

v. शीर्षण्यानाड़ियों का आंशिक घात।

७. निदान—

जितनी जल्दी यह पता लग जाता है कि वालक कुकुरकास से पीड़ित है उतनी ही जल्दी उस पर नियन्त्रण पाना आसान रहता है। प्रसेकावस्था में कफप्लेट द्वारा कुकुरकास के जीवाणु का प्रयोगशाला में ज्ञान किया जाता है। वैसे रोग की प्रकृति, प्रवेग, खांसी में हूप आदि से रोग का ज्ञान सरलता के साथ हो जाता है।

८. चिकित्सा—

१. इस रोग में पथ्य और परिचर्या महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। विश्राम केवल ज्वरावस्था में आवश्यक होता है। खुली ताजी हवा में वच्चे को रखने पर उसे अधिक आराम मिलता है इसलिए जाड़ा हो या गर्मी वच्चे को खुले वायुमण्डल में अधिकांश समय तक रखना उचित माना जाता है। केवल सर्द हवाओं से वच्चे की रक्षा करने की सावधानी वरतनी चाहिए।

२. इस रोग में उलटी आते रहने से वच्चे का खाया पिया सव निकल जाता है। इसलिए उलटी के वाद फिर पौष्टिक सुपाच्य आहार वच्चे को देते रहना चाहिए। भोजन के साथ विटामिनों का समुचित प्रयोग करना चाहिए। यही नहीं, विटामिन सी खूब देनी चाहिए। भोजन के बाद कोई ऐसी परीक्षा नहीं करनी चाहिए जिससे दौरा पड़ जाय।

३. कई ऐण्टीवायोटिक औषधियां आजकल चिकित्सकों द्वारा इस में दी जाती हैं। इनमें स्ट्रैप्टोमायसीन एक है। इसे पेशी में इंजैक्शन से चौथाई से आधा ग्राम प्रति दिन १२ से १५ दिन तक प्रसेकावस्था में या प्रवेगावस्था के आरम्भिक दिनों में देते हैं। दूसरी क्लोरैम्फेनिकाल है। इसे ०·०२ ग्राम प्रतिकिलो शरीर भार के अनुसार मात्रा को चार भागों में विभक्त कर २४ घन्टे में ४ वार में दे देते हैं। इसे ८-१० दिन चलाना पड़ता है। इसी प्रकार टैट्रासाईक्लिन या औक्सीटैट्रासाइक्लीन वर्ग की औषधियों को शर्वत या वूंदों या कैपसूल में भरकर उचित वाल मात्रा में (२५००० यूनिट प्रतिकिलो) चार भागों में वांट कर चार वार में २४ घन्टे में ८-१० दिन तक देते हैं। यह तीसरी दवा है जो न्यूमोनिया आदि उपद्रवों में भी अच्छा काम करती है।

वहुत गम्भीर रुग्णों में स्ट्रैप्टोमायसीन तथा टैट्रासाइक्लीन दोनों एक साथ भी दिये जा सकते हैं। पैनिसिलीन, ऐरिओमाइसीन आदि भी साथ-साथ दिये जा सकते हैं।

४. कुकुरकास में वैक्सीन द्वारा भी चिकित्सा की जाती है। कुछ लोग हुपिंगकफ वैक्सीन को प्रसेकावस्था तक उपयोगी मानते हैं कुछ इसे चिकित्साकाल में देना उचित नहीं ठहराते।

कुछ विद्वान् एण्टीवायोटिक चिकित्सा के साथ-साथ विशिष्ट कुकुरकास प्रतिरोधक गामा-ग्लोव्युलिन का प्रयोग करते हैं।

५. प्रवेग काल में आक्षेपहर द्रव्यों—एट्रोपीन, वेलाडोना, पैपैवरीन, निद्राजनक द्रव्यों—का प्रयोग करते हैं पर इनसे कोई खास लाभ नहीं होता हुआ देखा जाता है। उलटे निद्राजनक या स्वापजनक (नार्कोटिक) दवाएं श्वसनकेन्द्र को और अवसादित कर हानिकारक ही अधिक सिद्ध होती हैं। इनके स्थान पर—

i. क्लोरप्रोमैजीन-नोवोकेन के साथ पेशी में इंजैक्शन देना।

ii. प्रोपैजीन मुख द्वारा २ से ४ मिग्रा प्रति किलो शरीर भार के अनुसार कई हिस्सों में वांटकर मुख द्वारा खिलाने से काफी लाभ रहता है। प्रवेगों की तीव्रता और वार-वार वमन का होना घट जाता है। वाहिनियों में भी जकड़ाहट कम हो जाती है।

६. भौतिक चिकित्सा—अल्ट्रावायोलेट रश्मि, सेक आदि वहुत उत्साहजनक परिणाम नहीं दिखलाते।

७. औक्सीजन का प्रयोग अत्यधिक लाभदायक सिद्ध होता है। छोटे-छोटे शिशुओं को आक्सीजन टैंट में सुला देते हैं जहां वे आराम से पड़े रहते हैं।

८. आक्षेप रोकने के लिए आक्सीजन सुंघाने के साथ-साथ मैगनेशियम सल्फेट २५ प्रतिशत विलयन का इंजैक्शन पेशी में देने से या सिरा द्वारा अतिवल ग्लूकोज चढ़ाने से पर्याप्त लाभ होता है।

अन्य उपद्रवों की चिकित्सा ऐण्टीवायोटिक्स या कर्टी-

कोस्टरोइडों से करने की सलाह भी दी जाती है। लम्बे रुग्णों में रक्ताधान भी करा सकते हैं।

उपसर्गशमन के बाद रोगी बालक को हवा बदलने के लिए किसी सैनेटोरियम में रख सकते हैं।

६. रोगप्रतिषेध—

जब कुकुरकास एक जानपदिक रूप में फैलने लगता है तब प्रतिषेधात्मक उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है। इसके लिए निम्नांकित उपाय किए जा सकते हैं:—

१. रोगी बालक का शेष बालकों से पृथक्करण करना इसके लिए उसे घर के एक कमरे में सीमित कर देते हैं और दूसरे बच्चों का आवागमन रोक देते हैं। जीवाणु अपने आप समाप्त हो जाते हैं।

२. आतुरालय प्रवेश—अधिक गम्भीर रोगी आतुरालय में शैया पर रखे जाते हैं।

३. कुकुरकास का क्वारंटीन काल १४ दिन का होता है। यदि किसी बालगृह में किसी को भी कुकुरकास हो जाता है तो पूरे वर्ग को ही क्वारंटीन में रखते हैं।

४. हुपिंगकफ गामाग्लोब्युलिन स्पेशल वैक्सीन का टीका ३ से ६ मिलि. ४८ घंटे में २ बार लगाते है। कभी-कभी कुकुरकास-रोहिणी-धनुर्वात की वैक्सीन का सम्मिलित टीका भी लगाया जाता है।

पृष्ठ ३८८ का शेषांश

विहार—व्यायाम, व्यवाय, दिवास्वप्न, प्रवात, वेगधारण, आतप, और स्वेदन न करें।

वैकृतापह: योग—रोग निवृत्ति के बाद त्वचा के ऊपर रहे दाग एवं गढ्ढों को दूर करने के लिए निम्नलिखित योग उपयोगी होते हैं।

१. सर्षप, चमेलीपत्र, अखरोट त्वक्, को जल में पीसकर मक्खन मिलाकर लेप करें;

२. मुलैठी, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, चिरोंजी, मसूर की दाल समभाग लेकर अजादुग्ध से पीसकर उबटन करें।

३. चन्दन तैल, बादाम तैल, तुवरक तैल, और नारियल तैल, समभाग लेकर उपरोक्त उबटन के बाद हल्के हाथ से अभ्यंग करें।

४. शंख को गुलाबजल में पीसकर समभाग पुराना गुड़ मिलाकर उबटन करने के बाद में डाभ के जल से धोवें।

पृष्ठ ३९२ का शेषांश

सभी मिलित एक मात्रा, ऐसी ४ मात्राएं २४ घन्टे में अर्क सुदर्शन चूर्ण एवं मधु से प्रयोग करें।

अथवा त्रैलोक्यचिन्तामणि रस (सन्निपात प्रसंगे) १०० मिलीग्राम में १० मिलीग्राम स्वर्णभस्म मिलाकर एक मात्रा बना लें। ऐसी २४ घन्टे में चार मात्रा प्रयोग करें।

बाह्य प्रयोगार्थ योग—

महानारायण तैल में यथा आवश्यक भीमसैनीकपूर मिलाकर नस्य रूप में प्रयोग करें एवं कानों में डालें तथा ब्रह्मरन्ध्र पर लगावें।

शीतला के दागों (निशानों) का उपाय—

शीतला में महासुदर्शन चूर्ण से बढ़कर और कोई हानि रहित शतप्रतिशत सफल चिकित्सा नहीं है। रोगी यदि इन निशानों को दूर करना चाहता है तो निरन्तर धैर्यपूर्वक महासुदर्शन चूर्ण प्रयोग करता चला जावे तथा बाह्य प्रयोगार्थ उत्तम "कुंकुमादि तैल" की मालिश करें।
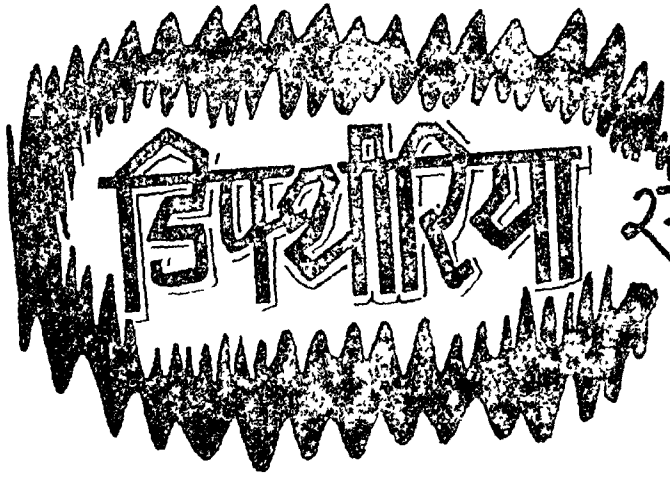
आचार्य डा० चन्द्रप्रकाश शर्मा ए.एम.बी.एस.–डी. ए-वाई.एम. (का.हि.वि.वि.)
कार्यकारी प्राचार्य साहू रामनारायण मुरलीमनोहर आयुर्वेद डिग्रीकालेज, बरेली

विद्वद्वर्य डा. शर्मा उन इने गिने शल्य चिकित्सकों में से हैं जिन पर सारेदेश का नव्यायुर्वेदीय शल्यविद् जगत् गर्व कर सकता है। आपकी सर्जीकल आपरेशनों की ख्याति पीलीभीत बरेली तथा अन्यत्र व्याप्त है। आप अध्यापन में जितने कुशल हैं उतने ही शस्त्रकर्म में भी दक्ष हैं। वाग्भट का 'दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिभिषक् ।' डा० शर्मा पर उचित ही ठहरता है। आपने अपने व्यस्त समय में से यह बहु अध्ययन सिद्ध लेख प्रदान कर हमें लाभान्वित किया है। इसमें कई बहुत उपयोगी नव्य और प्राचीन चिकित्सा तथ्यों का निरूपण कुशलता से किया गया है। —र. प्र. त्रिवेदी

इस रोग का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा रहा है:—

१. रोहिणी का जानपदिक रोग विज्ञान
२. रोहिणी का विकृति विज्ञान
३. रोहिणी-सम्प्राप्ति
४. लक्षण समुच्चय तथा रोहिणी के विविध रूप।
५. रोहिणी के उपद्रव
६. रोहिणी—निदान तथा सापेक्ष निदान
७. रोहिणी की साध्यासाध्यता
८. रोहिणी की चिकित्सा
९. रोहिणी प्रतिषेध

(१) रोहिणी का जानपदिक रोग विज्ञान

यह रोग रोहिणी से पीड़ित रोगी या वाहक के द्वारा रोग के संचयकाल से लेकर रोग समाप्त होने के भी कुछ दिन बाद तक फैलता है। वाहकों में रोग तो नहीं होता पर उन्हें सर्दी जुकाम के लक्षण मात्र देखे जाते हैं जिनसे यह अन्दाज नहीं लगपाता कि वाहक रोहिणी का उपसर्ग अपने अन्दर छिपाये हुए है। ऐसे वाहक बालक के साथ स्वस्थ बालक के खेलने, खाने या सोने से रोहिणी रोग लग जाता है।

रोगयुक्त बालक सामान्यतः १५ से २० दिन में

गल तोरणिकाओं में उपकला शल्की होती है उसके गलाव से जो कला बनती है वह नीचे के ऊतकों से भी चिपकी रहती है। जिसे आसानी से उचेला नहीं जा सकता यह काफी मोटी भी होती है इसे डिफ्थेरीटिक इन्फ्लेमेशन कहा जाता है।

ये दोनों प्रकार के इन्फ्लेमेशन (शोथ) क्रुपस तथा डिफ्थेरीटिक न केवल रोहिणी के जीवाणुओं के बनते हैं अपि तु कई प्रकार के गोलाणुओं से भी बन सकते हैं।

इन उपसृष्ट उपकलाओं से संबन्वित लसीका ग्रन्थियां भी फूल जाती हैं उनमें रक्ताधिक्य हो जाता है तथा गलाव पड़ जाता है।

रोहिणी के विष से इस रोग में कई अङ्गों पर प्रभाव पड़ता है जो इस प्रकार है—

१. मस्तिष्क तथा सुषुम्ना—सूजन बढ़ जाती है और जलीय अंश अधिक हो जाता है।
२. वातनाड़ी गंडिकायें—इनकी कोशिकाओं में कुछ न कुछ व्यपजनन देखा जाता है।
३. परिसरीय वातनाडियां—इनमें शोथ हो जाता है ये कुरूप और व्यपजनित हो जाती हैं।
४. अधिवृक्क ग्रन्थियां—एड्रीनल ग्लैंड्स के मज्जक और बाह्यक में रक्ताधिक्य होकर रक्तस्राव होने लगता है और कोशिकायें पूरी की पूरी नष्ट हो जाती हैं जिससे एक-दो दिन में ही बच्चा मर जाता है।
५. हृद्वाहिनी संस्थान—इस रोग में यह संस्थान सबसे अधिक व्यथित होता है। धमनिकाओं की प्राचीरें गल जाती हैं। हृत्पेशी व्यपजनित हो जाती है। उसमें रक्ताधिक्य हो जाता है और कोशिकाओं की भरमार हो जाती है इस सबसे हृदय बहुत फैल जाता है।

हृदय की विकृति अनुकम्पी वातनाड़ी संस्थान की विकृति और अधिवृक्क ग्रन्थियों की विकृति तीनों मिलकर बच्चे के मृत्यु के मुख में धकेल देती है।

६. वृक्क—वृक्क नलिकाओं की उपकला रोहिणी के विष से नष्ट होने लगती है और सूज जाती है जिससे उपवृक्कता के लक्षण पैदा हो जाते हैं।

३. रोहिणी-सम्प्राप्ति—

उपर्युक्त विकृतियों के कारण रोगी बालक का सारा शरीर एक साथ प्रतिक्रियान्वित हो उठता है। यदि बालक पहले इन्फ्लूएन्जा टोन्सिलाइटिस रोमान्तिका लोहित ज्वर आदि से पीड़ित हो चुका हो तो इसमें यह प्रतिक्रिया अधिक उग्र हो जाती है जिसके कारण—

i. हृदय की गति बढ़ जाती है।
ii. रक्त में बिम्बाणुओं की संख्या घट जाती है।
iii. केशिकाओं की प्रवेश्यता बढ़ जाती है।
iv. हृदय का आयतन घट जाता है।

इस विषय में रूसी विद्वानों ने बहुत काम किया है।

इसी बीच रोगी बालक के शरीर में प्रतिविष (एन्टीटोक्जिन) की उत्पत्ति होने लगती है।

(४) रोहिणी-लक्षण-समुच्चय तथा रोहिणी के विविध रूप

इस रोग का संचय काल २ से १० दिन का माना गया है। यह काल रोग की उग्रता और विकृति की प्रक्रिया और स्थान विशेष पर निर्भर करता है। इनके आधार पर इस रोग के निम्न लिखित रूप मिलते हैं—

१. गल तोरणि की रोहिणी (फौंगियल डिफ्थीरिया)
२. स्वर यन्त्री रोहिणी (लेरिन्जियल डिफ्थीरिया)
३. नासा रोहिणी (नेजल डिफ्थीरिया)
४. अन्य प्रकार की रोहिणी

इन सभी प्रकारों का वर्णन करने से पहले यह जान लेना जरूरी है कि नवजात शिशुओं में डिफ्थीरिया प्रायः नहीं होती। विपाक्त रोहिणी छै माह तक के बच्चों में नहीं पायी जाती। जिन लोगों को टीका लगवाया हुआ होता है उनमें यदि रोहिणी होती है तो उसका स्वरूप किताबों में लिखे रूप से भिन्न और सौम्य होता है। कभी-कभी रोहिणीग्रस्त बालक को यदि कोई दूसरा रोग हो तो उसके लक्षणों के कारण रोहिणी का अनुमान लगाना कठिन पड़ जाता है। अब आगे उपर्युक्त चारों रूपों का विवरण दिया जायगा।

१. गल तोरणिकी रोहिणी—गले में जो तोरणिकायें होती हैं उनमें रोहिणी सबसे अधिक (८० से ९० प्रतिशत तक) बनती है यह रोहिणी तीन रूपों में प्रायः

देखी जाती है और ये रूप भी रोग की विषाक्तता और स्थानीय प्रक्रिया पर निर्भर होते हैं। इनमें पहला रूप है स्थानीकृत गलतोरणिकी रोहिणिका जिसमें रोग की कला का आवरण केवल टोन्सिलों पर ही देखा जाता है। दूसरा विसरित रूप होता है जिसमें रोग कला टोन्सिलों से आगे तालुचापों, काकलक और गले तक फैल जाती है। तीसरा रूप विषाक्त रूप कहलाता है इसमें गल तोरणिकाओं में बड़े-बड़े विक्षत देखे जाते हैं। क्षेत्रीय लसीका ग्रन्थियां फूल जाती हैं और गले के ऊतक भी विषाक्तता से शोथयुक्त हो जाते हैं।

इन तीन स्थानीकृत, विसरित तथा विषाक्त गल तोरणिकी रोहिणी के और भी अनेक उपरूप देखे जा सकते हैं जो इन तीनों के बीच के रूप होते हैं जिनके कारण उपवैषिक, अतिवैषिक, रक्तस्रावी और कोशीय ये नाम विभिन्न लेखकों ने दिये हैं।

आयुर्वेद में जो कंठ रोहिणी नाम पड़ता है वह इसी गल तोरणिकी रोहिणी के लिये है लिखा भी है—

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम्।
गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरै—
निहन्त्यसून् व्याधिरियं हि रोहिणी॥
—सु. नि. स्थान अ. १६

यह कंठ रोहिणी या गल रोहिणी सबसे अधिक बनती है इसके होने पर रोगी बालक व्याकुल रहता है, उसकी भूख मारी जाती है, सिर में दर्द रहता है और तापक्रम १०० डिग्री फैरनहाइट से ऊपर नहीं जाता, गले में निगलने में दर्द होता है, कभी-कभी नहीं भी होता। ये लक्षण इतने सौम्य होते हैं कि लोग चिकित्सक को भी नहीं बुलाते। पहले दिन तालू काक तथा टोन्सिलों पर थोड़ी लालिमा आती है दूसरे दिन टोन्सिलों पर मकड़ी के सफेद जाले की तरह का फिलम सा जम जाता है जिसका धरातल चिकना या लहरदार होता है और उसके किनारे स्पष्ट देखे जाते हैं। इस फिलम या कला का रंग सफेद, भूरा सफेद या पीला सा सफेद होता है। यह दृढ़ता से चिपकी रहती है और इसे पिचु या फाहे के द्वारा छुड़ाया नहीं जा सकता। इस कला के साथ ही साथ गर्दन के लसीका पर्व (लिम्फनोड) भी फूल जाते हैं उनका परिस्पर्श करने पर वे कड़े दबाने पर कुछ शूलयुक्त होते हैं किन्तु उनके किनारे विशेष स्पष्ट नहीं होते। इस समय विषरक्तता के कुछ लक्षण—भूख की कमी, दुर्बलता, नाड़ी का थोड़ा तेज होना—पाये जाते हैं। यदि इस समय डिफ्थीरिया एन्टी टोक्जिन रोगी बालक को दिया जाय तो दो तीन दिन के अन्दर रोहिणी की कला या फिलम गायब हो जाता है।

इसी का एक द्वीप रूप (इन्सूलर फोर्म) भी होता है इसमें गले में इतस्ततः तालु तोरणों या काक की कला पर सफेद या भूरे सफेद धब्बे बन जाते हैं। इसमें अन्य लक्षण बहुत सौम्य होते हैं इसी का एक प्रसेकी रूप भी होता है जिसमें टोन्सिल कुछ बढ़ जाते हैं थोडा तापक्रम भी बढ़ता है।

गल तोरणिकी रोहणिका का विसरित (डिफ्यूज) रूप वमन के साथ आरम्भ होता है। इसमें स्थानीकृत रोहिणी की अपेक्षा रोग की विषाक्तता कुछ अधिक होती है। बालक व्याकुल, शान्त, दुर्बल, क्षुधाहीन, सिर दर्द से पीड़ित और अनिद्रित पाया जाता है तापक्रम १००° से १०१° तक मिल सकता है। पहले ही दिन से बच्चा गले में दर्द बतलाता है। गलतोरणिकाओं पर थोड़ा रक्ताधिक्य पाया जाता है टोन्सिल फूले हुये होते हैं और उन पर रोहिणी की कला बन जाती है यह कला तालु तोरण का कलक और मृदु तालु तक फैल जाती है। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता जाता है यह कला फैलती और मोटी होती जाती है जिसका रंग पीला सा भूरा या गंदला भूरा हो जाता है। गर्दन के लसीका पर्व कुछ अधिक बढ़ जाते है और दबाने पर दर्द करते हैं। इस अवस्था में भी 'एन्टी टोक्सिन' देने से ज्वर कम हो जाता है और कला सिकुड़ने और उचलने लगती है।

विषाक्त रूपी गलतोरणी रोहिणी सहसा उत्पन्न होती है। ज्वर १०२° से १०४° तक मिलता है उनके साथ क्षुधानाश, अनिद्रा, क्लम, व्याकुलता, वमन और उदरशूल आदि लक्षण अपेक्षाकृत अधिक तीव्र देखे जाते हैं अन्त में बच्चे को प्रलाप होने लगता है। कभी-कभी ज्वर तीव्र नहीं होता और लक्षण घट जाते हैं जिसमें धोखा हो सकता है। प्रथम दिवस से ही बालक के गले में दर्द होता है और

रोहिणी की कला गले में फैलने लगती है। टोन्सिल इतने फूल जाते है कि वे एक दूसरे को छूने लगते हैं ग्रसनी तथा मृदु तालु की श्लेष्मल कला सूज जाती व लाल पड़ जाती है। टोन्सिलों पर एक मोटी गन्दी सफेद रंग की या स्लेटी भूरी कला चढ़ जाती है जो शीघ्र ही मृदु तालु तथा कठिन तालु तक चली जाती है। जीम पर भी सफेद या भूरा आवरण चढ़ जाता है होठ सूख जाते है गले से एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है यह गन्ध दुर्गन्धित मधुर होती है, कला नाशाग्रसनी और नासागुहा तक चली जाती है। नाक से सफेद या लाल पानी वहने लगता है नथुनों और ऊपर के होठ की खाल उचलने लगती है। गले की सूजन और रोहिणी कला के कारण श्वास प्रश्वास में वाधा उत्पन्न हो जाती है और श्वसन घुरघुर युक्त हो जाता है। दो एक दिन में गर्दन के लसीका पर्वो में चारों ओर सूजन हो जाती है यह सूजन गले के दोनों ओर पायी जाती है। सूजन ऊपर गालों तक और नीचे हसली की हड्डी और छाती तक चली जाती है। इस रोग में विषरक्तता जितनी-जितनी वढ़ती है उसी अनुपात में यह सूजन भी देखी जाती है। आगे चलकर नाड़ी की गति वढ़ जाती है। इसकाल में वड़ी मात्रा में एन्टी टोक्जिन देने पर भी तत्काल कोई लाभ नहीं दिखाई देता। कला और सूजन इंजैक्शन के एक दो दिन वाद तक वढ़ते हैं और वाद में शान्त हो जाते हैं। इस स्थिति में यद्यपि सूजन और कला धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है किन्तु रोहिणी के विष के कारण हृदय व वातनाड़ी पर जो प्रभाव हो जाता है वह चलता रहता है नोसोव ने इस सवका चित्रण इस निम्नांकित चार्ट में किया है।

उपर्युक्त चित्र में न केवल विपाक्त गल तोरणिकी रोहिणी का तापक्रम का चार्ट ही दिया है वलिक नाड़ी का चढ़ाव उतार, रक्तदाव, ऐण्टीटाक्जिन की मात्रा तथा रोग के प्रमुख लक्षण कव-कव उत्पन्न होते हैं इन्हें भी प्रकट किया है जो रूसी वैज्ञानिकों के चित्रण की विशेषता को स्पष्ट रूप मे प्रकट करता है।

उपवैषिक—(सवटॉक्जिक) रूप में विसरित तथा विपाक्त रूप के वीच के लक्षण मिलते हैं। 'अतिवैषिक' (हाइपरटाक्जिक) में हृद्वाहिनी क्रिया में गिरावट आ जाने से रोगी तीसरे से पांचवें दिन तक काल कवलित हो जाता है। 'रक्तस्रावी' रोहिणी में विपाक्तता कुछ अधिक रहती है साथ में रक्तस्राव भी श्लेष्मलकला में होता है। नकसीर फूटना और त्वचा से भी रक्तस्राव प्रायः होता है। इस प्रकार से ग्रसित वालक भी जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है। 'कोथीय' या गैंग्रीनस रोहिणी में तोरणिकाएं तथा ग्रसनिका में कोथ (गैंग्रीन) युक्त दुर्गन्धित गलाव
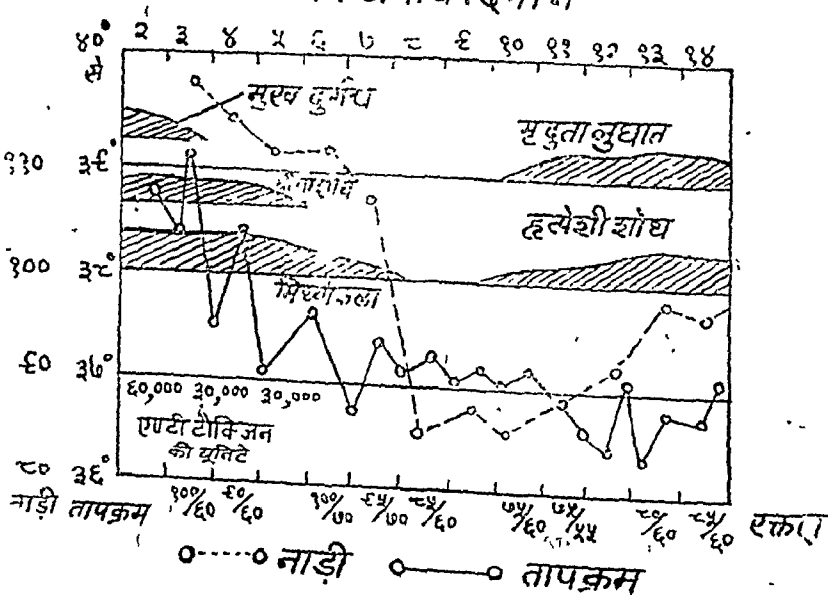
पाया जाना है। आजकल रक्तस्रावी और कोथीय कण्ठ रोहिणी नहीं मिलतीं। मिलने पर इनमें प्रतिविष चिकित्सा निरुपयोगी पाई जाती है।

आयुर्वेद में कण्ठ रोहिणियों के वातिक, पैत्तिक, कफज, सन्निपातज और रक्तज निम्नांकित प्रकारों का उल्लेख मिलता है:—

१. जिह्वा समन्ताद्भृशवेदनास्तु
मांसाङ्कुरा कण्ठविरोधिनो ये।
सा रोहिणी 'वातकृता' प्रदिष्टा
वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥

२. क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका
तीव्रज्वरा 'पित्तनिमित्तजा' तु।

३. स्रोतो विरोधिन्यचलोद्गता च
स्थिराङ्कुरा या 'कफसंभवा' सा ॥

४. गम्भीर पाकिन्यनिवार्य वीर्या
त्रिदोषलिङ्गा 'त्रितयोत्थिता' च।

५. स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा-
साध्या प्रदिष्टा 'रुधिरात्मिका' तु ॥

इन लक्षणों और प्रकारों से प्राचीन भारतीय चिकित्सा-तत्ववेत्ताओं द्वारा की गई खोजों का स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है।

२. **स्वरयन्त्री रोहिणी**—इसे लेरिंजियल डिफ्थीरिया या डिफ्थेरिटिक क्रूप कहा जाता है। यह १ से ४ वर्ष की आयु तक के बच्चों में मिला करती है। आजकल यह बहुत कम दिखाई देती है। १ से ५ प्रतिशत तक रोहिणी के रुग्ण इसी के होते हैं। यह गलतोरणिकी रोहिणी या नासा रोहिणी के बाद उत्पन्न होती है। कभी-कभी ये तीनों सम्मिलित रूप में देखी जाती है। इसमें रोग की प्रक्रिया स्वरयन्त्र में आरम्भ होकर कण्ठनाड़ी एवं श्वासनाल तक फैल जाती है। श्वासनाल तक पहुँचने पर यह बहुत गम्भीर रूप ले लेती है।

स्वरयन्त्रस्थ रोहिणी का आरम्भ ज्वर के साथ होता है। रोगी बालक बहुत व्याकुल, गले में खराश और स्वर भर्राया हुआ हो जाता है और कुछ समय में बोलना बिलकुल बन्द हो जाता है। रोगारम्भ से ही खासी चलती है, पहले तेज आवाज के साथ पर बाद में स्वरयन्त्र में कष्ट के कारण आवाज मन्द पड़ जाती है। स्वरयन्त्र दर्शक से देखने पर रोहिणी कला नहीं मिलती पर स्वरयन्त्र में रक्ताधिक्य पाया जाता है। यह इस रोग की प्रसेकावस्था या स्वरकृच्छ्रावस्था कही जाती है। यह प्रथम अवस्था है जो कुछ घन्टे से लेकर २४ घन्टे तक पाई जाती है। कभी-कभी यह २,३ और ४ दिन तक भी मिल सकती है। उसके बाद द्वितीय अवस्था आरम्भ होती है इसे संकीर्णावस्था या स्टेनोटिक स्टेज कहा जाता है। इसमें संकीर्ण श्वासी घुर्घुरक सुनाई देता है। यह घुर्घुर शब्द सांस लेने समय अधिक प्रखर हो जाता है। इसका दूसरा लक्षण होता है अन्तर्पर्शुकीय अवकाशों का भीतर की ओर खिंच जाना। इसका कारण श्वसनमार्ग का अवरोध और बड़े परिश्रम से श्वास का अन्दर खींचा जाना होता है। इसी रोग का तीसरा लक्षण सहायक श्वसन पेशियों में तान के बढ़ने का देखा जाता है। बच्चा इन पेशियों की मदद से छाती को फैलाने और श्वास भरने का यत्न करता है। यह स्थिति बच्चे को भयभीत कर देती है और वह व्याकुल एवं बेचैन हो जाता है। यदि इस समय स्वरयन्त्रदर्शक से देखा जाय तो स्वरयन्त्र के विविध भागों में रोहिणीकला की उपस्थिति स्पष्टतया देखी जा सकती है। श्वासकृच्छ्रता और थकान ये दो लक्षण इस समय सर्वोपरि होते हैं। यदि इस अवसर पर शल्यक्रिया (ट्रेकियोटोमी—श्वासप्रणाल छिद्रीकरण) कर दी जावे तो बालक के प्राण तो बच ही जाते हैं ये दोनों लक्षण भी जो श्वासावरोध के कारण उत्पन्न हुए स्वयं तिरोहित हो जाते है।

स्वरयन्त्रस्थ रोहिणी की तीसरी स्थिति श्वासावरोध की आती है जब बच्चा उठा पटक करता है बेचैन और व्याकुल श्वास लेने को छटपटाता है। शरीर चिपचिपे पसीने से भर जाता है और हाथ पैर और मुख श्याव या नीले पड़ जाते हैं। जब उसका श्वसनकेन्द्र थक जाता है तब बच्चा शान्त और श्रान्त होकर कुछ देर के लिए हाथ पैर पटकना रोक देता है। नाड़ी दुर्बल होजाती है। पुनः कुछ उठा पटक करता है। यदि बच्चे को प्रतिविष का प्रयोग और शल्यक्रिया की गई तो श्वासावरोध की स्थिति में भी उसकी प्राणरक्षा की जा सकती है।

मृत्यु का कारण अवरोही क्रूप (डिसेंडिंग क्रूप) ही होता है। यह क्रूप बहुत तेजी से उत्पन्न होती है। श्वास अवरुद्ध हो जाती है। बच्चा गम्भीर पड़ जाता है, श्वासगति

५०-६० और नाड़ी १२०-१५० प्रति मिनट हो जाती है। सारे लक्षण गम्भीर न्यूमोनिया के हो जाते है। रोगी २-३ दिन में ही कालकवलित हो जाता है।

आयुर्वेदज्ञ मनीषियो ने इन सभी स्थितियो की ओर इङ्गित किया है। सुश्रुत का गलौघ, स्वरघ्न और मासतान ये तीनो ही स्वरयन्त्रस्थ रोहिणी की ३ स्थितियां हैं जो अभी ऊपर बतलाई गई हैं: -

गलौघ—शोथो महानन्न जलावरोधी
तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ना।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन
गले गलौघः परिकीर्त्यते तु॥

स्वरघ्न—यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्त
भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु
ज्ञेयः स रोगः श्वसनात् स्वरघ्नः॥

मासतान—प्रतापवान् यः श्वयथुः सुकष्टो
गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मासतानः कथितोऽवलम्बी
प्राणप्रणुत् सर्वकृतो विकारः॥

३. नासारोहिणी—

आजकल यह प्रकार बहुत कम मिलता है। यह रोग १ वर्ष की आयु के बालको तक मिलता है। बडो मे भी बन सकता है। छोटों मे इसके साथ ज्वर तेज मिलता है। बड़े बालकों मे ज्वर नही भी मिलता। नाक से श्वास लेने में बालक को कष्ट होता है। नासा से द्रव पानी सा लाल या पूययुक्त निकलने लगता है। नाक के बन्द होने पर उन बच्चों को जो स्तनपायी होते हैं एक समस्या खड़ी हो जाती है, वे यदि दूध पीते है तो सांस लेना सम्भव नही सांस ले तो दूध नही पी सकता। नाक मे कला बनकर श्वासमार्ग अवरुद्ध कर देती है। रोहिणी का यह प्रकार अधिक विपाक्त नही होता। पर इस रोग की सबसे बड़ी खराबी है इसका गल तोरणिकाओ और स्वरयन्त्र तक फैल जाना।

४. अन्य प्रकार की रोहिणी—

इनमे नेत्रकला की रोहिणी, कर्णरोहिणी, गुप्तांगरोहिणी, चर्मरोहिणी, व्रणरोहिणी, नाभिरोहिणी, और पचनसस्थान की रोहिणी का उल्लेख पुस्तकों में मिलता है। पचनसंस्थान की रोहिणी गलरोहिणी के साथ ही बनती है और उसके विक्षत मुख-जिह्वा-ओष्ठादि पर बनते हैं। छोटे बच्चों में कहीं भी या नाभि में व्रण होने पर मटमैली स्लेटी रोहिणी की कला उस पर बनती हुई देखी जाती है। गुप्तांगों में स्लेटी फिल्म चढ जाता है और पूय निकलता है। चमड़ी पर भी किसी क्षतस्थान में फिल्म देखा जाता है। कान के छिद्र और पर्दे पर भी रोहिणी का फिल्म छा जाता है और कान से पूय आता रहता है। एण्टीटॉक्जिन (प्रतिविष) चिकित्सा लाभप्रद रहती है।

नेत्ररोहिणी होने हर नेत्रकला पर फिल्म छा जाता है जो कठिनाई से छूटता है। पलक सूज जाते हैं और बन्द हो जाते हैं। आंखों से पूयस्राव होने लगता है कभी-कभी रक्त भी स्राव में मिला हुआ आता है।

इन सभी प्रकार की रोहिणियों की उत्पत्ति प्रायः बाद में होती है गले, नाक या स्वरयन्त्र में रोहिणी पहले बनती है। इसका क्रूप्स प्रकार और रोहिणीक प्रकार ये दोनों रूप मिलते हैं।

५. रोहिणी के उपद्रव—

विपाक्त या टॉक्जिक डिफ्थीरिया के साथ उपद्रव मिला करते हैं। रोहिणी के द्वारा उत्पन्न विषरक्तता इनका मुख्य कारण होता है। ये उपद्रव—

i. हृद्वाहिनी सम्बन्धी,
ii. वातनाड़ीशोथ सम्बन्धी और,
iii. वृक्क सम्बन्धी

पाये जाते है। ये उपद्रव प्रायः रोहिणी के विसरित प्रकार के साथ जितने मिलते हैं उतने स्थानीकृत रोहिणियों के साथ नही मिलते। ये उपद्रव इस बात पर भी निर्भर करते हैं कि प्रतिविष का प्रयोग कब किया गया। जितनी, ही जल्दी प्रतिविष (डिफ्थीरिया ऐण्टी टॉक्जिन) रोगी को दिया जावेगा उतना ही कम उपद्रव होने का अवसर रहेगा। यदि प्रतिविष का प्रयोग देर में किया गया तो सौम्य प्रकार की रोहिणी मे भी भयंकर हृद्वाहिनी सम्बन्धी या वातनाड़ीशोथजन्य उपद्रव देखे जा सकते है।

हृद्वाहिनी सम्बन्धी उपद्रव

आरम्भिक और विलम्बित ये २ प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के या आरम्भिक हृद्वाहिनीजन्य विकारों

में दो मुख्य हैं। एक नाड़ी-दौर्बल्य और दूसरा रक्तस्राव की वृद्धि। दोनों ही लक्षण एक साथ आते हैं। रक्तस्राव थोड़ा ही बढ़ता है। रोग के विष के प्रभाव के कारण अधिवृषकों की क्रिया के बढ़ने से रक्तस्राव बढ़ता है। ये लक्षण रोहिणी रोग से ग्रसित बालक को पहले ही दिन से मिलने लगते हैं। कुछ दिन बाद (दूसरे तीसरे या चौथे दिन) रक्तस्राव में कमी आ जाती है। नाड़ी द्रुत तनु और सूक्ष्म हो जाती है। त्वचा सफेद हो जाती है। हृदय में परिवर्तन बहुत कम होते हैं किन्तु इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम करने से हृत्पेशी में विक्षतों का आभास मिलता है।

विलम्बित हृद्वाहिनी विकार—रोग के दूसरे या तीसरे हफ्ते में मिलते हैं इनका सम्बन्ध हृदुपेशीशोथ से होता है। जो विपाक्त रोहिणी में २० से ७०% तक (दूसरी डिगरी में) और ७० से ८०% (तीसरी डिगरी में) तथा रक्तस्रावी रोहिणी में शतप्रतिशत पाया जाता है। इसका ज्ञान इलैक्ट्रोकार्डियोग्राफ से ठीक-ठीक होता है। रोहिणीजन्य हृत्पेशीशोथ बहुत तेजी से बढ़ता है। रोगी बालक, मन्द, पीला सा और मन्दाग्नियुक्त होता है। नाड़ी की गति द्रुत (१२० से १४० प्रति मिनट) होती है। हृदय काफी और जल्दी फैल जाता है। हृद्भाव शब्द दबे से और मन्द पाये जाते हैं। शिखर पर प्रकुंचन मरमर ध्वनियां मिलती हैं। अतिरिक्त प्रकुंचन भी मिलते हैं। हृदय में दोलक जैसी गति मिलती है। नाड़ी कभी-कभी रुक-रुक कर चलती है और नाड़ीमान्द्य (४० से ५० बार प्रति मिनट) पूर्ण हृद्रोध में मिलता है। हृदय के संचालकतन्त्र में गड़बड़ी हो जाने से हृत्क्रिया की अपर्याप्तता मिलती है। इसके साथ ही साथ यकृत् बढ़ जाता है और उसे दबाने से दर्द होता है। शरीर पर दमावता सा जाती है। मूत्र कम आता है व उल्टियां होने लगती हैं।

हृत्पेशी शोथ देर से ठीक होता है। २ से ३ महीने लेता है कभी-कभी तो पूरा साल लग जाता है। बार-बार वमन, [illegible], और दोलक हृद्गति तथा रक्तस्राव की गिरावट मृत्यु के पूर्वरूप होते हैं।

वस्तुतः हृद्वाहिनी विकारों के अलावा रोहिणी वातनाड़ी संस्थान पर भी बहुत [illegible] उत्पन्न करती है। रोहिणी का विष परिसरीय वातनाड़ियों में शोथ कर देता है। यह शोथ एक नाड़ीशोथ या बहुनाड़ीशोथ दोनों प्रकार का हो सकता है यह भी विपाक्त रोहिणी में मिलता है। यह वातनाड़ीय पैरेलैसिस है जो दूसरे सप्ताह में प्रारम्भ होती है और तीसरा, छठी, सातवीं नवीं और दसवीं शीर्षण्या नाड़ियों को प्रभावित करती है। इसके कारण—

१ मृदुतालु का घात हो जाता है यह घात नवीं और दसवीं शीर्षण्या नाड़ी की पैरेलैसिस का परिणाम है इसमें बालक नाक के स्वर बोलने लगता है। वह जो कुछ भी पीता है वह नाक से निकल आता है वह मोमबत्ती को बुझा नहीं सकता अगर एक तरफ की नाड़ियों में घात हुआ तो काकलक एक ओर को सरक जाता है यह घात दो से चार सप्ताह तक रह सकता है।

२. समञ्जनघात—इसके कारण बच्चे को पास की वस्तु दिखाई नहीं देती। वह पढ़ भी नहीं सकता। इसके साथ ही उसकी तिर्यक् दृष्टि हो जाती है जिसे अक्षिघात कह सकते हैं साथ ही ऑरबुलोमोटर नर्व का घात होने से वर्त्मपात (टोसिस) हो जाता है।

३. शाखाओं की पेशियों का घात—यह लक्षण बहुत बाद में होता है। इन पेशियों में दुर्बलता अधिक देखी जाती है घात कम। दर्द नहीं होता। कभी-कभी सिर छाती पर झुक जाता है।

यह अंगघात कितने ही अधिक हों, [illegible] की दृष्टि से यह सब ठीक हो जाते हैं। दो महीने से १२ महीने के भीतर सुधार हो जाता है। कभी-कभी साल भर भी लग जाता है।

स्वर यंत्रीय पेशियों [illegible] पेशियां, [illegible]-[illegible] पेशी और हृत्पेशी का घात [illegible] बालक के जीवन को [illegible] कर देते हैं। [illegible] का घात आवाज को बिगाड़ देता है या बोलना बिलकुल बन्द कर देता है। [illegible] के घात होने से श्वसन के साथ [illegible] [illegible] [illegible] को निगलने लगता है।

हृत्पेशी शोथ की तीव्रता के समय हृदय में [illegible] मस्तिष्क में [illegible] [illegible] [illegible] हैं और [illegible] की [illegible] है जो मृत्यु का कारण बनता है।

रोहिणी के साथ कभी-कभी [illegible] का लक्षण भी

देखा जाता है। श्वास तेज हो जाती है, ज्वर तीव्र होता है व नथुने फूलने लगते हैं। कुछ लोगों का मत है कि रोहिणी की चिकित्सा के लिये किये गये शल्योपचार—नलिका प्रवेश और कंठनाल छिद्रण निमोनियां पैदा करते हैं।

रोहिणी के उपद्रवो में वृक्कों के विकार भी खास अहमियत रखते हैं। सौम्य रोहिणी में भी मूत्र में एल्व्यूमिन मिल सकता है। विपाक्त रोहिणी मे विपाक्त अपवृक्कता के लक्षण आधे रोगियों में मिल सकते हैं इसमें मूत्र में एल्व्यूमिन (२ से १० प्रतिशत तक) निर्मोक और रक्त के कण मिल सकते हैं यह अपवृक्कता जीवन के लिये खतरनाक नही मानी जाती व डिपथीरिया के साथ-साथ यह भी विदा हो जाती है। इसमें शरीर पर न सूजन आती है न रक्तदाब ही बढ़ता है यदि किसी को स्तवक वृक्कशोथ हो जाय तो वह रोहिणी के कारण न होकर गोलाणुओं के उत्सर्ग से स्वतंत्र रूप मे होता है।

हृदय, वृक्क और वातनाड़ियों के उपद्रव साथ-साथ भी हो सकते हैं अन्य उपद्रवों में जो रोहिणी विप के कारण नहीं होते कान का शोथ तथा लसीका ग्रन्थियों का सपूय शोथ होता है।

६. रोहिणी निदान—

जितनी जल्दी रोहिणी का निदान कर लिया जायगा उतना ही रोग जल्दी ठीक होगा और उपद्रव उत्पन्न न होंगे। रोग के निदान के साथ प्रतिविप चिकित्सा भी शीघ्र आरम्भ की जा सकती है। इसीलिये वैद्य का कर्त्तव्य है कि वह रोगी की ठीक-ठीक परीक्षा करे और इतिवृत्त ले। पाश्चात्य देशों में वच्चों की नाक या गले के स्राव में पिचु भिगोकर लेवोरेटरी में भेजते हैं और वहां उनका संवर्ध या कल्चर करके इसके जीवाणुओं को देखते है। इससे २० से २४ घन्टे के अन्दर और कभी-कभी ४८ घन्टे के अन्दर रोग का पता लग जाता है। इसके लिये लेवोरेटरी में कई परीक्षण भी किये जाते हैं। यदि इन सव परीक्षणों से रोहिणी जीवाणु का पता न लगे तो यह नहीं समझना चाहिये कि वच्चे को रोहिणी नहीं हुई। रोग के लक्षणों को देखकर प्रतिविप चिकित्सा तत्काल आरम्भ कर देनी चाहिये।

आयुर्वेद में जो विभिन्न लक्षण दिये हैं उनका भी ध्यान किया जा सकता है :—

जिह्वासमन्ताद् भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठविरोधिनो ये।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता॥
क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा तु।
स्रोतो विरोधिन्यचलोद्गता च स्थिराङ्कुरा या कफसंभवासा॥
गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोपलिङ्गा त्रितयोत्थिता च।
स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा साध्याप्रदिष्टा रुधिरात्मिकातु।

सापेक्ष निदान —

रोहिणी रोग से मिलते जुलते कई रोग हैं जो रोहिणी रोग का भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं या रोहिणी होने पर भी उसकी ओर से ध्यान हटा सकते हैं। इनमें निम्नांकित मुख्य हैं:—

(१) विविध प्रकार की गलार्तियां—गलार्तियों को अंग्रेजी में ऐंजाइना भी कहा जाता है। ये पुटकीय (फॉलिक्युलर) रिक्तिकीय (लैक्युनर) फ्लैग्मोनी (फ्लैग्मोनस) तथा लोहितज्वरजन्य (ऐंजाइना स्कार्लेटिनोसा) विसेंटीय (विसेंट्स ऐंजाइना) अकणीश्वेतकोशिकीय (ऐग्रेन्युलोसाइटिक ऐंजाइना) किसी भी प्रकार के होते हैं। अकणीय में मुख से वहुत दुर्गन्ध आती है पर लसीका पर्व नहीं फूलते। विसेंट के ऐंजाइना में एक ही टॉसिल प्रभावित होती है और उसमें विद्रधि वन जाती है इसका धरातल भी गंदले-ग्रे वर्ण का या पीताभ होता हे कभी-कभी मिथ्या कला के कारण रोहिणी और इसमें अन्तर करना कठिन हो जाता है—

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।
पित्तेन विद्याद् वदने विदारीपार्श्वे विशेपात् सतु येन शेते॥

लोहितज्वरजन्य ऐंजाइना में तालु और गला वहुत लाल हो जाता है ज्वर वहुत तेज होता है तथा लसीका पर्व वहुत स्पर्शाक्षम होते हैं।

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति।

रोहिणी में ज्वर, सौम्य और पर्वों में वहुत कम शूल होता है तथा लोहित ज्वर की तरह दाने नहीं निकलते।

फ्लैग्मोनी ऐंजाइना में ज्वर, निगलने में वहुत कष्ट तथा टॉसिल सूजे हुए, आसपास गला भी सूजा हुआ मिलता है। गंदली सफेद या पीली सी सफेद कला भी टॉसिल एवं खातों को आच्छादित किए रहती है। मुंह

खोलना कठिन तथा लसी पर्व बहुत स्पर्शाक्षम होते हैं—

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दःपरिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतज प्रसूतः॥
सु. नि. १६

पुटकीय और खातकीय या रिक्तिकीय गलार्तियों में कला बनती है दोनों में ज्वर, निगलने में कष्ट गले में लालिमा और गले के लसपर्व सूजे हुए और शूलयुक्त मिलते हैं—

दोनों में ज्वर, निगलने में कष्ट, गले में लालिमा और गले के लसपर्व सूजे हुए और शूलयुक्त मिलते हैं—

बलास एवायतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥
गले तु शोथं कुरुतं प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाशसंज्ञं निपुणाविकारम् ॥

(२) कर्णमूलशोथ या (मम्प्स) के साथ भी विपाक्त गलतोरणिकीय रोहिणी का भ्रम हो सकता है।

(३) स्वरयन्त्र में क्रूप भी रोहिणी के सम्बन्ध में भ्रम कर सकता हैं। रोहिणी का क्रूप उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है उसमें आवाज भर्रा जाती है पर मिथ्या क्रूप में तेज तथा भूंकने जैसी खांसी उठती है । भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत् खरं च—सु० उ० तं ५३ ।

रोमान्तिका में भी क्रूप होती है।

(४) स्वरयन्त्र शोथ विभिन्न प्रकार के होने से भी निदान करने में कठिनाई पड़ सकती है।

(५) दमा या श्वास भी कभी-कभी रोहिणी जैसी स्थिति बना देता है।

(६) गले की विद्रधि से भी भ्रम हो सकता है ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः,
शोथो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु,
तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥

(७) गलौघ भी एक प्रकार का शोथ ही है—

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यते तु ॥

(८) न्यूमोनियां से भी अन्तर करना आवश्यक है ।

(९) नेत्रकलाशोथ और नेत्रज रोहिणी में अन्तर करने के लिए किसी नेत्र वैद्य की आवश्यकता पड़ सकती है ।

७. रोहिणी की साध्यासाध्यता—

यद्यपि आयुर्वेद में उपर्युक्त कई रोगों सहित गल रोहिणी को निश्चित रूप से असाध्य माना है।

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलाशश्च विदारिका ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ।

किन्तु फिर भी उनकी चिकित्सा के लिए सुश्रुत ने प्रेरणा दी है—

तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ।

कण्ठरोहिणी की साध्यासाध्यता रोगी की आयु, रोग लक्षणों तीव्रता या सौम्यता, प्रतिविष चिकित्सा का शीघ्र या विलम्ब से प्रयोग, रोगी के बलाबल पर निर्भर करती है।

साध्यासाध्यता के लिए प्रतिविष का समय पर सेवन करना बहुत महत्वपूर्ण है। कितना ही विपाक्त रोहिणी का उपसर्ग हो सामयिक चिकित्सा उसके स्वरूप को बहुत कुछ बदल देती है।

८. रोहिणी की चिकित्सा—

परिचर्या–उचित उपचार समुचित चर्या और सतर्कता बहुत महत्वपूर्ण होते हैं । रोगी को शान्त रखना उसे निद्रा लाने के लिए व्यवस्था करना बहुत आवश्यक होता है । बहुत अधिक औषध प्रयोग तथा उसे बार-बार परेशान नहीं करना चाहिए। अच्छा हो रोगी बालक को अस्पताल में शय्या पर रखा जावे।

प्रथम डिग्री की रोहिणी में सूजन गर्दन के मध्य भाग तक पाई जाती है। ऐसे रोगियों को ३ हफ्ते से ४ हफ्ते तक अस्पताल में रखना चाहिए। जब शोथ हंसली की अस्थियों तक पहुंचा हुआ हो तो रोहिणी को द्वितीय डिग्री की माना जाता है। इससे पीड़ित रोगी बालक को ४० दिन तक अस्पताल में रखते हैं । यदि शोथ हंसली की हड्डियों के नीचे उतर जावे तो उसे तृतीय डिग्री की रोहिणी मानना चाहिए यह बहुत खतरनाक और सोपद्रव होती है अतः उसके रोगी बालक को ५०-६० दिन तक भी अस्पताल में रखा जाना चाहिए।

जिस रोगी बालक को विपाक्त (टॉक्जिक) रोहिणी

हो, हृत्पेशीशोथ (मायोकार्डाइटिस) हो तथा गम्भीर बहुनाड़ी शोथ हो उसकी परिचर्या दक्ष नर्स की देख रेख में विशेष रूप से कराई जानी चाहिए।

पथ्य—रोहिणी रोग से पीड़ित हुए बालक को खिलौने देकर कहानी सुनाकर खेल खिलाकर (लेटे-लेटे) उसका मन बहलाना चाहिए। आरम्भ के २-३ दिन तक तो द्रव पदार्थ चाय, दूध, काफी देना चाहिए पर बाद में अच्छा पौष्टिक आहार देना उचित माना जाता है। जिनके गले में नलिका प्रविष्ट की गई हो उन्हें अर्द्ध द्रव पदार्थ दलिया, साबूदाना, दूध, हलके उबले हुए अण्डे दे सकते हैं। जिनको निगलना उनके लिए तब आसान रहता है जब उन्हें लिटा कर सिर कुछ ऊंचा करके रखा जावे। यदि बहुनाड़ीशोथ में मृदुतालु घात होने के कारण निगलना कठिन हो तो आमाशय नली नासामार्ग से प्रविष्ट कर देते है। और उसके द्वारा दूध, चाय आदि द्रव पदार्थ देते रहते हैं।

भैषज्यरत्नावलीकार तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः का उपयोग करना पथ्य मानते हैं।

प्रतिविष चिकित्सा–

रोहिणी का विष किसी प्रकार नियन्त्रित करने लिए सबसे पहले प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिए डिफ्थीरिया ऐण्टीटाक्जिन या रोहिणी प्रतिविष का उपयोग किया जाता है। इस प्रतिविष को कितनी मात्रा में कितने दिन तक दें इस पर विद्वानों के आरम्भ में अलग-अलग मत है किन्तु अधिकतर विचार अब धीरे-धीरे स्थिर होते जा रहे हैं। अब चिकित्सक नासा रोहिणी तथा गलतोरणिकीय रोहिणी से पीड़ित बालकों को अधिकतम मात्रा में प्रतिविष पहले ही दिन दे देते हैं। यदि उससे पूरा लाभ न हुआ तो दूसरे दिन प्रतिविष की आधी मात्रा देते हैं। यही क्रम विस्वर (क्रूप) युक्त रोहिणी में भी चलाते हैं।

विसरित (डिफ्यूज्ड), द्वितीय और तृतीय डिग्री की क्रूप युक्त रोहिणी में उपविषाक्त या विषाक्त रोहिणी में प्रतिविष के इञ्जेक्शन आरम्भिक अधिकतम मात्रा का आधा या एक तृतीयांश तब तक प्रतिदिन देते हैं जब तक कि रोग के लक्षण और उपद्रव शान्त न हो जावें। तृतीय डिग्री की विषाक्त रोहिणी में १२-१२ घण्टे पर प्रतिविष का प्रयोग करना आवश्यक होता है।

रोहिणी प्रतिविष कितना दिया जावे ?

जितना तीव्र रोग हो और जितनी देर में उसकी चिकित्सा की जाय उतनी ही अधिक मात्रा में प्रतिविष का प्रयोग करने का सिद्धान्त है जिसे प्रत्येक रोहिणी-चिकित्सक जानता है। इस सिद्धान्त के ज्ञाता को बालक की आयु का ध्यान उतना रखने की आवश्यकता नहीं है जितना कि रोग की तीव्रता का ध्यान रखना आवश्यक है। जो लोग प्रतिविष की मात्रा प्रतिकिलोग्राम के अनुसार निर्धारित करते हैं वे रोगी के प्रति उचित न्याय नहीं करते प्रतीत होते। कभी-कभी छोटे से छोटे बालक को बड़ी से मात्रा में रोहिणी प्रतिविष देने की आवश्यकता पड़ती है। उस पर प्रति किलो वाला माप सही नहीं बैठता। नोसोव ने इसके लिये एक नया सूत्र इस प्रकार दिया है:–बालकों के लिए रोहिणी प्रतिविष की जो निर्धारित मात्रा (देखो नीचे की तालिका) है उसका आधा या एक तिहाई घटा कर २ वर्ष से नीचे के शिशुओं को देना चाहिए।

प्रतिविष का पहला इंजैक्शन देने के ८ से १२ या २४ घण्टे के अन्दर उसका प्रभाव प्रकट होने लगता है। रोहिणीविष का सर्वांगीण प्रभाव ज्वर, सामान्य दुर्दशा, निद्रा और क्षुधा पर प्रतिविष का तत्काल पड़ता है। ज्वर १-२ दिन में उतर जाता है, बेचैनी शीघ्र दूर हो जाती है नींद अच्छी आने लगती है और भूख सुधर जाती है। २४ से ३६ घन्टे के अन्दर रोहिणी की कला सिकुड़ने लगती है और अगले ३-४ दिनों में सौम्य रोहिणी में तथा ५-७ दिनों में विषाक्त रोहिणी में बिलकुल विलुप्त हो जाती है। अन्य लक्षणों में सुधार रोगी के बलाबल पर निर्भर करता है।

रोहिणी प्रतिविष जितनी जल्दी हो सके रोहिणी से पीड़ित बालक को अविलम्ब दे देना ही चिकित्सक की सबसे बड़ी बुद्धिमानी मानी जाती है।

यतः रोहिणी का प्रतिविष एक प्रकार का सीरम है तथा सीरमशॉक पैदा कर सकता है इसलिए बैस्रैडका विधि का उपयोग करते हुए उसे देना चाहिए, उस विधि में पहले प्रतिविष का ०·५ मिलि. या १ मिलि. पेशी में इंजैक्ट कर देते हैं उसके २ घन्टे बाद पूरी मात्रा में इंजैक्शन दे दिया जाता है। सिरा द्वारा सीरम या प्रतिविष का

प्रतिविष की निर्धारित मात्रा की तालिका रूसी बच्चों के लिए यह दी गई है:—

क्रम	रोहिणी का प्रकार	प्रतिविष की प्रथम एकल मात्रा इण्टरनेशनल यूनिटों में	प्रतिविष की सम्पूर्ण मात्रा जो चिकित्सार्थ दी जानी है इण्टरनेशनल यूनिटों में
१	स्थानीकृत गलतोरणिकीय	१०००० से ३००००	१०००० से ४०००० तक
२	विसरित गलतोरणिकीय	३०००० से ४००००	५०००० से ६०००० तक
३	उपविषाक्त गलतोरणिकीय	४०००० से ५००००	६०००० से ८०१०० तक
४	विषाक्त गलतोरणिकीय प्रथम डिग्री	५०००० से ७००००	१००००० से १२०००० तक
५	,, द्वितीय डिग्री	६०००० से ८००००	१००००० से १२०००० तक
६	,, तृतीय डिग्री	१००००० से १२००००	२५०.०० से ३५०००० तक
७	नासारोहिणी (विषाक्त को छोड़कर)	१०००० से १५००	२०००० से २५००० तक
८	स्वरयन्त्रीय रोहिणी	१५००० से २००००	३०००० स ४०००० तक
९	अवरोही विस्वर (क्रूप)	३०००० से ४००००	६०००० से ८०००० तक
१०	नेत्र रोहिणी तथा गुह्यांग रोहिणी	१०००० से ३५०००	३५००० से ४०००० तक
११	चर्मरोहिणी	१०००० से २००००	१०००० से २०००० तक

प्रयोग जल्दी शॉक पैदा करने के कारण तथा शीघ्र ही शरीर से बाहर चले जाने के कारण व्यर्थ रहता है। अत: प्रतिविष सदा नितम्ब की पेशी या ऊरु में सामने की पेशी में देना अच्छा रहता है। वैस्रेडका विधि में थोड़ा और सुधार किया गया है इसके अनुसार पहला इंजैक्शन ०·१ मिलि का पेशी में देते हैं फिर आधे घन्टे बाद ०·२ मिलि का दूसरा इंजैक्शन पेशी में ही देते हैं फिर पूरी मात्रा में इंजैक्शन १ या १॥ घन्टे बाद पेशी में दिया जाता है। यह विधि सीरम के प्रति विसुग्राहीकरण (डिसेंजिटाइजेशन) कर देती और सीरम रोग से बच्चे की रक्षा कर देती है। प्रतिक्रिया रोकने के लिए अन्य प्रचलित विधियां भी प्रयोग में लाई जा सकती हैं। एक बात अवश्य ध्यान रखने की है और वह है प्रतिविष अच्छी कम्पनी का बना हो और बहुत पुराना न हो।

सहायक-चिकित्सा

रोहिणीप्रतिविष रोहिणी रोग की मुख्य चिकित्सा है। सहायक चिकित्सा में रक्त या रक्तरस या अन्य प्रतिस्थापक द्रव्यों का प्रयोग रोगी को निर्विष (डिटॉक्जीकेट) करने के लिए कर सकते है। ४० से १५० मिलि मैच किया हुआ रक्त सिरा द्वारा देना उचित ठहराया जाता है। प्रतिदिन २५ से ४० प्रतिशत शक्ति का ग्लूकोज सोल्यूशन सिरा में ३ दिन तक ११ से ३० मिलीलिटर तक देने से अच्छा निर्विषीकरण हो जाता है। इसे रक्तरस या प्लाज्मा के साथ भी दे सकते है। कुछ लोग प्रैडनीसोन, प्रैडनीसोलोन आदि ग्लूकोकॉर्टिकाइडों का प्रयोग विषाक्तता हटाने के लिए उचित बतलाते हैं। रोहिणीविष से उत्पन्न विषरक्तता शरीर से विटामिन सी का भण्डार घटा देती है जिसके कारण रोगी बालक की रोग प्रतीकार सामर्थ्य टूट जाती है इसलिए विटामिन सी अच्छी मात्रा में (३०० मिग्रा से १००० मिग्रा तक) प्रतिदिन देना और इसे ५ से १० दिन तक बराबर देते रहना आवश्यक होता है। इसे पेशी या सिरा में भी दे सकते हैं। इसी प्रकार निकोटिनिक ऐसिड भी रोहिणी के विष का प्रतीकार विटामिन सी के समान ही करता है।

वातनाड़ीशोथ की भयानकता की दृष्टि से विटामिन बी, बालक की आयु के वर्षों की संख्या में उतने ही मिलीग्राम प्रतिदिन ३ बार तक मुखमार्ग से देते हैं। यह क्रम १० दिन तक चलाते हैं। बच्चे को १ बार में १० मिग्रा से अधिक बी, नहीं देते। इसे पेशी में इंजैक्शन से भी दे सकते हैं।

जीवाणुनाश हेतु पेनिसिलीन उपयोगी नहीं रहती किन्तु टैट्रासाइक्लीन या ऐरिथ्रोमाइसीन दी जा सकती है।

हृदय को बल देने की दृष्टि से कैम्फीन, कोरामिन, कैम्फर इन आइल, स्ट्रिक्नीन नाइट्रेट आदि में से कोई दवा दी जा सकती है।

आयुर्वेद में रोहिणी को प्रत्याख्येय या असाध्य मानते

हुए भी कुछ चिकित्सा सूत्र दिये गये हैं :—

साध्यानां रोहिणीनान्तु हितं शोणितमोक्षणम् ।
छर्दनं धूमपानञ्च गण्डूषो नस्तकर्म च ॥
वातिकीन्तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ।
सुखोष्णां तैलकवलान् धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥
पत्तंगशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ।
द्राक्षापरूपकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ॥
आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
श्वेताविडंगदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् ॥
नस्तकर्मणि दातव्यं कवलञ्च कफोच्छ्रये ।
पित्तवत्साधयेत् वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥
—भै. र.

अपना मत यह है कि प्रतिविष चिकित्सा के साथ आयुर्वेदीय दोष प्रत्यनीक चिकित्सा देने से रोहिणी पर सरलतया विजय प्राप्त की जा सकती है। कवलग्रहों या प्रतिसारण का प्रयोग उत्तम है पर छोटे बच्चे इतने बड़े रोग से पीड़ित होने के कारण कवलग्रहादि करने में समर्थ नहीं हुआ करते।

रोहिणी में शल्य-चिकित्सा

नलिकाप्रवेश (इण्ट्यूवेशन) तथा कण्ठनाल छिद्रण (ट्रैकियोटोमी) ये २ शल्यकर्म रोहिणी में किए जा सकते हैं। नलिकाप्रवेश करना शीघ्र किया जा सकता है सरल भी है तथा इसमें काट छांट नहीं करनी पड़ती। श्वसनकर्म भी यथावत् चलता रहता है। पर यदि बच्चे को हुपिंग-कास हो या गलतोरणिकाओं में रोहिणी रक्तज हो या स्वरयन्त्र में विकृति हो तो कण्ठनाल छिद्रण ही उचित शल्यकर्म माना जाता है। यदि रोहिणी का रोग कण्ठनाड़ी या और नीचे तक पहुँच जाय तो नलिकाप्रवेश उपयुक्त न रहकर कण्ठनाल छिद्रण ही ठीक माना जाता है।

नलिकाप्रवेश कर्म के लिए एक नर्स बच्चे को गोद में लेकर बैठ जाती है बच्चे के चारों ओर चादर उढ़ा दी जाती है। बच्चे के पैर नर्स के पैरों में दवे रहते हैं। दूसरी नर्स मुखविस्फारक बच्चे के मुंह में लगाकर उसका सिर सीधा साधे रहती है। सर्जन अपने बांए हाथ की तर्जनी को उसके गले में डालता है और कण्ठच्छद या एपिग्लोटिस को छूता है और उसे आगे जीभ की जड़ की
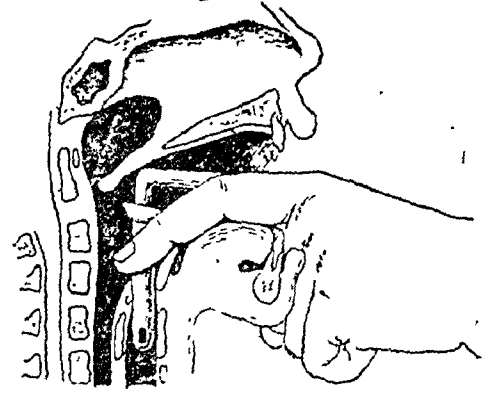
ओर धकेलता है और अपनी अंगुली कण्ठच्छद के पश्च-धरातल पर ले जाता है और स्वरयन्त्र के प्रघाण (वैस्टी-ब्यूल) तक स्पर्श करके दर्वीकल्प उपास्थि (एरिटिनोइड कार्टीलिजों) के बीच के खुले भाग तक अंगुली पहुँचा देता है। इसी समय सीधे हाथ में नलिकायुक्त नलिका प्रवेशक को लेकर उसके डोरों को अपने हाथ की अंगुलियों में साधते हुए उसे प्रविष्ट करता है। नलिका को स्वरयन्त्र में सीधा प्रविष्ट करता है तथा बांए हाथ की अंगुली से नली के सिर को दृढता से स्थिर रखकर प्रवेशक को खोलकर निकाल लेता है। उसके बाद नली को स्वरयन्त्र में जितना भी नीचे ले जाया जा सकता हो ले जाते हैं। नली से बंधे डोरे बांये गाल पर चिपका दिये जाते हैं। बच्चा कहीं डोरे खींच न ले उसके हाथ बांध दिये जाते हैं। थोड़ी देर में रोहिणीकला खांसी के साथ निकल जाती है और श्वसन की बाधा दूर हो जाती है। ४८ घन्टे बाद ट्यूब (नलिका) को निकाला जाता है। यह सब कार्य अनुभव और ट्रेनिंग की अपेक्षा रखते हैं। यदि नलिका सामान्यतः निकालना सम्भव न हो तो नलिकोद्धारक द्वारा उसे निकाला जाता है।

कण्ठनालछेदन एक महत्वपूर्ण शल्यकर्म है इसे सर्जरी के ग्रन्थों में देखा जा सकता है। ये शल्यकर्म उसी सर्जन के द्वारा कराने चाहिए जो इनके करने में दक्ष हो।

उपद्रवों की चिकित्सा

हृत्पेशीशोथ में पूर्ण विश्राम, आहार द्रव और थोड़ा-थोड़ा देना हृद्‌वल्य—कौरामिन, कार्डियाजोल आदि का उप-

तथा अतिबल्न ग्लूकोज का सिरा द्वारा प्रयोग तथा हृद्विशेषज्ञ का परामर्श आवश्यक होता है।

रोहिणी के घातों में विश्राम, बी १, बी १२, निकोटिनिक ऐसिड, ग्लूटैमिक ऐसिड तथा डीबाजोल देते हैं। डीबाजोल एक नई औषधि है इसे १५-२० दिन तक निम्न मात्राओं में देना नोसोव बतलाता है :—

मात्रा ग्राम में	आयु
०.००२ से ०.००३ तक	१-३ वर्ष
०.००४ से ०.००७ तक	३-८ वर्ष
०.००८ से ०.०१ तक	८-१२ वर्ष

अन्य उपद्रवों की चिकित्सा सामान्य विधान के अनुसार कर सकते हैं जैसे न्यूमोनिया में एण्टीबायोटिक द्रव्यों का प्रयोग आदि।

७. रोहिणी-प्रतिषेध—

अन्य उपसर्गों की भांति रोहिणी के प्रतिषेध की व्यवस्था भी की जाती है आजकल कुछ देशों में रोहिणी के विरुद्ध सक्रिय रोग क्षमीकरण सब बालकों में अनिवार्य रूप से कराया जाता है यह ५-६ महीने के बालक से लेकर १२ वर्ष की आयु के कुमार तक किया जाता है। इसके लिये कुकुरकास-रोहिणी-धनुर्वात वेक्सीन अथवा रोहिणी धनुर्वात टोक्सोइड का प्रयोग किया जाता है। इनमें पहला अधिक उपयुक्त माना गया है। ५-६ महीने के बालक को एक-एक महीने के अन्तर से तीनवार ०.५ मिलिलिटर वैक्सीन दिया जाता है। डेढ़ दो वर्ष बाद उतनी ही मात्रा में एक बार फिर देते हैं फिर छः वर्ष की आयु पर इसी को रिपीट करते हैं अन्त में ११ वर्ष की आयु पर टॉक्सोइड ०.५ मिलीलीटर की मात्रा में देते हैं इस प्रकार रोग क्षमीकृत बालकों में या तो रोहिणी होती ही नहीं या बहुत मामूली होती है। कुछ बच्चों में जिन्हें एक या दो बार वैक्सीन लग चुका होता है जब पुनः वैक्सीन या टॉक्सोइड का इंजेक्शन दिया जाता है तब इंजेक्शन के स्थान पर इनफ्लेमेशन या शोथ होजाता है और उसमें दर्द होता है। ऐसे बच्चोंको ज्वर भी आजाता है जैसाकि हर टीके में होता है।

स्कूलों में उन्नतिशील देशों में विद्यालय के बालकों को शिकटैस्ट करके यह ज्ञान किया जाता है कि कितने बालक में रोहिणी के विरुद्ध क्षमता शक्ति उत्पन्न हो गई है। यह आवश्यक नहीं कि इन प्रतिषेधात्मक उपायों से हर बच्चे में रोहिणी के प्रति क्षमता उत्पन्न हो जाय फिर भी आजकल ऐसा बहुत कम देखा जाता है।

रोहिणी के वाहकों का नियन्त्रण भी बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है जिसे प्रत्येक देश में स्वास्थ्य विभाग करता है।

रोहिणी के विरुद्ध रोग-क्षमता पैदा करने के लिये ताजी हवा में रखना, पौष्टिक आहार देना तथा विटामिनों का भरपूर प्रयोग करना आवश्यक होता है।

आभार प्रदर्शन—मीर प्रकाशन मास्को से प्रकाशित ऐस. नोसोवकृत इन्फैक्शस डिजीजेज आफ चाइल्डहुड तथा अन्य कई ग्रन्थों से साभार सहायता ली गई है।

एक अनुभूत महान् योग—माणिक्यरसादि वटी—

माणिक्य रस, शुद्ध सिगरफ, शुद्ध एलुवा (मुसब्बर या मकमोनिया) गोकर्णी (कोयल) बीज, कालानमक, सैंधानमक प्रत्येक दो तोला। अजवायन, अकरकरा, वायविडंग, सोंठ, कालीमिर्च, लालबोल, फूलगुहागा, यवक्षार शुद्ध मैनसिल, प्रत्येक एक तोला। केशर कश्मीरी, जाविन्नी, जायफल, तेजपात, छोटीइलायचीबीज, उसारे रेवन्द प्रत्येक ६ माशे। निर्माण विधि—सिगरफ, माणिक्यरस, मैनसिल इन्हें खरल में पीस लें, बाद में (अच्छे खरल में) जल सहित केशर पीस लें। शेष दवाओं का महीन सूक्ष्म चूर्ण (कपड़छन) बना लें। सबको एक मिलाकर पान के रस या गुल बजत या सौंफ अर्क या अर्क बेदमुश्क या अर्क मकोय के साथ पीसकर बाजरे बराबर गोली बनालें। मात्रा—यथा आवश्यक एक या दो गोली दिन में ३ बार। अनुपान—यथोचित।

उपयोग—कास, श्वास, अतीसार, अफरा, उदरशूल, न्यूमोनियां, महास्रोत का संचित मल और विष दूर करती है।

—वैद्य मुन्नालाल गुप्त ५८/६८ नील वाली गली कानपुर।

संकलनकर्त्ता और ले०—आयुर्वेदाचार्य वैद्य जगदीशकुमार त्रिवेदी बी.ए. एम.एस.
आयुर्वेद चिकित्सालय आगरा नगर महापालिका धूलियागंज, आगरा।

आयुर्वेद के लब्धप्रतिष्ठ, वयोवृद्ध विद्वान् पुरदिलपुर निवासी वैद्य वंशीधर त्रिवेदी जी के कनिष्ठ पुत्र एवं आचार्य त्रिवेदी जी के भ्रातृज डा. जगदीश कुमार त्रिवेदी ने आयुर्वेद का स्नातक पाठ्क्रम पीलीभीत के ललितहरि आयुर्वेद कालेज से पूर्ण-करके आगरा महा पालिका के घूलियागंजस्थ चिकित्सालय में गत ६-७ माह से कार्यारम्भ किया है। आपने इतनी ख्याति अर्जित की है कि चिकित्सालय में रुग्ण संख्या उत्तरोत्तर वृद्धिगत है। शुद्ध आयुर्वेदीय उपचार के द्वारा ही उन्हें यह ख्याति मिल रही है। आयुर्वेद के लिए सर्वस्व अर्पण करने वाले परिवार में ऐसे ही सपूतों की आवश्यकता थी। उनका लेख कैसा है इसे बताने की आवश्यकता नहीं है।

—मदन मोहनलाल चतौरे

इसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी मीजिल्स (Measles) कहते हैं।

इतिहास—इस रोग का ठीक-ठीक ज्ञान पश्चिमी वैद्यों को उन्नीसवीं शताब्दी में होना आरम्भ हुआ था। सन् १६११ ई० में ऐण्डरसन और गोल्डबर्गर ने इसके कारक जीवांश की निस्यन्दनी प्रकृति का सर्व प्रथम ज्ञान कराया। बाद में इसके विषाणु द्वारा उत्पन्न होने का ज्ञान किया गया तथा इस रोग के विरुद्ध सक्रिय क्षमतोत्पादन का कार्य अब हुआ जिसमें रूस के स्मोरोदिन्त्सेव, चुमाकोव आदि का भी अच्छा योगदान बतलाया जाता है।

कारक विषाणु—रोमान्तिका एक निस्यन्दनशील विषाणु (फिल्टरेबिल वायरस) से उत्पन्न रोग है। इस विषाणु को पॉलीनोसा मॉर्बीलोरम कहते हैं। यह एक अस्थिर स्वरूप का विषाणु है, जो मानव शरीर के बाहर आते ही आसानी से नष्ट हो जाता है। इसके द्वारा कुत्तों, शशकों तथा बन्दरों को भी रोग हो सकता है।

संक्रमण—यह रोग बीमार बालकों से स्वस्थ बच्चों में जाता है। आरम्भिक प्रसेकावस्था में तथा दाने निकलते समय इसका संक्रमण लगता है। संक्रमण की शक्ति तीसरे दिन कम होकर चौथे दिन बिल्कुल भी नहीं रह जाती। पर यदि रोमान्तिका के साथ-साथ उपद्रव रूप विषाणुजन्य फुफ्फुसपाक या न्यूमोनिया हो गया तो संक्रामक शक्ति १० दिन तक रह सकती है। यह स्मरणीय है कि रोमा-

न्तिका के वाहक (कैरियर्स) नहीं होते। जिन बच्चों का रोग सीरम देने से दब जाता है उनसे भी रोग फैलने का डर रहता है।

रोगप्रसारमार्ग—इस रोग का प्रसार बिन्दूत्क्षेपण द्वारा हुआ करता है। रोगी बालक की नासिका की श्लेष्मल कला के स्राव में विषाणु पाये जाते हैं जो छींकने या खांसने की क्रिया में नासास्राव के बिन्दुओं में भरे रहते हैं।

जब कोई रोगी बच्चा खांसता या छींकता है तो उसके उत्क्षिप्त बिन्दुक एक फ्लैट से दूसरे फ्लैट और एक गैलरी से दूसरी गैलरी और कमरों तक पहुंच कर रोग फैलाते रहते हैं। जो बालक इन बिन्दुओं के सम्पर्क में आता है वह बीमार हो सकता है। हवा के झोंके एक से दूसरे कमरे तक तो रोग के कारक विषाणु को लेजाते हैं किन्तु बाहरी वातावरण में वे रोग प्रसार करने में समर्थ नहीं होते।

रोग कारक विषाणु अस्थिरस्वरूप का होने के कारण और इसका कोई वाहक न होने से इसका प्रसार कपड़ों से या अन्य किसी सामग्री के द्वारा नहीं हो पाता। पर यदि कोई बालक रोग को शीघ्र पकड़ने की स्थिति में हो तो किसी भी रोगी बालक के सम्पर्क में आते ही वह बीमार हो सकता है।

मनुष्य जाति की रोमान्तिका की ग्राहकशक्ति(Susceptibility) बहुत अधिक होती है। किसी भी आयु का मनुष्य इस रोग से पीड़ित हो सकती हैं। यदि वह थोड़ी देर के लिए भी रोगी बालक के सम्पर्क में आगया तो। इसका प्रमाण है सन् १८४६ का फैरो द्वीपों की रोमान्तिका महामारी। इस द्वीप में ६५ वर्ष तक कभी रोमान्तिका नहीं फैली थी। पर इस वर्ष जब यह फैली तो नवजात शिशु से लेकर ६० वर्ष तक वृद्ध भी इसकी चपेट में आगये। फीजी द्वीप समूह, मार्टिनिक द्वीप, रूस के धुर उत्तर में, ग्रीनलैण्ड तथा उत्तरी कनाडा में ऐसी महामारियां फैल चुकी हैं। केवल वही बचे जिनको पहले कभी रोमान्तिका हो चुका था।

रोमान्तिका के प्रति क्षमता एक बार रोग लगने के बाद उत्पन्न हो जाती है और वह प्रायः आजीवन रहती है। किसी-किसी को १०० में १ या २ को दूसरी बार रोमान्तिका हो सकती है। यह उन बच्चों में भी देखी जाती है जिनमें पहली बार रोग का आक्रमण होने पर इसे सीरम देकर दबा दिया गया हो।

रोमान्तिका का रोग बड़ी जल्दी फैलता है। किसी समाज में जितने ही अधिक रोमान्तिका के ग्राहक (ग्रहण करने वाले-ससैप्टीबिल) व्यक्ति होंगे उतनी ही तीव्रता और शीघ्रता से इसका प्रसार होता है। ३ महीने की आयु तक के शिशुओं के रोमान्तिका नहीं होती। ६ और ८ माह के बच्चों में भी यह रोग प्रायः नहीं होता। इस क्षमता का कारण होता है माता के अन्दर रोग क्षमता का अपरा द्वारा शिशु के शरीर तक प्रसार।

रोगोत्पत्ति—रोमान्तिका का उपसर्ग ऊपरी श्वसन मार्ग और नेत्रगोलककला(कंजंक्टाइवा)द्वारा लगता है। आरम्भ के २-३ दिन तक नासा-कण्ठ के स्राव और रक्त में इसके विषाणु पाये जाते हैं। ये विषाणु जब प्राणी के सम्पर्क में आते हैं तब वात नाड़ी संस्थान में क्रियात्मक परिवर्तन पाये जाते हैं। मस्तिष्क की सैरीब्रल कार्टेक्स के कार्य में विशेष बाधा पाई जाती है। इनके कारण कंडीशंड रिफ्लैक्सें अस्थिर हो जाती हैं और बहुत क्रियाओं में अवरोध हो जाता है। उग्र रोगावस्था में ये परिवर्तन जितने देखे जाते हैं उतने सौम्यावस्था में नहीं पाये जाते। पैरासिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम में परिवर्तन होने से प्राणदानाड़ी के बल में अन्तर कभी अधिक कभी कम अनुभव किया जाता है। इसे वागोटोनिया कहते हैं। यह वागोटोनिया उन्हीं लक्षणों के समान होती है जो सीरम रोग या एनाफाइलैक्टिक प्रतिक्रिया में पाये जाते हैं। ये लक्षण हैं:—

(१) दाने निकलना, (२) ऊर्ध्वश्वसन मार्गों से प्रसेक होना, (३) अल्प रक्तदाब (४)स्वेदाधिक्य (५) लाला स्राव की अधिकता (६) आन्त्रगतियों की तीव्रता (७) श्वेतकणों की रक्त में कमी होना (८) रक्त बिम्बाणुओं की कमी होना जिसके परिणाम स्वरूप रक्त के स्कन्दन में विलम्ब हो जाना। ये सभी लक्षण रोग के अनौजस रूप को ही प्रकट करते हैं।

इन प्रतिक्रियाओं को रोकने के लिए बच्चे [illegible] [illegible]

रोगी का शरीर विशिष्ट प्रतिपिण्डकों या एण्टीबौडीज का निर्माण करता है। रोगी की यह प्रतीकारिता शक्ति महत्व पूर्ण है। किन्तु उपर्युक्त विषाणुजन्य प्रतिक्रियाओं से सुप्त या गुप्त उपसर्ग पुनः प्रगट हो सकते हैं। यक्ष्मा, अतीसार का पुनराक्रमण इस रोगकाल मे होना सम्भव है। स्ट्रैप्टोकोकल या स्टैफिलोकोकल उपसर्ग भी इस अवसर पर बढ़ जाते है।

रोमान्तिका के जो उपद्रव होते है वे कुछ तो विषाणु के कारण होने हैं और कुछ द्वितीयक वैक्टीरियल फ्लोरा के कारण हुआ करते हैं। इनमें न्यूमोनिया एक ऐसा ही उपद्रव हैं।

रोमान्तिका और उसकी वैकारिकी-

वैकारिकी की दृष्टि से रोमान्तिका में निम्नांकित विकृतिया मिलती है:

१. नासा-गला-श्वसनांगों में व्रणशोथ;

२. महास्रोत में व्रणशोथ;

३. त्वचा में व्रणशोथ,

४. रोमान्तिका के दाने जो त्वचा में उगते हैं वे अविशिष्ट तथा त्वचा के वाह्य पर्तों में व्रणशोथात्मक होते हैं। ये एक दूसरे से काफी दूर-दूर होते हैं बाद में इनसे भुसी सी उड़ जाती है;

५. मुख के अन्दर श्लेष्मलकला के अन्दर कापलिक सिध्म या स्पॉट दिखाई देते है और जो समस्त मुखगुहा में भरे रहते हैं जो मुख उपकला मे छोटे-छोटे स्थानिक गलाव तथा व्रणशोथात्मक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप बनते हे। सिध्म रोग की आरम्भिक अवस्था में उत्पन्न होकर बाद में उपकलात्मक पर्त पारान्ध हो जाता है तथा सूक्ष्म श्वेत विन्दुक उत्पन्न हो जाते हैं।

६. कभी-कभी स्वरयन्त्र में पाक हो जाता है;

७. श्वासनालों और नलिकाओं में भी पाक मिलता है;

८. कभी-कभी इस रोग का उपसर्ग श्वसन नलिकाओं को पार कर फुफ्फुस की गहराई में प्रवेश कर जाता है जिससे नलिकाओं के परिसर से लेकर वातायनों तक इसका उपसर्ग फैलकर एक विशिष्ट फुफ्फुसपाक को जन्म देता है जिसे इण्टरस्टीशियल न्यूमोनिया कहते हैं। रोमान्तिका के विषाणु के कारण ही फुफ्फुसों और श्वसनिकाओं में यह विकृति बनती है।

९. इस रोग में फुफ्फुसों की वातावकाशिकाओं में महत्कोशिकाओं की विशेष उपस्थिति देखी जाती है। यह कभी-कभी १०० माइक्रोनव्यास तक का होता है और उसमें दर्जनों केन्द्रक होते हैं। ये महत्कोशिकाएं टॉसिलों तथा अन्य कोष्ठाङ्गो में भी पाई जाती हैं। इनमें किसी किसी को अम्लरागी द्रव्य भी मिले हैं। इस रोग के प्रति यह रोगी शरीर की एक विशिष्ट प्रतिक्रिया है।

१०. आगे चलकर फुफ्फुस ऊतक तथा श्वसनिका प्राचीरों में टूट फूट सड़ांध और पूयोत्पत्ति हो कर उरःक्षत या ब्राकिऐक्टैसिस बन जाती है।

११. यही सड़ांध और व्रणशोथ बढ़कर फुफ्फुसावरण तक पहुँच जाता और तन्तुमय एवं सपूय प्लूरिसी उत्पन्न कर देते हैं।

१२. इन सभी के परिणाम से उरःक्षत, श्वसनिकाओं का अभिलोपन तथा फुफ्फुस ऊतक मे काठिन्य पैदा हो जाता है।

१३. वृहदन्त्र में पाक (कोलाइटिस) प्रसेकी या व्रणात्मक देखी जाती है जिसके साथ प्रवाहिका या अतीसार भी हो सकता है।

१४. मस्तिष्क मे उपसर्ग के कारण मस्तिष्कावरण पाक, एव मस्तिष्कपातन तक हो जाता है। इसमें रक्त प्रवाह में गड़बड़ी हो जाती है। रोग के अन्त में यदि मस्तिष्कावरण पाक होता है तो वह सपूय और विषाणु के अतिरिक्त अन्य रोगाणु न्यूमोकोकाय या स्ट्रैप्टोकोकायजन्य ही होता है।

रोमान्तिका के रोगी का रूप-

इस रोग का संचयकाल प्रायः ९-१० दिन का रहता है। उपसर्ग शरीर में प्रविष्ट होने के ठीक तेरहवें दिन दाने निकलते है। कभी-कभी जब बच्चे को प्रतिषेधात्मक सीरम दिया जाता है तो संचयकाल २१ दिन तक चला जा सकता है। रोगारम्भ इन लक्षणों के साथ चालू होता है।

१. ३८°-३९° से० तक शरीरतापमान का पहुँचना।

२. शैत्य का सिर में अनुभव, नाक से छींकें आती हैं और नाक से पानी बहने लगता है।

३. कास या खांसी जो सूखी और कष्टदायक होती है

४. बेचैनी, क्रियाशक्ति की कमी, क्षुधा नाश और नींद न आना अन्य लक्षण हैं।

५. बच्चा डरने लगता है।

६. उसका ज्वर दूसरे या तीसरे दिन कम हो जाता है।

७. गले में खराश पैदा हो जाती है और खांसी का रूप भी बदल जाता है।

८. आंखें आ जाती हैं। लाल होकर पानी देने लगती हैं।

९. आंखें रोशनी सहने में कष्ट का अनुभव करती हैं और बच्चा प्रकाश में जोर से आंखें मींच लेता है।

११. मुखमण्डल फूला फूला हो जाता है, पलक सूजे हो जाते हैं।

१२. मुख और तालु की श्लेष्मलकला में विशिष्ट परिवर्तन होने लगते हैं, वहां लाल लाल छोटे-छोटे धब्बे बन जाते हैं जो बाद में मिल भी जाते हैं।

१२. इन धब्बों के साथ-साथ ही कोपलिक स्पॉटस या रूसी ग्रन्थों के अनुसार बैल्स्की-फिलाटोव स्पॉट्स देखे जाते हैं। ये कभी-कभी उनसे पहले भी बन सकते हैं। ये मोलर दांतों की पंक्ति के सामने गाल के अन्दर की श्लेष्मलकला पर, मसूड़ों पर और कभी-कभी नेत्रकला पर भी देखे जाते हैं। ये स्पॉट खसखास के दाने के बराबर सूक्ष्म और श्वेतवर्ण के होते हैं जिनके चारों ओर अधिरक्त वलय पाया जाता है। स्पॉट्स गुच्छों में पाये जाते हैं जो कभी आपस में मिलते या जुड़ते नहीं हैं। ये श्लेष्मलकला से चिपके रहते हैं और इन्हें पिचु द्वारा पोंछा भी नहीं जा सकता है। ये १-२ दिन रहकर विलीन हो जाते हैं पर कभी-कभी तीसरे दिन (दाने निकलने वाले दिन) तक बने रहते हैं। इनके विलुप्त होने पर श्लेष्मलकला मखमली सी हो जाती है। ये स्पॉट्स केवल रोमान्तिका में ही मिलने से इनकी उपस्थिति इस रोग की निर्णायिका मानी जाती है।

१३. मसूड़ों पर रोग की प्रसेकावस्था में सफेद दाग बने हुए भी पाये जाते हैं जो उपकला के उचलने और ऊतक के गलने से बनते हैं। प्रसेकावस्था ३ से ४ दिन तक रहती है कभी एक दिन कम भी हो सकता है। उसके पश्चात् दाने निकलते हैं और स्फोटावस्था (Eruptive Stage) आरम्भ हो जाती है।

१४. स्फोटावस्था के समय दुबारा ज्वर चढ़ता है जो दूसरे या तीसरे दिन तक अधिकतम हो जाता है और पांचवें से सातवें दिन तक उतर जाता है। स्फोटों की उत्पत्ति और ज्वर का चढ़ना दोनों साथ-साथ होते हैं पहले स्फोट कानों के पीछे होते हैं फिर ये मुख के मध्यभाग में होकर २४ घण्टों में सम्पूर्ण मुखमण्डल, ग्रीवा और छाती तक फैल जाते हैं। दूसरे दिन शाखाओं के अग्र भाग और कटि प्रदेश तक पहुंच जाते हैं। तीसरे दिन तक शाखायें पूरी तरह भर जाती हैं। रोमान्तिका में स्फोटोत्पत्ति का यही क्रम चलता है कभी-कभी कमर पर स्फोट पहले भी बनते हैं।

१५. आरम्भ में स्फोटों का वर्ण गुलाबी होता है इनका आकार बाजरे से छोटा होता है और ये मृदु होते हैं कुछ ही घंटों में प्रत्येक दाने के चारों ओर लाल घेरा खिंच जाता है। शीघ्र ही आस पास के दाने एक दूसरे से मिल जाते हैं जिससे एक अनियमित सीमाओं वाले धब्बे बन जाते हैं जिनके बीच-बीच में ये दाने भी देखे जाते हैं। ये धब्बे और अधिक बड़े-बड़े होते जाते हैं जिनके बीच-बीच में श्वेताभ त्वचा स्पष्ट देखी जाती है। इन धब्बों के कारण सारा शरीर लाल दिखाई पड़ता है। कभी-कभी घने धब्बों का रूप न लेकर अलग अलग ही रहते हैं।

१५. दाने और धब्बे चौथे दिन से इसी क्रम में मुरझाने लगते हैं जिस क्रम से उनकी उत्पत्ति हुई थी, कभी कभी जब शाखाओं में दानों का प्रादुर्भाव होता है तब मुख की लालिमा विदा होने लगती है। मुरझाते हुए दानों का स्थान हल्के भूरे वर्ण (ब्राउन पिगमेंटेशन) के स्थान ले लेते हैं जो १ से २ सप्ताह तक रहते हैं। ५ से ७ दिन के बीच इन दानों और धब्बों से भूसी सी उतरने लगती है।

१६. स्फोटावस्थाकाल में रोगी को निम्नांकित बाधिक

लक्षण और मिलते हैं—

१. बेचैनी, २. वातनाड़ी संस्थान का प्रक्षोभ ३. अशक्ति ४. तीव्र शिर:शूल ५. अग्निमांद्य ६. निद्रानाश ७. प्रलाप।

१७. इसी अवस्था में निम्नांकित श्लैष्मिक लक्षण भी पाये जाते हैं जो दानों के तिरोहित होने के ही साथ-साथ दूर हो जाते हैं:—

i. श्वसन मार्गों का प्रसेक या कटार जिसके लक्षण हैं :—
   नाक बहना,
   खांसी
   आंखों से पानी बहना

ii. प्रकाश संत्रास

iii. फेंफड़े की परीक्षा करने पर कण्ठ नाड़ी श्वास-नलिकाशोथ के लक्षण मिलते हैं।

१८. स्फोटावस्था में हृद्वाहिनी संस्थान पर भी प्राय: प्रभाव पड़ता है हृद्ध्वनियां मन्द पड़ जाती हैं तथा गति में भी हलका अनियमन आ जाता है थोड़ा रक्तदाब घट जाता है नाड़ी की गति थोड़ी बढ़ी हुई मिलती है। इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम देखने से इस रोग में हृत्पेशी में विकृति मिलती है ऐसा रूसी चिकित्सातज्ञों का मत है। रोग के सुधार के साथ-साथ हृद्विकृतियां भी ठीक होती जाती हैं। इलैक्ट्रोकार्डियोग्राम द्वारा बतलाई विकृति न्यूमोनिया का उपद्रव होने से बढ़ी हुई मिलती है और अधिक स्थिर स्वरूप की होती है।

१९. इस रोग के आरम्भ में अजीर्ण भी मिलता है।

२०. मूत्राल्पता तथा मूत्र में अल्ब्युमिन भी मिल सकता है। ये दोनों लक्षण तीव्र ज्वरावस्था में ही मिलते हैं। मूत्र परीक्षा में डाई-ऐजो प्रतिक्रिया (आस्तिकात्मक) मिलती है।

२१. सभी क्षेत्रों में शरीर के लस पर्व (लिम्फनोड्स) प्रवृद्ध मिलते हैं।

२२. रक्त परीक्षा करने पर निम्नांकित ज्ञान मिलता है :—

i. श्वेतकणों की संख्या बढ़ जाती है,

ii. श्वेतकणों में भी बहुन्यष्टिकोशिकायें अधिक बढ़ जाती हैं, (ये दोनों लक्षण संचयकाल के अन्त में मिलते हैं)

iii. प्रसेकावस्था के अन्त में श्वेतकणों तथा बहुन्यष्टियों की संख्या घटी हुई मिलती है।

iv स्फोटावस्था के समय श्वेतकणों की सकल गणना घटी हुई होने पर भी बहुन्यष्टियों की संख्या बढ़ जाती है जबकि इओसिनोफिल तथा प्लेटलैट्स की संख्या घटी हुई मिलती है।

२३. रोग के सामान्य लक्षण पूर्णतया दूर होने के बाद भी शरीर में अशक्ति बनी रहती है, काम करने को जी नहीं चाहता और रोगोत्तरकालीन प्रक्षोभ बराबर बना रहता है जिसके कारण रोगी का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है।

२४. इस रोग के बाद रोगक्षमताशक्ति घट जाती है। पहले से यदि किसी रोग के प्रति पैसिव क्षमता प्राप्त करली गई थी तो वह भी घट जाती है।

रोग के विविध रूप—

रोग की उग्रता के अनुसार रोमान्तिका सौम्य, सौम्य तीव्र और तीव्र इन तीन रूपों में मिलती हैं। तीव्र रोमान्तिका में तीव्र ज्वर, अचेतनता, अशक्ति तथा हृद्वाहिनी क्रिया नाश तक मिल सकता है। इसके इतने रूप देखे जाते हैं—

१. **रक्तज रोमान्तिका**—(हैमोरेजिकरूप) इसमें त्वचा और श्लेष्मल कला में रक्तस्राव, रक्तमेह, रक्तातीसार आदि मिलते हैं और रोगी शीघ्र कालकवलित हो जाता है।

२. **स्वल्परोमान्तिका**—(अबौर्टिव रूप) सभी लक्षण सौम्य रूपीय होते हैं। ज्वर थोड़े समय रहता है। दाने कम या कहीं-कहीं निकलते हैं।

३. शान्तरोमान्तिका (मिटिगेटेड रूप) यह उन बालकों में मिलती है जिन्हें रोमान्तिका का टीका लग चुका हो। संचयकाल तो २१ दिन तक जा सकता है परन्तु आरम्भिक तथा स्फोटावस्था छोटी होती है। प्रसेकावस्था के लक्षण या तो थोड़े होते हैं या होते ही नहीं। कापलिक धब्बे भी नहीं मिलते। दाने बहुत विरल होते हैं।

कभी-कभी दुर्बल उपचयित बच्चों में रोग भयंकर होने पर भी लक्षण सौम्य होते हैं। उनमें उपद्रव अधिक होते और मृत्यु भी प्राय: हो जाती है।

रोमान्तिका के उपद्रव—

रोगी जितना ही छोटी आयु का होता है उतने ही

अधिक उपद्रव उसे परेशान करते हैं। २ वर्ष से नीचे के शिशुओं में रोग का रूप भयंकर होता है और उपद्रव बहुत होते हैं। यदि बच्चे को कोई अन्य ,जीर्ण रोग भी रहा तो उपद्रव के होने की सम्भावना अधिक होती है। शरीर में विटामिनों की कमी होने के कारण होने वाले रोग जिसे फक्क रोग होने पर उपद्रव संख्या और उग्रता बढ़ जाती है। जो बच्चे गन्दे माहोल में रखे जाते हैं या उन अस्पताल कक्षों में भरती किये जाते हैं जहां अन्य औपसर्गिक रोगों से पीड़ित रोगी हों तो रोमान्तिका के रोगियों को उपद्रव बहुत होते हैं। खासकर श्वसन संस्थान के रोगियों की उपस्थिति बहुत हानि पहुँचाती है। जो उपद्रव प्रायः रोमान्तिका पीडित बालकों में देखे जाते हैं वे निम्नांकित हैं—

१. स्वरयन्त्रपाक या लेरिंजाइटिस,

२. रोमान्तिका पूर्वी श्वसनिका पाक या क्रूप,

३. रोमान्तिकोत्तर श्वसनिकापाक,

४. फुफ्फुसपाक या न्यूमोनिया,

५. मुखपाक,

यह भी न भूलना चाहिये कि जब रोमान्तिका अन्य रोगों के साथ उत्पन्न होती है तब उपद्रवों की संख्या बहुत बढ़ जाती है, मर्त्यता में भी बढ़ोतरी हो जाती है। लोहित ज्वर, रोहिणी, प्रवाहिका और कुक्कर कास वे रोग हैं जो रोमान्तिका के साथ प्रायः मिलते हैं।

निदान—

रोमान्तिका का निदान जितनी जल्दी कर लिया जायगा उतना ही अच्छा रहता है। माधवकर ने अपने निदान ग्रन्थ में यह श्लोक दिया है—

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः॥

रोमकूपों के उठाव जैसी कफपित्तज लालरंग की रोमान्तिकाएं होती हैं जिनके साथ खांसी और अरुचि रहती है तथा जो प्रायः ज्वर के पूर्व ही उत्पन्न हो जाती है।

प्रसेकावस्था में मुख की श्लेष्मलकला खास कर तालु में कांपलिक (बैल्स्की-फिलाटोव) सिध्मों की उपस्थिति इस रोग की सबसे बड़ी साक्ष्य है। पर इन सिध्मों और मुखपाक के सिध्मों का भेद भी जानना चाहिए। मुख पाक के सिध्म जहां आपस में मिल जाते तथा पिचु द्वारा हटाये जा सकते हैं ये सिध्म (धब्बे) न तो मिलते हैं और न मिटते ही हैं।

कभी-कभी पदू में रोमान्तिका का भेद करना आरम्भ में कठिन पड़ता है पर १-२ दिन में ही बैल्स्की-फिलाटोव सिध्मों और विस्फोटों या पिडिकाओं (rash) आदि से दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

जर्मन मीजिल्स में बैल्स्की-फिलाटोव सिध्म नहीं मिलते प्रसेकावस्था भी प्रायः अनुपस्थित या स्वल्प मिलती है। लोहितज्वर में विस्फोट एक दम निकलते हैं जब कि रोमान्तिका में कई सोपानों में।

चीलर वाहित टाइफस में प्रसेकावस्था नहीं होती। औषधजन्य विस्फोटों में औषध प्रयोग का इतिहास मिलता है।

साध्यासाध्यता—

यदि रोमान्तिका के साथ उपद्रव न हों या कोई अन्य रोग साथ में न हो तो यह पूर्णतः साध्य रहता है। पर यदि ऐसा न हुआ तो यह रोग गम्भीर रूप धारण कर सकता है। न्यमोनिया या श्वसनक का उपद्रव होने पर ८० प्रतिशत तक बच्चे कालकवलित होजाते हैं यदि बालक का स्वास्थ्य ठीक हो पास-पड़ोस का वातावरण स्वच्छ हो और परिचर्या और उपचार समय से एवं ठीक ठीक किए जावें तो भी रोग से मुक्ति आसानी से हो जाती है।

उपचार—

स्वच्छवायु, गरम जल से हाथ मुह धुलाते रहना, आंतों को स्वच्छ रखना मुख को स्वच्छ रखना, कुल्ले कराना (बड़े बालकों को), पेय द्रव्यों और तरल सुपाच्य पौष्टिक भोजन का प्रयोग परमावश्यक है। होठों को चिकना रखना आवश्यक होता है। विटामिन सी, ए और बी, का प्रयोग अच्छी मात्रा में कराना चाहिए। न्यूमोनिया (श्वसनक) से बचाने के लिए ऐण्टीबायोटिक दवाएं शुरू से भी दी जा सकती है। यदि कोई उपद्रव उठे तो उसकी चिकित्सा तत्काल की जानी चाहिए। इस रोग में वे सभी साधन आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किए जा सकते हैं जिन्हें अन्य बालरोगों के दूर करने के लिए लिया जाता है जैसे :—

i. ऐण्टीवायोटिक द्रव्यों का प्रयोग।

ii. सल्फोनैमाइड द्रव्यों का प्रयोग।

iii. ऑक्सीजन देना।

iv. रक्ताधान या रसाधान।

v. सिरा द्वारा ग्लूकोज का प्रयोग।

vi. गामाग्लोब्यूलिन का प्रयोग।

vii. कॉर्टीकोस्टराइडों का प्रयोग।

आयुर्वेदज्ञ भी इन्हीं में से अधिकांश को स्वीकार करते हैं:—

उच्चैस्तरे प्रशस्ते च रोमान्तीगदपीडितः।
गृहेऽनार्द्रे वसेन्नित्यं गुरूष्णवसनावृतः॥

ऊंची कुर्सी वाले, स्वच्छ वायुमण्डल में वने अनार्द्र (शुष्क) मकान में रोमान्तिका से पीड़ित वालक को रखें उसे भारी गरम वस्त्र पहनावें या उढ़ावें।

शीतवायुं शीततोयं सन्तापं वह्निसूर्ययोः।
त्यजेत् स्त्रियं दिवानिद्रामध्वानं निशिजागरम्॥

जिस स्त्री के वालक को रोमान्तिका हो वह ठण्डी हवा, ठण्डा पानी, धूप या आग के सामने रहना, दिन में सोना और रात का जागना त्याग दे।

सुखोष्णेनाम्वुना स्वेदो रोमन्ती ज्वरहृन्मतः।

सुहाते गरम जल से स्वेदन करने से रोमान्तिका का ज्वर दूर हो जाता है।

सामान्यतः इस रोग में वहुत से वैद्य औषध प्रयोग कम करते हैं फिर भी जो लोग औषध चिकित्सा के पक्ष में हैं उन्हीं के कुछ औषधयोग नीचे दिये जा रहे हैं:—

१. करेली के पत्तों का स्वरस हल्दीचूर्ण मिलाकर देने से रोमान्तिका और मसूरिका शान्त होती हैं।

२. **खदिराष्टक** कत्था, हरड़, वहेड़ा, आमला, नीम की छाल, गिलोय और अड़ूसे के क्वाथ को ५ से १० वूंद की मात्रा में कई वार दें।

३. **इन्दुकलावटी**—शिलाजीत, लोहभस्म, स्वर्णभस्म, समभाग ले तुलसीस्वरस में मर्दन कर पाव रत्ती की गोलियाँ वना छाया में सुखा लें। यह उन सभी रोगों में जिनमें विस्फोट या व्रण या रैश वनते हैं उत्तम मानी जाती है।

पथ्य—इस रोग में जीर्ण शालि या साठी के चावलों का भात, मूंग-मसूर की दाल, वार्लीवाटर आदि पथ्य माने जाते हैं। पाककाल में वृंहण द्रव्य पथ्य माना जाता है।

प्रतिषेधात्मक विचार

१. सेहुण्ड का रोपण घर में करने से मसूरिका और रोमान्तिका रोग से रक्षा हो जाती है।

२. आधुनिक विद्वानों ने यत्न करके रोमान्तिका नाशक प्रतिषेधात्मक वैक्सीन तैयार कराई हैं। इन मीजिल्स वैक्सीनों के टीके वड़ी संख्या में वच्चों को विदेशों में लगाये जाते हैं जिससे यह रोग धीरे-धीरे घटता जारहा है।

३. **सीरम द्वारा प्रतिषेध**—ऐसा सोचा गया कि जिस वच्चे को रोमान्तिका हो चूकी हो उसके रक्त के रस (सीरम) का टीका स्वस्थ वच्चे को दिया जावे तो उसे रोमान्तिका नहीं होती। पर ऐसा सीरम मिलना कठिन था। अव इसका हल निकाल लिया गया है। इसके लिए वयस्कों का सीरम आज कल प्रयोग में लाते हैं। क्योंकि प्रायः सभी वयस्क या वड़ों को उनके वचपन में रोमान्तिका हो चुकी होती है इसलिए उनके सीरम में रोग प्रतिषेधक द्रव्य (ऐण्टीवॉडीज) होती हैं। ये द्रव्य इनमें कम मात्रा में होते हैं इसलिए वच्चे की अपेक्षा दसगुने सीरम का टीका देना पड़ता है। कम से कम १० व्यक्तियों का सीरम मिलाकर तव उसका टीका दिया जाता है। रूसी विद्वान् माता की अपरा के रक्त से सीरम निकाल कर प्रयुक्त करना और भी उत्तम मानते हैं।

४. **गामाग्लोव्युलिन का प्रयोग**—उपर्युक्त सीरम से जिसमें रोमान्तिका प्रतिषेधक द्रव्य हों गामाग्लोव्युलिन निकाल कर सीरम की अपेक्षा काफी थोड़ी मात्रा में उसका प्रयोग करने से भी रोमान्तिका रोगावस्था में काफी लाभ होता है। गामाग्लोव्युलिन देने से सीरम प्रदान से उत्पन्न यकृत्शोथ नामक भयानक व्याधि से भी वचाया जा सकता है। वच्चा जव किसी दूसरे खसरे से पीड़ित वच्चे के सम्पर्क में आ जाय तो उसके ५ या ५ दिन वाद तक गामाग्लोव्युलिन दे सकते हैं। इस समय १ वर्ष से ऊपर के शिशु को १·५ मिलि गामाग्लोव्युलिन पेशी में देना पर्याप्त होता है। छठे दिन के वाद, या साल भर से कम आयु के शिशु को या दुर्वल वालकों को यह मात्रा ३ मिलि की होती है। इससे ३० दिन तक क्षमता रहती है। उसके वाद १ मिलि का दूसरा इंजैक्शन देना होता है। ★

श्री विनोदकुमार शर्मा, B. A. M. S; डिमोंस्ट्रेटर-ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज, हरिद्वार

१. इसे बाल पक्षाघात, इन्फेन्टाइल पैरेलाइसिस, एक्यूट एपिडेमिक पोलियो माइलाइटिस आदि नामों से पुकारा जाता है।

२. यह एक औपसर्गिक रोग है जिसकी उत्पत्ति एक विषाणु से होती है जिसे पोलियोवाइरस होमिनिस कहते हैं यह परम सूक्ष्म (८ से १२ माइक्रोन) निःस्यन्दनशील विषाणु है। यह आन्त्रविषाणु वर्गीय है। ५६° से० के ताप पर आधा घंटा गरम करने से यह नष्ट हो जाता है। अल्ट्रा वायोलेट किरणें तथा डिसइन्फेक्टिंग द्रव्यों के सामान्य घोल में भी नष्ट हो जाता है। वैसे बाह्य वतावरण में यह आराम से रहता है। शीत या शुष्कता इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ पाती। इसे पेट के पाचक रस भी नष्ट नहीं कर पाते। इन पर किसी भी ऐन्टीबायटिक द्रव्य का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता। यह विषाणु बन्दरों में भी विकार पैदा करता है।

३. रोग का आक्रमण होने के बाद २० से ३० दिन में प्रायः विषाणु से व्यक्ति मुक्त हो जाता है। वैसे वाहकावस्था ३०-६० दिन तक बनी रहती है। रोग का संक्रमण तीव्रावस्था में हुआ करता है। स्वस्थ वाहकों के द्वारा रोग बहुधा फैलता रहता है।

४. यह रोग एक प्रकार का आन्त्रिक औपसर्गिक रोग है। ७० से १०० प्रतिशत तक इस रोग के विषाणु मल या विष्ठा में मिलते हैं। रोगारम्भ के २ सप्ताह बाद तक मल में ये पाये जाते हैं। जिस प्रकार मक्खी या दूध अन्य आन्त्रिक उपसर्गों को फैलाते हैं वैसे ही पोलियो को भी ये फैलाते हैं। रोगी की नासाग्रसनिका में विषाणु बहुत कम मिलता है वह भी १ से ७ दिन तक। जो लोग यह समझते हैं कि यह रोग केवल आन्त्रिक रोगों की तरह फैलता है वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि जो गुप्त प्रतिक्षमता समाज में व्याप्त है वह आन्त्रिकमार्गीय न होकर वायुमार्गीय बिन्दूत्क्षेपात्मक ही प्रतीत होती है। हवा में बहुत थोड़ी मात्रा में लगातार विषाणु के साथ व्यक्ति का सम्पर्क आते रहने

इस लेख के उदीयमान लेखक डा. शर्मा उत्तरप्रदेश के सर्वाधिक प्रशस्तिप्राप्त आयुर्वेद कालेज में जिस उच्चस्तरीय अध्यापन क्षमता का प्रदर्शन कर रहे हैं उससे उनके सुन्दर भविष्य के सहज ही सुखद दर्शन हो जाते हैं। आयुर्वेद के गहन रहस्यों को प्रकट करने हेतु भी उनकी प्रतिभा का उपयोग होगा यह आशा है। लेखक तो उत्तम और ओजपूर्ण है ही भविष्य में भी सुधानिधि उनसे लाभान्वित होगा यह आशा है। —रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

से ही उसमें क्षमता शक्ति पैदा होती रहती है इसी से बड़े बालक और आदमी इस रोग से मुक्त रहते हैं। ६०-८० प्रतिशत तक यह रोग ४ वर्ष से नीचे के बालकों में होता है। जब बच्चे को पौष्टिक आहार और विटामिन कम मात्रा में मिलते हैं तथा उसे कोई औपसर्गिक रोग हो चुकता है तब यह रोग बन सकता है। एक बार रोग लगने पर रोगक्षमता उत्पन्न हो जाती है और दुबारा रोग नहीं लगता।

५. इस रोग में विकार सुषुम्ना के ग्रैव तथा कटि भाग के अग्रश्रृंगों के धूसर भाग में होता है। इसके कारण तन्त्रीकोशिकाएं (वात नाड़ी कोश) नष्ट होने लगते हैं। सुषुम्ना के पृष्ठश्रृंगों तथा मस्तिष्क के अन्य भागों में विकृतिकारक प्रभाव कम पड़ता है। सूक्ष्मरक्तस्राव भी अग्रश्रृङ्गों में जगह जगह देखा जाता है। वातनाड़ी कोशिकाओं के नष्ट होने पर उनका स्थान तान्तव ऊति या न्यूरोग्लिया ले लेती है।

६. ऐसा लगता है कि इस रोग का प्रसार नासा-या आंतों के मार्ग से वहां स्थित लसपर्वों के द्वारा होता है। लसपर्वों से विषाणु रक्तधारा में चला जाता है। रक्तधारा उसे सुषुम्ना तक पहुँचा देती है वहां विषाणुओं की उपस्थिति प्रमाणित की जा चुकी है। पांचवीं, सातवी, नवीं और दसवीं शीर्षण्या नाड़ियों के मार्ग से यह रोग केन्द्रिय वातनाड़ी संस्थान तक पहुँचता है।

७. पोलियो का संचय काल ५ से १४ दिन का माना जाता है। कभी-कभी यह कम से कम २ से ४ दिन और अधिक से अधिक ३५ दिन का भी हो सकता है।

८. इस रोग की चार अवस्थाएं मिल सकती हैं:—

क-आरम्भिक अवस्था या प्रावपक्षवधावस्था—इसे प्रि-पैरैलाइटिक अवस्था भी कहते हैं। इसमें प्रतिश्याय, प्रसेक, हृच्छूल, श्वासनालपाक आदि के लक्षण मिलते हैं। किसी किसी में आमाशयान्त्र क्षोभ के लक्षण भी मिल सकते है। दस्त होना एक महत्वपूर्ण लक्षण है। अन्य लक्षणों में वमन शिरःशूल, तन्द्रा, मूर्च्छा, अनिद्रा, प्रलाप, कम्प, ग्रीवा और सिर का आंकुचन, पेशियों के कम्प, मेरुदण्ड दबाने से दर्द, हाथ पैरों में दर्द, गर्दन के पीछे की पेशियों में कड़ापन, कर्निगचिन्ह उपस्थित मिलता है। इस अवस्था में तर्पक कफ में बहुत स्थिर स्वरूप के परिवर्तन मिलते हैं। ग्लोब्यूलिन प्रतिक्रिया आस्तिक होती है। कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है वह १००से २०० तक या और अधिक तक हो जाती है। प्रोटीन पहले तो प्राकृत रहती है पर बाद में पाचवें दिन बाद धीरे-धीरे बढ़ने लगती है तब कोशिका संख्या घट जाती है।

यह अवस्था २ से ५ दिन तक रहती है। किसी-किसी में इस अवस्था में ज्वर भी हो जाता है जो दो बार तक बढ़ता है।

ख-अङ्गवधावस्था या पैरैलाइटिकस्टेज-रोगी का ज्वरशान्त होते ही यह अवस्था बनती है। कभी-कभी ज्वर जब बहुत तेज होता है तब यह घात या अङ्गवध शुरू होता है। यह अङ्गवध सहसा उत्पन्न होता है। रोग आरम्भ होने के पांचवें दिन से चौदहवें दिन तक पैरैलाइसिस उत्पन्न हो जाती है। ५८ से ८२ प्रतिशत बालकों में यह घात पैरों में होता है। बाहु की डेल्टाइट पेशीघात का नम्बर दूसरा होता है। कटि, ग्रीवा, उदर और श्वसन की पेशियों पर घात का प्रभाव कम होता है।

सुषुम्ना की नाड़ियों में घात के अलावा शीर्षण्या नाड़ियों में भी घात हो सकता है। पांचवीं फेशियल नाड़ी में घात से अर्दित हो सकता है। ग्लौसफेरिंजियल नाड़ी के घात से निगलने की पेशियों में घात हो सकता है। इन अंगवध या अगघात का रूप ढीला ढाला और पेशी बल को कम करने वाला होता है। कण्डरा प्रतिवर्त नहीं मिलते। थोड़े दिन बाद पेशी में क्षय होने लगता है जो २-३ सप्ताहो में स्पष्ट होता है। हाथ पैर जहां घात होता है ठण्डे और रक्तहीन हो जाते हैं।

इसी अवस्था में तर्पक कफ में कोशिकाएं घटने और प्रोटीन बढ़ने लगती है जो ४० से ६० दिन तक बढ़ी रहती है। यह अवस्थाकुछ दिनों (१० से १५ दिन) तक रहती है।

ग—शान्तावस्था अङ्गवधावस्था के बाद चालू होती है। इसमें पेशियों की क्रियाशक्ति में कुछ-कुछ सुधार होता है। सिरदर्द और प्रस्वेदाधिक्य कम हो जाता है। हाथ पैरों और मेरुदण्ड का शूल भी शान्त हो जाता है। पेशियों के घात के घटने का कारण होता है कुछ नाड़ी कोशिकाओं

का अस्थायी रूप से घातित होना। कण्डराप्रतिवर्त फिर से तेज हो जाते है। ४ से ६ माह तक पेशी सुधार की अच्छी गति रहती है बाद में वह मन्द पड़ जाती है। वैसे पेशी सुधार एक वर्ष दो वर्ष और तीन वर्ष तक चल सकता है। जिन पेशियों में सुधार नही होता वे अपुष्ट या क्षीण हो जाती है। कुछ पेशियों में स्थायी आकुंचन या कंट्रैक्चर भी हो जाता है।

घ—अवशिष्टघातावस्था में कुछ पेशियों में स्थायी ढीलापन और घात मिलता है जो स्थायी रूप से रोगी को विकलांग कर देता है। शरीर, हाथ पैर इनमें क्षीणता हो जाती है। जिसके कारण बालक जीवन भर के लिए बेकार हो जाता है।
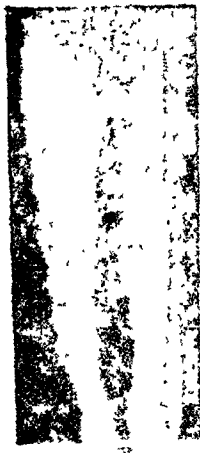
बांई टांग पर पोलियो का प्रभाव।

दोनों टांगों तक पोलियो का प्रभाव।

९. रोग के स्वरूप के अनुसार शिशु-पोलियो के कई भेद पुस्तकों में दिये गये हैं जैसे सौषुम्निक, कन्दीय, पोन्टीय, मस्तिष्कीय, कोष्ठागीय मस्तिष्क तानिकीय आदि आदि

१०. इस रोग का निदान करना अधिक कठिन नहीं है। आजकल प्रयोगशाला में मल और नासास्राव की जांच करके उनसे विषाणु अलग करके देखते हैं।

११. साध्यासाध्यता की दृष्टि से जितने ही बड़े शिशु या बालक में रोग होगा उतना ही वह गम्भीर रूप धारण करेगा। मृत्यु १ से ७ दिन के अन्दर हो सकती है पेशीघात में जितना जल्दी सुधार होता है उतनी ही जल्दी रोग दूर होगा इसे न भूलना चाहिए इसलिए चिकित्सा हेतु शीघ्र प्रयास आवश्यक रहता है।

१२. इस रोग की चिकित्सा करते समय निम्नलिखित बातें विशेष महत्व रखती हैं:—

i. रोगी शिशु को ३ सप्ताह तक शैया पर पूर्ण विश्राम दिया जावे।

ii. व्याकुलता दूर करने के लिए शामक, निद्राकर द्रव्य दिये जा सकते हैं।

iii. पांचवें दिन से शरीर का सेक—गरम पानी की रबर की बोतल से या [illegible] से दे सकते हैं। उष्णोदक में शरीर की पीड़ा [illegible] या स्नान भी कराना इसी प्रकार स्वीकार करते हैं।

iv. इस रोग की अचूक कोई औषध नहीं है। आजकल गामाग्लोब्युलिन आदि [illegible] शरीर भार की मात्रा से देते हैं। [illegible]

[illegible]

का प्रयोग किया जाता है। वैसे पोलियो में इनका कोई उपयोग नहीं है।

vi. मस्तिष्क तथा उसकी कलाओं के शोथ को कम करने के लिए ग्लूकोज का ४० प्रतिशत विलयन सिरा में दिया जाता है।

vii. विटामिन वी १, वी १२, सी, वी २, वी ६ को मुख या इंजैक्शन द्वारा दे सकते है।

viii. वेदना शमन के लिए सैलिसिलेट्स, एमिडो-पाइरीन, ऐनल्जिन, वूटा जौलिडिन आदि दी जा सकती हैं।

ix. इस रोग में सिरा द्वारा हैक्सामिन का ४०% घोल २ से ५ मिलि या मुख द्वारा ०·१ ०·२ ग्राम २ या ३ वार देते हैं।

x जब इस रोग में श्वसनपेशियों का घात होकर श्वसनक्रिया में वाधा उपस्थित होती है तब कृत्रिम रैस्पि-रेटर का उपयोग कर श्वास-प्रश्वास कर्म चालू रखा जाता है। कभी-कभी कण्ठनाड़ी का छेदन भी करना पड़ सकता है। ये सारे काम विशेषज्ञों द्वारा आतुरालय में ही किए जा सकते हैं।

xi. शान्तावस्था में उष्णोदक स्नान, स्वेदनकर्म कराये जाते हैं।

xii. वातनाड़ियों एवं पेशीनाड़ी संगमों पर नर्वतरंग को संवाहित करने हेतु भी कई दवाएं दी जाती हैं इनमें एक निओस्टिग्मीन है जिसे रोगारम्भ के २ हफ्ते वाद ०·०५ प्रतिशत विलयन वनाकर आयु के अनुसार ०·३ से १ मिलि तक पेशी में इंजैक्शन द्वारा देते हैं। ये सुइयां १०-१५ दिन वरावर दी जाती हैं। डीवाजोल चूर्ण १० से ५० मिग्रा प्रतिदिन २०-३० दिन देते हैं। फिर २ माह वन्द रखकर पुनः २०-३० दिन दे सकते हैं। इस अवस्था में ग्लूटैमिक ऐसिड भी दी जाती है क्योंकि यह नर्व ऊतक में चयापचयिक क्रिया वढ़ाती है। इससे नाड़ी में तरंग के प्रवाहण में सुविधा हो जाती है। पेशी में वल भी वढ़ता है। इसे ०·५ से २ ग्राम तक प्रतिदिन मुख द्वारा खिलाते हैं।

xiii. वेदना दूर होते ही पेशियों की मालिश तया पैर या अन्य अंगों की घातित पेशियों को चलाना संकुचित प्रसा-रित करना २ से ३ साल तक करना पड़ सकता है। विजली की मशीन से घात प्राप्त पेशियों और अंगों में वैटरी द्वारा विद्युद्धारा थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पहुँचाते है। इसे १॥-२ माह वाद चालू करते हैं।

xiv. शल्य चिकित्सा का भी आश्रय लेना पड़ता है।

१३. इस रोग की प्रतिषेधात्मक चिकित्सा को आज बहुत महत्वपूर्ण समझा जा रहा है। इसके लिए निम्न-लिखित उपाय किये जाते हैं: -

i. इस रोग का आक्रमण होते ही पीड़ित बालक को २१ दिन के लिए अन्य समाज से पृथक् रखना;

ii. अच्छा हो उसे अस्पताल के अन्दर प्रविष्ट कर देना;

iii. रोगी के मल मूत्र और नासास्राव को नष्ट कर देना और मक्खियों को भी नष्ट कर देना ताकि वे रोग का संवाहन न कर सकें;

iv. रोगी के झूठे वर्तन, वस्त्र, मलपात्र को जीवाणु-नाशक घोल से धो देना;

v. यदि किसी विद्यालय के किसी बच्चे को रोग हो गया हो तो पूरे स्कूल के छात्रों का ही ध्यान रखना होता है।

vi. रोगी के सम्पर्क में आये प्रत्येक ७ वर्ष से नीचे के वालक को ०·३ मिलि प्रति किलो शरीर भार के अनुसार गामाग्लोब्यूलिन का इंजैक्शन देना;

vii. आजकल ऐटिनुएटेड (दुर्वलीकृत) लिविंग (सजीव) पौलियो वैक्सीन का विशेष प्रयोग किया जा रहा है। इसे शुगरकोटैड डूँगी के रूप में खिला देते हैं।

viii. पौलियो का टीका पहली वार ३ महीने की आयु होने पर फिर दूसरा २ वर्ष की आयु होने पर दिया जाता है। उसके वाद ३,७ या ८ वर्ष की आयु में भी टीके लगाये जाते है। टीका ज्वर होने पर, अतीसार रोग में, यक्ष्मा में या हृद्वाहिनीजन्य रोगों में लगभग निषिद्ध कहा जाता है।

सुधानिधि
शिशु रोग
चिकित्सांक
अनुभव खण्ड

इस खण्ड में

☆

निम्नलिखित लेखों का समावेश किया जा रहा है :—

वैद्य कविराज श्री सीताराम अजमेरा सदस्य–सेण्ट्रल काउन्सिल 'आफ इण्डियन मेडीसिन
सदस्य–बोर्ड आफ इण्डियनमेडीसिन , मध्यप्रदेश

भारत की राजधानी बनने योग्य तथा सुरक्षा की दृष्टि से भी सर्वोत्तम मालवा का इन्दौर नगर है यहीं जवाहर मार्ग पर हमारे परम स्नेही और आयुर्वेद को जीवन का एकमेव गन्तव्य मानकर चलने वाले श्री अजमेरा जी विराजते हैं। इन्होंने आयुर्वेदीय चिकित्सा का विशाल अनुभव संचित करके रखा है। इन्दौर नगरी को धन्य बनाकर आयुर्वेद की पताका को मालवा के आकाश में सर्वोच्च शिखिर पर फहराने वालों का एक सुन्दर वर्ग इस समय भी उपस्थित है। यह वैद्यवर्ग रूप मयंक अपनी षोडश कलाओं से यहां के वातावरण को धवल किये हुए है इस वर्ग में अजमेरा जी का विशिष्ट स्थान है। इनकी प्रतिभा अद्भुत है। आपने आयुर्वेद जगत् को बहुत अच्छे-अच्छे योग प्रदान किए हैं। ऐसे योग जिनका उपयोग करने से भारतीय वैद्य की परमुखापेक्षी वृत्ति समाप्त हो जाती है। आपके बालरोगों पर किए गये अनुभव निस्सन्देह बहुत महत्वपूर्ण हैं।

आपने चेचकों के दिनों में संजीवनी का उपयोग निषिद्ध बतलाया है। उनका कहना है कि संजीवनी में निहित भल्लातक की उग्रता से किसी भी ज्वर में चेचक जैसी पिडिकाएं उभर सकती हैं। भल्लातक का शोधन करने या खाने से पिडिकाएं उत्पन्न होती हैं यह निर्विवाद सत्य है। पर वे चेचक के दानों जैसी होती हुई भी हो सकती हैं यह वैद्य जी का मत है। इसलिए उन्होंने संजीवनी का प्रयोग सोच समझकर करने की सलाह दी है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

रोग निश्चय का महत्व–

यह तो निर्विवाद सत्य है कि चिकित्सक के प्रतर [illegible]ान की परख एवं उपलब्धि बालक के रोग विनिश्चय में ही [illegible] पाती है। कारण स्पष्ट है कि बालक के केवल स्पर्श व दर्शन से ही रोग का समीचीन निदान करना पड़ता है। मुझे स्मरण है एक बहुत ही प्रतिष्ठित चिकित्सक के एक शिशु के उपचार में सतत पांच दिन उपचारोपरान्त रोग को पकड़ पाये तब तक रुग्ण बालक का रोग इतना बढ़

चुका था कि पूर्ण प्रयास करने पर भी निराशा ही हाथ लगी। स्वयं चिकित्सक को इतना क्षोभ एवं पश्चात्ताप हुआ कि चिकित्सकीय प्रतिष्ठा के साथ वे अपने मानसिक संतुलन को भी दीर्घकाल में नियोजित कर पाये, यह प्रत्येक चिकित्सक के काम की बात होने से ही इसका जिक्र कर लेना उपादेय है। बालक की आयु १। साल स्वास्थ्य अच्छा एवं सदैव लघुतम या बृहत् व्याधि के समय एक ही प्रतिष्ठित चिकित्सक के द्वारा उपचार जिससे पारिवारिक चिकित्सक के श्रद्धास्पद सम्बन्ध परिवार से जुड़ गये–एक रात बालक को थोड़ी खांसी के साथ तीव्र ज्वर हो गया। चिकित्सक महोदय ने देखकर ज्वर और कासनाशक प्रयोग शुरू कर दिया। प्रातः थोड़ा ज्वर न्यून हुआ और पुनः उसी दवा की व्यवस्था कर दी गई। दिन में मध्याह्न तक ज्वर तीव्रतर यानी १०४° हो गया, अतः फिर परीक्षण करने पर चिकित्सक ने तीव्र ज्वरनाशक औषधि की व्यवस्था की; फलतः रात्रि को ज्वर १०२° हो गया। किन्तु बच्चा दूध या जल पेय पदार्थ नहीं ले पाया व केवल मां के दूध को यदा कदा ले लेता था। प्रातः पुनः परीक्षण कर चिकित्सक के द्वारा औषधि नियोजित की जाकर कुछ आधुनिक उपचार भी साथ-साथ प्रदान किया गया और ज्वर कभी कम होकर पुनः रोग की तीव्रता से बढ़ता रहा। इसी प्रकार और एक दिन उपचार चलता रहा। इतनी देर में बालक पूर्णतया अशक्त एवं गले से अवरोधित आवाज के साथ ज्वर एवं संन्यास की स्थिति में आ गया और जब ५ वें दिन चिकित्सक महोदय ने बालक के कण्ठ का परीक्षण किया तो 'मांसतान' या कण्ठ रोहिणी का निदान हो पाया। फिर तो पूरा प्रयास करने पर भी उस बच्चे को न बचाया जा सका। अतः मांसतान रोग पर चिकित्सकों के हेतु योग प्रदर्शित करते हुए प्रार्थना करता हूं कि बालक की परीक्षा के समय उसके गले को पूर्णतया देखना कभी न भूला जाय अन्यथा यह भूल त्रासदायी संभव हो सकती है।

मांसतान या डिपथीरिया–

शत प्रतिशत सफल योग एवं उपचार पद्धति, सर्वप्रथम बालक को १ से २ रत्ती तक की वय एवं बल के अनुरूप मात्रा में उसारेरेवन्द यानी रेवतचीनी का सत २ चमचा खूब गरम और मीठे दूध में घोलकर पिला दें अधिक से अधिक ४० से ६० मिनट में एक वमन या एक दस्त अथवा दोनों हो सकते हैं। इस परिशोधन के पश्चात् ही औषधि कार्यकारी सिद्ध हो सकती है। यदि वमन न हो तो उपचार के साथ १ बार पुनः इसका प्रयोग किया जा सकता है। इससे कण्ठ में और पार्श्वभाग में स्थित कफ निकल जाता है व अधोभाग से भी पिच्छिल मल शुद्ध हो जाता है। अब नीचे लिखे मिश्रण को शहद और थोड़े तुलसीपत्र स्वरस में मिलाकर चीनी की प्लेट में रखें और दिन भर में या पूरे रात दिन में एक-एक अंगुली चटाते रहें–अभ्रकभस्म (उत्तम) २ रत्ती, गोरोचन आधा रत्ती, शु. टंकण २ रत्ती, वासाक्षार २ रत्ती, रसमाणिक्य १ रत्ती, भीमसेनी कपूर १/८ रत्ती, बृहत् कस्तूरी भैरव १ रत्ती, इन सबको घोटकर १ पुड़िया बनायें और २ चमचा शहद व १/२ चमचा तुलसी के रस में खूब अच्छी तरह मिलाकर रखें यह दिन भर की मात्रा है जबकि बालक की आयु २-२॥ वर्ष तक हो, ३ वर्ष के बालक को थोड़ी मात्रा बढ़ाई जा सकती है। उपचारकाल में खूब उबालकर ठंडा किया जल दें, दूध को पतला करके व कुछ निवाया ही पिलावें। ताजा फलों का रस न देकर चिरोंजी, किशमिश, मुनक्का, खारक, बड़ी इलायची व केशर उचित प्रमाण में लेकर पानी में उबालकर, मसलकर, छान लें व थोड़ा-थोड़ा पोषणार्थ यह द्रव देते रहें। छाती गले और पीठ पर नारायण तैल की हल्की मालिश करें। आपका उपयुक्त रोग से ग्रसित बालक अतिशीघ्र आरोग्यता प्राप्त करेगा, अधिक से अधिक ४ दिन लग सकते हैं फिर लाक्षणिक उपचार करते रहें।

उत्फुल्लिका या न्यूमोनिया –

बालकों का दूसरा रोग जो प्रायः जटिल माना जाता है वह है उत्फुल्लिका (न्यूमोनिया) इसके लक्षण भी प्रायः श्वास, ज्वर, आध्मान, पार्श्ववेदना ही होते हैं सिर्फ गले में अवरोध नहीं होता। डिपथीरिया की तरह, अतः इसी उपचार से थोड़ी वमन कराने के बाद रोग पर शीघ्र काबू पाया जा सकता है। इसमें थोड़ा कोई भी योग वत्सनाभयुक्त और शामिल करने से शीघ्र लाभ होता है। ध्यान रहे भल्लातक मिश्रित संजीवनी प्रयोग न करें अन्यथा कफ

शुष्क होकर थोड़ा मूत्रावरोध भी हो जायगा और पार्श्व की वेदना बढ़ेगी, शेष सभी उपयोग उपर्युक्त प्राप्त औषधियों के साथ ही मूसल औषधि के प्रयोग करने से शीघ्र लाभ होगा। रोग की उपशयकारी अवस्था पर ध्यान देने की जरूरत है। अनुपशय की अवस्था में तुरन्त औषधि दोषानुसार चयन की जानी चाहिये।

चेचक या मसूरिका -

तीसरा बालकों का रोग जटिल है चेचक या मसूरिका—इस रोग के बारे में दो बातें जानने योग्य हैं यदि रोग की उत्पत्ति काल में बच्चे को किसी भी रोग के समय संजीवनी वटी का प्रयोग किया जाय तो उसमें निहित भल्लातक (भिलावा) तुरन्त चेचक उभार देता है। अतः सावधानी बरतना जरूरी है। यहां एक दिलचस्प उदाहरण देना उचित लगता है। १ बालक को जो विशिष्ट नागरिक श्रेष्ठिकुल में एक मात्र बच्चा था अतः आधुनिक लब्ध-प्रतिष्ठित चिकित्सक महोदय के उपचार में पारिवारिक डाक्टर होने से था। जब ज्वर कई प्रकार की औषधियों से नहीं गया व औषधि की तीव्रता से कुछ एलर्जी के लक्षण दिखायी देने लगे तो माता जी (शीतला) की आशंका होने से कुछ अन्य रिश्तेदारों के कहने से मेरा भी उस घर में प्रथम बार प्रवेश चिकित्सक के नाते हुआ। मैंने सारी स्थिति जानकर बच्चे को माता है यह कह दिया। पुनः डा. साहब के सान्निध्य में मुझे बुलाया गया तो अति स्वाभाविक रूप से मैंने अपने निदान की पुष्टि कर दी कि इसे स्मालपॉक्स (चेचक) है जो कि डाक्टर साहब मेरे निदान से सहमत नहीं थे अतः मेरे इलाज की शुरूआत में ही मैंने औषधि में संजीवनी वटी १ १ रत्ती का प्रयोग दिन में ३ बार किया तो सहज रूप में पूरे बदन पर पिडिकायें उभर आईं जो संजीवनी के घटक भल्लातक के कारण हुई थीं इससे पूरे परिवार में मेरे प्रति निष्ठा पैदा हो गई कि निदान सही था और आज भी उस घर में एकमात्र मेरा उपचार ही किया जाता है। मेरा यह निश्चित मत है कि जिन दिनों शहर में चेचक का प्रभाव हो उन दिनों संजीवनी का प्रयोग रोक देना चाहिये अन्यथा उपरोक्त परिणाम की आशंका बनी रहती है।

इस रोग के लिये सर्वोत्तम औषधि जंगली केले के बीज जो छोटे करील फलों की शक्ल के गोल होते हैं और पूरे केले में गूदा स्वल्प व बीज सीताफल के समान होते हैं उन्हें पानी से धोकर साफ करके सुखालें और १-१ रत्ती कदली बीज चूर्ण शहद में २-३ बार दिन भर में देवें, साथ ही रोगी को व उसकी शैया को इन्हीं कदली बीजों की धूनी से धूपित करें। भोजन में अवस्थानुसार कुछ भी पथ्य नमक रहित देवें या केवल रोटी और गुड़ खाने को दें बड़ी जल्दी रोग का समुचित रूप से शमन हो जाता है।

फक्करोग या बालशोष-

एक और जटिल रोग का जिक्र भी करना चाहूँगा जो बालकों में ही प्रमुखतया पाया जाता है, वह है फक्क-रोग यानी बालशोष (सूखिया)। इसके लिए आयुर्वेदिक उपचार सभी विज्ञ चिकित्सक करते हैं पर यहां एक अति दुर्गमता से प्राप्त संन्यासी योग चिकित्सक समाज के हेतु प्रदर्शित करता हूँ। पर इसे कई चिकित्सक हिंसा जानकर कर नहीं पायेंगे मैं यह भी जानता हूँ, किन्तु अति विश्वसनीय योग है। बालक को प्रातःकाल ही १ मक्खी (मक्षिका) पकड़कर उसके पंख और टांगें निकाल कर शेष भाग को शर्बत में घोटकर पिलादें और इसका प्रयोग तब तक करते रहें जब तक बालक को औषधि के बाद वमन न हो जाय; वमन होने के बाद यह योग देना आवश्यक नहीं है। प्रायः अधिक से अधिक रुग्ण बालक केवल तीन या चार दिन ही औषधि पचा पाता है इस क्रिया को गुप्त रूप से रोगी के घर वालों के समक्ष न किया जाना ही हितकारी है। चाहें तो इसके फलस्वरूप आमदनी की राशि को दातव्य रूप में व्यय करें ताकि किसी प्रकार की ग्लानि मन में न रहे वैसे रोजाना, न जानें कितनी मक्खियां जाने अनजाने मरती रहती हैं। अतः चिकित्सक को प्रत्येक कीटनाशक उपाय को करने की क्षमता एवं सामर्थ्य है फिर आमिष वस्तुओं का योग आधुनिक औषधियों में रहता ही है। और आयुर्वेद में आमिष योग भी कुछ कम प्रमाण में नहीं है ऐसा चिकित्सकगण जानते ही हैं। ★

कविराज श्री वी. एस. प्रेमी शास्त्री एम. ए. एम. एस. आयुर्वेदाचार्य
प्रोफेसर—आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बिया कालेज तथा इन्चार्ज अस्पताल आयुर्वेदिक विभाग
करौलबाग, नई दिल्ली-५

शिफा-उल्-मुल्क, स्वातन्त्र्य सेनानी हकीम अजमलखां ने करौल बाग में आयुर्वेद तथा यूनानी तिब्ब का एक विशाल महाविद्यालय नई दिल्ली में स्थापित कर अमर कीर्ति अर्जित की जो आज दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। यहीं पर आयुर्वेद विभाग में श्री प्रेमी जी प्रोफेसर पद को अलंकृत करते हैं। आप धन्वन्तरि कार्यालय रूप परिवार के अनन्यतम घटकों में रहते आये हैं और अनेक बार उत्तम आयुर्वेदीय साहित्य के लेखन सम्पादनादि से वैद्य समाज को चित्तानुरञ्जन करते आये हैं। आज कल आयुर्वेद कालेजों में जो वातावरण है उसके कारण साहित्यिक योग दान केवल वही कर पाते हैं जिनमें जीवट और अनुभव दोनों हैं शेष अपने जीवन का यापन ही यथा तथा किया करते हैं। प्रेमी जी ने प्रसिद्ध बाल रोगों पर अपनी लेखनी से निःसृत सुधा विन्दुओं को सुधानिधि रूप अमृत कलश में टपकाया है।

— र० प्र० त्रि०

१. ग्रह व्यापत्:—

सुश्रुत तथा प्राचीन ग्रन्थ काश्यप संहिता एवं रावण कृत बालतंत्र आदि में शिशुओं के ग्रहों से पीड़ित होने का वर्णन मिलता है। इन ग्रहों के प्रभाव को दूर करने के लिए सर्व प्रथम घर की स्वच्छता माता और शिशु की शुद्धता तथा जल वायु की पवित्रता परम आवश्यक है। प्रायः ग्रहों का आवेश माता के दूषित वातावरण में रहने दूषित दूध आदि के प्रयोग काल में ही होता है। यहां पर एक अनुभूत प्रयोग सभी ग्रहों के निवारणार्थ प्रस्तुत है:—

कुमार मंगल योग—

वच, ब्राह्मी, छोटी पीपल, कूठमीठा, शंख पुष्पी, द्राक्षा, सोंठ, जीरा, कचूर, तुलसी, नागरमोथा, छोटी इलायची, जटामांसी, पोहकर मूल, गजपीपल, सरसों।

विधि—ऊपर लिखे इन सोलह द्रव्यों को समभाग लेकर कूटपीसकर कपड़छान करलें। फिर छोटी कटेरी, सुगन्धवाला, मोचरस और बेलगिरी इन सबको चार-चार तोला लेकर अस्सी तोला पानी में पकाकर चालीस तोला शेप बचालें और उसको छानकर खरल में उपरोक्त वस्त्र पूत चूर्ण में भावना देवें। घन हो जाने पर एक-एक रत्ती की गोलियां बनालें और सुखालें। ये गोलियां रोगानुसार और बालक की आयु के अनुसार आधी से लेकर दो गोली तक माता के दूध में, गोदुग्ध में, या पानी में घोलकर

पिलावें। इस औषधि का तत्काल प्रभाव होता है और सभी प्रकार के ग्रहों का दोष दूर हो जाता है। बालक का बल व वर्ण बढ़ता है।

विशेष वक्तव्य—

यदि उक्त प्रयोग में विशेष शुद्धि वाला पारद एक तोला को तीन सेर कसोंदी का ताजा स्वरस पिलाकर कज्जली बना कर उसमें एक माशा अभ्रक सत्वभस्म भी मिला दी जाय तो यह योग बालकों को स्मृतिमान्, बुद्धिमान् मेधावी सर्व रोग निर्मुक्त बलिष्ठ और प्रसन्न चित्त बना देता है।

२—शुष्ककास (कालीखांसी) (Whooping cough)

इसको कुकुर खांसी भी कहते हैं। यह वात प्रधान त्रिदोषज कास है प्रायः दस वर्ष की आयु तक के बालकों को यह खांसी हुआ करती है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान वेत्ता इस रोग का मूल कारण 'बेसिलस पर्टयुसिस' नाम के जीवाणु को मानते हैं। इस रोग पर निम्न लिखित प्रयोग शत प्रतिशत सफल है—

शुद्ध टंकण, शुद्ध नरसार, जवाखार, पिप्पली चूर्ण, गोदन्ती भस्म, सतगिलोय, अभ्रक भस्म, चन्द्रामृतरस, मयूर पिच्छ भस्म, छोटी कटेरी के फूल, वांसा के फूल, लक्ष्मी विलास रस, लवंगादि वटी, प्रवाल पिष्टी।

विधि—उपरोक्त चौदह द्रव्यों को समभाग लेकर कूटपीस कर मुलहठी, बड़ी एला, द्राक्षा, सौंफ, बहेड़ा, और काकड़ासिंगी इन छः औषधियों को चार-चार तोला लेकर यवकुट करके सौ तोला पानी मे पकावें और पचास तोला जल शेष रह जाने पर उतार कर छान लें। तथा उपरोक्त चौदह द्रव्यों के चूर्ण में भावना देवें। एक एक रत्ती की गोलियां बनालें। एक-एक गोली दिन में चार-बार और रात्रि में तीन बार शर्बत बनफ्सा में मिला कर चटावें। उससे काली खांसी, तो नष्ट होती ही है साथ में यदि काली खांसी के कारण किसी बालक को पक्षाघात बाधिर्य, आन्त्रवृद्धि, गुदभ्रंश, न्यूमोनियां, फुफ्फुसावरणशोथ, श्वास प्रणाली का विस्तार (Bronchiectasis) कर्णशूल, कर्णस्राव, वमन, प्रवाहिका और क्षय में भी पूर्ण लाभ होता है।

३. शैशवीय अंगाघात—

आयुर्वेद में इस रोग को वातव्याधि के अन्तर्गत माना है। यह रोग एक अङ्ग के निष्क्रिय होने अथवा क्षीण होने के रूप में पाया जाता है। इसमें दूषित कफ एवं पित्त सहसा ही वायु स्रोतों को अवरुद्ध कर देते हैं। पश्चिमी चिकित्सक इसको Acute Anterior Poliomyelitis, अथवा Infantile Paralysis अर्थात् पोलियो कहते हैं। और इसका मूलकारण एक स्यन्दनशील जीवाणु विशेष माना जाता है, यह रोग प्रायः दस वर्ष से पूर्वतक आयु के बालकों में मिलता है। इस रोग की निम्न चिकित्सा शत प्रतिशत सफल है :—

शिशुमित्र (अ-भाग) खाने के लिए—

वातकुलान्तकरस २ माशा, महायोगराजगुग्गुल १½ माशा, शुद्ध विषतिन्दुक १ माशा, रसराज रस आधा माशा, शृङ्ग भस्म आधा माशा, मुक्तापिष्टी ६ रत्ती, वृ० वात चिन्तामणि ४ रत्ती, कस्तूरी २ रत्ती।

विधि—इन आठों द्रव्यों को एक साथ मिश्रित करके रास्ना और दशमूल दोनों ही दस-दस तोला लेकर सौ तोला पानी में पकावें। पचास तोला शेष रहने पर उतार लें और खरल में घुटाई करें। आधा रत्ती की गोलिया बनालें और लहसुन एक सेर कूट कर एक रोटी बनालें। उस रोटी पर इन गोलियों को रखकर धूप में सुखालें। प्रति दिन प्रातः सायं एक-एक गोली रास्नासप्तक क्वाथ से देवें। इसके सेवन से विविध प्रकार के उपद्रवों से युक्त भी पोलियो अवश्य नष्ट होता है।

(ब-भाग) मालिश के लिये—

प्रातः-महानारायण तैल का प्रयोग करें।

साय-महामाष तैल २ तोला,

शतावरी तैल १ तोला,

महाराज प्रसारणी तैल ३ तोला कुल ६ तोला

इन तीनों तैलों को मिलाकर सायंकाल चार बजे तक मालिश कर देनी चाहिए। चार बजे शाम के बाद नहीं।

(स-भाग) परिषेचन—

मालिश करने के तीस मिनट पश्चात् निर्गुण्डी रास्ना और एरण्ड के पत्तों का काढ़ा बनालें। इतना शीतल कर

कि वह नाम मात्र का गरम प्रतीत हो । अब उस क्वाथ में उस अङ्ग को डुबोदें, जिस पर मालिश की है । पन्द्रह मिनिट के बाद तौलिये से पौछकर ऊनी कपड़ा पहना दें या लपेट दे और तीन घण्टे बाद खोल दें ।

विशेष वक्तव्य—

यदि यह रोग बालक को उसके माता-पिता के उपदंश रोग के कारण हुआ हो तो भोजन मे नमक बन्द कर दें । और तालसिन्दूर आधा चावल भर द्राक्षा में मिला कर खिलावें । यह हमारा शत प्रतिशत अनुभूत योग है । धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ को चाहिए जनता के हितार्थ इसे बनाकर तैयार रक्खें ।

४. तुतलाना—

यह रोग हकलाना भी कहलाता है । इसी का अगला स्वरूप गूगापन भी होता है । यह रोग मानसिक एवं शारीरिक दोनों ही प्रकार के प्रकोप से होता है । अतः इसकी चिकित्सा में कुछ समय अवश्य लगता है, किन्तु पूर्ण लाभ निश्चित है । यहां पर एक प्रयोग बहुत ही उत्तम दिया जा रहा है जो कि न केवल तुतलाना आदि को नष्ट करता है, अपि तु मिट्टी खाना नाखून चबाना, अगूंठा चूसना, सिर को टेढ़ा रखना या हिलाते रहना, नींद में बड़बड़ाना, नीद में सोते-सोते ही उठकर चल देना लिंगेन्द्रिय को पकड़ते रहना, दांत किर्टाकटाना, नीद में चौक पड़ना आदि रोग भी इस प्रयोग से समूल नष्ट हो जाते हैं । प्रयोग निम्न प्रकार से है:—

वाणी विलास—

सुर्वण भस्म ४ रत्ती, वचाचूर्ण १ माशा, शंखपुष्पी २ माशा, कूठ मीठा १ माशा, ब्राह्मी चूर्ण १ माशा, पंचकोल चूर्ण १ माशा,आम की गुठली २ माशा, छोटी पीपल आधा माशा, जामुन की गुठली १ माशा, बेल का गूदा ४ माशा, अतीस चूर्ण १ माशा, सुगन्ध बाला २ माशा नागरमोथा चूर्ण १ माशा, कटेरी के फल २ माशा, बड़ी हरड़ का छिलका १ माशा, मुलहठी चूर्ण २ माशा ।

विधि—इन सोलह द्रव्यों को कूट पीस कर मिश्रित करलें । और फिर सिंघाड़ा द्राक्षा, कसेरू, गोखरू, भांगरा दारु, हलदी, इन्द्रजौ, काकड़ासिंगी, लोध्र, बड़ी कटेरी, सौंफ गजपीपल, नीलोफर, रसौत, मोचरस, इन पन्द्रह द्रव्यों को १-१ तोला लेकर सौ तोला पानी में क्वाथ करें और ३५ तोला के लगभग शेष रहने पर उतार कर शीतल करके ऊपर वाली औषधियों के चूर्ण में भावना देवें । ६-६ चावल भर मात्रा की गोलियां बनालें और बड़ के या ढाक के पत्तों पर रख, कर सुखालें । १-१ गोली प्रातः सायं माता के दूध से, पानी से, चाय से, अंगूरों के रस से सेब के रस से या आंवले के रस से सेवन करावें ।

विशेष वक्तव्य—

इस प्रयोग से बालकों के ज्वर, वमन, दूध उलट देना अतीसार, कोई सा भी और कैसा भी, कास,हिक्का, प्यास सिर गरम रहना, पसली चलना, सूखा आदि में भी पूर्ण लाभ पहुँचता ।

५. कर्णस्राव—

यह रोग नया या पुराना अनेक बालकों में पाया जाता है । पुराने कर्ण स्राव को (Chronic otrrhoea) कहते हैं । यह रोग प्रायः प्रबल मध्यकर्णशोथ Actute otitis-media के कारण होता है । अथवा क्षयजन्य शंखकूट पाक (Mastoiditis) के कारण से भी हो सकता है । उपेक्षा करने से नया कर्णस्राव ही जीर्ण कर्णस्राव बन जाता है । और इसकी भी उपेक्षा की जाए तो कर्ण शष्कुलीपाक बाधिर्य, गले के रोग, सिर के रोग, कर्णास्थिक्षय आदि रोग भी हो जाते हैं । इसकी चिकित्सा निम्न प्रकार से की जानी चाहिए :—

(१) कर्णस्रावरिपु (अ-भाग)—

शु० फिटकरी २ माशा, कौड़ी भस्म २ माशा नीम के पत्र २ माशा, शम्बूक भस्म २ माशा, कपित्थचूर्ण २ माशा, लाख चूर्ण ४ रत्ती, रसौत चूर्ण १ माशा, जामुन गुठली१ माशा, आम गुठली १ माशा, तेंदू फल चूर्ण २ माशा, हरड़ का छिलका ४ माशा, लोध चूर्ण २ माशा, मुलैठी चूर्ण १ माशा, धाय के फूल ४ माशा ।

विधि—उपरोक्त द्रव्यों को कूटपीस छानकर मिश्रित करलें, और फिर मंजीठ, प्रियंगु, पाठा, पृष्ठपर्णी, आंवला महुआ, और रसौत इनको २-२ तोला लेकर सौ तोला पानी में क्वाथ करें । चतुर्थांश शेष उतारकर भावना देवें १-१ रत्ती की गोलियां बनालें । १-१ गोली प्रातः सायं मंजिष्ठादि क्वाथ, अथवा अर्क उशवा अथवा अर्क चिरायता या अर्क मुंडी या ताजा पानी से ।

कुछ प्रमुख बालरोग और मेरा अनुभव

ले०– कविराज श्री बंसरीलाल जी साहनी आयुर्वेदाचार्य भू० पु० प्रोफेसर
आयुर्वेदिक कालेज, नई दिल्ली।

'यह योग मेरे निजी अनुभव के हैं, अतः मेरा उन पर पूर्णविश्वास है। इसलिये में यह कह सकता हूं कि जो भी इनका प्रयोग करेगा उसे अवश्य लाभ होगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।"

इन दृढ़ शब्दों में बालशोष विषयक अनुभवों को सुधानिधि के पृष्ठों पर संजोने वाले श्री बंसरीलाल साहनी दिल्ली के आयुर्वेद समाज की एक अजोड़ विभूति हैं। जो मानो भगवान् श्री कृष्ण की सर्व रसमयी बांसुरी से उद्भूत परम आकर्षक रागों के मूर्तिमन्त प्रतीक हैं— "ज्यों-ज्यों लिखता जा रहा हूं, स्मृति रवड़ की तरह अधिक से अधिक फैलती जा रही है कितना लिखता जाऊं कोई सीमा नहीं दिखाई देती। अन्त में समय ने भी इन्कार कर दिया है। और मुझे भी श्री रमणरेती महावन (मथुरा) जाने की प्रेरणा हुई है। श्रीकृष्ण मुखारविन्द से अतिशय प्रीति के द्योतक हैं ये वाक्य। वैद्य बाबा के बस्ते के प्रकाशक साहनी जी की कृपाकोर से प्राप्त ये अक्षर कण निस्सन्देह अक्षर हैं परमात्मा उन्हें अनन्तकाल तक आयुर्वेद द्वारा समाजकल्याण में तत्पर रखे।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

बालशोष

जब हम १९४३ में कैथल में थे तब श्री १०८ स्वामी बाबा भीजनाथ जी से अपना घनिष्ठ परिचय हो गया कि मैं प्रायः उनके आश्रम में ही दिखाई देता था। उनकी चिकित्सा विधि परम्परागत सिद्धों की चिकित्सा प्रणाली थी। वे अनेक रोगों के सिद्धहस्त तथा सफल चिकित्सक थे। संग्रहणी तो एक ही दिन में ठीक करना उनसे ही मैंने सीखा था। देखें अनुभूत चर्चा द्वितीय भाग संग्रहणी रोग चिकित्सा) फिरंग, उपदंश तथा कुष्ठ आदि कठिन साध्य रोगों में उनकी ख्याति बहुत थी। बालकों के न्यूमोनियां की जो चिकित्सा वह करते थे, वह एक अद्भुत थी, उसका वर्णन आगे बाल रोगों में करेंगे। इसी प्रकार बाल शोष पर भी उनके पास एक ही औषधि थी और वह भी अव्यर्थ रामबाण दिव्य महौषधि थी। यह अनुभूत औषधि का वर्णन हम 'वैद्य बाबा का बस्ता' में कर चुके है। चूंकि इस समय 'वैद्य बाबा का बस्ता' के दों संस्करण पूर्णतया समाप्त हो चुके हैं, अब आगे कागज के भाव सुधरने की आशा लगे तब ही उसे फिर छपवाया जा सकता है। उसके अभाव में उचित यही है कि उस योग को पुनः पाठकों के सामने रख दिया जाये।

१. योग के घटक द्रव्य—१ चने की दाल २. गूलर का दूध।

निर्माण विधि— एक पात्र में चने की दाल डाल कर उस पर इतना गूलर का दूध डालें कि दाल तर होजाय। जब दाल फूल जाय तो पीस कर चने प्रमाण गोलियां बना ल।

मात्रा—१ गोली। प्रतिदिन-प्रातः काल।

अनुपानः—गधी का दूध।

गुण-बालशोष जिसे सूखा वा मसान आदि भी कहते हैं एक सप्ताह के प्रयोग से ही ठीक हो जाता हो। (माता के दूध का दोष हो तो जल में डालकर परीक्षण करलें— दूध जल में सर्वथा विलीन हो जाये तो ठीक है, यदि डूब जाय तो दूध कफ दोष से दूषित और भारी है इसे बालक पचा नहीं सकता। इसे तुरन्त छुड़ा देना चाहिये ऐसा ही

भारी दूध सगर्भा स्त्रियों के होता है वह दूध पीने से भी तत्सदृश ही बालकों को जो रोग हो जाता है उसे शास्त्र में पारिगर्भिक कहा है और जो दूध पानी पर तैरने लगता है वह वात से दूषित होता है। उसके पान करने से बालकों को फक्क रोग की प्राप्ति होती है। शास्त्र में यह दोनों रोग निदान सम्प्राप्ति आदि से सर्वथा भिन्न रोग हैं परन्तु चिकित्सा में किसी किसी अंश में साम्यता देखी जाती है। यथा अजीर्ण नाश का उपाय, आम के संग्रह का नाश तदन्तर फलप्रद औषधि का सेवन कराना।

श्री स्वामी जी के पास इस रोग के लिये केवल यही एक योग था जिससे उन्हें पूर्णतया सिद्धि हो रही थी। जब हम १६४७ के पश्चात् मुरादाबाद गये, तब हमें इस सफल योग के प्रयोग करने में भी कठिनाई यह हुई कि गधी का का दूध कोई दूसरे को देता ही नहीं था। उनकी मान्यता थी कि शोषयुक्त बालक को गधी का दूध देते हैं तो बालक तो ठीक हो जायेगा परन्तु गधी इसी रोग से आक्रान्त हो जायगी। अतः हमें किन्हीं दूसरे योगों का अन्वेषण करना पड़ा। अनेक योग सामने बहुत से सफल रहे और कुछ थोड़ी ही सफलता दिखा सके। परन्तु अन्तिम अन्वेषण हमें स्वतः ही प्राप्त हो गया। एक बालशोषयुक्त रोगी को उसके मातापिता हमारे पास जब लाये हमने देखते ही कह दिया कि इसे सूखा हो गया। सुनते ही वह कहने लगे कि हमें रोग का ज्ञान नहीं इसका योग तो हमारे पास है यदि आप बनवा दें तो हम उसी का प्रयोग करेंगे।

वह योग इस प्रकार है:—

बालशोषान्तक-I

२. (१) मच्छली का आटा अथवा अनार का छिलका ४० तोले, (२) जावित्री ५ तोले, (३) विधारा ५ तोले (४) नागरमोथा ५ तोले, (५) अश्वगन्धा १० तोले, (६) सेमर मूसली ५ तोले, (७) काकड़ा सिंगी ५ तोले, (८) छोटी इलायची २ तोले, (६) विडंग २ तोले, (१०) मुलहठी ५ तोले, (११) सोंफ ५ तोले (१२) अतीस मीठी ५ तोले (१३) अतीस कड़वी २ तोले (१४) सोहागा ५ तोले, (१५) अजा यकृत् २ तोले, अथवा कच्छपास्थिभस्म २ तोले। शेष औषधियां हमने तैयार करवा दीं केवल अजा यह हमारे बस का नहीं था। यह उसने स्वयं बनाया था अजायकृत् को अत्यन्त सूक्ष्म कत्तर कर घी में इतना भूना कि चूर्ण हो गया। इस चूर्ण में शेष चूर्ण को मिलाकर रख लिया। तीन ही दिन के प्रयोग से बालक को लाभ होने लगा। थोड़े दिनों में ही बालक सर्वथा स्वस्थ हो गया इसमें अजा यकृत् वैष्णवों के लिये एक कठिन समस्या है। अतः हमारा अन्वेषण फिर भी चलता रहा। यह सम्पूर्ण योग उस एक बाल के लिये तो बहुत अधिक था, इस लिये वह शेष निर्मित औषध मुझे ही दे गये थे। मैंने इसे अनेक रोगियों पर प्रयोग किया है, सर्वथा सिद्ध और सफल योग है। हमने कहा है कि हमारा अन्वेषण फिर भी चलता रहा तब हमें एक और योग मिला जो इस प्रकार है:—

३. **बालशोषान्तक-II** मुक्ता शुक्ति पिष्टी ३ तोला, प्रवाल पिष्टी ३ तोला, गोदन्ती भस्म ३ तोला, जहर मोहरा खताई पिष्टी आधा तोला, वंशलोचन आधा तो. स्वर्ण-माक्षिक भस्म ३ माशे, छोटी इलायची का बीज १ तो., (भावनार्थ, हंसराज स्वरस १ दिन, अनार के रस से ११ दिन मर्दन कर गोलियां ४-४ रत्ती की बनावें) हमने बिना भावना के ही रख लिया है। मधु घृत से दिन में २ बार ४-४ रत्ती तक देते हैं। कभी-कभी इससे पहले वाले योग में मिला कर भी देते हैं। अनुपान मधु/घृत।

यह बालशोष, अस्थिवक्रता (फक्क) गुदपाक आदि रोगों का सत्वर नाश करता है।

५. कच्छपास्थि की अन्तर्धूम भस्म २ रत्ती दिन में तीन बार मधु घृत से देने से बहुत लाभ अनुभव में आया है। यह सरल और सबसे उत्तम निरापद योग है।

५. योग—वटजटा १ भाग, रुद्राक्ष असली १ भाग, भांग का चूर्ण १ भाग, तीनों को सूक्ष्म चूर्ण कर के रखलें।

मात्रा ३-३ रत्ती दिन में तीन चार बार। (१ माशा की मात्रा केवल प्रातःकाल दिन में एक बार भी देते हैं,) अनुपान—जल, गो दुग्ध वा अजादुग्ध अथवा माता के दुग्ध से दें।

गुण —शोष रोग से पीड़ित बालक इससे पुष्ट होता है। जिस स्त्री के बालक शोष रोग से ग्रस्त होकर मर-मर जाते हों, वह स्त्री भी गर्भावस्था में ही इस औषधि का निरन्तर प्रयोग करती रहे, तो बालक दीर्घायु होकर जीवित रहते हैं।

६. रेवन्द खताई—१ भाग, दरियाई नारियल १ भाग माजू १ भाग, हल्दी १ भाग, छुहारा १ भाग, बादाम गिरी १ भाग, जहर मोहरा १ भाग, रसौत १ भाग, सबको अर्क गुलाब अथवा साधारण जल में मर्दन कर रख लें।

मात्रा—२रत्ती, दिन में तीन चार बार दें। अनुपान मधु अथवा अर्क गुलाब।

गुण—इसके प्रयोग से बालकों के अनेक रोगों का नाश होता है। निरन्तर सेवन कराते रहने से भावी रोगों का भय नहीं रहता।

७. योग—दरियाई नारियल १ मा., पत्थर बेर (संगयहूद) १ मा.। सूक्ष्म चूर्ण करलें।

मात्रा १ रत्ती दिन में चार बार। अनुपान—साधारण जल से दें।

गुण—बालशोष आदि भयंकर विकार भी शान्त हो जाते हैं।

८. योग—चन्दन १ भाग, कासनी १ भाग, गंगेरन १ भाग, गुलाब के फूलों के रस में भली प्रकार मर्दन कर मटर प्रमाण गोलियां बना लें।

मात्रा—१ गोली प्रतिदिन ३-४ बार। अनुपान—जल से दें। अथवा माता के दूध से दें।

गुण—बालशोष ठीक होता है। (माता को गर्भावस्था में ही देते रहने से गर्भस्राव गर्भपात आदि का कोई भय नहीं रहता तथा प्रसव के पश्चात् भी स्वस्थ रहती है तथा जन्म जात शिशु भी बाल शोष आदि भयंकर रोगों से ग्रस्त नहीं होता।

९—योग—नीम की निम्बोली की गिरी ५ तोले काली मरिच २½ तोले, सहदेवी २½ तोले, सब मिलाकर मरिच प्रमाण गोलियां बनावें।

मात्रा—१-२ गोली दिन में तीन चार बार दें।

अनुपान—साधारण जल।

गुण—पूर्ववत्।

१०. योग—हरड़ १ भाग, आमला १ भाग, पिप्पली १ भाग, मिश्र मुरारमक् १ भाग, सबको कूटकर मिलाकर तथा पुनः मर्दन कर रख लें।

मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—१ माशा पावभर जल में पकावें, जब १ छटांक रह जावे तब उतारकर रख लें। इसमें से २-३ माशा उतार कर रखलें। इसमें से २-३ माशा दिन में चार-चार दें।

गुण—इसके प्रयोग से—कास, श्वास, ज्वर, पसली की पीड़ा तथा बालशोषादि रोग नष्ट होते हैं।

अनेक अन्य शास्त्रीय योगों का भी अनुभव किया गया है यथा—अरविन्दासव+खांड, आधी चम्मच से १ चम्मच तक बिना जल मिलाये अथवा जल मिश्रित ऋतु के अनुसार, लाक्षादि महालाक्षादि तैल बहुत अच्छा काम करते हैं।

अपने बच्चों में जब कभी थोड़ी निर्बलता देखते हैं तब हम बालशोषान्तक (नं. १) अजा यकृत् रस या खांड से मर्दन संस्कार कर चटा देते हैं। खांड मीठी होने से बालक प्रसन्नता से चाट जाता है उसे यह अनुभव ही नहीं होता कि मैं औषधि खा रहा हूं। वह तो खांड ही खाता है। इससे हमारा भी लक्ष्य पूरा हो जाता है और बालक भावी रोगों से बच जाता है।

इन सब योगों की विस्तृत व्याख्या अनुभव सहित यहां नहीं लिख सके, लेख बहुत बढ़ गया है और समय भी थोड़ा है। फिर कभी अवसर मिलने पर पाठकों की सेवा करेंगे।

बाल मुखपाक—

बालक मुखपाक प्रायः माता के दुग्ध दोष से ही होता है, अतः सबसे पहले माता की चिकित्सा करनी चाहिये। मुखपाक कभी-कभी पित्त की प्रधानता से होता है, जब मुख में रक्तवर्ण के छाले होते हैं तब माता को विरेचन देकर पित्त निकाल देनी चाहिये। बालक के मुख में भी बकरी के दूध की धारें लगावें।

१. योग—पलाशपत्र, छोटी इलायची और मिश्री उचित मात्रा में मिलाकर बालक को मधु के साथ चटावें तो भी मुखपाक में लाभ होगा। माता भी इन योग का प्रयोग कर सकती है। यदि मुखपाक अजीर्ण से हो और कफ प्रधान हो तो—

२. माता को अजीर्णनाशक औषधियों का प्रयोग करना चाहिये—

योग—लशुनादि—१ तोला, सतगिलोय ...

६ माशे, कर्पूर १ माशा, शीतल चीनी का चूर्ण १ तोला। मिलाकर रख लें।

गुण—यह योग हमने नेत्रों की ज्योति बढ़ाने के लिये बनाया था। एक रुग्णा के यही अजीर्णजन्य छाले थे, हमारी इच्छा थी कि उसे केवल समुद्रझाग का सेवन करवाया जाय। परन्तु उस समय समुद्रझाग हमारे पास था नहीं। हमने यही योग देना उचित समझा, क्योंकि समुद्रझाग के अतिरिक्त दूसरे द्रव्य भी कोई हानिकर नहीं। यशदफूला बाजारी था इस अन्त: सेवन से संकोच किया गया। केवल मुख में अवधूलनार्थ प्रयोग किया। आश्चर्यजनक लाभ हुआ। तब से अनेकों पर इसका प्रयोग किया। सफलता ही मिली।

बालकों में कुष्ठ—

भारतपाक विभाजन के समय मार्च १९४७ में हम लाहौर छोड़कर कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) में चले गये थे। वहां हमने वैद्य श्री बाबूराम जी के सहयोग से एक सराय किराये पर ले ली थी और अपने सब मित्रों, सम्बन्धियों, मिलने वालों को सूचना दे दी थी। तदनुसार जो भी वहां आया उसे स्थान दे दिया जाता था। इस प्रकार उस सराय में एक विशाल जनसमुदाय एकत्रित हो गया था। उन सबकी चिकित्सा का उत्तरदायित्व हम पर ही आ गया था। दैवात् एक बालिका का जन्म भी उसी सराय में हो गया। नवजात बालिका यद्यपि देखने में स्वस्थ थी परन्तु शरीर से गली हुई थी। जिन सैन्टरों में उन्होंने पहले प्रबन्ध किया था, उन स्थानों पर उन्हें खाने को न जाने किन-किन औषधियों का प्रयोग करवाया गया था जिनके प्रभाव से बालिका का शरीर गल गया था। शास्त्र में इसे कुष्ठरोग ही कहेंगे। लोक में सरल शब्द गलना कहते हैं। ऐसी बालिका को देखकर ही सारे परिवार वाले चकित तथा चिन्तित हो गये। उनका चिन्ता करना ठीक भी था। क्योंकि ऐसे बालक प्रायः अल्पायु होते हैं—जीवित नहीं रहते। प्रसवकालिक अशौच समाप्त होने पर उसकी चिकित्सा की गई। प्रभु की प्रेरणा से उस समय जो उपाय हमसे बन पड़ा तदनुसार चिकित्सा करनी आरम्भ कर दी।

योग—रसकर्पूर १ भाग, लवङ्गचूर्ण ४ भाग, दोनों को अत्यन्त सूक्ष्म मर्दन कर के शीशी में रख लिया।

मात्रा—२ रत्ती प्रातः, २ रत्ती सायम्।

अनुपान—हलवा।

पथ्य—केवल बेसन अथवा चने की घृत मिश्रित रोटी, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया।

अपथ्य—लवण का पूर्णतया त्याग कराया। रोटी मधु, खांड से दी गई। बालिका को कोई औषधि नहीं दी केवल बालिका की माता को ही ४० दिन तक इस औषधि का सेवन कराया। बालिका और उसकी माता दोनों सर्वथा स्वस्थ हो गये।

क्षीण मस्तिष्क—

श्री कैलाशचन्द्र जी सेठी एक सरकारी कार्यालय में स्टेनोग्राफर लगे हुए हैं। उन्होंने एक बार कहा कि मेरी जिह्वा कुछ थथलाती है। जब साहब से डिक्टेशन लेने जाता हूं और जब मुझे कुछ पूछना पड़ता है तब जिह्वा अटकती है, उस समय मुझे लज्जित होना पड़ता है, क्या इसकी कोई चिकित्सा है। तब उनको औषधि दी गई और वह स्वस्थ हो गये। यह देखकर उन्होंने अपनी छोटी सी ५ वर्ष की बालिका को दिखाया—जिसके मुख से लार टपक रही थी, मस्तिष्क बहुत छोटा था, बोलना लगभग असम्भव सा था। जो कुछ बोलती थी वह भी न बोलने के समान ही था। भोजन की रुचि ही नहीं करती थी। उसकी चिकित्सा की गई। यद्यपि शिर का छोटापन दूर तो नहीं हुआ परन्तु शेष लक्षण सब लोप हो गए हैं। अब वह लगभग १०वीं श्रेणी में पढ़ती है। सब कुछ खाती पीती, हंसती कूदती है और सब प्रकार से बोल लेती है। उसकी चिकित्सा इस प्रकार की गई थी। ज्योतिष्मती + बादाम की गिरी दोनों समभाग को यन्त्र से निपीड़न कर तैल निकाल कर बताशे में रखकर दिन में एक बार देकर ऊपर से दूध पिलावें। मात्रा क्रमशः एक बूंद से १५ बूंद तक बढ़ावें फिर १५ दिन तक १५ बूंद और फिर १-१ बूंद कम करके औषधि का त्याग करें। और फिर दूसरी बार इसी कल्प को करें। तथा इसी प्रकार तब तक करें जब तक रोग की पूर्णतया निवृत्ति हो जाय।

भोजन के पश्चात्—सारस्वतारिष्ट दिया गया।

शिशुरोग प्रतिबन्धक उपाय—

इन्हीं सेठी जी के एक और बालक होने वाला था आपको मेरी चिकित्सा पर श्रद्धा तो हो ही चुकी थी।

अब आप पूछने लगेंगे कि पहले ही आप कोई ऐसा उपाय बतायें कि बालक स्वस्थ रहे। मैंने गर्भावस्था में ही आपकी धर्मपत्नी को गर्भपाल रस का सेवन आरम्भ कर दिया। पुत्र उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही मुख साफ कर मधु में स्वर्ण-भस्म, ब्राह्मी, वचा, कूठ शंख, तथा थोड़ा घृत मिलाकर चटा दिया और फिर कुछ दिन तक यही क्रम चलता रहा। सेठ जी से उस बालक की बुद्धि, प्रतिभा, मेधा का वर्णन सुनकर आश्चर्य हुआ। बड़ा धैर्यवान्, बलवान्, हृष्ट-पुष्ट बालक है, इसके अतिरिक्त दिव्य औषधि के सेवन से अनेक अन्य दिव्य गुणों के प्रादुर्भाव होने की भी सम्भावना है। जिनमें से मधुर वचन, पितृभक्ति आदि गुण अभी से दिखाई देने लगे। बालक स्वस्थ ही रहता है। कभी थोड़े माता-पिता के कुपथ्य के कारण कुपथ्य कर ले तो ज्वर हो जाता है तब अत्यन्त सरल औषधि से एक आध दिन में दूर हो जाता है।

बालकों की कुकुरकास—

इसके निदान के विषय में आप अनेक मत इस अंक के पहले पृष्ठों में देख चुके हैं, अतः हम उनका पिष्ट-पेषण न कर एक विचित्र निदान आपको बताते हैं। आप अवश्य आश्चर्यचकित होंगे, और मेरे कथन पर हँसेंगे जिस प्रकार किसी अवधूत वेषधारी, जड़ परन्तु ब्रह्मज्ञानी पर अबोध बालक हँसते हैं। परन्तु आप भले ही इसकी खिल्ली उड़ायें, मैं तो इसे कहना ही चाहता हूँ क्योंकि मेरा यह सहस्रशः अनुभूत है। बालक को खांसते-खांसते पसलियां दुखने लगती हैं (वात के कारण) मुख लाल हो जाता है (तमक श्वास में जैसे वात की प्रधानता से होती है) और कभी-कभी वमन भी हो जाता है—(ऊर्ध्व वात के प्रकोप से) तब हम अवदवस्यत्वक् चूर्ण (अनुभूत योग चर्चा घृतमिश्रित दूध-चावल की खीर के साथ रात्रि को सोते समय देते हैं। पहले दिन से ही लाभ होने लगता है। साथ ही दिन में ३-४ बार कपूर वटी (अनुभूत योग चर्चा का योग संख्या ४८३) (केवल चूर्ण मात्र मधु से) देते रहते हैं। इससे अवश्य लाभ होता है। कपोलवटी में गुड़ मिलाकर वटियां बनाने के लिये वहां लिखा है। परन्तु हम अब केवल चूर्ण का ही प्रयोग कर रहे हैं। बड़े-बड़े वैद्यों के पास बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे बहुमूल्य योग हैं, कुछ स्वर्णमुक्तादियुक्त भी होंगे परन्तु मैं तो एक छोटा सा वैद्यों के अनुचरों के दासों का दासानुदास हूँ। अतः इस अमूल्य योग का सदैव प्रयोग करता हूँ। मैं यह कह सकता हूँ कि मेरे पास कास अथवा कुकुरकास की और कोई औषधि ही नहीं, क्योंकि मुझे इसने कभी हताश नहीं किया अतएव मुझे किसी दूसरे योग का मुख देखना ही नहीं पड़ा। श्रद्धा करो और फल प्राप्त करो।

अब हम अनुभूत योग चर्चा के अप्रकाशित भाग से कुछ योग उद्धृत करते हैं:—

१. योग—छोटी पिप्पली जलाकर भस्म कर लें।

मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—मधु से बालकों को चटावें।

गुण—बालकों की सरदी, खांसी, अधिक श्वास का चलना आदि विकार दूर होते हैं।

२. योग—काकड़ासिंगी, अतीस, पिप्पली छोटी, नागरमोथा। सब समान भाग पीस कपड़छानकर पुनः खरल में डालकर मर्दन संस्कार कर रख लें।

मात्रा—२ रत्ती भर, दिन में ३-४ बार।

अनुपान—मधु से चटावें।

गुण—बालकों के ज्वर, अतिसार, कास, श्वास आदि अनेक रोगों का नाश होता है।

३. योग—जायफल ३ माशे, पुराना गला सड़ा नारियल ३ माशे, गिरी बादाम ६ माशे, तीनों को पीसकर बाजरे प्रमाण गोलियां बनाकर लोहे की डिब्बी में बन्द कर रखें।

मात्रा—१ गोली, ताजे पानी से घिसकर पिलावें।

विशेष वचन—१. इससे बालक को वमन विरेचन होंगे. उदर शुद्धि होने पर १-२ बताशे थोड़े पानी से घोलकर पिला दें। इससे चित्त की घबराहट तथा तृषा आदि उपद्रव शान्त हो जायेंगे।

२. हम जयपाल शुद्ध ही प्रयोग करते हैं। देखो अनुभूत योगचर्चा प्रथम भाग।

३. यदि आप चाहते हैं कि कोई उपद्रव भी न हो तो पहले जायफल में १ तोला आमले का चूर्ण मिला लें। फिर कोई उपद्रव नहीं होगा।

गुण—इसके प्रयोग से बालक का पसली रोग अवश्य

डवल निमोनिया भी तुरन्त शान्त होता है। अनेक बार का अनुभूत योग है।

४. योग—कचूर, काली मरिच और नौसादर तीनों सममाग अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर रख लें।

मात्रा—1 माशा अथवा वालक के बलानुसार।

अनुपान शीतल जल से दें।

गुण—इसके सेवन से वालक भावी रोगों से बचे रहते हैं। इससे रक्त की शुद्धि होती है। आम का पाचन होता है। इससे आमाशयजन्य तथा यकृत् प्लीहा के कोई रोग नहीं होते। फोड़ा, फुंसी, आंख का दुखना आदि बाधाएं नहीं होतीं। यह हमारा घरेलू योग है। हमारे घरों में इसे प्राय: प्रयोग किया जाता है। यह 'सेहत' नाम की घुटी हमारे देश में प्रसिद्ध थी उसीका यह संक्षिप्त रूप है। (इस 'सेहत' का योग भी कभी अवसर मिलने पर पाठकों के सामने रखेंगे), इस योग के सेवन करने में वालकों को कुछ सकोच होता है अत: इसकी कल्पना में थोड़ा अन्तर कर लिया जाये तो यह कष्ट भी दूर हो जाता है। यथा—कचूर और काली मरिच का घन क्वाथ कर लें। और नौसादर का जौहर (सत्व) उड़ालें फिर दोनों को मिला गोलियां बना लें। परन्तु याद रहे कि गोलियों से चूर्ण अधिक गुणकारी है।

५. योग—वंशलोचन १ तोला, इलायची छोटी एक तोला, मिश्री २ तोले मिलाकर रख लें।

मात्रा—४ से ८ रत्ती तक।

अनुपान—मक्खन से चटावें।

गुण—नित्यप्रति चटाते रहने से कास, श्वास, ज्वर, उदर रोग, अजीर्ण आदि अनेक रोग समीप तक नहीं आते। यह योग भी पूर्वोक्त योगवत् हमारे देश (पंजाव) की वृद्ध माताओं की सम्पत्ति था। सब वृद्ध माताएं इसे जानती थीं और वालकों को प्रयोग कराती रहती थीं।

६. योग—जायफल, लौंग, जीरा, और टंकणभस्म सब सममाग लें चूर्ण कर रख लें।

मात्रा—१ रत्ती।

अनुपान—मधु तथा खांड मिलाकर चटावें।

गुण—आमातीसार तथा तज्जनित शूल आदि शान्त होते हैं।

७. योग—धाय के फूल, वेलगिरी, धनियां, लोध, इन्द्र जौ नेत्रवाला सममाग लेकर चूर्ण कर रखें।

मात्रा—२ रत्ती।

अनुपान—मधु से दें।

गुण—वालकों का ज्वरातीसार और वमन दूर होता है।

८. योग-अभ्रकभस्म, लोहभस्म, शंखभस्म, स्वर्णमाक्षिकभस्म, सोंठ, कालीमरिच, पिप्पली, पिप्पलामूल, चित्रकमूल, चव्य, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, वड़ी इलायची, नागकेसर, नागरमोथा, कचूर काकड़ासिंगी, कालानमक, सब सममाग पानी में खरल कर २-२ रत्ती की गोलियां बनावें।

मात्रा—१-२ गोली।

अनुपान—उपयुक्त अनुपान से दें। तथा पानी में घिसकर दोनों मसूड़ों में लगावें।

गुण—दांत निकलते समय का ज्वर, अतिसार, आक्षेप आदि दूर होते हैं। तथा दांतों पर मलने से दांत शीघ्र निकल आते हैं।

९. योग—चक्षु, शुद्ध, नीम की पत्ती, रसौत, सब सममाग पीसकर जल से गोलियां बना लें।

मात्रा—१-२ गोली (२ रत्ती भर की) पानी से प्रातःकाल निहार मुख दें।

गुण—इसके नित्य सेवन से वालकों को, रक्तविकार, नेत्र दोष आदि नहीं होते।

१०. योग—शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध गन्धक १ भाग, सोंठ १ भाग, कालीमरिच १ भाग, पिप्पली १ भाग, काकड़ासिंगी १ भाग, अतीस १ भाग, नागरमोथा १ भाग, मोचरस १ भाग, जायफल १ भाग, जावित्री १ भाग, टंकणभस्म १ भाग, छोटी पिप्पली १ भाग, कस्तूरी ½ भाग।

निर्माण विधि—पारा गन्धक की निश्चन्द्र कज्जलि बनाकर, शेष द्रव्यों का अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण मिलाकर मर्दन करें फिर कस्तूरी मिलाकर मर्दन करें और जल के योग से मूंग प्रमाण गोलियां बना लें।

विशेष वचन—१. हम इसे चूर्ण रूप में ही रख लेते हैं। २. थोड़े भाग में कस्तूरी मिला लेते हैं, शेष बिना कस्तूरी के ही रहने देते हैं। क्योंकि साधारण रोगों में

कस्तूरी जैसे बहुमूल्य तथा तीव्र द्रव्यों को देना अनावश्यक ही नहीं कस्तूरी का भी अपव्यय करके अपमान करना है। अतः विशेष अवस्थाओं में प्रयोग करने के लिये कस्तूरी युक्त का प्रयोग करते हैं।)

मात्रा—१ से २ रत्ती। चार-चार घंटे के अन्तर पर दें।

अनुपान—मधु वा मधु+अद्रक का रस वा मधु+अद्रक का रस+पान के पत्तों का रस, पतले दस्त (अतीसार) को बन्द करने के लिये पानी में घिसे जायफल के साथ दें। (हम जायफल का अत्यन्त सूक्ष्म चूर्ण साथ भी मिला देते हैं।)

सावधानी—आमयुक्त अतीसार को इससे रोकने की चेष्टा न करें अन्यथा पेट फूलकर मृत्यु तक की हानि हो सकती है। अतः पहले अतीसार को पकाकर आम रहित कर लें। तब जायफल व अहिफेन युक्त योगों का प्रयोग करें।

गुण—बालकों के लिये अमृत तुल्य गुणकारी है। अनुपान भेद से बालकों के अनेक रोगों को दूर करती है। दांत निकलते समय प्रायः सब विकारों को बड़ी विचित्रता से नाश करती है। साधारणतया स्वस्थ अवस्था में भी मधु से निरन्तर चटाते रहने से बालक हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

११. योग—तवाशीर २ तोले, इलायची छोटी २ तोले, कमल के बीज (कोलडोडे, कमलगट्टा) २ तोले, संगजराहत भस्म (घृत कुमारी में भावना देकर अन्तर्धूम विधि से बनाई हुई) २ तोले, सबको अत्यन्त सूक्ष्म कर मिलाकर रख लें।

गुण—बालकों के मुखपाक में अवधूलन करने से बहुत लाभ होता है।

१२. महातालीसादि चूर्ण—

योग—तालीसपत्र १० तोले, चित्रकमूल १० तोले, हरड़ बड़ी १० तोले, अनारदाना १० तोले, तिन्तड़ीक १० तोले, अजमोदा २½ तोले, गजपिप्पली २½ तोले, धनियां २½ तोले, अजवायन देशी २½ तोले, आक की जड़ २½ तोले, जीरा श्वेत २½ तोले, जायफल २½ तोले, लौंग २½ तोले, तज २½ तोले, पत्रज २½ तोले, छोटी इलायची २½ तोले, मिश्री सबके समान भाग।

मात्रा—२ से ४ रत्ती।

अनुपान—मधु के साथ चटावें। (वंगसेनादि बृहद् ग्रन्थों में इसकी मात्रा १० माशे प्रति दिन तथा अनुपान अजादुग्ध बताया है।)

गुण—बालकों के प्रत्येक रोग में इसका प्रयोग कराते हैं। हमारे औषधालय का यह एक चलता योग है।

१३. योग—अजवायन, सोये के बीज, नागौरी असगन्ध, वायविडंग सब ५-५ तोले, जल ४ सेर अनबुझा चूना ४ तोले, पोदीना का रस २० तोला, खांड ½ सेर।

निर्माण विधि—जल में चूने की डली को डालकर रख दें। डली फूल जायेगी। कुछ देर के पश्चात् डण्डे से खूब हिलाकर रख दें। इसी प्रकार २-२ घंटे के पश्चात् तीन बार करें। फिर रात्रि भर स्थिर होने को छोड़ दें। प्रातः जल नितार कर उसमें अजवायन आदि औषधियों का जौ कुट चूर्ण डालकर पकायें, जब जल चतुर्थांश रह जाये तो उसमें पोदीने का रस मिलाकर तथा खांड मिलाकर शरबत बना लें।

गुण—यह बालकों की पाचन शक्ति को सुधार कर उन्हें पुष्ट करता है।

१४. बालकों का डब्बा रोग-पसली (ब्रांको निमोनियां)—

योग—टंकणभस्म ६ रत्ती, गुनगुने जल से, रोग के बलाबल के अनुसार बार-बार देने से वमन कर रोग भी मिट जाता है। यह शमन चिकित्सा है।

१५. अमलतास का गूदा साधारण जल में पकाकर रात को पिलाने से संचित कफ तथा मल आदि दोष विरेचन द्वारा निकल जाते हैं और रोग शान्त हो जाता है। यह शोधन चिकित्सा है। इससे कनपड़े (Mumps), कफज कर्णशूल, अक्षिशूल, प्रतिश्याय आदि अनेक रोगों का नाश होता है।

शिशु रोगों पर मेरे अनुभव

लेखक-डा० प्रकाशचन्द्र गंगराड़े, B. Sc., D. H. B., D. Pharma,
१३/३३ नार्थ तात्याटोपे नगर भोपाल—३ (म०प्र०)

सत्यं शिवं सुन्दरं के सुखद स्वरूप विद्यारत्न गंगराड़े एक चमत्कारी वक्तव्य के अनूठे उदाहरण हैं जिनकी वाणी में ओज और लेखनी में प्रसाद गुण का प्राचुर्य है होमियोपैथी के उदीयमान लेखक और सिद्ध चिकित्सक तो हैं ही। आपने अपने बाल रोग विषयक अनुभवों से ग्रथित यह लेख शिशुरोग चिकित्सांक में प्रकाशनार्थ भेजा है। आशा है यह पाठकों के लिए पूर्ण उपादेय सिद्ध होगा। —गो० श० गर्ग

शिशुओं के विभिन्न रोगों की होमियोपैथिक औषधियों द्वारा चिकित्सा कर मैंने बहुत सफलता प्राप्त की है। यहां पर उनमें से कुछ रोगों पर अनुभूत प्रयोगों का वर्णन किया जा रहा है, आशा है होमियोपैथी में रुचि रखने वाले हमारे चिकित्सक भाई लाभ उठायेंगे।

बच्चों के दस्तों पर सफल प्रयोग—

बच्चों में दस्तों की शिकायत अधिक मिलती है जिसका सफल अनुभूत प्रयोग मैं यहां पर दे रहा हूँ।

घटक—

पोडोफाइलम ३० का १० बूंद, क्रोटनटिग ३० का ५ बूंद इपीकाक ३० का ८ बूंद, कैमोमिला २०० का ४ बूंद, ओपियम Q ७ बूंद।

बनाने की विधि—

उपरोक्त सभी तरल दवाओं को २ औंस की शीशी में जिसमें पूर्व ही शुगर आफ मिल्क की पिल्स (ग्लोब्यूल्स) भरी हो, डाल दें और कार्क लगाकर अच्छी प्रकार

हिलायें ताकि दवा गोलियों में ठीक प्रकार मिल जाये। शीशी पर लेवल लगा दें "बच्चों के दस्तों की दवा"।

सेवन विधि -

बच्चों को २ से ४ गोली तक आवश्यकतानुसार दिन में ४-५ बार दें।

लाभ—बच्चों के दस्तों के लिए किशोर रूप से लाभकारी है। हर प्रकार के दस्तों में यह गोलियां लाभ करती हैं। दस्त हरे हों, चिकने पीले, पेट में दर्द और ऐंठन, उल्टी और दस्त होने और हैजा में भी उपयोगी है।

पेट के कीड़ों पर सफल प्रयोग—

बच्चों में दस्तों के बाद जो बीमारी अधिकता से मिलती है वह है पेट में कीड़ों का होना। इसको दूर करने के लिये निम्न प्रयोग उत्तम है: -

घटक -

कूप्रम औक्स १X १ ड्राम, नेट्रम फास १२X २ ड्राम एम्बेलिया राइब्स ३X २ ड्राम, सिना ६X १ ड्राम।

बनाने की विधि —

सर्व प्रथम सिना और कूप्रम औक्स को आपस में मिला लें उसके पश्चात् नेट्रम फास व एम्बेलिया को भली प्रकार से मिला लें। एक स्वच्छ शीशी में भरकर नया कार्क लगाकर "पेट के कीडों की दवा" का लेवल लगा दें।

लाभ—हर प्रकार के पेट के कीड़ों के लिए यह एक सफल योग है। पेट में कीड़े होने से बच्चे दांतों को नींद में पीसते हैं। नाक को बार-बार कुरेदते हैं। कभी-कभी मल द्वार को भी खुजाते है। पेट में दर्द की शिकायत का रहना भी यह दर्शाता है की पेट में कीड़े है। इन सब शिकायतों में यह एक सर्वोतत्त योग है।

मात्रा—१ से २ ग्रेन तक दिन में ३ बार दें।

कुकुर खांसी पर सफल प्रयोग—

इस बीमारी से बच्चे बहुत परेशान हो जाते हैं। इससे शरीर में कमजोरी, श्वासकष्ट व अन्य शिकायतें उत्पन्न हो जाती हैं। यहां पर कुकर खांसी का सफल अनुभूत एक प्रयोग मैं दे रहा हूं जो मुझे अत्यन्त लाभप्रद लगा है—

घटक—

ड्रोसेरा ३०-१० बूंद, पर्टुसिस २००-५ बूंद, बेलाडोना ३०-८ बूंद, इपीकाक ३०-६ बूंद, मैग्नेसिया फास ३०-१० बूंद।

बनाने की विधि—

एक स्वच्छ दो औंस की शीशी में सुगर आफ मिल्क की पिल्स (गोलियां) भर कर उपरोक्त दवायें निश्चित तरल मात्रा में डाल दें अच्छी प्रकार हिलाकर कार्क लगा दें।

लाभ—यह योग कुकुर खांसी या काली खांसी, तीव्र खांसी, अधिक खांसी के दौरे को कम करता है और कुछ समय तक नियमित लेने से शीघ्र ही लाभ करता है।

मात्रा—४ से ५ गोली दिन में ३-४ बार देना चाहिए।

बिस्तर में पेशाब करना—

बायोकेमिक की दवा नेट्रमफास ६X, ३०X इस बीमारी में अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुई है।

कमजोर व नाटे बच्चों के रोगों पर—

होम्यो दवा बेराइटा कार्ब उन बच्चों के लिए लाभप्रद है जिनकी मानसिक और शारीरिक विकास में कमी हो, कद में छोटा व बुद्धि में मन्द हो, चेहरे से बेवकूफ, मालूम पड़े, चलना व बोलना देर से सीखे, दांत भी देर से निकले तो यह बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई हैं।

बच्चों का रोना चिल्लाना—

बच्चों का रोना, चिल्लना कई कारणों से होता है। कभी-की बिना किसी कारण के निरन्तर रोता हो तो कैमोमिला, सिना आदि दवा लक्षणानुसार बहुत लाभदायक पाई गई है।

बाल रोगों की विशिष्ट अनुभूत चिकित्सा

श्री जगदम्बाप्रसाद श्रीवास्तव वैद्य पो० अरौल, कानपुर

लेखन कला सम्राट साक्षात् जगदम्बा के प्रसाद श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव विद्या और विनय की खान हैं। एक बार भगवान् द्वैपायन व्यास से जब पुराणों को प्रकट करने की बात चली तो सभी ने गणेश जी को लिखने के लिए चुना। गणेश जी ने बता दिया कि एक भी क्षण बिना रुके डिक्टेशन दिया जाता रहा तभी वे इस स्टेनोग्राफरी के धन्धे को स्वीकार करेंगे व्यास जी बोलते रहे और वे लिखते चले गये। एक बार व्यास जी को झपकी आगयी और उसी काल गणेश जी ने गणेश पुराण रच डाला। जगदम्बा स्वयं पार्वती भगवान् शंकर की प्रिया ही हैं उनके प्रसाद स्वयं गणेश रूप हमारे श्री वास्तव हैं जो व्यासीय झपकियों के युग में आयुर्वेद का विशाल साहित्य संजोने में दत्तचित हैं। आपने हमें जितना भेजा है उसका चतुर्थांश ही इस विशेषांक में हम दे पाने में समर्थ हुए हैं परमात्मा उन्हें सदैव स्वस्थ रखते हुए शतायु करे। —रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

उदर शूल, आध्मान, अपानरोध, अतीसार—

१. हिंग्वष्टक चूर्ण, २-४ रत्ती, २. शंखवटी १-२ रत्ती ३. संजीवनी वटी ½-१ रत्ती, लशुनादि वटी १-२ रत्ती, ५. लवणभास्कर चूर्ण २-६ रत्ती, ६. गैसान्तक वटी १-२ रत्ती, अग्नि तुण्डी वटी ¼ ½ रत्ती, ८. विषमुष्टिका वटी ¼ ½ रत्ती। इनमें किन्हीं १-२ का प्रयोग उष्ण जल से या दूध में घिसकर देने से अजीर्ण अतिसार निवारण होकर अधोवायु का सरण होता है और उक्त रोग दूर होते हैं। नं. ७-८ में कुचिला है अतः उनकी मात्रा अधिक न दें, रक्ता तिसार में न दें और उष्णऋतु में कम मात्रा में दें उदर में मल सञ्चय होने पर इनमें किसी का प्रयोग न करें।

उदर पर लेप—

हिंग्वष्टक चूर्ण १ माशा या जायफल २-४ रत्ती अण्डी के तेल में घिसकर उष्णकर नाभि पर लेप करने से उक्त विकार नष्ट होता है।

प्रवाहिका—

३-६ माशे कास्ट्रायल दूध या पानी में डाल कर उष्ण कर पिलादें इससे उदर साफ हो जाता है। विना उदर साफ किए प्रवाहिका रोकना हानि करता है। इसके बाद 'भुवनेश्वर रस' या कर्पूर रस एण्टी डिसेंट्रोल (अत्रा) या दीपन वटी (चरक) ½-१ रत्ती मां के दूध में घिस कर २-३ बार देने से लाभ होता है। अफीम युक्त प्रयोग यदि दें तो अल्प मात्रा में ही अन्यथा हानि करेंगे। कुटज घन वटी १-२ रत्ती, कच्चे बेल का चूर्ण २-४ रत्ती देने से भी लाभ होता है। ये अहानिकारी प्रयोग हैं। हिंग्वादि वटी, हिंगु कपूर वटी (कस्तूरी रहित) ½ रत्ती तक देने से अपान वायु का सरण होता है शूल एवं अतीसार निवारण होता है। छोटी इलायची के बीज, सोंठ, नागरमोथा तीनों को समभाग लेकर पीसकर चूर्ण करें २-४ रत्ती उचित अनुपान से सेवन कराने से ग्रीष्मकालीन और अतीसार ठीक होता है।

कुकुर कास—

१—चन्द्रामृत रस १ रत्ती, अपामार्ग क्षार १ रत्ती, फिटकरी भस्म १ रत्ती, मिलित मात्राएं ३। मधु से दूध से या द्राक्षासव ६० बूंद से।

२—कफकर्त्तन रस १ रत्ती, श्रृङ्गभस्म १ रत्ती, फिटकरी भस्म १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण २ रत्ती, सब मिलित

पिलाने के वाद या खाना खाने के वाद दें। उपर्युक्त ४ या ३ या २ मात्रा दिन भर में रोग की विवेचनानुसार देना चाहिए।

३. अ—सौंफ का अर्क, मकोय का अर्क, कासनी का अर्क, घृतकुमारी का अर्क, सब मिलित १ तो. मात्राएं १-२

गुण—यकृत्शोथ, कफ विकार, शूल, अजीर्ण दूर होता है। गोमूत्र भी दे सकते हैं। १-२ रत्ती शरपुंखा क्षार भी घोलकर दे सकते हैं। यकृत्शोथ में यह विल्कुल हानि रहित प्रयोग है।

आ—एरण्डमूलत्वक् भस्म २ रत्ती, अन्तर्दग्ध मल्लातक भस्म १ रत्ती, छोटी पीपल का चूर्ण २ रत्ती, तिलक्षार १ रत्ती, गोदन्ती भस्म २ रत्ती, मिलित मात्राएं ३-४।

अनुपान—ऊपर लिखित है।

गुण-कफज विकार, शूल, शोथ, मूत्ररोध, ज्वर, कास, यकृत् वृद्धिहर है।

४. अ—यकृदरि २ रत्ती, आरोग्यवर्द्धिनी वटी १ रत्ती, छोटी पीपल का चूर्ण २ रत्ती, शरपुंखा क्षार १ रत्ती, मिलित मात्रा २-३।

अनुपान—ऊपर लिखित।

गुण—मलमूत्र रोध, यकृत् वृद्धि, रक्तरोग, पांण्डु कामला आदि रोग दूर होते हैं।

विशेष सावधानी—१ वालकों में तीक्ष्ण औपधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

जमालगोटायुक्त प्रयोग नहीं करना चाहिए। ऐसा करते समय सावधान रहें। रेवन्दचीनी का प्रयोग अधिक दस्त और वमन ला सकता है अत: उसका प्रयोग २-३-४ रत्ती से अधिक न करें। शुभ्रपर्पटी १ रत्ती से कम देने से मूत्र आता है और अतीसार निवारण होता है। मूर्ख माताएं शिशुओं को अफीम खिलाती हैं अत: सावधान रहें। १-२ मुनक्का से दस्त साफ होता है। १-२ छोटे चम्मच भर शुद्ध एरण्ड स्नेह दुध या पानी से देने से टट्टी साफ आती है। यकृत्-प्लीहा वृद्धि में रोहितकारिष्ट या कुमार्यासव वहुत लाभकारी है। उष्णऋतु में हिंग्वष्टक चूर्ण नहीं देना चाहिए। शिशु को भैंस का दूध न दें। ताम्रयुक्त औपधियां खाली देनी चाहिए।

वाल श्वसनक ज्वर या पसलीरोग या उत्फुल्लिका

१. नीलाथोथा (तुत्थ) शुद्ध (भुना हुआ) १ रत्ती, करञ्जवीज की गिरी १० रत्ती, दोनों को औंगा स्वरस से १२ घन्टे खरल कर मूंग के समान ¼ रत्ती की गोलियां वना रखें। गोली मां के दूध या जल में घिसकर देने से १ टट्टी और १ वमन लाती है जिससे अधो-ऊर्ध्वभाग का शोधन हो जाता है। यदि किसी कारण २०-३० मिनट तक वमन-विरेचन नहीं हो तो दूसरी मात्रा दें अन्यथा इसका प्रयोग उस दिन न करें। यदि चाहें तो दूसरे दिन १ वार कर सकते हैं। यद्यपि ऐसी आवश्यकता नहीं पड़ती।

वमन रेचन के वाद त्रिभुवनकीर्ति रस, लक्ष्मीनारायण रस, या कुमारकल्याण रस या कस्तूरीभैरव रस में से कोई भी चौथाई रत्ती की मात्रा में २-३ मात्राएं दिन भर में देनी चाहिए। साथ में जवाखार, सुहागा खील, अपमार्गक्षार में से कोई भी १-२ द्रव्य आधा रत्ती की मात्रा में दे सकते हैं।

यह वाल-श्वसनक ज्वर, उत्फुल्लिका या पसली रोग की ९९ प्रतिशत सफल चिकित्सा है। विना वमन कराए जो रससिन्दूर आदि प्रयोग किया जाता है। उससे श्वासनलिकाओं में भरा हुआ कफ सूख जाता है तभी रोग असाध्य हो जाता है अन्यथा यह रोग पूर्णसाध्य है। विना वमन विरेचन के कुमारकल्याण रस या सर्वांगसुन्दर रस लाभ न पहुंचा सकेगा। इस पर ध्यान रखें।

२—केवल उसारेरेवन्द २-३-४ रत्ती पानी या दूध में घोलकर देने से भी वमन-विरेचन हो जाता है शेष ऊपर लिखे अनुसार चिकित्सा क्रम करना चाहिए।

इसी के साथ २-३ रत्ती सोडावाईकार्व भी मिलाकर दे सकते हैं।

मैनफल को २ रत्ती पीसकर पानी से देने से भी वमन मात्र हो जाता है। यदि रेचन न कराना हो तो न करावें।

३—त्रिभुवनकीर्ति रस, सुहागा खील, जवाखार, अपामार्ग क्षार, शृंगभस्म, सब समान भाग मिला खरल कर १-२ रत्ती उष्ण जल या माता के दूध या मधु कासारि य

—शेषांश पृष्ठ ४४४

बालकों के कुछ रोगों की अनुभूत चिकित्सा

वैद्य पं० व्यापक रामायणी मानसतत्वान्वेषी, आयुर्वेद-वारिध
पो० अजीतगढ़ अमरसर (राजस्थान)

१. बालकों की कुकुर खांसी में (१) मकई के दाने निकाली हुई छूंछ को आग में जलाकर किसी बर्तन में डालकर ढक्कन से ढक दें। पांच मिनट में कोयला बन जायगा। इसके बाद उसको पीस छानकर आठवां भाग सेंधा नमक मिलाकर रख लें। आवश्यकतानुसार एवं बालक की अवस्थानुसार ३ रत्ती से डेढ़ माशे तक मधु के साथ दिन में तीन बार चटावें। एक सप्ताह में पूर्ण लाभ होगा।

सफेद अतीस, काकड़ासींगी, नागरमोथा, छोटी पीपल अनार का छिलका, बहेड़ा सबको समान भाग छः-छः माशा लेकर कूट छान लें। फिर बबूल की छाल का काढ़ा बनाकर उसमें समान भाग मधु मिलाकर उक्त चूर्ण को खरल में घोटकर मटर समान गोलियां बना छाया में सुखा लें। छोटे बालकों को गऊ अथवा मां के दुग्ध में या मधु में मिलाकर चटावें। बड़ों को एक दो गोली दिन में दो तीन बार चूसने को दें।

२. बालशोष की दवा—कछुए की पीठ का टुकड़ा १ माशा, चूल्हे की राख १ माशा, शुद्ध सुहागा १ माशा, बिना बुझा सूखा कलई का चूना १ माशा, मिश्री ३ माशे सबको एकत्र कूट पीस गंगाजल में छः घण्टे तक घोट लें। फिर मटर बराबर व मूंग बराबर गोलियां बना छाया शुष्क कर लें। मात्रा—बला बलानुसार १-२ गोली प्रातः सायं गोमूत्र में मिला पिला दें। १ घण्टे तक दूध न पिलावें।

३. बालशोष (मसानियां) रोग का तंत्र—रुग्ण बालक के सिरहाने एक छोटा कूष्मांड (कोला) लाल वस्त्र में जो बालक का पहना हुआ हो। लपेट ७ बार वारकर शनि की रात्रि को सिरहाने रख दें। प्रातः बिना बोले उसे उठाकर समीप की नदी या जलाशय के किनारे कोला खोल दें। "तेरा हरा तू ले और हमारा हरा हमको दे" यह मंत्र बोलकर वेष्टित लाल वस्त्र को पानी में डुबोकर बिना निचोड़े ही एक भाग हाथ में पकड़कर घर ले आवें और सूखने पर बालक को पहिना दें। इस प्रयोग से कुछ ही दिन बाद बालक बिना दवा के स्वस्थ होता जायगा।

४. बालकों के दृष्टिदोष (नजर लगने) पर उपाय—चौराहे की कंकड़ सहित मिट्टी १ मुठी राई व नमक सांभर बिना पिसा १ मुठी दोनों को मिलाकर बच्चे के शिर से पैरों तक ७ बार बाएं से दाएं वार कर चारों दिशाओं में सायंकाल के समय में थोड़ा-थोड़ा फेंक दें। शेष बचा भाग चूल्हे में डालकर उसका धुआं बालक के शरीर में लगा दें। एक ही बार के प्रयोग में लाभ होगा।

५. नजर-झाड़ने का मंत्र—गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं कि एक दिन बालरूप भगवान् राम को नजर लग गई जिससे उन्होंने दूध पीना भी छोड़ दिया। वे बैठने, खड़े होने, और पालने झुलाने से भी नहीं रह रहे। बराबर रो रहे थे। कौशल्या जी देवता, पितर और ग्रहों की पूजा करती हैं, घृत का तुलादान भी करती हैं। जब किसी दुष्टा स्त्री की नजर पड़ जाती है तो रामजी ऐसे ही मचल जाते हैं। मुनि वशिष्ठ जी ने आकर रामजी के हाथ में नृसिंह मंत्र पढ़कर कुशा बांधी—जिस मंत्र का स्मरण

"सियाराममय सब जगजानी।
करहु प्रणाम जोरि जुग पानी॥"

के स्वयंसिद्ध स्वरूप मानसतत्वान्वेषी श्री व्यापक रामायणी जी भी मर्यादा पुरुषोत्तम के अनन्य भक्त और सेवक तो हैं ही 'सुधानिधि' के संरक्षण में भी सदैव संलग्न हैं। उनकी अमृतमयी वाणी का लेखानुवाद रूप यह प्रसाद अनुभव का पुंज है जो पाठकों में श्री का सृजन करेगा ही।

—म. मो. चरौरे

करने से भय को भय होता है, जिस समय मुनि जी ने रामजी के माथे पर हाथ रखा उसी समय दृष्टि-दोष दूर हो जाने से रामजी किलकने लगे। (देखिए-"गीतावली पद १२ व १३)—नृसिंह मंत्र यह है"-

ॐ नमो नृसिंहाय हिरण्य कशिपु वक्षःस्थल विदारणाय त्रिभुवन व्यापकाय भूत प्रेत पिशाच शाकिनी डाकिनी कीलनोन्मूलनाय स्तंभोद्भव समस्त दोषान् हन-हन सर-सर चल-चल कम्प-कम्प मथ-मथ हुँफट्-हुँफट् ठंठं महारुद्र जापित स्वाहा: ।।

इस मंत्र को शरद् पूर्णिमा, महाशिवरात्रि, होली, दिवाली, रामनवमी, जन्माष्टमी या नृसिंह जयन्ती की रात्रि में १२१ बार धूप, दीप के सामने जपकर सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर प्रयोग करते समय बालक को सामने बैठाकर कुशा हाथ में लेकर मंत्र का उच्चारण करते हुए ७ बार से २१ बार तक झाड़ देने से व उसी कुशा को बालक के दाहिने हाथ में बांध देने से दृष्टि दोष (नजर लगना) दूर हो जाता है।

६. **बालकों के पीलिया रोग में** सफेद पुनर्नवा (साठी) की जड़ शनि या रवि को प्रातःकाल उखाड़ कर एक-दो अंगुल के १०८ टुकड़ों को (२७ या ५४ को भी) नाल के कलावे से गांठ देकर माला बनाकर गले में पहनाने से जैसे-जैसे माला सूखेगी वैसे ही पीलिया दूर होता जायगा।

७. **पित्ती निकलने पर**—सोनागेरू १-२ रत्ती व श्वेत कच्ची फिटकड़ी १-२ रत्ती पीसकर बतासे में रखकर पानी से निगलवा दें। तथा प्याज के छिलकों की धूनी देकर काला कम्बल उढ़ाकर सुलाने से १-२ घन्टे में ही पित्ती के ददोड़े निकलते हुए दबकर ठीक हो जाते हैं।

८. **श्वसनक ज्वर**—पसली चलना निमोनिया की दवा-मृगश्रृंग भस्म (अर्क-दूध पुट द्वारा तैयार की हुई) ३ रत्ती, शुद्ध सुहागा २ रत्ती, शुद्ध फिटकरी ½ रत्ती, चन्द्रामृत रस १ गोली (१ रत्ती) सबको पीस मधु में मिला दिन में ३ बार चटाने से ३ दिन में ही पूर्ण आरोग्य प्राप्ति हो जाती है।

९. **अतीसार व पेचिस में**—बटवृक्ष की डालियों निकली जटाओं के अग्रभाग की सेमों की भस्म १ माशा, शंखभस्म २ रत्ती, शुद्ध सुहागा ३ रत्ती, सबको मिला दूबी के रस से पिला देने से तीन मात्राओं में ही लाभ हो जाता है।

१०. **कर्ण स्राव में**—श्वेत फिटकरी कच्ची का चूर्ण १ रत्ती कान में डालें ऊपर से गोमूत्र डालकर झाग निकलने पर साफ कर दें और फिर शुद्ध फिटकरी भस्म १ रत्ती डालकर किसी नली से फूंक मारकर छिद्र में भस्म अच्छी तरह भर दें प्रतिदिन। ३-७ दिन करने पर पुराना स्राव भी मिटता है।

पृष्ठ ४४२ का शेषांश

बालामृत या जन्मघुटी के अनुपान से दें। यह बाल श्वसनक ज्वर के लिए अनुपम योग है। बड़ों को ४-६ रत्ती की मात्रा में देना चाहिए। यह टट्टी लाने वाला या वमन कराने वाला प्रयोग नहीं है। ज्वर, शूल, कफ, कास श्वास नाशक योग है।

४-सिवाजोल टिकिया १, अपामार्ग क्षार १ रत्ती, अष्टांगावलेह २ रत्ती, सुहागा खील १ रत्ती, श्रृङ्गभस्म २ रत्ती।

मिलित मात्राएं २-३। उपर्युक्त अनुपान में सेवनीय। सिवाजोल या श्रृङ्गभस्म किसी एक को निकाल कर प्रयोग करें अन्य कोई एक द्रव्य न मिले तो शेष का प्रयोग करें या पेण्टिड सल्फा ½-⅓, टिकिया का प्रयोग करें। बालजीवन वटी, (गोरोचन, उसारेरेवन्द, केशर, मुसब्बर युक्त) इस रोग के लिए सिद्धयोग है। इससे भी वमन-विरेचन होते हैं १ दिन में १-२ मात्राओं से अधिक नहीं देना चाहिए और जिसे पहले ही से टट्टियां आती हों उसे उसारेरेवन्द युक्त कोई प्रयोग नहीं देना चाहिए।

५-यदि अतीसार और वमन दोनों हो चुके हों तो कास श्वास और श्वसनक ज्वर के लिए—

संजीवनी वटी १ रत्ती, जवाखार २ रत्ती, मिलित १-२ मात्राएं।

६-यदि कण्ठ में कफ भरा हो और उदर में मल संचय हो तो इसका प्रयोग न करें। अनेक चिकित्सक डाइक्रष्टीसीन की सूचीवस्ति १ सी. सी. नितम्ब की मांसपेशी में करते हैं और पेनिसिलीन टेबलेट आधी वटी की ३-४ मात्राएं भी देते हैं। यह भी सफल है।
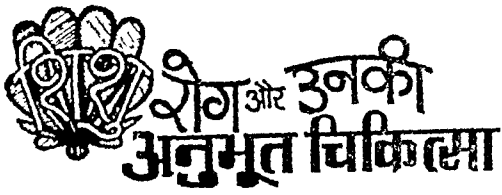
परमप्रवीण प्राणाचार्य श्री हर्षुल मिश्र
बी. ए. (आनर्स) आयुर्वेदरत्न
पेंशनबाड़ा, रायपुर (म. प्र.)

★

१. दन्तोद्भेदक रोग—

वच्चों को प्राय: उनके आयु के छठवें मास से दांत प्रारम्भ होजाते हैं। छ: महीने पहले वच्चों को दांत निकलना उनकी अल्पायु होने का प्रतीक है। ६, ७, ८ माह में दांत निकलना क्रमश: उनकी सामान्य आयु, मध्यम आयु और दीर्घायु का प्रतीक है।

सामान्य लक्षण—दांत निकलना प्रारम्भ होते ही वालक के मुंह से लार अधिक गिरनी प्रारम्भ हो जाती है। मसूड़ों में धीरे-धीरे शोथ, दाह, तनाव की स्थिति कायम हो जाती है। मसूड़ों में कण्डू और तोद होता है, जिससे वालक दूध पीते समय मां के स्तन को मसूड़ों से वार-वार दवाता है। दांत मसूड़ा फोड़कर जव वाहर आने को होते हैं तव मसूड़े अधिक फूले हुए नजर आते हैं; परन्तु दन्तपाली मृदु होजाती है, उस समय ज्वर, प्रतिश्याय (नासास्राव, छींक, खांसी), हरे,पीले, सफेद वर्ण के पतले फटे हुए दस्त, नेत्र से पानी गिरना, कर्ण पीड़ा, शरीर में चकत्ते पड़ना आदि। अनेक रोगों की श्रृंखला छोटे से वालक के शरीर में दन्तोद्गमन के समय प्राय: दिखाई पड़ती है। जव दांत निकलने के करीव होते हैं तव मसूड़ों में उभार आजाता है और वे फटते हैं; तथा सफेद रंग के दांतों के अग्रभाग दिखाई पड़ने लगते है। दांत निकल आने पर सम्पूर्ण व्याधियां अपने आप धीरे-धीरे शांत होने लगती हैं। दन्तोद्भेदक व्याधियां अधिक पीड़ाकर उन्हीं वच्चों को होती हैं जिनके यकृत् कमजोर होचुके होते हैं और वे पाचक रस पैदा करने की क्रिया स्वाभाविक ढङ्ग से कर नहीं पाते। जिन वच्चों के यकृत् अच्छे क्रियाशील होते हैं, उन वच्चों के दांत सरलतापूर्वक निकल आते हैं। जिन वच्चों के यकृत् विकारयुक्त होते हैं उन वच्चों को उपर्युक्त व्याधियां अधिक दु:ख देती हैं। इसलिये दन्तोद्गमन को सुखावह करने के लिये नीचे लिखी औषधियों का प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

दन्तोद्भेदजनित रोगों पर औषधि योजना-

हर्षुल वालकल्याण वटी -

शम्बूक भस्म, टंकण भस्म, जहरमोहरा पिष्टी, कांतलोह भस्म, मीठा इन्द्रजव का महीन चूर्ण, विल्व चूर्ण, मरोड़फली चूर्ण, कच्छपास्थि भस्म, अतीस चूर्ण, नागरमोथा चूर्ण, पके सूखे आमलों का महीन चूर्ण, वाल हरड़, काकड़ासिंगी, पिप्पलीचूर्ण, मुलहठी का महीन चूर्ण, स्वर्णमाक्षिक भस्म, विडंग चूर्ण, अजवाइन चूर्ण, शु० हिंगुल प्रत्येक १-१ तोला।

निर्माण विधि—समस्त औषधियों को खरल में डाल-

"प्रथम प्रयास में जितना मुझसे मेरी याददाश्त के अनुसार लिखा गया लिख डाला।....सम्पूर्ण लेख प्रकाशित करने से मेरा प्रयास सही मायने में सफल होगा....।" इन पंक्तियों के साथ हमें २४ पृष्ठों का सुलेख मिला। आचार्य त्रिवेदी जी आपको अत्यधिक स्नेह और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और आपकी भावनाओं और आकांक्षाओं का सदैव ध्यान रखते हैं। फिर भी यह लेख अपूर्ण ही प्रकाशित किया जा रहा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस महापुरुष ने शुक्रशोणित जीव संयोग के समय से ही आयुर्वेद को प्राप्त किया तथा जिन्होंने जीवन का सम्पूर्ण काल मध्यप्रदेश में आयुर्वेद की सेवा में व्यतीत किया तथा जो सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता सेनानी रहे हैं उन्होंने वहुत ही उत्तमता से खोजी बुद्धि से अपने अनुभव प्रकट कर वैद्यवर्ग का जो उपकार किया है वह वर्णनातीत है। परमात्मा उन्हें शतायु करे एवं स्वस्थ रखे।

—गोपालशरण गर्ग

कर, भृङ्गराज रस, तुलसीपत्र रस, निर्गुण्डीपत्र रस, श्वेत पुनर्नवा रस, कटेरी स्वरस, अद्रक स्वरस, अमृता स्वरस की क्रमशः भावना देकर खूब मर्दन करें। जब सब द्रव्य घुटकर मक्खन की तरह मुलायम और गाढ़ा होजाय तब ४ रत्ती की गोलियां बना छाया में सुखा लें।

सेवन-विधि —१ वर्ष के अन्दर के बालक को आधी गोली असली शहद से या मां के दूध से चटायें तथा दन्त-पाली पर धीरे-धीरे इसी को अंगुली से मलें।

समय —प्रातः सायं तथा रोग के वेगानुसार प्रति ६ घंटे के अन्तर से दिनरात में तीन बार दें।

गुण—इस औषधि के प्रयोग से बिना कष्ट के दांत निकल आते हैं और बच्चा स्वस्थ बना रहता है। यह औषधि एक माह से लेकर १० वर्ष के बालकों की हर प्रकार की बीमारी में उपयुक्त है। १ माह के दुधमुहे बच्चे की माता के स्तन में शहद के साथ इस औषधि को लगाकर नवजात शिशु को दूध पिलाने से मां का दूधदोष बच्चे को व्यापता नहीं, प्रत्युत बच्चा उत्तरोत्तर स्वस्थ और बलवान होता जाता है। यकृत्—प्लीहा सम्बन्धी रोग, ज्वर, खांसी, अतीसार, कृमि, पाण्डु, कामला अजीर्ण, प्रतिश्याय को तत्काल दूर करती हैं।

२. बालशोषक्षय-फक्करोग-शुष्क रेवतीग्रह -

बालशोष, वास्तव में शुष्क रेवतीग्रह नामक बालग्रह रोग से मिलता जुलता है—जायते शुष्क रेवत्यां क्रमात्सर्वाङ्ग संक्षयः॥ इस वचन के अनुसार, जैसा शुष्क रेवती रोग में, बालक का अंगक्षय होता है, ठीक वैसा ही अंगक्षय बालशोष में भी होता है। अंगक्षय का ही दूसरा नाम बालशोष व सूखा रोग है।

जीर्णज्वर, अरुचि, कास, श्वास, रक्तहीनता, अतीसार, मुख और आंखों में अधिक सफेदी, पतला चेहरा, शुष्क नितम्ब, हाथ पैर दुर्बल, पेट उभरा हुआ, बालशोष के सामान्य लक्षण हैं। यकृत् विकार, प्लीहावृद्धि, अग्निमान्द्य, रक्तातीसार, रक्तपित्त, अरुचि आदि व्याधियां उपद्रव रूप में प्रायः हो जाती हैं, जिससे बालक मरणासन्न प्रतीत होने लगता है। 'नितम्ब सूखना शोषरोग का प्रधान लक्षण है।

अंगक्षय के कारण शोषरोग फक्करोग से भी मिलता है, परन्तु रोग के कारणों और रोग के आक्रमण के ढंग से, शोषरोग फक्करोग से भिन्न है।

शोषरोग और फक्करोग में मौलिक अन्तर—

फक्करोग, गर्भकाल में पोषणतत्वों की कमी से शिशु के अंग सबल न होने कारण, अथवा मां के दूध में पोषण-तत्वों की कमी से बालक में बल और ओज की उत्तरोत्तर वृद्धि न होने के कारण, बालक के जन्म से एक वर्ष के अन्दर ही प्रारम्भ हो जाता है, जब कि शोषरोग ७ वर्ष की आयु के अन्दर कभी भी। धातुक्षय करने वाले रोगों के लगातार बने रहने से हो जाता है। विशेषतः यकृत् विकार से उत्पन्न मंदाग्नि, जीर्णज्वर, अतीसार आदि लगातार कुछ दिनों तक बने रहने से, चलने फिरने वाले एक वर्ष से ऊपर की उम्र वाले बालक को ही शोषरोग होता है। फक्करोग बालक को, जन्मते ही अथवा जन्मने के बाद १ वर्ष की आयु पूरी होने के पहले ही हो जाता है। फक्क-रोग में, दो वर्ष से ज्यादा आयु का बालक भी चलने फिरने में असमर्थ रहता है। दो वर्ष की उम्र का फक्क-रोगी बालक, घुटनों के बल, बड़ी कठिनाइयों के बीच, रेंगते हुए देखा गया है, जब कि शोषरोगी दो वर्ष का बालक, धीरे-धीरे चलता हुआ. अथवा सहारे से चलता हुआ देखा गया है। शोषरोगी बालक दुर्बल होते हुए अपनी इच्छा से अपने बल से उठ बैठ लेता है और थोड़ा बहुत पैरों से चल फिर लेता है, परन्तु फक्करोगी बालक अधिक दुर्बल शरीर वाला न प्रतीत होते हुए भी, उठने-बैठने चलने-फिरने में असमर्थ रहता है अथवा बड़ी कठि-नाइयों के बीच शरीर को किसी प्रकार एक जगह सरका पाता है। बिना सहारे के वह खड़ा नहीं हो सकता।

शोषरोग में, शरीर की रस रक्तादि धातुओं का क्रमशः क्षय होने से बालक का शरीर सूखने लगता है, अथवा क्षीण होने लगता है, इसलिये उसे शोषरोग कहते हैं। और शरीर के फक्करोग में पोषण तत्वों की कमी के कारण स्नायु दौर्बल्यता अंग शिथिलता प्रधान रूप से विद्यमान रहती हैं, जब कि शोषरोग में मंदाग्नि, जीर्णज्वर, अति-सार जैसे रोगों के प्रभाव से क्रमशः धातुओं का क्षय होने के कारण, अंगक्षय, और अंगशोष प्रधान रूप से विद्यमान रहते हैं। शोषरोग में जीर्णज्वर व मंदज्वर होना अनि-वार्य है, जब कि फक्करोग में ज्वर जैसे धातुक्षय करने वाले किसी रोग का होना अनिवार्य नहीं।

शोषरोग, शुष्करेवती रोग फक्करोग, क्रमशः वातुक्षय और बल तथा ओज की कमी से होते हैं। इसलिये इन तीनों में धातु बल और ओज बढ़ाने वाली चिकित्सा ही लाभदायक है। इसलिये उपर्युक्त तीनों रोगों पर, धातु बल और ओज बढ़ाने वाला हमारा स्वयोजित योग 'स्वर्णायस कल्पमणी' उपयुक्त है।

१. हर्पु लस्वर्णायस ल्पमणो रस-

द्रव्य—स्वर्णभस्म १ तो०, हिंगुलभस्म १ तो०, कांतलोहभस्म जलतर १ तो०, माणिक्यभस्म १ तो०, वैकांतमणिभस्म १ तो०, प्रवालपिष्टी १ तो०, मुक्तापिष्टी १ तो०, कच्छपास्थिभस्म १ तो०, शम्बूकभस्म १ तो०, अर्जुनत्वक् घनसार १ तो०, पीपलवृक्षत्वक् घनसार १ तो०, वटवृक्षत्वक्घनसार १ तो०, मधुपुष्पवृक्षत्वक् घनसार १ तो०, पलाशत्वक् घनसार १ तो०, उदुम्बरत्वक् घनसार १ तो०, त्रिफलाफलत्वक् घनसार १ तो०।

निर्माण विधि—समस्त औषधियों को उत्तम पत्थर के खरल में डालकर खूब मर्दन कर एकजीव कर लें, फिर ४० तोला भांगरे के रस की भावना देकर मर्दन करें फिर उसमें ४० तोला कूष्माण्डस्वरस की भावना देकर घुटाई करें। जब सब द्रव्य घुटकर मक्खन के सदृश गाढ़ा और मृदु हो जाय तब दो-दो रत्ती की गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर स्वच्छ शीशी में रख छोड़ें।

सेवन विधि—१ वर्ष तक आयु वाले बच्चों को आधी गोली, बड़े बच्चों को १ गोली, असली शहद और गाय के मक्खन में मिलाकर प्रातःसायं चटावें, अथवा मां के दूध में अथवा गाय के गरम मीठे दूध में घोलकर प्रातःसायं पिलावें। शहद और मक्खन की मात्रा-कम से कम ३ माशा और गोदुग्ध कम से कम २॥ तोला तक होना चाहिये। बड़ों को यह औषधि १ गोली से २ गोली तक १ तोला शहद और १ तोला मक्खन के अनुपान में चटाना चाहिये।

गुण—हर्पु ल स्वर्णायसकल्पमणी रस—बालशोष, फक्करोग, शुष्करेवतीग्रहरोग, क्षय (T.B.), फुफ्फुसज क्षय, शारीरिक दुर्बलता, पाण्डु, वीर्यहीनता, ओजहीनता, यकृत् विकार, अग्निमान्द्य, रक्तहीनता को शीघ्र दूर करने वाला सफल योग है। इसके सेवन करते ही पहले महीने से ही रोगी का वजन बढ़ने लगता है। यह योग शोष और क्षयरोग की बृंहण चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रतीक है।

२. पेय ऊर्जा—द्रव्य-मीठे अंगूर का स्वरस ८० तो., मीठे बढ़िया लालवर्ण के बीज रहित पके हुए खजूर का कल्क ८० तो०, मुलैठी का क्वाथ ४० तो०, धाय के वृक्षों पर लगे पुष्पों का मधुररस ४० तो०, छोटी कटेरी का रस ४० तो०, दशमूलक्वाथ ४० तो०, अष्टवर्गक्वाथ ४० तो०, बटवृक्षत्वक्क्वाथ ४० तो०, मधुपुष्पवृक्षत्वक्क्वाथ ४० तो०, नकछिकणीक्वाथ ४० तो०, भृंगराज स्वरस ४० तो०, वायविडंगक्वाथ ४० तो० कृष्णअगरक्वाथ ४० तो०, शम्बूकभस्म २ तो०, प्रवालभस्म २ तो०, कपर्दभस्म २ तो०, शंखभस्म २ तो०, सीपभस्म २ तो०, कांतलोहभस्म २ तो०, असली शहद १०० तो०, मिश्री २०० तो०, सौंफ का अर्क १०० तो०,।

निर्माण विधि—समस्त द्रव्यों को कांच की एक बड़ी बरनी में भरकर उसका मुंह मजबूती से बन्दकर हानि रहित निर्वात स्थान में एक माह तक रहने दें। फिर बरनी को खोलकर समस्त द्रव्य को दूसरे कांच या चीनी मिट्टी की स्वच्छ बरनी में फलालैन के स्वच्छ कपड़े से छानकर उसमें अर्क इलायची १। तो०. अर्क दालचीनी १। तो०, अर्क पिपरमेंट ३ माशा मिलाकर उस पात्र का मुंह मजबूती से बन्दकर सुरक्षित स्थान में रखदें।

सेवन विधि—छोटे बच्चों को चाय के चम्मच से १ चम्मच भर, समान जल से अथवा मां के दूध व गाय के गरम दूध में मिलाकर प्रातःसायं पिलावें। बड़े स्त्री पुरुषों के लिये भी यह औषधि परम उपयोगी है। अतः उनको यह औषधि १। तो० की मात्रा में १। तो० जल मिलाकर पथ्य के बाद दिन रात में दो तीन बार पिलाना चाहिये।

पेय ऊर्जा के गुण—यह बल और ऊर्जा देने वाला पेय है। बालक तथा बड़े स्त्री पुरुषों को समान रूप से लाभप्रद है। यह बालकों के शोष, शुद्धरेवतीरोग, फक्करोग में निःसन्देह लाभदायक है। बालकों के और अन्य स्त्री पुरुषों की मंदाग्नि, रक्तहीनता, यकृत्, हृदय, मस्तिष्क और फुफ्फुस जनित विकारों को शीघ्र दूर करने की इस औषधि में क्षमता है। इसका प्रयोग स्वर्णायसकल्पमणी के साथ अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। पेयऊर्जा में, पाचन

प्रणाली को स्वाभाविक रूप से क्रियाशील बनाने वाले तत्व विद्यमान हैं।

३. बालविसर्प-महापद्मक—

बाल विसर्परोग चिकित्सा से तत्काल शांत न होने पर प्राणघातक है। शास्त्र के वचन हैं "वीसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनः। ये शास्त्रीय वचन यद्यपि सत्य और तथ्य की अनुभूति के प्रतीक हैं, तथापि विसर्प से अपवाद स्वरूप, कुछ बालकों के प्राण, आशुगुणकारी चिकित्सा से बचाये जा सकते हैं।

बाल विसर्प, नवजात शिशु के नालच्छेदन के बाद, नाभि के पास से प्रारम्भ होकर गुदा की ओर और फिर सिर की ओर जाता है और फिर सिर से हृदय प्रदेश में गुजरता हुआ नाभि प्रदेश और गुदा तक पहुँचता है। यह विसर्प क्षतज होने से पित्त प्रधान होता है। इसमें दाह और जलन होती है। बालक पीड़ा से खूब रोता है और बेचैन रहता है। शीघ्र उपाय न होने से मूर्च्छा, हृदयावसाद की स्थिति आ जाती है। ज्वर तो विसर्प की उत्पत्ति के साथ ही आने लगता है। विसर्प के शांत होने पर ज्वर शांत हो जाता है।

यह बाल विसर्प पद्म (लाल कमल) के वर्ण का होता है। विसर्प का अर्थ है, "शरीर के अंगों में भ्रमण करने वाला शोथ" यह बाल विसर्प भी भ्रमणशील और पीड़ाकर शोथ है। यद्यपि इस शोथ का उद्गम नालच्छेदन के बाद, नालच्छेदन जनित दुष्ट क्षत के कारण नाभि के नीचे के भाग से प्रारम्भ होकर अधोगामी और ऊर्ध्वगामी होता है, तथापि उसका अधोगामी और ऊर्ध्वगामी स्वरूप कभी-कभी एक साथ प्रतीत होने लगता है। अधोगामी विसर्प बालक के सिर से प्रारम्भ होकर, शंख कनपटी से गुजरता हुआ, हृदय के ऊपर छाती पर पहुँचता है, वहां से नाभि प्रदेश में से गुजरता हुआ गुदा तक पहुँचता है। ऊर्ध्वगामी विसर्प नाभि के निचले भाग से प्रारम्भ होकर गुद तक फैलता है, वहां से फिर छाती पर, हृदय की ओर बढ़ता है, वहां से कंधा ग्रीवा बायें शंख (कनपटी) की ओर बढ़ता हुआ सिर तक पहुँच जाता है। ये अनुलोम और प्रतिलोम गति वाले विसर्प जब एक साथ हृदय स्थान के ऊपर छाती तक पहुँचते हैं, तब बालक के प्राणों के लिये खतरा पैदा हो जाता है। इस स्थिति में चिकित्सा से लाभ होने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

बाल विसर्प की चिकित्सा

(१) बालक के उपर्युक्त महापद्मक विसर्प पर दशांग लेप सुखोष्ण, उस समय तक लगाते रहना चाहिये, जब तक विसर्प विलीन न हो जाय।

१. दशांग लेप—

द्रव्य—सिरस की छाल, मुलहठी, लाल चंदन, छोटी इलायची, जटामांसी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी सुगंधवाला।

निर्माण व उपचार विधि—सब द्रव्यों का चूर्णकर, जल में घोलकर रांधकर गुनगुना लेप करना चाहिये। यह विसर्प पित्त प्रधान होता है, अतः अधिक उष्णलेप कदापि नहीं करना चाहिये।

२. औषधि योजना—

महागंधक रसायन १ रत्ती, अनन्तमूल घनसार १ रत्ती, स्वर्णक्षीरी घनसार १ रत्ती सबकी २ मात्रा बनाएं।

उपर्युक्त मिश्रण की २ मात्रा में से एक मात्रा शहद के साथ प्रातः और संध्या को चटावें अथवा मां के स्तन में लगाकर बच्चे को दूध पान करावें। मां को भी उपर्युक्त औषधि योजना की ३ रत्ती की मात्रा एक बार में, प्रातः सायं चटावें। इस औषधि योजना से बाल विसर्प में आश्चर्यजनक लाभ होता है और बालक के प्राण बच जाते हैं। ★

भूल सुधार

पृष्ठ ३८० पर प० नन्द किशोर शर्मा के लेख के प्रारम्भ में जो प्रथम मंत्र है 'ॐ ह्राम् ह्रीम्' उसमें कोष्ठक के भीतर दोनों ओर स्वास्तिक का निशान रह गया है प्रयोग कर्ता मंत्र में आदि और अन्त में स्वास्तिक का प्रयोग करें। —व्यवस्थापक

बाल रोगों के कुछ अनुभूत उपचार

आयुर्वेदवारिधि यौनविज्ञान विशेषज्ञ श्री चांदप्रकाश मेहरा बी. एस-सी
५५७ मण्टोला स्ट्रीट, नई दिल्ली-५५

१. कान के दर्द पर—

(अ) सुदर्शन के ताजा पत्ते के स्वरस की एक दो बूंद बच्चे के कान में निचोड़ देने से कान दर्द में राहत मिलती है।

(ब) १ तोला तिल के तेल में लहसुन के टुकड़े . ग्राम और मरवा के ५-७ पत्ते डालकर उसे आग पर १-२ उबाल देकर, नीचे उतार लें। ठंडा होने पर कपड़े से छानकर शीशी में भर कर रख लें।

इस तेल की कुछ बूंदे चम्मच में लेकर उसे गुनगुना गर्म कर कान में डालकर, ऊपर से कान में रुई लगा दें। कान दर्द दूर करने में यह रामवाण है।

२. कान में मक्खी, मच्छर या कीड़ा-मकोड़ा चला जाये—तो टार्च की रोशनी कान में डालिये २ मिनट के अन्दर ही वह रेंग कर बाहर आ जायगा। न निकले तो कुनकुने पानी की पिचकारी लगाइये।

३. दंत रोगों पर—

बच्चों के दांत आसानी से निकलने के लिए महीन पिसा हुआ भुना हुआ चौकिया सुहागा १-२ रत्ती शहद में मिलाकर नित्य मसूड़ों पर हलके हाथ से मलना चाहिए

श्रीमेहरा न केवल कुछ विशेष विषयों को ही अपनी लेखनी का आराध्य मानते है अपि तु उनके ज्ञान की परिधि में आयुर्वेद के सभी विषयों का समावेश हो जाता है। वारिधि की अगाधता और अपारता में किसे सन्देह हो सकता है। आपने अपने अनुभवों को हमें प्रेषित कर विशेष अनुग्रहीत किया है।

गो० श० गर्ग

— लेखक —

और छोटी हरड़ घिसकर शहद में मिलाकर शाम को चटाएं हिना अथवा गुलरोगन को सिर पर मलना चाहिए। कड़वा तेल गुनगुना गर्म कर कान में डालना भी बच्चों के दांत आसानी से निकालने में सहायक होता है।

४. सोते समय दांत कटकटाने पर—नीलकंठ का पंख गले में बांधने से यह आदत छूट जाती है।

५, कच्चा सुहागा बच्चे के पेट में जाने के कारण उसे दस्त लग जाने पर

प्रायः बच्चों के दांत सरलता से निकल आने के लिए उनके मसूड़ों पर शहद में सुहागा (भुना) मिलाकर रगड़ा जाता है। तवे पर गर्म कर फूला हुआ सुहागा ही इस कार्य के लिए लिया जाता है जो पेट में चला भी जाय तो हानिकारक नहीं होता है। लेकिन कुछ स्त्रियां अज्ञानता

वश कच्चा सुहागा ही इस कार्य के प्रयोग में ले आती हैं जो कदाचित् पेट में चला जाता है तो बच्चे को बेतहाशा दस्त लग जाते हैं, आंव जाने लगती है मानो किसी ने पेट काट दिया हो। ऐसा होजाये तो ईसबगोल के दानों को (बीज) पानी में भिगो दें जब लुआब उठ आए तो उसे नितार कर कटोरी, प्याले या शीशी में भर कर रख ले। यह लुआब दो चम्मच दिन में ५-६ बार उसे पिलायें। ऐसा करने से दो तीन दिन में बच्चे को राहत मिल जाती है। लुआब प्रतिदिन ताजा ही बनायें।

बच्चा पैसा, कंचा (कांच की गोली) बटन आदि कोई छोटी चीज निगल जाये तो—

(अ) उसे भर पेट पके केले खिलायें।

(ब) ईसबगोल की भूसी १ तोला गर्म दूध से सेवन करायें। लगभग ६-८ घण्टे बाद ईसबगोल व केले के गूदे में लिपट कर पाखाने के रास्ते निकल जायेगा।

६. बच्चों के यकृत् विकार पर--

(अ) काली गाय का मूत्र २ चम्मच प्रातः शाम पिलायें। चाहें तो इसमें १ रत्ती लौह भस्म अथवा स्वर्ण माक्षिक भस्म अथवा नवायास लौह मिलाकर दे सकते हैं नित्य प्रातः ताजा मूत्र सेवन के लिए एकत्र कर लिया करें बच्चे की आयु के अनुसार मात्रा घटा बढ़ा लें।

(ब) स्टैन्डर्ड फार्मास्यूटिकल, कलकत्ता द्वारा निर्मित 'Livrigen" Liquid, अथवा Tablet का सेवन कराना भी लाभदायक होता है।

७. बच्चों का मुंह आ जाये तो-

(अ) उंगली से उसकी जबान पर जरा सी ग्लिसरीन लगा कर मुंह लटका कर लार गिरा दें। ऐसा दिन में दो तीन बार करें। दो तीन दिन में राहत मिल जायेगी।

आजकल ग्लिसरीन भी मिलावट वाली आती है। शुद्ध ग्लिसरीन पिरैमिड ब्रांड जो कि आई. सी. आई. (इण्डिया) लि.मि. द्वारा निर्मित है, प्रयोग में लायें तो ठीक रहेगा।

अथवा (ब) 'हंसराज' जला कर उसकी राख की एक चुकटी जबान पर मलकर (छालों पर लगा कर) मुंह लटका कर लार गिरा दें। ऐसा दिन में दो तीन बार करें दो तीन दिन में राहत मिल जायेगी।

८. बच्चों के दस्तों व आंव पर—

(अ) निवाएम्बीन, नीवाक्वीन १ गोली का चूर्ण क्लोरोस्ट्रेप—एक कैपस्यूल के भीतर की औषधि। सल्फाग्वीनाडिन—१ गोली का चूर्ण

इन तीनों औषधियों को खरल में एक जान कर लो और इसकी नौ पुड़ियां बना लो। १ पुड़िया पानी के साथ दिन में तीन बार दें। पहले दिन ही लाभ होगा। दो तीन दिन में लाभ होगा। दो तीन दिन में रोग समूल नष्ट होगा।

(ब) मूली के बीज ३½ माशे पीसकर शहद में मिला कर चटायें। एक या दो बार चटाने से ही रोग निर्मूल हो जायगा। छोटे बच्चों के दस्त बन्द करने के लिए अच्छी दवा है।

(स) पठानी लोध, बड़ी पीपल, धाय के फूल, बेल-गिरि, कत्था सब को समान मात्रा में लेकर महीन पीस छान कर रखलो।

इस चूर्ण को ४-४ रत्ती की मात्रा में ३-४ बार जल से सेवन कराने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

(ह) 'अग्नितुण्डी वटी' १-२ चावल की मात्रा में दिन में दो बार सुबह व शाम जल से सेवन करायें। याद रखें कि इस वटी में कुचिला विष का मिश्रण है। बालक की आयु के अनुसार मात्रा घटा बढ़ा लें। बच्चों को बार-बार हाजत जाने की आदत भी इससे दूर होती है।

९. सिर के फोड़े फुंसियों पर—

(अ) रसौत और मेंहदी की पत्तियां, दोनों की जरा से पानी में पीसकर फोड़े फुंसियों पर लगाने से वे ठीक हो जाते हैं।

(ब) नीम की छाल घिसकर जरा सा मक्खन मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

(स) जस्ता का मैल (जो पीतल के बर्तन बनाने वालों से मिल जाता है) फुंसियों पर जरा सा कड़वा तेल लगाकर ऊपर से बुरकने से वे समूल नष्ट हो जाती हैं।

(ह) सल्फर आइण्टमेण्ट अथवा यशदामृत मलहर (जिंक आक्साइड आइण्टमेण्ट) लगाने से भी लाभ होता है। "विवगन आइण्टमेण्ट, या "स्कैबिजन आइण्टमेण्ट भी लाभकारी है।

१०. पित्ती पर (मरोड़ी निकलने पर)—

जिक आक्साइड १ औंस, वोरिक ऐसिड १ औंस टाल्कम पाउडर २ औंस।

इन तीनों को मिला कर पाउडर के डिब्बे में भरकर रखलें। पफ से वच्चे के वदन पर लगायें पित्ती दूर हो जायेगी।

११. खुजलीपर—

गीली खुजली पर (वेट ऐग्जैमा) जिक आक्साइड १ औंस वोरिक ऐसिड ½ औंस, टाल्कम पाउडर तीनों को मिलाकर खुजली के स्थान पर बुरकें। जस्ता का मैल भी इस कार्य के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। सूखी खुजली पर झण्डू का स्कैबिजन आइण्टमेण्ट अथवा विविगन आइण्टमेण्ट मलें।

१२. पीलिया रोग नाशक अचूक उपाय-

विजयसार की लकड़ी के दो टुकड़े ले लें। एक टुकड़े को रात को स्वच्छ पानी भरे शीशे के गिलास में डालकर रख दें। सुवह देखोगे कि गिलास का पानी नीले आसमानी (थोड़ा सा हरापन लिये) रंग का हो गया है। वस इसी पानी की तीन खुराक बना कर दिन भर पीलिया से ग्रस्त वच्चे को पिलायें। इस टुकड़े को अलग निकाल कर सूखने दो ताकि अगली दफा फिर प्रयोग में ला सकें।

प्रातः दूसरे टुकड़े को इसी तरह पानी में डालकर रख दें और शाम को टुकड़ा निकाल कर सूखने दें और तैयार पानी की तीन खुराक बनाकर रात को वच्चे को पिलायें।

इसके सेवन करने से १० वर्ष तक की आयु के वच्चो का पीलिया (जांण्डिस) सिर्फ ३ दिन मे ही दूर हो जाता है।

विजयसार को 'असन' भी कहते है। संस्कृत मे 'बंधूक पुष्प' कहलाता है, गुजराती में वीयो वीया कहते है। इसका वौटनिकल नाम टैरोकार्पस मर्सू पियम है। जिन सज्जन को इस औषध की जरूरत हो वह अपने आस-पास के अत्तार अथवा देसी जड़ी बूटी विक्रेता से ले लें अथवा धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़, जिला अलीगढ़ से प्राप्त करलें। ★

न्यूमोनिया (डब्बा) ज्वर, कास पर

१. संजीवनी वटी (शार्ङ्गधरोक्त) श्रृङ्गभस्म, भुनासुहागा, केशर या गोरोचन यथोचित मात्रा मे, उसकात्र १/६ वां भाग रेवन्द उसारा मिलाकर, मां के दूध या शहद तथा पान के रस से दें। २/३ मात्रा में ही यथार्थ लाभ देखने को मिलता है।

[२) साधारण प्रयोग -

I. मुस्तोपकुल्या मंजिष्ठा श्रृङ्गीचूर्ण समाक्षिकम्। बालस्य ज्वर कासघ्नमतीसार वमि प्रणुत्॥

ज्वर, कास, अतीसार व वमन में—नागरमोथा, पीपल छोटी, मंजीठ, काकड़ासिंगी इनका चूर्ण शहद में मिलाकर चटावें।

II. श्रृंग्यम्बुदोपकुल्यातिविषा चूर्णं शिशोर्मधुना। दद्यात्कासवलासच्छर्दि ज्वर जिद्धवेदेनत्॥

यह प्रयोग वैद्यों का एक वार का नहीं हजारों वार का अनुभूत है वच्चों के लिए वहुत ही लाभप्रद प्रमाणित हो चुका है।

घटक– काकड़ासिंगी, नागरमोथा, छोटी पीपल, और अतीस। मधु से।

गुण– खांसी, कफ, छर्दि, ज्वर इत्यादि।

३. वालकों के सर्व रोगों में—

असली जवाखार, लगे पान को पीस उसका रस छानकर उसमें मिलाकर वालक को घूंटी की देवें।

—वैद्य मुन्नालाल गुप्त, ५८/६८ नीलवाली गली, कानपुर।

बालातीसा पर मेरी सफल चिकित्सा-विधि

वैद्यरत्न श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' बी. ए. (आनर्स), ई. एच. बी. आयुर्वेदरत्न
धजवा पो० नूरचक (मधुवनी)

ग्राम सतधारा, (मधुवनी) निवासी मोचे ततमा का लड़का, उम्र लगभग १ वर्ष। उसे टाइफाइड हुआ था। डाक्टरी चिकित्सा चली। रोग तो शमन हो गया लेकिन अतीसार का प्रादुर्भाव हो गया। इस अतीसार की चिकित्सा लगभग एक साल चली। डाक्टरी दवाओं से लाभ इतना ही होता था कि औषधि प्रयोगकाल में अतीसार ठीक रहता लेकिन इसके बाद पुनः होजाता। डाक्टरी इलाज मे बेचारा बर्बाद हो गया और अन्ततः आयुर्वेद की शरण में आया। मोचेदास की स्त्री को एक दिन माई-साहेब(हमारे इलाके की प्रसिद्ध कबीर सम्प्रदाय की दासी) मेरे औषधालय में बच्चे के साथ प्रविष्ट हुई। रोगी को देखा, एकदम कृशकाय शरीर में रक्त का कोई नामो निशान तक नही, सम्पूर्ण शरीर कांटे की तरह सूखा, भोजन में अरुचि, दिनभर में दस्तों की संख्या ५-६ बार जो पतला और आंव-रक्तादि रहित होता था। ज्वर की शिकायत एक दम नही। अग्नि एकदम मन्द। एलोपैथिक चिकित्सक इस रोग पर कितने ही प्रकार के मिक्चर चला चुके थे।

उक्त रोगी की चिकित्सा व्यवस्था निम्न प्रकार की गई—

१ प्रवाल पंचामृत १ रत्ती, सर्वांग सुन्दर रस (ग्रहणी) ½ रत्ती, ऐसी एक मात्रा पानी के साथ दिन में दो बार।

२. अरविन्दासव १ ड्राम, मुस्तकारिष्ट ½ ड्राम, ऐसी १ मात्रा समभाग जल मिलाकर दिन में तीन बार।

३. लाक्षादि तैल, शरीर पर विशेषतया टांगों और बाहुओं पर मालिश करने के लिए।

भोजन सुपाच्य दिया गया। प्रारम्भ में एक-दो दिन पेट कुछ फूला हुआ प्रतीत हुआ जिसके लिए लवण-भास्कर चूर्ण ४ रत्ती तक दिया गया और पेट पर तारपीन के तेल से मालिश की गई। उपर्युक्त चिकित्सा व्यवस्था डेढ़ माह चली और बच्चों ने पूर्णतः रोगमुक्त होकर नव जीवन प्राप्त किया।

२. बालक, वय ४ वर्ष, प्रारम्भ में आंत्रिक ज्वर हुआ। एलोपैथिक चिकित्सा के बाद रोगी रोग से मुक्त हुआ। इसके बाद अतीसार प्रारम्भ हुआ। एलोपैथिक चिकित्सा की गई लेकिन असफलता ही हाथ लगी। रोगी कई जगह चिकित्सा कराता, भटकता मेरे पास आया। यकृत्दोष भी था और रक्ताभाव भी साथ-साथ ही था। नेत्र देखने में एकदम सफेद। मैंने उसकी चिकित्सा निम्न-विधि से प्रारम्भ की:—

१. प्रवाल पञ्चामृत २ रत्ती, सर्वांग सुन्दररस २ रत्ती, नवायस लौह २ रत्ती, दिन में दो बार दही के पानी के साथ।

२. कुमार्यासव १ ड्राम, मुस्तकारिष्ट १ ड्राम, ऐसी १ मात्रा दिन में ४ बार बराबर पानी के साथ।

एक माह की उपर्युक्त चिकित्सा से रोगी को आश्चर्य जनक लाभ हुआ। रक्ताभाव के लक्षण कुछ शमन हुए थे और मल प्राकृत हो गया था। इसके बाद निम्न व्यवस्था की गई—

लोहासव २ ड्राम, अरविन्दासव १ ड्राम, ऐसी मात्रा दो बार समान भाग जल के साथ। १ माह इस प्रकार की व्यवस्था चालू रखी गई और रोगी ने पूर्ण लाभ प्राप्त किया।

मैं अपने अनुभवों के आधार पर कह सकता हूं कि बच्चों के लिए आयुर्वेदिक चिकित्सा जितनी अनुकूल पड़ती है उतनी एलोपैथिक चिकित्सा नही।

श्रीवर इन्दु की ज्योत्स्ना इस विशेषांक में सर्वत्र छिटकी है यहां उसकी अन्तिम रश्मि के सार्थक दर्शन होरहे हैं। उदीयमान ज्ञान के आकर इन्दु जी से हमें बहुत आशाएं हैं।

—गो. श. गर्ग

३. सोमारी खतवे की लड़की वय लगभग ७ वर्ष, ज्वर हुआ। एण्टीबायोटिक औषधियों के द्वारा चिकित्सा की गई ज्वर ठीक हो गया लेकिन रक्ताल्पता की शिकायत हो गई। चेहरा, जीभ, नेत्र, हाथ के पंजे सभी श्वेत नजर आने लगे। गुरुपाकी चीजों के खाने से पेट खराब हो गया और दिन भर में ६-७ दस्त हो गये। किसी दवा की दुकान पर जाकर 'दस्त बन्द करने वाली गोटी (Sulphaguanidin) ले आया। दस्त बन्द हो गया लेकिन हाथ पैर में शोथ हो गया। पुनः उसी दूकानदार से दवा ले आया, जिससे दस्त बन्द हुए थे। शोथ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उस रोज से प्रतिदिन ५-६ दस्त हो जाते थे। कमजोरी दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई। अन्त में रोगी को मेरे समक्ष लाया गया। यकृत्वृद्धि भी देखी, साथ ही उपर्युक्त सभी लक्षण दृष्टिगोचर हुए। इसकी चिकित्सा-सुव्यवस्था निम्न प्रकार की गई—

आयुर्वेदिक सई—

१. मण्डूर भस्म १ सी. सी., पुनर्नवा १ सी. सी. ऐसी एक मात्रा सिरिंज में भरकर मांसान्तर्गत सुई एक दिन छोड़कर।

२. कुमार्यासव ३ चम्मच दिन में दो बार भोजनोपरान्त समान भाग जल के साथ।

३. सर्वाङ्गसुन्दर रस (ग्रहणी) १ रत्ती, प्रवाल पंचामृत आधी रत्ती, नृपतिवल्लभ रस आधा रत्ती, ऐसी एक मात्रा दिन में दो बार मधु के साथ।

उपर्युक्त व्यवस्था १५ रोज तक चली। शोथ तो प्रथम दिन ही गायब हो गया। पेट भी ठीक हो गया और रोगिणी भली-चंगी हो गई। बाद में सभी औषधि बन्द कर रक्ताल्पता के लिये लोहासव ३ चम्मच दिन में २ बार भोजन के पश्चात् समान भाग जल के साथ देने की व्यवस्था की गई।

बालातीसार पर होमियोपैथिक औषधियों का अनुभव

१. मल का रंग हरा-हरा और फेनयुक्त हो, उसके ऊपर अण्डे की सफेदी या चर्बी जैसा पदार्थ दिखलाई दे तो Magnesia carb उपकारी दवा है। इसमें कभी-कभी गहरे हरे-रंग का दस्त होता है और उसके ऊपर उदर के छिलके जैसा एक प्रकार का पदार्थ तैरता रहता है। दस्त होने से पूर्व उदर में शूल के दर्द की तरह जबरदस्त दर्द हुआ करता है। बहुत वेग और कुंथन होती है। रोगी कमजोर हो जाता है, मल की गन्ध खट्टी, रोगी के शरीर तक में खट्टी गन्ध रहती। दुधमुहे शिशुओं के अतीसार में बिना पचा हुआ दूध निकलता है। उपर्युक्त लक्षणों के सादृश्य रहने पर Magnesia carb का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

२. बच्चा क्रोधी स्वभाव का हो, किसी भी प्रकार स्थिर नहीं रहता हो, सिर्फ रोता ही रहता हो, कोई भी वस्तु देते ही फेंक देता हो तो इन मानसिक लक्षणों की उपस्थिति में Chamomilla निश्चित फलप्रद है। Chamomilla का अतीसार पतले और गर्म, रंग हरा और पिलाई मिश्रित। पाखाने के साथ पित्त मिश्रित रहता है, जिससे मलद्वार की खाल गल जाती है। दस्त बहुत बदबूदार, सड़े अण्डे की तरह गन्ध जिसमें थोड़ा मल और थोड़ा पानी रहता है। इसके पतले दस्त सन्ध्या के समय बढ़ जाते हैं।

३. दस्त का रङ्ग भूरा हो, फेनयुक्त और उसमें खट्टी गन्ध वर्तमान रहे तो Rheum अतीव कल्याणकारी है। दस्त इतना खट्टा होता है कि धो-पोंछ देने पर भी शरीर की खट्टी गन्ध दूर नहीं होती।

४. बच्चा जो भी ग्रहण करे वह सब प्रायः दस्त के साथ निकल जावे। जैसे ही दूध को कै कर दे, वमन के पश्चात् स्तनपान करना नहीं चाहे, उसकी जीभ पर सफेद लेप रहे जैसे दूध लगा हो, बच्चा हमेशा चिड़चिड़ा बना रहे तो Antim-crud अमृत सदृश उपकारी है।

५. मल का रङ्ग हल्का पीला या हल्का हरियाल, कभी पानी की तरह उसमें आव या खून मिला हो, दूध पीते ही दही की तरह थक्का-थक्का वमन हो जाय तो Aethusa उपयोगी है। इसका में प्रत्येक बार वमन-दस्त होने के पश्चात् बच्चा कुछ देर तक मुर्दे की तरह चुपचाप पड़ा रहता है। इस औषधि में प्यास का भाव बिल्कुल नहीं रहता है।

उपर्युक्त औषधियों के अतिरिक्त और भी कितनी ही औषधियों का व्यवहार लक्षणों के सादृश्य रहने पर किया जाता है।

दो बाल रोग और मेरी अनुभूत चिकित्सा

वैद्य श्री गोवर्धनदास चागलानी, अध्यक्ष—श्री घनश्याम (गोवर्धनधारी)
आयुर्वेद भवन, एटा

१. श्वसनक ज्वर—

साधारण बोलचाल की भाषा में इसे पसली चलना, डब्बा, फुफ्फुसज्वर, श्वसनक ज्वर, बाल निमोनिया आदि नामों से पुकारते हैं।

कारण — फुफ्फुस की दुर्बलता, अकस्मात् शीत लग जाना, सर्दी-जुकाम-कफ प्रकोप में ठंडी बर्फ, दही-मट्ठा, चावल आदि का सेवन इस रोग के उत्पन्न करने में मुख्य कारण हैं।

लक्षण — रोग के आरम्भ होने पर बालक को पहले सर्दी जुखाम, खांसी, पसलियों में गड्ढे पड़ना, पसलियों में दर्द होना, श्वास लेने में कठिनाई, श्वास का वेग बढ़ जाना घबराहट होना, ज्वर का वेग बढ़ जाना, दस्त तथा उल्टी का होना, रोग अधिक तीव्र होने पर हृदय-दुर्बलता से हाथ-पैरों का शीतल होने पर तथा पसीना आने पर हृद्शक्ति-वर्धन का तत्काल उपाय करना चाहिये। अन्यथा हृद्-अवसाद होकर रोगी बालक की मृत्यु हो सकती है। अतः रोगी बालक के अर्धमूर्च्छित की अवस्था में खूब सावधानी से चिकित्सा करने की आवश्यकता है।

चिकित्सा -

साधारण सर्दी-जुखाम-खांसी तथा पसली पर रोग का असर होने पर मैं निम्नलिखित औषधि मिश्रण देता हूँ—

१. संजीवनी वटी २ रत्ती, त्रिभुवनकीर्तिरस १ रत्ती, श्रृङ्गभस्म १ रत्ती, अभ्रकभस्म आधा रत्ती, व्योषादिवटी १ गोली (४ रत्ती)। मिलित ४ मात्रा—२-३ घन्टे पर मां के दूध, चाय या गर्म जल से दें।

जिन रोगी बालकों को दस्त होते हैं उन्हें व्योषादि वटी उपरोक्त मिश्रण में से निकालकर सिद्धप्राणेश्वर रस, रामबाण अतीसारी वटी या हिंग्वष्टकचूर्ण अवस्था तथा रोगानुसार मिलाकर देता हूं। उल्टी होने पर उपरोक्त मिश्रण में गंधकवटी (राजवटी) सितोपलादिचूर्ण मिलाकर या अलग से देता हूं। अधिक उल्टी होने पर लोहासव+शर्बत नीबू+अमृतधारा १-२ बूंद मिलाकर बारी-बारी से औषधि मिश्रण तथा आसव मिश्रण देने की व्यवस्था ठीक रहती है। पसली पर बाम, घी+कपूर, तारपीन का तैल+कपूर आदि लगाकर हल्का (कपड़े के ऊपर) सेक करना चाहिये। आवश्यकतानुसार अंडी के पत्तों या पान के पत्तों को सेककर महानारायण तैल आदि पसली पर लगाकर बांध देना चाहिये। कफ-खांसी के प्रकोप को दूर करने, हृदशक्ति बढाने के लिये द्राक्षारिष्ट में दशमूलारिष्ट या अर्जुनारिष्ट मिलाकर १०-१५-२० बूंद दिन में ४-६ बार दें। अधिक हृद्दुर्बलता पर कुमारकल्याण रस (स्वर्णमुक्तायुक्त), बृहत् वातचिन्तामणि रस, श्वासचिन्तामणिरस आदि दें। अर्धमूर्छित अवस्था, वातप्रकोप तीव्र ज्वर, आक्षेप (दौरे) की अवस्था में लक्ष्मीनारायणरस उत्तम औषधि है। उपरोक्त चिकित्सा व्यवस्था के साथ ही बालकों तथा माता का दूध पीने वाले बच्चो की माताओं को शीतल जल-बर्फ, दही मट्ठा, चावल, मूंगफली, कच्ची प्याज, मूली आदि से बचाव करना चाहिये। रोगी बच्चों की माताओं को मैं बालक की औषधि के साथ संजीवनी वटी, लक्ष्मीविलास रस, कफकेतुरस, गंधक (राज)

देश के बंटवारे ने सिन्धुदेश के आर्यों को भी सिन्धुघाटी से काफी दूर अपनी कर्मठता से भारत देश को आलोकित करने का सुअवसर प्रदान किया है। हमारे प्रबुद्ध लेखक श्री चागलानी जी सिन्धु की माटी से बने पूर्वजों की सुयोग्य सन्तान और पीयूषपाणि चिकित्सक हैं। आपने न्यूमोनिया तथा मलावरोध पर अपने अनुभवों का यहां अच्छा प्रकाशन किया है।
—गो. श. गर्ग

वटी, हिंग्वष्टकचूर्ण आदि रोग तथा अवस्थानुसार देता हूं जिससे बालकों को शीघ्रलाभ मिलने लगता है।

मलावरोध—

कारण—बालकों में मलावरोध बड़ों की भांति अधिक देखने में आता है। मां का दूध पीने वाले बच्चों को अधिकतर मलावरोध मां से ही मिलता है अर्थात् मां को मन्दाग्नि, मलावरोध का रोग होने पर बच्चे को अवश्य ही उस रोग का शिकार होना पड़ता है। वहां पर बालकों को ऊपरी गाय-बकरी-भैंस आदि के दूध तथा अन्य आहार में दोष के कारण का पता लगाकर मलावरोध दूर करने का उपाय करना चाहिये। खोये, बेसन, मैदे की बनी चीजें तथा अन्य गरिष्ठ पदार्थ नहीं देने चाहिये। घी-तैल की तली (सिकी हुई) वस्तुएँ भी पाचन का ध्यान रखकर बहुत कम मात्रा में देनी चाहिये।

फलों में—पपीता पका हुआ, मुनक्का-किशमिश, अंजीर, अंगूर, नख, नाशपाती, अमरूद आदि मलावरोध दूर करने में सहायक हैं।

लक्षण बालकों को दस्त साफ नहीं होता, कम तथा देर में होता है।

चिकित्सा—बालकों के मलावरोध के मूल कारण का पता लगाकर उसका निवारण करना चाहिये। मां को मलावरोध (कब्ज) होने पर दूध पीते बच्चों को यदि मलावरोध है तो मैं प्रायः माता को पंचसकारचूर्ण, पंचसमचूर्ण, शिवाक्षार पाचन, अश्वगंधादि रसायन, त्रिफलाचूर्ण, ईसबगोल की भूसी, गुलाब के फूलों का गुलकन्द आदि कुछ दिन लेने की सलाह देता हूं। साथ ही भविष्य में गरिष्ठ वस्तुओं का त्याग कर मलावरोध दूर करने में सहायक फल आदि तथा आहार-विहार में दालों का कम सेवन, हरी सब्जियों का अधिक सेवन करने का परामर्श देता हूं। इससे माता तथा शिशु दोनों का मलावरोध धीरे-धीरे दूर होने लगता है। पाचन बढ़ने लगता है। स्वास्थ्य में सुधार होने लगता है। सुस्ती, आलस्य आदि दूर हो जाते है। जिन माताओं या शिशुओं को तत्काल मलावरोध (कब्ज) दूर करने की आवश्यकता प्रतीत होती है उन्हें शुद्ध एरण्ड तैल (कैस्टर ऑयल) केवल माता को ।। तोला (१ औंस) या कुछ कम ज्यादा अवस्थानुसार गर्म दूध में मिलाकर देने से बच्चे को भी माता का दूध पीते रहने से दस्त होने लगते हैं। दोनों के दस्तों में आम-गांठें आदि निकल कर लाभ मिलता है। जहां केवल छोटे बालक को ही शुद्ध एरण्ड तैल देने की आवश्यकता हो तो १½ माशा से ६ माशा तक गर्म दूध में मिलाकर दें या मां के दूध में दें। मात्रा--अवस्था तथा रोगानुसार देनी चाहिये। यदि केवल बालकों को ही पाचन विकार यकृतदोष तथा अन्य उदर रोगों से मलावरोध हो तो ऐसे बालकों को द्राक्षारिष्ट, द्राक्षासव, कुमारीआसव आदि घुटी की तरह (जन्म घुटी की भांति) दे सकते हैं १ माशा से ३ माशा तक।

किसी-किसी रोगी बच्चे को मैंने हिंग्वष्टकचूर्ण १ रत्ती से ४ रत्ती तक देशी घी में मिलाकर २-३ बार देने से उदर विकार, पाचन विकार, मलावरोध में लाभदायक पाया है। हमें (सिन्धी) समाज की बड़ी-बूढ़ी माताओं के इस अनुभवी ज्ञान से लाभ उठाना चाहिये कि, मक्खन (लोनी) छोटे बच्चो (शिशुओं) को नित्य प्रति देते रहने से मलावरोध नहीं होता। साथ में वे बड़ी-बूढी माताएं पाचन की भी चीजें देती हैं।

नोट—मक्खन (लोनी) सर्दी जुकाम कफ-खांसी-दस्तों के रोगी बालकों को नहीं देना चाहिये। ★★

शिशुओं के दो रोग और मेरे अनुभूत योग

कविराज कमलेश्वर वशिष्ठ आयुर्वेदाचार्य, चौक बाजार रेवाड़ी

मेरे कुछ कर्णशूल एवं कर्णस्रावनाशक प्रयोग

कर्णस्राव, कर्णशूल, वाधिर्य, कर्णनाद आदि में एक ही प्रकार की औषधियां प्रयुक्त होती हैं। फिर भी कुछ औषधियां अलग-अलग रोगों में प्रयुक्त होती हैं। कुछ साधारण प्रयोग जो नीचे दिये हैं कर्णविकारों में अनुभूत हैं।

१. अद्रक स्वरस-मधु और सैंधव को समान भाग लेकर सरसों के तैल में सिद्ध कर कान में डालने से समस्त कर्ण रोग दूर होते हैं।

२. लहसुन, अद्रक, सहंजना, मूली, वरना व केले के खम्भे के रस से सिद्ध तैल को कान में डालने से समस्त कर्ण रोग दूर होते हैं।

३. खाली गोमूत्र को निवाया (गरम) करके कान में डालने से कर्णस्राव व कर्णशूल दूर होते हैं।

४. कर्णमूल शोथ होने पर या कर्णशूल पर भी उपरोक्त औषधियों को कान में डालने के साथ-साथ कर्णमूल पर कालीजीरी को गोमूत्र में पीसकर सुहाता-सुहाता गरम करके लेप करें तो कर्णशूलादि रोग दूर होते हैं।

५. कुष्ठादि तैल, क्षार तैल, वालबिल्वादि तैल भी कर्णस्राव एवं कर्णशूल में श्रेष्ठ हैं।

६. निम्न तैल कर्णरोगों में बहुत हितकारी है।

मालकांगनी, मुलहठी, पाठा, धाय के फूल, पृश्नपर्णी, शालपर्णी, मजीठ, लोध, लाख पीपल, इनको पीसकर कैथ के रस के साथ तैल में पकावें, इस तैल को कान में डालने से कर्णशूलादि रोग दूर होते हैं।

७. मूली का रस, केले के खम्मे का रस, अजवायन, अद्रक,हींग, सैंधानमक, सज्जीक्षार द्वारा सिद्ध तैल समस्त कर्णरोगों को दूर करता है।

८. **कर्णशूल नाशक तैल**—मुलहठी, अनन्तमूल, चन्दन, खस, काकोली, लोध, जीवक, कमलनाल, मजीठ, बरिवा इनका कल्क ८ तो०, मुलहठीरस ६४ तो०, दूध १२८ तो०, तैल सरसों ६४ तो०, इन्हें भली प्रकार पकाकर तैल सिद्ध करके कान में डालने से समस्त कर्णरोग दूर होते हैं। (अष्टांग हृदय कर्णरोगाधिकार)।

९. एक अन्य प्रयोग—मूलीक्षार, हींग, सोंठ, सैंधा, वच, कूठ, देवदारु, विड्नमक, नागरमोथा सब समान भाग शहद एवं बिजौरे का रस कांजी व केले के खम्भे का रस प्रत्येक चार भाग, तैल १ भाग इन्हें पाक-विधि से सिद्ध करके उपयोग करने पर समस्त कर्णरोग दूर होते हैं। (अष्टांग हृदय कर्णरोगाधिकार)।

२. बच्चों की कर्णशूल परीक्षा—जब बच्चा कान के छूने पर या बार-बार कान के पास अपना हाथ लेजाकर रोने लगे तो समझना चाहिए कि इस कान में पीड़ा हो रही है।

यदि बच्चे को ब्रांकोन्युमोनिया के कारण कर्णशूल उत्पन्न हुआ है तो बच्चा अपने सिर को पीछे की ओर झुका लेता है और रोता रहता है। बहुत जगह प्रायः देखा जाता है कि बच्चों के यदि कर्णस्राव है तो भी इसमें पीड़ा होती है, इसका कारण कर्णगत तीव्र विचर्चिका होता है। भावप्रकाश ने एवं सुश्रुत ने कर्णस्राव को दो भागों में बांटा है। एक को पूतिकर्ण कहते हैं दूसरे को कर्णस्राव कहते हैं।

हरियाणा की पावनभूमि जहां बार-बार भारत भाग्य का ऐतिहासिक निर्णय हुआ और जहां से श्री मद्भगवद्गीता का पुनीत स्वर गूंजा वहीं वशिष्ठ कुलोत्पन्न कमलेश्वर जी अपना चिकित्सा चमत्कार प्रकाशित कर जन-मन-आल्हादन में संलग्न हैं। आपके द्वारा हमें २ सुन्दर अनुभव पुंज प्राप्त हुए हैं। आशा है भविष्य में वे और भी प्रदान करेंगे।

—गो. श. गर्ग

शिशुओं के रोग और मेरे अनुभव

वैद्यवर्य श्री विश्वम्भरदयाल गोयल बी. ए., १३६, नादानमहलरोड, लखनऊ

आयुर्वेद शास्त्र में निम्न लिखित उपचार यदि वर्ते जांय जो सुरक्षा की दृष्टि से बड़ा महत्व रखते हैं वे अति उत्तम हैं।

(१)नाल काटते (नालच्छेदन)समय बालक की नाभि में कटे हुए नाल पर बादाम के छिलके के कोयलों का महीन कपड़छन चूर्ण और उत्तम कस्तूरी चूर्ण महीन कर छिड़कना, नाभिपाक, डब्बा रोग, सर्दी रोग व उदर सम्बन्धी व्याधियों से किसी हद तक बालक का बचाव होता रहता है।

(२)यदि माता के गर्भावस्था काल में ही तीन चार माशा शुद्ध रसौत का सेवन ३, ४ सप्ताह (यदि सात सप्ताह तक तक ६ दिन प्रति सप्ताह सेवन करें तो और सुन्दर है)तक करने से शीतला,विसर्प विस्फोट रोगों से बालक की सुरक्षा होती है। प्रथम तो ये रोग होते ही नहीं और यदि सक्रमणवश हो भी गए तो इन रोगों का संक्रमण मन्दरूप में ही होता है।

(३) गर्भावस्थाकाल में माता यदि गरी गोला नारियल (श्रीफल की गिरी) और मिश्री या इसके द्वारा निर्मित पाक सेवन करती रहे तो बालक निसन्देह स्वस्थ सुन्दर एवं मेधावी होता है।

(४)आठ महीने का गर्भ होने पर स्वर्ण भस्म आधी रत्ती मोती भस्म, प्रवाल भस्म १-१ रत्ती मधु मिलाकर नित्य चाटना और दूध पीना प्रसवोपरान्त असली कस्तूरी ३ रत्ती बालक की नाभि पर रखना तथा स्वर्ण भस्म चौथाई रत्ती, आमला चूर्ण एक रत्ती के साथ मधु मिला बालक को भी एक दो सप्ताह चटाना। माता दशमूलादि अर्क १-२ तोला प्रातः सायं सेवन करे तो निसन्देह स्वास्थ्य रक्षा के लिये हितकारी योग है।

(५) होम्योपैथी के अन्तर्गत या बायोकेमिक रूप में (१) कल्केरिया फास ६X(२) केल्केरिया फ्लोर ६Xपरियाय क्रम से अर्थात् एक दिन एक और दूसरे दिन दूसरी औषधि की तीन चार टिकिया प्रति मात्रा लेकर दिन में दो तीन बार सप्ताह में ६ दिन तक सूखी ही या जल में घोलकर सेवन करना तथा सातवें दिन नेट्रम् म्यूर ६ ऊपर कहे अनुसार लेते रहना बालक के अवयवों को पुष्ट कर स्वस्थ सुन्दर बनाती है। माता को भी सुधा (केल्शियम) की कमी नहीं होने पाती और माता का विकास एवं दुग्ध भी स्वास्थ्यकारी उत्पन्न होता है। मैं इन औषधियों के चमत्कारी प्रभाव को पिछले तीस वर्षो से अनुभव करता आया हूं। यदि तीन महीने का गर्भ होने पर केल्केरिया फास ६X केल्केरिया फ्लोर ६X काली फास ६X तथा मैगनेशिया फास ६X इन चारों को समभाग मिलाकर तीन तीन रत्ती मात्रा में दिन में तीन चार बार सूखी जीभ पर रख या गुनगुने पानी में घोल पीना चाहिये। यह क्रम प्रसवोपरान्त तक जारी रखना एक चमत्कारी योग ही सिद्ध होता है। इसके द्वारा माता और बालक स्वस्थ तो रहते ही हैं गर्भ भी पूर्ण सुरक्षित रहता है। वाइबर्नम् प्रूनीफोलियम् मूलार्क का दो से पांच बूंद मात्रा में जल मिला सेवन करना प्रति सप्ताह ६ दिन तक गर्भ गिरने की सम्भावनाओं

सन् सत्तावन के आदि स्वातन्त्र्य युद्ध की क्रीड़ाभूमि लखनऊ में अपने विद्या विनय वैभव संकुलित जीवन को संजोये हुए श्री गोयल साहब का कृपा कटाक्ष सुधानिधिपत्र पर आरम्भ से ही रहा है। आपके अनुभव जो इस विशेषांक को अलंकृत किए हुए हैं बालसमाज के लिए परमोपादक सिद्ध होंगे। आपने अपनी ४० साल की सफल चिकित्सा के आधार पर इन अनुभवों को लेखबद्ध किया है। उनकी इस सहज कृपा के लिए हम सभी आभारी हैं। गो. श. गर्ग

को निर्मूल कर देता है और गर्भ को पुष्टकर बालक स्वस्थ ही उत्पन्न होता है।

बालक को घुटी देना भी उसको स्वस्थ रखने में सहायक होती है पर आजकल नए फैशन या आलस्य के वशीभूत कर्तव्य की अवहेलना करने वाली लापरवाह स्त्रियां घुटी नहीं पिलाती, निम्नलिखित घुटी अपना जो स्थान रखती है अनुभव ही बता सकता है।

घुटी का योग—सौंफ, बड़ी हरड़ की बकली, सनाय, मुनक्का, हल्दी, सुहागा का फूला, ढाक का पापड़ा (बीज), अमलतास, सेंधानमक, इन्द्रायण का गूदा, कालानमक, वायविडंग, कमीला, कुटकी, गुलबनफसा, श्वेतजीरा, अजवाइन, जो कुटकर दो तीन माशा जल में पकाकर सप्ताह में एक दो बार मधु मिला पिलाना बालक को अनेक बाधाओं से मुक्त कर देती है, उदर साफ होकर पाचन शक्ति ठीक कर देती है जो अच्छे स्वास्थ्य की कुञ्जी कही जाती रही है।

घुटी के स्थान और समय के परिवर्तन से अनेकों योग प्रचलित हैं और प्रायः इन्हीं घटकों के हेर-फेर से अनेकों और भी योग बने हैं।

प्रायः स्त्रियां आलस्य और लापरवाही से ठीक प्रकार दूध न पिलाने से भी रोग में सहायक होती हैं। अतः निम्न आदेश पालन करें।

(१) दूध पिलाने से पूर्व दो तीन बूंद दूध निकाल कर फेंक देना संक्रमण या गन्दगी द्वारा मिश्रण का बचाव करता है।

(२) दूध न अधिक गाढ़ा हो और न अधिक पतला हो। यदि दूध गाढ़ा हो तो शिकञ्जबीन, या शिकञ्जबीन बजूरी या पोदीना और अजवाइन आदि पतला करने वाले योग सेवन करे और यदि अधिक पतला हो तो दूध रोटी या दूध चावल हरीरा आदि दूध गाढ़ा करने वाले योगों का व्यवहार करना चाहिए।

(३) दूध बालक की पाचन शक्ति की दशा के अनुसार उचित मात्रा में पिलाना चाहिये। एक बार में अधिक पिलाना (जो बालक स्वाद में पी जाता है) हानिकारक होता है।

(४) स्तन स्वस्थ और साफ होने चाहिए। यदि फोड़ा फुन्सी या खाज खुजली आदि चर्म रोग हो तो दूध न पिलाना अधिक हितकर है।

(५) लेटकर दूध पिलाना बालक के कान बहने का कारण बन जाता है।

अतः सावधानी से प्रथम तो दुग्धवृद्धिकर योगों (जैसे जीरासफेद, विदारीकन्द, शतावर आदि मिश्री या खांड मिला फंकी लेकर गो दुग्ध पीना) द्वारा दूध पूरा करने का प्रयत्न किया जाय। अभाव में बकरी या गौ दूध को सौंफ और जल मिला औटा कर देना श्रेयस्कर है। अंडी के तेल का स्तनों के ऊपर हल्के हाथ से मलना और अंडी तैल १० से ३० बूंद मात्रा में दूध में मिलाकर सेवन या खांड़ में मिलाकर फांककर दूध पीना या १०, १२ अण्डी की गूदी (अण्डी के बीज का छिलका दूर कर) कुचल कर दूध एक पाव और जल एक पाव में मिला आग पर पकाकर दूध मात्र रहने पर मीठा डालकर पीना दूध को बढ़ाता है।

होम्यो पैथी का कैलकेरिया मूलार्क या लेसेथा मूलार्क या अर्टिकायुरेन्स मूलार्क (Urticau-ens) १,२ बूंद जल मिला दिन में दो तीन बार लेना धात्रियों में दूध की मात्रा और शक्ति बढ़ाता है। बायोकैमिक का कैल्केरिया फास ६X और केल्केरिया फ्लोर ६X पर्याय क्रम से कुछ दिन सेवन करना अतीव गुणप्रद है। शिशु के रोगी होने का कारण भोजन तत्व की कमी एवं ऋतु परिवर्तन रूप में ठंड गर्मी वर्षा के धक्कों के प्रभाव को सहन करने की शक्ति की कमी है। अपचन अतीसार होना शीतला खसरा आदि अनेक रोग होते हैं इनका यदि पूर्ण विवेचन किया जाय तो एक पूरी पुस्तक का रूप ही बन जायगा यहां अनुभव प्रदत्त योगों की पुष्टि रूप वर्णन करने का प्रयत्न कर रहा हूं।

(१) अपच में घुटी तो श्रेयस्कर है ही पर छोटे बालकों के हित में माता या धात्री को औषधि सेवन एवं पथ्य द्वारा सुधार करना अधिक उपयुक्त होता है।

साधारणतया मधु चटाना या सौंफ और पोदीना के पत्ते औटाकर या पीसकर पिलाना या सौंफ का अर्क या गुलाब के अर्क में छोटी इलायची या वंशलोचन महीन पीसकर १-२ रत्ती मिलाकर पिलाना या शर्बत अनार चटाना लाभकारी होता है।

कालानमक १ भाग, सुहागा फूला १॥ भाग, नौसादर २ भाग, कलमीशोरा दो भाग, त्रिकुटा (सोंठ, पीपल, कालीमिरच का समभाग चूर्ण) ढाई भाग, और घृतकुमारी का छिलका रहित गूदा २० भाग लेकर एवं मथकर तथा अन्य घटकों का चूर्ण कर मिलाकर किसी अमृतवान् में भरकर (जो तीन चौथाई भाग से अधिक न भरा जाय) यह मुह बन्द कर मुखमुद्रा (कपड़ मिट्टी कर सधान) कर दें और एक महीना रखा रहने दें। फिर उचित मात्रा में १ से ३ माशा जल मिलाकर भोजनोत्तर चटाना या पिला देना उदरामय, यकृत्, तिल्ली ठीक हो, अग्निदीप्त हो। रुचिकारक, खट्टाडकार, छाती की जलन, कब्ज, उदरशूल आदि दूर हों।

२. **बालामृत योग**—मुलहठी, वायविडंग, सोंठ, कालीमरिच, पीपल, वच मीठी, अतीस मीठी, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, लालचन्दन और धनियां १-१ तोला लेकर जौकुट कर दो सेर जल में पकावें और चौथाई भाग काढ़ा कर उतार छान लें तथा एक सेर मिश्री या खांड मिला चासनी बना शर्वत तैयार कर लें। उचित मात्रा में १ से ३ माशा चटाना। इससे उदर के समस्त रोग शान्त हो जाते हैं।

होम्योपैथी में फेरमफास ६ तथा काली़म्यूर ३X एक के बाद दूसरी का सेवन कराना अर्थात् दिन में दो-दो मात्रा ३,४ गोली या टिकियां या चूर्ण खिलाना उदर विकार पर अच्छा कार्य करते हैं। उदरशूल में "मैगफास ३X" ३,४ टिकिया गुनगुने जल से १०,१० या २०,२० मिनट पर दो, तीन बार लेना अच्छा कार्य करता है। यदि घी या तैल मिश्रित भोजन के कारण उदर विकार हो तो पल्सेटिला ३० की एक दो मात्रा उपयोगी है।

मुख में छाले होने पर होम्योपैथी का सैलोल ३X भी बड़ा सुन्दर कार्य करता है। वैसे लक्षण भेद से "मर्क सोल ३० (अधिक लार बहती है।) बोरेक्स ३० या जब जीभ पर सफेदी गहरी हो तो एन्टिम टार्ट ३० इसमें दूध डालने की भी शिकायत रहती है लाभप्रद है।

आयुर्वेदीय लटकों में, पीपल (अश्वत्थ) की छाल का कपड़छन या शीतल चीनी, पपड़िया कत्था, छोटी इलायची और वंशलोचन का कपड़छन चूर्ण छिड़कना अच्छा कार्य करता है।

अतीसार में—१. आम की गुठली और जामुन की गुठली, अनार की छाल चूर्ण कर नमक मिलाकर चटाना।

२. अनार की छाल या अर्जुन की छाल, या पुरानी आम की गुठली या आम की अन्तरछाल और कुड़ा की छाल चूर्णकर कपड़छन १-३ माशा मधु मिलाकर चटाना।

३. आमला का चूर्ण नमक मिला प्रातःसायं १ से ३ माशा खिलाना उदर को शक्ति देता है।

४. दुद्धी छोटी और २,३ कालीमरिच पीसकर चटाना।

५. पोस्तडोंडा, सौंफ और छोटी हर्र समतौल दरदरा कूट घी में भून लें (जलने न पावें) और महीन पीस थोड़ा-थोड़ा चटाना।

६. बबूल की छाल या बबूल की कोपल सफेदजीरा और अनार की कली १,१ माशा जल में पीस छान दिन में ३,४ बार पिलाना।

७. अद्रक रस और मधु मिलाकर चटाना।

८. सोंठ और अजवायन तथा चौथाई कालानमक मिला पीसकर १ से ३ माशा चटाना।

९. बरगद का दूध नाभि में भरना अतीसार हर है।

१०. कत्था और दालचीनी १-२ रत्ती मधु से चटा देना।

११. चीता, चव्य, बेलगिरी और सोंठ, गौतक्र के साथ चटा देना अतीसार एवं संग्रहणी को नाश करता है।

१२. कालानमक, चित्रक की छाल और कालीमिरच का चूर्ण मधु से चटा देना। ऐसे अनेकों आयुर्वेदीय रत्न जहां तहां फैले पड़े हैं जो गुणों में बेजोड़ कारकर योग हैं।

होम्योपैथी में दांत निकलने के समय या वैसे ही हरे पीले, फटे-फटे, दूध अलग और पानी अलग, अण्डों की सी सड़ी गन्ध के दस्त आने पर "कैमोमिला १२ से २०० शक्ति तक मन्त्रवत् कार्य करती है। यदि एक दम से पिचकारी वत् पोंक निकलती हो तो "पोडोफाइलम ६ भी बेजोड़ कार्य करती है। आमातीसार या रक्तातीसार में यदि आम या मल निकलने पर कुंथन बढ़ जाती है तो मर्कसोल ३०–इसमें आम की अधिकता होती है। यदि रक्त की अधिकता हो तो मर्ककोर ६ भी बड़ी कारगर औषधि है। यदि ऐंठन या कुंथन पहले हो और बाद में शान्त हो जाय तो नक्सवाम ३०, बड़ा सुन्दर कार्य करती है। यदि बिना कष्ट के अनजान में ही आम निकल जाय तो "अलो २००"१ मात्रा कुशलता से कार्य दिखाती है।

बच्चों के डब्बारोग की दो अनुभूत जड़ी-बूटियां

वैद्य आदित्य भाई पटेल एम. ए. (द्वय), आयुर्वेदरत्न, आयुर्वेद मध्यमा,
१२-श्रीनिधि सोसायटी, पो० राणीप, अहमदाबाद ५

अहिन्दी भाषी क्षेत्र गुजरात की साबरमती सिक्त परम पुनीता भूमि के पावन संस्पर्श से धन्य श्री आदित्य भाई पटेल को हिन्दी भाषा के माध्यम से देशभक्तिपूर्ण सेवा का प्रसाद सुधानिधि को अपने जन्मकाल से ही मिलता रहा है। अतीव रोचक ढंग से आधिकारिक शैली में आयुर्वेद चिकित्सा के गहन साधन जड़ी बूटियों के गुणात्मक प्रखर पाण्डित्य को आयुर्वेदादित्य ने सहज शैली में प्रस्तुत कर हमें सहजानन्द में विभोर कर दिया है।

—रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

सिताब और खोबला

थोड़े साल पहले की बात है, मैं अपने एक मित्र के घर गया था। उस वक्त उनकी छोटी बच्ची की हालत बहुत खराब थी। बच्ची की छाती कफ से भर गई थी। पेट वायु से भर गया था। चेहरा फीका पड़ गया था। बच्ची श्वास नहीं ले सकती थी। उन्होंने मुझसे कहा, "बच्ची बीमार है, इसको डब्बा रोग है। उसका कोई इलाज बताओ।" मैंने कहा, "बच्चों के लिये यह रोग बहुत ही खतरनाक है, फिर भी इसका इलाज तो करना ही चाहिये। मैं तुमको एक जड़ी बूटी लाकर देता हूं। तुम इसका इलाज करो, ईश्वर कृपा से बच्ची चंगी हो जायेगी।" उन्होंने हां में हां भरकर कहा, "तुमको जो ठीक लगे करो, मगर किसी तरह उसको बचाओ।"

मैं तुरन्त ही साइकिल पर सवार हुआ और विक्टोरिया गार्डन में पहुंच गया। वहां रानी विक्टोरिया के पुतले के पास ही सिताब के पौधे खड़े थे। सिताब की थोड़ी पत्तियां ले लीं। मैंने जाकर मित्र को दे दीं और सूचना दी कि उनमें से तीन-चार पत्तियों को मसलकर पानी के साथ पिला दो।" उन्होंने मेरे कहने के मुताबिक इलाज किया। वमन और दस्त के साथ शरीर का सारा कफ निकल गया। बच्ची की हालत सुधर गई। जो बच्ची स्वर्ग की यात्रा का पथ दर्शन कर रही थी, वह निश्चित रूप से बच गई। ऐसे बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं। गुजरात के सूरत जिले के देहातों में तो इस पौधे के बड़ी तादाद में दर्शन होते हैं। लोग अपने आंगन में या खेत में एकाध पौधा तो जरूर लगाते हैं। सूरत जिले में ज्यादा बारिश होने की वजह से वहां बच्चों को सर्दी, जुकाम, और डब्बा रोग विशेषतया होता रहता है। इस-लिये वहां के लोग इस पौधे को हिफाजत से अपने यहां लगाते हैं और उसका फायदा उठाते हैं। इस अमूल्य जड़ी बूटी का परिचय निम्नदर्शित है।

सिताब का मूल उत्पन्न स्थान ईरान देश है। मगर आजकल भारत के बगीचों में इसके पेड़ लगाये जाते हैं। यह सिताब कुल (Rutaceae) का एक छोटा क्षुप है। इसको संस्कृत में सर्पदंष्ट्रा, पीतपुष्पा, गन्धाढ्य, स्दापत्र; हिन्दी में सिताब, सुदाब, सदाब, सांपन, सातरी; गुजराती में सताब; बंगाली में इस्पद; मराठी में सताप, संताप; अंग्रेजी में Garden Rue तथा लेटिन में Ruta Grave olens कहते हैं।

उसके पत्र सादे धुंए रंग के, तिकोने तथा विभाजित होते हैं। पत्तों का स्वाद तिक्त एवं उत्क्लेशकारक होता है। फूल पीले रंग के तथा छोटे होते हैं। फूल के बाह्य पुष्प पत्रदल ४ और तिकोना कृति के होते हैं। आभ्यंतर पुष्प-कोष ४ होते हैं। बीज ३ होते हैं। बीज तिकोनाकृति के एवं कत्थई रंग के होते हैं।

इसका रस-तिक्त, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु, दोषघ्नता-कफ और वात, उपयुक्त अंग-पत्र तथा तैल।

मात्रा—पत्र स्वरस २ ग्राम से ३ ग्राम तक, सूखी वनस्पतिका चूर्ण आधा ग्राम से १ ग्राम तक दिन में दो दफा दिया जाता है।

उपयोग – जब बच्चे कफ से भर जाते हैं तब सिताब की पत्तियों को पीसकर पिलाते हैं। इस वनस्पति से तैल भी निकाला जाता है, जो औषधि रूप में प्रयुक्त होता है।

सिताब दीपन, वातहर, उत्तेजक, कफघ्न, आक्षेपहर, कृमिघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन तथा आर्तवजनन है। उसको त्वचा पर लगाने से तथा उदर में सेवन करने पर दाह होता है। सिताब की उत्तेजक क्रिया त्वचा, वातसंस्थान और गर्भाशय पर विशेष होती है। इस वनस्पति में आक्षेप निवारण और कफ निस्सारक गुण बहुत प्रभावशाली मात्रा में होता है। इसका उपयोग बच्चों के डब्बा तथा धनुर्वात रोग पर प्रशस्त है। बालकों के धनुर्वात (आक्षेप) पर इसका स्वरस गोरोचन के साथ दिया जाता है।

बालकों के ज्वर, खांसी तथा जुकाम भी इसके प्रयोग से नष्ट होते हैं। कमरे में सिताब के क्षुप का धुंआं देने से इन्फ्लुएञ्जा, सीतला, रोमांतिका, आदि संक्रामक रोग के कीटाणुओं का नाश हो जाता है और वातावरण शुद्ध हो जाता है। सिताब में से उड़नशील तैल मिलता है। उसका उपयोग उदरशूल, कृमिरोग, पक्षाघात तथा संधिवात पर होता है। सिताब एक बहुमूल्य जड़ी बूटी है।

बच्चों के डब्बा रोग का एक ऐसा ही अनुभव एक दूसरी जड़ी बूटी के बारे में दे रहा हूँ। करीब पांच साल पहले की यह घटना है। जब मैं शिक्षा विभाग में इंस्पेक्टर था, इस नाते मुझे देहातों में शालाओं का निरीक्षण करना होता था। मैं अहमदाबाद जिले के महेगाम तहसील के धमीज नामक गांव की शाला में निरीक्षण कार्य के लिये गया था। वहां के शिक्षक लोगों के कहने से पता चला कि एक शिक्षक की एकाध साल की बच्ची बहुत बीमार है और मृत्यु-शय्या पर है। मुझे उस शिक्षक ने अपनी बच्ची के लिए विनती की। मैंने बच्ची को देखा, उसको डब्बा रोग था। बच्ची की छाती कफ से भरी हुई थी। पेट में वायु भर गई थी और पेट फूला हुआ था।

देहात में इस बच्ची के रोग की निवृत्ति के लिये अच्छी औषधियां तत्काल उपलब्ध नही थीं। मैंने थोड़ा सोचा और यकायक मेरी स्मृति में एक वनस्पति का चित्र आ गया। मैंने उसका ही प्रयोग करने का सोचा। उस वनस्पति का नाम है खोखला। गुजरात में इसको दादरो नाम से पहचानते हैं। मैंने खोखला वनस्पति के क्षुप की आठ-दस पत्तियों को लाकर पानी से साफ किया और उसका रस निकलवाकर दो चम्मच रस बच्ची को दिन में दो बार पिलाने के लिये कहा। रस पिलाने के बाद थोड़े समय में बच्ची को वमन हुई और उसमें बहुत सा कफ निकल गया। बच्ची को अच्छी तरह दस्त हुआ और उसमें भी थोड़ा बहुत कफ निकल गया। दो दिन के इलाज से पूर्णरूप से सारा कफ बाहर निकल गया। बच्ची का स्वास्थ्य सुधरने लगा। वह बच गई। स्कूल के सब शिक्षक तथा अन्य लोग इस वनस्पति के प्रभाव को देखकर चकित रह गये।

इसका वानस्पतिक परिचय निम्नानुसार है। आमतौर पर इसका प्रयोग बच्चों के खोखली रोग में होने से इसका नाम 'खोखला' ही पड़ गया है। इसका दूसरा नाम कुप्पी भी है। इस वनस्पति को संस्कृत में अरिष्ट मंजरी, भुवन वर्च्चा, गुजराती मे दादरो तथा वेंछी कांटो; मराठी में खोखली, कूपी और खाजोटी; बंगाली में भुवना जटी, अंग्रेजी में Indian Acalypha तथा लैटिन में Acalypha-Indica नाम से पहचाना जाता है।

उस वनस्पति के छोटे-छोटे क्षुप वर्षाऋतु में सर्वत्र देखने मे आते हैं। यह वनस्पति भारत में सर्वत्र प्राप्य है। जहां पानी की व्यवस्था होती है वहां सर्दी और गर्मी के मौसम में भी उसके क्षुप पैदा हो सकते हैं। यह आमलक्यादि

शिशुरोगों पर परीक्षित कतिपय खानदानी योग

शाकद्वीप ब्रह्मकुलभूषण राजवैद्य श्री नृसिंहनारायण मिश्र 'मग' भूतपूर्व प्राश्निक
एवं परीक्षक(आयुर्वेद शास्त्री)श्री कामेश्वरसिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय
शिवशक्ति औषधालय चौक, मुंगेर।

महानगरी मुंगेर में आयुर्वेदीय 'मग' की खोज कठिन न हो इस हेतु श्री नृसिंह-नारायण रूप 'मग' का जन्म हुआ है जिन्होंने अपने ख्यातिलब्ध शाकद्वीपीय खानदान में गत ३०० वर्षों से प्रचलित बालरोगहारी औषधद्रव्यों का विवरण प्रस्तुत कर सुधानिधि के इस महत्वपूर्ण विशेषांक को परम गौरव प्रदान किया है।

श्री नृसिंह नारायण मिश्र के ४००-५०० वर्ष के पूर्वज पं० दामोदर मिश्रात्मज श्री शार्ङ्गधर मिश्र थे जिन्होंने सुप्रसिद्ध शार्ङ्गधर संहिता की रचना की। भगवान् कृष्ण के पुत्र साम्ब के कुष्ठरोग निवारण हेतु शाकद्वीप से जो चिकित्सक दल जम्बूद्वीप[भारत] में आया था तब से यह वर्ग केवल चिकित्सा को ही अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाए हुए हैं। आप हिन्दू नरेशों के ही राजवैद्य नहीं रहे अपि तु पठान और मुगल राज-कुलों में भी राजवैद्य रहते आये हैं। श्री मिश्र के प्रपितामह तथा उनके अग्रज क्रमशः महाराज सोनवर्षा [वर्तमान जिला सहर्षा] तथा गिद्धौर राज [मुंगेर] के राजवंशों के राज-वैद्य रहे हैं। नवाब मुर्शिदाबाद, चांचल राज्याधिपति [जिला वर्द्धमान] तथा वनैली राज्य [जिला पूर्णिया] के राज दरबारों को भी आपके पूर्वजों ने अलंकृत किया है।

ऐसी गौरवशाली वंशपरम्परा में प्रसूत आदरणीय वैद्य जी ने समाज के उद्धार हेतु ये खानदानी योग लिखकर भेजे हैं जिनके लिए सारा सुधानिधि कृतार्थ है। पर-मात्मा उन्हें शतायु और पूर्ण स्वस्थ रखे। शार्ङ्गधरसंहिता के प्रणेता के वंशज अभी भी जीवित और जागृत हैं इससे बढकर गौरवपूर्ण और क्या हो सकता है।

—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी

आज लगभग ३०० वर्षों से वंश में बालरोगों पर निम्नोक्त ४ प्रकार की प्रसिद्ध औषधियां व्यवहार में लाई जा रही हैं प्रथम दो योग निम्नप्रकार से हैं—जहां प्रथम योग का नाम केवल रस पर्पटी है वहाँ द्वितीय योग का नाम पंचामृत रस पर्पटी है। लोकोपकार की भावना से प्रेरित होकर हम यहा दोनो योगों का उल्लेख करते हैं। आयुर्वेद मनीषी विद्वानो में तथा चिकित्सा कार्य मे संलग्न वैद्य एवं चिकित्सक समुदाय से सादर आग्रह करते है कि यदि उनके पास यह योग है तो उनके आगे इसका प्रकाशन केवल इस ख्याल से है कि उन्हें अपने पास के तरकस में एक अमूल्य और अमोघ शास्त्ररत्न का स्मरण हो जावे और जिन्हें ज्ञात नहीं हो वह इसका निर्माण कर अपने बालरोग के रोगियों के रोगों पर इसका प्रयोग और व्यवहार कर लाभ उठा-कर यश और पुण्य के भागी बनें।

पारदंगन्धकंहिंगुं सैन्धवं जीरकं तथा ।
त्रिकटुं मोचरसं चैव अतीसं विल्वमेव च ॥१॥
लवगं जातिकं चैव कस्तुरी नागकेशरम् ।
एतद् औषध संयुक्तं बालानां हित कारकम् ॥२॥
आमशूलहरं चैव कफरोग हलीमकंम् ।
मुखशोष भ्रमोदाहः सर्वज्वर विनाशनम् ॥३॥
रसपर्पटीमिति ख्यातं बालानां हितकारकम् ।

औषध निर्माण के घटक—(१) शुद्ध संस्कारित पारद (२) शुद्ध आंवलासार गन्धक । इन दोनों औषधियों की बनी कज्जली । (३) घृतभर्जित शुद्ध हींग (४) सैन्धव लवण तथा (५) सफेद जीरा–यदि इसे थोड़ा आग पर गर्म कर लिया जावे तो उसका उत्तम चूर्ण होगा । त्रिकटु अर्थात् सोंठ, पीपर और स्याह (काली) मिर्च, मोचरस (अर्थात् शाल्मली निर्यास) अतीस और कोमल विल्व को सुखाकर बनाया हुआ बेल, सोंठ, लौंग, जायफल तथा कस्तूरी एवं बड़ा नागकेशर ये सभी औषधियां संयुक्त रूप से बालकों का हितसाधन करती हैं । पहले सभी काष्ठ औषधियों को उत्तम वस्त्रपूत सूक्ष्म चूर्ण बनाकर अलग अलग वजन करके पत्थर के खरल में डालकर पीछे उसमें दो भाग कज्जली और एक भाग शुद्ध हींग को डालकर ज्यादा से ज्यादा घुटाई करे । खूब बारीक चूर्ण हो जाने पर इसे शीशी में बन्द कर ले और फिर बालकों के रोगों पर व्यवहार में लावे । इसके व्यवहार से यह उदर में आम बनना, उदरशूल, कफरोग, हलीमक, मुख का सूखना, भ्रम एवं दाह तथा बालकों के सभी प्रकार के ज्वरों का नाश करता है ।

श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के अध्यक्ष वैद्यराज पं० रामनारायण शर्मा ने अपने सुप्रसिद्ध चिकित्सा ग्रन्थ आरोग्य प्रकाश में बिहार प्रान्त में प्रचलित और प्रसिद्ध रस पीपरी के योग का उल्लेख किया है जिसका योग निम्न प्रकार से है—

(१) शुद्ध पारद (२) शुद्ध गन्धक (३) सोंठ, (४) मिर्च (५) पीपर (६) अतीस (७) काकड़ासिंगी (८) नागरमोथा (९) मोचरस (१०) जायफल (११) जावित्री (१२) सुहागे का लावा (खील) (१३) छोटी पीपर तथा पारा के चतुर्थांश (१४) कस्तूरी मिलाकर जलयोग से मुद्‌ग के प्रमाण की वटी (गोली) प्रस्तुत करने को कहा है ।

उपरोक्त रस पर्पटी तथा रस पीपरी के योग में बहुत साम्यता है । लेखक का व्यक्तिगत विचार है कि यदि दोनों ही योगों को कसौटी पर कसा जाय तो दोनों के गुणों और लाभ करने की क्षमता में विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होगा ।

पंचामृत रस पर्पट

तोलैकं पारदं शुद्धं गन्धकं द्विगुणं भवेत् ।
मर्द्दयेत् लोह पात्रे च लोहपात्रे क्षिपेत्पुनः ॥१॥
पर्णोपरि तदा दत्वा माहिष्या गोमयेत्यसेत् ।
गोघृतेनाग्निलं शुद्धं स्वांग शीतमसमुद्धरेत् ॥२॥
रक्तिद्वयमेवात्र लवंगेन सम्वन्वितः ।
याति फलं याति कोषं मधुना सह लेहयेत् ॥३॥
बालरोगेतिसारे च ग्रहण्यां पाण्डुरोगके ।
ज्वरशूले नले मंदे वातमग्ने भगन्दरे ॥४॥
एतेषु योज्येत नित्यं रसोयं रसपर्पटी ।

औषधि निर्माण घटक—एक तोला शुद्ध सस्कारित पारद तथा उसका द्विगुण भाग अर्थात् दो तोला शुद्ध आंवलासार गंधक दोनों को पहले मिलाकर लौह खरल में डालकर खूब बारीक घुटाई करें फिर उनका सूक्ष्म चूर्ण हो जाने पर उसे खरल से निकालकर लोहे के कलछुल मे डालकर किंचित गोघृत डालकर अग्नि पर गर्म करें फिर लालवर्ण हो जाने पर जमीन (पृथ्वी) पर महिष (भैंस) अथवा गाय के गोमय (गोवर) पर केला का पत्र रखकर फिर पत्ते पर उपरोक्त कलछुल वाली औषधि को उस बिछे हुए केले के पत्ते पर डालकर उसे फैलाकर पतली चट्टी बना देवें पुनः ऊपर से केला का पत्ता लेकर ढक दें । फिर उसे पर्याप्त गोवर के नीचे दबा दें । स्वांगशीतल हो जाने पर निकालकर फिर खरल में डालकर सूक्ष्म चूर्ण प्रस्तुत कर उसे डाटदार शीशी में बन्द कर रखलें । फिर उसे समयानुसार २ रत्ती मात्रा में लेकर प्रयोग करें । यदि निर्माणकर्त्ता चाहें तो औषधि निर्माणकाल में ही लवंग, अर्थात् लौंग, जायफल, एवं जावित्री का सूक्ष्म वस्त्रपूत चूर्ण बनाकर पर्पटी में मिलाकर उसकी घुटाई कर शीशी में बन्दकर रखलें । अथवा उपरोक्त द्रव्यों के चूर्ण ३ भाग और २ भाग पर्पटी मिश्रित कर उसे मधु, या माता के

दुग्ध अथवा अन्य अनुपान के साथ योजना करें। ऊपर के श्लोक में वर्णित बालकों के अतीसार, ग्रहणी, पाण्डु, ज्वर, शूल (पेटदर्द) पाचन शक्ति की मंदता, बाल विकार तथा भगन्दर आदि का यह रसपर्पटी विनाश करती है।

उपरोक्त योगों के अतिरिक्त लेखक के खान्दानी चोपता में (वर्तमान चोपता लेखक के स्वर्गीय पिता पूज्यपाद पं० सत्यनारायण मिश्र जी का लिखित है) बालरोगों पर बालरक्षा घुटी तथा कुमारकल्याण वटी के नाम से दो और औषधियों का उल्लेख है जिसे वैद्य समाज के उपकारार्थ जनहित, एवं भूतदया की भावना से प्रेरित होकर इस लेख में संकलन करने के लोभ को संवरण नहीं कर पाने के कारण उल्लेख करता हूँ। कौन जानता है कि तरकस का कौन सा तीर शत्रु को पराजित कर विजय श्री का सेहरा सिर पर बांधेगा।

बालरक्षा घुटी

यष्टिमधु च शृङ्गी च केशरं नागकेशरम्।
जातीफलेन संयुक्तं विशुद्धं वंशलोचनम् ॥१॥
चूर्णंकृत्वा प्रयत्नेन् मातृदुग्धेन योपचेत् ॥
बालानां हन्त्य जीर्णं च मन्दाग्निमुदरव्यथाम् ॥२॥
सेवनादस्य बालानां रोग गच्छति दूरतः।
पुष्टः तुष्टः बलिष्ठश्च जायते नात्र संशयः ॥३॥

औषधि निर्माण घटक—यष्टिमधु (अर्थात् मुलहठी) काकड़ाशृङ्गी, केशर, और बड़ा नागकेशर, जायफल, तथा नीलकंठी असली वंशलोचन को समान मात्रा में लेकर उसे लोहे के हामिलदस्ता में खूब बारीक चूर्ण बनाकर वस्त्रपूत छानकर डाटदार शीशी में बन्दकर रख दें तथा समयानुसार इसे माता के दुग्ध के साथ अनार पुष्प की बिना खिली कली का किंचित् भुभुमकर निकाला हुआ रस, मोथा का रस, अथवा अतीस का चन्दन के समान घिसा हुआ कल्क आदि के साथ मधु के संयोग से प्रयोग करावें। इसके व्यवहार से यह बालकों के अजीर्ण, मंदाग्नि, पेट का दर्द, आदि में आनन-फानन में लाभ करता है। बालक पुष्ट, तुष्ट, एवं बलिष्ठ हो जाते हैं।

नोट—चूंकि इस औषधि में प्रयुक्त होने वाली सभी औषधि काष्ठ औषधियां ही हैं अतः हमेशा नवीन साधारण चूर्ण के गुण के समान ही होनी चाहिये। दो माह से ज्यादा पुराना बना हुआ नहीं होना चाहिए।

कुमारकल्याण वटी

लवंगस्यैक भागश्च, द्विभागो वंशलोचनम्।
सूक्ष्मैला द्विभागश्च, अतीसोपिद्विभागका ॥१॥
द्वात्रिंशद्भागकः प्रोक्तं अपामार्गस्य मेलनम्।
पिष्ट्वा जलेन तत्सर्वं छायायां शोषयेद्रसम् ॥२॥
दुग्धं वा मधुनायुक्तं माष मात्रं च भक्षयेत्।
इदं कुमारकल्याणं श्वास कास, ज्वरकृमिम् ॥३॥
अपस्मारमतीसारं सर्वान् रोगान् विनाशयेत्।

औषधि निर्माण के घटक—लौंग १ भाग, वंशलोचन दो भाग, गुजराती इलायची के पुष्ट दाने दो भाग, अतीस का चूर्ण दो भाग, अपामार्ग (चिड़चिड़ा) की हरी और कोमल पत्तियों का निर्जल पीसा हुआ महीन कल्क बत्तीस भाग। पहले सभी काष्ठ औषधियों को मात्रानुसार लेकर खूब बारीक कपड़छन कर लें फिर अपामार्ग की पत्तियों के ३२ भाग कल्क के साथ मिश्रित कर खरल में कम से कम १२ घंटा तक घुटाई करें। फिर उर्द के बराबर गोली निर्माण कर उसे छाया में सुखा लें तथा शीशियों में भरकर सुरक्षित रखें। मातृ दुग्ध के साथ अथवा मधु के अनुपान से योजना करें। यह कुमारकल्याण वटी है। इसके व्यवहार से यह बालकों के श्वास, कास, ज्वर, कृमिरोग अपस्मार एवं अतीसार आदि समस्त रोगों का नाश करती है।

नोट—यदि चिकित्सक को बालरोग चिकित्सा में दिलचस्पी तथा उन्हें शिशु रोगियों की चिकित्सा का ज्यादा अवसर आता है तो निम्नलिखित रसायन औषधियों को अपने औषधालय में सर्वदा प्रस्तुत रखा करें।

(१) बालरोगान्तक रस (भैषज्य रत्नावली)
(२) दन्तोद्भेद गदान्तक रस („)
(३) कुमारकल्याण रस („)
(४) मद्य गन्धक („)
(५) बालरस (र. सा. सं.)
(६) बालरोगान्तक रस („)
(७) रामेश्वर रस („)
(८) शिवामोदक („)
(९) अरविन्दासव („)

बालरोगों की कुछ अनुभूत औषधियाँ

श्री नथमल शर्मा वैद्यविशारद, बड़गांव तह० मेड़ता (राजस्थान)

१. बदहजमी-निवारणार्थ पानक–

अजवाइन ५ तोला, सोंफ के बीज ५ तोला, नागोरी असगन्ध ५ तोला, वायविडंग ५ तोला। इन सब द्रव्यों को जौकुट कर ४ सेर पानी में पकाना। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छानकर अनबुझा खाना चूना ४ तोला उसमें डाल देना। ढंक से ढक देना। २४ घंटे के बाद उसमें पोदीने का रस १ पाव मिला देना। इसे २४ घंटे समाप्त हो जाने पर नितरा हुआ जल संभाल कर निकाल लेना। तदनन्तर आधा सेर चीनी डालकर शर्बत बना लेना। यह बालकों की पाचन शक्ति सुधार कर उन्हें पुष्ट करता है।

२. कठिन घाव तैल–

शार्ङ्गधर-संहिता का जात्यादि तैल जले सड़े, खराब से खराब घावों को निर्मूल कर देता है। चमत्कारक योग है।

३ मियादी बुखार पर–

लक्ष्मीनारायणरस–बच्चों के लिए बहुत उपकारक है। मियादी बुखार के अतिरिक्त प्रसूतज्वर, धनुर्वात, बालकों की मृगी, अतीसार, शूल आदि को भी दूर करता है।

४. सिर के फोड़े फुंसी–

रसौत और मेंहदी की पत्ती दोनों पीसकर सिर के फोड़ों पर लगाने से वे समूल नष्ट हो जाते हैं।

–(स्वामी कृष्णानन्द जी)

५. बच्चों के पसली या डब्बा रोग में–

फुलाया हुआ सुहागा १ रत्ती कुनकुने पानी के साथ बीमारी की प्रबलता के अनुसार बार बार देने से कष्टकर स्थिति में पहुँचा हुआ रोग भी मिट जाता है। औषधि बिल्कुल मामूली है, पर लाभ बहुत अधिक।

६. खाज, फोड़े-फुन्सीपर अक्सीर मलहम–

घी असली १० तोले, जिंक ऑक्साइड ७॥ तोले, संगजराहत २॥ तोले, बोरिक एसिड २॥ तोले, कपूर खूब महीन पीसा हुआ आधा तोला, हाइड्रार्जिरी ऑक्साइड रूब्रा छः आने भर। घी के सिवा सब चीजों को कपड़छन कर घी में मिलाकर मलहम बना लें। नीम की पत्तियां उबाल कर उस पानी से घाव की जगह को पहले धो-साफ कर दवा लगानी चाहिए।

७. मुंह में गरमी से घाव हो जाने पर–

ग्लीसरीन ४ तोले, टैनिक एसिड १ तोला, दोनों को खरल में खूब घोटकर एक रस करके शीशी में भर लें। रुई के फाहे से बालक के मुंह में लगाकर उसे गोद में उल्टा सुला दें, इससे लार गिर जायेगी। दो तीन दिनों में आराम हो जायेगा। दवा दिन में दो-तीन बार लगावें। दवा पेट में चली जाने पर भी नुकसान नहीं है।

८. बालकों के दस्त-मरोड़ में·

[illegible] १ तोला, जावित्री ३ तोले, सौंफ १॥ तोला, इलायची १ तोला, मिश्री २४ तोले, [illegible] १३ तोले सब चीजों को महीन कूटकर छानकर शीशी में भर लें। ३० रत्ती तक अवस्थानुसार पानी के साथ देना दिनरात में तीन बार।

राजस्थान की पुण्य वीरप्रसू भू के सपूत श्री नथमल शर्मा के अनुभवों से भी पाठकगण लाभान्वित होंगे यह विश्वास है। आपने कई रोगों पर भी अनुभवपूर्ण योग दिये हैं जो प्रस्तुत नहीं हैं। उनका सहयोग हमें सदैव मिलेगा इस आशा के साथ।

—म० मो० [illegible]

---

९. चूने का जल (Lime water)--

कली का चूना ४ तोले, चीनी ८ तोले, स्वच्छ जल ६० तोले में मिलाकर हिलाकर रख दें। जब चीनी जल में गल जाय और चूना नीचे बैठ जाय, तब ऊपर से नितरा हुआ जल अलग शीशी में भर लें। मात्रा--३ महीने के बच्चे को ५ से १० बूंद, एक वर्ष तक के वालक को २० से २५ बूंदें दूध या जल के साथ मिलाकर दें। इससे वालको की चाहे जैसी उल्टी हो तुरन्त बन्द हो जाती है। दूध रचने लगता है।

१०, विसर्प की सूजन के लिए--

जिंक ऑक्साइड, संगजराहत, स्वर्णगेरू और सफेद करथा वरावर महीन चूर्ण करके गुलाब जल में मिलाकर दिन में ५ या ७ बार रुई के फाहे से लगा दें। इससे गांठ गल जायेगी और वच्चे को आराम हो जायेगा।

११. वालकों को अमूल्य दवा--

पीपल, नागरमोथा, अतिविषा, काकड़ासिंगी इन सबको वरावर लेकर बारीक चूर्ण कर लें। मात्रा १ से ३ रत्ती, दिन में दो या तीन बार माता के दूध या शहद के साथ चटा देवें। इससे वालकों के बुखार, दस्त, कफ, उल्टी, खांसी, जुकाम आदि रोग मिटते हैं। यह दवा वालकों के घर में वालवैद्य का सफल कार्य करती है।

१२. वालवटी--

जायफल, जावित्री, तज, लौंग, इलायची, अजमोद, सफेद मिर्च, कटभी (करही), वायविडंग, सोया, संचल नमक, हरड़ की छाल, चिरायता, सेंका हुआ करंज का वीज, अतिविषा, अनार की छाल, पीपलामूल, वांस कपूर, हीमेज, हीरावोल, खस, लोवान और केशर सवको वरावर लेकर महीन चूर्ण करके कपड़ छान करलें। फिर शहद में मिलाकर मूंग के आकार की गोली वनालें। वारह महीने के वालक तक को १ से ४ गोली दें। वड़े वालकों को अधिक मात्रा से देनी चाहिए। इस वाल वटिका से बच्चों के पतले दस्त, उल्टी, अजीर्ण, वा र कब्ज आदि रोग दूर होते हैं। दूध ठीक पचता है, वालक नीरोग रहता है।

१३. वालपुष्टि योग--

अभ्रकभस्म १ तोला, मंडूरभस्म २॥ तोले, गिलोय-सत्व २॥ तोले, अतिविष, वांस कपूर, मिर्च, सोंठ, पीपल, वायविडंग ये छः चीजें प्रत्येक १ तोला, मुलहठी २॥ तोले, सेंके हुए करंज के बीज आधा तोला सब चीजों को महीन कूटकर कपडछान कर लें, तदनन्तर ३० तोले शहद में मिलाकर घोटकर शीशियों में भर कर रखें। मात्रा ३ से १२ रत्ती तक दिन में दो बार देने से वालकों के जीर्णज्वर पेट की शिकायतें, रक्तहीनता आदि रोग मिट कर वालक हृष्ट पुष्ट होता है, कान्ति वढ़ती है और हड्डियां मजवूत होती हैं।

१४. जलने पर--

तिल का तैल ४ तोले खूब उवाल लें उसमें कपड़े से छाना हुआ राल का खूब महीन चूर्ण १ तोला डालकर चूल्हे से नीचे उतार कर हिला दें तुरन्त कपड़े से छानकर एक थाली में डालकर ठंडा होने दें फिर उसमें थोड़ा थोड़ा जल डालकर फेंटता जाय और जल वदलता जाय। कुछ देर में भैंस के मक्खन जैसी सफेद मलहम वन जायेगी। तव उसे कांच के वर्तन में भरकर उसमें पानी भर दें। मलहम जल में डूवनी चाहिए। पानी रोज वदलना चाहिए। नहीं तो मलहम विगड़ जायेगी इसको जले हुए घाव पर लगाना चाहिए। यह निश्चित् लाभ करती है। लगाने के साथ ही जलन को मिटा देती है। और थोड़े ही समय में जले हुए का घाव सूख जाता है।

१५. कान की वीमारी के लिए--

१ तोला तिल के तैल में लहसुन के टुकड़े चार आने भर तथा मरुवा के पत्ते ५ से १० तक डालकर उस तैल को खूब गरम करलें। फिर चूल्हे से नीचे उतार कर कपड़े में छान लें। इस तैल को थोड़ा गुनगुना हो तव इसकी कुछ बूंदें कान में डालकर रुई भर दें। वालकों के कान का दर्द मिटाने में यह तैल अद्भुत कार्य करता है।

३. मेगसल्फ एक औंस पानी एक पाव एक शीशी में मिलाकर रखलें। मात्रा-एक छोटा या बड़ा चम्मच दिन में १ या २ बार। इससे दस्त साफ होता है तथा बढ़े हुए यकृत् प्लीहा शनैः-शनैः अपनी प्राकृतिक स्थिति में आ जाते हैं।

५. बालपुष्टि अवलेह—

अभ्रक भस्म १ तोला, मंडूर भस्म १ तोला, सत-गिलोय २½ तोला, अतीस, बंशलोचन, मिर्च, पीपल, सोंठ, विडंग १-१ तोला, मुलहठी ½ तोला, सिके हुए करंज बीज ½ तोला, का मैदा समान चूर्ण बनाकर ·० तोला शहद मिला लें। मात्रा-४ रत्ती से १½ माशा तक दूध में घोलकर पिलावें या यों ही चटा दें। यह अवलेह बालकों के सभी सामान्य रोगों को ठीक करता है। सप्तधातुओं की वृद्धि करके शरीर को पुष्ट करता है तथा रोगों से टक्कर लेने की शक्ति बनाए रखता है।

हरे पीले दस्तों पर-

लेक्टिक एसिड १ भाग पानी ५० भाग मिलाकर शीशी में रखलें। लगभग ३ माशा दिन में ३-४ बार पिलावें शर्तिया लाभ होता है।

नेत्र में चोट लगने पर—

बालक के नेत्र में चोट लगने पर तत्काल मां का दूध नेत्र में टपका दें, और उसी में रुई का फोहा तर करके नेत्र पर बांध दें।

घुट्टियों की नानी—

सौंफ, सनाय, अजमोद,अजवाइन, अमलतास का गूदा, हरड़, बहेड़ा, आंवला, लहसोड़ा, गुलाबपुष्प, गुलबनफ्सो उन्नाव, टंकण भस्म, पित्तपापड़ा, दुधवच, मुनक्का, वाय-विडंग, गिलोय, इन्द्रजो, सफेद जीरा, मरोड़फली, नवसादर कालानमक, खूबकला, अतीस, तुलसीपत्र।

निर्माण विधि—सभी वस्तुओं को १६ गुना पानी में रात को भिगो दें। प्रातः अष्टावशेष क्वाथ करलें। कपड़े से छानकर दुगुना गुड़ मिलाकर शर्वत की चासनी बनालें।

सेवन विधि —दिन में तीन बार १, १½ माशा से ३ माशा तक चटावें।

गुण—सूखा, दंतोद्भेद-कालीन वेदना, कब्ज, आनाह, अनेक प्रकार के अतीसार आदि रोगनाशक है। बालक को प्रतिदिन पिलाने से वह नीरोग एवं पुष्ट होता है। ★

बालकों के सूखा रोग पर एक बूटी का प्रयोग

यह प्रयोग हमें नेपाल के एक परमहंस जी महात्मा ने भेजा है। बूटी का नाम और वर्णन ज्यों का त्यों हम दे रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में—

सतमूली (शिवजटा)

परिचय--बगीचों में खासकर होता है। पत्र सभी मूली से मिलते हैं। फूल नीले रंग के होते हैं, जड़ में जटा आकार के सैकड़ों सोर रहते हैं।

प्रयोग—इसकी मूल को ही आधा तोला पीसकर थोड़ा मधु मिलाकर चटावें दोनों वक्त। इसका पञ्चांग तथा चक्रमर्द लाल (चकौड़) पीसकर शुद्ध सरसों का तेल डाल दें फिर धूप में रखें। बच्चों की देह में लगाकर धूप में सूखने दें। जब सूख जाये तो नीमपत्र के औटे हुए पानी में कपड़ा भिगोकर पोंछ दें। एक मास में बालक में कुछ बल आवेगा। तीन मास में शरीर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है।

पथ्य—गाय का औटाया हुआ दूध अरारोट देवें। जो इसे न कर सकें वे गरीब बन्धु धान की लेही बनाकर खिलावें।

परमहंस जी का अनुभव

प्रेषक-हरिदत्त जी सुकदेव मंदिर भेल्ही नेपाल।

शिशुनेत्ररोग नाशक दो विशिष्ट अनुभूत योग

आयुर्वेदनिष्ठ वैद्य बनारसीदास विद्यार्थी, अध्यक्ष-विद्यार्थी औषधालय, फीरोजाबाद

१. नयनसुख वटी—हरड़ बहेड़ेकी मज्जा (गुठली के भीतर की मिंगी), दुधबच, शंखनाभि, शुद्ध मट्ठे में ३ दिन तक रखकर धोलें, शुद्ध मैंनसिल (अदरक स्वरस में घोटकर तीन बार धूप में सुखाई हुई) छोटी पीपल, सत्यानाशी की जड़ की छाल, कालीमिर्च मोटे दाने की। सब बराबर ले कर बकरी के शुद्ध दूध में (जो ग्यावन या तुरन्त ब्याई हुई का न हो) घोटकर मटर के समान गोलियों को दवाकर चपटी करके छाया में सुखा लें योग तैयार है।

नयनसुख वटी—आंख दुखने पर पलक सूजकर बन्द होने पर माता या बकरी के दूध में वटी को शुद्ध और साफ पत्थर पर घिसकर पलकों पर लेप करने से पीड़ा शान्त होकर रोगी सो जाता है। जब सूजन पटककर आंख खुलने लगे तब दिन में दो बार नीचे लिखी विधि से रोहू का काजल लगाने से नेत्राभिष्यन्द और नेत्राधिमन्थ रोग शान्त हो जाते हैं। नयनसुख वटी को पानी में घिसकर पलक उलटकर (काष्टिक) की तरह दिन में दो बार घर्षण करें और उसके एक घण्टे बाद रोहू का काजल लगावें, रोहू १५ दिन में ठीक हो जाते हैं। पानी में पत्थर पर घिसकर लगाने से नेत्रों की लाली, रतौंध, खुजली, कोंचा, फूला, जाला ३ वर्ष तक का कट जाता है।

२. सख्त नीम के हरे डण्डे में जो इतना मोटा हो, कि उसको आरी से काटने के बाद दो तांबे के मोटे पैसे बराबर में गाढ़े जा सकें और पैसे तथा डण्डे के धरातल को पीतल की थाली में घिसने पर लकड़ी और पैसे साथ-साथ घिसे जा सकें। एक पाव या २५० ग्राम तिली का तैल डालकर तब तक घिसते रहें कि तैल शहद के समान हरे रंग का गाढ़ा मरहम सा बनजाये। इस क्रिया के समय मिट्टी धूल से बचाकर कम से कम १५ दिन तक प्रतिदिन ६ से ८ घण्टे रोज घिसा जावे, बस रोहू का काजल तैयार है। दोनों योग मेरे रजिस्टर्ड हैं इनके नाम बदलकर सभी वैद्य बन्धु प्रयोग कर सकते हैं आयुर्वेद का सम्मान बढ़ाने तथा जनकल्याणार्थ आप पाठकों की सेवा में अर्पित हैं।

प्रयोग—दांत निकलने अथवा किसी भी दशा में बालक युवा वृद्ध स्त्री पुरुषों की आंखें दूखने लगी हों तो पैन्सलीन के ट्यूब के स्थान पर उपरोक्त रोहू का काजल सुबह शाम दो बार शीशी को खूब हिला-हिलाकर एक-एक उंगली लगा दीजिये दो दिन में लाभ हो जायगा। यदि आंख में कोई चीज चुभ गई है, घाव हो गया है, मांस ऊपर को निकल आया है तो काजल लगाकर रुई रखकर २४ घण्टे तक पट्टी बांध दीजिये दो तीन दिन में घाव भरकर नेत्र स्वस्थ हो जायगा। ★

आगरा जिलान्तर्गत विश्वप्रसिद्ध फीरोजाबाद नामक नगर है जो नारियों के अक्षय सौभाग्य निदर्शक चूड़ामणियों का विश्वविश्रुत केन्द्र है। यहां श्री रामजीलाल शास्त्री, श्री प्रभवत्तशास्त्री और बनारसीदास विद्यार्थी रूप वद्यत्रयी का ऐसा मणिकांचन संयोग है कि जिसके कारण आयुर्वेद पताका यहां अहरह उड़ती हुई समाज में आयुर्वेद संगठन कर वर्चस्व कायम रखे हुए हैं। श्री विद्यार्थी जी के ये योगद्वय कितने उपादेय हैं उन्हें प्रयोग करने पर पाठकगण स्वयं अनुभव में ला सकेंगे।

—र. प्र. त्रि.

बालक्षय की सफल चिकित्सा

डा० बी. एल. पाण्डेय बी.आई.एम.एस., कट्टीपार (आमगांव) जि. भण्डारा

क्षय रोग—राजयक्ष्मा T. B. शायद ही ऐसा कोई चिकित्सक हो जो इस रोग से परिचित न हो। यह इतना दुष्ट और भयंकर रोग है जिसके कारण प्राणि की सभी इन्द्रियां शिथिल होजाती हैं, हां तो मैं यह बता रहा हूं कि जब बालक अपनी माता के गर्भ में रहता है तभी वह पांचवें माह से ही इस क्षयरोग से ग्रसित हो जाता है।

अनुभावित सफल चिकित्सा—बालाघाट जिला में मिरिया नामक एक ग्राम है वहां का एक पाटील १॥ वर्ष के एक बालक को लेकर आया और कहने लगा, पाण्डेय जी! यह मेरा तीसरा पुत्र है दो बच्चों को मैं मिट्टी में मिला चुका हूं, तीसरे को आप बचा लीजिये। बच्चा ६ माह का होता है और उसको निमोनिया हो जाता है। चिकित्सा करते करते बालक दो साल के अन्दर मिट्टी में मिल जाता है।

लक्षण—विशेष निरीक्षण किया गया सभी लक्षण क्षय के मिले। बालक देखने में कृश व ओज से क्षीण था ज्वर ९९.३° वजन ८ पौण्ड। चिकित्सा शुरू की गई।

प्रथम दिन ३ चम्मच शुद्ध एरंड तैल का जुलाब दिया गया फिर यह औषधि दी गई—

१. स्वर्ण वसंत मालती १ रत्ती मुक्ताप्रवाल पञ्चामृत १ रत्ती यक्ष्मांतक लोह १ रत्ती, तालीसादि चूर्ण ३ रत्ती सभी मिलित ७ मात्रा

प्रातःसायं—पान का रस ½ चम्मच मधु १ चम्मच घोटकर दिन में तीन बार दिया गया ऊपर से १० बूंद धन्वन्तरि कुमारकल्याण घुटी दी गई।

२. बलादि चूर्ण (भा. प्र.) बलाश्वगंधा श्रीपर्णी बहुपुत्री पुनर्नवा। पयसा नित्यमभ्यस्तः शमयन्ति क्षतक्षयम् बलामूल। अश्वगंधा, गम्भार केफूल, शतावर, पुनर्नवा का चूर्ण, सभी को कूट कपड़छन करके चूर्णब नाकर रख लिया।

तब दिन में बच्चे को चार या पांचबार दूध पिलाने के समय १ माशा चूर्ण का प्रयोग दुग्ध में किया गया।

३. महालाक्षादि तैल की मालिश प्रातःकाल सम्पूर्ण शरीर में की गई। बच्चे को धूप में प्रातःकाल सूर्योदय के समय रखा गया।

नोट—नं १. की दवा ४० दिन चलने के बाद तीन की जगह दो बार दी गई।

४. इन्जैक्शन एम्बिस्ट्रीन १ ग्रेन। एक ग्राम के एम्बिस्ट्रीन इन्जैक्शन को ३ c. c. डिस्टिल्डवाटर में घोल-कर १॥ c. c. प्रत्येक मात्रा में दिया गया (मांस पेशी में) दो इन्जैक्शन देने के बाद एक दिन छोड़कर दिया गया।

लेखक महोदय डा० पाण्डेय मिश्र आयुर्वेद के सुयोग्य स्नातक हैं। आपने जन्मजात क्षय या गर्भ से ही धातुक्षय से पीड़ित शिशु की चिकित्सा करके जो सफलता पाई है उसी को संक्षेप में लिपिबद्ध करने की कृपा की है जो पठनीय एवं प्रयोगार्ह है।

गो. श. गर्ग

---

५. आयसोकेन टेबलेट १००एम जी की आधी गोली दिन में ३ बार दी गई १ चम्मच पानी में।

६. पल्मोकाड एक शीशी ⅓ चम्मच दवा दिन में दो बार दूध के साथ दी गई।

७. कृमिमुद्गर रस—कृमिमुद्गर रस की २ गोली १ चम्मच गोमूत्र आधा चम्मच मधु के साथ घोटकर सप्ताह में एक दिन सोने के समय दी गई।

८. रेरिकाल एक शीशी आधा चम्मच दवा १ चम्मच पानी में दिन में दो बार प्रातः एवं सायं दी गई।

उपरोक्त क्रम बराबर चलता रहा। इन्जैक्शन के कोर्स में इस प्रकार की मात्राएं दी गईं।

१० इंजैक्शन तक दो इन्जैक्शन देकर एक रोज बन्द

१० इन्जैक्शन तक दो इन्जैक्शन देकर दो रोज बन्द

१० इन्जैक्शन तक दो इन्जैक्शन देकर ३ रोज बन्द

१० इन्जैक्शन तक हफ्ते में एक फायल

१० इन्जैक्शन तक १॥ हफ्ते में एक फायल

देकर चिकित्सा समाप्त कर दी गई। पूरे ३ इन्जैक्शन का कोर्स २०० दिन में पूर्ण किया गया। बाद में च्यवन-प्राश १ माशा खाकर गो दूध १२५ ग्राम पिलाते रहने की सलाह दी गई।

धन्वन्तरि कार्यालय

विजयगढ़ (अलीगढ़)

★ सुपरीक्षित पेटेन्ट औषधियां

★ शास्त्रोक्त प्रामाणिक औषधियां

★ चिकित्सा विषयक पुस्तकें

★ चिकित्सोपयोगी उपकरण

आदि की

※ मूल्य - तालिका ※

आगामी पृष्ठों में धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक शास्त्रोक्त पेटेन्ट औषधियां, चिकित्सा विषयक स्व-प्रकाशित तथा अन्य प्रकाशकों की पुस्तकों, चिकित्सा में उपयोगी यंत्र शस्त्रों आदि की मूल्य-तालिका तथा विवरण प्रकाशित किया जा रहा है। कृपालु पाठकों से निवेदन है कि वे इसका अवलोकन कर हमें सेवा का अवसर प्रदान करें।

मार्च १९७५ [केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के हेतु]

शास्त्रोक्त औषधियाँ

कूपोपक्व रसायन

	१ ग्राम	१० ग्राम
सि. मकरध्वज नं. १	६.६०	६५.००
सि. मकरध्वज नं. २	५.१०	५०.००
सि. मकरध्वज नं. ३	४.१०	४०.००
सि. चन्द्रोदय नं. १	१०.१०	१००.००
अनुपान मकरध्वज	१.६०	१५.००
रस सिंदूर नं. १	२.१०	२०.००
रस सिंदूर नं. २	१.९०	१८.००
मल्ल चन्द्रोदय	६.६०	६५.००
मल्ल सिंदूर	१.६०	१५.००
ताल सिंदूर	१.६०	१५.००
ताम्र सिंदूर	१.६०	१५.००
शिला सिंदूर	१.६०	१५.००
स्वर्णवङ्ग भस्म	०.८०	७.००
मृतसंजीवनी रस	०.६५	५.५०
रस माणिक्य	०.५०	४.००
समीरपन्नग रस नं. १	३.७०	३६.००
समीरपन्नग रस नं. २	१.६०	१५.००
पंचसूत रस	१.६०	१५.००
व्याधिहरण रस	२.१०	२०.००

भस्में

	३ ग्राम	१० ग्राम
अभ्रक भस्म नं. १	१८.३०	६०.००
अभ्रक भस्म नं. २	२.२५	७.००
अभ्रक भस्म नं. ३	१.२०	३.७०
अकीक भस्म	१.१०	३.५०
कपर्द (कौड़ी) भस्म	०.५०	१.२५
कांत लोह भस्म	१.४०	४.५०
कुक्कुटाण्डत्वक भस्म	०.५०	१.५०
गोदन्ती हरताल भस्म	०.४०	१.००
जहरमोहरा भस्म	१.१०	३.५०
तवकीहरताल भस्म	३.२०	१०.००
ताम्र भस्म नं. १	२.५०	८.००
ताम्र भस्म नं. २	१.९५	६.२५
ताम्र भस्म नं. ३	१.६०	५.१०
नाग भस्म नं. १	१.३०	४.१०
नाग भस्म नं. २	०.९०	२.७५
प्रवाल भस्म नं. १	२.२५	७.००
प्रवाल भस्म नं. २	१.३०	४.१०
प्रवाल भस्म नं. ३	१.१०	३.५०
प्रवाल भस्मचन्द्रपुटी	१.३०	४.१०
वङ्ग भस्म नं. १	२.००	६.५०
वङ्ग भस्म नं. २	१.६०	५.१०
वैक्रान्त भस्म	२.६०	८.२५
मल्ल (संखिया) भस्म	२.६०	८.२५
मृगशृङ्ग भस्म श्वेत	०.५०	१.२५
माणिक्य भस्म	३.५०	११.५०
मांडूर (कीट) भस्म नं. १	०.४०	०.९०
मांडूर भस्म नं. २	०.४०	०.७५
मुक्ता भस्म नं. १	५५.००	१८०.००
मुक्ता भस्म नं. २	४७.००	१५०.००
यशद भस्म	०.६०	१.९०
रौप्य भस्म नं. १	६.२५	२०.००
रौप्य भस्म नं. २	५.२५	१७.००
लोह भस्म नं. १	४.००	१२.५०
लोह भस्म नं. २	१.००	३.००
लोह भस्म नं. ३	०.७०	२.००
स्वर्णमाक्षिक भस्म	१.००	३.००
शङ्ख भस्म	०.४०	१.००
शङ्कर लोह भस्म	१.४०	४.५०
शुक्ति भस्म (मोती सीप)	०.४५	१.३०
संगजराहत भस्म	०.४०	१.००
त्रिवंग भस्म नं. १	१.६०	५.१०
त्रिवंग भस्म नं. २	०.७०	२.२५

पिष्टी

	३ ग्राम	१० ग्राम
प्रवाल पिष्टी	१.१०	३.५०
मुक्ता पिष्टी नं. १	५३.००	१७०.००
मुक्ता पिष्टी नं. २	४४.००	१४०.००
अकीक पिष्टी	१.१०	३.५०
जहरमोहरा पिष्टी	१.१०	३.५०
कहरवा पिष्टी	४.८०	१५.००
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	०.४०	१.००
माणिक्य पिष्टी	२.६०	८.२५
वैक्रान्त पिष्टी	२.२५	७.००
विड पिष्टी	५.००	१६.००

शोधित द्रव्य

	१०० ग्राम	१० ग्राम
कज्जली नं.	५०.००	५.१०
शुद्ध गन्धक आमलासार	४.००	०.५०
शुद्ध वच्छनाग	६.००	०.७०
शुद्ध विष बीज (वस्त्रपूत)	८.५०	०.९५
शुद्ध जयपाल	५.००	०.६०
शुद्ध भल्लातक	६.००	०.७०
शुद्ध (हरताल)	१५.००	१.६०
शुद्ध शिला (मंशिल)	१४.००	१.५०
शुद्ध पारद	७५.००	७.६०
" विशेष शुद्ध		८.५०
" (संस्कारित)		२२.५०
शुद्ध मल्ल	१६.००	१.७०
शुद्ध हिंगुल	५०.००	५.००
शुद्ध ताम्र चूर्ण	१ किलोग्राम	६५.००
शुद्ध लोह (फौलाद)	"	१४.००
शु. धान्याभ्रक (वज्राभ्रक)	"	१२.००
शुद्ध माडूर	"	६.००
शुद्ध गूगुल	"	२५.००

पर्पटी

	१ ग्राम	१० ग्राम
ताम्र पर्पटी नं. १	१.२०	११.००
ताम्र पर्पटी न. २	०.७५	६.५०
पंचामृत पर्पटी नं.१	१.२०	१?.००
पंचामृत पर्पटी नं.२	०.७५	६.५०
विजय पर्पटी	५.१०	५०.५०
बोल पर्पटी नं. १	०.८५	७.५०
बोल पर्पटी नं. २	०.५५	४.५०
रस पर्पटी नं. १	१.१०	१०.००
रस गर्पटी नं. २	०.७०	६.००
लोह पर्पटी नं. १	१.१०	१०.००
लोह पर्पटी नं. २	०.७०	६.००
श्वेत पर्पटी	×	०.६०

नोट—नं. १ की पर्पटी विशेप शुद्ध पारद से निर्मित है तथा नं. २ हिंगुलोत्थ पारद द्वारा निर्मित है। नं. १ की पर्पटी की मात्रा कम और गुण अधिक होने से इसे व्यवहार में अधिक लेते हैं।

वहुमूल्य

रस रसायन गुटिका

	१ ग्राम	१० ग्राम
आमवातेश्वर रस	२.५०	२४.००
वृ.कस्तूरीभैरव रस	८.१०	८०.००
कस्तूरीभैरव रस	७.१०	७०.००
कस्तूरीभूपण रस	६.१०	६०.००
वृ. कामचूड़ामणिरस	३.६०	३५.००
कामदुग्धा रस नं. १	१.६०	१५.००
कुमारकल्याण रस	१०.१०	१००.००
कृष्णचतुर्मुख रस	३.६०	३५.००
चतुर्मुख चिन्तामणि रस	४.१०	४०.००
जयमंगल रस	७.१०	७०.००
प्रवालपंचामृत रस	२.१०	२०.००
पुटपक्वविपमज्वरांतक लौह	३.६०	३५.००
वृ० पूर्णचन्द्र रस	२.९०	२८.००
वसन्तकुसुमाकर रस	६.१०	
वृ.वातचिन्तामणि रस	१०.१०	१००.०
ब्राह्मीवटी नं. १	५.६०	५५.००
मृगांकपोटली रस	१२.६०	१२५.००
मधुरोल १० गोली		४.२५
मधुरांतक वटी (मौक्तिकवटी)	२.९०	२८.००
महाराजनृपतिवल्लभ रस	१.६०	१५.००
महालक्ष्मीविलास रस	३.६०	३५.००
महाराजवंगभस्म	१.६०	१५.००
योगेन्द्र रस	१२.१०	१२०.००
रसराज रस	५.१०	५०.००
राजमृगांक रस	४.१०	४०.००
वृ. लोकनाथ रस	०.७५	६.२५
श्वासचिंतामणि रस	३.१०	३०.००
श्वासकासचिंता. रस	४.६०	४५.००
वसन्तमालती नं० १ (विशेप)	७.१०	७०.००
सर्वाङ्गसुन्दर रस	६.१०	६०.००
सूतशेखर रस नं. १	४.१०	४०.००
हिरण्यगर्भपोटली रस	४.६०	४५.००
हेमगर्भ रस	४.६०	४५.००

रसायन गुटिका

	१०. ग्राम	५० ग्राम
अग्निकुमार रस	१.२०	५.२५
अमरसुन्दरी वटी	१.००	४.५०
अजीर्णकण्टक रस	१.१०	५.००
अग्नितुण्डी वटी	१.१०	५.००
आनन्दभैरवरस लाल	१.७५	८.५०
आनन्दोदय रस	२.००	९.५०
आदित्य रस	१.७५	८.५०
आमलकी रसायन	१.५०	७.००
आरोग्यवर्द्धिनी वटी	१.६०	७.५०
इच्छाभेदी रस	१.८०	८.५०
इच्छाभेदी वटी (गोली)	१.९०	९.००
उपदंशकुठार रस	१.००	४.५०
एकांगवीर रस	६.००	२९.५०
एलादि वटी	१.००	४.५०
एलुआदि वटी	०.८०	३.५०
कनक सुन्दर रस	१.५०	७.००
कफकुठार रस	२.२५	१०.७५
कफकेतु रस	१.२०	५.५०
करंजादि वटी ५० गोली		१.५०
कामिनी कुलमण्डलरस	८.००	३९.००
कामदुधा रस नं. २	२.७५	१०.२५
कांकायन गुटिका	१.००	४.५०
कीटमर्द रस	१.००	४.५०
क्रव्यादि रस	४.५०	२२.००
कृमिकुठार रस	२.००	९.५०
खैरसार वटी	१.००	४.५०
गंगाधार रस	२.४०	११.५०
गन्धक वटी	१.२०	५.५०
गन्धक रसायन	२.००	९.५०
गर्भविनोद रस	१.४०	६.५०
गर्भपाल रस	३.००	१४.५०
गर्भचिन्तामणि रस	३.७५	१८.००
गुल्मकुठार रस	१.५०	७.००
गुल्मकालानल रस	१.७०	८.००
गुडपिप्पली	१.००	४.५०
गुडमार वटी	१.२०	५.५०
ग्रहणीगजेन्द्र रस	३.८०	१८.५०
ग्रहणीकपाटरस नं.२	३.००	१४.५०
चोपचीनी रस (अन्वक-युक्त) रस	१.६०	७.५०
चन्द्रप्रभा वटी	१.४०	६.५०
चन्द्रोदयवटी	१.२०	५.५०
चन्द्रकला रस	१.७०	८.००
चन्द्रांशु रस	२.३०	११.००
चन्द्रामृत रस	१.५०	७.००

	१० ग्राम	५० ग्राम
चित्रकादि वटी	१.००	४.५०
ज्वरांकुश रस	१.५०	७.००
जय वटी	२.००	९.५०
जलोदरारि वटी	१.५०	७.००
जातीफल रस	३.१०	१५.००
तक्र वटी	१.७०	८.००
दुर्जलजेता रस	१.२५	५.७५
दुग्धवटी नं. २	१.७५	८.२५
नवज्वरहर वटी	१.७५	८.२५
नष्ट पुष्पांतक रस	४.६०	२२.५०
नृपतिवल्लभ रस	२.००	९.५०
नाराच रस	१.५०	७.००
नित्यानन्द रस	१.६०	७.५०
प्रतापलंकेश्वर रस	२.१०	१०.००
प्रदरारि रस	१.७०	८.००
प्रदरांतक रस	२.५०	१२.००
प्लीहारि रस	१.५०	७.००
प्राणेश्वर रस	३.७०	१८.१०
प्राणदा गुटिका	१.००	४.५०
पंचामृतरस नं. १	२.००	९.५०
"	२.३०	११.००
पाशुपत रस	१.५०	७.००
पीपल ६४ प्रहरी	४.४०	२१.५०
बृ. शङ्खवटी	१.५०	७.००
बृ. नायकादि रस	१.१०	५.००
बहुशाल गुड़	१.००	४.५०
बालामृतवटी	६.००	२९.५०
ब्राह्मी वटी नं. २	२.४०	११.५०
बृ. वातगजांकुश रस	२.४०	११.५०
विषमुष्टिका वटी	१.२०	५.५०
वृद्धिवाधिका वटी	२.५०	१२.००
बोलवद्धरस	२.१०	१०.००
वैताल रस	३.००	१४.५०
व्योषादि वटी	०.९०	४.००
महामृत्युञ्जय (रक्त)	३.००	१४.५०
" (कृष्ण)	२.३०	११.००
मकरध्वज वटी ५०० गोली	५६.००	
महागन्धक रस	४.३०	२१.००

	१० ग्राम	५० ग्राम
मरिच्यादि वटी	०.९०	४.००
महाशूलहर रस	२.००	९.५०
महावातविध्वंस रस	५.००	२४.५०
मार्कण्डेय रस	१.५०	७.००
मूत्रकृच्छ्रांतक रस	४.५०	२२.००
मेहमुद्गर रस	१.५०	७.००
रक्तपित्तांतक रस	२.००	९.५०
रस पीपरी	३.५०	१७.००
रामबाण रस	१.७०	८.००
लवंगादि वटी	१.३०	६.००
लशुनादि वटी	१.२०	५.५०
लघुमालतीवसंत	३.५०	१७.००
लक्ष्मीविलास रस	३.००	१४.५०
लक्ष्मीनारायण रस	४००	१९.५०
लाई (रस) चूर्ण	१.५०	७.००
लीलावती गुटिका	१.५०	७.००
लीलाविलास रस	२.३०	११.००
लोकनाथ रस	२.५०	१२.००
श्वासकुठार रस	१.७०	८.००
शङ्खवटी	१.३०	६.००
संशमनी वटी	१.५०	७.००
शिरोवज्र रस	१.५०	७.००
शिलाजीत वटी	२.३०	११.००
शीतमञ्जी रस(वटी)	२.६०	१२.५०
शूलवज्रिणी वटी	१.७०	८.००
शूलगजकेशरी रस	३.१०	१५.००
शृङ्गाराभ्रक रस	२.५०	१२.००
समीरगज केसरी	६.००	२९.५०
स्मृतिसागर रस	४.५०	२२.००
सन्निपात भैरव रस	२.१०	१०.००
संजीवनी वटी	१.००	४.५०
सर्पगन्धा वटी	२.६०	१२.५०
सिद्धप्राणेश्वर रस	१.५०	७.००
सूतशेखर रस	४.००	१९.५०
सौभाग्य वटी	१.५०	७.००
हिंग्वादि वटी	१.००	४.५०
हृदयार्णव रस	३.३०	१६.००

	१० ग्राम	५० ग्राम
त्रिपुरभैरव	१.६०	७.५०
त्रिभुवनकीर्ति रस	१.७०	८.००
त्रिविक्रम रस	३.५०	१७.००

लोह माण्डूर

	१० ग्राम	५० ग्राम
अम्लपित्तांतक लोह	२.५०	१२.००
चंदनादि लोह (ज्वर)	१.७०	८.००
चंदनादि लोह(प्रमेह)	२.१०	१०.००
ताप्यादि लोह	३.८०	१८.५०
धात्री लोह	१.५०	७.००
नवायस लोह (लोह-भस्म से निर्मित)	१.७०	८.००
प्रदरारि लोह	१.८०	८.५०
प्रदरान्तक लोह	२.२०	१०.५०
पुनर्नवादि माण्डूर	१.२०	५.५०
विडंगादि लोह	१.३०	६.००
विषम ज्वरांतक लोह	३.३०	१६.००
यकृद्हर लोह	२.२०	१०.५०
शोथोदरारि लोह	२.३०	११.००
सर्वज्वरहर लोह	२.५०	१२.००
सप्तामृत लोह	१.७०	८.००
त्र्यूषणादि लोह	१.७०	८.००

गुग्गुल

	१० ग्राम	५० ग्राम
अमृतादिगुग्गुल	०.९०	३.५०
कांचनार गुग्गुल	०.८०	३.००
किशोर गुग्गुल	०.८०	३.००
गोक्षुरादि गुग्गुल	०.८०	३.००
पुनर्नवादि गुग्गुल	०.८०	३.००
बृ० योगराज गुग्गुल	२.५०	१२.००
योगराज गुग्गुल	०.८०	३.००
रसाभ्र गुग्गुल	१.४०	६.५०
रास्नादि गुग्गुल	०.८०	३.००
सिंहनादि गुग्गुल	०.८०	३.००
त्रयोदशांग गुग्गुल	०.८०	३.००
त्रिफलादि गुग्गुल	०.८०	३.००

चूर्ण

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
अग्निमुख चूर्ण	२०.००	१.२५
अविपत्तिकर चूर्ण	२५.००	१.५०
अजीर्णपानक चूर्ण	२०.००	१.२५
अश्वगधादि चूर्ण	२५.००	१.५०
उदरभास्कर चूर्ण	२५.००	१.५०
एलादि चूर्ण	३५.००	२.००
कामदेव चूर्ण	२५.००	१.५०
गङ्गाधर चूर्ण	२०.००	१.२५
चन्दनादि चूर्ण	२५.००	१.५०
ज्वर भैरव चूर्ण	२०.००	१.२५

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
जातीफलादि चूर्ण	४०.००	२.२५
तालीमादि चूर्ण	३५.००	२.००
दशनसस्कार चूर्ण	२५.००	१.५०
नारायण चूर्ण	२०.००	१.२५
निम्बादि चूर्ण	२०.००	१.२५
प्रदरान्तक चूर्ण	२५.००	१.५०
पञ्चसकार चूर्ण	२१.००	१.३०
प्रदरारि चूर्ण	२१.००	१.३०
पुष्यानुग चूर्ण	२१.००	१.३०
यवानीखाडव चूर्ण	२१.००	१.३०

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
लवंगादि चूर्ण	४०.००	२.२५
लवणभास्कर चूर्ण	२०.००	१.२५
बिल्वादि चूर्ण	२५.००	१.५०
सारस्वत चूर्ण	२१.००	१.३०
सामुद्रादि चूर्ण	२१.००	१.३०
शृंग्यादि चूर्ण	२५.००	१.५०
सितोपलादि चूर्ण	४६.००	२.६०
महा सुदर्शन चूर्ण	२०.००	१.२५
हिंग्वष्टक चूर्ण	३०.००	१.७५
त्रिफलादि चूर्ण	१५.००	१.००

तैल-घृत

	४०० मि. लि.	१०० मि. लि.	५० मि. लि.
इरिमेदादि तैल	१६.००	४.२०	२.२०
कट्फलादि तैल	१६.००	४.२०	२.२०
कन्दर्पसुन्दर तैल	१६.००	४.२०	२.२०
काशीसादि तैल	१८.००	४.६५	२.४०
किरातादि तैल	१४.००	३.६०	१.८५
कुमारी तैल	१६.००	४.२०	२.२०
ग्रहणीमिहिर तैल	१८.००	४.६५	२.४०
गुडुच्यादि तैल	१६.००	४.२०	२.२०
महाचन्दनादि तैल	२०.००	५.१५	२.६५
चदनबलालाक्षादि तैल	२०.००	५.१५	२.६५
जात्यादि तैल	२०.००	५.१५	२.६५
दशमूल तैल	१८.००	४.६५	२.४०
दार्व्यादि तैल	१८.००	४.६५	२.४०
महानारायण तैल	१८.००	४.६५	२.४०
पिप्पल्यादि तैल	१८.००	४.६५	२.४०
पिंड तैल	२०.००	५.१५	२.६५
पुनर्नवादि तैल	१६.००	४.२०	२.२०
बिल्व तैल	२०.००	५.१५	२.६५
विषगर्भ तैल	१८.००	४.६५	२.४०
भृङ्गराज तैल	२०.००	५.१५	२.६५

	४०० मि. लि.	१०० मि. लि.	५० मि. लि.
महाविषगर्भ तैल	२०.००	५.१५	२.६५
बैरोजा तैल	२४.००	६.१०	३.१०
महामरिच्यादि तैल	१८.००	४.६५	२.४०
महामाष तैल	२०.००	५.१५	२.६५
मोम का तैल	२६.००	६.७०	३.४०
राल का तैल	२४.००	६.१०	३.१०
लाक्षादि तैल	१८.००	४.६५	२.४०
शुष्कमूलादि तैल	१६.००	४.२०	२.२०
षड्बिन्दु तैल	१८.००	४.६५	२.४०
हिमसागर तैल	२४.००	६.१०	३.१०
क्षार तैल	२६.००	६.७०	३.४०
अर्जुन घृत	२२.५०	५.८०	३.००
अशोक घृत	२२.५०	५.८०	३.००
कदली घृत	२२.५०	५.८०	३.००
कामदेव घृत	२२.५०	५.८०	३.००
पञ्चतिक्त घृत	२५.००	६.२०	३.२०
फल घृत	२५.००	६.२०	३.२०
ब्राह्मी घृत	२२.५०	५.८०	३.००
महा त्रिफलादि घृत	२५.००	६.२०	३.२०
सारस्वत घृत	२२.५०	५.८०	३.००

नोट—सभी शीशियां पिल्फरप्रूफ कैप से सुन्दर पैक की जाती है।

अरिष्ट-आसव

	५५० मि. लि. (१ बोतल)	४०० मि. लि. (१ पौंड)	२१० मि. लि. (८ औंस)
अमृतारिष्ट	४.६०	४.२०	२ ५०
अर्जुनारिष्ट	५.१०	४.३०	२.६०
अरविंदासव नं. १	१०.७०	८.६०	४.६०
केशरयुक्त	१०० मि. लि.		२.६०
अरविंदासव नं. २	५.५०	४.५०	२.७०
अशोकारिष्ट	५.१०	४.२०	२.६०
अभयारिष्ट	५.१०	४.३०	२.६०
अश्वगन्धारिष्ट	५.५०	४.५०	२.७५
उशीरासव	४.६०	४.२०	.५०
कनकासव	४.६०	४.२०	२.५०
कुमारी आसव	५.४०	४.५०	२.७५
कुटजारिष्ट	५.१०	४.००	२.६०
खदिरारिष्ट	४.६०	४.२०	२.५०
चन्दनासव	४.६०	४.२०	२.५०
दशमूलारिष्ट नं. १ (कस्तूरी सहित)	८.००	६.५०	३.७०
दशमूलारिष्ट नं. २ (कस्तूरी रहित)	५.४०	४.५०	२.७५
द्राक्षासव	५.४०	४.५०	२.७५
द्राक्षारिष्ट	५.४०	४.५०	२.७५
देवदार्व्यारिष्ट	५.१०	४.२५	२.६०
पत्रांगासव	५.१०	४.२५	२.६०
पुनर्नवासव	४.६०	४.२०	२.५०
वल्लभारिष्ट	७.३०	६.००	३.३५
बबूलारिष्ट	४.६०	४.२०	२.५०
वासारिष्ट	५.४०	४.५०	२.७५
बालरोगांतकारिष्ट	५.७०	४.८५	२.६०
विडंगासव	४.६०	४.२०	२.५०
रक्तशोधकारिष्ट	५.४०	४.५०	२.७५
रोहितकारिष्ट	४ ६०	४.२०	२.५०
लोहासव	४.६०	४.२०	२.५०
सारस्वतारिष्ट नं. १	+	+	८.५०
सारस्वतारिष्ट नं. २	६.००	५.००	३.००
सारिवाद्यासव	५.४०	४.५०	२.७५
सोमकल्पासव	६.५०	५.४०	३.२०

अर्क

अर्क उसवा	५.१०	४.३०	२.६०
दशमूल अर्क	३,७०	३.२०	२.००
द्राक्षादि अर्क	४.७०	३.६०	२.२०
महामंजिष्ठादि अर्क	३.७०	३.२०	२.००
रास्नादि अर्क	३.७०	३.२०	२.००
सुदर्शन अर्क	४.००	३.५०	२.१०
अर्क सौंफ	४.००	३.५०	२.१०
अर्क अजवाइन	४.००	३.५०	२.१०
अर्क पोदीना	४.००	३.५०	२.१०

क्वाथ

दशमूल क्वाथ १ किलोग्राम	२.७५
१०० ग्राम	०.५०
२० ग्राम की १०० पुड़िया	१५.००
दार्व्यादि क्वाथ १ किलो	७.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया	७.५०
देवदार्व्यादि क्वाथ १ किलो	६.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां	६.५०
पथ्यादि क्वाथ १ किलोग्राम	७.५०
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां	८.००
महामंजिष्ठादि क्वाथ	७.५०
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां	८.००
महारास्नादि क्वाथ १ किलो.	७.५०
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां	८.००
त्रिफलादि क्वाथ १ किलो.	६.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां	६.५०

क्षार-सत्व-द्राव

	१०० ग्राम	१० ग्राम
वचाक्षार	५.००	०.६०
अपामार्ग क्षार	४.००	०.५०
इमली क्षार	६.००	०.७०
वासा क्षार	५.००	०.६०
कटेरी क्षार	५.००	०.६०
कदली क्षार	५.००	०.६०

	१०० ग्राम	१० ग्राम
पलासक्षार (ढाक)	५.००	०.६०
नाड़ी क्षार	५.००	०.६०
तिलक्षार	५.००	०.६०
मूलीक्षार	६.००	०.७०
आकक्षार	६.००	०.७०
चना (चणक) क्षार	६.००	०.७०

	१०० ग्राम	१० ग्राम
सौफ क्षार	५.००	०.६०
यवक्षार	४.००	०.५०
गिलोय सत्व	५.००	०.६०
शंखद्राव १०० मिली लिटर		१५.००
२५ मि. लि.		४.००

अवलेह

च्यवनप्राश (अवलेह)	
४५० ग्राम शीशी में	७.५०
२५० शीशी में	४.२५
२५० ग्राम कार्डबक्स में	४.५०
१२५ ग्राम शीशी में	२.३०
१ किलो डिब्बा	१५.००

	१ किलोग्राम	२०० ग्राम
कुटजावलेह	१८.००	४.००
कण्टकारी अवलेह	१८.००	४.००
कुशावलेह	१८.००	४.००
वासावलेह	१८.००	४.००
ब्राह्म रसायन	१८.००	४.००
आर्द्रक खण्ड	२०.००	४.२५

	१ किलोग्राम	१२५ ग्राम
सुपारी पाक	[illegible]०.००	२.६०
विषमुष्टिकावलेह ५० ग्राम		८.००
मधुकाद्यवलेह १५० ग्राम		५.००
" ७५ ग्राम		२.५०
लोहरसायन १ किलो		८०.००
२५० ग्रा. २१.००	१०० ग्राम	६.००

मलहम लेप

	१०० ग्राम	५० ग्राम
जात्यादि मलहम	४ ५०	२.४०
पारदादि मलहम	३.६०	१.६०
मरिच्यादि मलहम	४.५०	२.४०

	१०० ग्राम	५० ग्राम
अग्निदग्ध व्रणहर मलहम	२.५०	१.३५

	१०० ग्राम	५० ग्राम
दशांगलेप	२ ६०	१४०
निम्बादि मलहम	५.५०	२.८०

कतिपय मुख्य द्रव्य

भीमसैनी कपूर—औषधियों के लिए आवश्यक है मू. १० ग्राम ७.०० ।

शिलाजीत सूर्यतापी—मू. १ किलो १६०.०० ५० ग्राम ८.५० १० ग्राम २.०० ।

शिलाजीत अग्नितापी—मूल्य १ किलो १३०.०० ५० ग्राम ७.२० १० ग्राम १.६० ।

अष्टवर्ग (अत्युत्तम)—मूल्य १ किलो १८.०० ।

यवक्षार—मू० १ किलो ३२.५० ।

रुदन्ती फल—मूल्य १ किलो २०.००, चूर्ण १ किलो २५.०० १०० ग्राम २.८० टेबलेट १०० ग्राम ३.२५ १ किलो ३०.०० ।

सर्पगन्धा—१ किलो ४२.००

केशर काश्मीरी मोगरा १० ग्राम ६५.००, १ ग्राम ६.६०

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिये—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेन्ट दवाएं

हमारी ये पेटेन्ट औषधियां ७७ वर्षों से भारत के प्रसिद्ध वैद्यराजों और धर्मार्थ औषधालयों द्वारा प्रयोग की जा रही हैं। अतः इनकी उत्तमता के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए

मकरध्वज वटी

अर्थात् निराशबन्धु

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आशुफलप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज नम्बर १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों को भी इसमें डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस, रक्त आदि सप्त धातुओं को क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करती और शरीर में नवजीवन व नवस्फूर्ति भर देती हैं। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणों को जानते है वे इनके प्रभाव में सन्देह नही कर सकते। वीर्य विकार के साथ होने वाली खांसी जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती है। क्षुधा बढ़ती व शरीर-हृष्ट पुष्ट और नीरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेक औषधियां सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषों को यह औषधि बन्धुतुल्य सुख देती है इसीलिए इसका दूसरा नाम निराशबन्धु है।

४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होने लगता है मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाए रखती है। मूल्य १ शीशी (४१ गोलियों की)५.०० छोटी शीशी(२१ गोलियों) की २.६०(५०० गोली) ५६.००

कुमार कल्याण घुटी

(बालकों के लिए सर्वोत्तम घुटी)

इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नही होते किन्तु पुष्ट होते है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे, पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी कफ, खांसी, पसली चलना, सोते में चौंक पड़ना दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते है। शरीर मोटा ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य १ शीशी १४ मि. लि. ०.६०, ४ औंस(१०० मिली लिटर) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में ३.२५, २ औंस (५० मिली लिटर) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में १.७५, १ पौंड (४०० मिली लिटर)११.५०।

कुमार रक्षक तैल—इसकी बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे धीरे रोजाना मालिश करें। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांसपेशिया सुदृढ़ हो जायेंगी हड्डियों में ताकत पहुँचेगी। मूल्य १ शीशी ४ औंस (१०० मिली लिटर) ४.०० छोटी शीशी २ औंस (५० मिली लिटर)२.२५। ४०० मि. लि. १४.५०

ज्वरारि कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक ज्वर जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रवों को नष्ट करती है मूल्य—१० मात्रा की शीशी २.२५, २० मात्रा की बड़ी शीशी ४.००, ५० मात्रा की पूरी बोतल ९.००।

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि है। यह वासा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—२० मात्रा की शीशी २.५०, ५ मात्रा की शीशी १००, १ पौंड (४०० मिली लिटर)९.००

नयनामृत सुरमा—नेत्र रोगों के लिए उपयोगी सुरमा है। चांदी या कांच की सलाई से दिन में एक बार लगाने से धुंधला दीखना, पानी निकलना, खुजली नष्ट होती है। मूल्य (३.०० ग्राम) की शीशी १.००

अग्निसंदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है भोजन के बाद ३-३ माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि बढ़ेगी। (१ शीशी ३० ग्राम) मू० १.००

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट शीतल व पाचन चूर्ण है। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनों लाजवाब है। १ शीशी (४० ग्राम) १.००, छोटी शीशी (२० ग्राम) ०.६० पैसे।

अग्निवल्लभ क्षार—इसके सेवन से अग्नि तीव्र होती है व खाना हजम होता है। भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकार आना, पेट में दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मिचलाना, अपानवायु का बिगड़ना इत्यादि शिकायतें दूर होती है। जल दोष नहीं सताता संग्रह करने योग्य महौषधि है। क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत हो चट अग्निवल्लभ क्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ हो जाती है। १ शीशी (४० ग्राम) का मूल्य १.५०।

ग्रहणी रिपु—यह ग्रहणी रोग के लिए अक्सीर है। १ शीशी १० ग्राम ३.५० ।

खाजरिपु—गीली तथा सूखी खाज के लिए अक्सीर है। मू० १ शीशी (५० मि. लि.) २.५०, २५ मि. लि. १.४० पै०।

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजलाकर दवा की मालिश करें। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करें। १ शीशी मू. १.००।

नेत्र बिन्दु—दुखती आंखों के लिए अत्युपयोगी मू. आधा औंस (१४ मि. लि.) १.२०, ७ मि. लि. ७५ पै.।

स्वप्नोजित वटी—३० गोली की १ शीशी ३.००।

स्वप्नोजित चूर्ण—५० ग्राम की १ शीशी ३.००।

शक्तिदा चूर्ण—५० ग्राम १ शीशी ३.००।

नारी सुखदा वटी—३० गोली की १ शीशी २.५०

धन्वन्तरि काला दन्तमंजन—विशुद्ध आयुर्वेदीय द्रव्यों से निर्मित यह काला दन्तमंजन नित्य व्यवहार करने के लिए उपयोगी है। दांतों को चमकीला बनाता है मुख की दुर्गन्ध दूर करता है, मसूढ़ों को सुपुष्ट बनाता है। एक बार व्यवहार करने पर आप इसे सदैव व्यवहार करना पसन्द करेंगे। मू० १ शीशी १.५०।

स्वादिष्ट चटनी—३० ग्राम-१.२५।

आनन्द वटी—३० गोली २.००।

ज्वर हर रस—६ माशा (१ पैकिट) ०.५० पैसा।

निद्राकारक तेल किसी रोग के कारण या मानसिक चिन्ताओं के कारण निन्द्रा न आने पर इसकी मालिश शिर तथा बालों में धीरे-धीरे कीजिये, मिनटों में निद्रा आजायगी तथा रोगों व चिन्ताओं से छुटकारा मिलेगा। मू० ५० मि. की १ शीशी ३.००।

शोथ शार्दूल—इस तैल की मालिश करने से शोथ किसी भी प्रकार का हो तत्काल लाभ होगा। एक बार अवश्य परीक्षा करें। मू० ५० मि. १ शीशी ३.००

शूलहर टिकिया—दर्द गुर्दा के लिये अक्सीर। जलते हुए अंगारों पर १ या २ टिकिया रखकर उसका धूंआ जहां दर्द हो वहां लगावें। दर्द तुरन्त बन्द होगा। मू० १० टिकियों की शीशी २.००।

डब्बा नाशक वटी—बालकों के पसली चलने (बाल न्यूमोनिया) के लिए अक्सीर औषधि। मू० २० गोली की १ शीशी २.००।

सौन्दर्यवर्धक चूर्ण (उबटन)—चेहरे की कील, मुंहासे आदि से रक्षा करने वाला तथा सुन्दर सुवर्ण बनाने वाला अनुपम उबटन है कन्याओं तथा सौंदर्य प्रेमी महिलाओं के लिए अत्युपयोगी चूर्ण है। मू. १ शीशी १.७५।

चन्द्रप्रभावर्ति—आंख की फुली के लिए उत्तम। इसके लगाने से आंख का जाला, धुंध, पानी ढलना, खुजली होना आदि नेत्र विकार नष्ट होते हैं। नियमित अधिक समय तक व्यवहार करने से फूली भी नष्ट होती है। सुपरीक्षित दवा है। मू. ५० ग्राम ६.००, १० ग्राम २.००।

द्राक्षावलेह—सूखी कास को दूर करने के लिए थोड़ा-थोड़ा चटावें तुरन्त ही लाभ होगा। १२५ ग्राम की शीशी ४.००।

सोमकल्पासव—यह श्वास तथा स्वर यंत्र के सभी रोगों के लिए अत्युपयोगी एवं सुपरीक्षित है। मू. ५५० मि. लि. ६.५०, ४०० मि. लि. ५.४०, २१० मि. लि. ३.१०।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

आयुर्वेदिक पुस्तकें

ड्रगएक्ट (हिन्दी में)—लेखक डा० दाऊदयाल गर्ग ए. एम. बी. एस–यह पुस्तक सभी औषधि निर्माताओं, औषधि विक्रेताओं तथा चिकित्सकों के लिये अवश्य पठनीय एवं संग्रहणीय है। आजकल के उलझन पूर्ण समय में अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। दूसरा परिवर्द्धित एवं संशोधित संस्करण। मूल्य ६.००

यन्त्र शस्त्र परिचय—(द्वितीय संस्करण) लेखक श्री दाऊदयाल गर्ग। यह पुस्तक यन्त्र शस्त्रों के प्रयोग हेतु सर्वोत्तम पुस्तक है। इसका प्रथम संस्करण शीघ्र ही समाप्त होगया था अब पुनः छपा है। अति उत्तम पुस्तक है जिसमें सैकड़ों चित्र दिये गये हैं। मूल्य सजिल्द १०.००

चिकित्सा रहस्य–लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य, इस पुस्तक में विषय प्रवेश के पश्चात् आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त 'दोष धातु मलमूलं हि शरीरम्' के अनुसार चिकित्सा के उपयुक्त शरीर मन और आत्मा की स्वस्थ दशा की सुस्थिति एवं रोगप्रतिकार की दृष्टि से आवश्यक स्वस्थवृत्त सम्बन्धी कुछ बातें प्रथम अध्याय से दशवें अध्याय तक संक्षेप में वर्णित हैं। तत्पश्चात् रोग प्रतीकार एवं चिकित्सा सारल्य की दृष्टि से आयुर्वेदीय प्रमुख सूत्रों का विवेचन ११ वें अध्याय में किया गया है। तदुपरान्त ४ अध्यायों में तीनों दोषों का विशद विवेचन एवं सम्बन्धी चिकित्सा दर्शायी गई है। इस पुस्तक में उन्हीं बातों का उल्लेख किया गया है जिनकी जानकारी चिकित्सा कर्म के पूर्व ही उसकी सफलता के लिए आवश्यक है। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का अन्य चिकित्सा पद्धतियों के साथ तुलनात्मक विचार भी किया गया है। उत्तम ग्लेज कागज पर २०×३० सोलह पेजी साइज में छपी ३७५ पृष्ठ सुपुष्ट जिल्द। मूल्य ५.००

वृ० पाक संग्रह–लेखक—पं० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक में ४०० से अधिक पाकों का संग्रह प्रकाशित है। इसमें पाक निर्माण विधि, मात्रा, सेवन विधि आदि दी गई है। प्रायः सभी रोगों पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक में आपको मिलेंगे। हर प्रकार से उपयोगी है। मूल्य सजिल्द ५.०० अजिल्द ४.५०

सूर्य रश्मि चिकित्सा–(नवीन संस्करण) सूर्य चिकित्सा को अंग्रेजी में क्रमोपैथी कहते हैं इस पुस्तक में सूर्य की किरणों से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है। इसको पढ़कर पाठक देखेंगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है। उसकी किरणें शरीर को कितनी लाभदायक हैं और उनके द्वारा रोग किस प्रकार बात की बात में दूर किये जा सकते हैं, अनेक रंगीन चित्र हैं। मूल्य १.००

उपदंश विज्ञान (द्वितीय संस्करण)–लेखक श्री कविराज पंडित बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक में गरमी (आंदी) रोग के वैज्ञानिक कारण निदान लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं....उपदंश परिचय, प्राच्य पाश्चात्य का साम्यवाद, सक्रमण, निदान सिफलिस के भेद, उपदंश प्राथमिक कोल, लिगार्श, औपसर्गिक सफल रोग, उपदंशज विकृतियां, मस्तिष्क विकार, फिरंग चिकित्सा में पारद प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि उपदंश सम्बन्धी सभी विषय वर्णित हैं। मू. १.२५

प्रयोग पुष्पावली–में प्रयोग बहुत समय से परीक्षित हैं और सफल प्रमाणित हो चुके हैं। अनेक उद्योग धन्धों का संकेत इसमें मिलेगा इनसे पाठक बहुत लाभ उठा सकते हैं। समष्टि रूप में पुस्तक बेकार मनुष्यों को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है। पहले दो संस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है, पृष्ठ संख्या ११२। मूल्य १.५०

कुचिमार तन्त्र (भाषा टीका)–यह श्रीमद् कुचिमार मुनि प्रणीत है। इनमें इन्द्रीय वृद्धि स्थूलीकरण, कामोद्दीपन लेप, वाजीकरण, द्रावण, स्तम्भन, संकोच व केशपात, गर्भाधान, सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भली-भांति बताए गये हैं। इस नवीन संस्करण में प्रमेह नपुंसकता, मधुमेह आदि रोगों पर स्वानुभूत प्रयोगों का एक छोटा सा संग्रह भी दिया है। मूल्य १.००

न्यूमोनियां प्रकाश (द्वितीय संस्करण)-आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पंडित देवकरन जी वाजपेयी की यह नई उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि पदक मिला था और जो निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनियां की शास्त्रीय व्युत्पत्ति कारण निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बातें भली भांति वर्णित है। मूल्य १

वेदों में वैद्यक ज्ञान-लेखक स्वर्गीय लाला राधा वल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमे आयुर्वेदीय विषयों का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है शब्दार्थ सहित दिये है। मूल्य ५० पैसा

कूपीपक्व रस रसायन भस्म पर्पटी-लेखक देवीशरण जी गर्ग धन्वन्वतरि कार्यालय में निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनों के गुण मात्रा अनुपान सेवन विधि आदि का विस्तृत वर्णन है। मू. २५ पैसा

चन्द्रोदय मकरध्वज (तृतीय संस्करण) लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक में पारद शुद्ध, गन्धक शुद्ध, पारद के संस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, भ्राण्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न भिन्न रोगों में अनुभव सभी बातें स्वानुभव के आधार पर वर्णितहै। मूल्य ५० पैसे

रक्त-(Blood)श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एवं रक्त सम्बन्धी सभी मोटी मोटी बातें आयुर्वेद एवं एलोपैथि उभय पद्धतियों से समझाकर सरल हिन्दी भाषा में लिखी है। नवीन संस्करण मू. ५० पैसे

इन्फ्लुएञ्जा (फ्लु)—लेखक श्री पण्डित कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य। इसमें इन्फ्लुएन्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल चिकित्सा विधि वर्णित है। फ्लु और इसके सभी उपद्रवों की आयुर्वेदीय चिकित्सा है। मू. १.००

सुधानिधि के लघु विशेषांक मंगाइये

—★—

परिवार नियोजन अंक-अपने विषय का सर्वोत्तम अंक जिसने आयुर्वेद जगत् में तहलका मचा दिया। यदि आपके पास नहीं है तो अवश्य मंगाकर रखें इस अंक में परिवार नियोजन के आयुर्वेदिक एलौपैथिक अनेक योग दिये गये हैं। बहुत उपयोगी अंक है। मूल्य २.५०

रक्तचापांक (प्रथम तथा द्वितीय भाग)—ब्लडप्रेशर का रोग आजकल बहुत बढ़ता जा रहा है। इस विषय पर हिन्दी में इन लघु विशेषांकों से पूर्व कोई विशेषांक आदि प्रकाशित नही हुये। प्रथम भाग में उच्च रक्तदाब तथा द्वितीय भाग में न्यून रक्तदाब को अनेकों चित्रों की सहायता से समझाया गया है। मूल्य प्रथम भाग २.५०, द्वि. भाग २.५०

शिरशूलांक—शिरःशूल भयंकर व्याधि है। इस विषय पर यह अतिउत्तम लघु विशेषांक है जिसकी विद्वानो ने भूरि भूरि प्रशंसा की है यदि आपके पास नहीं है तो अवश्य मंगालें। मूल्य २.५०

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

आयुर्वेदीय ग्रन्थ-रत्न

अष्टांगहृदय (सम्पूर्ण)-विद्योतनी भाषा टीका वक्तव्य, परिशिष्ट एवं विस्तृत भूमिका सहित । टीकाकार श्री अत्रिदेव । मूल्य १६ रु०

अष्टांग संग्रह (सूत्रस्थान)-हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छांगाणी । मू. ८ रु.

कौमारभृत्य (नव्य बाल रोग सहित)-बालरोगों पर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के आधार पर श्री पं. रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S. द्वारा लिखित विशालग्रन्थ । मूल्य १० रु.

चरक संहित (संपूर्ण)—श्री जयदेव विद्यालंकार द्वारा सरल सुविस्तृत भाषा टीकायुक्त दो जिल्दो में (छठा संस्करण) मूल्य ३० रु. ।

चरक संहिता—श्री अम्बिकादत्त, हिन्दी व्याख्या विमर्श परिशिष्ट सहित दो भागों में। अत्युपयोगी नवीन विस्तृत टीका। मू. ४० रु.

चक्रदत्त—भावार्थ संदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विशद टिप्पणी सहित । परिशिष्ट में पंचलक्षणी निदान, डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित । मू. १२ रु.

द्रव्यगुण विज्ञान (पूर्वार्ध)-छात्रोपयोगी संस्करण लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य द्रव्य, गुण, रस, वीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म विज्ञानात्मक विशद विवेचन मू. ५ रु.

भावप्रकाश सम्पूर्ण-भाषा टीका सहित । दो जिल्दों में शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा-प्रकरण में प्रत्येक रोग पर प्राच्य प्राश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन विशेष टिप्पणी से सुशोभित है लालचन्द कृत । मूल्य २५ रु.

माधव निदान (भाषा टीकायुक्त)-पूर्वार्ध मधुकोष संस्कृत टीका विद्योतनी भाषा तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणी । माधव निदान बड़ा उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १६ रु. प्रथम भाग ८. द्वितीय भाग ८ रु.

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोष संस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद, वक्तव्य एवं टिप्पणी युक्त । यह ग्रन्थ विद्यार्थियों तथा चिकित्सकों के लिए आवश्यक है । पं. पूर्णानन्द शास्त्री कृत टीका दो भागों में मूल्य १३ रु.

माधव निदान—सर्वाङ्ग सुन्दरी भाषा टीका ५.००

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशंकर शास्त्री, मधुकोष संस्कृत व्याख्या तथा मनोरमा हिन्दी टीका सहित । पृष्ठ संख्या ४१२ मू. ८ रु.

रसायनसार—श्री पं. श्यामसुन्दराचार्य के बीसियों वर्षों के परिश्रम से प्राप्त प्रत्यक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रस ग्रन्थ मू. १० रु.

रसेन्द्रसार संग्रह-वैज्ञानिक रसचन्द्रिका भाषाटीका परिशिष्ट में नवीन रोगों पर रसों का प्रभाव, मान, परिभाषा, पुटप्रकरण, अनुपान विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि । मू. ७ रु.

रसेन्द्रसार संग्रह (तीन भागों में)-आयुर्वेद बृहस्पति पं. घनानन्द जी पन्त द्वारा संस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यों, विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। मूल्य ११ रु.

रसरत्नसमुच्चय-नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भाषा टीका एवं परिशिष्ट सहित मू. १२ रु० श्री पं० धर्मानन्द कृत तत्वबोधनी हिन्दी टीका १२ रु.

रसतरङ्गिणी चतुर्थ संस्करण-भाषा टीका सहित रसनिर्माण, धातु-उपधातुओं के शोधन मारणयुक्त यह अनुपम ग्रन्थ है मू. १५ रु०

रसराज महोदधि (पंचम भाग)-वस्तुतः यह आयुर्वेदीय रसों का सागर ही है पठनीय सरल भाषा में लिखा उपयोगी रसग्रन्थ है, नवीन संस्करण सजिल्द मू. १२ रु.

सौश्रुति-लेखक रमानाथ द्विवेदी । अष्टांग आयुर्वेद के शल्यतंत्र पर लिखित प्राच्य पाश्चात्य समन्वय मू. १०.००

सुश्रुत संहिता सम्पूर्ण—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त । विद्यार्थियों के लिए पठनीय

है। पक्के कपड़े की जिल्द मू. १८ रु. कविराज अम्बिका दत्त कृत सम्पूर्ण २४ रु.

सुश्रुत संहिता (सूत्र स्थान)–डा. गोविन्दभास्कर घाणेकर कृत आयुर्वेद रहस्य दीपिका व्याख्या अत्यन्त उपयोगी एवं विस्तृत टीका मू. १२ रु.

सुश्रुत (शारीर स्थान)—डा. गोविन्द भास्कर घाणेकर कृत टीका मू. १२ रु.।

हरीहर संहिता—वैद्यराज, हरिनाथ सांख्याचार्य नवीन औषधियों का समावेश है। सरल भाषा टीका मू. ८.५०

चिकित्सा तत्त्व प्रदीप एक चिकित्सक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है प्रथम भाग १४.००सजिल्द,द्वितीय भाग २६.००

वनौषधि चन्द्रोदय (१० भाग)—प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि विवेचनयुक्त श्री चन्द्रराज भंडारी कृत ४०.०० (प्रत्येक भाग ५.००)

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी संसार में अपूर्व और पहला ग्रन्थ विना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो संस्कृत जरा भी नहीं जानते वे भी इस ग्रन्थ को विना गुरु के पढ़कर वैद्य बन सकते हैं—

चिकित्सा चन्द्रोदय	१ ला भाग	८.००
” ”	२ रा भाग	१२.००
” ”	३ रा भाग	८.००
” ”	४ था भाग	१२.००
” ”	५ वां भाग	१२.००
” ”	६ वां भाग	८.००
” ”	७ वां भाग	२०.००
		८०.००

नोट—एक साथ ७ भाग खरीदने वालों को किताबें रेल पार्सल से मंगानी चाहिए। एक पूरा सैट लेने वालों को कमीशन कम करके ७२.०० देने होंगे। खर्चा पृथक्

स्वास्थ्य रक्षा—गृहस्थों के घर की यह रामायण है हर घर में इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है, तन्दुरुस्ती नहीं तो दुनियां में रहा ही क्या है। मू. ८,००

शार्ङ्गधर संहिता–वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एवं विविध परिशिष्ट सहित राधाकृष्ण पाराशर टीका ८.००

भिषक्कर्म सिद्धि—आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान् श्री रमानाथ द्विवेदी द्वारा लिखित यह अनुपम ग्रन्थ है। इसमें चिकित्सक के लिए जानने योग्य सभी विषयों का संग्रह किया गया है। ग्रन्थ के पांच खण्ड किये गये हैं–प्रथमखण्ड में निदान पंचक, द्वितीय खण्ड में पंचकर्म, तृतीय में चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्त, चतुर्थ खण्ड के ३३ अध्यायों में रोगानुसार आयुर्वेदीय सफल चिकित्सा तथा अन्त के पंचम खण्ड के परिशिष्टाध्याय में आवश्यक जानकारी दी गई है। पुस्तक चिकित्सकों, अध्यापकों एवं विद्यार्थियों के लिए अद्वितीय है। सुन्दर छपाई पक्के कपड़े की जिल्द ७१५ पृष्ठ मू. २२.००

काय चिकित्सा (दो भाग)—श्री रामरक्ष पाठक जी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढ़ा है, वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक में आयुर्वेद सिद्धान्तों का विशद रूप में विवेचन किया गया है। अत्युपयोगी है लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साईज छपाई सुन्दर कपड़े की जिल्द मूल्य ३.००

काय चिकित्सा—गंगासहाय पांडेय–इस पुस्तक में चिकित्सा के सैद्धान्तिक पक्ष का स्पष्टीकरण एवं चिकित्सा के विविन्न उपक्रमों का व्यावहारिक स्वरूप देने के अतिरिक्त व्याधि की विभिन्न अवस्थाओं के उपचार क्रम का विशद विवेचन किया गया है। प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक निर्देश भी किया गया है। अन्त में विशिष्ट संक्रामक व्याधियों का विस्तृत परिचर्यादि एवं चिकित्सा क्रम है। लगभग १००० पृष्ठ सुन्दर छपाई सजिल्द मूल्य २५.००

इन्द्र निदान - इसमें संस्कृत माधव-निदान की अनेकों प्रकार के पद्यों में बड़ी सरल सुबोध हिन्दी भाषा में टीका की गई है तथा आधुनिक रोगों का परिशिष्ट में कथन कर दिया है। इसके टीकाकार श्री इन्द्रमणि जैन अलीगढ़ हैं सजिल्द मूल्य केवल ६ रुपया।

पदार्थ विज्ञानम्—लेखक श्री पं० वागीश्वर शुक्ल वैद्य। इस ग्रन्थ में आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन सरल भाषा में किया गया है। मूल्य ८ रुपया।

शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा मार्गदर्शिका—(आयुर्वेदीय गाइड) इसके लेखक हैं आयुर्वेद के प्रकांड विद्वान् श्री अत्रिदेव विद्यालंकार—इस पुस्तक के ३ भाग हैं—

एलोपैथिक पुस्तकें (हिन्दी में)

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—लेखक हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ—नवीन मतानुसार शवच्छेद (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिये अनेक चित्र साथ में दिये हैं। दो भाग मू. २२.०० ।

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस.-विकृति विज्ञान (pathology) विषय का हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ अनेक चित्र साथ में दिए गए हैं। प्रत्येक विषय का विकास किस प्रकार होता है एवं उस समय शरीर के किस अङ्ग में क्या क्या परिवर्तन होते हैं स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मूल्य २५.०० ।

एलोपैथिक पेटेन्ट चिकित्सा—लेखक डा. अयोध्या नाथ पाण्डेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जाने वाली पेटेण्ट औषधियां दी हैं तथा वे पेटेण्ट औषधियां किन-किन रोगों पर प्रयुक्त हो सकती हैं यह भी दिया गया है। मू. ४.००

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक पं. विश्व नाथ द्विवेदी शास्त्री B. A. आयुर्वेदाचार्य। प्राच्य एवं पाश्चात्य दोनों का समन्वय करते हुए नेत्र चिकित्सा पर हिन्दी में विशाल ग्रन्थ। मू. १५.००

बालरोग चिकित्सा—लेखक डा. रमानाथ द्विवेदी प्राच्य एवं पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशुद्ध वर्णनयुक्त मूल्य ७.०० ।

अभिनव शारीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा। यह पुस्तक हिन्दी में अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मू. १०.००

धात्री विज्ञान—डा. शिवदयाल गुप्ता A. M. S. प्रारम्भ में नारी जननेन्द्रिय रचना एवं शरीर गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु परिचर्या एव प्रसवकालीन रोगों का संक्षेप में वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र भी दिए हैं। मू. ३.५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा. लक्ष्मीशंकर गुरु। प्रसूति विषयक हिन्दी में उत्तम एवं संक्षिप्त पुस्तक, सम्बन्धित चित्र भी हैं। मू. ५ रुपया।

जन्मनिरोध—लेखक ए. ए. खान एम. एस. सी. पुस्तक मे जन्म निरोध के लिए अनेक प्रकार की भौतिक रासायनिक यान्त्रिक एवं शस्त्रकर्मीय विधियां दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू. ६ रुपया।

सामान्य शल्य विज्ञान (सचित्र)—लेखक डाक्टर शिवदयाल गुप्त A. M. S. शल्य सर्जरी विषयक हिन्दी भाषा में विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रो द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं चिकित्सकों सभी के लिए उपादेय है। मू. १२ रुपया।

मोर्डन एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि की प्रकृति, गुण, धर्म उपयोग मात्रा रोग निदान के अनुसार वर्णित है। मू. ७.५० ।

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा. वर्मा जी कृत इसमें १००० से अधिक पेटेण्ट तथा साधारण औषधियों के वर्णन के अतिरिक्त सैकड़ों नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातें दी हैं मू. १५ रुपया।

एलोपैथिक योग रत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगों का विशाल संग्रह। पृष्ठ ७४१ मू. १३ रुपया।

एलोपैथिक चिकित्सा (चौथा संस्करण)—लेखक डा. सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमें प्रायः सभी रोगो के लक्षण निदान आदि संक्षेप में वर्णन करके उन रोगों की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानो को मथकर अनुभव सिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठ के विशाल सजिल्द ग्रन्थ का मू. १७ रुपया।

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा सूक्ष्मरूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब में रखकर चिकित्सार्थ जा सकते हैं जो आपका हर समय साथी का काम देगी। मू. ४.५०

एलोपैथिक पेटेण्ट मेडीसिन—लेखक डा. अयोध्या नाथ पांडेय। कौन पेटेण्ट औषधि किस कम्पनी की किन-किन द्रव्यों से निर्मित हुई है, किस रोग में प्रयुक्त होती है, यह लिखा गया है। दूसरे अध्याय में रोगानुसार औषधियों का चुनाव किया गया है। मू. ६ रुपया।

एलोपैथिकमेटेरिया मेडिका—(पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान)—लेखक कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री A. M. S. यह पुस्तक अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सकों तथा विद्यार्थियों के लिये विशेष उपयोगी रूप से प्रस्तुत किया है। मू. प्रथम भाग २०.००, द्वितीय भाग २०.००

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—लेखक डा. शिवदयाल जी गुप्त ए. एम. एस.। इस पुस्तक में अब तक की सम्पूर्ण औषधियां जो एलोपैथी में समाविष्ट हो चुकी हैं, दी गई हैं। सरल सुबोध भाषा वैज्ञानिक क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियों से सम्बन्धित तथा चिकित्सा में प्रयुक्त योगों का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी में सबसे महान और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमें १५०० पृष्ठ हैं। मू. १८.००

एलोपैथिक सफल चिकित्सा—एलोपैथी की नवीनतम प्रसिद्ध खास खास औषधियों का गुणधर्म विवेचन जो आजकल बाजार में वरदान सिद्ध हो रही हैं। सभी सल्फा ग्रुप आदि औषधियों के वर्णन सहित मू. ४.५०

सचित्र नेत्र विज्ञान—लेखक डा. शिवदयाल गुप्त। पृष्ठ संख्या ५१४ चित्र संख्या १३, मू० ८.००

मल मूत्र रक्तादि परीक्षा—लेखक डा. शिव दयाल गुप्त। अपने विषय की सर्वांगपूर्ण सचित्र और वैद्यों के बड़े काम की पुस्तक है मू. ३.५०

मिक्सचर(छठा संस्करण)—प्रथम २६ पृष्ठों में मिक्स्चर बनाने के नियम, औषधियों की तोल नाप व्यवस्था पत्रों में लिखे जाने वाले संकेतों की व्याख्या आदि बातें दी हैं। बाद में उपयोगी प्रेस्क्रिप्शनों का भी संग्रह किया है। अन्त में देशी दवाओं के अंग्रेजी नाम भी दिये हैं। ३१७ पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सकों के लिये उपयोगी है। मू० ४.००

नव्य चिकित्सा विज्ञान—(संक्रामक रोग) दो भागों में। डा. मुकुन्दस्वरूप वर्मा—नव्य चिकित्सकों के लिए आधुनिक चिकित्सा विषयक अति उत्तम पुस्तक है। मू. प्रथम भाग ८.०० द्वितीय भाग ८.००

बीसवीं शताब्दी की औषधियां इसमें सल्फा ग्रुप की सभी औषधियों [illegible] आदि [illegible] दिए गए हैं। हिन्दी भाषा में अपने विषय की [illegible] है। मू. [illegible]

रोग निवारण—प्रस्तुत पुस्तक आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगों की चिकित्सा के विस्तार पूर्वक वर्णन के साथ साथ संक्षेप में आयुर्वेदिक चिकित्सा का भी वर्णन किया है। इसके लेखक प्रसिद्धिप्राप्त डा. शिवनाथ खन्ना हैं। मू. १५.००

गर्भ रक्षा तथा शिशु परिपालन—श्री डा. मुकुन्द स्वरूप वर्मा द्वारा लिखित अपने विषय की सरल हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तक है। यथास्थान चित्र दिये हैं। मू. ४.५०

शालक्य तन्त्र (निमि तन्त्र)—अष्टांग आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अंग शालाक्य पर यह एक उत्तम ग्रन्थ है। आधुनिक एवं प्राच्य दोनों दृष्टि कोण से पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके रचयिता आयुर्वेद बृहस्पति श्री रमानाथ जी द्विवेदी ए. एम. एस. हैं। मू. १०.००

संकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—डा. प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई हिन्दी के अपने विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। विषय को स्पष्टतः समझाने के लिए पुस्तक में ८६ चित्र दिये गये हैं। मू. केवल ४.५०

नासा गला एवं कर्ण रोग चिकित्सा—डा. प्रिय कुमार चौबे द्वारा लिखी गई इस पुस्तक में उक्त रोगों का विशद रूप से परिचय कराया गया है। पेटेन्ट औषधियों का भी उत्तम रूप से परिचय है। मू. ५.००

एलोपैथिक संग्रह—(प्रथम भाग)—मेटेरिया मेडिका एलोपैथिक तथा डिस्पेंसिंग गाइड जिसमें सभी एलोपैथिक औषधियों का ब्योरा विस्तारपूर्वक दिया गया है। सभी औषधियों के देशी प्रचलित नाम, मात्रा एवं साथ कई एक फार्माकोपिया की सभी नवीन औषधियां इसमें सम्मिलित हैं। मू. १२.००

एलोपैथिक संग्रह—[illegible] भाग [illegible] [illegible] तथा स्त्री रोग चिकित्सा। मू. ७.५०

बालरोग चिकित्सा—इसमें बालकों के समस्त रोगों का ब्योरा दिया है। मू. २.५०

एलाइड फार्मासिस्ट तथा कम्पाउन्डरी शिक्षा—[illegible] [illegible] ५.५०

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] इस पुस्तक के लिखे [illegible]। मू. [illegible]

सफल आधुनिक औषधियां—[illegible] [illegible] [illegible] सिंह एम. बी. बी. एस.। इसमें [illegible] [illegible]-

प्कृत एवं चमत्कारिक अचूक औषधियों का वर्णन है। विटामिन टानिक्स सल्फाग्रुप की तथा एण्टीबायोटिक्स की समस्त औषधियों के साथ साथ टी. बी. डाइबिटीज, गठिया, कृमि, कुष्ठ, हाईब्लड प्रेशर आदि का विशेष विवेचन दिया है। पृष्ठ ३६२, सजिल्द ५.५०

कम्पाउन्डरी शिक्षा रोगी परिचर्या विष विज्ञान तथा चिकित्सा प्रवेश- डा. आर. सी. भट्टाचार्य इस पुस्तक में औषधि निर्माण, विष चिकित्सा रोगी परिचर्या सामान्य चिकित्सा आदि समाविष्ट हैं। मू. ६.००

एलोपैथिक नुस्खा—डा० एम. एल. शर्मा। इसमें बीमारियों के नाम सर्व साधारण, के रोग काम में आने वाले इन्जेक्शन तथा पेटेन्ट दवाओं का वर्णन है। मू. ३.००

माडर्न एलोपैथिक मैडीसिन्स-डा. राजकुमार गुप्ता प्रसिद्ध एलोपैथिक दवाओं के निर्माताओं की प्रसिद्ध प्रसिद्ध दवाओं का वर्णन किया है। मू. ६.००

शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान-डा. एस. आर वर्मा। शरीर रचना एवं क्रिया विज्ञान विषयक संक्षिप्त लेकिन सरल पुस्तक है। विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक चित्र दिए हैं। पारिभाषिक शब्द हिन्दी में तथा साथ ही कोष्टक में अंग्रेजी में दिये हैं सजिल्द ५.००

मानव शरीर रचना-डा. मुकन्द स्वरूप वर्मा। मानव शरीर रचना से सम्बन्धित हिन्दी में उत्कृष्ट पुस्तक है जिसे कि विद्यार्थी पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ सकते हैं लगभग ३.०० चित्र दिये हैं। सजिल्द मू. २८.००

इन्जेक्शन विषयक पुस्तकें

इन्जेक्शन—लेखक डा. सुरेशप्रसाद शर्मा। अपने विषय की हिन्दी मे सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोड़े समय में ७ संस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है इसके आरम्भ में सिरिंज के प्रकार, इन्जेक्शन लगाने के प्रकार तथा उसके लगाने की विधि रंगीन एवं सादे चित्रों के सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद में प्रत्येक इन्जेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा, उसके गुण प्रयोग करने में क्या सावधानी वर्तनी चाहिए आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई हैं। अन्त में अकारादिक्रम से समस्त इन्जेक्शनों की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सकों के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द २४ रुपया

इंजेक्शन तत्वप्रदीप—लेखक डा. गणपति सिंह वर्मा। सभी इन्जेक्शनो का वर्णन तथा उनके भेद और लगाने की विधि सरलतया दी है मू.—६ ००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा. रमेशचन्द्र वर्मा डी. आई. एम. एस.। यह पुस्तक भी एलोपैथी इन्जेक्शनों की उपयोगी विस्तृत सामग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्की जिल्द मू. ७.५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका में आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर में सागर भर दिया है। मू. २.५०

होम्यो इंजेक्शन चिकित्सा-आरम्भ में इन्जेक्शनों के भेद तथा लगाने की विधि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात होम्योपैथिक औषधियों का गुणादि वर्णन दिया है। मू. २.७५

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इंजेक्शन)- लेखक वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक में आयुर्वेदिक द्रव्यों एवं जड़ी बूटियों के इन्जेक्शनों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। स्वानुभाव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मू. ५.००

इंजेक्शन गाइड-श्री महेन्द्रप्रताप शर्मा एवं प्रमोद विहारी सक्सेना। इस पुस्तक में एलोपैथिक प्रणाली की विषद विवेचना के साथ साथ होम्योपैथिक एवं आयुर्वेदिक प्रणाली द्वारा इन्जेक्शन क्रिया का यथेष्ट वर्णन किया गया है। मू. ६.००

होम्योपैथी इन्जेक्शन गाइड—डा. जगदीश्वर सहाय भार्गव होम्यो इन्जेक्शनों का सारगर्भित वर्णन किया है। मू. १.७५

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश (चारों भाग)—इसमें घाव और व्रण से सम्बंधित जर्राह के लिए, उर्दू संस्कृत व डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थों का सार संग्रह किया गया है। पृष्ठ २६८ मूल्य ४.००

रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—संशोधित अष्टम संस्करण। इस ग्रन्थ में रस-रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट, पाक, अवलेह, लेप, सेक, मलहम, अंजनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियों के सहस्त्रशः अनुभूत एवं शास्त्रीयप्रयोग तथा विस्तृत गुणधर्म विवेचन है। प्रथम भाग सजिल्द १६.७०. द्वितीय भाग १२.०० अजिल्द १०.००

होमियो बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन-यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमें इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमेन के २९१ सूत्र हैं। इस पुस्तक में इन्हीं पर डा. सुरेश प्रसाद शर्मा ने व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल की है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रों का मन्तव्य भलीभांति समझ सकते हैं। बिना इस पुस्तक के होमियोपैथी जानना दुराशा मात्र है। सजिल्द मू. ५.५०

ज्वर चिकित्सा-उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुरस्कार प्राप्त। इसमें भी कई प्रकार के ज्वरों की एलोपैथिक, आयुर्वेदिक यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू. २.५०

पशु चिकित्सा होमियो--यह आयुर्वेदिक तथा होमियोपैथिक दोनों से सम्बन्धित पशु चिकित्सा पर बहुत उपयोगी साहित्य है। मू. २.४०

किंग होमियो मिक्चर्स--श्री शंकरलाल गुप्ता। यह पुस्तक होमियोपैथिक डाक्टरों के दैनिक व्यवहार के लिए अत्युपयोगी है। मू. २.५०

होमियो मेटेरिया मैडिका (रेपर्टरी सहित)—डा. विलियम बोरिक। अब तक यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा में थी जिसका यह सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद है। मेटेरिया मैडिका अध्याय के बाद रेपर्टरी अध्याय लिखा गया है। लगभग १४०० पृष्ठ मू. १६.००

होमियोपैथिक लेडी डाक्टर (छठा संस्करण)—इस पुस्तक में स्त्री रोगों की सरल होमियोपैथिक चिकित्सा दी गई है। पांच संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाना इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है। मू. १.६२

होमियो पैथिक नुस्खा—डा. श्यामसुन्दर शर्मा, इस पुस्तक में अनेक उपयोगी होमियोपैथी नुस्खे दिए हैं। मू. १.५०

भैषज्यसार—होमियोपैथी की पाकेट गुटिका। सभी रोगों की दवाओं के प्रयोग व मात्राएं दी हैं। मू. २.००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेण्ट मेडीसन—डा. सुरेश प्रसाद ने इस पुस्तक में इन औषधियों को लिया है जो भारतीय औषधियों से तैयार होती है। साथ ही बाद में कुछ होमियो पैथिक पेटेण्ट औषधियों को वह किस रोग में दी जाती हैं, दिया है। मू. ३.००

रिलेशन शिप—नित्य व्यावहारिक औषधियों का सहायक अनुकरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियों का संग्रह किया है। मू. २.००

रोग निदान चिकित्सा--इस छोटी पुस्तक में १०० पृष्ठों में रोगी की परीक्षा विधि व ५० पृष्ठों में होमियोपैथी एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मू. २.००

स्त्री रोग चिकित्सा--डा. सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियों को होने वाले अन्य सभी रोगों का निदान व चिकित्सा दी है। मू. ६.२५

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका—जिन्हें मोटे-मोटे ग्रन्थ पढ़ने का समय नहीं है उनके लिए यह मेटेरिया मैडिका बहुत उपयुक्त है। सजिल्द ४.५०, आर. एस. भार्गव ७.००।

होमियो चिकित्सा विज्ञान-(Practice of Medicine) - लेखक डा. श्यामसुन्दर शर्मा। प्रत्येक रोग का खण्ड-खण्ड रूप में परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषंगिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। सजिल्द मू. ५.००

बारह तन्तु औषधियां-इसमें प्रारम्भ में १२ मूल औषधियों के विषय में लगभग १८० पृष्ठों में पर्याप्त जानकारी प्रदान करने के बाद रोगानुसार बायोकैमिक चिकित्सा विस्तार से दी है। छठा संस्करण मू. ८.००

होमियोपैथिक संग्रह (प्रथम भाग)-इसमें होमियोपैथिक विधान (Organon) मेटेरिया मैडिका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिये गये हैं। मू. १०.००

होमियोपैथिक संग्रह (दूसरा भाग)—इसमें मेटेरिया मैडिका का होम्यो विस्तार पूर्वक दिया गया है। औषधियों के प्रचलित नाम मदर टिंचर तथा डाइलूशन

करने की विधि और रोगों के निवारण में उपवास का स्थान वताने वाली पुस्तक का मू. २ रुपया।

उठो ! —इस पुस्तक को पढ़ें और दुख, परेशानी व मुसीवतों से छुटकारा पाकर जीवन सफल बनायें। मू. २.००

आदर्श आहार–भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है वताने वाला एक ज्ञानकोष मू. २.२५।

आहार चिकित्सा—आहार द्वारा रोग निवारण की शास्त्रीय विधि इस पुस्तक में सरल भाषा में समझाई है इसके लेखक श्री विट्ठलदास मोदी है। मू. ३ रु०

दुग्धकल्प दूध मे क्या गुण हैं। इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है। दूध से वनी विभिन्न वस्तुओं का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि वर्णन इस पुस्तक में पढिये मू. १.५०

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा संस्करण)–लेखक केदारनाथ गुप्ता एम. ए.। इसमे जल चिकित्सा के सारे सिद्धान्तों को वड़ी सरल भाषा मे प्रतिपादित किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगों की चिकित्सा कैसे करें। यह पुस्तक मे पढ़िये। मू. ४.५०

पुराने रोगों की गृह चिकित्सा—लेखक डा. कुलरंजन मुखर्जी। इस पुस्तक में अजीर्ण, संग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाह, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुसकता, अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई। मू. ४.५०

देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—इस पुस्तक में नेत्र कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कण्ठरोग, श्वास, कास अजीर्ण, विशूचिका, प्रवाहिका, अतीसार, संग्रहणी, वृक्क-शूल, शूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र, नपुंसकता आदि रोगों के उपयोगी प्रयोग दिये है। मू. सजिल्द ५ रु.

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा–लेखक डा. सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओं के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं। तथा उनका नाम मात्र व्यय में किस प्रकार उपचार किया जाय ? बच्चों को नीरोग रखने के उपाय एवं विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक में हैं। मू. २ रु.

काम विज्ञान की गृहस्थोपयोगी पुस्तकें

क्र.	पुस्तक	मूल्य
१.	यौन दुर्वलता और उसका इलाज	मूल्य ४.००
२.	यौन रोग और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा	,, ३.००
३.	गुप्त रोगों का इलाज	,, ३.००
४.	सेक्स की समस्यायें और मनोचिकित्सा	,, ४.००
५.	हस्त मैथुन और स्वप्न दोष	,, ४.००
६.	आधुनिक यौन विज्ञान	,, ४.००
७.	युवतियों के यौन रोग	,, २.००
८.	काम शक्ति कैसे वढ़े	,, ३.००
९.	काम कला (पुरुषों के लिए)	,, २.००
१०.	काम कला (स्त्रीयों के लिए)	,, ३.००
११.	युवतियों के यौन मनोविकार	मूल्य २.००
१२.	यौन व्यायाम और आसन	,, ७.००
१३.	गुप्त ज्ञान (पुरुषों के लिए)	,, ५.००
१४.	गुप्त ज्ञान (स्त्रीयों के लिए)	,, ५.००
१५.	रति रहस्य	,, ४.००
१६.	यौन प्रेम	,, २.००
१७.	नपुंसकता	,, २.००
१८.	किशोर अङ्क	,, ०.७५
१९.	गुप्त रोग चिकित्सा विश्वकोष	,, ४.००
२०.	स्त्री रोग चिकित्सा विश्वकोष	,, १०.७५

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

आज से ५५ वर्ष पहले धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा चिकित्सकों की सहायतार्थ चिकित्सा में आवश्यक उपकरणों की विक्री का प्रबन्ध किया गया था परन्तु कुछ कारणों से धन्वन्तरि कार्यालय ने उपकरण आदि की विक्री का प्रबन्ध अपनी एक सहायक संस्था को सोंप दिया था। हमारे बहुत से ग्राहकों की शिकायत थी कि धन्वन्तरि कार्यालय से ही पुनः यंत्र-शस्त्र आदि उपकरणों की विक्री का प्रबन्ध किया जाय जिससे वे अपनी चिकित्सा में आने वाली वस्तुएं एक ही स्थान से मंगा सकें। हमें अपने प्रेमी ग्राहकों को सूचित करते हुये परम प्रसन्नता है कि अब हमने चिकित्सोपयोगी सभी यंत्र शास्त्रों का स्टाक कर लिया है अब हमारे ग्राहकों को अन्य स्थान पर नही भटकना पड़ेगा। हमने इस बार २ बातों का ख्याल विशेष रूप से रखा है—पहला उपकरणों को उत्तम से उत्तम निर्माण कराया है दूसरा इनके मूल्य उचित तथा कम से कम रखे गये हैं। आप हमारे उपकरणों की उत्तमता तथा रेट किसी भी उपकरण सप्लाई करने वाली कम्पनी के रेटों से मिला सकते हैं। हमारा आग्रह है कि आप इस सूची को ध्यानपूर्वक पढ़ें और अपने औषधालय में इन उपकरणों को मंगाकर रोगियों पर व्यवहार करें तथा सफलता और यश अर्जित करें।

डाइग्नौश्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक, कान तथा गले को अन्दर से देखते हैं। इसमें एक टार्च होती है जिसमें २ सैल डाले जाते हैं। उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जवान देखने की जीबी तीनों में से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमें प्रकाश की व्यवस्था होने से बहुत सुविधा रहती है। इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है। सैल सहित ६५ रुपया।

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster)—जहां पर पट्टी बांधने में असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करें। यह उसी स्थान पर काट कर चिपका दी जाती है। मूल्य १ इंच×५ गज ६ रुपया, २ ईंच×५ गज १० रुपया।

आंख धोने का गिलास—किसी वस्तु का कण या उड़ता हुआ कोई छोटा सा कीड़ा आंख में पड़ जाने पर निकालना कठिन हो जाता है। इस ग्लास में जल भरकर आंख में लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मूल्य १ रुपया।

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगों में रोगी का रक्त-चाप (Blood Pressure) जानना आवश्यक है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य मंगाकर रखना चाहिए। मूल्य डायल टाइप १६ रुपया।

मोतीझला देखने का शीशा—मोतीझला (Typhoid) के दाने बहुत सूक्ष्म होने के कारण देखने में नहीं आते इसलिये कभी-कभी निदान करने में बड़ी भूल हो जाती है। इस शीशे के द्वारा वे दाने बड़े-बड़े दीख पड़ते है तथा आसानी से पहचाने जा सकते हैं। मूल्य प्लास्टिक का हैडिल छोटा शीशा ३ रुपया, बढ़िया बडा ५ रुपया, धातु का हैडिल सर्वोत्तम बड़ा साइज ६ रुपया।

स्टेथिस्कोप

वक्ष परीक्षा यन्त्र—मूल्य भारतीय उत्तम २० रुपया, साधारण १५ रुपया, एक चैस्ट पीस वाला जापानी सर्वोत्तम ५२.५० ।

स्टेथस्कोप रखने का थैला—इसमें एक ओर आप स्टेथिस्कोप रख सकते हैं तथा बाहर नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ में लटकाया जा सकता है। दो जेब वाला मूल्य १३ रुपया।

पैन टार्च—यह जेब में पेन की तरह लगाई जाती है। इसमें बहुत पतले दो सैल पड़ते है। चिकित्सकों लिए गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य दो सैल सहित केवल १४ रुपया।

इसी टार्च पर गले व जवान देखने, कान तथा नाक देखने की कांच की ठोस नली फिट हो जाती है जिससे इन

अङ्गों को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढ़े एक बक्स में रखे पूरे सैट का मू. केवल ३६.५० ।

थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र)—४.५० ।

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किए क्लिप सहित २.५० ।

थर्मामीटर केस—प्लास्टिक का २ रुपया ।

धमनी संदंश (Artery Foreps)—शल्य कर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकड़ कर रक्तस्राव रोका जाता है। मूल्य ५ इन्ची ६.००, ६ इन्ची ६.५०, स्टेनलैसस्टील की ५ इन्ची ८.७५, ६ इन्ची ६.००

सूचिका संदंश (Needle Holder)—शल्य कर्म में मांस तन्तु आदि एवं त्वचा को सीते समय सुई को इसी से पकड़ा जाता है। इसके बिना सीवन कर्म सम्भव नही। मू. १० रुपया ।

धागा सीवन कर्म को—नाइलोन का १ पैकिट ३.५० ।

शीशे पर लिखने की पेन्सिल—इस पेन्सिल से आप शीशा, प्लास्टिक तथा धातु के वर्तन आदि पर लिख सकते हैं। मू. १ रुपया ।

मसूढ़े चीरने का चाकू—सीधा २.५०, फोल्डिग ४.५०, स्टेनलैसस्टील का सीधा ४.०० ।

इन्जेक्शन सिरिंज (कम्पलीट)—सम्पूर्ण कांच की २ c.c. की ५.००, ५ c.c. की ७.५०, १० c.c. की ६.५०, २० c.c. की १४.००, ३० c.c. की २१.००, ५० c.c. की ३५.०० ।

रेकार्ड सिरिंज—२ c.c. की ११.००, ५ c.c. १५.०० ।

ल्यूर लाक भारतीय—२ c.c. ८.००, ५ c.c. १०.००, १० c.c. ११.५० ।

ल्यूर लाक जापानी—२० c.c. २१.०० ३० c.c. २८.००, ५० c.c. ३८.०० ।

इन्जेक्शन की सुई (नीडिल)—१ दर्जन ६ रु. ।

सिरिंज के धातु केस—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए—१ केश २ c.c. की सिरिंज के लिए ४.५०, ५ c.c. की सिरिंज के लिए ६.००, १० c.c. की सिरिंज के लिए ८.५० ।

सिरिंज केश प्लास्टिक का—२ c.c., ५ c.c. तथा १० c.c. की सिरिंज तथा नीडिल एक साथ रखी जा सकती हैं। मूल्य ६.५० ।

परवाल उखाड़ने की चिमटी (Cilia Forceps)-आंखों में परवाल पड़ जाने पर उनका उखाड़ना आवश्यक है। साधारण चिमटी की पकड़ में यह बाल (Cilia) नहीं आते। मूल्य २.५०

एनीमा सिरिंज (वस्ति यन्त्र)-इस यन्त्र से जल या औषधि द्रव्य गुदा में आसानी से चढ़ाया जा सकता है। रबड़ का भारतीय उत्तमम् ८.००

गला व जवान देखने की जीभी (Tongue DePressure) गला देखने के लिए जब रोगी मुंह खोलता है तब जीभ (जिह्वा) का उठाव गले को ढक लेता है। इस से जीभ दबाकर गले के अन्दर की स्थिति स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण सीधी २,०० फोल्डिंग ६.००

गरम पानी की थैली—उदरशूल, फोड़ा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानों पर इस थैली में गरम पानी भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मू. ७ ००

बरफ की थैली—रोगी को इससे ठण्डक पहुंचती है किन्तु उससे वह भीगता नही है। मू. ७.००

कान धोने की पिचकारी-धातु की एक औंस १७.५० २ औंस की १६.५०, ४ औंस की २१.५० ।

आपरेशन करने का चाकू-इसमें हैंडिल पृथक् होता है तथा काटने वाला ब्लेड पृथक् होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है। मू. ६ ब्लेड सहित १०.०० स्टेनलैसस्टील का ६ ब्लेड सहित १३.५० ।

चीमटी—४ इन्ची १.५०, ५ इन्ची २.५० स्टेनलैस स्टील की ४ इन्ची ४.७५, ५ इन्ची ५.००,

चाकू—सीधा २.७५, फोल्डिग ४.५०, स्टेनलैस स्टील का सीधा ४.००,

दांत उखाड़ने का जमूड़ा—इससे दांत मजबूती से पकड़कर उखाड़ा जाता है १२.५०, 'स्टेनलैस-स्टील का २८.००

आंख में दवा डालने की पिचकारी-१ दर्जन ०.४०

कान में से दाना निकालने का यन्त्र—कान में यदि कोई अनाज का दाना आदि पड़ गया है तो उसे किसी साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करें, नहीं तो वह आगे सरक जायेगा। यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खींचकर बाहर लाता है। मू. ४.५०

ग्लेसरीन की पिचकारी (पिलास्टिक) की गुदा में ग्लेसरीन के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी मूल्य १ औंस ३.५० ४ औंस ७.००

आत्म निवेदन

गर्ग वनौषधि भण्डार को स्थापित हुए अभी ६ वर्ष भी नही हुए है, इसके द्वारा निर्मित आयुर्वेदिक कैपसूल, घनसत्व, आयुर्वेदिक मलहम (ट्यूब्स) एवं पेटेण्ट औषधियों की ख्याति दूर-दूर तक हो गई है। हमारी दवाएं स्वर्गीय पूज्य पिताजी वैद्य देवीशरण जी गर्ग सम्पादक सुधानिधि, अध्यक्ष-धन्वन्तरि कार्यालय के ४० वर्ष के अनुभव का निचोड़ है। अपने चिकित्सालय में सहस्रों रोगियों पर भिन्न-भिन्न प्रयोगों की परीक्षा करने के पश्चात् जो प्रयोग आशुफलप्रद और अत्युत्तम साबित हुए, उन्हें ही हमने पेटेन्ट औषधियों का रूप दिया है। इसीलिए हम दावा कर सकते हैं कि हमारी औषधि कभी निष्फल नहीं होगी।

आजकल जनता औषधियों के गुणों के साथ-साथ आकर्षक पैकिंग भी देखना चाहती है। अब पुड़िया एवं क्वाथों का समय गया। हमारी सभी दवाओं का पैकिंग आधुनिक रूप, आयुर्वेदिक मलहम ट्यूबों में है। हमने अपनी सबसे प्रशंसित मलहम चर्मनौल का ट्यूब प्रिंट काफी समय पूर्व करा लिया था, अब दग्धनौल का ट्यूब भी प्रिंट कराया गया है।

गर्ग वनौषधि भण्डार एवं धन्वन्तरि कार्यालय दोनों एक है परन्तु दोनों के सेलटैक्स, इन्कमटैक्स अलग-अलग हैं, इसलिए दोनो फर्मों का सामान एक साथ नही भेजा जा सकता है। कृपालु ग्राहकों से नम्र निवेदन है कि व्यर्थ ही दोनों फर्मों का सामान एक साथ मंगाने का आग्रह न करे।

हमारा निवेदन है कि आप हमारी इन औषधियों की एक बार परीक्षा अवश्य करें। स्थानाभाव के कारण औषधियों का संक्षिप्त विवरण दे रहे हैं एवं वनौषधियों की सूची नहीं दे रहे हैं। विस्तृत विवरण के लिए सूचीपत्र मंगावें।

भवदीय—

भगवतीप्रसाद गर्ग बी. फार्म

सुधानिधि के ग्राहक बनने के नियम

१—सुधानिधि का वार्षिक मूल्य पोस्ट-व्यय सहित १३.०० हो गया है।

२—सुधानिधि के ग्राहकों को हर साल एक बड़ा विशेषांक तथा दो लघु विशेषांक भी इसी मूल्य में भेंट किये जाते हैं।

३—वर्ष जनवरी से प्रारम्भ होकर दिसम्बर में समाप्त होता है।

४—सुधानिधि के ग्राहक पूरे वर्ष के लिए ही बनाए जाते हैं।

५—ग्राहक किसी भी समय बनाए जा सकते हैं, लेकिन ग्राहक को वर्ष के आरम्भ यानी जनवरी से ग्राहक बनने के समय तक के प्रकाशित अङ्क तथा विशेषांक भेजकर वर्ष के आरम्भ से ही ग्राहक बना लिया जाता है और उनका भी वर्ष अन्य ग्राहकों के साथ दिसम्बर में समाप्त हो जाता है।

६—केवल विशेषांकों का ही मूल्य २०.०० होगा, लेकिन ग्राहक बन जाने पर यही विशेषांक वार्षिक मूल्य १३.०० में ही अन्य अङ्कों सहित मिल जायेंगे।

समाचार पत्र पञ्जीकृत कानून (केन्द्रीय) १९५६ के नियम नं. ८ के अन्तर्गत अपेक्षित
सुधानिधि से सम्बद्ध विवरण फार्म ४ (एल ८)

१. प्रकाशन का स्थान	विजयगढ़
२. प्रकाशन का काल	मासिक
३. मुद्रक का नाम	मुरारीलाल गर्ग
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	धन्वन्तरि प्रेस विजयगढ़
४. प्रकाशक का नाम	मुरारीलाल गर्ग
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़
५. सम्पादक	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	त्रिवेदी नगर हाथरस
६. भागीदार	मुरारीलाल गर्ग धन्वन्तरि कार्यालय
	भगवतीप्रसाद, गर्ग ,,
	गोपालशरण गर्ग ,,
	किरनदेवी गर्ग ,,

मैं मुरारीलाल गर्ग यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखित सभी विवरण जहां तक मैं जानता हूँ तथा मान करता हूँ सत्य है।

—मुरारीलाल गर्ग